१ ९८२

अप्रैल
जून



वर्ष १ ; खंड २]   वैशाख, २९९ तुलसी-संवत्   [संख्या ४ ; पूर्ण संख्या १०



ग्राहक-नंबर १०२५
Pt. Lakshmi Narain, Sharma,
Upadhaya,
P. O. Nihtaur,
Dist. Bijnore.

संपादक—
श्रीदुलारेलाल भार्गव
श्रीरूपनारायण पांडेय

छमाही मूल्य ३॥)

वार्षिक मूल्य ६॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

—॥ श्रीः ॥—

माधुरी

विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र

मासिक पत्रिका

वर्ष १, खंड २

माघ-आषाढ़, २९९ तुलसी-संवत् (१९७९-८० वि०)

जनवरी-जुलाई, १९२३ ई०

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

प्रकाशक—

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

वार्षिक मूल्य ६॥)]   [छमाही मूल्य ३॥)

मुद्रक तथा प्रकाशक—
केसरीदास सेठ, सुपरिंटेंडेंट
नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

लेख-सूची

१—पद्य

२—गद्य

चित्र-सूची

क—रंगीन

ख—व्यंग्य

ग—सादे



हिंदी-संसार में स्त्रियों के लिये सर्वोत्तम पुस्तक

महिला-माला—मणि १

पत्रांजलि

भारत की विदुषी नारियाँ ।।)

देवी द्रौपदी ।≈)



दंपति-कर्तव्य-शास्त्र १।)

गृहिणी-चिकित्सा २।।)

इस पुस्तक में पति और पत्नी के परस्पर लिखे हुए पत्रों का संग्रह है । इसमें हँसी और कौतुक के साथ-साथ शिक्षा का मेल है । इसके पाठ से स्त्रियों को कई लाभ एकसाथ होते हैं । उन्हें पत्र लिखना आ जाता है, सदुपदेश मिलते हैं और मनोरंजन भी खूब ही होता है । जिस ढंग से इसमें स्वामी ने स्त्री को पत्र लिखे हैं, उसका स्त्रियों के चरित्र-गठन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । इस पुस्तक को पढ़कर अनेक स्त्रियाँ सुधर गईं । अब तक हिंदी में जितनी स्त्री-उपयोगी पुस्तकें निकली हैं, उनमें यह पुस्तक बहुत ऊँचा आसन रखती है । इसीलिये इसका पहला संस्करण हाथों-हाथ बिक गया । अब दूसरा छपकर तैयार हुआ है । कवर पर माधुरी के सुप्रसिद्ध चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा का बनाया हुआ तीन रंग का एक दर्शनीय चित्र भी है । छपाई साफ़ । काग़ज़ ऐंटिक, उम्दा । एक बार अपनी बहनों और बहुओं के हाथ में अवश्य दीजिए । मू० केवल ॥)

संचालक—गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २६-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

चित्र-सूची

लेख-सूची





[illegible]

सुलभ विद्वानों द्वारा प्रकाशित

हिंदी की सर्वोत्तम पुस्तकें

[illegible]



माधुरी

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र, मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रस-मयी अनन्य !

वर्ष १ खंड २ — वैशाख-शुक्ल ७, २९९ तुलसी-संवत् (१९८० वि०)— २३ एप्रिल, १९२३ ई० — संख्या ४ पूर्ण संख्या १०

अधिवास

(१)

कहाँ ?—
मेरा अधिवास कहाँ ?
क्या कहा ?—'रुकती है गति जहाँ ?'
भला इस गति का शेष—
संभव है क्या—
करुण स्वर का जब तक मुझमें रहता है आवेश ?

(२)

मैंने 'मैं'-शैली अपनाई,
देखा दुखी एक निज भाई,
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे—
झट उमड़ वेदना आई ;
उसके निकट गया मैं धाय,
लगाया उसे हृदय से; हाय !—
फँसा माया में, हूँ निरुपाय ;
कहो फिर कैसे गति रुक जाय ?
उसकी अश्रु-भरी आँखों पर मेरे करुणांचल का स्पर्श
करता मेरी प्रगति अनंत, किंतु तो भी मैं नहीं विमर्ष,
छूटता है यद्यपि अधिवास,
किंतु फिर भी न मुझे कुछ त्रास ।

सूर्यकांत त्रिपाठी

सतसई के कुछ दोहों की टीका

सायक-सम मायक नयन,
रँगे त्रिविध रँग गात ;
झखौ बिलखि दुरि जात जल,
लखि जलजात लजात ।

सायक—इस शब्द का अर्थ अन्य टीकाकारों ने बाण किया है । पर बाण से झष के छिपने तथा जलजात के संकुचित होने का वर्णन विशेष संगत नहीं है, और न बाण के तीन रंग ही प्रसिद्ध हैं। हमारी समझ में, यहाँ सायक का अर्थ सायंकाल करना उचित है। 'साय'-शब्द का अर्थ सायंकाल होता है। उसी में स्वार्थिक 'क' लगकर 'सायक'-शब्द को बना हुआ समझना चाहिए ; अथवा 'साय'-शब्द को शाय (सोना) का प्राकृत रूप मानकर सायक का अर्थ सुलानेवाला समय, अर्थात् सायंकाल, मानना चाहिए। कविगण सायंकाल की लाली से नेत्रों की लाली की उपमा देते भी हैं। स्वयं विहारी ने भी ४१० अंक के दोहे (रह्यो चकित चहुँघाँ, इत्यादि) में ऐसा किया है।

मायक—माया करनेवाले, मोह उत्पन्न करनेवाले। नेत्रों के पक्ष में इसका अर्थ अनेक प्रकार के हाव-भावादि करनेवाले, और सायंकाल के पक्ष में अनेक प्रकार के रंग बदलने में निपुण,होता है। सायंकाल को 'मायक' इस कारण से भी कहा जा सकता है कि उस समय मायावी जन माया विशेषतः फैलाते हैं, और वह समय सुहावना भी होता है।

त्रिविध रँग—तीन प्रकार के रंग, अर्थात् श्वेत, श्याम एवं अरुण। नेत्रों में ये तीनों रंग वर्णित होते हैं, और सायं-काल में भी ये तीनों रंग आकाश में दिखाई देते हैं।

झखौ—झष भी। झष बड़ी मछली को कहते हैं।

बिलखि—दुखी होकर।

दुरि जात जल—जल में छिप जाते हैं। मछलियाँ दिन को आहार की खोज में इधर-उधर विचरती और जल-तल पर आती-जाती रहती हैं ; पर सायंकाल को वे जल के भीतर पृथ्वी पर आश्रय लेती हैं।

लजात—संकुचित होते हैं । सायंकाल में कमलों का संकुचित होना प्रसिद्ध ही है।

दूती नायिका को किसी जलाशय के तट पर संकेत-स्थल में बिठाकर और नायक के पास जाकर उससे उसके नेत्रों की प्रशंसा करती हुई उसके उक्त स्थान में स्थित होने का वृत्तांत यों व्यंजित करती है—

सायंकाल के समान मायावी [तथा] तीन रंगों से रँगे हुए गात्रवाले [उसके] नेत्रों को देखकर [उस जलाशय के] कमल लजाते हैं [और] झष भी दुःखित होकर जल में छिप जाते हैं।

× × ×

ढीठि परोसिनि ईठि है, कहे जु गहे सयानु ;
सबै सँदेसे कहि कह्यौ, मुसकाहट मैं मानु ।

ढीठि (धृष्ट)—पड़ोसिन को ढीठ इसलिये कहा है कि वह ऐसी निडर है कि स्वयं नायिका ही से अपने इष्ट का साधन कराना चाहती है।

ईठि—इष्ट-शब्द से ईठ बनता है, जिसका अर्थ मित्र है । उसी का स्त्रीलिंग-रूप 'ईठि' है । इसका अर्थ हितकारिणी है।

सयानु—सयानपन, चातुर्य ।

नायिका अन्य-संभोग-दुःखिता है। नायक की गुप्त प्रीति पड़ोसिन से थी। एक दिन जब नायक घर पर नहीं था, तब उस पड़ोसिन ने आकर, और नायिका की बड़ी इष्ट बनकर, उससे नायक से कहने को कुछ सँदेसे कहे। वे सँदेसे कुछ इस प्रकार के थे कि आज मेरे घर में कोई है नहीं, अतः तुम अपने पति से कह देना कि कृपा करके मेरा अमुक कार्य कर दें, इत्यादि । इन सँदेसों से नायिका ताड़ गई कि इससे और मेरे पति से प्रीति है, अतः यह अवसर पाकर उसको सूने घर में बुलाया चाहती है। जब नायक आया, तो नायिका ने वे सब सँदेसे, जो ढीठि पड़ोसिन ने इष्ट बनकर बड़ी चातुरी से कहे थे, कहकर और मुसकिराहट द्वारा यह व्यंजित करके कि मैं सब भीतरी बात समझ गई हूँ, अपना मान सूचित किया। सखी का वचन सखी से—

ढीठ पड़ोसिन ने इष्ट हो (बन)-कर जो [सँदेसे] सयानपन गहे (धारण किए) हुए [नायक से कहने को नायिका से] कहे थे, [सो] सभी सँदेसे [नायिका ने नायक से] कहकर, मुसकिराहट में (मुसकिराहट द्वारा) [अपना] मान कहा (प्रकट किया)।

[टिप्पणी—इस दोहे के अर्थ में अन्य टीकाकारों ने बड़ा धोखा खाया है।]

× × ×

पारयौ सोरु सुहाग कौ, इनु बिनु हीं पिय-नेह ;
उनदौहीं अँखियाँ ककै, कै अलसौहीं देह ।

नायिका, अपनी किसी सपत्नी की आँखों को उनींदी-सी एवं देह को अलसाई हुई-सी देख अथवा सुनकर, इस अनुमान से दुःखित हुई है कि नायक उसको अधिक प्यार करता है, और रात को उसी के यहाँ रहा है। उसको दुःखित देखकर उसकी हितकारिणी सखी समझाती है कि तेरी सपत्नियाँ बड़ी धूर्त हैं, इन सबने अपनी आँखों को उनींदी-सी एवं देह को आलस्य-भरी-सी बना-बनाकर अपने प्रियतम की प्यारी होने की मिथ्या धूम मचा रक्खी है ; जिसमें तू यह सुन-सुनकर कुढ़े और नित्य मान-कलह करे, तो फिर प्रियतम का चित्त शनैः-शनैः तुझसे फिर जाय, और उनकी बन पड़े, इत्यादि। सो तू इन धूर्ताओं के धोखे में आकर वृथा दुःखित मत हो। इस दुःख में तेरा अनहित है। सच्ची बात और उनका गुप्त अभिप्राय भली भाँति समझकर इस दुःख का परित्याग कर। भला, तू यह तो समझ कि यदि तेरी किसी एक सौत की ऐसी चेष्टा होती, तो किसी प्रकार से तेरा अनुमान ठीक भी हो सकता था ; पर जब सभी की आँखें उनींदी-सी तथा देह अलसाई हुई-सी हो रही है, तो यह कैसे संभव हो सकता है कि प्रियतम सभी के साथ रात-भर रहा हो। अतः ये सब-की-सब धूर्त तथा मिथ्या चेष्टा बनाए हुए प्रमाणित होती हैं—

इन्हों(तेरी धूर्त सौतों)ने, बिना प्रियतम के स्नेह ही के [अपनी] आँखों को उनींदी-सी कर-करके (बरबस बना-बनाकर) [एवं] देह को आलस्य-भरी-सी करके (बनाकर) [अपने] सुहाग (सौभाग्य, अपने ऊपर प्रियतम के स्नेह होने के सौभाग्य) का सोर (शोर, विख्याति, धूम) [गाँव-भर में] कर रक्खा है (मचा रक्खा है), [अतः तू इनकी धूर्तता से सचेत रह, और वृथा दुःखित होकर इनको अपनी कुटिल नीति से कृतकार्य न होने दे] * ।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

---

* अप्रकाशित 'बिहारी-रत्नाकर' से ।

हिंदी-प्रेम

(१)



बाबू शीतलप्रसाद एम्० ए० अँगरेज़ी के बड़े ही प्रेमी हैं ; अँगरेज़ी के रंग से बिलकुल रँगे रहते हैं। पत्र, डायरी वग़ैरह अँगरेज़ी ही में लिखते हैं। अँगरेज़ी की कविता और अँगरेज़ी के लेख लिखने के गुण भी रखते हैं। अँगरेज़ी-भाषा को यह संसार की सभ्यतम भाषा (most civilized language) कहते हैं। इस भाषा के प्रेम के कारण न-जाने कितनी बार इनके मित्रों से इनका घोर विवाद हो गया है। बल्कि इस विषय के दारुण वाग्युद्ध से आजकल कितने ही मित्रों से इनकी बोल-चाल तक बंद है। ऐसा न होता, किंतु इस भाषा का उत्कट प्रेम इन्हें आपे से बाहर कर देता है। दलील से जब यह परास्त हो जाते हैं, तो इनकी नज़र में इनके मित्र शत्रु देख पड़ते हैं। इनका यह व्यवहार वास्तव में इनके मित्रों के मन में इन्हें चिढ़ाने का शौक़ पैदा कर देता है।

बाबू साहब से कभी-कभी इनकी स्त्री भी झिझक जाया करती है। बात यह है कि अभ्यास-वश यह उससे भी अँगरेज़ी ही बोलने लग जाते हैं। वह बेचारी अँगरेज़ी के शब्द, इनकी संगति से, कुछ-कुछ समझ भी पाती है ; किंतु लच्छेदार वाक्यों का समझना अभी उसके लिये पहाड़ है। बाबू साहब जी-जान से यत्न करते रहते हैं कि वह सुशिक्षिता हो। और, यह अँगरेज़ी पढ़ी-लिखी ही को सुशिक्षिता कहते हैं। किंतु उसके चंचल तथा कड़े स्वभाव के कारण आपका सिर-तोड़ परिश्रम

भी व्यर्थ ही जाता है। दूसरा कारण यह भी है कि वह अँगरेज़ी को गिटपिट-बोली कहती है। इस पर बाबू साहब कुछ क्रोध (जो पीछे उसके नयन-बाणों के सामने काफ़ूर हो जाता है) और प्रखर हास्य के साथ कहते हैं—" You are too fool " (अर्थात् तुम बड़ी मूर्ख हो)। वह बेचारी इसे क्या समझे ? चुप रह जाती है।

अँगरेज़ी के हिमायती मित्रों से बाबू साहब की गहरी छनती है। उन लोगों के आगे आप अँगरेज़ी की प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं। बाबू साहब की प्रिय उक्ति है—" In my opinion English languagehas peculiar decency over others." (अर्थात्, मेरी सम्मति में, दूसरी भाषाओं की अपेक्षा अँगरेज़ी में एक विचित्र सौंदर्य है)। आपकी सम्मति में अँगरेज़ी ही संसार की Lingua Franca (जातीय भाषा) बनने योग्य है।

एक दिन इसी बात पर आपके एक विरोधी मित्र, अरुणश्याम, कह उठे कि "यह आप कैसे कह सकते हैं कि अँगरेज़ी ही संसार की Lingua Franca बन सकती है ? क्या आप फ्रेंच, जर्मन, जापानी आदि अन्य भाषाओं से परिचित हैं ? हो सकता है कि उनमें अँगरेज़ी की अपेक्षा अन्य अच्छे गुण मौजूद हों।" बाबू साहब को यह बात असह्य हो उठी। उन्होंने अपने मँजे हुए अभ्यास के कारण अँगरेज़ी ही में उत्तर दिया—what of it ?(इससे क्या) I have sense enough to understand the capabilities of the English language. (मुझे इतनी बुद्धि है कि मैं अँगरेज़ी की योग्यताएँ समझ सकूँ) Is it not copiously utilized in all the civilized countries ? (क्या सभी सभ्य देशों में इसका उपयोग बहुतायत से नहीं होता ?)"

बहुत वाद-विवाद के उपरांत अरुणश्याम यह कहकर चल दिया कि "वह समय आ रहा है, जब अँगरेज़ी के प्रेमियों का मत बदल जायगा। वे हिंदी के प्रेमी बन जायँगे, और अँगरेज़ी के विरोधी।"

बाबू साहब ने एक विकट हँसी हँस दी।

(२)

कुछ दिन के बाद उसी ज़िले में एक साहित्य-प्रेमी कलेक्टर आए। कह ही आए हैं कि बाबू साहब भी साहित्य के प्रेमी थे। सुतरां कलेक्टर साहब से बाबू साहब की जान-पहचान होते देर न लगी। हृदय तो हृदय को खोजता ही है। बाबू साहब ख़ानगी तौर से प्रायः कलेक्टर साहब से मिलते रहते हैं। साहब को इसके लिये उज़्र भी नहीं होता। सदैव की तरह साहित्य की चर्चा छिड़ते-छिड़ते एक दिन भाषा-संबंधी प्रश्न भी उठा। बाबू साहब अपनी प्रिय भाषा की लंबी-चौड़ी हाँक गए। उन्हें आशा थी कि साहब मुझ पर हृदय से प्रसन्न होंगे, और मैं अपनी स्त्री से इसकी चर्चा करूँगा। किंतु अत्यंत खेद की बात है कि उनकी बातें सुनकर साहब का मुख-मंडल विषण्णता से आच्छादित हो गया। उनके भाल और भ्रुकुटी पर आश्चर्य की रेखाएँ भी चिह्नित हो उठीं। यदि बाबू साहब केवल अँगरेज़ी की प्रशंसा करके ही चुप रहते, तो ऐसा न होता। वह अपने भाषण में अँगरेज़ी की प्रशंसा के रस में हिंदी की निंदा की पुट भी मिलाते जाते थे। साहब ने कहा—"बाबू, मैं नहीं समझता कि कोई अपनी मातृ-भाषा का भी निंदक हो सकता है! आप-जैसे मनुष्य से तो मैं यही आशा रखता था कि आपका संग करके मैं हिंदी के उस सौंदर्य से, जिसका आभास कई ज़िलों में पा चुका हूँ,

परिचित हो जाऊँगा।" बाबू साहब ने अपनी अँगरेज़ी-मिश्रित खिचड़ी हिंदी में कहा—"हुज़ूर, मुझे तो हिंदी में कोई beauty नहीं मालूम होती। मेरा तो idea है कि यह अजब ruggish language है।" साहब ने पूछा—"सो कैसे?" बाबू साहब ने जवाब दिया—"सबसे पहले तो इसका Learning ही difficult है। इसमें रि री लि ली री (ऋ, ॠ, ऌ), 'हरस-दीरघ' वग़ैरह परले सिरे का trouble create करनेवाला है। दूसरे, हिंदी तो कोई अच्छी भाषा है नहीं, जो इसे कोई पढ़े। हुज़ूर, अँगरेज़ी से compare करके देखें। मिल्टन का Paradize Lost, शेक्सपियर की Dramatic Series, वर्ड्स्वर्थ का Nature worship वग़ैरह हिंदी में खोजने पर भी नहीं मिलेंगे।" साहब सुनकर अट्टहास करने लगे। उन्होंने पूछा—"आपकी दूसरी भाषा क्या थी?" उत्तर में 'उर्दू' सुनकर फिर कहने लगे—"इसी कारण आप हिंदी की उपेक्षा करते हैं।" साहब हिंदी जानते ही न थे, वल्कि उसके प्रेमी भी थे। उन्होंने कहा—"ऋ, ॠ, ऌ वग़ैरह की कठिनता से यह नहीं कहा जा सकता कि हिंदी-भाषा सौंदर्य से ख़ाली है। मैंने संगति करके ख़ूब जाना है कि हिंदी के पुराने साहित्य में अनेक अनुपम रत्न भरे पड़े हैं। बल्कि आजकल कितनी ही आलोचनात्मक पुस्तकें निकल रही हैं, जिनसे इन रत्नों का प्रकाश फैलता जा रहा है। चंद, सूर, तुलसी, वग़ैरह की रचनाएँ हिंदी-भाषा को बहुत दिनों से अलंकृत करती चली आ रही हैं। अर्वाचीन कविताओं में भी कोई-कोई बहुत ही सुंदर है। ऐसी दशा में आपके मुख से अपनी ही मातृ-भाषा की निंदा सुनकर आश्चर्य-चकित हो जाता हूँ।" साहब ने विहारी, मतिराम, देव, ख़ानख़ाना वग़ैरह की कई सुंदर कविताएँ, जो उन्होंने सुनी और पढ़ी थीं, उन्हें सुनाईं। उनका अर्थ भी समझाया, और तद्विषयक सादृश्य का भी दिग्दर्शन कराया।

बाबू साहब अँगरेज़ी-साहित्य के रस में ग़र्क़ रहते ही थे। इसके कारण उनका हृदय साहित्यिक बन ही गया था। कहा जा सकता है कि उनका हृदय-क्षेत्र किसी भी साहित्य-बीज के लिये अनुकूल था। बात इतनी ही थी कि अँगरेज़ी का बीज बोया जाता रहने से दूसरे बीज को अवसर ही नहीं मिलता था कि उसमें एकाध फ़सल पैदा कर ले। किंतु आज कलेक्टर साहब ने हिंदी-कविता का रस भी उसमें बरसा दिया। उनसे प्रार्थना भी की कि आप हिंदी की उपेक्षा न कीजिए; बल्कि उसे सीखिए। देखिए, उसमें क्या आनंद है! यह क्या कहा, मानो उनके हृदय-क्षेत्र में आज हिंदी का बीज भी बो दिया। अब देखिए, इसमें कैसे पेड़ और फूल-फल लगते हैं।

यही बात—इस तरह की बातें—कितने ही मित्रों से हुईं। किंतु असर न हुआ था। यही बात एक बड़े मनुष्य के मुख से सुनने से अच्छा असर हो गया। मनुष्य की हठीली प्रकृति की बलिहारी!

(३)

बाबू साहब उसी दिन से हिंदी सीखने लगे। कुछ दिनों के अभ्यास से इन्हें लिखना तो न आया ('हरस-दीरघ' का फेर बना ही रहा), किंतु पढ़ने और समझने ख़ूब लगे। तब पहले-पहल इन्होंने गोस्वामी तुलसीदास से ही हाथ मिलाया। उनके जगद्विख्यात रत्न रामायण में इन्हें जैसा आनंद आने लगा, उसके कारण यह कभी-कभी किसी से कह उठते कि ओह, रामायण ऐसी है! मैं तो इतने दिनों तक इसमें रामचंद्र

की कोरी कथा सुनता था। लेकिन वास्तव में यह भक्ति और आरती करने योग्य है।

क्रमशः सूर, देव, विहारी, मतिराम, भूषण आदि के ग्रंथों से इनका परिचय हो गया। अब जब देखिए, तो इन्हीं सबके किसी-न-किसी ग्रंथ से आपका मन बहल रहा है। अब कहें, तो कह सकते हैं कि हिंदी के यह पूरे रसिक हो गए हैं।

कलेक्टर साहब के यहाँ यह अब भी जाते हैं; किंतु अब जाते हैं, तो इनके हाथ को कोई-न-कोई ग्रंथ अलंकृत किए रहता है। साहब पूछते हैं—हाथ में क्या है ? उत्तर मिलता है—हुज़ूर के लिये तोहफ़ा। साहब मारे आनंद के हँस देते हैं। कहना नहीं होगा कि साहब इनसे बहुत ही प्रसन्न रहते हैं।

धीरे-धीरे बाबू साहब की हिंदी की योग्यता उच्चतम सीढ़ी पर चढ़ गई। आधुनिक सामयिक पत्रों से इनकी अभिरुचि आधुनिक हिंदी की ओर झुकी। इनके हृदय में कविता करने की अभिलाषा हुई। झट पद्य-प्रबोध की एक कापी मँगा ली। बाद को छंदः-प्रभाकर, काव्य-प्रभाकर, वग़ैरह पिंगल-ग्रंथ इनके टेबुल की शोभा बढ़ाने लगे।

अब इनकी कविताएँ सामयिक पत्रों में प्रकाशित होने लगीं। सबसे पहले इनकी "चंद्र"-शीर्षक कविता 'सुप्रभात' मासिक पत्र में निकली। उसमें इन्होंने प्रभात की लालिमा में एक मृतवत्सा (जिसकी संतान होने पर मर जाया करती है) सुंदरी की कल्पना करते हुए, उसे पश्चिमादिगुन्मुखी इसलिये बतलाया कि पद्मिनी-वल्लभ उसी ओर अस्त हुए हैं। जब वह नयन-गोचर नहीं हुए, तो वह और ऊँचे चढ़कर उन्हें निहारने लगी। किंतु कौतुक तो यह हुआ कि जिन्हें वह निहार रही है, आँखें फाड़-फाड़कर देख रही है, उन्हीं कृपानिधान ने उसे पीछे से आकर पकड़ा। इससे रस-वश वह भी भाग चली। वह भी पीछा करते गए। निदान लगभग १२ घंटे के बाद उसी पश्चिम की ओर उसे पकड़ पाया। लालिमा-सुंदरी से रहा नहीं गया, हँसने लगी। अनंतर दोनों शयन-गृह में गए। अल्पायु चंद्र का जन्म इसी प्रकार होता है।

शायद उपर्युक्त कल्पना कई संपादकों को अच्छी जँची। उन्होंने पता लगाया, 'अरुण' किसका नाम है। अंत में बाबू साहब के पास कई पत्र आए कि हमारे पत्र के लिये भी कृपाकर कविता दीजिए।

थोड़े ही दिनों के बाद 'खन्ना-पुरस्कार' के सदृश 'धन्ना-पुरस्कार' का जन्म हुआ। यह हिंदी-प्रेमी मन्नाराम धन्ना के स्मरणार्थ था। इस पुरस्कार में राष्ट्रीय महाकाव्य के लिये २०००) की सूचना निकली। इस पुरस्कार के पानेवाले हमारे 'अरुण' जी ही हुए।

बाबू साहब ने इस रक़म का आधा हिस्सा एक अनाथालय को दे दिया।

(४)

बाबू साहब का फिर उनके विरोधी मित्र 'अरुण-श्याम' से वाद-विवाद हो रहा है। अरुणश्याम ने कहा—"लाइए काग़ज़, यह मेरा है। राय साहब की उपाधि मुझे मिली है, आपको नहीं।" राय साहब ने पूछा—"क्यों ? इसमें नाम किसका है ?"

अरुणश्याम—"नाम मेरा है।"

"कहाँ ?"

"यह देखिए—अरुण"

"और उसमें शीतलप्रसाद जो है ?"

"उसे आपने बेईमानी से रखवाया है।"

इतने में इनके कई मित्र बधाई देने आ पहुँचे। पूछने लगे—"क्या है क्या ?"

राय साहब ने कहा—"क्या है, कुछ नहीं।"

अरुण०—"कुछ नहीं ?"

राय साहब—"कुछ क्यों नहीं ?"

मित्र—"तो क्या ?"

राय साहब—"हिंदी-प्रेम।" सभी हँस पड़े।

× × ×

काल-क्रम से राय साहब पटना-युनिवर्सिटी के सीनेट के मेंबर हो गए। साथ ही इनके वही कलेक्टर साहब आजकल लाट साहब के पद को अलंकृत कर रहे हैं। सीनेट में एक प्रस्ताव पेश हुआ कि शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी हो, या मातृ-भाषा। हमारे भूतपूर्व अँगरेज़ी-भक्त राय साहब ने अँगरेज़ी माध्यम का घोर विरोध किया। निदान मैट्रिक्युलेशन तक मातृ-भाषा ही में शिक्षा देने की ठहरी।

इनके पटने से लौटने पर फिर अरुणश्याम आ पहुँचे। दोनों में इस बार यों बात-चीत हुई—

"सीनेट में आपने अँगरेज़ी का विरोध किया है ?"

"हाँ, किया तो है।"

"क्या यह दीन दास कारण पूछ सकता है ?"

"क्यों नहीं ?"

"अच्छा, तो क्या है ?"

"दलील में तो बहुत कुछ है, लेकिन—"

"लेकिन ?"

"लेकिन हिंदी-प्रेम।"

"अहा ! मेरी भविष्य-वाणी सत्य हुई !"

श्यामारुण वंशी

बुद्ध के समय में भारत की दशा



भारतवर्ष के इतिहास में ईसा से पूर्व की छठी शताब्दी चिर-स्मरणीय रहेगी। इसी शताब्दी के लगभग शाक्य-वंश में भगवान् बुद्ध ने अवतार लिया था। उस समय सब ओर लोगों के मन में नई-नई शंकाएँ और नए-नए विचार उत्पन्न हो रहे थे। तत्कालीन प्रचलित धर्म में असंतोष और अविश्वास फैला हुआ था। लोग नए-नए भावों और विचारों से प्रेरित होकर परिवर्तन के लिये लालायित हो रहे थे। वे एक ऐसे पुरुष की प्रतीक्षा कर रहे थे, जो अपने गंभीर विचारों से उनकी शंकाओं का समाधान करे, जो अपने सदुपदेश से उनकी आत्मिक पिपासा को शांत करे, जो उनके सामने एक ऊँचा आदर्श रखकर उनके जीवन को उन्नत करे। जब समाज की ऐसी दशा होती है, तब किसी महापुरुष का जन्म या अवतार अवश्य होता है। वह समाज के सामने अपने जीवन का आदर्श रखता है। उस समय के लोगों की आशाएँ और अभिलाषाएँ उसमें प्रतिबिंबित होती हैं। वह अपने समय में लोगों का मूर्तिमान् आदर्श होता है। अतएव किसी महापुरुष के जीवन और महत्त्व को ठीक-ठीक समझने के लिये यह आवश्यक है कि पहले हम तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दशा से परिचित हो जायँ। इसलिये यदि हम भगवान् बुद्ध के जीवन को ठीक-ठीक समझना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि हम उनके समय में भारत की क्या दशा थी, यह अच्छी तरह से जान लें। इसी उद्देश से बुद्ध के समकालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, और धार्मिक दशा का कुछ दिग्दर्शन यहाँ पर कराया जाता है।

राजनीतिक दशा

उस समय भारतवर्ष तीन बड़े-बड़े भागों में बटा हुआ था। उनमें से बीचवाला भाग "मज्झिम-देश" (मध्य-देश) कहलाता था। मनुस्मृति (२ अध्या० २१ श्लो०) के अनुसार "हिमालय और विंध्याचल के बीच तथा सरस्वती-नदी के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम में जो देश है, उसे मध्य-देश कहते हैं।" इस मध्य-देश के उत्तर में

जो भाग था, वह उत्तरापथ, तथा दक्षिण में जो भाग था, वह दक्षिणापथ, कहलाता था। इस तरह समग्र देश तीन बड़े-बड़े प्रदेशों में बटा हुआ था। अब आइए देखें, उस समय की राजनीतिक दशा कैसी थी ?

उस समय देश में १६ राज्य (षोडश महाजनपद) थे। उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं—

(१) अंग-राज्य	(९) कुरु-राज्य
(२) मगध-राज्य	(१०) पांचाल-राज्य
(३) काशी-राज्य	(११) मत्स्य-राज्य
(४) कोशल-राज्य	(१२) शूरसेन-राज्य
(५) वज्जियों का राज्य	(१३) अश्मक-राज्य
(६) मल्लों का राज्य	(१४) अवंति-राज्य
(७) चेदि-राज्य	(१५) गांधार-राज्य
(८) वत्स-राज्य	(१६) कांबोज-राज्य

ऊपर जिन १६ राज्यों की सूची दी गई है, उनके संबंध में पहली बात ध्यान देने योग्य यह है कि वे देशों के नाम नहीं, बल्कि जातियों के नाम थे। बाद को इन्हीं जातियों के नामों पर देशों के नाम भी पड़ गए। दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि इनमें से " वज्जी " और ' मल्ल ", ये दोनों किसी जाति के नहीं, बल्कि कुलों (ख़ानदानों) के नाम थे। तीसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि इनके ऊपर या इनमें कोई शक्ति ऐसी न थी, जो सब पर अपना आतंक जमा सकती, या सबको एक साम्राज्य के अंदर ला सकती।

इनमें से अंग-राज्य की राजधानी वर्तमान भागलपुर के निकट प्राचीन चंपा-नगरी थी। मगध-राज्य की राजधानी राजगृह (वर्तमान राजगिर) था। काशी-राज्य की राजधानी वाराणसी (बनारस) थी। कोशल-राज्य की राजधानी वर्तमान गोंडा और बहराइच ज़िलों की सीमा पर साहेथ-माहेथ-नामक ग्राम के पास श्रावस्ती-नगरी थी। वज्जी-राज्य की राजधानी वर्तमान मुज़फ़्फ़रपुर-ज़िले के बसाढ़-नामक ग्राम के पास प्राचीन वैशाली-नगरी थी। चेदि-राज्य साधारणतः वर्तमान बुँदेलखंड के स्थान पर था। वत्स-राज्य की राजधानी वर्तमान प्रयाग (इलाहाबाद) के पास प्राचीन कौशांबी-नगरी थी। कुरु-राज्य की राजधानी दिल्ली के पास इंद्रप्रस्थ-नगर था। पांचाल-राज्य के दो भाग थे। एक उत्तरी पांचाल, और दूसरा दक्षिणी पांचाल। उत्तरी पांचाल की राजधानी वर्तमान बदायूँ और फ़र्रुख़ाबाद के बीच में प्राचीन कांपिल्य-नगर था, और दक्षिणी पांचाल की राजधानी क़न्नौज। मत्स्य-राज्य में वर्तमान अलवर, जयपुर और भरतपुर के कुछ हिस्से शामिल थे। शूरसेन-राज्य की राजधानी प्राचीन मथुरा-नगरी थी। अश्मक-राज्य की राजधानी गोदावरी-नदी के किनारे पोतन या पोतली थी। अवंति-राज्य के दो भाग थे। एक उत्तरी भाग और दूसरा दक्षिणी भाग। उत्तरी भाग की राजधानी उज्जयिनी और दक्षिणी भाग की राजधानी माहिष्मती थी। गांधार-राज्य की राजधानी वर्तमान रावलपिंडी-ज़िले में प्राचीन तक्षशिला-नगरी थी। प्राचीन कांबोज-राज्य कहाँ था, इसका निश्चय अभी नहीं हुआ। कुछ लोगों का मत है कि तिब्बत ही प्राचीन कांबोज है।

जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं, उस समय, अर्थात् ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में, उत्तरी भारत इन्हीं छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में बटा हुआ था। ये अक्सर आपस में लड़ा भी करते थे। उस समय कोई ऐसा साम्राज्य या बड़ा राज्य न था, जो इन सबको अपने अधिकार में ला रखता। राजनीतिक स्वतंत्रता का भाव लोगों में प्रबलता के साथ फैला हुआ था। कोई इनकी स्वतंत्रता में बाधा डालनेवाला न था। प्रत्येक गाँव और प्रत्येक नगर अपना-अपना प्रबंध आप करता था। सारांश यह कि उस समय प्रत्येक नगर और ग्राम एक तरह का छोटा-मोटा प्रजा-तंत्र राज्य था।

उस समय उत्तरी भारत में कई प्रजा-तंत्र राज्य भी थे; जिनमें मुख्य-मुख्य ये हैं—

(१) शाक्यों का प्रजा-तंत्र राज्य
(२) भग्गों का प्रजा-तंत्र राज्य
(३) बुलियों का प्रजा-तंत्र राज्य
(४) कालामों का प्रजा-तंत्र राज्य
(५) कोलियों का प्रजा-तंत्र राज्य
(६) मल्लों का प्रजा-तंत्र राज्य
(७) मौर्यों का प्रजा-तंत्र राज्य
(८) विदेहों का प्रजा-तंत्र राज्य
(९) लिच्छिवियों का प्रजा-तंत्र राज्य

ये प्रजा-तंत्र राज्य प्रायः आजकल के गोरखपुर, बस्ती और मुज़फ़्फ़रपुर-ज़िलों के उत्तर में, अर्थात् साधारणतः बिहार-प्रांत में, फैले हुए थे। इनमें सबसे अधिक महत्त्व

शाक्यों, विदेहों और लिच्छिवियों का था। विदेह और लिच्छिवि, दोनों आपस में मिल गए थे, और एक-साथ मिलकर "वज्जी" कहलाते थे।

शाक्यों की जन-संख्या १० लाख थी। उनका देश नैपाल की तराई में पूरब से पच्छिम को लगभग ५० मील और उत्तर से दक्खिन को ३० या ४० मील तक फैला हुआ था। उनकी राजधानी कपिलवस्तु थी। उनके शासन का काम एक सभा के द्वारा होता था। यह सभा एक बड़े भारी सभा-भवन में जुटती थी। इस सभा-भवन को "संथागार" कहते थे। बूढ़े और जवान, सब अपने राज्य के शासन में बराबर भाग लेते थे। सब लोग मिलकर सभापति का चुनाव करते थे। सभापति को "राजा" की पदवी दी जाती थी।

"वज्जियों" का प्रजा-तंत्र राज्य प्राचीन भारतवर्ष का एक संयुक्त राज्य था। इस प्रजा-तंत्र राज्य में आठ भिन्न-भिन्न जातियाँ सम्मिलित थीं। इस संयुक्त प्रजा-तंत्र राज्य की राजधानी वैशाली थी। इस संयुक्त राज्य की दो प्रधान जातियाँ "विदेह" और "लिच्छिवि" नाम की थीं। कहा जाता है, पहले किसी समय विदेहों का राज्य २३०० मील तक फैला हुआ था। लिच्छिवि लोग तीन मनुष्यों को चुनकर उनके हाथ में शासन का कार्य सौंप देते थे। वे तीनों उनके अग्रणी या मुखिया होते थे। लिच्छिवियों की एक महासभा थी। इस महासभा में बूढ़े और जवान, सब शामिल होते थे, और सभी राज-कार्य में भाग लेते थे। "एकपएण-जातक" तथा "चुल्ल-कलिंग-जातक" में इस महासभा के सभासदों की संख्या ७७०७ दी गई है। कदाचित् इस संख्या में उस जाति के सब लोग शामिल थे। इस महासभा के सभासद् "राजा" कहलाते थे। वे महासभा में बैठकर सिर्फ़ क़ानून बनाने में राय ही नहीं देते थे, बल्कि सेना और आय-व्यय-संबंधी सब बातों की देख-भाल भी करते थे। इस महासभा में राज्य-संबंधी सब बातों पर विचार और वाद-विवाद होता था। राज्य-शासन की सहूलियत के लिये यह महासभा अपने सभासदों में से ६ सभासदों की एक संस्था चुन लेती थी। ये नव सभासद् "गण-राजानः" कहलाते थे। वे समस्त जन-समुदाय के प्रतिनिधि होते थे।

बुद्ध के जीवन पर इन प्रजा-तंत्र राज्यों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। गौतम बुद्ध शाक्यों के प्रजा-तंत्र राज्य में पैदा हुए थे। उनके पिता शुद्धोदन इसी प्रजा-तंत्र राज्य के एक अगुआ या सभापति थे। गौतम बुद्ध ने स्वाधीन विचार, संगठन-शक्ति और एकता की शिक्षा यहीं प्राप्त की थी। बुद्ध भगवान् ने अपने भिक्षु-संप्रदाय का संगठन भी इन्हीं प्रजा-तंत्र राज्यों के आदर्श पर किया था।

सामाजिक दशा

बुद्ध के पहले ही आर्यों में जाति-भेद पुष्ट हो गया था। आजकल जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हमारे समाज में हैं, वैसे ही चार वर्ण उस समय भी थे। इन चार वर्णों में "राइज़ डेविड्स" * के मतानुसार क्षत्रिय लोग सबसे श्रेष्ठ थे, और उन्हीं का मान सबसे अधिक था। उनके बाद ब्राह्मणों का दर्जा था, और ब्राह्मणों के बाद वैश्यों तथा शूद्रों का। क्षत्रियों की मर्यादा समाज में सबसे बढ़ी-चढ़ी थी। इस मत की पुष्टि में राइज़ डेविड्स साहब बौद्ध और जैन-ग्रंथों का प्रमाण देते हैं। वह ब्राह्मणों के लिखे हुए ग्रंथों का प्रमाण नहीं मानते; क्योंकि उनके मत में ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ और प्रशंसा के लिये अपने ही गुण गाए हैं, और अपने को चारों वर्णों में सबसे श्रेष्ठ बतलाया है। अतएव राइज़ डेविड्स के मत में वर्ण-व्यवस्था के बारे में ब्राह्मणों के ग्रंथों में जो कुछ लिखा है, वह कदापि माना नहीं जा सकता।

मालूम पड़ता है, ईसा से पूर्व छठी तथा सातवीं शताब्दी में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच बड़ा द्वेष पैदा हो गया था। वे एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहते थे। इसी कारण बौद्धों तथा जैनों के ग्रंथों में, जो ब्राह्मणों के विरुद्ध और क्षत्रियों के पक्ष में थे, ब्राह्मणों का स्थान क्षत्रियों के नीचे रक्खा गया है, और उनका उल्लेख अपमान तथा नीचता-सूचक शब्दों में किया गया है। जान पड़ता है, क्षत्रिय लोग उस समय विद्या, ज्ञान और तप में ब्राह्मणों का मुक़ाबिला करने लगे थे, और ब्राह्मणों से भी आगे निकल जाना चाहते थे। क्षत्रियों की अपेक्षा ब्राह्मणों की हीनता दिखाने के लिये जैन-कल्प-सूत्र में लिखा है कि 'अर्हत्' इत्यादि महापुरुष नीच-जाति या ब्राह्मण-जाति में कभी नहीं जन्म ग्रहण कर सकते। यह भी लिखा है कि अर्हत्, तीर्थंकर या बुद्ध की

* राइज़ डेविड्स-कृत "बुद्धिस्ट इंडिया", पेज ५२, ६०, ६१

अवतार सदा क्षत्रिय-वंश में हुआ है, और होगा। ऐसी अवस्था में बौद्धों तथा जैनों के ग्रंथों को बिलकुल सत्य मान लेना उचित नहीं जान पड़ता।

जातक-कथाओं से, इन चारों वर्णों को छोड़कर, और बहुत-सी ऐसी जातियों का पता लगता है, जो शूद्रों से भी हीन समझी जाती थीं। इनको "हीन जाति" कहते थे। ऐसे लोग बहेलिए, नाई, कुम्हार, जुलाहे, चमार इत्यादि थे। जातक-कथाओं से पता लगता है कि उस समय अछूत जातियाँ भी थीं, और उनके साथ बुरा बर्ताव किया जाता था। "चित्त-संभूत-जातक" में लिखा है कि जब ब्राह्मण और वैश्य-वंश की दो स्त्रियाँ एक नगर के फाटक से निकल रही थीं, तब उन्हें रास्ते में दो चंडाल दिखाई पड़े। चंडाल का दर्शन उन्होंने बड़ा अशकुन समझा, और वे घर को लौट आईं। घर आकर उन्होंने उस दर्शन के पाप को मिटाने के लिये अपनी आँखें धो डालीं। इसके बाद लोगों ने उन दोनों चंडालों को खूब पीटा, और उनकी खूब दुर्गति की। "मातंग-जातक" तथा "सतधम्म-जातक" से भी पता लगता है कि अछूत जातियों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता था। बुद्ध के दया-पूर्ण हृदय में इस सामाजिक अन्याय के प्रति अवश्य घृणा का भाव उत्पन्न हुआ होगा। इसी अन्याय को दूर करने के लिये उन्होंने ऊँच-नीच के भेद को बिलकुल त्याग दिया, और अपने धर्म तथा भिक्षु-संप्रदाय का द्वार सब वर्णों तथा सब जातियों के लिये समान-रूप से खोल दिया।

जातक-कथाओं से पता लगता है कि उस समय एक वर्ण दूसरे वर्ण के साथ विवाह और भोजन कर सकता था। इसके अनेक उदाहरण जातकों में मिलते हैं। इस तरह के विवाह से जो संतान उत्पन्न होती थी, वह अपने पिता के वर्ण की समझी जाती थी। जातकों से यह भी पता लगता है कि दूसरे वर्ण की अपेक्षा अपने वर्ण में विवाह करना अच्छा समझा जाता था; पर एक ही गोत्र में विवाह करना निषिद्ध था।

जातकों से प्रकट होता है कि उस समय सब वर्णों और जातियों के मनुष्य अपने से इतर वर्ण और इतर जाति का भी काम करने लगे थे। ब्राह्मण लोग व्यापार भी करते थे। वे कपड़ा बुनते हुए, बढ़ई का काम और खेती करते हुए दिखलाए गए हैं। क्षत्रिय लोग भी व्यापार करते थे। एक क्षत्रिय के बारे में लिखा है कि उसने कुम्हार, माली और पाचक के काम किए थे। तब भी इन लोगों की जातियों में कुछ गड़बड़ी नहीं हुई थी। यह उस समय की सामाजिक दशा थी। अब नीचे तत्कालीन धार्मिक दशा का वर्णन किया जाता है।

धार्मिक दशा

यज्ञ और बलिदान—बुद्ध के समय में धर्म की बड़ी बुरी दशा थी। उस समय पशु-यज्ञ पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। निरपराध, दीन, असहाय पशुओं के रुधिर से यज्ञ-वेदी लाल की जाती थी। यह पशु-वध इसलिये किया जाता था कि यजमान की मनोकामना पूरी हो। पुरोहित लोग यजमानों से यज्ञ कराने में सदैव तत्पर रहते थे। यही उनकी जीविका का मुख्य द्वार था। बिना दक्षिणा के यज्ञ अपूर्ण और निष्फल समझा जाता था। अतएव ब्राह्मणों को इन यज्ञों और बलिदानों से बड़ा लाभ होता था। जन्म से लेकर मरण पर्यंत प्रत्येक संस्कार के साथ यज्ञ का होना अनिवार्य था। कर्म-कांड का पूर्ण-रूप से सार्वभौमिक राज्य था। समाज बाह्याडंबर में फँसा हुआ था। समाज की आत्मा घोर अंधकार में पड़ी हुई प्रकाश के लिये पुकार रही थी; किंतु कोई इस पुकार को सुननेवाला न था। इस यज्ञ-प्रथा का प्रभाव समाज पर बहुत ही बुरा पड़ता था। एक तो यज्ञों में जो पशु-वध होता था, उससे मनुष्यों के हृदय कठोर और निर्दय होते जा रहे थे; उनसे जीवन के महत्त्व का भाव उठता जा रहा था; लोग आत्मिक जीवन के गौरव को भूलने लगे थे। दूसरे, मनुष्यों में जड़ पदार्थ की महिमा बहुत बढ़ गई थी। लोग बाह्य बातों को ही अपने जीवन में सबसे श्रेष्ठ स्थान देते थे। यज्ञ करना और कराना ही सबसे उच्च धर्म और सबसे बड़ा कार्य गिना जाने लगा था। आत्मा की वास्तविक उन्नति की ओर लोग उपेक्षा दिखा रहे थे। लोगों में यह विश्वास फैला हुआ था कि यज्ञ करने से अपने किए हुए बुरे कामों का फल नष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में पवित्र आचरण और आत्मिक उन्नति का गौरव समाज में कब रह सकता था?

इसके अतिरिक्त, यज्ञ करने में बहुत-सा धन व्यय

होता था; बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ ब्राह्मणों को दी जाती थीं। बहु-मूल्य वस्त्र, गउएँ, घोड़े और सुवर्ण इत्यादि दक्षिणा के रूप में दिए जाते थे। कुछ यज्ञ तो ऐसे थे, जिनमें साल-साल-भर लग जाता था, और सहस्रों ब्राह्मणों की आवश्यकता पड़ती थी। अतएव हरएक के भाग्य में यज्ञ करना और यज्ञ के द्वारा यश प्राप्त करना बदा न था। धनवान् पुरुष ही यज्ञ करने का साहस कर सकते थे। इसलिये विचार-प्रवाह कर्म-कांड के विरुद्ध बहने लगा, और लोग आत्मिक शांति प्राप्त करने के लिये नए उपाय सोचने लगे।

हठयोग और तपस्या—इन उपायों में से एक उपाय हठयोग भी था। लोगों को यह विश्वास था कि कठिन तपस्या करने से उनको ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हो सकती है। आत्मिक उन्नति प्राप्त करने अथवा प्रकृति पर विजय पाने के लिये लोग अनेक प्रकार की तपस्याओं के द्वारा अपनी काया को कष्ट दे रहे थे। पंचाग्नि तापना, एक पैर से खड़े होकर और एक हाथ उठाकर तपस्या करना, महीनों तक कठिन-से-कठिन उपवास करना और इसी तरह की दूसरी तपस्याएँ, इंद्रियों पर विजय पाने के लिये, आवश्यक समझी जाती थीं। सरदी और गरमी का कुछ ख़याल न करके ये लोग अपने उद्देश के साधन में दत्त-चित्त रहते थे। इन लोगों को कठिन-से-कठिन शारीरिक दुःख से भी क्लेश न होता था। इनका अभ्यास इतना बढ़ा-चढ़ा था कि इनमें से कुछ तपस्वी अपने सिर तथा दाढ़ी-मूछ के बालों को हाथ से नोच-नोचकर फेंक देते थे। लोगों में यह विश्वास बड़े ज़ोर के साथ फैला हुआ था कि यदि इस तरह की तपस्या पूर्ण-रूप से की जाय, तो मनुष्य विश्व का साम्राज्य भी पा सकता है। बुद्ध भगवान् के जन्म-समय में पूर्वोक्त तामसी तपस्या की महिमा खूब फैली हुई थी। भगवान् बुद्ध-देव ने स्वयं लगभग ६ वर्षों तक इसी हठयोग का कठिन व्रत धारण किया था। पर जब उनको इसकी असारता पर विश्वास हो गया, तब वह इसे छोड़कर सत्य ज्ञान की खोज में चल दिए।

ज्ञान-मार्ग और दार्शनिक विचार—पर आत्मिक उन्नति चाहनेवाले पुरुषों की आत्मा को न तो कर्म-कांड से ही शांति मिली, और न हठयोग या तपस्या से परमानंद की ही प्राप्ति हुई। ऐसे लोगों को समाज का बनावटी और झूठा जीवन कष्ट देने लगा। इन सत्य के खोजियों ने अपने घर बार और इस असत्य संसार से मुँह मोड़कर वन की ओर प्रस्थान किया। बुद्ध भगवान् के अवतार लेने के पहले और उनके समय में भी बहुत-से भिक्षु, साधु, संन्यासी, वैखानस, परिव्राजक इत्यादि एक जगह से दूसरी जगह विचरा करते थे। इनका मान लोगों में बहुत अधिक था। इन परिव्राजकों के ठहरने के लिये राजे-महाराजे बस्ती के बाहर अच्छे-अच्छे स्थान बनवा देते थे। उस समय वे लोग आतिथ्य और सेवा करना अच्छी तरह जानते थे। अतएव धनी पुरुष इन परिव्राजकों के विश्राम के लिये आश्रम बनवा देते थे। बहुत-से स्थानों में इसका प्रबंध पंचायती चंदे से होता था। विचरते हुए परिव्राजक इन आश्रमों में आ जाते थे। लोग उनके भोजन आदि का प्रबंध पूर्ण-रूप से कर देते थे। लोग नित्य-प्रति इन परिव्राजकों का दर्शन करने के लिये वहाँ आते और दार्शनिक तथा धार्मिक विषयों पर इनके व्याख्यान सुनते थे। यदि वहाँ उस समय और भी कोई परिव्राजक ठहरे होते थे, तो फिर शास्त्रार्थ भी छिड़ जाता था। वे पूर्ण स्वतंत्रता के साथ अपने विचारों को प्रकट करते थे। स्त्री और पुरुष, दोनों परिव्राजिका या परिव्राजक हो सकते थे। प्रचलित संस्थाओं से उन लोगों को कोई विशेष प्रेम न था। उनमें से बहुतों ने तो प्रचलित धर्म से असंतुष्ट होकर ही घर-बार छोड़कर संन्यासाश्रम ग्रहण किया था। इसलिये वे प्रचलित धर्म का प्रतिपादन और समर्थन नहीं करते थे। प्रचलित धर्म और प्रचलित प्रणाली की त्रुटियों से असंतुष्ट होने के कारण वे लोग चारों तरफ़ लोगों के आगे इन संस्थाओं की बुराइयाँ प्रकट करते हुए तत्कालीन समाज की समालोचना खुले तौर पर करते थे। वे सर्व-साधारण में प्रचलित धर्म की ओर अश्रद्धा तथा असंतोष उत्पन्न कर रहे थे, और उनके विश्वासों की जड़ धीरे-धीरे कमज़ोर करते जाते थे। इस तरह प्रचलित धर्म की जड़ डिगने लगी। इन परिव्राजकों ने नए विचारों का बीज बोने के लिये धीरे-धीरे क्षेत्र तैयार कर दिया था। पर अभी बीज बोनेवाले की कमी थी, और लोग उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

बुद्ध के पहले प्राचीन उपनिषद् भी लिखे जा चुके थे। उपनिषदों के बनानेवालों ने यह विचारने का यत्न किया था कि सब जीवित तथा अजीवित वस्तुएँ एक ही सर्व-व्यापी ईश्वर से उत्पन्न हुई हैं, और वे सब एक ही सर्व-व्यापी आत्मा के अंश हैं। उन उपनिषदों में कर्म के ऊपर ज्ञान की प्रधानता दिखाई गई थी। उनमें ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश और मोह से निवृत्ति बतलाई गई थी। उनमें पुनर्जन्म का भी अनुमान किया गया था। अज्ञान, जीव के सुख-दुःख का कारण, परमात्मा की सत्ता और आत्मा-परमात्मा का संबंध— इन सब विषयों पर बुद्धिमत्ता के साथ बड़ा गहरा विचार किया गया था। धीरे-धीरे उपनिषदों का अनुशीलन करनेवालों की संख्या बढ़ने लगी। उनके उपदेशों का अध्ययन और मनन होने लगा। कुछ लोगों ने उपनिषदों में अद्वैत-वाद पाया, किसी ने उनसे विशिष्टाद्वैत निकाला, और किसी के मत में उनसे शुद्ध द्वैत-वाद निकला। इसी तरह से अनेक प्रकार के मत-मतांतर हो गए, और भिन्न-भिन्न शास्त्रों का प्रादुर्भाव हुआ। वर्तमान षड्दर्शन उस समय के आचार्यों की व्याख्याएँ हैं। बहुत-सी व्याख्याओं का नाश हो गया। बहुत-सी व्याख्याओं में परस्पर अधिक विरोध न था। कहा जाता है, पहले कम-से-कम ७२ प्रकार के दार्शनिक संप्रदाय थे। पर मुख्य ये ही ६ थे। भिन्न-भिन्न आचार्य जगत् के रहस्य का पृथक्-पृथक् उत्तर देते थे। पर इन सबसे प्रबल दो तरह के सिद्धांत थे। एक सिद्धांत सांख्य का था; जो आत्मा और प्रकृति में भेद मानता था। दूसरा सिद्धांत सांख्य के विरुद्ध था। यही दूसरा सिद्धांत परिणत-रूप में वेदांत के नाम से जगत् में प्रचलित हुआ। अस्तु। बुद्ध-देव के समय तक दार्शनिक विचार परिपक्व हो चुके थे। पर बहुतेरे वेदांती, भिक्षु, संन्यासी और परिव्राजक आत्मा, परमात्मा, माया और प्रकृति से संबंध रखनेवाले शुष्क वितंडा-वाद में फँसे हुए थे।

इस तरह (१) यज्ञ और बलिदान, (२) हठयोग और तपस्या, तथा (३) ज्ञान-मार्ग और दार्शनिक विचार—ये तीन मुख्य विचार-प्रवाह बुद्ध के समय में बड़ी प्रबलता से बह रहे थे। पर इनके सिवा और भी बहुत-से छोटे-छोटे मत-मतांतर और विचार प्रचलित थे। जैसे, लोगों में टोने-टुटके का बड़ा रवाज था। सर्प, वृक्ष आदि की पूजा तथा भूत-चुड़ैल आदि का माहात्म्य भी उस समय काफ़ी फैला हुआ था। पर उस समय असली प्रश्न, जो मनुष्य के सामने सदा से चला आ रहा है, यह था कि जो कुछ दुःख इस संसार में है, उसका कारण क्या है ? याज्ञिकों ने इसका उत्तर यह दिया कि संसार में दुःख का कारण देवतों का कोप है। उन लोगों ने देवतों को प्रसन्न करने का साधन पशु-यज्ञ स्थिर किया ; क्योंकि लोक में देखा जाता है कि जो मनुष्य रुष्ट हो जाता है, वह प्रार्थना करने और भेंट देने से प्रसन्न हो जाता है। हठयोग और तपश्चर्या करनेवालों ने इस प्रश्न का उत्तर यह दिया कि तपस्या करने से मनुष्य अपनी इंद्रियों को अपने वश में कर सकता है, और इंद्रियों को वश में करने से चित्त की शांति अथवा दुःख से छुटकारा मिल सकता है। ज्ञान-मार्ग का अनुसरण करनेवालों ने इस प्रश्न का उत्तर यह दिया कि ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश करके मनुष्य दुःख से मुक्ति पा सकता है। पर ये तीनों उत्तर मनुष्यों के हृदयों को संतोष और शांति देने में असमर्थ थे। उस समय समाज में सबसे बड़ी आवश्यकता सहानुभूति, प्रेम और दया की थी। समाज में नीरसता, निर्दयता और शुष्क ज्ञान-मार्ग का प्रचार हो रहा था। उस समय समाज को एक ऐसे वैद्य की आवश्यकता थी, जो उसके इस रोग की दवा ठीक तरह से करता। भगवान् बुद्ध-देव ने अवतार लेकर समय की आवश्यकता को ठीक तरह से समझा। समय की आवश्यकता को समझकर उन्होंने जो उपदेश दुनिया को दिया, और जो नई बात लोगों को बतलाई, वह यह थी कि जो लोग संसार में धर्म-मार्ग पर चलना और परोपकार तथा आत्मोन्नति में लगना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे दयालु, सदाचारी और पवित्र-हृदय बनें। बुद्ध के पहले लोगों को यज्ञों में, मंत्रों में, तपस्याओं में और शुष्क ज्ञान-मार्ग में विश्वास था। पर बुद्ध ने यज्ञ, मंत्र, कर्म-कांड और धर्माभास की जगह अंतःकरण शुद्ध करने की शिक्षा लोगों को दी। उन्होंने लोगों को दीनों और दरिद्रों की भलाई करने, बुराई से बचने, सबसे भाई की तरह स्नेह रखने और सदाचार तथा सच्चे ज्ञान के द्वारा दुःखों से छुटकारा पाने का उपदेश दिया। उनकी

दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र, ऊँच और नीच, अमीर और ग़रीब, सब बराबर थे। उनके मत में सब पवित्र जीवन के द्वारा निर्वाण-पद प्राप्त कर सकते थे। वह सबको अपने इस धर्म का उपदेश देते थे। बुद्ध भगवान् की पवित्र शिक्षाओं का यह प्रभाव था कि कुछ ही शताब्दियों के अंदर बौद्ध-धर्म केवल एक ही जाति या देश का नहीं, बल्कि समस्त एशिया का मुख्य धर्म हो गया। इन महात्मा का जीवन-चरित्र और उपदेश तथा सिद्धांत किसी दूसरे लेख में लिखे जायँगे।

जनार्दन भट्ट, एम्० ए०

निर्बल दृष्टि

(शार्ट-साइटवाले संसार को कैसा देखते हैं ?)



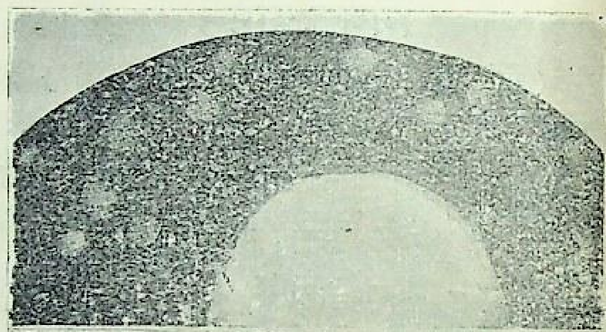
त्रों की रचना बड़ी विलक्षण है, और उसमें भी प्रकाश ग्रहण करनेवाले बिंदु की। नेत्रों ही के द्वारा हम देखते हैं; परंतु वह विशेष स्थान, जिसके संयोग से प्रकाश की किरणों के साथ द्रष्टव्य पदार्थ का मेल होता है, पारिभाषिक भाषा में 'दृष्टि' या 'तिल' और 'रेटीना' (Retina) कहलाता है। इस 'दृष्टि' और आँख के बाहरी भाग के मध्य में चार पटल और हैं; जिनमें छनकर पदार्थों का प्रतिबिंब रेटीना तक पहुँचता है। अस्तु। यहाँ इस छोटे-से लेख में नेत्रों की सूक्ष्म रचना नहीं बताई जा सकती। केवल रेटीना के विषय में ही कुछ बता देने से इस समय हमारा काम चल जायगा।

साधारणतः दो प्रकार की दृष्टिवाले नेत्र देखे जाते हैं—एक नतोदर, दूसरे उन्नतोदर। दृष्टि या तिल एक प्रकार का काँच-जैसा चमकदार स्थान है; जहाँ पदार्थों का प्रतिबिंब पड़ता है। यह जब ठीक स्थान पर रहता है, तब प्रकाश उक्त छः पटलों से होकर सरलता से वहाँ केंद्रीभूत हो जाता है। परंतु यदि यही तिल-बिंदु इधर-उधर हट जाता है, तो उन पटलों में होकर जानेवाली किरणें उचित-रूप से केंद्रीभूत नहीं होतीं, और देखनेवाले को ठीक-ठीक दिखाई नहीं देता। किंतु अपने दाएँ-बाएँ या ऊपर-नीचे की ओर ही, जिधर को वह 'तिल' हट जाता है, दिखाई देता है। सुश्रुत के उत्तर तंत्र, अध्याय सात, में इसे 'दृष्टि-मध्य-गत दोष' कहा है। पाठक यदि विशेष जानना चाहें, तो उक्त ग्रंथ में देख लें। अस्तु।

जिस तिल की बनावट नतोदर होती है, वह मध्य में कुछ गहरा होता जाता है; जिस प्रकार प्याला या सीपी। इस आकार के तिल पर प्रकाश-किरणें केंद्र में एक स्थान पर मिल जाती हैं, और दृष्टि दूर तक पहुँचती है। ऐसी दृष्टिवाले निकट की वस्तु को, यत्न करने पर भी, कठिनता से देख सकते हैं, विशेषकर सूक्ष्म चिह्न, अक्षर आदि। उन्नतोदर प्रकार की रचना इसके विपरीत होती है। उसका तिल, बादाम की तरह, बीच में उठा हुआ होता है। इस प्रकार की रचना का फल यह होता है कि प्रकाश-रश्मियाँ एक स्थान पर केंद्रित नहीं होतीं; बल्कि उक्त तिल पर पड़कर बिखर जाती हैं; जिससे दृष्टि भी फैल जाती है। यही कारण है कि ऐसी रचना के नेत्रोंवाले मनुष्य दूर तक स्पष्ट नहीं देख सकते। मगर निकट के पदार्थों को वे नतोदर नेत्रवालों की अपेक्षा अधिक सुगमता से देख सकते हैं। वे कम प्रकाश में भी अत्यंत सूक्ष्म अक्षर और चिह्न, निकट होने पर, देख लेते हैं। ऐसे लोग ही शार्ट-साइटवाले (short sighted) कहे जाते हैं। इसी को अँगरेज़ी परिभाषा में Myopia कहते हैं। इस लेख में यह दिखाने का प्रयत्न किया जायगा कि शार्ट-साइटवालों को संसार कैसा देख पड़ता है।

लोगों का साधारण विचार यह है कि माइओपियावालों की दृष्टि में केवल यही दोष होता है कि वे दूर के पदार्थों को स्पष्ट और स्वच्छ नहीं देख सकते। परंतु वास्तव में बात यह नहीं है। माइओपियावाले साधारण दृष्टिवालों की अपेक्षा कम तो देखते ही हैं, किंतु उन्हें दृश्य भी भिन्न प्रकार के देख पड़ते हैं। जंगल में हरी घास के खेत साधारण दृष्टिवालों को आकर्षक और सुंदर देख पड़ते हैं; परंतु माइओपियावालों को वे खेत हरे-हरे बिखरे रंग की ऐसी रेखाएँ जान पड़ते हैं, जैसे कूँची से किसी बच्चे ने हरा रंग फेर दिया हो। हरियाली की प्राकृतिक स्निग्धता का उन्हें कुछ भी अनुभव नहीं होता। अच्छी दृष्टिवाला घास की प्रत्येक पत्ती को, वृक्ष की डाली को, और डाली की हरएक पत्ती को स्पष्ट और अलग-अलग देखता है, तथा प्रत्येक डाली, पत्ती और शाखा के बीच का अंतर भी उसे स्पष्ट सूझता है; परंतु शार्ट-साइटवाले के लिये ये सब पत्तियाँ और घास एक में मिली लिपी-पुती-सी दिखाई देती हैं। इसी प्रकार वह सभी दूरस्थ पदार्थों को परस्पर मिला हुआ देखता है। उसे उन पदार्थों के मध्य का अंतर और उन पदार्थों की वैयक्तिक रचना दिखाई नहीं देती। बड़े-बड़े मकान भी उसकी दृष्टि में धुँधले और बीहड़ ढेर-से दिखाई देते हैं। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि उसको किसी भी दूर के पदार्थ का वास्तविक रूप नहीं दिखाई देता। वह किसी वस्तु को, दूर होने की दशा में, उसके विशेष लक्षणों से नहीं पहचान सकता।

दूर के पदार्थों को वह प्रायः अपने निकट देखता है, और बड़ा भी; परंतु फिर भी स्पष्ट नहीं देखता। यह एक विलक्षण बात है। परंतु स्पष्ट न देख सकने का कारण यह है कि उसे प्रत्येक वस्तु फटी-फटी और रूखी दिखाई देती है। वह आकाश को, साधारण दृष्टिवालों की अपेक्षा, अपने निकटतर अनुभव करता है; परंतु फिर भी आकाश में स्थित बादल उसे स्पष्ट नहीं जान पड़ते। वह उन्हें एक प्रकार का धुआँ-सा अनुभव करता है। साधारणतः हम लोग तारों को इस प्रकार देखते हैं, मानो किसी नीली या काली छत में प्रकाशमान बिंदु जड़े हैं; परंतु शार्ट-साइटवाले को वे ही ऐसे ज्ञात होते

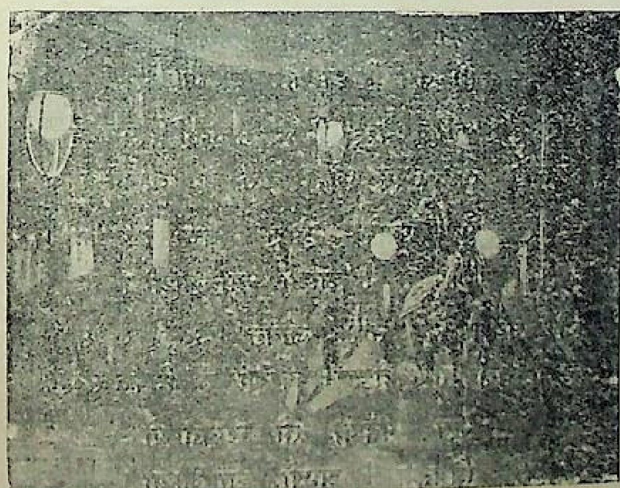


शार्ट-साइटवाले की दृष्टि में तारे, ग्रह और चंद्रमा

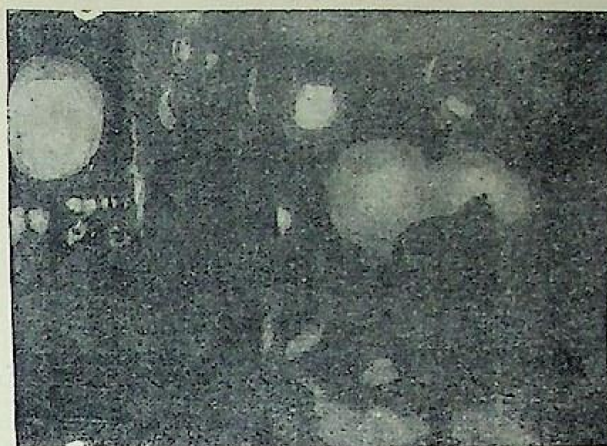
हैं, जैसे चमकदार, गोल, सफ़ेद (चाँदी की-सी बनी) तश्तरियाँ रक्खी हों। कोई भी तारा स्पष्ट नहीं दिखाई देता; प्रायः खिले हुए ऐसे सफ़ेद फूल के समान जान पड़ता है, जिसकी पँखड़ियाँ उसके केंद्र से चारों ओर को निकलकर एक वृत्त बनाती हों। शार्ट-साइटवाला चंद्रमा को देखकर उसका आकार नहीं बता सकता, और न वह यही कह सकता है कि उसमें कितनी कलाएँ हैं। कारण, चंद्रमा भी तो उसे अपने वास्तविक रूप से बड़ा और फैला हुआ, तथा प्रत्येक दशा में प्रायः गोल ही, दिखाई देता है। कहने का अभिप्राय यह है कि वह चंद्रमा को देखकर भी न तो उसका आकार और न उसका स्पष्ट बिंब ही देख सकता है।

से मार्ग में चलते-चलते ऐसा जान पड़ता

है कि जो मार्ग (या सीढ़ी आदि) दूर हैं, वे निकट आ गए। यदि कभी किसी घुमावदार ज़ीने पर चढ़ना पड़े, तो उसे अक्सर धोका होगा ; क्योंकि उसे प्रत्येक सीढ़ी पर ऐसा जान पड़ेगा कि यह निकट है। आप बाज़ार में जाइए, और रात्रि में देखिए, तो जान पड़ेगा कि सड़क के दोनों ओर लालटेनों की पंक्ति खड़ी है। प्रत्येक लालटेन स्पष्ट दिखाई देगी, और उनका परस्पर अंतर भी स्पष्ट जान पड़ेगा। लैंप की दीप-शिखा भी आपको देख पड़ेगी। परंतु माइओपियावाले के लिये वह सब कुछ वैसा न होगा। वह देखेगा कि कितने ही बड़े-बड़े चमकदार चक्कर या गोल वृत्त हैं, जो साधारणतः अग्नि-रश्मियों से बन गए हैं। वे रश्मियाँ किसी एक केंद्र से निकलती हैं। वे गोल वृत्त एक दूसरे के ऊपर चढ़े हैं, और उन सबने मिलकर बाज़ार या सड़क को घेर लिया है। वह, उन्हीं वृत्तों के कारण, छोटे-छोटे पदार्थों को तो देख ही नहीं सकेगा, बड़े पदार्थ भी उसे स्पष्ट नहीं प्रतीत होंगे। वह यह अनुमान करेगा कि इन प्रकाश-वृत्तों ने आगे से मार्ग को रोक दिया है। चित्र नं० २ देखकर पाठक चित्र नं० ३ को



रात्रि में एक बाज़ार का दृश्य



दूसरे चित्र के बाज़ार का दृश्य, जैसा कि शार्ट-साइट-वाले को देख पड़ता है

देखें। घोड़ा-गाड़ी के इधर-उधर दो लैंप लगे हैं। ये दोनों लैंप ही इस गाड़ी को शार्ट-साइटवाले की निगाह से बचा लेंगे। वह यह समझेगा कि दो परस्पर जुड़े हुए दीप्त चंद्रों के अतिरिक्त और कुछ नहीं आ रहा है। अस्तु।

इसी प्रकार वह चैतन्य पदार्थों को भी कुछ-का-कुछ देखता है। चित्र नं० ४ देखिए। साधारण



वास्तविक आकृति

रीति से वह स्त्री-पुरुषों के मुख-मंडल, और किसी-किसी दशा में सिर भी, नहीं देखता। वह उन्हें मानव-योनि से भिन्न योनि के प्राणियों के आकार का देखता है। घर के मनुष्यों से



जैसी शार्ट-साइटवाले को देख पड़ती है। प्रायः उसका काम पड़ता रहता है, अतः वह उन्हें चाल-ढाल से तुरंत पहचान जाता है; परंतु घर के बाहर निकलने पर उसे बड़ी दिक़्क़त का सामना करना पड़ता है। जो मनुष्य अभी शार्ट-साइटवाले के पास से होकर जाता है, वह आगे थोड़ी दूर जाने पर ही हवा में उड़ जाता है, जैसे क़िस्से-कहानियों के भूत-प्रेत आँखों से ओझल हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों वह दूर हटता जाता है, त्यों-त्यों उसकी विचित्रता देख पड़ती है। कुछ दूर तक उस मनुष्य का साफ़ा और धुँधला शरीर देख पड़ता है; फिर ऐसा ज्ञात होता है, मानो कोई लाठी ही चल रही है, या उसे कोई धुँधली चीज़ चला रही है। और आगे बढ़कर यह बात भी नहीं रहती।

परंतु जब वह चश्मा लगाकर इन्हीं पदार्थों को देखता है, तो उसे आश्चर्य होता है। वह यह समझने लगता है कि वास्तव में संसार को उसने अभी देखा है। उसे पदार्थों के वास्तविक आकार दिखाई देते हैं। वह अपने संबंधियों के मुखों को देखकर चकित होता है, और चश्मे का आविष्कार करनेवाले का उपकार मानकर उसे धन्यवाद देता है।

जगनलाल गुप्त

प्रतीक्षा

यह एक मनोरथ मेरा, फिर करो इधर को फेरा;
आँखों में डालो डेरा; हो जाए दूर अँधेरा।
मुख-चंद्र-छटा छिटकाओ;
प्रियतम! आओ, आ जाओ।

सुनकर चरण-ध्वनि प्यारी, हो सुधा-स्रोत-सा जारी;
आँखें हों तृप्त हमारी, कह उठे हृदय—"बलिहारी!
मुझको निज धाम बनाओ।"
प्रियतम! आओ, आ जाओ।

आँखें हैं बिछी गली में, छुप बैठो हृदय-कली में;
स्वर भरो वही मुरली में, जिससे जी आए जी में।
फिर जीवन-ज्योति जगाओ;
प्रियतम! आओ, आ जाओ।

हे मोहन, मोह न छोड़ो; सेवक का छोह न छोड़ो;
प्रेमी की टोह न छोड़ो; चुंबक हो, लोह न छोड़ो।
लो खींच, या कि खिंच आओ;
प्रियतम! आओ, आ जाओ।

ये नयन बहुत तो तरसे, "धर-धर" ये धाराधर-से
बरसों हैं आँसू बरसे; अब पोंछो अपने कर से।
यह दिल की लगी बुझाओ;
प्रियतम! आओ, आ जाओ।

मैं चातक हूँ, तुम घन हो; नयनों के नवल नयन हो;
मैं तन हूँ, तो तुम मन हो; तुम मेरे जीवन-धन हो।
अब प्रेम-सुधा बरसाओ;
प्रियतम! आओ, आ जाओ।

घड़ियाँ हैं कठिन विरह की, उर में दवाग्नि-सी दहकी;
शंकाएँ तरह-तरह की, बातें हैं बहकी-बहकी।
हे प्यारे, प्राण बचाओ;
प्रियतम! आओ, आ जाओ।

मेरे नयनों के तारे, जीवन के एक सहारे;
अब चले प्राण बेचारे, चरणों के निकट तुम्हारे।
जब पहुँचें, तो अपनाओ;
प्रियतम! आओ, आ जाओ।

'सनेही'

रँगे सियार

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]



प्रश्न—कहिए, अब आदेश देश के लिये मुझे क्या होता है ?

उत्तर—बस जनाब, बस माफ़ कीजिए ; देश आपको रोता है !

प्रश्न—क्यों-क्यों ?

उत्तर— क्यों क्या, दर्द नहीं, तो व्यर्थ तड़पना भी दो छोड़ ;
कपट-पूर्ण इस देश-भक्ति के ढकोसले से लो मुँह मोड़ ।
अंदर वस्त्र विदेशी—कालर, टाई, शर्ट, सूट—पहना !
ऊपर से खादी लादी है ; वाह-वाह ! क्या ही कहना !!
तुम-से रँगे सियारों की करतूत देश को घातक है ;
तुम-जैसों का मुँह देखे से होता उत्कट पातक है !

अद्वैत-मीमांसा

(४)

अध्यास



भ्रांति-ज्ञान का विषय मिथ्या वस्तु और भ्रांति-ज्ञान का नाम अध्यास है। जैसे, रज्जु में सर्प और सर्प का भ्रांति-ज्ञान। ज्ञान, वस्तु के विषय में अध्यास और उसके अज्ञान को दूर करता है। जैसे, रज्जु का ज्ञान रज्जु के विषय में सर्प के अध्यास को और रज्जु के अज्ञान को दूर करता है।

अध्यास दो प्रकार का है—अर्थाध्यास और ज्ञानाध्यास।

भ्रांति-ज्ञान का विषय जो सर्पादिक मिथ्या वस्तु है, सो अर्थाध्यास है।

भ्रांति-ज्ञान जो मिथ्या वस्तु का मिथ्या ज्ञान है, सो ज्ञानाध्यास है।

अध्यास की परिभाषा दो प्रकार से है--

(१) अधिष्ठान से विषम सत्तावाला अवभास, अध्यास है। जैसे, 'रज्जु में सर्प' का अधिष्ठान रज्जु है, जिसकी व्यावहारिक सत्ता है। अथवा 'सर्प' का अधिष्ठान रज्जु-अवच्छिन्न चेतन है, जिसकी परमार्थ सत्ता है। और, सर्प और उसके ज्ञान की प्रातिभासिक सत्ता है। इसलिये अधिष्ठान और अवभास (सर्प) की विषम सत्ताएँ हुईं। सर्प का अवभास अधिष्ठान से विषम सत्तावाला है। अतः वह अध्यास है।

(२) अपने अभाव के अधिकरण में अवभास को अध्यास कहते हैं।

शुक्ति में रजत का पारमार्थिक और व्यावहारिक अभाव, और रजत अनिर्वचनीय है। इसलिये रजताभाव के अधिकरण शुक्ति में रजत की प्रतीति और उसका विषय होने से रजतावभास है; अतः अध्यास है। व्याकरण-रीति से अध्यास पद के विषय और ज्ञान दोनों वाच्य हैं। अतः अध्यास दो प्रकार का है—अर्थाध्यास (विषय) और ज्ञानाध्यास (ज्ञान)। अनिर्वचनीय वस्तु की प्रतीति को ज्ञानाध्यास कहते हैं, और ज्ञान के अनिर्वचनीय विषय को अर्थाध्यास। अर्थाध्यास छः प्रकार का है—

(१) केवल संबंधाध्यास,
(२) संबंध-सहित संबंधी का अध्यास,
(३) केवल धर्माध्यास,
(४) धर्म-सहित धर्मी का अध्यास,
(५) अन्योन्याध्यास,
(६) अंतराध्यास।

यह दो प्रकार का है—आत्मा में अनात्माध्यास, और अनात्मा में आत्माध्यास।

दूसरी रीति से अध्यास दो प्रकार का है—स्वरूपाध्यास और संसर्गाध्यास।

शुक्ति में रजत का स्वरूपाध्यास है। अर्थात् रजत का स्वरूप अनिर्वचनीय उत्पन्न होता है। जिस पदार्थ का स्वरूप अनिर्वचनीय उत्पन्न हो, उसे स्वरूपाध्यास कहते हैं।

दर्पण में मुख का संबंध प्रतीत होता है, और वह संबंध अनिर्वचनीय है। अतः दर्पण में मुख की प्रतीति संसर्गाध्यास है। जिस पदार्थ का स्वरूप प्रथम सिद्ध हो, चाहे वह व्यावहारिक हो अथवा पारमार्थिक, और अनिर्वचनीय संबंध पैदा हो, तो वह संसर्गाध्यास है।

ज्ञानाध्यास दो प्रकार का है—परोक्ष और अपरोक्ष।

जिस स्थान में अग्नि नहीं, वहाँ अग्नि का ज्ञान अनुमिति से हो, तो वह परोक्ष भ्रम है। जैसे महानस (रसोईघर) में अग्नि का भ्रम-ज्ञान।

मरुस्थली में जल की प्रतीति, जिसे मृग-तृष्णा कहते हैं, अपरोक्ष भ्रम-ज्ञान है। अध्यास की परिभाषा इस रीति से भी दी है—

स्वभाव के अधिकरण में जो अवभास नाम विषय और ज्ञान है, वह अध्यास है। जैसे, कल्पित सर्प के व्यावहारिक और पारमार्थिक अभाव के अधिकरण अर्थात् आश्रय रज्जु विषयक प्रातिभासिक सर्प का अवभास अर्थात् सर्प और उसका ज्ञान जो है, वह अध्यास है। अथवा—

अधिष्ठान से विषम सत्तावाला जो अवभास है, वह अध्यास है। जैसे, व्यावहारिक सत्तावाले रज्जु-रूप अधिष्ठान से विषम अर्थात् प्रातिभासिक रूप विपरीत सत्तावाला जो अवभास अर्थात् सर्प और उसका ज्ञान है, वह अध्यास है।

अध्यास की सामग्री

सजातीय वस्तु के ज्ञान के संस्कार अध्यास के हेतु हैं। जैसे, जिसने पहले सर्प देखा होगा, उसी को रज्जु में सर्प का अध्यास होगा, अन्य को नहीं। ज्ञान चाहे सत्य वस्तु का

हो चाहे मिथ्या वस्तु का, अहंकार से लेकर अनात्म वस्तु और उसका ज्ञान बंध कहलाता है। इसलिये बंध का अध्यास भी हो सकता है। पहले जन्म के संस्कारों से दूसरे जन्म के बंध का अध्यास होता है।

पूर्वोक्त विषय का सारांश यह है कि यह जगत्-प्रपंच, जो माया का उत्पन्न किया हुआ है, आत्मा का अध्यास है; यानी जीव पहले जन्म के संस्कारों के कारण दूसरे जन्म में भी अपने में बंध का अध्यास देखता है। जगत् जीव या आत्मा का अध्यास और ब्रह्म का विवर्त है। अध्यास तो देखनेवाले की दृष्टि से है, और विवर्त उस वस्तु की दृष्टि से है, जिस पर भ्रम आरोपित किया जाता है। उदाहरण— रज्जु में सर्प का भान है। यहाँ रज्जु पर सर्प-भ्रम आरोपित है। रज्जु के लिये सर्प-भ्रम विवर्त है; लेकिन देखनेवाले के लिये यह भ्रम अध्यास है।

अद्वैत वेदांत में जगत् के विषय में दो मत हैं; सृष्टि-दृष्टि-वाद और दृष्टिसृष्टि-वाद। दृष्टिसृष्टि-वाद के मत में यह बात मानी हुई है कि पहले सृष्टि हुई, और उसके पीछे दृष्टि यानी ज्ञान उत्पन्न हुआ। अनात्म पदार्थ जड़ हैं, और उनकी अज्ञात सत्ता है। ये पदार्थ प्रमाण के विषय भी हैं। यह मत स्थूलदर्शी मनुष्यों का है।

दृष्टिसृष्टि-वाद के मत में दृष्टि-काल में ही सृष्टि है, यानी जब हम पदार्थों को देखते हैं, तभी उनकी उत्पत्ति होती है— पहले नहीं। घटादिक अनात्म पदार्थों के देखने में जो नेत्रादि-जन्यता का अनुभव है वह स्वप्नवत् भ्रम-रूप है। जगत् का अनुभव चाक्षुष नहीं है। स्वप्न और जाग्रत्, दोनों अवस्थाओं में चाक्षुष अनुभव नहीं है। जैसे स्वप्न के पदार्थ-ज्ञान सत्य हैं, वैसे ही जाग्रत् के पदार्थ-ज्ञान सत्य हैं। इनकी अज्ञात सत्ता नहीं है। सारांश यह कि दृष्टि-काल में ही अनात्म यानी जड़ पदार्थों की सृष्टि है, दृष्टि यानी ज्ञान-काल से पूर्व नहीं है। अतः सकल दृश्य जगत् की ज्ञात सत्ता है, अज्ञात सत्ता नहीं। इस मत में दृष्टि का अर्थ है स्वप्रकाश-रूप ज्ञान। सृष्टि तत्स्वरूप है। दृश्य और दृष्टि का भेद किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं है। प्रपंच की सृष्टि, दृश्य प्रपंच से तदात्मवान् ज्ञान-स्वरूप प्रथम-क्षणावच्छिन्न सत्य है, यानी सृष्टि ज्ञान-स्वरूप है, ज्ञान से पृथक् नहीं। रज्जु-सर्प की तरह सब अनात्म वस्तु साक्षि-भास्य हैं, अर्थात् देखने-मात्र की ही हैं। अनात्म पदार्थ प्रमाण के विषय नहीं हैं।

यह मत पाश्चात्य दार्शनिक विद्वान् बर्कले के मत से बहुत कुछ समता रखता है। यह विद्वान् भी सब अनात्म पदार्थों की ज्ञात सत्ता मानता है, और उन्हें साक्षिभास्य बताता है।

सृष्टिदृष्टि-वाद और दृष्टिसृष्टि-वाद, इन दोनों मतों में भेद यह है कि पहले में तो अनात्म पदार्थों की अज्ञात सत्ता है, और वे प्रमाण के विषय हैं, और दूसरे में उन पदार्थों की ज्ञात सत्ता है, और वे प्रमाण के विषय नहीं हैं।

परम प्रयोजन

वेदांत-दर्शन का परम प्रयोजन अनर्थ की निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति (मोक्ष) है। प्रपंच और प्रपंच का कारण अज्ञान, जिससे जन्म-मरण-रूपी दुःख होते हैं, अनर्थ है। ज्ञान इस परमोद्देश का साधन है, अतः वह अवांतर प्रयोजन है, परम प्रयोजन नहीं। जिसके द्वारा परम प्रयोजन की प्राप्ति हो, वह अवांतर प्रयोजन कहलाता है।

ज्ञान के साधन दो प्रकार के हैं—अंतरंग और बहिरंग। अंतरंग साधन आठ हैं—विवेक, वैराग्य, शमादि षट् संपत्ति, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और तत्त्वमसि महावाक्य का साक्षात् करना। जिन साधनों का प्रत्यक्ष फल ज्ञान में हो, वे अंतरंग साधन हैं। जिन साधनों का प्रत्यक्ष फल ज्ञान न हो, बल्कि अंतःकरण की शुद्धि हो, वे बहिरंग साधन हैं। यज्ञ, सगुणोपासना आदि कर्म बहिरंग साधन हैं। इनसे चित्त-शुद्धि होती है; जो ज्ञान-प्राप्ति में उपयोगी है। अंतःकरण में तीन दोष हैं। मल यानी पाप, विक्षेप यानी मन की चंचलता, और आवरण। निष्काम कर्म से मल दूर होता है। उपासना से विक्षेप का नाश होता है। ज्ञान से आवरण-दोष दूर होता है। अब हम क्रमशः ज्ञान के अंतरंग साधनों का विवेचन करते हैं—

(१) विवेक—आत्मा अविनाशी और अचल है; जगत् आत्मा से विपरीत स्वभाववाला है, विनाशी और चल है—ऐसे ज्ञान का नाम विवेक है।

(२) वैराग्य—सब भोगों का त्याग करने की इच्छा का नाम वैराग्य है।

(३) शमादि षट् संपत्ति—शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा—ये छः संपत्ति हैं।

मन को विषयों से रोकने का नाम शम है। इंद्रियों को

विषयों से रोकने का नाम दम है। वेद और गुरु-वाक्य की सत्यता में विश्वास का नाम श्रद्धा है।

मन के विक्षेप के नाश और मन की एकाग्रता को समाधान कहते हैं।

त्याग किए पीछे विषय की फिर इच्छा होने का अभाव, यानी विषय-भोग त्याग करने पर फिर उनकी इच्छा का न होना, उपरति है।

शीत, ताप, तृषा, क्षुधा आदि द्वंद्वों के सहन का स्वभाव, तितिक्षा है। शम-दमादि परस्पर सहकारी हैं, यानी एक को दूसरे की सहायता परमावश्यक है। इसलिये ये छहो मिलकर एक ही साधन हैं, अलग-अलग साधन नहीं।

(४) **मुमुक्षुता**—ब्रह्म की प्राप्ति और अनर्थ-निवृत्ति की इच्छा का नाम मुमुक्षुता है।

(५) **श्रवण**—षड्लिंग द्वारा वेदांत-वाक्यों के तात्पर्य का निश्चय करना श्रवण है।

षड्लिंग ये हैं—

१. **उपक्रम और उपसंहार**—प्रकरण के आरंभ और समाप्ति की एकरूपता।

२. **अभ्यास**—अद्वैत-रूप अर्थ का वारंवार पठन।

३. **अपूर्वता**—स्वप्रकाशता-रूप अलौकिकता।

४. **फल**—अद्वैत-तत्त्व के ज्ञान के फल का प्रतिपादन।

५. **अर्थ-वाद**—द्वैत की निंदा और अद्वैत-ज्ञान की प्रशंसा।

६. **उपपत्ति**—अद्वैत-ज्ञान के अनुकूल दृष्टांत।

इन छः लिंगों द्वारा उपनिषदों के अद्वैत-तत्त्व का निर्णय किया जाता है। इस विषय के दृष्टांत बृहत् वेदांत-ग्रंथों में दिए हैं। यहाँ स्थानाभाव के कारण वे नहीं दिए गए।

(६) **मनन**—जीव और ब्रह्म की एकता सिद्ध करनेवाली तथा जीव और ब्रह्म के भेद का खंडन करनेवाली युक्तियों द्वारा अद्वितीय ब्रह्म का चिंतन, मनन है। ये युक्तियाँ वेदांत-ग्रंथों में दी हुई हैं।

(७) **निदिध्यासन**—अनात्माकार वृत्ति के व्यवधान-रहित ब्रह्माकार वृत्ति होने का, अथवा विजातीय देहादि वस्तुओं को छोड़कर अद्वितीय ब्रह्म-संबंधिनी वस्तुओं के प्रत्यय-प्रवाह का, नाम निदिध्यासन है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि अद्वितीय वस्तु (ब्रह्म) के अनुकूल वृत्ति का प्रवाह देहादि वस्तुएँ जो इसके प्रतिकूल हैं, उनका विचार सर्वथा छोड़ दिया जाय।

निदिध्यासन के परिपाक की अवस्था को समाधि कहते हैं। अतः समाधि निदिध्यासन के अंतर्गत है। निदिध्यासन सविकल्प समाधि है। इसके परिपाक की अवस्था निर्विकल्प समाधि है; जो त्रिपुटी के भान से रहित है। इसके दो भेद हैं—बाह्य और आंतरिक। जो मूर्ति आदिक बाह्य आलंबनों के चिंतन से हो, वह बाह्य निर्विकल्प समाधि है। जो सर्वांतर अद्वैत ब्रह्म के चिंतन से हो, वह आंतरिक निर्विकल्प समाधि है। आंतरिक निर्विकल्प समाधि के भी दो भेद हैं—साक्षात्कार-रूप और असाक्षात्कार-रूप।

जो गुरुमुख द्वारा अर्थ-सहित महावाक्य के श्रवण-मननादि-रूप विचार के साथ अद्वैत ब्रह्म का चिंतन करके ब्रह्म और आत्मा की एकता के अपरोक्ष भान-सहित हो, वह साक्षात्कार-रूप आंतरिक निर्विकल्प समाधि है।

जो विचार-पूर्वक अद्वैत ब्रह्म का चिंतन करके भी एकता के परोक्ष भान-सहित हो, वह असाक्षात्कार-रूप आंतरिक निर्विकल्प समाधि है।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन, ये ज्ञान के साक्षात् साधन नहीं हैं; बल्कि बुद्धि के दोष—असंभावना और विपरीत भावना—के नाशक हैं। असंभावना का अर्थ संशय और विपरीत भावना का अर्थ विपर्यय है। श्रवण से प्रमाण का संदेह दूर होता है। जैसे वेदांत-वाक्य अद्वितीय ब्रह्म के प्रतिपादक हैं, या अन्य अर्थ के, यह प्रमाण में संदेह है। इसे श्रवण दूर करता है। मनन से प्रमेय का संदेह दूर होता है। जैसे, जीव और ब्रह्म का भेद सत्य है, या अभेद, यह प्रमेय में संदेह है। इसे मनन दूर करता है। निदिध्यासन से विपरीत भावना दूर होती है। जैसे, देहादि सत्य हैं, और जीव तथा ब्रह्म का भेद भी सत्य है, यह विपरीत भावना है। इसे निदिध्यासन दूर करता है *।

* पहले चार साधन, यानी विवेक, वैराग्य, षट् संपत्ति और मुमुक्षुता (जिन्हें साधन-चतुष्टय कहते हैं) श्रवण-साधन में उपयोगी हैं। कारण, विवेकादि के विना बहिर्मुख मनुष्य श्रवण नहीं कर सकता। पिछले तीन साधन, यानी श्रवण, मनन और निदिध्यासन, ज्ञान में उपयोगी हैं। कारण, इनके विना ज्ञान नहीं हो सकता। अभेद-ज्ञान के लिये उपयोगी केवल महावाक्य का अर्थ-शोधन है।

(८) तत्त्वमसि आदि महावाक्यों का साक्षात् करना—वेदांत-वाक्य दो प्रकार के हैं । अवांतर वाक्य और महावाक्य । जो वाक्य परमात्मा अथवा जीव के स्वरूप का बोधक है, वह अवांतर वाक्य है । जैसे, 'ब्रह्म है', यह जीव और परमात्मा की एकता का बोधक वाक्य महावाक्य है । जैसे, 'ब्रह्म मैं हूँ', इस अवांतर वाक्य से परोक्ष ज्ञान और महावाक्य से अपरोक्ष ज्ञान होता है ; जैसा कि पूर्वोक्त उदाहरणों से विदित है । कान से सुना हुआ महावाक्य अपरोक्ष ज्ञान का हेतु है । जैसे, आचार्य ने कहा 'तू ब्रह्म है' । इस वाक्य का कान से संबंध होते ही श्रोता को यह अपरोक्ष ज्ञान होता है कि ब्रह्म मैं ही हूँ ।

महावाक्य चार हैं—

१—तत्त्वमसि ।

२—अयमात्मा ब्रह्म ।

३—अहं ब्रह्मास्मि ।

४—प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म ।

ये चारो महावाक्य चारो वेदों के हैं ।

'तत्त्वमसि'—यह महावाक्य सामवेद के छांदोग्य-उपनिषत् का है । इसका अर्थ है, 'वह तू है' । यह उपदेश-वाक्य है, और बाक़ी तीन अनुभव वाक्य हैं ।

'अयमात्मा ब्रह्म'—यह महावाक्य अथर्ववेद के मांडूक्य-उपनिषत् का है । इसका अर्थ है, 'यह आत्मा ब्रह्म है' । अयं का अर्थ यहाँ अपरोक्ष है, यानी सबकी अपरोक्ष आत्मा ब्रह्म है ।

'अहं ब्रह्मास्मि'—यह महावाक्य यजुर्वेद के बृहदारण्यक-उपनिषत् का है, और इसका अर्थ है, 'मैं ब्रह्म हूँ' ।

'प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म'—यह महावाक्य ऋग्वेद के ऐतरेय-उपनिषत् का है । इसका अर्थ है, 'आत्मा से अभिन्न ब्रह्म आनंद-रूप है' ।

इन वाक्यों में जीव और ब्रह्म की एकता बताई गई है । यह एकता भागत्याग-लक्षणा से बताई गई है । लक्षणा मुख्यतः तीन प्रकार की है । जहति, अजहति और भागत्याग-लक्षणा ।

जहाँ वाच्य अर्थ संपूर्ण त्यागकर वाच्य अर्थ के संबंधी की प्रतीति हो, वहाँ जहति-लक्षणा होती है । जैसे, किसी ने कहा 'गंगा में ग्राम है' । यहाँ गंगा-पद का वाच्य अर्थ छोड़कर तट का अर्थ लिया गया है ; क्योंकि गंगा-नदी के प्रवाह में ग्राम की स्थिति असंभव है । जहाँ वाच्य अर्थ-सहित वाच्य अर्थ के संबंधी का ज्ञान हो, वहाँ अजहति-लक्षणा होती है । जैसे, लाल दौड़ता है, यहाँ लाल का अर्थ है, लाल घोड़ा । इस प्रकार 'लाल'-शब्द में अपना वाच्यार्थ भी रहा, और उसके संबंधी घोड़े का अर्थ भी आ गया ।

जहाँ शब्दों के वाच्य अर्थ के मध्य में एक भाग का त्याग हो, और एक भाग का ग्रहण, वहाँ भागत्याग-लक्षणा होती है । इसे जहति-अजहति-लक्षणा भी कहते हैं ।

उदाहरण—पहले देखे पदार्थ को अन्य देश में देखकर किसी ने कहा 'वह यह है ।' अतीत-काल में और अन्य देश में स्थित पदार्थ 'वह' है, और वर्तमान काल और इस देश में स्थित पदार्थ 'यह' है । इन दोनों पदार्थों में काल और देश का विरोध है । इसलिये इन दोनों वस्तुओं के विरोध को निकालकर केवल पदार्थ की एकता ही समझनी चाहिए । भागत्याग-लक्षणा से देश-काल का विरोध दूर कर अर्थ यही लिया गया कि वह यह है । अब भागत्याग-लक्षणा से तत्त्वमसि महावाक्य का अर्थ सुनिए ।

'तत्' शब्द का वाच्य अर्थ ईश्वर-चेतन है ; जिसके ये धर्म हैं —

सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, विभु, ईश, स्वतंत्र, परोक्ष, मायी, बंध-मोक्ष-रहित ।

'त्वम्' शब्द का वाच्य अर्थ जीव-चेतन है ; जिसके धर्म ये हैं—

अल्प-शक्ति, अल्पज्ञ, परिच्छिन्न, अनीश, परतंत्र (कर्म के अधीन), प्रत्यक्ष, अविद्या-मोहित, बंध-मोक्षवाला ।

इन दोनों के वाच्य अर्थों में एकता का विरोध है । जो धर्म ईश्वर के हैं, उनसे विपरीत धर्म जीव के हैं । ऐसी दशा में इन दोनों की एकता कैसे हो सकती है ? भागत्याग-लक्षणा से इन दोनों के विरोधी धर्मों को त्यागकर केवल शुद्ध, असंग चेतन को ही देखो ; जो एक है । चेतन दोनों में एक है, और उसके सिवा जो धर्म प्रत्येक में हैं, वे विरोधी हैं ; जिन्हें भागत्याग-लक्षणा से छोड़ दिया है । इसलिये चेतन की दृष्टि से जीव और ब्रह्म, दोनों एक हैं । इसी प्रकार शेष तीन महावाक्यों का अर्थ भी भागत्याग-लक्षणा से लगा लो ।

महावाक्य का प्रत्यक्ष ज्ञान—यह नियम नहीं है कि प्रत्यक्ष ज्ञान इंद्रियों के ही द्वारा हो । सुख-दुःख का ज्ञान इंद्रिय के द्वारा नहीं होता ; तब भी वह प्रत्यक्ष ज्ञान है । विषय से वृत्ति का संबंध होकर विषयाकार वृत्ति जहाँ हो, वहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान होता है । अथवा विषय-चेतन का वृत्ति-चेतन से अभेद होना ही प्रत्यक्ष ज्ञान है । यह अभेद कहीं इंद्रिय के द्वारा होता है, कहीं शब्द के द्वारा होता है, और कहीं इंद्रियादि-रूप बाह्य निमित्त से उपजी हुई वृत्ति के द्वारा, शरीर के बिना ही, भीतर होता है । क्रमशः उदाहरण ये हैं—इंद्रिय के द्वारा घटादि का ज्ञान । दशम तू है, इस शब्द से दशम का ज्ञान और सुख-दुःखादि का ज्ञान । सबसे पिछले उदाहरण में साक्षिभास्य ज्ञान है । पहले उदाहरण का विषय साक्षिभास्य नहीं है । जो वृत्ति इंद्रियादि बाह्य साधन से हो, उसका विषय साक्षिभास्य नहीं है । जैसे घटादि का ज्ञान । और, जो वृत्ति बाह्य साधन के बिना हो, उसका विषय साक्षिभास्य है । जैसे सुख-दुःख का ज्ञान । ब्रह्म भी साक्षिभास्य नहीं ; क्योंकि अंतःकरण की ब्रह्माकार वृत्ति गुरु के द्वारा वेद-वचन (महावाक्य के शब्द) से, जिसका संबंध बाह्य साधन श्रोत्र से है, उत्पन्न होती है । 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वृत्ति का संबंध ब्रह्म-विषय से है, और विषय से वृत्ति का संबंध प्रत्यक्ष ज्ञान है । अतः ब्रह्म का ज्ञान भी प्रत्यक्ष है । प्रत्यक्ष ज्ञान को अपरोक्ष ज्ञान और साक्षात्कार भी कहते हैं । जिसे ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है, वह जीवन्मुक्त है; यानी वह शरीर को रखते हुए भी मुक्त हो जाता है । कारण, परब्रह्म का साक्षात्कार होने पर उसके हृदय की गाँठ खुल जाती है, उसके सब संशय दूर हो जाते हैं, और उसके सब कर्म क्षीण हो जाते हैं । यही अर्थ निम्न-लिखित श्लोक का है—

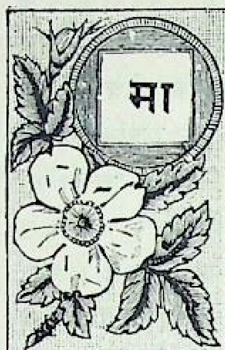
भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ।
क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

इस उच्च अवस्था को राजा जनक, जड़-भरत और शुकदेवजी ने प्राप्त कर लिया था ।

(समाप्त)

कन्नोमल

कविता की भाषा



माधुरी की द्वितीय संख्या में 'कविता की भाषा' पर मेरा एक नोट प्रकाशित हुआ था । उसमें मैंने 'कविता की भाषा' पर १२वें हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति पं० जगन्नाथ-प्रसादजी चतुर्वेदी के, सभापति के आसन पर से दिए गए, भाषण के 'कविता की भाषा'-संबंधी अंश पर, आलोचनात्मक दृष्टि रखते हुए, अपने विचार प्रकट किए थे । चतुर्वेदीजी से मेरा व्यक्ति-गत कोई वैमनस्य नहीं । उन्होंने हिंदी-साहित्य की जो सेवा की है, वह वास्तव में प्रशंसनीय है । मैं उनकी विद्वत्ता के आगे सादर अपना मस्तक नवाता हूँ, और एतदर्थ हर समय उनकी वंदना करने के लिये प्रस्तुत हूँ । परंतु, इतना सब होते हुए भी, मैं उनके कुछ विचारों से सहमत नहीं हूँ । यही कारण है कि मैं उनके भाषण के उस अंश को पढ़कर चुप न रह सका, जिसमें उन्होंने खड़ी बोली, उसके समर्थकों और उसके कवियों को लक्ष्य कर ऐसी बातें कही हैं, जो विवाद-ग्रस्त तो हैं ही, साथ ही बड़ी लचर और व्यर्थ-सी हैं । पर, जिस प्रकार उन्होंने अपने विचार व्यक्त करने में पूर्ण स्वतंत्रता से काम लिया, वह सर्वतोभावेन समुचित था । प्रत्येक साहित्य-सेवी को यह अधिकार है कि वह अपने विचार, स्वतंत्रता-पूर्वक, साहित्यिक संसार के सामने रक्खे । विचार-स्वातंत्र्य की मर्यादा अक्षुण्ण रखने के लिये यह अत्यंत आवश्यक भी है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार स्वतंत्रता-पूर्वक प्रकट करने दिया जाय । इसीलिये मैंने चतुर्वेदीजी की उन बातों पर, जो उन्होंने कविता की भाषा के संबंध में कहीं, एक समालोचनात्मक नोट लिखना उचित समझा । मैंने वह नोट इसी अभिप्राय से लिखा था कि यदि मेरे विचार न्याय्य एवं ग्राह्य न होंगे, तो चतुर्वेदीजी फिर उन पर कुछ लिखेंगे, और इस प्रकार यदि मैं भ्रम में हूँगा, तो मेरा भ्रम दूर हो जायगा । परंतु चतुर्वेदीजी ने मेरे विचारों पर पुनः कुछ लिखना उचित नहीं समझा । मुझे संतोष होता, यदि मैं अपनी बातों का उत्तर चतुर्वेदीजी से, अथवा उन्हीं के समान किसी अन्य धुरंधर

विद्वान् महाशय से पाता। परंतु मुझे खेद है कि मेरी बातों का उत्तर (उत्तर ही कहना चाहिए) 'मदन'-नामक एक नितांत नव्य हिंदी-लेखक ने दिया है, और जो लाहौर से प्रकाशित होनेवाली 'ज्योति'-पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। खेद इसीलिये है कि मेरी बातों का जो उत्तर लेखक महाशय ने दिया है, उसे उत्तर न कहकर और कुछ कहना चाहिए। कारण, उसका आधे से अधिक भाग तो व्यक्ति-गत आक्षेपों और इन पंक्तियों के लेखक की निंदा-स्तुतियों से ही पूर्णतया भरा पड़ा है। शेष आधे अंश में भी जो बातें कही गई हैं, वे भी बिलकुल लचर और व्यर्थ-सी हैं। पता नहीं, वह लेख 'ज्योति'-संपादिका श्रीमती विद्यावती सेठ बी० ए० द्वारा संपादित होकर कैसे निकला? ख़ैर, इन पंक्तियों में मैं उक्त लेखक की कुछ बातों का उत्तर देना चाहता हूँ। व्यक्ति-गत आक्षेपों और अपनी निंदा-स्तुतियों के संबंध में कुछ भी लिखना समालोचना-जैसे महत्त्व-पूर्ण कार्य की उपयोगिता को कम करना है।

प्रत्यालोचना-लेखक ने लिखा है—"क्या चतुर्वेदीजी की यह बात माननीय एवं सत्य नहीं है कि खड़ी बोलीवाले तुकबंदी को ही कविता समझते हैं। खड़ी बोली के कवि तो आजकल बहुत बन गए हैं, और बनते जाते हैं, पर यथार्थ में कवि कहलानेवाले बहुत थोड़े हैं। इनकी अधिकांश कविताएँ तुकबंदी के सिवा कुछ नहीं हैं।"

हाँ, सचमुच मैं चतुर्वेदीजी के इस कथन से पूर्णतया सहमत नहीं हूँ, और न उसे माननीय और सत्य ही मानता हूँ। यह कैसे समझ लिया गया कि 'खड़ी बोली-वाले तुकबंदी को ही कविता मानते हैं?' जिन्हें कविता का ज्ञान ही नहीं है, जो यही नहीं जानते कि कविता वास्तव में है क्या, उन्हें खड़ी बोलीवाले कवियों के समुदाय में लिया ही क्यों जाय? जो तुकबंदी को ही कविता मानते हैं, वे खड़ी बोलीवाले ही क्यों हो गए? जो तुकबंदी को ही कविता मानते हैं, वे कवियों के समुदाय में हैं ही नहीं। उन्हें तो समझना चाहिए कि वे कविता सीखनेवाले वैसे विद्यार्थी हैं, जैसे प्रत्येक भाषा में प्रथमतः कविता सीखनेवाले हुआ ही करते हैं। यदि इन्हें कवियों के समुदाय में ले लिया जाय, तो मैं पूछता हूँ कि क्या व्रज-भाषा में ऐसे कवि नहीं मिल सकते? और, क्या कोई भाषा ऐसे व्यक्तियों से रिक्त रह भी सकती है? "खड़ी बोली के कवि तो आजकल बहुत बन गए हैं और बनते जाते हैं; पर यथार्थ में कवि कहलानेवाले बहुत थोड़े हैं।"—इस कथन के मूल-भाव से मैं सहमत हूँ; परंतु मैं इस विषय में कुछ भिन्न विचार अवश्य रखता हूँ। कवि दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे, जो प्रकृत कवि होते हैं; और दूसरे वे, जो अभ्यास करते-करते कवि होते हैं। पहले, अर्थात् जो प्रकृत कवि होते हैं, थोड़े ही अभ्यास से अच्छी रचनाएँ करने लगते हैं; परंतु दूसरे निरंतर अभ्यास के द्वारा कवि हो पाते हैं। प्रकृत कवियों की अधिकांश रचनाएँ सुंदर होती हैं, और वास्तव में वे ही कविताएँ कहलाती हैं; क्योंकि उनकी जन्मदात्री प्रकृति होती है। दूसरे प्रकार के कवियों की समस्त रचनाओं में से कुछ, उँगलियों में गिनने योग्य, रचनाएँ ऐसी निकलती हैं, जो वास्तविक कविताएँ कहला सकती हैं। प्रत्येक भाषा में दोनों ही प्रकार के कवि हुआ करते हैं। सर्व-साधारण के लिये तो इसकी परीक्षा अत्यंत कठिन है कि कौन प्रकृत कवि है, और कौन अभ्यास द्वारा बना हुआ कवि; परंतु कविता का वास्तविक मर्म समझनेवालों से यह बात छिपी नहीं रहती। कविता का विषय ही ऐसा है, जो सर्व-प्रिय है। इसीलिये प्रकृत कवि न होते हुए भी लोग कवि बनने के लोभ को दबा नहीं सकते, और कविता सीखने के लिये आगे बढ़ते हैं। बस, इसी प्रारंभिक अवस्था में उनकी लेखनी द्वारा जो कुछ रचनाएँ निकलती हैं, वे प्रायः कवित्व-शून्य रहती हैं। प्रत्येक भाषा का साहित्य जिस समय उन्नतिशील होता है, उस समय उसमें ऐसे कवियों का जन्म बहुत बड़ी संख्या में हुआ करता है। मेरी धारणा है कि नव्य कवियों की यह अभिवृद्धि साहित्य की उन्नति का पूर्व-लक्षण है। यह युग हिंदी-साहित्य की उन्नति का युग है। इसीलिये हिंदी के कवियों की संख्या बढ़ रही है। जितनी ही यह संख्या बढ़ेगी, उतनी चतुर्वेदी-जी के शब्दों में "यथार्थ में कवि कहलानेवाले बहुत थोड़े" लोगों की संख्या भी बढ़ेगी (क्योंकि यथार्थ में कवि कहलानेवाले भी इसी संख्या से ही निकलेंगे), और यह बात हिंदी के विकास के लिये अत्यंत हितकर है।

दूसरी बात जो मुझे इस संबंध में कहनी है, यह है कि जिन कवियों के संबंध में चतुर्वेदीजी ने अपना यह असंतोष प्रकट किया है, वे वास्तव में कवि ही नहीं हैं।

सच्चे कवि तो वास्तव में बहुत थोड़े हैं, जैसा कि चतुर्वेदीजी कहते हैं। इन बहुत थोड़े के सिवा जो हैं, वे कवि हैं ही नहीं। उन्हें कवि कौन कहता है ? हिंदी-संसार में आज जिन कवियों का आदर है, जिन्होंने काव्य-ग्रंथ लिखे हैं, और जिनकी रचनाएँ उच्च कोटि के हिंदी मासिक पत्रों में प्रकाशित होती हैं, वे ही कवि कहलाते हैं। बहुत बढ़नेवाले कवि वास्तविक कवि नहीं हैं—कविता के विद्यार्थी-मात्र हैं। और, यदि इनकी अधिकांश रचनाएँ तुकबंदी के सिवा कुछ न हों, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

प्रत्यालोचना-लेखक महाशय का कथन है कि "व्रज-भाषा का पक्ष लेने का जितना दोष वाजपेयीजी ने लगाया, उतना पक्ष चतुर्वेदीजी ने नहीं लिया। उन्होंने यह कभी भी (?) नहीं कहा कि कविता खड़ी बोली में न की जाकर व्रज-भाषा में ही की जाय। यह उन्हीं के इन शब्दों से कि 'मैं खड़ी बोली का विरोधी नहीं हूँ', प्रकट है।" इस संबंध में मैं सादर निवेदन करना चाहता हूँ कि चतुर्वेदीजी ने व्रज-भाषा का पक्ष लेने में, वास्तव में, अतिशयोक्ति से काम लिया है। खड़ी बोली, उसके साहित्य और उसके कवियों पर कटूक्तियाँ कहने में उन्होंने कोई कसर उठा नहीं रक्खी। इससे अधिक और वह कहते ही क्या ? खड़ी बोली की अत्यधिक निंदा तथा व्रज-भाषा की प्रशंसा करना क्या यह सिद्ध नहीं करता कि वह खड़ी बोली को कवितोपयुक्त भाषा नहीं मानते ? क्या खड़ी बोली की अत्यधिक निंदा करते हुए यही कहना पर्याप्त है कि 'मैं खड़ी बोली का विरोधी नहीं हूँ' ? क्या केवल 'विरोधी नहीं हूँ' इतना ही कह देने से वह एकपक्षीय निर्णय के दोष से मुक्त हो सकते हैं ? मेरी धारणा है कि यदि चतुर्वेदीजी खड़ी बोली में कविता किए जाने के विरोधी न होते, तो कदापि उस पर ऐसे वाग्बाण न छोड़ते। यदि वह खड़ी बोली में कविता किए जाने के पक्ष में होते, तो उसकी कटु समालोचना करते हुए भी उसकी उन्नति के उपाय अवश्य बतलाते। परंतु सच्ची बात तो यह है कि खड़ी बोली में कविता किए जाने पर उनकी श्रद्धा ही नहीं है। इसीलिये उनका कथन है कि "खड़ी बोली की कविता में भाव का अभाव है, और ओज की खोज व्यर्थ है। लालित्य के सदा लाले पड़े रहते हैं। प्रसाद का कहीं पता ही नहीं है। रस क्या, रसाभास भी नहीं। न अर्थ से अर्थ, और न मतलब से मतलब।"

आगे चलकर मदन महाशय ने लिखा है—"हाँ, यह अवश्य कहा जा सक्ता है (या सकता है ?) कि वर्तमान बाज़ारू भाषा से कविता के लिये व्रज-भाषा ही अत्यधिक उपयुक्त है। अभी तक बाज़ारू भाषा खड़ी बोली में जितनी रचनाएँ हुई हैं, उन्हें देखकर चतुर्वेदीजी का यह कहना सत्य ही है।" इसका पुष्टीकरण करते हुए आपने लिखा है—"बात यह है कि खड़ी बोली का अभी कोई रूप ही स्थिर नहीं हुआ। उसमें कोई माननीय व्यवस्था नहीं है। नित्यः (नित्य शब्द का यह नवीन संशोधन है, या आविष्करण ?) उसमें रूपांतर हो रहा है, (या हो रहे हैं ?) भाषा अभी मँजी नहीं (शायद आपकी ?)। उसमें ऐसे आचार्य नहीं हुए, जिनकी व्यवस्था मान्य हो (श्रद्धेय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० गोविंदनारायण मिश्र, पं० अंबिकाप्रसाद वाजपेयी और पं० कामताप्रसाद गुरु आदि के होते हुए भी ?)। जब खड़ी बोली की ऐसी सड़ी अवस्था है (आप ही के ख़याल-शरीफ़ में न ?), तो वह कैसे कवितोपयुक्त भाषा हो सकती है।"

आपकी यह सलाह कि 'वर्तमान बाज़ारू भाषा से कविता के लिये व्रज-भाषा ही अत्यधिक उपयुक्त है', वास्तव में बड़े पते की है ! अभी तक हिंदी के विद्वानों के दिमाग़ में जो बात नहीं आई थी, वह आपके मुख से इस प्रकार अनायास ही निकल पड़ी ! 'बाज़ारू भाषा' कहकर जिस खड़ी बोली का आप इस प्रकार मज़ाक़ उड़ाते हैं, उसे इसीलिये इतना श्रेय प्राप्त हुआ है कि वही एक-मात्र भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा होने योग्य है। वह बाज़ारू भाषा है, तभी तो राष्ट्र-भाषा है। क्या किसी भी अन्य प्रांतीय भाषा को इतना श्रेय प्राप्त है कि उसका व्यवहार समस्त प्रांतों के शहरों, तीर्थ-स्थानों, स्टेशनों और बाज़ारों में समान-रूप से होता हो ? क्या अन्य कोई भी प्रांतिक भाषा, सरलता और सर्व-प्रियता में उसकी समानता का दम भर सकती है ? महाशय, ये ही तो वे कारण हैं, जिनकी बदौलत हिंदी राष्ट्र-भाषा कहलाती है। और, जब एक-मात्र वही भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा होने योग्य है, और है, तो कोई कारण नहीं कि वह कवितोपयुक्त भाषा न हो। हम पूछते हैं, खड़ी बोली को दूसरे शब्दों में आप हिंदी या हिंदुस्तानी न कहकर और क्या कहेंगे ? व्रज-भाषा को ही भारत की कवितोपयुक्त भाषा माननेवाले समस्त हिंदी के विद्वानों से—यदि कोई और भी हों—हम

सादर यह पूछते हैं कि वे, हिंदी को राष्ट्र-भाषा मानते हुए, व्रज-भाषा को कवितोपयुक्त भाषा बनाकर, उसे क्या भारत-व्यापी बना सकते हैं? यदि बना सकते हैं, तो किस प्रकार? वे कृपया यह भी बतलाने का कष्ट करें कि बोल-चाल की भाषा को कवितोपयुक्त भाषा न रखते हुए भी राष्ट्र-भाषा का रूप किस प्रकार दिया जा सकेगा? *

यह तो हुई 'बाज़ारू भाषा' के संबंध की बात। अब आप उसकी रचनाओं पर विचार कीजिए। आपका विश्वास है कि अब तक खड़ी बोली में जितनी रचनाएँ हुई हैं, उन्हें देखकर चतुर्वेदीजी का यह कहना सत्य ही है कि—"खड़ी बोली की कविता में भाव का अभाव है, ओज की खोज व्यर्थ है, लालित्य के तो सदा लाले पड़े रहते हैं। प्रसाद का कहीं पता ही नहीं। रस क्या रसाभास भी नहीं। अर्थ से अर्थ, न मतलब से मतलब।" यदि वास्तव में यही बात है, जैसा कि प्रत्यालोचना-लेखक और चतुर्वेदीजी का विश्वास है, तब तो हिंदी-संसार इस समय बड़े भ्रम में है। कविता-कलाप, कविता-कुसुम-माला, जयद्रथ-वध, भारत-भारती, अनुराग-रत्न, प्रिय-प्रवास, रामचरित-चिंतामणि, ताराबाई, भारत-गीतांजलि, राष्ट्रीय वीणा, त्रिशूल-तरंग, संजीवनी, पथिक तथा इधर के अन्य नवीन काव्य-ग्रंथ † और माधुरी, सरस्वती, प्रभा, श्रीशारदा, मर्यादा आदि उच्च कोटि की सचित्र मासिक पत्रिकाएँ यदि यही बतलाती हैं, तब तो सचमुच इतना परिश्रम और प्रचुर धन-व्यय व्यर्थ हुआ, और हो रहा है। तब तो आवश्यकता इस बात की थी कि कानपुर के गत हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में इसी आशय का एक प्रस्ताव रक्खा जाता कि 'चूँकि खड़ी बोली में सुंदर और मधुर कविता हो ही नहीं सकती, अतएव हिंदी-साहित्य-सेवियों का यह कर्तव्य है कि वे खड़ी बोली में कविता करना तुरंत बंद कर दें, और व्रज-भाषा में ही कविता करें।'

प्रत्यालोचना-लेखक महाशय ने इस विषय की पुष्टि करने के लिये स्वर्गीय आचार्य कवियों के कथनों के उदाहरण भी दिए हैं। यदि हम इस स्थल पर उन सब उदाहरणों को ज्यों-का-त्यों देंगे, तो लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा। परंतु बिना उनकी बातों का सार बतलाए काम भी नहीं चल सकता। अतएव अत्यंत संक्षेप में ही उनकी सम्मतियाँ दी जाती हैं।

भारतेंदुजी का यह सर्व-मान्य सिद्धांत था कि 'खड़ी बोली में सुंदर और मधुर कविता हो ही नहीं सकती।' पं० प्रतापनारायणजी मिश्र ने लिखा है कि 'आधुनिक कवियों के शिरोमणि भारतेंदुजी से बढ़कर हिंदी-भाषा का आग्रही दूसरा न होगा। जब उन्हीं से खड़ी बोली में मधुर कविता न हो सकी, तो दूसरों का यत्न निष्फल है।' बाबू राधाकृष्णदासजी की राय थी कि 'कविता की भाषा व्रज-भाषा ही ठीक है।', और पं० बालकृष्णजी भट्ट ने कहा था कि 'मेरे विचार में खड़ी बोली में एक इस प्रकार का कर्कशपन है कि कविता के काम में ला उसमें सरसता-संपादन करना प्रतिभावान् के लिये कठिन है।' इत्यादि।

ऊपर जिन स्वर्गीय धुरंधर हिंदी-महारथियों की सम्मतियाँ दी गई हैं, उनसे और उनकी सर्व-मान्य सेवाओं से इन पंक्तियों का लेखक भी पूर्णतया परिचित है। वह उन्हें उतना ही आदरणीय समझता और मानता है, जितना कोई भी हिंदी-सेवक मान सकता है। फिर भी खेद है कि वह उनकी उपर्युक्त सम्मतियों को आँख मूँदकर मान लेने में सर्वथा असमर्थ है। सभी व्यक्तियों के विचार एक-से नहीं होते। विचारों में भिन्नता होना स्वाभाविक है। प्रत्येक व्यक्ति अपने निज के कुछ-न-कुछ स्वतंत्र विचार अवश्य रखता है; क्योंकि विचारों की स्वतंत्रता ही मनुष्य का वास्तविक व्यक्तित्व है। एक ही वस्तु एक के लिये अच्छी और दूसरे के लिये बुरी प्रमाणित होती है। कहा भी है—"जिनके रही भावना जैसी, प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी"। यही

---

* इसके सिवा यह भी प्रश्न है कि उर्दू में जब अच्छी कविता हो सकती है, तब खड़ी बोली में क्यों नहीं हो सकती? उर्दू और खड़ी बोली में क्या अंतर है? आजकल खड़ी बोली की अधिकांश कविताएँ उर्दू के एक-तिहाई शब्दों से भरी रहती हैं। अतएव कोई कारण नहीं कि उर्दू में सफल कविता हो, और खड़ी बोली में न हो। यह केवल पक्षपात और भ्रम है कि उर्दू को कवितोपयुक्त भाषा माना जाय, और खड़ी बोली को नहीं। यह सिद्ध हो चुका है कि हिंदी और उर्दू, दोनों ही हिंदुस्तानी भाषा के (लिपि-भेद से) रूप हैं।—संपादक।

† इन काव्य-ग्रंथों के सिवा और भी कुछ ऐसे ग्रंथ हैं, जो उल्लेखनीय हैं। स्थानाभाव से उन सबका नाम नहीं दिया जा सका। ग्रंथ-लेखक और प्रकाशक महाशय क्षमा करें।—लेखक।

तो प्रकृति और मानव-प्रकृति की विचित्रता है। यदि एक पुरुष की बात को दूसरा पुरुष, अपनी बुद्धि से काम न लेकर, किसी प्रकार का परिवर्तन किए बिना मान ले, तो संसार परिवर्तनशील न रहे—सृष्टि का क्रम सदा-सर्वदा एक-सा ही बना रहे। इसीलिये विचारों की भिन्नता सदा से चली आई है, और सदा चली जायगी। अतएव इस संबंध में इसके सिवा और कहा ही क्या जा सकता है कि उनके वे विचार थे—हमारे ये विचार हैं। निर्णय विचारशील पाठक स्वयं कर लें।

विचारों में भिन्नता विचार-स्वातंत्र्य के सिवा परिस्थिति के अनुसार भी हुआ करती है, इसलिये कि परिस्थिति सदा एक-सी ही नहीं रहती, और विचार भी परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। उस समय परिस्थिति भी ऐसी न थी, जैसी इस समय है। कौन जानता था कि जिस खड़ी बोली के संबंध में उस समय के विद्वानों का यह मत है, एक समय ऐसा भी आवेगा, जब हिंदी-संसार में उसी खड़ी बोली की तूती बोलेगी? उस समय यह कौन कह सकता था कि एक समय ऐसा भी आवेगा, जब पं० सत्यनारायण कविरत्न व्रज-भाषा के अंतिम सफल कवि कहे जायँगे? बात यह है कि उस समय खड़ी बोली में उत्तम रचना करनेवालों का न केवल अभाव ही था, बल्कि उस समय खड़ी बोली का वह रूप ही न था, जैसा इस समय है। कहना चाहिए कि वह समय तो खड़ी बोली के जन्म का था। इसीलिये उसका विकास अनिश्चित था। अतएव, उस समय की परिस्थिति के अनुसार उक्त सम्मतियाँ सर्वथा मान्य हुईं। मेरा विश्वास है कि यदि भारतेंदु बाबू, भट्टजी, बाबू राधाकृष्णदास तथा मिश्रजी इस समय जीवित होते, तो वे भी इस समय अपने पूर्व विचारों से पूर्णतया सहमत न होते।

रह गई खड़ी बोली का रूप स्थिर न होने की बात। कहा गया है कि उसमें कोई माननीय व्यवस्था नहीं है; नित्य उसमें रूपांतर हो रहे हैं, इत्यादि। यह ठीक है। मैं मानता हूँ, अभी उसका कोई रूप स्थिर नहीं हुआ, और उसमें रूपांतर हो रहे हैं। पर क्या किसी भी भाषा का रूप स्थिर रहने का प्रमाण अखिल भाषाओं के इतिहास में मिलता है? क्या संसार में ऐसी भी कोई भाषा है, जिसका रूप सदा एक-सा रहा हो? अँगरेज़ी-भाषा का जो रूप आज है, वही क्या उसके जन्म-काल में भी था? क्या उसने जन्म-काल से लेकर अब तक, अपने रूप में, विभिन्न परिवर्तन नहीं किए? हिंदी-भाषा ही के लिये क्या यह कहा जा सकता है कि उसका जो रूप आज है, वही भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र और राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' के समय में भी था? मिश्रबंधु-विनोद हिंदी का अर्वाचीन इतिहास माना जाता है। उसके अवलोकन से यह बात छिपी नहीं रहती कि हिंदी ने अपने जन्म-काल से लेकर अब तक अपने रूप में विभिन्न परिवर्तन किए हैं। किसी भी भाषा का रूप सदा एक-सा नहीं रह सकता। यदि उसका रूप बदलता न रहेगा, यदि उसमें रूपांतर न होते रहेंगे, तो अवश्यमेव एक दिन उसका विकास-क्रम अवरुद्ध हो जायगा, और आगे चलकर वह भाषा, अपने आप, मृत हो जायगी। इसलिये रूप स्थिर न होने और रूपांतर होते रहने से, 'मदन' महाशयजी के शब्दों में, खड़ी बोली की अवस्था सड़ी प्रमाणित नहीं हो सकती। रूपांतर होना तो उसके उन्नतिशील होने का लक्षण है। मान्य टंडनजी ने भी अपने भाषण में यही कहा है।

इन्हीं शब्दों में 'मदन' महाशय की ऊल-जलूल बातों का उत्तर समाप्त किया जाता है। आशा है, गण्य-मान्य हिंदी-साहित्य-सेवी इन विचारों पर ध्यान देकर विचार करेंगे, और इनसे सहमत होंगे।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

बाल्य-विज्ञान

[Child-Study]



बाल्य-विज्ञान क्या है?

यह तो सभी जानते हैं कि बच्चों और जवानों में बड़ा अंतर होता है। इसमें संदेह नहीं कि जिन वस्तुओं से जवान का शरीर बनता है, उन्हीं से बालक का भी। उसके भी मांस, हड्डी, त्वचा तथा रक्त होता है, जैसा कि हमारे। उसके भी अंग-प्रत्यंगों की गठन

वैसी ही होती है, जैसी कि युवा पुरुषों की। पर इस एक बात में समता होने के सिवा शेष सब बातों में, उन दोनों में, बड़ा अंतर होता है। बच्चे का शरीर छोटा, कोमल और निर्बल होता है; परंतु जवान का शरीर बड़ा, कड़ा और सबल होता है। कच्ची और पक्की अवस्थाओं में जो भेद होते हैं, वे ही साधारणतः उन दोनों में पाए जाते हैं।

बच्चे और जवान के मन और मस्तिष्क में भी बड़ा अंतर होता है। बच्चे के मन में उतनी शक्ति कदापि नहीं हो सकती, जितनी जवान के मन में होती है। वस्तुओं को ग्रहण करना, किसी बात में ध्यान लगाना, चित्त को एकाग्र करना तथा स्मरण-शक्ति इत्यादि मानसिक शक्तियाँ बच्चों में अत्यंत सूक्ष्म अवस्था में होती हैं। फिर ज्यों-ज्यों बालक बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसके शरीर के साथ-साथ इन शक्तियों का भी विकास होता जाता है। इन शक्तियों के विकास के क्रम तथा समय का निश्चय करना ही बाल्य-विज्ञान का विषय है।

बाल्य-विज्ञान की उपयोगिता

यह अत्यंत आवश्यक है कि बच्चों के माता-पिता तथा शिक्षकों को उनकी भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओं का ज्ञान रहे। जैसे किसी जहाज़ के कर्णधार के लिये जहाज़ के सारे कल-पुर्ज़ों की अभिज्ञता आवश्यक है, वैसे ही शिक्षकों के लिये अपने विद्यार्थियों की मानसिक शक्तियों का ज्ञान होना आवश्यक है। शिक्षक और हैं क्या, बालक-रूपी जहाज़ों के कर्णधार हैं। उनका कर्तव्य है कि वे उन सब जहाज़ों को, अनेक प्रकार की विद्या-रूपी सामग्री से लादकर, संसार-सागर के अनेकानेक भँवरों, चट्टानों तथा दूसरी जोखिमों से बचाते हुए, शांति, सुख और सदाचार के द्वीप पर पहुँचा दें। पर यदि उनमें उन जहाज़ों के कील-काँटों, उनकी गमन-शक्ति तथा सागर की जोखिमों की जानकारी नहीं है, तो वे अपने कर्तव्य का पालन किस प्रकार कर सकते हैं? न-जाने कितने बहु-मूल्य जहाज़, मूर्ख मल्लाहों के हाथ में पड़ जाने से, अपनी यात्रा के प्रारंभ में ही सदैव के लिये सागर के गर्भ में विलीन हो गए। न-जाने कितने, घास-फूस से लदे, समुद्र में इधर-उधर भटकते रहे। बहुतों के कल-पुर्ज़ों का ऐसा दुष्प्रयोग किया गया कि वे यात्रा करने में बिलकुल बेकाम हो गए। सचमुच, वह शिक्षक, जो बालकों के पूरे ज्ञान के बिना ही उन्हें शिक्षा देता है, उतना ही अपराधी है, जितना कि वह मल्लाह, जो जहाज़ों का बिलकुल ज्ञान न रखते हुए भी सारे जहाज़ की रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है।

बाल्य-विज्ञान का ज्ञान न होने से शिक्षकों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। हम बहुधा समझ बैठते हैं कि जैसा हमारा दिमाग़ है, वैसा बच्चों का भी। इसलिये यदि हम एक बात को एक दफ़े देखकर समझ सकते हैं, तो बच्चों को भी उसी प्रकार समझ लेना चाहिए। जैसे हम किसी ख़ास विषय पर अपना ध्यान गड़ाए घंटों बैठ सकते हैं, वैसे ही हम समझते हैं कि बच्चे भी कर सकते हैं। पर जब हम वास्तव में ऐसा नहीं पाते, तो बच्चों को दोष देते हैं, और उन्हें डाँटते-डपटते हैं। इस प्रकार अपनी भ्रांत धारणाओं के लिये हम बच्चों के साथ व्यर्थ अन्याय करते हैं।

शिक्षकों के मन से बालकों के संबंध की ऐसी अनेक भ्रांत धारणाओं को दूर करने और शिक्षा के मार्ग को सरल तथा सरस बनाने के लिये ही बाल्य-विज्ञान की सृष्टि हुई है। वैसे तो यह मनोविज्ञान का ही एक विभाग है, पर मनोविज्ञान का घेरा इतना विस्तृत है कि उसके विद्वानों का

ध्यान इसकी ओर बहुत कम गया, और यही कारण है कि अभी तक इस विषय ने पूरी उन्नति नहीं की। पर शिक्षकों के लिये इसकी उपयोगिता देखकर शिक्षा-शास्त्र के आचार्यों ने इसकी ओर ध्यान दिया, और इस संबंध में उन्होंने जो अनुसंधान किए, वे बहुत ही उपयोगी ठहरे। तब तो और लोगों का ध्यान भी इस ओर गया, और मनोविज्ञान के पंडितों ने भी इस पर लेखनी उठाई। योरप की भाषाओं में आज-दिन इस विषय की अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकें हैं। इसे अँगरेज़ी में Paidology भी कहते हैं।

मानसिक क्रियाओं के जानने की विधि

जिस प्रकार मनुष्यों की मानसिक क्रियाएँ मनोविज्ञान का विषय हैं, उसी प्रकार बालकों की मानसिक क्रियाएँ बाल्य-विज्ञान का विषय हैं। अब प्रश्न यह है कि ये क्रियाएँ किस प्रकार जानी जाती हैं? वास्तव में एक व्यक्ति के लिये दूसरे की मानसिक क्रियाओं का जानना असंभव है। पर अपनी-अपनी मानसिक क्रियाओं को, यत्न करने पर, हम जान सकते हैं। जिस समय हमारे मन में किसी प्रकार की क्रिया का उदय होता है, और जब तक उसका अवसान नहीं होता, तब तक यदि हम उसके निरीक्षण करने का प्रयत्न करें, तो हम उसे जानने में कदापि सफल नहीं हो सकते। कारण, जैसे ही हमारा ध्यान उस क्रिया के निरीक्षण की ओर जायगा, सौ में निन्नानबे फ़ी सैकड़ा, वह अवश्य बंद हो जायगी। मन एकसाथ दो काम नहीं करता। जब तक उसमें किसी विशेष प्रकार की क्रिया जारी है, तब तक वह उसका निरीक्षण नहीं कर सकता। निरीक्षण की ओर उसके लगते ही उसकी क्रिया चली जाती है। अतएव मानसिक क्रियाओं के निरीक्षण का एक-मात्र उपाय यही है कि मन में जब तक किसी प्रकार की क्रिया हो रही हो, तब तक उसे निरीक्षण करने का उपाय न करे; पर जैसे ही उसका अवसान हो, वैसे ही उस पर विचार करना आरंभ कर दे, और यह सोचे कि वह किस प्रकार की थी। इसी प्रकार मनोविज्ञान-संबंधी अनेक बातें प्रकट हुई हैं, और इस विधि को अंतर्दर्शन (Introspection) कहते हैं।

अंतर्दर्शन से हम अपनी मानसिक क्रियाएँ भले ही जान लें, पर उनके द्वारा बच्चों की मानसिक क्रियाओं का जानना असंभव है। हाँ, यदि कोई बालक अपनी मनोवृत्तियों तथा क्रियाओं का निरीक्षण करके बाल्य-विज्ञान पर एक पुस्तक लिखे, तो ऐसा हो सकता है। पर अभी तक ऐसे बालकों की सृष्टि नहीं हुई, और न भविष्य में होने की आशा है। तो फिर क्या किया जाय? बस, एक उपाय है। बालकों का हर समय निरीक्षण किया जाय। देखा जाय कि वे भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में किस प्रकार खाते-पीते, उठते-बैठते, पढ़ते-लिखते, तथा सोचते-विचारते हैं। उनको जब क्रोध आता है, तब वे क्या करते हैं? किसी बात के जानने या स्मरण रखने में उन्हें क्या करना पड़ता है, इत्यादि बातें ध्यान-पूर्वक देखी जायँ। इस प्रकार जब हम बालकों की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में उनके भिन्न-भिन्न कार्यों के ढंगों को जान लें, तब हम उनकी अपने कार्यों से तुलना करके यह जान सकते हैं कि वे किस प्रकार की मानसिक क्रियाओं के फल-स्वरूप हैं। पर इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा करते समय हम बालकों की मानसिक क्रियाओं को ठीक अपने मन की क्रियाओं के सदृश न समझ बैठें। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि

बालकों की मानसिक क्रियाएँ होती उसी प्रकार की हैं, जैसी कि जवानों की, पर बिलकुल वैसी ही नहीं होतीं। बाल्य-विज्ञान के अंतर्गत सभी बातें प्रायः इसी प्रकार जानी गई हैं।

बाल्य-विज्ञान की अवधि

बाल्य-विज्ञान किस अवस्था तक के बालकों से संबंध रखता है, यह वर्षों की संख्या में बतलाना कठिन है। परिपक्व युवावस्था में पदार्पण करने के पहले प्रत्येक बच्चे में जो शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन हुआ करते हैं, उनका अनुसंधान करना बाल्य-विज्ञान के अंतर्गत है। जब तक कोई व्यक्ति लड़का या लड़की है, तभी तक वह बाल्य-विज्ञान का विषय है; युवा या युवती होते ही वह उसकी सीमा से बाहर हो जाता है। साधारण तौर से १६ वर्ष की अवस्था तक बाल्य-काल समझना चाहिए। १६ से लेकर २४ तक (कम या अधिक) किशोरावस्था (adolescence) होती है।

भूपनारायण दीक्षित

कृषक भारत



भारत एक कृषि-प्रधान देश है। देश की जन-संख्या का लगभग ७० प्रति-शत भाग खेती और पशु-पालन में लगा रहता है। इसका कारण प्रकृति-देवी की भारत-भूमि पर कृपा कहें, तो उपयुक्त होगा। भूमि की उपज, जल की मधुरता और अधिकता, वर्षा का देश के अधिकांश भाग में पूर्ण-रूप से होना, देश में ग्रामों की अधिक संख्या होना आदि सभी कारण देश को कृषि-प्रधान बनाते हैं। परंतु आश्चर्य इस बात का है कि देश में इतनी उपज होते हुए भी बाहर से गेहूँ, कपास, शकर आदि अनेक पदार्थ देश में लाए जाते हैं। जिन महानुभावों ने देश की उपज का, १९वीं शताब्दी का, सरकारी क्रम देखा होगा, और उस क्रम को २०वीं शताब्दी के क्रम से मिलाया होगा, वे अच्छी तरह से जानते होंगे कि उपज प्रति-वर्ष बढ़ती जाती है। परंतु प्रति-बीघे के हिसाब से उपज दिन-प्रति-दिन घटती जाती है। यदि हम ऊपर कही गई बढ़ती को बढ़ती कहें, तो उचित न होगा। कारण, प्रथम तो यह बढ़ती हमारे किसानों के खेतों में नहीं हुई है। उनके खेत तो निरंतर उपज में घटते जाते हैं। इस बढ़ती का कारण कुछ तो योरपियन प्लांटर्स और कुछ सरकारी खेत (Farms) हुए हैं। उनसे किसानों को कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचा। परंतु यदि हम बिलकुल यही कहें कि किसानों ने इस वृद्धि से कोई लाभ नहीं उठाया, तो यह भी एक प्रकार से कृतघ्नता होगी। तथापि यह लाभ इस बड़े देश में और इतनी जन-संख्या में न होने के बराबर ही है।

ग्रामों में चलकर यदि कोई किसानों और खेत पर काम करनेवाले मज़दूरों की दशा को देखे, तो निश्चय ही सारी उन्नति और वृद्धि का भेद खुल जायगा। मैंने स्वयं अपनी आँखों से आगरा और रुहेलखंड के ग्रामों को देखा है। किसानों से बात-चीत भी की है। ज़मींदारों से भी खेती और किसानों के बारे में वार्तालाप किया है। स्वयं अपने गाँव में, जहाँ पर मुझको बहुधा विद्यार्थी की दशा में कई बार छुट्टियों में रहने का अवकाश मिला है, किसानों की झोपड़ियों को देखने और किसानों के बच्चों से बात-चीत करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। मैं यदि उनकी दशा को एक शब्द में 'परमात्मा का कोप' अथवा 'धनवानों का अन्याय' कहूँ, तो अनुचित न होगा। बेचारों के पास केवल एक खुर्पा, एक दाँती, एक गड़ाँसी, एक कसी और एक खादी की चादर के सिवा दूसरी वस्तु खेत की संपत्ति (fixed-capital) के रूप में नहीं है। वे हल, बैल तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ अपने धनी किसान भाइयों से अथवा ज़मींदारों से माँग लेते हैं। धन्य है भारत के प्राचीन सामाजिक जीवन को, जिसने इतना भ्रातृ-भाव अभी तक हमारे किसानों के भीतर रहने दिया। यदि पाश्चात्य व्यक्ति-भाव (individualism) कहीं हमारे ग्रामों में फैल जाय, तो

न-जाने क्या अधोगति हो जाय। उनके घरों में सिवा थोड़े-से पीतल के बर्तनों और थोड़े-से खादी के कपड़ों के और कोई दूसरी वस्तु, जिसको मूल्यवान् कहा जाय, नहीं है। यह दशा हमारे किसानों की दरिद्रता की है। अब एक बुद्धिमान् मनुष्य स्वयं ही न्याय कर सकता है कि क्या दशा उन किसानों के मज़दूरों की होगी, जो खेतों पर काम करते हैं। यदि मैं कहूँ कि ज़मींदार भी कोई अच्छी अवस्था में, ग्रामों में, नहीं हैं, तो अनुचित न होगा। हमारे देश के क्या ज़मींदार, क्या किसान, और क्या कृषक मज़दूर, सभी की दरिद्रता संसार के समस्त देशों के कृषकों से अधिक गिरी हुई है।

डॉक्टर हिरालडमैन ने बंबई की, प्रोफ़ेसर स्लेटर ने मदरास-प्रांत की, डॉक्टर राधाकमल मुकर्जी ने बंगाल और संयुक्त-प्रांत की तथा सर गंगाराम ने पंजाब के ग्रामों की कृषि और कृषकों की दशा लिखी है। वह भी किसी प्रकार मेरे देखे हुए गाँवों, किसानों और खेतों की दशा से कम नहीं है। डॉ० मुकर्जी ने तो अपनी पुस्तक में गाँवों की दुर्दशा का यहाँ तक वर्णन किया है कि पढ़ने-वाला दो आँसू बहाने को विवश हो जाता है।

गाँवों में किसानों और कृषक-परिवारों की यह अधो-गति क्यों है, इसका उत्तर बहुत-से अर्थशास्त्र के विद्वानों ने समय-समय पर अपनी-अपनी प्रसिद्ध पुस्तकों में दिया है। किसानों की अधोगति का कारण इस समय उनका वह असीम ऋण है, जिसको चुकाने के लिये यदि सरकार भी बीड़ा उठावे, तो दिवाला निकल जाने की संभावना है। हमारे किसान लोग इस क़र्ज़े के बोझ से इतने दबे हुए हैं कि प्रति-वर्ष की कमाई, सब-की-सब, साहूकार के कोष में, ब्याज के रूप में, चली जाती है। किसान अपने जीवन में स्वयं अपने ही लिए हुए ऋण से मुक्त नहीं हो सकता; फिर अपने बाप-दादे के क़र्ज़े को कैसे चुका सकता है? इस प्रकार किसान का क़र्ज़ा कई पीढ़ियों तक भी नहीं दिया जा सकता। उसका फल किसान की सदैव की कंगाली और दरिद्रता है। सुख और आनंद तो दूसरी बात है; ऐसी दशा में भर-पेट भोजन भी मिलना और अपने परिवार को खिलाना दुष्कर कार्य है। हमारे कृषक बहुधा दो प्रकार से उधार लेते हैं।

१. नाज के रूप में—बहुधा ज़मींदारों से।

(क) बीज ३० प्रति-सैकड़ा दर।

(ख) सवाई। बीज के लिये उधार लेने को कहते हैं। ब्याज की दर २५%, ३०%, ३५% तक है।

(ग) द्विगुण (यह बंगाल में व्यवहार में लाया जाता है)। अर्थात् फ़सल में दूना नाज दिया जाता है। दर १००%

नोट—बीज के लिये उधार पर इतना अधिक ब्याज लगाने के ये कारण हैं—

(१) नाज उत्तम होता है,

(२) बीज के नाज का भाव भी तेज़ होता है,

(३) बीज के ऊपर व्यय किए गए धन का थोड़ा होना,

(४) अच्छी उपज की आशा।

२. रुपयों का ऋण—बहुधा साहूकारों, महाजनों, भारतीय और विलायती बाहर माल भेजनेवाली कंपनियों से लिया जाता है।

(क) ज़बानी उधार १०) रु० तक। ब्याज -), =), ।) प्रति-रुपया, प्रति-मास।

(ख) काग़ज़ की चिट पर लिखकर रैयत लेती है।

(ग) साधारण उधार, ज़मानत के साथ। दर १) से ३=) प्रति-सैकड़ा, प्रति-मास।

(घ) साहूकार की बही, अथवा दूसरी हिसाब की किताबों, पर हस्ताक्षर करके। दर २५% प्रति-मास।

(ङ) चीज़ गिरवीं रखकर।

(च) धरोहर—जब किसान लगान देने के लिये रुपए उधार लेता है। ब्याज कुछ नहीं लिया जाता। जब उधार १००) रु० का होता है, तो महाजन १० बीघे भूमि की ५ वर्ष की उपज ले लेता है। यदि इतने समय में धरोहर न छुड़ा ली, तो धरोहर को महाजन सदा के लिये अपने अधिकार में कर लेता है।

गिरवीं—पूर्वी बंगाल में इस प्रकार का व्यवहार प्रच-लित है। जब महाजन से २०) रु० उधार लिए जाते हैं, तो किसान को ६ या ७ वर्ष तक अपने खेत की उपज का आधा भाग ब्याज के रूप में महाजन को देना पड़ता है। उस समय के बीतने पर ब्याज का देना बंद कर दिया जाता है, और क़िस्त के रूप में किसान अपने क़र्ज़े को चुकाता है।

(क) पशुओं का उधार, जिसको अधिया कहते

हैं । किसान अपने पशुओं के बछड़े महाजन को सौंप देता है ।

(ख) मुफ़स्सिल बैंकिंग—साहूकार अपने मुनीमों और दल्लालों द्वारा ग्रामों में बैंकिंग का व्यवहार करते हैं, और हुंडियों द्वारा किसानों को क़र्ज़ दिया जाता है ।

ऋणी किसानों की अवस्था को दिखाते हुए, कोआपरेटिव-क्रेडिट-सोसाइटी-बिल का समर्थन करते हुए, हमारे माननीय महात्मा गोखले ने एक बार कहा था कि हमारे देश में तीन प्रकार के किसान हैं—(१) वे लोग, जो महाजन के फंदे में अभी नहीं फँसे, और ऋण से रहित हैं। ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही थोड़ी है (मेरे विचार में ऐसे किसानों की संख्या संभवतः १००० में ३ हो सकती है)। (२) वे लोग, जो क़र्ज़ में फँसे हुए अवश्य हैं, परंतु जिनकी दशा अभी संतोष-जनक है। इस श्रेणी में बहुत-से किसान हैं। (३) वे लोग, जो क़र्ज़ में इतने फँसे हुए हैं कि उनके ऋण को चुकाना असंभव-सा ही है। ऐसे लोगों की दशा बड़ी ही असंतोष-जनक है । इस श्रेणी के लोग भारत में बहुत अधिक हैं।

यह दशा तो उधार की है। अब दूसरी बातों को देखिए ; जिनके कारण हमारे किसान दिन-दिन दरिद्र होते जाते हैं। दरिद्रता के कारण हमें तीन भागों में बाँटने पड़ेंगे—(१) सामाजिक व्यवहार, (२) धार्मिक व्यवहार, (३) प्रति-दिन का व्यवहार।

हमारे समाज में कुछ ऐसी रीतियाँ व्यवहार में आ गई हैं, जिनके कारण हमारे किसानों को नाना प्रकार से क़र्ज़ लेना पड़ता है। मैंने देखा है, घर में किसी वृद्ध की मृत्यु पर, अथवा किसी विवाह के अवसर पर, कभी-कभी इन किसानों को इतना व्यय करना पड़ता है कि उस क़र्ज़ को वे अपने जीवन में बड़ी कठिनता से चुका पाते हैं। और, जब कभी नहीं चुका पाते, तो उनके पुत्रों पर एक प्रकार से दूना और तिगुना क़र्ज़ का बोझ हो जाता है। फिर धर्म के नाम पर इन किसानों को जो व्यय करना पड़ता है, उसकी चर्चा लगभग एक शताब्दी से भारत में होती चली आ रही है । नए प्रकार के समाज और सोसाइटियाँ इस त्रुटि को दूर करने के लिये स्थापित हुईं, और होती चली जा रही हैं। अन्य-मतावलंबी भी अवसर पाकर सुधार की चेतावनी देते हैं। परंतु देश पर बहुत ही धीमा प्रभाव पड़ता है । दूसरे लोग इसका कुछ भी उपाय बतावें, परंतु मेरे विचार में सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था को सुधारने के लिये सबसे अधिक आवश्यकता हमारे किसानों को शिक्षित बनाने की है । जब तक देश में शिक्षितों की संख्या नहीं बढ़ेगी, और शिक्षित लोग अधिक संख्या में ग्राम-निवासी नहीं होंगे, तब तक ये कुरीतियाँ नहीं सुधरेंगी। डॉ० हिराल्डमैन ने और इसी प्रकार दूसरे महानुभावों ने हमारे ग्रामों का निरीक्षण करने पर जो त्रुटि पाई है, वह यही—शिक्षित-संख्या की ग्रामों में कमी—है । तीसरे प्रकार का व्यय प्रति-दिन के व्यवहार में होता है। इस प्रकार का व्यय सबसे अधिक है । इस प्रकार के व्यय में जो धन जाता है, वह ऐसे लोगों के पास जाता है, जिनसे राष्ट्रीय धन के बढ़ने की कोई आशा नहीं की जा सकती । इस प्रकार के व्यय इस प्रकार हैं—

१. ज़मींदारों को नज़राना । अवध के ताल्लुक़ेदारों में नज़राना लेने की पुरानी परिपाटी चली आती है। शोक की बात तो यह है कि इस नज़राने को पूर्ण-रूप से ग़ैर क़ानूनी ठहराकर अभी तक रोक नहीं की गई।

२. ज़मींदारों को भी प्रांतिक अधिकारियों के लिये डाली, नज़राने, भेंटें आदि देने तथा वित्त के बाहर उनकी ख़ातिरदारी करने में अधिक ख़र्च करना पड़ता है।

३. कुछ सरकारी नौकरों के अत्याचार से बचने के लिये घूस और चपरासियों के हक़ देने का अभी तक देश में प्रचलित होना । किसी-किसी पुलीसमैन और दारोग़ा का अत्याचार और उसकी शांति में किसान का ख़र्च।

४. गृह-देवीजी का अच्छी फ़सल में गहने आदि बनवाने का तक़ाज़ा।

इन सब ख़राबियों का प्रतिकार देश में शिक्षा फैलाने से ही हो सकता है। उसी से लोग अपने-अपने अधिकारों और कर्तव्यों को जानेंगे। परंतु साथ-ही-साथ सरकारी कर्मचारियों की दशा को सुधारने के लिये स्वयं या सरकारी सहायता से कुछ उपाय करने की भी अत्यंत आवश्यकता है।

हमारे किसान तीन भागों में बँटे हुए हैं—

१. मौरूसी (occupancy); अर्थात् वे लोग, जिनका लगान एक बंदोबस्त से दूसरे बंदोबस्त (Settlement) तक नियत रहता है।

२. ग़ैर-मौरूसी (Non-occupancy); इन किसानों को ज़मींदार इच्छानुसार जब चाहे, निकाल सकता है। लगान को भी ज़मींदार ही घटा-बढ़ा सकता है।

३. कृषक मज़दूर।

(क) वे किसान, जो मौरूसी अधिकार रखनेवाले किसानों से कुछ दिनों के लिये भूमि किराए पर ले लेते हैं। इस प्रकार के किसानों को सबटिनेंट (sub-tenant) कहते हैं।

(ख) वे किसान, जिनके पास भूमि नहीं होती, और जो किसी के साथ खेती करके बटाई पर नियत भाग ले लेते हैं। ये लोग साझेदार के लिये खेत पर सब काम करते हैं।

तीन प्रकार के किसानों में से पहली तरह के किसानों की दशा स्वाभाविक ही अच्छी है। दूसरे दो प्रकार के किसान लगान बढ़ने के भय से, अथवा खेत पर से थोड़े दिनों में अधिकार जाते रहने के भय से, पूर्ण उत्साह के साथ खेत में रुपए लगाकर उन्हें उपजाऊ नहीं बनाते। इस दशा में यदि सब प्रकार के किसानों को मौरूसी अधिकार दे दिए जायँ, तो वे अपना तन, मन और धन खेतों के ऊपर न्योछावर करके उन्हें उपजाऊ बनावेंगे।

१. हमारे खेत बहुत ही छोटे-छोटे भागों में बँटे हुए हैं। हमारे खेतों के वर्तमान विभाग को अर्थशास्त्रज्ञों ने खंड-खंड भाव (Moralization or Fragmentation) के नाम से पुकारा है। वास्तव में खेतों की दशा भी यही है। यदि खेतों की औसत (average) ली जाय, तो प्रति-खेत २ बीघे से अधिक नहीं पड़ती। ऐसी दशा में उपज कैसे अच्छी हो सकती है? साधारण लाभ प्राप्त करने के लिये कम-से-कम ८ बीघे खेत होना चाहिए। खेती की इस दुर्दशा का कारण हमारी हिंदू-परिपाटी ही है। जब पिता मरता है, तब खेत पुत्रों में बँट जाता है, और फिर खंड-खंड भाव का सिद्धांत सिद्ध हो जाता है। इसके लिये हिंदू-विद्वानों के ध्यान देने की आवश्यकता है। वे या तो इस परिपाटी को धार्मिक व्यवस्था से अनुचित ठहरावें, या और कोई उपाय करें। मेरे विचार में, यदि सरकार इसमें हस्तक्षेप करे, तो बहुत अच्छा हो। बड़ौदा-सरकार के इस कार्य में हस्तक्षेप करने में सफलता प्राप्त होती प्रतीत होती है। अब भारत-सरकार को उचित है कि वह इस बात में अपनी शक्ति का प्रयोग करे। दूसरा प्रतिकार, मेरे विचार में, हमारे किसानों और ग्राम-पंचायतों के हाथ में है। जब ऐसी दशा होने को हो, तब अन्य भाइयों को अपने बड़े भाई के साथ मिलकर खेत को टुकड़े-टुकड़े होने से बचाना चाहिए, अथवा छोटे भाइयों को दूसरे प्रकार की संपत्ति से संतुष्ट कर देना चाहिए।

२. एक और बुराई हमारे खेतों में है। हमारे खेत सारे गाँव में बिखरे हुए हैं, और प्रत्येक किसान के पास इन बिखरे हुए खेतों का अधिकार है। बिखरेपन को दूर करने के लिये ग्राम-वासियों को आपस में फ़ैसला करना चाहिए। ज़मींदार को इस प्रकार के कार्य की समिति का मुखिया बनाना चाहिए। सरकार को चाहिए कि यदि गाँव-वासी आपस में फ़ैसला कर लें, तो उनके उस फ़ैसले में वह हस्तक्षेप न करे। सरकार को विशेषकर मौरूसी अधिकार रखनेवालों के फ़ैसले में नहीं पड़ना चाहिए। यदि ग्राम-वासी इस कार्य को पूर्ण करने में असमर्थ हों, तो सरकार को उचित है कि वह देश के माननीय विद्वानों की सहायता से कार्य-क्रम को सफल बनावे।

३. गाँवों में, खाद देने में, गाँव के मैले, पशुओं के मैले आदि का ही अधिक प्रयोग किया जाता है। किसान लोग पशुओं के मूत्रादि का प्रयोग बहुत कम करते हैं। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि किसान लोग नहीं जानते कि किस प्रकार से मूत्र का प्रयोग किया जाय। प्रो० स्लेटर दक्षिण के कुछ गाँवों का निरीक्षण करते हुए लिखते हैं—'ग्रामीण प्रजा मूत्र का प्रयोग करना ही नहीं जानती। हरी खाद का प्रयोग भी गाँवों में बहुत कम होता है। केमिकल (Chemical Manures) खाद का प्रयोग तो प्रायः किया ही नहीं जाता। इसके कई कारण हैं—(१) केमिकल खाद ज़्यादा क़ीमती होता है। (२) इसका प्रयोग गाँवों में ज्ञात ही नहीं है। (३) मार्गों के ख़राब होने के कारण इस प्रकार की खाद ले जाने में असुविधा भी उस खाद के ग्रामों में प्रचलित न होने का कारण है।'

४. बहुत-से लोगों का विचार है कि पश्चिम की मशीनों और कलों से खेतों में काम लेना चाहिए। परंतु हमारे किसानों की दरिद्रता के कारण इस प्रकार की बात करना एक अच्छा स्वप्न का देखना-भर है। हमें तो उनकी दशा को उत्तम बनाना है। हाँ, यह संभव हो सकता है कि भारत में बने हुए हलों को, जिन्हें भारतीय खेती की अवस्था देखकर बनाया गया है, काम में लाना उचित होगा। परंतु ये हल भी आधुनिक दशा को

देखते हुए अधिक क़ीमती हैं। तथापि यदि ग्राम-पंचायत. अथवा ग्राम-खेती-मंडल स्थापित करके, उनके द्वारा इन हलों को मँगवाकर काम में लाया जाय, तो अत्युत्तम होगा। मगर इन हलों के लिये उत्तम बैलों की भी तो आवश्यकता है। और, उनकी हमारे वर्तमान ग्रामों में बहुत कमी है। यह उद्योग पशुओं की दशा को सुधारे बिना पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। इसके लिये हमें वृंदावन की हिंदू-महासभा के प्रस्ताव को, जहाँ तक शीघ्र संभव हो, गाँवों तक पहुँचाकर काम शुरू करना चाहिए। उक्त प्रस्ताव ने गाँवों में कुछ भूमि चरागाहों को बनाने के लिये आवश्यकता बतलाई है। वास्तव में है भी ऐसा ही। यदि ग्राम-कृषक-मंडल इस बात को अपने हाथ में ले लें, तो दो कार्य सिद्ध हो सकते हैं—(१) गऊ आदि पशुओं का उत्तम रीति से पालन, और (२) दूध आदि का सुलभ होना।

ग्रामों में खेती की दशा सुधारने के लिये इन बातों की बड़ी आवश्यकता है—(१) आदर्श खेतों को स्थापित करना, (२) पाठशालाओं के साथ उत्तम खेतों का होना, और किसान-विद्यार्थियों को वहाँ उत्तम शिक्षा देना, (३) व्याख्यानों का होना, (४) विज्ञापन, ट्रैक्ट और पुस्तकें मुफ़्त बाँटना, (५) छोटे-छोटे कृषक-पुस्तकालय और क्षेत्र-दर्शन-गृहों को खोलना, (६) मैजिक लालटेनों द्वारा व्याख्यान, (७) ग्राम-मंडल की ओर से कुछ चुने हुए विद्यार्थियों का कृषकों की बस्तियों, प्रदर्शिनियों और कृषक-संस्थाओं में जाकर उनका अवलोकन और जिज्ञासा करना, और फिर अपने अनुभवों का प्रयोग खेतों में दिखाकर कार्यतः ग्राम-वासियों को शिक्षा देना। इन सब कार्यों के लिये सरकार, कांग्रेस तथा प्रतिनिधि-सभाओं और मंडलों का सहायता के लिये आगे बढ़ना परम आवश्यक है।

किसानों को अपनी दशा स्वयं सुधारनी चाहिए। जहाँ उन्होंने अपने पैरों पर खड़े होना शुरू किया, वहाँ दूसरे लोग सहायता के लिये आप ही आ जायँगे। किसानों को चाहिए कि वे अपने छोटे-छोटे मंडल, मंडलियाँ, पंचायतें और संघ बनावें। इन मंडलों को भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य सौंपने चाहिए ; यथा—उधार-मंडल (Banking-Mandals)। सरकार को ऐसे मंडलों और संस्थाओं को भरसक सहायता पहुँचानी चाहिए और उनकी सुरक्षा का भी वचन देना चाहिए। आधुनिक क्रेडिट-कोआपरेटिव-सोसाइटियाँ (Credit Co-operative Societies) भी इसी आधार पर किसानों में मितव्ययता और व्यापारिक जीवन का संचार करने के लिये स्थापित हुई हैं। परंतु उनकी सफलता एक असमंजस की दशा में पड़ी हुई है। इसका कारण, मेरे विचार में, यह है कि उनके प्रवर्तकों ने, Suggestive value (अर्थात् जिस कक्षा के मनुष्यों के लिये वे बनाई गई हैं, उनके मस्तिष्क, हृदय और भाषा) का ध्यान कम रक्खा है। मनोविज्ञान के नियम के अनुसार इन संस्थाओं के लिये स्वदेशी नाम अच्छा होता। तब विज्ञापन का कार्य स्वयं इनके नाम-मात्र से ही हो सकता। मेरे विचार में आधुनिक बड़ी-बड़ी संस्थाओं के असफल होने का कारण ग्राम्य-जनता को उनकी मातृ-भाषा द्वारा निमंत्रण न देना और उनके हृदयों में संस्था के मंतव्यों को न जमाना ही है। इसलिये हमको चाहिए कि हम अँगरेज़ी नामों के स्थान में मंडल, संघ, एका, समिति, पंचायत आदि नाम रक्खें, तो अच्छा होगा।

अब किसानों की दशा सुधारने का प्रश्न रहा। इस कार्य को उपर्युक्त संस्थाएँ यदि अपने हाथ में ले लें, तो अच्छा होगा। उधार-मंडल उनकी धन से सहायता करें। वितरण-संघ गाँवों में बनी हुई वस्तुएँ नगरों में पहुँचावें, और नगरों की बनी वस्तुएँ ग्रामों में मँगवावें। इसी प्रकार शिक्षक-समिति आदि बनाना अँगरेज़ी नामों की संस्थाएँ खोलने से उत्तमतर होगा।

किसान लोग चार महीने बेकार रहा करते हैं। इस बीच में वे बड़ा काम कर सकते हैं। उनको चाहिए कि वे इस अमूल्य समय को यों हाथ से न जाने दें, और इसको अपनी आर्थिक दशा सुधारने में लगावें। ग्रामों में नाना प्रकार की वस्तुएँ इन किसानों द्वारा बन सकती हैं—

(१) खेतों में तरकारी आदि उत्पन्न करना।

(२) रस्सियाँ बनाना।

(३) टोकरियाँ और सूप बनाना।

(४) चरख़ा कातना और कपड़ा बुनना।

(५) तंबाकू कूटना, बीड़ी बनाना और उन्हें नगरों में भेजना।

(६) मिट्टी, सिरकी तथा खजूर आदि के पत्तों के खिलौने बनाना।

(७) कपड़े के डोल और जाल बनाना।

(८) चटाइयाँ, फ़र्श और चिकें बनाना।

(९) मोढ़े, कुरसी और मेज़ें, बाँस की खपच्ची और सेंठों से, बनाना।

किसान स्वयं बहुत-से काम निकाल सकते हैं; उनको केवल उत्तम शिक्षा द्वारा मार्ग दिखला देने-भर की आवश्यकता है। साथ ही उनके हृदय से नाना प्रकार के श्रम और मज़दूरी के प्रति झूठा अपमान का भाव निकाल बाहर करना भी ज़रूरी है। मज़दूरी और काम-धंधे को उच्च श्रेणी का जताकर उसका आदर करना सिखाना चाहिए। उनको भगवान् कृष्णचंद्र के कर्मयोग का संदेशा सुनाना चाहिए; भटके हुओं को सरल और सीधा मार्ग दिखाना चाहिए।

किसान-स्त्रियों और ग्रामीण-देवियों के लिये भी बहुत-से काम बतलाए जा सकते हैं। मैंने स्वयं स्त्रियों को परोए (Water-bags) ढोते और कुएँ से पानी निकालकर खेतों में देते देखा है। खेत का काटना तो उनके लिये साधारण काम है। चाणक्य महाराज ने अपनी नीति में स्त्रियों के बल को पुरुषों के बल से कई गुना बतलाया है। साहस तो निःसंदेह स्त्रियों में पुरुषों से चौगुना होता ही है। यदि किसी को इसकी परीक्षा करनी हो, तो राजस्थान की महिलाओं अथवा आधुनिक असहयोगिनी वीर-माताओं को देखे। हमें अपनी आर्थिक दशा सुधारना है। बल और साहस तो अर्थ के अनुचर हैं। कृषक-महिलाओं को उचित है कि वे अपने पति, पुत्र, पिता और भाई आदि के कार्यों में सहायता दें। मेरे विचार में उन कार्यों के अतिरिक्त, जिन्हें वे इस समय करती हैं, निम्न-लिखित और भी काम किए जा सकते हैं—

(१) कपास ओटकर चरख़ियों से रुई निकालना।

(२) रुई कातना और कपड़े का बुनना।

(३) कपड़े काटना और सीना।

नोट—आजकल हमारी महिलाएँ यदि खादी के कुर्ते, क़मीज़ें तथा टोपियाँ बनाकर नगरों को भेजने लगें, तो बड़ा लाभ हो। गंजी और शलूकों (underwear) की तो प्रत्येक समय नगरों में माँग रहती है।

(४) गेहूँ और जौ के डंठल तथा खजूर की पत्तियों से टोकरियाँ, मेज़ों के नीचे रक्खे जानेवाले वेस्ट-पेपर-बास्केट और टोपियाँ आदि बनाना।

(५) जाल, जालीदार बोरियाँ और थैलियाँ आदि बनाना।

(७) रेह से कपड़े धोने का साबुन बनाना।

(८) विविध प्रकार के भोजन और खाद्य पदार्थ बनाना।

अन्य स्त्रियाँ भी इसी प्रकार अपने काम स्वयं चुनकर उन्हें कर सकती हैं। शिक्षित महिलाओं के लिये ग्रामों में और भी काम हैं—ग्राम की लड़कियों को पढ़ाना, उनसे रूमाल आदि कढ़वाना। इससे वे भी कुछ कमा सकती हैं। स्त्रियों में वैद्यक का काम करना भी उत्तम होगा। पर यह काम ज़मींदार की स्त्रियाँ, अथवा ग्राम के साहूकार, महाजन आदि अच्छे घरानों की देवियाँ ही कर सकती हैं।

साहूकारों, महाजनों, ग्रामीण विद्वानों और धनवानों को चाहिए कि वे उपज उधार-संघ और शुद्ध घृत आदि का व्यापार कराने के लिये संचारक-स्थान खोलें, ग्राम के कच्चे माल को व्यापार के तैयार माल का रूप देकर नगरों को भेजें, आटे आदि की चक्कियाँ खोलें, ग्रामीण महिलाओं की तैयार की हुई वस्तुएँ नगरों में पहुँचावें।

धन-वृद्धि के लिये इसी प्रकार के दूसरे और कामों को भी हमारे धनी महाजन और साहूकार लोग कर सकते हैं। उनसे केवल यही प्रार्थना है कि वे किसानों को अपना दास न बनाए रक्खें; उनसे अन्याय-पूर्वक व्याज न लें। उनको तो चाहिए कि वे अपने ग़रीब, दरिद्र किसान-भाइयों को दरिद्रता से उबरने में सहायता दें। पाश्चात्य देशों की तरह कैपिटल और लेबर के समान भारत में भी धन और दरिद्रता के युद्ध को निमंत्रण न दें। यदि ऐसा न होगा, तो 'बुभुक्षितः किं न करोति पापं' की कहावत अवश्य चरितार्थ होगी। संभव है, धनिक निर्धन बन जायँ, और यह झगड़ा सदा के लिये घर कर ले।

एक बात सबसे अधिक आवश्यक है, और वह है सरकार, सरकारी कर्मचारी तथा राष्ट्र की दृष्टि को शिक्षा की ओर आकृष्ट करना। शिक्षा चाहे असहयोग के प्रोग्राम से हो, चाहे सहयोग के प्रोग्राम से, इसकी कुछ चिंता नहीं। शिक्षा को अवश्य ग्रामों में फैलाना है। जब तक शिक्षा ग्रामों में नहीं फैलेगी, तब तक सब सुधार स्वप्न-मात्र ही हैं।

सरकार और राष्ट्र को उचित है कि ग्राम-वासियों को शिक्षित करें; नहीं तो मेरा विश्वास है कि कोई बड़ी आपत्ति का आगमन होगा।

इस प्रकार देश-वासियों को पूर्ण-रूप से शिक्षित कर, उनको एक बड़ी एकता की लड़ी में बाँधकर, उनके खेतों का उपर्युक्त रीति से (अथवा जो रीति उत्तम हो, उससे) प्रबंध कर, धन को नियमित-रूप से संचित कर, श्रमजीवियों और मज़दूरों को नियम-बद्ध कर, अमेरिका के खेतों के समान अपने खेतों को बनाना हमारा कर्तव्य है। हम परिमित खेतों में भी उत्तम उपज पैदा करें। फिर चाहे अधिक उपज की प्रणाली को भी स्वीकार कर लिया जाय, तो कोई हानि नहीं होगी। हमारा भारत फिर गौरव को प्राप्त करेगा। किसान प्रसन्न होंगे। समस्त देश आर्थिक स्वतंत्रता को पा लेगा। और, जहाँ आर्थिक स्वतंत्रता देश को प्राप्त हुई, वहाँ हमारे देश में दूध और घृत की नदियाँ बहने लगेंगी। तब राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करना केवल सरल ही न होगा, राष्ट्रीय स्वतंत्रता स्वयं हाथ बाँधे हुए हमारे पास आवेगी। इसलिये भगवान् कृष्ण के उपदेशानुसार कर्मयोगी बनना चाहिए। कृषकों का उद्धार करो। शिक्षित-समाज के लोगो, इससे बढ़कर दूसरा अपना गौरव मत समझो। तभी कृषक भारत और व्यापारी भारत का उद्धार होगा।

जयदेव गुप्त

सीता

१

सुंदर भोजन, वस्त्र, राज-सुख जिसने छोड़ा,
सास-ससुर-परिवार-प्रेम का बंधन तोड़ा,
हठ कर पति के संग विपिन में रहना चाहा,
सहकर कष्ट कठोर पतिव्रत-धर्म निबाहा,

२

भारत के कवि कीर्ति न जिसकी कह थकते हैं,
उस देवी को भूल कभी क्या हम सकते हैं?
जब तक हिंदू-जाति धरातल पर जीवित है,
तब तक उसकी कीर्ति-कथा सादर संचित है।

३

जनक-सुता सुंदरी, शुभा, साध्वी, सुकुमारी,
सती, सुशीला, सदाचारिणी, विदुषी नारी,
राम-प्रिया पति-भक्ति-भूषिता थीं वह सीता;
अजर-अमर हैं अभी, समय यद्यपि बहु बीता।

४

दशरथ ने युवराज राम को करना चाहा,
राज्य-भार अधिकार उन्हीं पर धरना चाहा।
सुनकर प्रजा-समेत राज-कुल ने सुख माना;
पर कैकेयी रूठ गई, उसने हठ ठाना।

५

कहा भूप ने—"प्रिये! माँग, सब कुछ मैं दूँगा;
करता हूँ प्रण अटल, कहेगी, वही करूँगा।"
पति को वश में जान कहा उसने—"ये वर दो;
सच्चे हो, तो सफल-मनोरथ मुझको कर दो।

६

भरत बनें युवराज, राम हों कानन-वासी।"
सुनते ही गिर पड़े भूप छा गई उदासी।
पितु के प्रण की बात राम ने जब सुन पाई,
राज छोड़ वन चले राम-लक्ष्मण दो भाई।

७

होकर, हाय, अचेत गिरीं कौशल्या माता;
बढ़ा हर्ष में शोक, वाम हो गया विधाता।
सुना शोक-संवाद विकल सीता उठ धाईं;
करती हुईं विलाप राम के सम्मुख आईं।

८

"वन के कष्ट सहर्ष तुम्हारे साथ सहूँगी;
नाथ! तुम्हारे विना स्वर्ग में भी न रहूँगी।
साथ ले चलो नाथ! नहीं जीवित न रहूँगी;
कैसे विषम वियोग दुसह दुख हाय! सहूँगी!

९

सुख से प्रिय के साथ बसूँगी निर्भय वन में;
कुटिया का आनंद कहाँ है राज-भवन में?
निष्ठुर बनो न आर्य-पुत्र, करुणा उर धारो;
दासी को ले साथ, नाथ, वन ओर सिधारो।"

१०

सुन सीता के वचन राम श्रद्धा में साने,
उमड़ा प्रेम-प्रवाह, लगे उनको समझाने।

दुर्गम वन का भूरि भयानक दृश्य दिखाया;
पशु, निशिचर, गिरि, नदी आदि से बहुत डराया।

११

प्रियतम-प्रेम-सरोज-भ्रमर सीता के मन में,
कंटक-भय ने नहीं विषाद बढ़ाया वन में।
हठ कर पति के संग रहीं वह वन-वन फिरती;
राक्षस द्वारा कभी विषम संकट में घिरती।

१२

खाती केवल कंद-मूल, भू पर सोती थीं;
वल्कल-वस्त्र लपेट न मन-मलिना होती थीं।
वन के दारुण कष्ट धैर्य धरकर सहती थीं;
पति-सेवा में मग्न, प्रसन्न सदा रहती थीं।

१३

पंचवटी में पहुँच उन्होंने कुटी बनाई;
सीतादेवी-सहित बसे वे दोनों भाई।

× × ×

धोखा देकर उन्हें चोर लंकेश अभागा,
सूनी पाकर कुटी मैथिली को ले भागा।

१४

विनती करने लगा; कहा—"बन मेरी रानी।"
पर सीता ने झिड़क कहा—"चुप रह अज्ञानी!
पापी! मेरे साथ मृत्यु आई है तेरी;
अब तू अपने सर्वनाश में समझ न देरी।

१५

चोर, नीच, निर्लज्ज, चुराकर लाया मुझको;
इसका दंड कठोर अवश्य मिलेगा तुझको।
रहा मानना दूर, बात सुन भी न सकूँगी;
प्राणेश्वर से रहित कभी मैं जी न सकूँगी।"

१६

सागर में पुल बाँध, उतरकर डाला डेरा;
वानर-रीछ-समेत पहुँच लंका को घेरा।
बेटे-बंधु-समेत दुष्ट रावण को मारा;
मिला अलौकिक सती जानकी को छुटकारा।

१७

वन-निवास की अवधि वर्ष चौदह जब बीते,
कहा राम ने—"चलो अवध हे लक्ष्मण, सीते!"
सीता, लक्ष्मण, राम अयोध्या में फिर आए;
मिलकर जननी, बंधु, मित्र से अति सुख पाए।

१८

पड़ रावण के हाथ सती का धर्म बचाया;
निष्कलंक सच्चरित जानकी ने दिखलाया।
दृढ़ पतिव्रता भारतीय ललना हैं जैसी,
पृथ्वी-तल पर किसी देश में कहीं न वैसी।

रामनरेश त्रिपाठी

जनमेजय या नाग-यज्ञ

नाटक

(गत संख्या से आगे)

द्वितीय अंक

तीसरा दृश्य

(स्थान—कानन में एक कुटीर)

(तक्षक, वेद, काश्यप, सरमा और कुछ नाग और ब्राह्मण बैठे हैं)

तक्षक—मैं अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर हूँ। पौरव का नाश होने पर परिषद् की सत्ता आप लोगों के हाथ में रहेगी, और हम लोग क्षत्रिय होकर आप लोगों के स्वाध्याय और शांति की रक्षा करेंगे। हमारा नियंत्रण ब्राह्मणों पर कुछ भी न रहेगा।

काश्यप—हाँ जी, सो तो ठीक ही है।

वेद—किंतु शक्ति पा जाने पर तुम भी अत्याचारी न हो जाओगे, इसका प्रमाण क्या है?

ब्राह्मण—सुनो जी, हम लोग आरण्यक, वानप्रस्थ शांत तपोधन ब्राह्मण हैं; अत्याचार से सुरक्षित रहने के लिये एक शुद्ध राजसत्ता चाहते हैं। किसी से हमारा द्वेष नहीं है; क्योंकि हम लोग तो सबको बराबर समझते हैं।

सरमा—अपने को अलग करके बचे हुओं पर यह दया दिखाई जाती है, किंतु अपने को सर्वोच्च समझते हैं!

काश्यप—क्यों सरमा? क्या इसमें भी कोई संदेह है?

सरमा—नहीं, आर्य काश्यप! इसमें क्या संदेह है? आप विश्वास-घात करें, आप षड्यंत्र करें, आप और भी ऐसे-ऐसे उत्तम काम करें, विप्लव करें; किंतु सर्वोच्च होने में कौन संदेह कर सकता है?

तक्षक—क्या! सरमा! तुम भी ऐसा कहती हो? अपनी ही अवस्था पर विचार कर लो। जो न्याय का ऐसा उदाहरण दिखला सकता है, वह राज-तंत्र क्या बदलने की वस्तु नहीं है?

सरमा—फिर भी उसका स्थानापन्न एक दस्यु-दल को बनाना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। सोचो ब्राह्मण-देवता, तुम आर्यों के शिरःस्थानीय हो, क्या अब अनार्यों की भिक्षा प्यारी लगेगी? धर्म का ढोंग करके एक निर्दोष आर्य-सम्राट् को अपने हाथ में करके, उस पर पतित होने की व्यवस्था देना, जिसमें वह राज्य-च्युत कर दिया जाय, और वह भी यहीं तक नहीं, उसके कुल-भर को इस आर्य-पद से वंचित कर देने की कुमंत्रणा कैसी अच्छी होगी?

काश्यप—स्वेच्छाचारिणी! जो अनार्यों की दासी हो चुकी है, जो अपनी मर्यादा को बहा चुकी है, वह भी ब्राह्मणों के कर्तव्य की आलोचना करेगी?

सरमा—तब क्यों मुझे बुलाया? क्या तुम्हीं ने उस राज-सभा में मुझे अपमानित नहीं किया था? आज फिर? ब्राह्मण! सहन की भी सीमा होती है, उस आत्म-सम्मान की प्रवृत्ति को तुम्हारे बनाए हुए द्विज-महत्ता के बंधन नहीं रोक सकेंगे। मैं यादवी हूँ, अपमान का बदला षड्यंत्र करके नहीं लूँगी। मेरे पुत्र की बाहुओं में बल होगा, तो वह स्वयं प्रतिशोध ले लेगा। मैं जाती हूँ, स्मरण रखना। (वेग से जाती है)

काश्यप—नागराज, इसे अभी मार डालो, नहीं तो यह सारा भंडा फोड़ती है! (तक्षक दौड़कर उसे पकड़ लाता है)

(दूसरी ओर से मनसा का प्रवेश)

मनसा—क्या करते हो नागराज! स्त्रियों पर यह अत्याचार! छोड़ो उसे! पहले अपनी रक्षा करो!

तक्षक—क्या, अपनी रक्षा!

मनसा—हाँ, हाँ, अपनी रक्षा! जनमेजय की सेना तक्षशिला में फिर पहुँच गई है। भाई वासुकि नाग-सेना एकत्र करके यथाशक्ति रोक रहे हैं। आर्यों का यह अभियान बड़ा भयानक है। तुम लोगों से भी बढ़कर बर्बरता का उदाहरण वे दिखा रहे हैं। जो बंदी किए जाते हैं, वे अग्नि-कुंड में जला दिए जाते हैं। गाँव-के-गाँव दावाग्नि से दग्ध हो रहे हैं। नाग-जाति बिना रक्षक के भेड़ों के समान भाग रही है। आर्यों की भीषण प्रतिहिंसा जग उठी है। जनमेजय कहता है कि पिता को जलाकर मारने का प्रतिफल उसी प्रकार जलाकर इन नागों को दूँगा। हाहाकार मचा हुआ है।

सरमा—क्यों मनसा, अब मैं जाऊँ, या तक्षक के हाथों से प्राण दूँ? यादवी प्राणों की भिक्षा नहीं चाहती है।

मनसा—यदि हो सके, तो इस विपत्ति में कुछ नागों की सहायता करो, सरमा!

सरमा—नहीं मनसा! यह आग तुम्हीं ने भड़का दी है। इसके बुझाने का साधन मेरे पास नहीं है।

काश्यप—और मैं, मैं क्या करूँ! हाय रे! मैं क्या—मैं क्या—

मनसा—तुम, तुम घृणित पशु हो, चुप रहो।

काश्यप—सरमादेवी! मेरा अपराध—हाय रे! क्षमा!

सरमा—मनसा! तुम्हारा वैधव्य देखकर मैं तुमसे विशेष नहीं कह सकती; किंतु मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि मुझसे नागों का कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा। (जाती है)

तक्षक—इधर हम लोग भी तो कार्य-सीमा के भीतर हैं! क्या किया जाय, कैसे पहुँचकर वासुकि की सहायता करूँ?

मनसा—चलो! मैं जानती हूँ, एक पथ है, जो तुम्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देगा।

काश्यप—मैं भी चलूँगा, यहाँ नहीं, पर हाय रे—यहाँ मेरा बड़ा धन है।

मनसा—सावधान! नागराज! ऐसे कृतघ्न का विश्वास न कीजिए। (तक्षक और मनसा जाते हैं)

काश्यप—तब चलो भाइयो, हम भी चलें।

सब ब्राह्मण—तुमने व्यर्थ हम लोगों पर भी एक प्रायश्चित्त चढ़ाया।

काश्यप—क्या मैंने तुम्हें बुलाया था?

१ ब्राह्मण—काश्यप, तुम इतने झूठे हो, यह यदि हम पहले जानते।

२ वेद—तुम इतने नीच हो, यदि हम पहले पहचानते।

३ ब्राह्मण—तुम इतने घृणित हो—

काश्यप—अच्छा बाबा! हम सब कुछ हैं, तुम लोग कुछ नहीं हो। यदि दक्षिणा मिलती, तब तो चंदन-चर्चित-कलेवर होकर मलय-मंथर गति से कुटीर पर पहुँचते, और मेरी ही बड़ाई करते! किंतु व्यवस्था पलट गई।

सब ब्राह्मण—राज-निंदा सुनने का पाप-भागी तुमने सबको बनाया।

काश्यप—और कुछ भी हाथ न आया! चलो!

(सब जाते हैं)

(सरमा गाती हुई आती है)

बरस पड़े अश्रु-जल, हमारा मान प्रवासी हृदय हुआ।
भरी धमनियाँ सरिताओं-सी, रोष इंद्र-धनु उदय हुआ।
लौट न आया निर्दय ऐसा, रूठ रहा कुछ बातों पर ;
था परिहास एक-दो क्षण का, वह रोने का विषय हुआ।
अब पुकारता स्वयं खड़ा उस पार ; बीच में खाई है,
आऊँ क्या मैं भला बता दो, क्या आने का समय हुआ ?
जीवन-भर रोऊँ, क्या चिंता ? वैसी हँसी न फिर करना ;
कहकर आने लगा इधर फिर, क्यों अब ऐसा सदय हुआ ?
बरस पड़े—

नाथ ! अभिमान से मैं अलग हूँ ; किंतु स्नेह से अभिन्न हूँ। रमणी का अनुराग कोमल होने पर भी बड़ा दृढ़ है। वह सहज में छिन्न नहीं होता। एक बार जब वह मरती है, तब उसी के पीछे मिटती भी है। प्राणेश्वर ! इस निर्जन वन में तुम्हारी अप्रत्यक्ष मोहन मूर्ति के चरणों पर अभिमानिनी सरमा लोट रही है। देवता ! तुम संकट में हो, यह सुनकर भला मैं स्थिर रह सकती हूँ ? मेरा अश्रु-जल समुद्र बनकर तुम्हारे और शत्रु के बीच गर्जन करेगा ; मेरी शुभ कामना तुम्हारा वर्म बनकर तुम्हें सुरक्षित रक्खेगी ! तुम्हारे लिये अपमानिता सरमा राज-कुल में दासी बनेगी। (जाती है)

(पट-परिवर्तन)

× × ×

चौथा दृश्य

(स्थान—कानन में अग्नि-शाला)

(शीला और सोमश्रवा)

शीला—क्या गुरुजनों के सामने ही ऐसा प्रश्न करिएगा ?

सोमश्रवा—हाँ, और नहीं तो क्या। पाणिगृहीता भार्या क्या पितृ-कुल में वास करेगी ? तब फिर मेरा अग्नि-होत्र कैसे चलेगा ?

शीला—नागराज की कन्या मणिमाला थोड़े ही दिनों तक और यहाँ रहेगी, और भाई आस्तीक का भी समावर्तन-संस्कार होनेवाला है। अभी वह सहमत नहीं होता है ; किंतु कुछ ही दिनों में स्वीकार कर लेगा। तब तक के लिये मैं क्षमा चाहती हूँ।

सोमश्रवा—फिर मैं भी यहीं रहूँ ?

शीला—क्यों नहीं ? फिर पुरोहित क्यों बने थे ?

सोमश्रवा—प्रमाद-पूर्ण युद्ध-विग्रह का संपर्क मुझे तो नहीं अच्छा लगता। राजा ने मुझे भी तक्षशिला में बुलाया है। किंतु देवि, मैं तो नहीं जाता। वह बीभत्स हत्या-कांड मुझसे नहीं देखा जाता।

शीला—फिर यहाँ श्वशुर-कुल में रहोगे ?

सोमश्रवा—नहीं, अपने पिता के आश्रम में रहूँगा। यहाँ से तो वह समीप ही है। कभी-कभी आकर देख जाया करूँगा।

शीला—किंतु आर्यपुत्र ! हम आरण्यकों को कैसे नगर में रहना भला लगेगा ?

सोमश्रवा—देवी, मुझे तो राजा की पुरोहिती नहीं रुचती। इन्हीं कई दिनों में इंद्रप्रस्थ से जी घबरा उठा है ! मुझे तो राजा के संग ही तक्षशिला जाना पड़ता ; किंतु इस प्रस्तुत युद्ध में कल्याण के लिये कई आथर्वण प्रयोग मुझको करने हैं; जिनके लिये मैं यहाँ आरण्यक-मंडल में चला आया हूँ। राजा का अग्निहोत्र भी मेरे साथ है। अब यहीं कुछ दिनों तक रहूँगा। तुम भी वहीं चलो। सब लोग मिलते-जुलते रहेंगे।

शीला—जब यहीं समीप में रहना है, तब तो ठीक है। सबसे विच्छेद भी न होगा।

(मणिमाला का प्रवेश)

मणिमाला—शीला ! बहन, अरे तू लजाती क्यों है ! यह लो, यह तो बोलती भी नहीं ! वह तेरा परिहास-रसिक स्वभाव, विनोद-पूर्ण व्यवहार क्या भूल गया !

(च्यवन का प्रवेश। सब प्रणाम करते हैं)

च्यवन—आयुष्मन् सोमश्रवा ! तुमने राज-पुरोहित-पद स्वीकार किया, यह बड़ा अच्छा हुआ।

सोमश्रवा—आर्य ! यह सब आप लोगों की कृपा है।

च्यवन—किंतु धर्म में मदांध न होना, उसकी सूक्ष्म गति को अच्छी तरह समझना। वत्स, राज-संपर्क के अवगुण हम ब्राह्मणों को, आरण्यकों को, न सीखने चाहिए; दया, उदारता, शील, आर्जव और सत्य का सदैव अनुसरण करना चाहिए।

सोमश्रवा—आर्य, ऐसा ही होगा।

च्यवन—वत्स ! ऐसा करना कि दुरात्मा काश्यप ने जितनी ब्राह्मणों की विडंबना की है, वह सब धुल जाय, और ब्राह्मणों की सच्ची महत्ता सब पर प्रकट हो जाय ! अध्यात्म-

गुरु जब तक अपना सच्चा स्वरूप नहीं दिखावेंगे, तब तक दूसरे भला कैसे धर्माचरण करेंगे ! इसलिये पूर्ण पवित्रता से व्यवहार करो। त्याग का महत्त्व जो हम ब्राह्मणों का गौरव है, वह सदैव प्रकट रहे। धर्म धन के लिये न आचरित हो। धर्म श्रेय के लिये हो, प्रकृति के कल्याण के लिये हो, और धर्म धर्म के लिये हो । हम तपोधनों का यही धर्म परम धन है। पवित्र धर्म में इन षड्रिपुओं का सम्मेलन न करना । उसकी पवित्रता शरत्कालीन जल-स्रोत-सदृश हो, उसकी उज्ज्वलता शारदीय गगन के नक्षत्रालोक से भी कुछ ऊँची और शीतल हो ।

सोमश्रवा—आर्य ! ऐसा ही होगा । मैंने राजा से प्रतिज्ञा की है कि कोई धर्म-विरुद्ध कार्य होने से मैं पुरोहिती छोड़ दूँगा । तब क्या आज्ञा है ? मैं पिताजी को क्या उत्तर—

च्यवन—(हँसकर) शीला तुम्हारे संग जायगी । अरे उसे तो कोई कष्ट नहीं है, दिन में दो बार वह यहाँ आ-जा सकती है ।

मणिमाला—पिताजी ! तो हम सबको एकत्र करें, सखियाँ इसकी बिदाई करेंगी ।

च्यवन—हाँ पुत्रियो ! तुम अपने मंगलाचार कर लो !

(सब जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

× × ×

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—तक्षशिला की एक घाटी)

(आर्य-सेना अवरोध किए हुए है। चंड भार्गव का प्रवेश)

चंड भार्गव—वीरो, धन्य है ! तुम्हारा साहस और शौर्य प्रशंसनीय । आर्यों के प्रचंड भुज-दंड का प्रताप तुमने दिखला दिया । सम्राट् ने स्कंधावार से तुम लोगों को बधाई दी है। इन पतित और दस्यु अनार्य नागों ने जान लिया कि निष्ठुरता और क्रूरता में भी आर्य-शक्ति पीछे नहीं है। वह मित्रों के साथ जितना स्नेह दिखलाती है, उतना ही शत्रुओं को दंड देना भी जानती है। आज के बंदी कहाँ हैं ?

१ सैनिक—उन्हें अभी लाता हूँ । (जाता है)

(बंदी नागों का प्रवेश)

चंड भार्गव—क्यों, अब तुम्हारी क्या कामना है ? दौरात्म्य छोड़कर, आर्य-साम्राज्य की शांत प्रजा होकर, रहना तुम्हें स्वीकार है कि नहीं ? दस्यु-वृत्ति छोड़कर सभ्य होना तुम्हें स्वीकार है ?

१ नाग—आर्य-सेनापति ! दस्यु कौन है, हम कि तुम ? जो शांति-प्रिय जनता पर अपना विक्रम दिखाने का अभिमान करता है, जो गाँव-के-गाँव जलाकर स्वाहा के मंत्र पढ़कर उसे धर्म समझता है, जो एक की प्रतिहिंसा अनेक से लिया चाहता है, वह दुरात्मा है कि हम ? इसका न्याय कौन करेगा ? ऐसी सभ्यता हम बर्बरों को नहीं स्वीकार है ! वह तुम्हारे लिये उपयुक्त है।

चंड भार्गव—हूँ—इतनी तेजस्विता !

नाग—क्यों ? अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये मैं रण-भूमि में आया हूँ । यदि बंदी हो गया, तो क्या मैं लज्जित हो जाऊँ ? हाँ, दुःख इस बात का अवश्य है कि मैं मर नहीं सका ; नहीं तो तुम्हारी गर्व-भरी आँखें नहीं देखनी पड़तीं ।

चंड भार्गव—तुम जानते हो कि इसका क्या परिणाम होगा ?

नाग—वही, जो औरों का हुआ है ! होगा तुम्हारा विकट तांडव, आर्यों का स्वाहा-गान, और हमारी लीला का अवसान ! नाग मरना जानते हैं। अभी वे हीन-पौरुष नहीं हैं, वे निर्वीर्य नहीं हैं। जिस दिन वे इससे डरेंगे, उसी दिन तो उनका नाश होगा । जो जाति जब तक मरना जानती रहेगी, तभी तक उसको इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार है।

जला है जी, न होगा कुछ, जला दो और इस तन को ;
कभी परतंत्र कर सकते नहीं स्वातंत्र्य-मय मन को ।
न वह दावाग्नि भी, जो है झुलस देती महावन को,
हिला सकती कभी प्रण से, स्ववशता के व्रती जन को ।

चंड भार्गव—मैं अपना कर्तव्य कर चुका । इनकी आहुति दो।

(नागों को ढकेलकर एक ओर करके फूस से घेरकर आग लगा देते हैं । आर्य-सैनिक "स्वाहा" चिल्लाते हैं। पहाड़ी में से एक गुफा का मुँह खुल पड़ता है। तक्षक और मनसा दिखाई देते हैं)

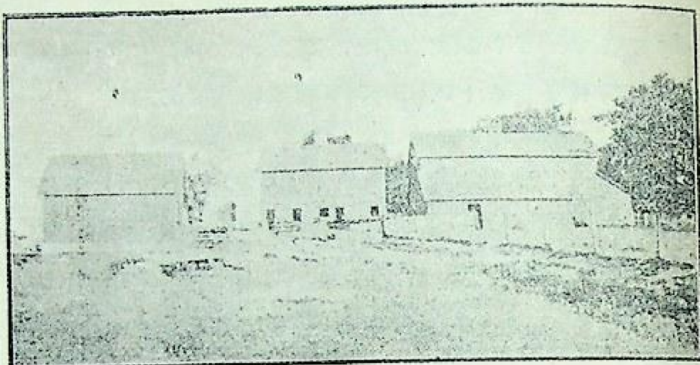
चंड भार्गव—अरे यही तक्षक है। पकड़ो, पकड़ो।

(बढ़ता है)

(बाल खोजें मनसा आकर नंगी तलवार लिए बीच में खड़ी हो जाती है । तक्षक दूसरी ओर निकल जाता है । सब आर्य-सैनिक स्तब्ध रह जाते हैं)

(यवनिका-पतन)

जयशंकर 'प्रसाद'



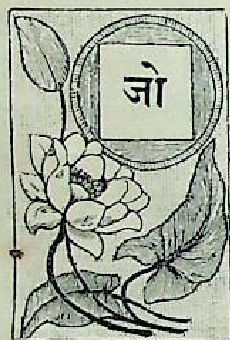
आईओवा का धान्यागार

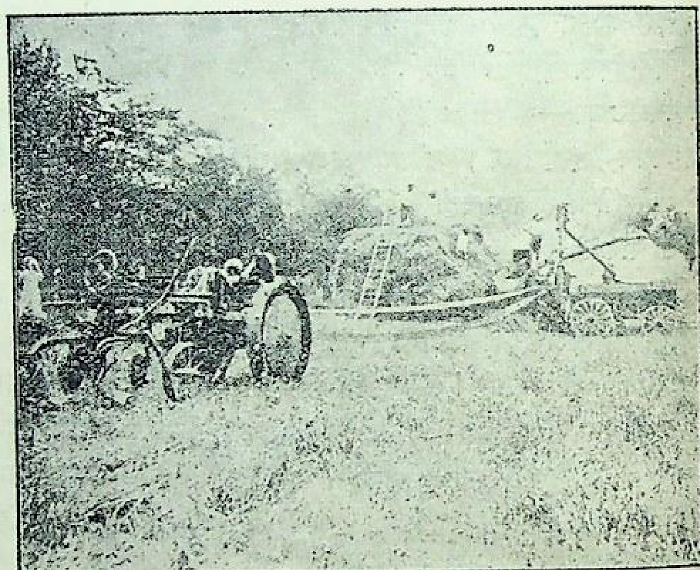
अमेरिका की वर्तमान अवस्था

(४)

ग्राम्य जीवन

गर्मियों में गाँवों की सैर

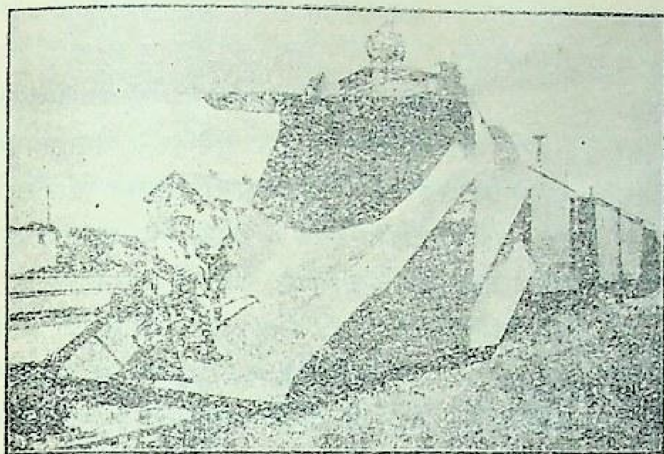




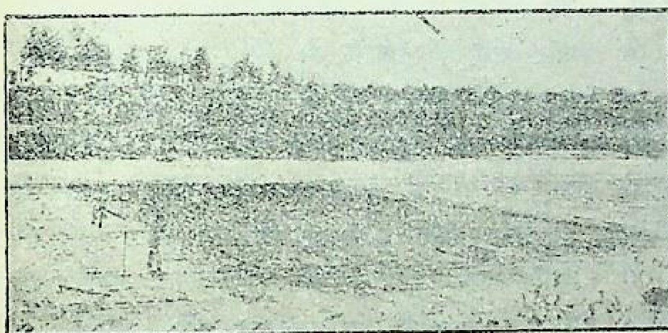
भूसी निकालने की मशीन, जो १० घंटे में १०० बुशेल गेहूँ की भूसी निकालती है

जो लोग शहरों के गुल-शोर और गर्द-गुबार से बचना चाहते हैं, वे गरमी के मौसम में बहुधा दिहातों में जाकर निवास करते हैं। जिन लोगों का गाँव के मालिकों से मेल-जोल होता है, उनको गाँवों में निवास करने के लिये आसानी से स्थान मिल जाता है । वसंत-ऋतु में अमेरिका के गाँवों की शोभा दर्शनीय हो जाती है । यद्यपि गाँवों में मकानात छोटे-छोटे होते हैं, परंतु होते हैं साफ़-सुथरे । उनके चारों ओर भिन्न-भिन्न प्रकार के वृक्ष लगे हुए दृष्टि-गोचर होते हैं । इन वृक्षों द्वारा मैदान की प्रबल वायु और सरदी के दिनों में बरफ़ से गाँवों की बहुत कुछ रक्षा होती है । गाँव के आस-पास जहाँ तक दृष्टि जाती है, हरे-भरे लहलहाते हुए खेत-ही-खेत दिखाई पड़ते हैं। जहाँ ऊँची-नीची ज़मीन है, वहाँ पर खेतों की शोभा ऐसी अपूर्व दिखाई पड़ती है, मानों समुद्र के जल में लहरें आ रही हैं । वहाँ गाँव के भीतर, रहने के मकानों के पास, खेती का सामान नहीं रखते । गाँव के बाहर घरों से थोड़ी दूर पर मुर्ग़ियों के घर, गाड़ियाँ वग़ैरह रखने के मकानात, खेती के औज़ार, हल और बैलों को बाँधने के घर और नाज रखने के कोठे होते हैं । खेती का प्रायः कुल काम कलों द्वारा होता है।

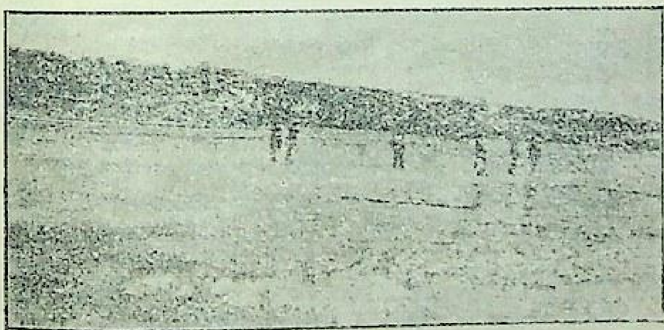
अमेरिका में प्रातःकाल प्रायः बहुत सुहावना होता है। प्रातःकाल वायु प्रायः ठंडी चलती है ; परंतु दोपहर को गरम हो जाती है । रात के पहले भाग में गरमी होती है और दूसरे भाग में सरदी ; परंतु जिन दिनों वहाँ बरफ़ पड़ने लगती है, सरदी अधिक कष्ट दायक होती है । गाँव के आस-पास भिन्न-भिन्न रूप-रंग के पशु-पक्षी दृष्टि-गोचर होते हैं ; जो अपनी मधुर ध्वनि से प्रातःकाल लोगों के मन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं । कीड़े-मकोड़े भी बहुतायत से पाए जाते हैं। मच्छड़ वहाँ मक्खियों के बराबर होते हैं, और मक्खियाँ टिड्डियों के बराबर। इनसे बचाव के लिये दरवाज़ों में लोहे की महीन जालियाँ लगी रहती हैं।



बर्फ़ से ढकी रेल-लाइन को साफ़ करनेवाला एंजिन



बर्फ़ से जमी हुई नदी पर से बर्फ़ हटाना



बर्फ़ से जमी हुई नदी पर का खेल

गाँव के लोगों की आवश्यकता के अनुसार प्रायः बहुत-सा सामान गाँवों में ही प्राप्त हो जाता है। जो वस्तुएँ नहीं मिलतीं, वे शहरों से आती हैं। दैनिक और मासिक समाचार-पत्र या पत्रिकाएँ, पढ़ने के लिये, बराबर नित्य लोगों को मिलती रहती हैं। विज्ञापनबाज़ी का बाज़ार वहाँ ख़ूब गरम रहता है। हर तरह के सुबीते के विज्ञापन आप वहाँ दिहात में लगे पावेंगे। बीमा-कंपनियों के इस प्रकार के विज्ञापन वहाँ गाँवों में जा-ब-जा चिपके हुए पाए जायँगे—

"आपकी मृत्यु के पश्चात् आपके प्यारे बच्चों की रक्षा और पालन का प्रबंध हम करेंगे। हमारा प्रबंध आपके प्रबंध से भी उत्तम होगा। इसलिये कृपा कर हमारी कंपनी में जीवन का बीमा कराइए।"

मृत शरीरों को गाड़नेवाली बीमा-कंपनियाँ इस प्रकार के विज्ञापन प्रकाशित करती हैं—

"हमारी मुर्दा गाड़ने की जगह बड़ी आराम की है। वहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। ख़ज़ाना रखने के स्थान से भी वह स्थान सुरक्षित है। जिसकी इच्छा हो, वह चले।"

वहाँ पर, घरों में, सबसे अधिक आवश्यक और उपयोगी वस्तु टेलीफ़ोन है; जो प्रत्येक घर में पाया जाता है। टेलीफ़ोन का जाल ज़िले-भर में बिछा हुआ है। ज़िले-भर में ही नहीं, सारे देश में उसका प्रसार है। एक मामूली-से गाँव में बैठकर देश-भर से बातें करने का सुबीता है। वहाँ पर टेलीफ़ोन का प्रबंध गाँव के मालिकों ने मिलकर अपने-आप किया है। प्रत्येक मकान-वाले को टेलीफ़ोन काम में लाने के लिये सात-आठ रुपए सालाना देना पड़ता है। टेलीफ़ोन से कामकाजी लोगों को यहाँ तक आसानी हो गई है कि यदि कोई चाहे और आवश्यकता पड़े, तो रात के समय तुरंत टेलीफ़ोन से वक़्त पूछा जा सकता है।

खेती का प्रायः सब काम कलों द्वारा होता है। हाथों से बहुत ही कम लोग काम करते हैं। यदि पशुओं के चारे के लिये घास काटनी हो, तो वह भी कलों से काटी जाती है। कटी हुई घास कलों से ही इकट्ठा की जाती है। कल से ही घास को लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं, और वहाँ उतारकर ज़मीन पर कल से ही फैलाते हैं। इस प्रकार कलों द्वारा काम करने से अमेरिकन किसानों को कम ख़र्च में अधिक माल तैयार करने का सुबीता होता है।

अमेरिकन किसान बहुत परिश्रमी होते हैं। वे प्रातः-

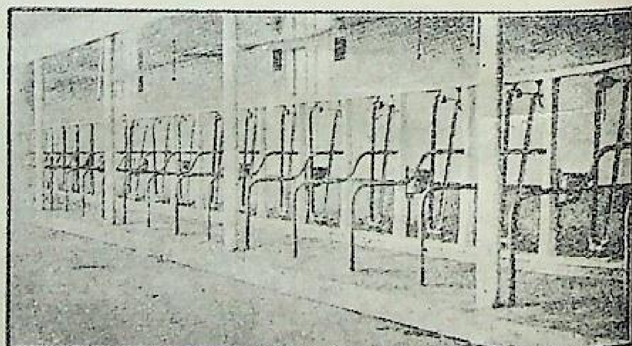
काल चार बजे से संध्या के आठ बजे तक बराबर काम में लगे रहते हैं । हाँ, यह बात ज़रूर है कि वे इतवार को काम नहीं करते, और नियमित त्योहारों पर ही छुट्टियाँ मनाते हैं । भारतवर्ष के समान ही अमेरिका का प्रधान व्यवसाय कृषि है । जितने कृषक वहाँ मिलेंगे, उतने और पेशेवाले नहीं । वहाँ व्यवसाय-वाणिज्य के लिये जिन पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है, उनका ⅘ भाग अमेरिकन किसान ही पैदा करके देते हैं । अमेरिकन गवन्मेंट अपने देश के कृषकों को हर प्रकार की सहायता पहुँचाती है । कृषकों के कार्य में जो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, उनको दूर करने के लिये सरकारी विशेषज्ञ बड़ा प्रयत्न करते हैं ।

अमेरिका में हमारे यहाँ की तरह छोटे-छोटे दो-दो, चार-चार बीघे के खेत नहीं होते । वहाँ पर खेत बहुत बड़े-बड़े होते हैं । कोई-कोई खेत तो दस-दस हज़ार बीघे का होता है । किसान लोग अपने खेतों पर ही बहुधा रहते हैं । जिन किसानों की अपनी खुद की ज़मीन है, वे अपने खेत पर ही आवश्यक पदार्थ तैयार रखते हैं । जानवरों के रहने के लिये छप्पर अथवा झोपड़े, नाज रखने के लिये खत्ते अथवा कोठे, रहने के लिये एक छोटा-सा मकान वहीं बना लेते हैं । परंतु जो लोग खेतों के मालिक नहीं हैं, केवल काश्तकार हैं, वे इस प्रकार का प्रबंध बहुत कम करते हैं । कारण, जब उनकी इच्छा होती है, तब वे एक मालिक का खेत छोड़कर दूसरे मालिक का खेत जोतने लग जाते हैं। इस प्रकार के काश्तकार एक स्थान पर दो चार बरस से अधिक नहीं ठहरते । ऐसे काश्तकार बहुधा काफ़ी धन पैदा कर लेने पर, काश्तकारी पेशा छोड़कर, क़स्बों में जाकर बस जाते हैं, और मध्यम श्रेणी के लोगों में रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं ।

अमेरिकन किसानों में धार्मिक भाव की भी कमी नहीं है । उनका हृदय चाहे आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण हो या न हो, परंतु वे नियमित समय पर, हज़ार काम छोड़कर, गिरजा-घरों में उपासना के लिये अवश्य जाते हैं । स्वतंत्रता अमेरिकन लोगों को बहुत प्यारी है । अतएव वहाँ के किसान भी बहुत स्वतंत्र होते हैं । उन्हें अपने विचार और स्वभाव को बदलने में बहुत समय नहीं लगता । धन कमाना ही वे जीवन का मुख्य उद्देश्य समझते हैं ।

अमेरिकन किसान और गवन्मेंट

यदि कोई यह प्रश्न करे कि अमेरिकन किसान क्यों अधिक प्रसन्न रहते हैं, तो उसका सबसे सरल और सहज उत्तर यही हो सकता है कि वे अपना काम करना बहुत अच्छी तरह जानते हैं, और वहाँ की गवन्मेंट हर तरह से उनकी सहायता करती है । अमेरिका में एग्रीकल्चर डिपार्टमेंट (कृषि-विभाग) एक बहुत बड़ा सरकारी महकमा है ; जिसमें २० हज़ार मनुष्य काम करते हैं । और, दो करोड़ दस लाख रुपए सालाना इस महकमे पर ख़र्च किया जाता है । इस महकमे का मुख्य कार्य यह है कि वह पैदावार बढ़ाने के लिये नई-नई तरकीबें निकालता और उन्हें काश्तकारों को सिखाता रहे । ये तरकीबें छोटी-छोटी पुस्तकों, सूचना-पत्रों या रिपोर्टों द्वारा सब किसानों तक पहुँचाई जाती हैं । ६० स्थान ऐसे हैं, जहाँ बड़े परिमाण में कृषि-संबंधी प्रयोग किए जाते हैं । इन प्रयोग-शालाओं में इस बात की जाँच होती रहती है कि कौन-सी ज़मीन किस प्रकार की काश्त के लिये उपयोगी है । कृषि-विभाग का कार्य वहाँ भिन्न-भिन्न, छोटे-छोटे, भागों में बटा हुआ है । एक विभाग का कार्य तो



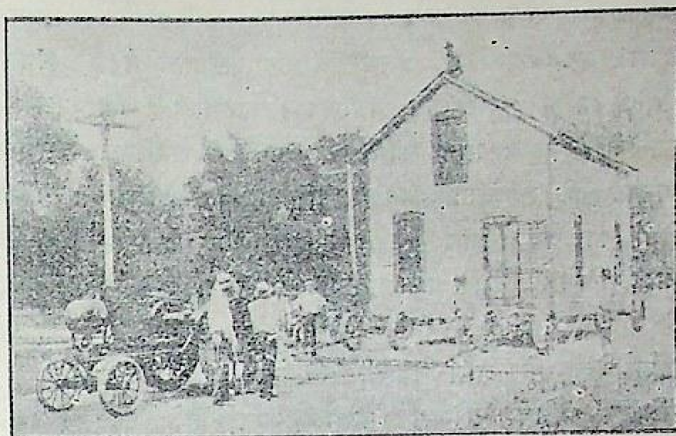
एक बड़ा विसकांसिन फ़ार्म

यही है कि वह नए-नए प्रकार के वृक्षों को लगावे, और नई-नई फ़सलें पैदा करे । इस विभाग के कर्मचारी दूर-दूर देशों और प्रांतों में जाकर वहाँ से फल, फूल, नाज, तरकारियाँ, पौदे, वृक्ष आदि लाकर जा-ब-जा अपने देशों में लगाते हैं । कुछ समय पहले चावल अमेरिका में विदेशों से जाता था ; परंतु अब अमेरिका की दक्षिणी रियासतों में बहुतायत से पैदा होता है । इतना

ही नहीं, बाहर विदेशों में भी अमेरिका से चावल भेजा जाता है। रूस के उत्तरी विभाग अर्थात् साइबेरिया में एक प्रकार का गेहूँ पैदा होता है; जिसे 'दुरुम'-गेहूँ कहते हैं। यदि बरसात कम हो, तो भी उसकी पैदावार होती है। कई वर्ष हुए, अमेरिका में लगातार चार-पाँच वर्ष तक पानी कम बरसा और गेहूँ की पैदावार कम हुई थी। ऐसी दशा देखकर अमेरिकन गवर्न्मेंट को इस बात की चिंता हुई कि यदि ऐसा गेहूँ बोया जाय, जो कम बरसात होने पर भी पैदा किया जा सके, तो देश को इस आपत्ति से बचाया जा सकता है। अमेरिकन सरकार ने कृषि-विभाग के जानकार लोगों को विदेशों में इस प्रकार के गेहूँ की तलाश के लिये भेजा। उन्होंने साइबेरिया से 'दुरुम'-गेहूँ लाकर बोया; जिसकी बहुत अच्छी फ़सल हुई। इस प्रकार के प्रयत्न से अमेरिकन सरकार ने देश के किसानों की सहायता की।

खेतों में बहुधा भिन्न-भिन्न प्रकार के कीड़े लग जाते हैं। उनसे फ़सल ख़राब और कभी-कभी तो नष्ट भी हो जाती है। काश्तकारों को इस आपत्ति से बचाने के लिये भी एक महकमा खोल रक्खा गया है। जब कभी खेतों में कीड़े लगते हैं, काश्तकार इस महकमे को लिख भेजता है। खेतों से उखाड़कर कुछ पौदे, और यदि कीड़े दिखाई पड़ते हों, तो उनको भेज देता है। महकमे के जानकार लोग तुरंत परीक्षा करके कीड़ों के प्रतिकार का उपाय लिखकर भेज देते हैं। इस प्रकार के प्रयत्न से गवर्न्मेंट प्रति-वर्ष हज़ारों काश्तकारों की क़ीमती फ़सलें नष्ट होने से बचा लेती है।

पशुओं की रक्षा और उनको होनेवाले रोगों की चिकित्सा करने के लिये, कृषि-विभाग की ही निरीक्षकता में, एक और विभाग है। यह विभाग समय-समय पर पशुओं की चिकित्सा-संबंधी सूचनाएँ और पुस्तिकाएँ प्रकाशित करता रहता है। समय-समय पर इस विभाग के विशेषज्ञ दिहातों में जाकर स्वयं किसानों के पशुओं का निरीक्षण करते हैं, और उनको पशुओं की रक्षा, उन्नति और रोग निवारण के उपाय बतलाते हैं। जब कभी पशुओं में वबाई बीमारियाँ फैलती हैं, उस समय यह विभाग पशुओं की रक्षा का बहुत कुछ उद्योग और प्रयत्न करता है।



एक मकान को स्थानांतरित करना

गोशाला अर्थात् डेरी-फ़ार्म का प्रबंध भी इसी विभाग के हाथ में है। गऊ और भैंसों से अधिक-से-अधिक दूध किस प्रकार पैदा किया जा सकता है, दूध देनेवाले पशुओं की रक्षा और पालन किस ढंग से किया जाना चाहिए, ये सब बातें यह विभाग लोगों को बताता है।

कृषकों को आवश्यकता पड़ने पर यह विभाग धन की भी सहायता पहुँचाता है। इस काम के लिये गवर्न्मेंट ने १२ बैंक खोल रक्खे हैं। उनसे ज़रूरत के वक़्त किसानों को कम सूद पर रुपए दिए जाते हैं। सूद किसी हालत में ६ रुपए सैकड़ा सालाना से अधिक नहीं लिया जाता।

अमेरिकन गवर्न्मेंट काश्तकारों की उन्नति के लिये बहुत बड़ा प्रयत्न करती है। दिहातों में जिधर निकल जाइए, कृषकों की उन्नति के अनेक साधन दृष्टिगोचर होंगे। उस देश में विज्ञान की दिनों-दिन उन्नति होती जाती है, और उस उन्नति से अमेरिकन कृषकों की पुष्टि होती जाती है। कृषि-शिक्षा के लिये वहाँ अनेक पाठशालाएँ और कॉलेज गवर्न्मेंट ने, लाखों रुपए लगाकर, खोल रक्खे हैं; जहाँ कृषि कार्य सीखनेवाले लड़कों को, आरंभिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक, कृषि की शिक्षा दी जाती है। इस समय वहाँ ६० हज़ार विद्यार्थी कृषि की शिक्षा पाते हैं। ये ही विद्यार्थी-कृषक अमेरिका में कृषि की उन्नति के पथ-प्रदर्शक हैं। संसार के किसी देश का काश्तकार अमेरिका के काश्तकार का मुक़ाबला नहीं कर सकता। जब कभी कोई विद्वान् किसी नई मशीन का आविष्कार करता है, जिसके द्वारा कृषि-कार्य का होना सहज समझा जाता है, तो गवर्न्मेंट स्वयं देश में शीघ्रता-

पूर्वक उस मशीन का प्रचार कराती है । किसी देश की गवन्मैंट कृषकों की इतनी अधिक सहायता नहीं करती, जितनी अमेरिकन गवन्मैंट । तात्पर्य यह कि अमेरिका की वर्तमान कृषि की उन्नति अमेरिकन गवन्मैंट की सहायता का ही फल है । अमेरिकन लोगों का यह विचार बहुत ठीक है कि गवन्मैंट प्रजा के लिये है, न कि प्रजा गवन्मैंट के लिये ।

तातीलों में लोगों की दिनचर्या

अमेरिका के ग्राम-निवासी किसान लोग जहाँ अधिक-से-अधिक परिश्रम करना जानते हैं, वहाँ आमोद-प्रमोद करना भी उन्हें खूब मालूम है । त्योहारों के अवसर पर वे अपने घरों को खूब सजाते हैं। आपस में एक दूसरे की दावतें करते हैं। गाँवों में त्योहारों के मनाने के लिये मकानों को खूब सजाया जाता है, रोशनी की जाती है । खेल-तमाशे और नाटक होते हैं । बालक-बालिकाएँ, बूढ़े-जवान, युवती और वृद्धा, सभी तातीलों के अवसर पर हर्ष और आनंद मनाते हैं। मेहमानों के ठहरने के लिये कमरों को तसवीरों आदि से खूब सजाया जाता है। मामूली तातीलों और त्योहारों के अलावा 'बड़े दिन' पर वहाँ खूब ही आमोद-प्रमोद के सामान इकट्ठे किए जाते हैं । गाँववाले, अपना सब काम-काज छोड़कर, अपना दिन हँसी-खुशी में ही बिताते हैं । जहाँ पर सार्वजनिक जलसे होते हैं, उन स्थानों को बिजली की रोशनी तथा अन्य आवश्यक पदार्थों से खूब सजाते हैं। भिन्न-भिन्न देशों के पदार्थ भी लाकर, विनोदार्थ, उन स्थानों पर रक्खे जाते हैं। भोजन का ख़ास तौर पर प्रबंध होता है। भोजन परोसने का काम ख़ासकर स्त्रियाँ करती हैं। आरंभ में गाना-बजाना होता है, पश्चात् भोजन । बाद को खेल-तमाशे और नाटक होते हैं। वे विदेशी नाटकों को बड़ी रुचि के साथ खेलते हैं। जिस देश के नाटक होते हैं, उसी देश के अनुसार वस्त्र, नाटक करनेवाले पात्रों को, पहनाए जाते हैं। आमोद-प्रमोद के साथ ज्ञान-चर्चा भी कहीं-कहीं होती है । लोग व्याख्यान भी देते हैं* । बहुधा शहरों के भी लोग तातीलों में दिहात चले जाते हैं, और वे भी त्योहार मनाने में उनके साथ हो जाते हैं । तात्पर्य यह कि अमेरिका का ग्राम्य जीवन हमारे यहाँ के ग्राम्य जीवन के समान नरक नहीं है । वहाँ के ग्राम-निवासी अधिक-से-अधिक धन पैदा करने का प्रयत्न करते हैं, और अधिक-से-अधिक आनंद और खुशी मनाते हैं । देखें, हमारे देश के किसानों के दिन कब बहुरते हैं ; कब उनका इस दुर्दशा से उद्धार होता है !

* त्योहारों के अवसर पर वे सब आपस के वैमनस्य को भुलाकर, हँसी-खुशी के साथ गले मिलते हैं । गिरजा-घर भी खूब सजाए जाते हैं । पादरी लोग उपासना कराने के लिये उन दिनों में ख़ास तौर का प्रबंध करते हैं ।

ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा

नागर-सर्वस्वम्



धुरी के गत मार्गशीर्ष के अंक में काम-शास्त्र पर एक लेख निकल चुका है । उसमें योग्य लेखक ने अन्य शास्त्रों के साथ काम-शास्त्र का संबंध और उसका महत्त्व भली भाँति दिखलाया है । वास्तव में यह एक बड़ा आवश्यक और पवित्र विषय है । रति के बिना संसार में किसी प्राणी की, एक क्षण के लिये भी, स्थिति संभव नहीं । यह रति प्रायः सर्वत्र व्यापक है । विद्वानों ने इसका लक्षण इस प्रकार किया है—

रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम् ।

गुरु, देव और अपने से बड़ों के साथ यही रति भक्ति-रूप से प्रकट होती है । पुत्रादि अपने से छोटों के विषय में इसी का नाम वात्सल्य हो जाता है । मित्रादि समान-वयस्कों के साथ यह मैत्री का रूप धारण करती है । इसी प्रकार स्त्री-पुरुष के आपस के प्रेम में यही शृंगार-रस बन जाती है । अलंकारशेखर में कहा भी है—

रतिर्भवति देवादौ मुनौ पुत्रे नृपे गुरौ ;
शृंगारस्तु भवेत्सैव या कांताविषया रतिः ।

इस संसार का मूल स्त्री और पुरुष का संबंध है। उसको शुद्ध रखनेवाली यही रति है। इसी के फल से सीता और राम का वह आदर्श दांपत्य संभव हो सका, जिसका वर्णन करते हुए श्रीभवभूति ने उत्तरराम-चरित (१।३९) में कहा है—

"अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु य-
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरया यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥"

इसका अर्थ है—

सुख-दुख में नित एक हृदय को प्रिय विराम-थल,
सब विधि सों अनुकूल, बिसद लच्छनमय अविचल,
जासु सरसता सकै न हरि कबहूँ जरठाई,
ज्यों-ज्यों बाढ़त सघन सघन सुंदर सुखदाई,
जो अवसर पै संकोच तजि परवत-दृढ़ अनुराग सत,
जग दुरलभ सज्जन-प्रेम अस, बड़भागी कोऊ लहत।
(स्व० सत्यनारायणजी कविरत्न)

इस आवश्यक शास्त्र पर प्राचीन आर्य-ऋषियों तक ने ग्रंथ लिखे थे। वे इसे जीवन को सुखमय बनाने का एक बड़ा साधन समझते थे। आजकल योरप और अमेरिका में भी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। हेवेलाक एलस, फ़ोरल और क्राफ़्ट एबिंग आदि अनेक विद्वानों ने इस शास्त्र को अपने अध्ययन का विषय बनाया है, और इस पर बड़े-बड़े बृहद् ग्रंथ भी लिखे हैं। हमारे संस्कृत-साहित्य में काम-शास्त्र पर बहुत ग्रंथ थे; पर इस समय उनका लोप-सा हो गया है। उन अनेक ग्रंथों में से अभी तक केवल सात-आठ ही मुद्रित हो पाए हैं। शेष प्राचीन पुस्तकागारों या ब्राह्मणों के घरों में पड़े संसार से छिपे बैठे हैं। मुद्रित ग्रंथों के नाम ये हैं—

१. कल्याणमल्ल-कृत 'अनंग-रंग'।

२ जयदेव-कृत 'रति-मंजरी'।

३. वात्स्यायन-विरचित 'काम-सूत्र'। इस पर भगवान् शंकराचार्यजी की जयमंगला-नामक टीका भी छप चुकी है। इन सूत्रों के कंदर्पचूड़ामणि-नामक एक दूसरे संस्कृत-अनुवाद का संपादन मित्रवर पं० रामचंद्रजी शास्त्री "कुशल" कर रहे हैं। वह भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा। यह एक बार पहले भी कहीं छपा था; पर अब वह संस्करण नहीं मिलता।

४ 'रति-शास्त्र'।

५. कुक्कोक-कृत 'रति-रहस्य' (कांचीनाथ-कृत दीपिका-समेत)।

६. हरिहर-कृत 'शृंगार-दीपिका' (अंतिम दो परिच्छेदों के बिना)।

७. पद्म-श्री-कृत 'नागर-सर्वस्वम्' (इस पर ज्योतिर्मल्ल की टीका है)।

वात्स्यायन-सूत्रों के विषय में, 'सरस्वती' में, लाला कन्नोमलजी के तीन लेख निकल चुके हैं। उस पुस्तक का अँगरेज़ी में अनुवाद भी हो चुका है—एक तो लाहौर में छपा है, दूसरा इँगलैंड में। सुना है, जर्मन-भाषा में इसके अनुवाद के आठ संस्करण हो चुके हैं। शायद, फ़्रेंच में भी इसका भाषांतर मिलता है।

कुक्कोक के रति-रहस्य का अँगरेज़ी-अनुवाद अभी प्राप्य नहीं। पर लाहौर के दो प्रकाशक दो भिन्न-भिन्न विद्वानों से उसके अनुवाद करा रहे हैं। एक अनुवाद तो बंबई के प्रसिद्ध अनुवादक श्रीयुत कालेजी कर रहे हैं, और दूसरा जर्मनी के शिमट्ज़-नामक एक विद्वान्। इसी जर्मन-विद्वान् ने जर्मन-भाषा में काम-सूत्रों का अनुवाद किया है। हिंदी में इसका अनुवाद अभी प्रकाशित नहीं हुआ, और न शायद हो ही सकता है।

इस लेख में हम अंतिम पुस्तक नागर-सर्वस्वम् के विषय में ही कुछ बातें लिखना चाहते हैं। इसका अभी तक, जहाँ तक हमें मालूम है, न अँगरेज़ी में और न हिंदी में ही कोई अनुवाद प्रकाशित हुआ है।

नागर-सर्वस्वम् के लेखक पद्मश्री नाम के कोई बौद्ध-भिक्षु हैं। उनका नाम ईकारांत होने के कारण कई लोगों ने भूल से उन्हें स्त्री समझ लिया है। उनका काल सन् १००० ईसवी के लगभग जान पड़ता है। यह ग्रंथ उन्होंने वासुदेव-नामक एक ब्राह्मण मित्र की प्रेरणा से लिखा था। इसकी रचना में उन्होंने अनेक ग्रंथों से सहायता ली है। इस पुस्तक में कहीं-कहीं अपाणिनीय प्रयोग देख पड़ते हैं। वे कदाचित् बौद्ध-व्याकरण के अनुकूल हैं।

काम-शास्त्र पर लिखे हुए इस ग्रंथ का कर्ता एक संसार-त्यागी बौद्ध-भिक्षु है, यह जानकर अनेक लोगों को बड़ा आश्चर्य होगा। परंतु इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। प्राचीन काल में, संसार के परम सुख की साधना के लिये, प्रत्येक विषय का ज्ञान आवश्यक समझा जाता था। गुरु लोग भी अपने शिष्यों को काम-शास्त्र की शिक्षा दिया करते थे; जिससे उनका ऐहिक जीवन सुखमय हो सके। फिर संसार के सुख-साधन के लिये यत्न करना प्रत्येक मनुष्य-हितैषी का कर्तव्य था।

नागर-सर्वस्वम् में ३८ परिच्छेद हैं। उनके विषय आगे दिए जाते हैं—

परिच्छेद	विषय
१.	त्रिवर्ग-निर्णय
२.	शरीर और वास-गृह का प्रसाधन
३.	रत्न-परीक्षा
४.	गंधाधिकार
५.	भाषा-संकेतक
६.	अंग-संकेतक
७.	पोटली-संकेतक
८.	वस्त्र-संकेतक
९.	तांबूल-संकेतक
१०.	पुष्पमाला-संकेतक
११.	सकल-संकेतक
१२.	औषध-प्रयोग
१३.	हाव-भाव
१४.	रति-विवेक
१५.	स्वदार-रक्षा
१६.	बालादि-पथ्य-क्रम-लालन
१७.	मदनोदय
१८.	नाड़ी-संक्षोभ-करण
१९.	मद-नाड़ी के स्वभाव
२०.	भिन्न-भिन्न देशों की स्त्रियों के स्वभाव
२१.	सशब्द चुंबन (सात प्रकार)
२२.	नख-पद (आठ प्रकार)
२३.	दशन-पद (आठ प्रकार)
२४.	आलिंगन (दस प्रकार)
२५.	निःशब्द चुंबन (सात प्रकार)
२६.	जिह्वा-प्रवेश (तीन प्रकार)
२७.	चूषण (चार प्रकार)
२८.	उत्तान-करण
२९.	पार्श्व-करण (सात प्रकार)
३०.	आसीन-करण (दो प्रकार)
३१.	अधोमुख-करण (दो प्रकार)
३२.	उत्थित-करण (सात प्रकार)
३३.	ताड़न
३४	मर्दन (चार प्रकार)
३५.	ग्रहण (चार प्रकार)

३६. अंगुलि-प्रवेश (छः प्रकार)
३७. वामा-चरित-प्रकाश
३८. सुतोदय

पद्मश्री ने अपने ग्रंथ के आरंभ में ही लिखा है—"काम-शास्त्र के अनेक ग्रंथ भिन्न-भिन्न भाषाओं में होने के कारण ठीक-ठीक समझ में नहीं आते। कुछ तो इतने बड़े हैं कि उनमें से अपने लिये उपयोगी विषय छाँट लेना भी ज़रा कठिन है। कोई-कोई इतने छोटे हैं कि उनमें पूरा मज़मून भी नहीं आ पाया। ऐसी अवस्था में पद्मश्री का बनाया हुआ यह 'नागर-सर्वस्वम्'-नामक काम-शास्त्र—जो अन्य सब ग्रंथों का सारभूत है, और बड़ी आसानी से समझ में भी आ सकता है—धर्म, अर्थ और काम की चाह रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुषों को शीघ्र ही सुनना चाहिए।"

इस पुस्तक में जिन ग्रंथों और ग्रंथकारों के प्रमाण मिलते हैं, वे ये हैं—

कपिल (मुनि)
काम-तंत्र (शंकर-कृत)
कुट्टिनी-मत (काश्मीर के दामोदर गुप्त का बनाया हुआ)
महेश्वर (काम-तंत्र का कर्ता)
मुनींद्र
पंचसायक (रत्नकुमार)
लोकेश्वर (गंध शास्त्र)
वात्स्यायन (काम-सूत्र-कर्ता)
वासुदेव (ग्रंथकर्ता का मित्र एक ब्राह्मण)
सिद्धैकवीर (तंत्र-विशेष)

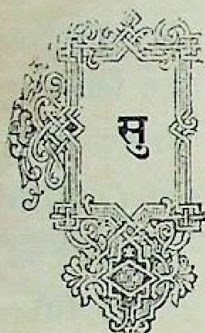
नागर-सर्वस्वम् में काम-शास्त्र के दूसरे ग्रंथों से कुछ विलक्षणताएँ देख पड़ती हैं ; जिनका दूसरे ग्रंथों में वर्णन नहीं है। स्त्रियों के संकेत (परिच्छेद ५-११), नाड़ी-संक्षोभण (परि० १८-१६), सशब्द चुंबन (परि० २१), जिह्वा-प्रवेश (परि० २६), चूषण (परि० २७), मर्दन (परि० ३४), ग्रहण (परि० ३५), अंगुलि-प्रवेश (परि० ३६) इत्यादि विषयों का उपदेश अन्यत्र कहीं नहीं देख पड़ता। फिर इसमें स्त्रियों की रति को बढ़ाने के लिये पुरुषों का रत्न धारण करना कर्तव्य ठहराकर विविध रत्नों की परीक्षा की विधि भी दी गई है। पुरुषों की प्रीति को बढ़ाने के लिये स्त्रियों की श्रृंगार-चेष्टाएँ, जिन्हें हाव-भाव कहते हैं, जैसी इस ग्रंथ में वर्णित हैं, वैसी किसी दूसरे में नहीं। मंत्र-यंत्र द्वारा काम-कला का क्षोभण (परि० १७), और पुत्र उत्पन्न करने की विधि (परि० ३८), ये दो नूतन विषय हैं। इसमें हरिणी-हस्तिनी आदि स्त्रियों और शश-अश्व आदि पुरुषों का निर्णय, काम-कला के स्थानों का वर्णन और चुंबन की रीतियाँ भी दूसरे ग्रंथों से कुछ भिन्न हैं। बौद्ध-भिक्षु का बनाया यह ग्रंथ उपर्युक्त बातों में सबसे विलक्षण है। बड़े आश्चर्य की बात है कि इन ग्रंथों के अँगरेज़ी और जर्मन-अनुवादों पर तो किसी को आपत्ति नहीं होती, परंतु हिंदी-अनुवाद के चटपट ज़ब्त हो जाने की आशंका रहती है। क्या योरप की जनता के आचार और मानसिक दशा भारतीयों की अपेक्षा बहुत उच्च है ? इन प्राचीन ग्रंथों के आधार पर मैं हिंदी में एक पुस्तक तैयार कर रहा हूँ। इसमें पाश्चात्य विद्वानों की लिखी हुई पुस्तकों से भी सहायता ली गई है। यदि यह ज़ब्त न हो गई, तो आशा है, इन प्राचीन ग्रंथों से लाभ उठाने के लिये केवल हिंदी जाननेवाले सज्जनों को अँगरेज़ी पढ़ने की आवश्यकता न रहेगी।

संतराम बी० ए०

ग्रीक राजनीतिक सिद्धांत

[२]

प्लेटो के विचार



प्लेटो का महत्त्व

सुक़रात का प्रधान शिष्य प्लेटो था। उसने अपने ग्रंथ, सुक़रात और अन्य लोगों के पारस्परिक वार्तालाप के रूप में, लिखे हैं। कोई यह निश्चय नहीं कर सकता कि इन वार्तालापों का कितना अंश सुक़रात के मस्तिष्क से निकला है, और कितना प्लेटो के मस्तिष्क से। संभवतः मुख्य विचार सुक़रात के हैं, और उनके परिवर्द्धन एवं वर्तमान रूप का श्रेय प्लेटो को है। जो हो, योरप के तत्त्व-ज्ञान के इतिहास में प्लेटो का नाम सबसे महत्त्व-पूर्ण है। योरप के विद्वान् कहते हैं कि प्लेटो और अरस्तू ने सारा तत्त्व-ज्ञान ख़तम कर दिया है; चाहे कोई प्लेटो का अनुयायी हो, और चाहे अरस्तू का, परंतु तीसरा मार्ग कोई नहीं है। स्वयं अरस्तू प्लेटो का शिष्य था। अतएव कह सकते हैं कि प्लेटो से बढ़कर प्रभाव योरप के किसी तत्त्व-वेत्ता का नहीं हुआ। एक तो प्लेटो की प्रतिभा अद्वितीय थी। दूसरे प्लेटो की भाषा और शैली अपूर्व थी। तीसरे प्लेटो की कल्पना कवियों की कल्पना से बढ़कर थी। चौथे प्लेटो ने जीवन की सभी समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है; हरएक मामले की तह तक पहुँचने की कोशिश की है। योरप में ही नहीं, एशिया में भी प्लेटो का प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। अरब के विद्वानों ने मुसलिम-संसार को उसके ग्रंथों का परिचय कराया, और उसका नाम अफ़लातून रख दिया। अफ़लातून नाम प्लेटो शब्द का अपभ्रंश-मात्र है। आज भारतवर्ष में भी यह नाम बुद्धिमानी और चतुरता के लिये प्रसिद्ध है।

रिपब्लिक

वेदांत, न्याय, धर्मशास्त्र इत्यादि सभी विषयों की विवेचना पर प्लेटो ने अपनी छाप लगा दी है। परंतु यहाँ केवल उसके राजनीतिक विचारों का दिग्दर्शन कराया जायगा। रिपब्लिक अर्थात् प्रजातंत्र-नामक कल्पना-मूलक साहित्यिक ग्रंथ में प्लेटो ने आदर्श समाज की आलोचना की है। देखने में तो रिपब्लिक केवल इस विषय की विवेचना करता है कि न्याय क्या है, परंतु वास्तव में वह सारे मानवीय जीवन का सिद्धांत प्रतिपादित करता है। विषय-विवेचना की दृष्टि से रिपब्लिक के चार भाग कर सकते हैं। पहले भाग में विशुद्ध तत्त्व-ज्ञान है, और यह निष्कर्ष निकलता है कि उत्तमता के विचार में सब पदार्थों का मेल है। दूसरे भाग में आचार-शास्त्र है। आत्मा के धर्मों और गुणों की मीमांसा से यह परिणाम निकलता है कि इन सबकी एकता और पूर्णता न्याय में है। तीसरे भाग में शिक्षा पर विचार किया गया है। रूसो, जो अर्वाचीन शिक्षा-सुधारकों में अग्रगण्य है, कहता था कि रिपब्लिक राजनीतिक ग्रंथ नहीं, किंतु शिक्षा-विषय पर सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है। ग्रीक-विद्वान् और राजनीतिज्ञ जन-सत्तात्मक शासन से अच्छी तरह परिचित थे। वे जन-सत्ता की आवश्यकताओं को समझते थे, और विश्वास करते थे कि जन-सत्ता की सफलता के लिये, अथवा यों कहिए कि किसी प्रकार की भी सत्ता की उपयोगिता के लिये, सार्वजनिक शिक्षा अनिवार्य है। चौथे भाग में राजनीति-शास्त्र है। उसमें उत्तम शासन कैसे हो सकता है, उत्तम क़ानून कौन-से हैं, संपत्ति का वितरण और नियमन कैसे होना चाहिए, विवाह-पद्धति कैसी होनी चाहिए, इत्यादि प्रश्नों की मीमांसा, आदर्श समाज चित्रण के रूप में, की गई है। जो कुछ विचार किया गया है, वह पूर्ण स्वतंत्रता से। समकालीन परिस्थिति का प्रभाव तो प्लेटो पर पड़ा ही था, परंतु जान-बूझकर उसने प्रचलित सामाजिक और राजनीतिक मतों की कुछ भी पर्वा नहीं की है।

प्लेटो का आदर्श समाज

प्लेटो के आदर्श समाज में मनुष्यों का विभाग तीन जातियों में किया गया है। एक तो सुवर्ण के मनुष्य, अर्थात् शासक या परिपालक। दूसरे चाँदी के मनुष्य, अर्थात् योद्धा-गण। तीसरे लोहे और पीतल के मनुष्य, अर्थात् खेतिहर। इस प्रकार के वर्ण-विभाग से आपस के सब झगड़े मिट जायँगे। प्रत्येक जाति अपना-अपना काम करेगी, और इस प्रकार समस्त जाति की उन्नति में सहायक होगी। इस व्यवस्था में परिपालकों की ज़िम्मेदारी सबसे ज़्यादा है, इसलिये उनको उत्तम-से-उत्तम शारीरिक और मानसिक शिक्षा देनी चाहिए। यह भी आवश्यक है

कि परिपालकों के मन सांसारिक चिंताओं और प्रलोभनों से सर्वथा मुक्त रहें। यदि वे स्वयं संसार की माया में लिप्त रहेंगे, यदि वे स्वयं स्वार्थ-परायण होंगे, तो दूसरों का परिपालन भला क्या करेंगे? मनुष्य दूसरों के हितों की हत्या क्यों करता है? दूसरों को धोका क्यों देता है? झूठ क्यों बोलता है? इसीलिये न, कि असत्य और दंभ द्वारा दूसरों की हानि से उसे अपनी और अपने कुटुंब के लाभ की आशा है। कुटुंब की यह चिंता न-जाने कितने पाप कराती है। कुटुंब की चिंता के वशीभूत होकर ही मनुष्य छल-बल से आवश्यकता से अधिक संपत्ति का उपार्जन किया करता है। यदि कुटुंब-प्रथा का नाश हो जाय, तो यह सब झंझट मिट जाय। फिर कोई चार-पाँच आदमियों के मोह में पड़कर संसार का गला न काटेगा। रही अपनी व्यक्ति-गत आवश्यकताओं की बात, सो प्रत्येक मनुष्य को आवश्यक सामग्री दे देनी चाहिए। परंतु व्यक्ति-गत संपत्ति की प्रथा मिटा देनी चाहिए। भूमि पर, अथवा किसी अन्य प्रकार की संपत्ति पर, किसी व्यक्ति-विशेष का अधिकार न रहे। इस व्यक्ति-गत संपत्ति की चिंता भी कौटुंबिक चिंता की तरह पाप की ओर ले जाती है। इसे भी मिटा देना चाहिए। जब परिपालकों को न तो संपत्ति का प्रलोभन रहेगा और न कुटुंब की चिंता रहेगी, जब उनके पास न स्त्री होगी और न बाल-बच्चे होंगे, न ज़मीन होगी और न रुपया होगा, परंतु खाने-पीने और पढ़ने लिखने की यथावश्यक सामग्री, राज्य की ओर से, मिल जाया करेगी, तब वे शासन और परिपालन के कार्य को बुद्धिमानी से, निर्लोभ होकर, परोपकार की दृष्टि से, चलावेंगे। वे जो कुछ करेंगे, वह न्याय-संगत होगा: क्योंकि उनके मन में अन्याय का कोई प्रयोजन न होगा। खेती-बारी और मज़दूरी के काम, जिनमें बहुत समय लग जाता है, परंतु किसी प्रकार की मानसिक और नैतिक उन्नति नहीं होती, दूसरे वर्गों के हाथ में रहेंगे, और उनकी चिंता से भी परिपालक-गण स्वतंत्र रहेंगे। यह प्रश्न हो सकता है कि यदि कुटुंब-प्रथा, अर्थात् विवाह-प्रथा, उठा दी जाय, तो परिपालकों की सृष्टि कैसे चलेगी? क्या स्थापना की एक ही पीढ़ी में उनका लोप न हो जायगा? सृष्टि चलाने का उपाय प्लेटो ने यह निकाला है कि जैसे परिपालक-मंडल के सारे पुरुष राज्य के होंगे, वैसे ही सारी स्त्रियाँ भी राज्य की होंगी। राज्य के नियमानुसार थोड़े दिनों के लिये एक पुरुष का संबंध एक स्त्री से करा दिया जायगा। इसके बाद उनका कोई संपर्क या संबंध नहीं रहेगा। जो बच्चे होंगे, वे यदि कमज़ोर मालूम हों, तो उसी समय मार डाले जायँगे। यदि हृष्ट-पुष्ट मालूम हों, तो स्त्रियों को पालने के लिये सौंप दिए जायँगे। ये सब बच्चे राज्य की संपत्ति होंगे। राज्य की ओर से उनके पालन-पोषण का प्रबंध किया जायगा। राज्य की ओर से ही उन्हें शिक्षा दी जायगी। कसरत कराई जायगी, गाना-बजाना सिखाया जायगा, तत्त्व-ज्ञान सिखाया जायगा, इत्यादि-इत्यादि। मेरी मा कौन है, मेरा बाप कौन है, मेरे भाई-बहन भी कोई है, इन बातों का पता किसी बच्चे को न लगने पावेगा। राष्ट्र ही उनका मा-बाप और भाई-बहन होगा। साधारणतः बच्चों को जो प्रेम मा-बाप और अन्य आत्मीय जनों से होता है, वह सारा प्रेम ये बच्चे राष्ट्र पर न्योछावर करेंगे। राष्ट्र की भक्ति बचपन के दूध के साथ, लड़कपन की शिक्षा के साथ, इनके रोम-रोम में समा जायगी। सर्वोत्कृष्ट शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति के बल से ये लोग जो प्रबंध करेंगे, वह सर्वथा निर्दोष होगा। विवाह-प्रथा और कुटुंब-प्रथा के नाश से एक लाभ और भी होगा। इन बंधनों ने स्त्रियों की दशा को बहुत ख़राब कर दिया है; बेचारियों को पराधीन बना दिया है। कुटुंब के नाश से स्त्रियों की पराधीनता भी नष्ट हो जायगी, और स्त्रियाँ, पुरुषों की तरह स्वतंत्र होकर, अपना भला और समाज का उपकार कर सकेंगी।

पालिटिक्स

इन सिद्धांतों के अनुसार प्लेटो की कल्पना में आदर्श समाज की रचना हुई है। परंतु आकाश से उतरकर भू-मंडल पर पैर रखते ही प्लेटो को मालूम हुआ कि इन सिद्धांतों का प्रचार होना ज़रा कठिन है। न तो ग्रीस में वर्ण-व्यवस्था बनाई जा सकती है, और न संसार की किसी जाति से विवाह-प्रथा और कुटुंब-प्रथाएँ मिटाई जा सकती हैं। व्यक्ति-गत संपत्ति की प्रथा को तोड़ना असंभव नहीं है; परंतु कठिन अवश्य है। अस्तु। अपने दूसरे ग्रंथ, पालिटिक्स अथवा राजनीति, में प्लेटो ने आकाश में कमल नहीं उगाए हैं; किंतु राजनीतिक व्यवस्था पर गूढ़ विचार किया है। शासक के लिये ज्ञान की आवश्यकता सबसे अधिक है। यदि किसी राष्ट्र को ज्ञानवान्, बुद्धिमान्

राजा मिल जाय, तो उस राजा को सब अधिकार सौंप देने चाहिए। उसकी शक्ति का कोई नियंत्रण न होना चाहिए। उसके अधिकार का कोई नियमन न होना चाहिए। परंतु अभाग्य-वश ऐसे सर्व-गुण-संपन्न राजा बहुत कम मिलते हैं। संसार में जो राज्य-पद्धतियाँ दिखाई पड़ती हैं, उनके तीन विभाग किए जा सकते हैं। एक-सत्ता, जिसमें एक राजा राज्य करता है। कुलीन-सत्ता, जिसमें एक वर्ग-विशेष का शासन रहता है। और, जन-सत्ता, जिसमें जनता के अधिकांश भाग के हाथ में शासन की बाग-डोर रहती है। परिस्थिति के अनुसार ये तीनों प्रकार की पद्धतियाँ यथा-स्थान उपयोगी हो सकती हैं। जब इन पद्धतियों से नियम-पूर्वक काम लिया जाय, तब इनको क़ानून-सत्ता अथवा नियमित राज्य कह सकते हैं। नियमित राज्य में शासनाधिकार चाहे जिसके हाथ में हो, परंतु सबके हितों का ध्यान रक्खा जाता है। जहाँ इसके विपरीत आचरण होता है, अर्थात् जहाँ राजा निरंकुशता-पूर्वक अत्याचार करता है, अथवा जहाँ अधि-कार-संपन्न कुलीन-वर्ग ग़रीबों को पैरों तले कुचलता है, अथवा जहाँ बहु-संख्यक जनता अल्प-संख्यक वर्गों के नाक में दम कर देती है, वहाँ मनमाना राज्य समझना चाहिए। ये सभी निरं-कुश राज्य ख़राब हैं; परंतु इनमें भी निरंकुश एक-सत्ता सबसे अधम है। इस प्रकार प्लेटो के मतानुसार सर्व-गुण-संपन्न, तत्त्व-ज्ञानी का राज्य सबसे श्रेष्ठ है, और निरंकुश एक-सत्तात्मक राज्य सबसे निकृष्ट है।

राज्यों के तीन विभाग

नियमित राज्य

निरंकुश राज्य

क़ानून-नामक तीसरी पुस्तक में प्लेटो आकाश से और भी नीचे उतरा है। यहाँ बहुत-से राजनी-तिक प्रश्नों पर व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया गया है। चाहे कोई राज्य एक-सत्तात्मक हो, चाहे कुलीन-सत्तात्मक हो, चाहे जन-सत्तात्मक हो, परंतु प्रत्येक राज्य में क़ानून के अनुसार शासन होना चाहिए। क़ानून तोड़ने का अधिकार न तो राजा को है, और न जन-सभा को। क़ानून का आधार न्याय होना चाहिए। न्याय का आधार यह है कि सब मनुष्यों के उचित अधि-कारों की रक्षा हो। सब मनुष्यों को अपनी योग्यता के अनुसार राज्य के उच्च पद मिलने चाहिए। राज्य का धर्म है कि वह अज्ञान के अंधकार को दूर करे। मनुष्य जो अपराध करता है, वह अज्ञान के कारण। जिस राज्य ने अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया, उसे अपराधों के लिये दंड देने का कोई अधिकार नहीं है। आजकल के राज्यों में बहुधा देखते हैं कि न तो राज्य ही अपने कर्तव्य का पालन करता है, और न प्रजा ही अपने कर्तव्य की ओर ध्यान देती है। सच पूछिए, तो ये सच्चे राज्य नहीं हैं। ये तो केवल जन-समूह हैं, जो नगरों या प्रांतों में संयोग-वश जमा हो गए हैं।

क़ानून

इसी प्रकार के और बहुत-से विचार "क़ानून" में हैं; जिनका प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने अपने राजनीति-नामक ग्रंथ में समावेश किया है। प्लेटो की विचार-परंपरा व्यवस्था-हीन है; वह कल्पना और कविता से भरी हुई है। परंतु उसके ग्रंथों में विचारों का इतना बाहुल्य है, भावों का इतना आवेश है, कुछ सनातन सत्य सिद्धांतों पर इतना ज़ोर दिया गया है, कि प्लेटो का स्थान योरप के दर्शन के इतिहास में सबसे ऊँचा रहेगा। इसमें संदेह नहीं कि जब एक बार सिसली के सारेक्यूज़-नामक नगर में प्लेटो ने अपने 'दार्शनिक राजा'वाले सिद्धांत को कार्य में परिणत करने की चेष्टा की, तब उसे नाकामयाबी हुई, और लेने के देने पड़ गए। प्लेटो ने डायोनीसियस-नामक राजकुमार को अच्छी तरह शिक्षा देकर, पूरा दार्शनिक बनाकर, प्रजा-पालन और सुधार के कार्य में नियुक्त किया। आशा थी कि डायोनीसियस आदर्श राजा होगा; परंतु वह नराधम निकला। बड़ी गड़बड़ मच गई। प्लेटो को अपनी जान लेकर भागना पड़ा। इस घटना से यह अवश्य सिद्ध होता है कि सिद्धांत और व्यवहार में बड़ा अंतर है। परंतु यह सिद्ध नहीं होता कि प्लेटो के विचारों में कुछ भी सत्य नहीं है।

वेणीप्रसाद

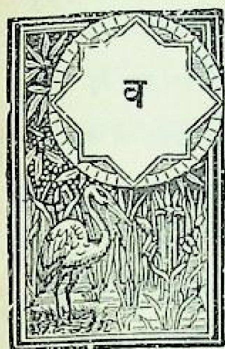
मुक्ति-प्रार्थी

प्रभो ! वह दिन फिर कब आवेगा,
इस माया के कपट-जाल से जीव मुक्ति पावेगा?
या आशा-मरीचिका में पड़ आख़िर पछतावेगा?
देखो तो, सब ओर घोरतम तम छाया जाता है;
कुटिल पुजारी अत्याचारी रह-रह डरवाता है।
बल करने के रहे न साधन, छल करने को हृदय नहीं,
कल की कमी, श्रमी हम हैं; पर श्रम करने को समय नहीं।

विघ्न एक-से-एक आ रहे योग-भंग हो जावेगा,
फिर तो इस प्रदेश में वह आलोक नहीं रह पावेगा।

लोचनप्रसाद पांडेय

समुद्री बीमा



वर्तमान-काल की बीमा-समितियाँ हमारे देश के लिये कोई नई चीज़ नहीं हैं। भारतवर्ष का प्राचीन व्यापार—खुश्की और समुद्री, दोनों मार्गों का—संसार के कतिपय देशों के साथ होता रहा है। भारतवर्ष के बड़े-बड़े जहाज़ और नौकाएँ बड़े-बड़े महासागर पार कर दूर-दूर के देशों तक भारत के खाद्य पदार्थ और तैयार माल को ले जाती थीं। हम बहुत प्राचीन समय की ओर दृष्टि-पात न कर मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब के शासन-काल में भी भारतवर्ष का समुद्री व्यवसाय अच्छी उन्नति पर पाते हैं। मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब तथा उस समय के अन्य व्यापारियों के बड़े-बड़े जहाज़ों और नौकाओं के सिवा स्वयं छत्र-पति शिवाजी महाराज के कई बड़े-बड़े व्यापारी जहाज़ और नौकाएँ थीं।

जो माल उस समय खुश्की और समुद्री मार्ग से जाता था, उसी का बीमा होता था।

हमारे देश में नदियों द्वारा भी बहुत-सा माल, भारत के एक प्रांत से दूसरे प्रांत में, ज़मीन की अपेक्षा अधिक सुबीते से, भेजा जाता था। व्यापारियों को भी नदियों द्वारा माल ले जाने में समय की बचत के साथ-साथ लाभ भी होता था। हमारे देश की कई नदियाँ प्रसिद्ध हैं; जिनमें होकर माल जाता था।

इन नदियों से भी जो माल जाता था, उसका बीमा होता था।

उस समय माल के बीमा होने के भी हमें अनेक प्रमाण इतिहासों से मिलते हैं।

यद्यपि वर्तमान व्यापारिक क्षेत्र में, प्राचीन समय में बीमा किस प्रकार होता था, इसकी कोई प्रचलित पद्धति दृष्टि-गोचर नहीं होती, तब भी "जोखिमी हुंडी" का बचा-खुचा प्रमाण भी व्यापारिक क्षेत्र में कम महत्त्व का नहीं है।

जोखिमी हुंडी, इंश्योरेंस पालिसी अर्थात् बीमे का एक इक़रारनामा है। इसका चलन अब भी बंबई और कराँची के बीच में है।

पश्चिम ने इस कला को पूर्व से सीखा है, इस बात के भी कई प्रमाण इतिहासकार देते हैं। आज पश्चिम के देश व्यापार और औद्योगिक क्षेत्र में उन्नत दशा में हैं, और वे बैंक तथा बीमा-व्यवसाय के प्रधान क्षेत्र हो रहे हैं।

इँगलैंड का लंदन-नगर आज समुद्री बीमे का प्रधान केंद्र है। आज बड़ी-से-बड़ी बीमा-समितियाँ जो हमारे दृष्टि-गोचर हो रही हैं, उनका उद्घाटन, प्रारंभ में, साधारण व्यक्तियों द्वारा, छोटे रूप में ही हुआ है।

साधारण व्यक्तियों द्वारा स्थापित छोटी-छोटी संस्थाओं ने आज उन्नति-पूर्वक विशाल रूप रखते हुए सारे संसार में ख्याति प्राप्त कर ली है।

यही हाल इँगलैंड के लायड्स की बीमा-समिति का है।

यह कौन जानता था कि लायड्स का "बीमा-गृह" समय पाकर सारे संसार में इतना विख्यात हो जायगा कि उसके मुक़ाबले में, सारे संसार में, कोई दूसरी समिति ही न होगी।

आज समुद्री बीमा-संसार में लायड्स का नाम

प्रत्येक व्यक्ति के मुख से निकलता हुआ कर्ण-गोचर होता है। भारतवर्ष की तरह इँगलैंड में भी वहाँ के व्यापारी समुद्र द्वारा भिन्न-भिन्न देशों में माल भेजते थे, और उसका बीमा वे किसी साहूकार के पास कराते थे। ये साहूकार कुछ शुल्क लेकर, हानि-पूर्ति करना स्वीकार कर, अहदनामे पर हस्ताक्षर कर देते थे।

यह बीमे का प्रारंभिक रूप था। सत्रहवीं शताब्दी में तो फिर यह व्यवसाय खूब विस्तार पा गया। लंदन के व्यापारियों ने कई "काफ़ी-गृह" खोलकर इस व्यवसाय का प्रारंभ किया। पर श्रेय किसी विरले ही व्यक्ति तथा उसकी संस्था को बदा होता है। इन काफ़ी-गृहों में एक काफ़ी-गृह श्रीयुत लायड्स का था; जिसका संचालन भी वे ही करते थे। इस काफ़ी-गृह ने व्यापारिक क्षेत्र में बड़ी ख्याति प्राप्त की। यहाँ प्रबंध भी अच्छा था। समुद्री बीमे के सभी व्यापारियों को यह गृह विशेष सुविधा-जनक था; क्योंकि यहाँ पर वे हर समय किसी-न-किसी ऐसे ज़िम्मेदार व्यक्ति को उपस्थित पाते थे, जो हर समय उनका बीमा करने के लिये तैयार रहता था। इस प्रकार लायड्स का काफ़ी-गृह दिन-पर-दिन उन्नति करने लगा, और उद्योग-शील श्रीयुत लायड्स ने सन् १७५३ में "लायड्स की खबरें" नाम का एक पत्र निकाला। उसमें देश और विदेश के सब जहाज़ों और तत्संबंधी व्यवसाय का हाल ठीक समय पर सावधानी के साथ प्रकाशित होता था। यह पत्र कुछ दिन तक ही चला। किंतु फिर यही पत्र सन् १७८३ में "लायड्स की सूची" के नाम से दूसरे रूप में प्रकाशित हुआ। सन् १७७७ में दो सार्वजनिक समवाय-समितियों का संगठन, पार्लियामेंट की विशेष आज्ञा द्वारा, हुआ।

इन दो समितियों के खुल जाने पर भी निजी बीमा करनेवाले व्यापारियों ने लायड्स के गृह में अपना व्यवसाय पूर्ववत् ही जारी रक्खा।

इस प्रकार लायड्स का काफ़ी-गृह प्रतिद्वंद्वियों की अनेक चोटों को पार कर उन्नति की सीमा पर पहुँच गया। किंतु उस समय उसके संचालन के नियम, उपनियम तथा उचित संगठन न होने के कारण कुछ व्यापारियों ने लायड्स के काफ़ी-गृह से अनुचित लाभ उठाना शुरू कर दिया। यही नहीं, उस समय ज़िम्मेदार व्यक्तियों द्वारा खुले तौर पर व्यवसाय के साथ-साथ जुआँ होने लगा। व्यवसाय के सौदे सट्टे में परिणत हो गए। इसलिये सन् १८२७ में लायड्स के "काफ़ी-गृह" के सदस्यों में से ज़िम्मेदार व्यक्तियों की एक कार्य-कारिणी समिति बनाई गई। इस समिति की नियुक्ति हो जाने पर काफ़ी-गृह का अनुचित व्यवसाय बंद हो गया, और समिति के प्रयत्न से सन् १८२८ में लायड्स का काफ़ी-गृह "लायड्स का संघ" के नाम में परिवर्तित हो गया। वही नाम आज तक चला आता है। लायड्स संघ के सदस्यों को प्रवेश-शुल्क और वार्षिक-शुल्क देना पड़ता है। उसकी एक विशेष कार्य-कारिणी समिति है। वह सदस्यों के कार्य पर निगाह रखकर सब प्रकार का प्रबंध करती है। इस संघ के सदस्य दो प्रकार के होते हैं। कुछ तो स्वयं अपनी ज़िम्मेदारी पर बीमा करते हैं, और दूसरे बीमे की दलाली करते हैं। दोनो श्रेणियों के व्यक्ति संघ के सदस्य समझे जाते हैं। सब सदस्यों को संघ के नियम-उपनियमों को स्वीकार करना पड़ता है। संघ के नियमानुसार उनका सारा व्यवसाय होता है। बहुत बड़ी संख्या में लोग संघ के हिस्सों के खरीदार हुए। लायड्स-संघ के संबंध से उनका

व्यवसाय भी खूब चमका, और आज उसी के परिणाम-स्वरूप संसार के कोने-कोने में उसके प्रतिनिधि मौजूद हैं। ये प्रतिनिधि अपने-अपने केंद्र से समस्त बीमा-संसार की ताज़ी-से-ताज़ी खबरें—जहाज़ों के आने-जाने की, डूबने व नष्ट होने की, समुद्र में तूफ़ान आने की—ठीक समय पर देते हैं।

आजकल से ही नहीं, बल्कि प्राचीन समय से व्यापारी लोग माल का बीमा बिना कराए उसे समुद्र और नदी द्वारा नहीं भेजते थे। उस समय भी इस बीमे का तहरीरी इक़रारनामा ज़रूर होता था।

समुद्री बीमे का इक़रारनामा एक इक़रारनामा है। जिसके द्वारा एक व्यक्ति या एक से अधिक व्यक्ति (जिन्हें बीमा करनेवाला कहते हैं) उसके माल, जहाज़ तथा और कोई कार्य, जो किसी विशेष प्रवास में विशेष समय के लिये हों, उनमें समुद्र द्वारा जो हानि हो, उसे पूरा करने की ज़िम्मेदारी लेते हैं।

वैसे तो अब भी योरप में बहुत-से व्यापारी निजी तौर से अपनी ज़िम्मेदारी पर बीमा करते हैं, और खुद अपना इक़रारनामा निकालते हैं, पर आजकल समुद्री बीमा-संसार में लायड्स का इक़रारनामा (बीमा-पत्र) प्रमाण-स्वरूप माना जाता है। समुद्री बीमे का इक़रारनामा क्षति-पूर्ति का एक इक़रारनामा है। समुद्री बीमे के इक़रारनामे की विशेषता यह है कि बीमा करनेवाला बीमा करानेवाले को समुद्र द्वारा हानि होने पर, जितने धन का बीमा हुआ है, उतना धन देने का वादा करता है। बीमा करनेवाला केवल हानि की ही पूर्ति करता है। जितने माल का नुक़सान होता है, उतने माल का मूल्य वह इक़रारनामे की शर्त के अनुसार देता है। बीमा करानेवाला बीमा करनेवाले की उपर्युक्त निश्चित ज़िम्मेदारी पर तय हुआ निश्चित धन शुल्क-रूप में देता है; जिसे "बीमे का शुल्क" कहते हैं।

बीमे का इक़रारनामा, अर्थात् बीमा-पत्र, कई प्रकार का होता है, और उसके भिन्न-भिन्न रूप इस प्रकार हैं—

१—लाभांश-इक़रारनामा।

इस इक़रारनामे से यह विदित होता है कि बीमा करानेवाले का बीमे के प्रति कितना वास्तविक लाभांश है। उदाहरण के लिये रुई की १०० गाँठें, हेशियन की ५००० गाँठें, चावल के १००० बोरे और तेल के १०० पीपों का बीमा।

२—प्रवास-इक़रारनामा।

इस इक़रारनामे में यह प्रकट किया जाता है कि बीमा अमुक स्थान से अमुक स्थान के लिये किया गया है। जैसे बंबई से लंदन और न्यूयार्क से कलकत्ता।

यह इक़रारनामा समय-सूचक इक़रारनामे के बिलकुल विपरीत है; क्योंकि इसमें समय का उल्लेख न होकर आने-जाने का स्थान प्रकट किया जाता है।

३—जोखिमी इक़रारनामा।

यह इक़रारनामा तब होता है, जब बड़े-बड़े जंगी जहाज़ बंदरों में तैयार होते हैं, और जिनके तैयार होने में बहुत-सा रुपया खर्च होता है। उन्हें समुद्र के तूफ़ान आदि से बचाने के लिये जहाज़ के मालिक इस श्रेणी का बीमा कराते हैं।

४—समय का इक़रारनामा।

बीमे के इस इक़रारनामे में समय का उल्लेख किया जाता है। उदाहरण के लिये श्रावण-कृष्ण १५ संवत् १९७८ से कार्त्तिक-शुक्ल ८ संवत् १९७८ तक का बीमा।

५—बंदर का इक़रारनामा।

जब जहाज़ किसी समय तक के लिये बंदरगाह में होता है, तब उसकी रक्षा के लिये इस श्रेणी का बीमा कराया जाता है।

६—मूल्य का इक़रारनामा।

इस इक़रारनामे में वस्तु का मूल्य प्रकट किया जाता है। यद्यपि यह मूल्य वास्तव में पूर्ण-रूप से निश्चित नहीं होता, फिर भी इक़रारनामे में मूल्य का उल्लेख किया जाता है। जैसे २००,००,००० रुपए का "सिंधिया नेविगेशन-शिप" का बीमा।

७—कई स्थानों पर पड़े हुए माल के मूल्य का बीमा और खुला बीमा।

इस इक़रारनामे में भिन्न-भिन्न स्थान के माल की तादाद और मूल्य शुरू में न प्रकट कर पीछे से निश्चित किया जाता है। इसे 'खुला इक़रारनामा" भी कहते हैं। इस प्रकार का बीमा करते समय सब बातें साधारण रूप से बताई जाती हैं, और इक़रारनामे में एक या एक से अधिक जहाज़ों का नाम और उनमें रक्खे हुए माल आदि का विवरण, बीमा करते समय, निश्चित-रूप से नहीं बताया जाता; किंतु एक मोटी तादाद बता दी जाती है, और जहाज़ आने के कुछ दिन पूर्व या उसके आने के बाद निश्चित-रूप से बताई जाती है।

८—शर्तवाला इक़रारनामा।

यह इक़रारनामा सट्टा कराता है। बीमे का इक़रारनामा दोनों ओर के पवित्र विश्वास पर होता है। उसमें इस तरह का इक़रारनामा होना सदैव वर्जित है। इस प्रकार का इक़रारनामा व्यवसाय के लिये हानि-कारक है। इस श्रेणी के इक़रारनामे के अनुसार बीमा करानेवाला अपने लाभ का अंश प्रकट करता है। कभी नहीं भी करता। जब लाभांश नहीं प्रकट किया जाता, तब तो इक़रारनामा सट्टा ही नहीं, बल्कि जुआँ है। इस प्रकार के व्यवसाय से सारा व्यवसाय कलंकित होता है। निर्दोष लोग ठगे जाते हैं, और मन-चले लोग अपनी चालाकी से फ़ायदा उठाते हैं। समुद्री बीमा-संसार में इस प्रकार का शर्तवाला इक़रारनामा सदा वर्जनीय, और क़ानूनन् मना है।

इन इक़रारनामों में से किसी भी श्रेणी का इक़रारनामा क्यों न हो, सबमें सच्चे विश्वास का पालन अनिवार्य है। इस विश्वास के बल पर ही बीमे का सारा कार्य अवलंबित है। जहाँ इक़रारनामे की शर्तों में किसी प्रकार की, कुछ भी, त्रुटि दिखाई पड़े, तो निर्दोष व्यक्ति उस इक़रारनामे को फ़ौरन् रद कर सकता है। धोकेबाज़ी इक़रारनामे को एकदम रद कर देती है। व्यापारिक क्षेत्र में इस प्रकार का अनुचित व्यवहार करनेवाला व्यक्ति अपने सब अधिकार खो बैठता है, और उसकी साख भी सदा के लिये नष्ट हो जाती है।

बीमा करनेवाले और बीमा करानेवाले, दोनों ओर के लोगों का आपस में ऐसा प्रत्यक्ष संबंध है कि बीमा होते समय दोनों में बीमा-संबंधी सभी बातों का पूर्ण-रूप से खुलासा हो जाना आवश्यक है। बीमा करानेवाले को समिति के संचालकों से वे बातें तो अवश्य ही प्रकट कर देनी चाहिए, जिन पर बीमे का अस्तित्व है। हाँ, जो बातें बीमे से प्रत्यक्ष-संबंध नहीं रखतीं, जो महत्त्व की नहीं हैं, तथा जिन्हें एक साधारण बीमा करनेवाला व्यक्ति भी जान सकता है, वे यदि न भी कही जायँ, तो कोई हर्ज नहीं। परंतु बीमे की मूल बातें ही छिपा रखना अनर्थ-कारक है। बीमे की प्रत्यक्ष-संबंध रखनेवाली बातें, जिन पर बीमे की सारी ज़िम्मेदारी है, यदि पीछे से बीमा करने-

वाली समिति को मालूम हो, तो समिति तुरंत उस बीमे को रद्द कर सकती है। यदि बीमा करानेवाले से कोई ग़लती भूल से हो गई हो, और उस ग़लती के मालूम पड़ने पर समिति ने बीमा रद्द कर दिया हो, तो बीमा करानेवाला व्यक्ति अपने को निर्दोष प्रकट कर जमा किए हुए शुल्क का रुपया वापस ले सकता है।

बीमा किस प्रकार होता है ?

हमारे देश में इस व्यवसाय की समितियाँ प्रायः विदेशी हैं। बड़ी-बड़ी समितियाँ जो हमारे देश में हैं, वे विदेशी समितियों की शाखाएँ हैं, या उनके संचालक लायड्स-संघ के सदस्य हैं, और वे यहाँ पर अपना निजी व्यवसाय करते हैं। बड़ी-बड़ी समितियों के निज के जहाज़ भी हैं।

जो बीमे लायड्स के यहाँ होते हैं, वे बीमे के दलालों द्वारा। ये दलाल लायड्स-संघ के सदस्य होते हैं। बीमा करानेवाला दलाल को जो हिदायतें देता है, उसके अनुसार वह लायड्स के यहाँ बीमा कराता है। वह सब बातें बीमा करनेवाले के सम्मुख रखता है, और दोनों ओर की रज़ामंदी पर बीमा कराता है। इस हालत में बीमा हो जाने पर वह दलाली का हक़दार होता है। हमारे देश में जो बीमा-समितियाँ हैं, उनके यहाँ दलाल के द्वारा, या स्वयं जाकर, बीमा कराया जा सकता है। जब दलाल किसी निजी बीमा करनेवाले व्यक्ति के पास जाता है, तब वह एक अस्थायी दस्तावेज़, जो एक साधारण पर्चा होता है, बीमा करनेवाले को लिखकर देता है। इस पर्चे में जहाज़ का नाम, मिती, बीमे की जोखिम का पूर्ण विवरण, धन, धन के जिस अंश का बीमा हुआ और बीमे का शुल्क लिखा जाता है।

बीमा करनेवाला अपने हाथ से दस्तावेज़ पर जोखिम को लिखता है, और उस पर अपने हस्ताक्षर कर उसे स्वीकार करता है। बीमा करनेवाले को इस प्रकार प्रत्येक शुल्क की प्राप्ति पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। उसे ये हस्ताक्षर तब तक करने पड़ते हैं, जब तक कि वह शुल्क का सारा धन वसूल नहीं कर लेता। यह दस्तावेज़ इक़रारनामे के स्थान में कोई साधारण दस्तावेज़ नहीं, बल्कि इक़रारनामे के समान है। दोनों ओर का कोई भी व्यक्ति इसे अकारण रद्द नहीं कर सकता; क्योंकि बीमा-संसार में दस्तावेज़ को एक बार अकारण रद्द कर देने से उस व्यक्ति की साख जाती रहती है। साख पर ही तो व्यवसाय का दारोमदार है। इसलिये दोनों ओर में से किसी भी व्यक्ति को एकाएक बीमा न रद्द करना चाहिए।

इँगलैंड में, वहाँ के अँगरेज़ी क़ानून के अनुसार, टिकट न लगाया हुआ इक़रारनामा मान्य नहीं होता। तो भी व्यापारिक क्षेत्र में सर्व-मान्य-रूप से प्रचलित यह बिना टिकट की दस्तावेज़ बराबर जारी है। लायड्स की बिना टिकट की यह दस्तावेज़ आज सर्व-मान्य है। यह सर्व-मान्यता लायड्स-संघ की अच्छी साख के कारण है। लायड्स-संघ के किसी सदस्य के हस्ताक्षर होने पर, संघ के नियमानुसार, वह दस्तावेज़ संघ तथा उसके सदस्यों को स्वीकार करनी पड़ती है। जब इस दस्तावेज़ के उपरांत असली इक़रारनामा तयार हो जाता है, तब इस दस्तावेज़ का उपयोग केवल इक़रारनामे की शर्तों के हवाले के लिये रह जाता है।

यदि बीमा उस देश में हो, जहाँ पर टिकट का क़ानून इँगलैंड के उपर्युक्त अँगरेज़ी क़ानून की तरह न हो, तो बीमे का इक़रारनामा तैयार होने के पूर्व ऊपर बताई हुई दस्तावेज़ की तरह एक

अस्थायी लिखित अहदनामा लिखा जाता है। लायड्स-संघ में इस प्रकार के अहदनामे का पूर्ण प्रचार है। किंतु जो बीमा-समितियाँ और दलाल अपना निजी व्यवसाय करते हैं, वे इस अहदनामे के स्थान पर "बीमे का नोट" निकालते हैं। उसमें सब बातें लायड्स की अस्थायी दस्तावेज़ की ही तरह लिखी जाती हैं।

बीमे के नोट का उपयोग भी इक़रारनामा तैयार होने के समय तक होता है। दोनों ओर के व्यक्ति ऐसी दस्तावेज़ों को मानने के लिये बाध्य हैं। इन दस्तावेज़ों में सब बातें नहीं होतीं, और उनका पूरा हाल तब मिलता है, जब वे असली इक़रारनामे के साथ पढ़ी जायँ। इन दस्तावेज़ों में ही टिकट लग जाने पर वे इक़रारनामे के समान हो जाती हैं।

बीमे के इक़रारनामे में यह बात और भी ध्यान देने योग्य है कि उसकी अवधि साधारण निश्चित समय से बाहर नहीं होनी चाहिए, उसमें जोखिम तथा प्रवास का स्पष्ट उल्लेख हो, और उसमें बीमा करनेवाले का नाम और जितने धन का बीमा हुआ हो, वह स्पष्ट लिखा होना चाहिए।

जी० एस्० पथिक

अपनाओगे

अपना ही अंग हैं ये अंत्यज असंख्य, इन्हें
गले न लगाया, तो अवश्य पछताओगे।
ममता के मंत्र से विषमता का विष जो
उतारा नहीं, जाति को तो जीवित न पाओगे।
पक्षाघात-पीड़ित समाज जो रहेगा पंगु,
उन्नति की दौड़ में कहाँ से जीत जाओगे?
साधना स्वराज्य की सफल कभी होगी नहीं,
अगर अछूतों को न आप अपनाओगे।

आलोचना का उत्तर



युत पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० हिंदी के अच्छे जानकार हैं। आप प्राचीन हिंदी-कवियों की कविताओं का अध्ययन करते रहते हैं। दो-तीन साल हुए मिश्रजी ने देव की अपेक्षा विहारी की कविता को घटिया ठहराने के विचार से 'देव और विहारी'-नामक एक समालोचनात्मक पुस्तक भी लिखी थी। कुछ दिनों से आप सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में भी तुलनात्मक लेख लिखने लगे हैं। आप देव की कविता पर बेतरह लट्टू हैं, उसके मुक़ाबिले में किसी भी हिंदी-कवि की कविता को अच्छी नहीं समझते! बेचारे विहारी की तो बात ही क्या, मिश्रजी ने देव की दिव्यता के आगे सूर, केशव, तुलसीदास को भी कुछ नहीं समझा। मिश्रजी 'देव और विहारी'-ग्रंथ लिखने तथा इस प्रकार की अन्य समालोचनाएँ करने में कहाँ तक कृतकार्य हुए हैं, इसकी मीमांसा करना आज के लेख का उद्देश्य नहीं। यहाँ केवल उन आक्षेपों का समाधान किया जायगा, जो मिश्रजी ने, जनवरी १९२३ की 'सरस्वती' में, पूज्यपाद पं० नाथूरामशंकर शर्मा की कविता पर किए हैं।

मिश्रजी ने शंकरजी की कविता पर नीचे-लिखे पाँच दोषों का आरोपण कर उनमें अनौचित्य की उद्भावना करने का प्रयत्न किया है। आपकी राय में शंकरजी की कविता की भाषा

(१) रूखी और 'लचकीलेपन' से शून्य होती है,

(२) उस पर संप्रदाय की छाप लगी रहती है,

(३) उसमें कितनी ही जगह 'उद्वेग-जनक उक्तियाँ' आ गई हैं,

(४) वह पिंगल-संबंधी 'विविध दोषों' से दूषित है,

(५) शंकरजी ने अन्य कवियों का 'भावापहरण' किया है।

(१) भाषा

मिश्रजी लिखते हैं कि शंकरजी की भाषा में 'लचकीलापन' नहीं है; उसमें 'एक विचित्र रुखाई और पद-पद पर भाषा-प्रवाह भंग होता दिखलाई पड़ता है।' उदाहरण में आपने शंकरजी की जो दो-तीन उक्तियाँ उद्धृत की हैं, उनमें से एक यह है—

" झगड़े झक्कड़ झूँठ, झपट झंझट के झोंगे;
धर्मवीर, व्रतशील विशारद विरले होंगे।"

× × ×

हम नहीं समझते कि शंकरजी के उपर्युक्त पद्य में 'रुखाई' और भाषा-प्रवाह-भंग किस ओर से दिखाई देता है। इस पद्य में शंकरजी ने झकार की झड़ी लगाकर झूठ का जिस प्रकार भयावह चित्र खींचा है, उसी प्रकार मृदु शब्दों में धार्मिकता की सराहना की है। झूठ का झंडा गिराकर झक्कड़ता का झाड़खंड जलाने में शंकरजी ने जिस भाषा का सदुपयोग किया है, वह धर्म-वीरता और व्रतशीलता की सीमा के अंदर नहीं आने पाई। ये पंक्तियाँ 'गर्भ-रंडा-रहस्य' की हैं। सामाजिक अत्याचार से तंग हो, धर्म-ध्वजियों के दंभ को दुतकारती हुई, क्रुद्ध कमलाबाई ने उपर्युक्त शब्द कहे हैं। एक उत्तप्त हृदय से जिस प्रकार के उद्गार निकलने चाहिए, उन्हीं का चित्र शंकरजी ने अपनी कविता में खींच दिया है। काव्य-प्रकाशादि काव्य-ग्रंथों में इस प्रकार की प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग करना उचित बताया गया है। इसी प्रकार के अन्य अनेक नियम और उदाहरण दिए जा सकते हैं। खेद है कि इस काव्य-कुशलता और शब्द-चातुरी के लिये दाद देने के बदले मिश्रजी उलटी फ़रियाद कर रहे हैं। यही बात उन उदाहृत पद्यों के संबंध में भी कही जा सकती है, जो मिश्रजी की राय में 'लचकीलेपन' से रहित और 'रूखे' हैं।

शंकरजी की कविता में सरसता की अत्यधिक मात्रा रहती है, इस बात को अनेक काव्य-मर्मज्ञ मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं। नीचे हम शंकरजी के दो-तीन पद्य उद्धृत कर पाठकों से दरियाफ़्त करते हैं कि वे मिश्र महोदय के लेखानुसार निरी रूखी भाषा में ही लिखे गए हैं, अथवा उनमें से कुछ रस भी टपकता है? हम कुछ नहीं कहते, सहृदयों के हृदय और काव्य-मर्मज्ञों के कान इस बात का निर्णय करेंगे कि मिश्रजी की बात ठीक है, अथवा हमारा कथन सत्य है—

"लाई वृषभानु की दुलारी उत ग्वालिन को,
शंकर खिलाड़ी इत नंद कौ दुलारो है;
रंगन सों गोरिन के गात गुलेनार भए,
श्याम हरियालो भयो, कौन कहै कारो है?
लाल ने अबीर औ गुलाल लै रँगीली रँगी,
लाड़ली की चादर पै चौगुनो बगारो है;
मींड़ कर मंगल समंगल मिलाय मानो,
चाँदनी पै चंद्र चूर-चूर कर डारो है।"

× × ×

"कोमल चरन चारु मंगल करनहार,
मंगल-से मान मही गोद में धरति जाति;
पंकज की पाँखुरी-से आँगुरी अँगूठन की,
भामरें बिभूति पंचबान की भरति जाति।
शंकर निरखि नख-आभा नखतावलि की,
छूटी नभ-मंडल सों पाँयन परति जाति;
चाँदनी में, चाँदनी के फूलन की चाँदनी पै,
हौले-हौले हंसन की हाँसी-सी करति जाति।"

× × ×

"कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है, कि
श्याम घन-मंडल में दामिनी की धारा है;
यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है, कि
राहु के कबंध पै कराल केतु-तारा है।
शंकर कसौटी पर कंचन की लीक है, कि
तेज ने तिमिर के हिए में तीर मारा है;
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है, कि
ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है।"

× × ×

"मान-दान माघ को, महत्त्व-दान मम्मट को,
दान कालिदास को सुयश का दिला चुकी;
रामामृत तुलसी को, काव्य-सुधा केशव को,
राधिकेश-भक्ति-रस सूर को पिला चुकी।
मुख्य मान-पान देश-भाषा-परिशोधन का
भारत के इंदु हरिचंद को खिला चुकी;
सुकवि-सभा में महावीरता सरस्वती की
शंकर-से दीन मति-हीन को मिला चुकी।"

× × ×

आगे चलकर पं० कृष्णबिहारी मिश्र लिखते हैं कि शंकरजी अपनी कविता में 'ऊल', 'ऊत' आदि अप्रचलित

शब्दों का प्रयोग किया करते हैं । हम कहते हैं, इसमें हानि क्या है ? क्या 'ऊल' और 'ऊत' हिंदी-भाषा के शब्द नहीं, अथवा उनका 'बायकाट' कर दिया गया है ? देखिए, वर्तमान प्रसिद्ध कवियों में से, हाल ही में, एक ने ऊल शब्द का प्रयोग किया है—

"जो न स्वत माया की छाया में त्रिशंकु होकर झूले,
दास-वृत्ति पा करके मन में जो न फूल करके ऊले ।"

रहा 'ऊत'-शब्द, सो अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने शंकरजी को गाली देते हुए "रहा ऊत-का-ऊत" इस पद का प्रयोग किया है । इससे अधिक प्रमाण और क्या दिया जा सकता है ?

मिश्र महाराज ! आपने शंकरजी के 'ऊत' और 'ऊल'-जैसे प्रसिद्ध हिंदी-शब्दों पर तो उँगली उठाई, पर क्या कभी नीचे-लिखे देव के 'छीछी' और 'गटकन' शब्दों का भी मुलाहिज़ा फ़रमाया है । देखिए, आपकी लिखी 'देव और विहारी' पुस्तक में ये शब्द किस प्रकार उद्धृत किए गए हैं—

"भेष भए बिष, भावै न भूषन,
भूख न भोजन की कछु ईछी ;
'देवजू' देखे करै बधु सो मधु,
दूध, सुधा, दधि, माखन छीछी ।"

× × ×

"'देव' विहँसत दुति दंतन जुड़ात जोति,
निर्मल मुकुत हीरालाल गटकन को ।"

इच्छा के लिये 'ईछी' और छूने (स्पर्श) के बजाय 'छीछी', निगलने के स्थान में 'गटकन' लिखना कैसा प्रशस्त प्रयोग है ? फिर दूध, सुधा, दधि और माखन का साथ देकर तो 'छीछी' ने बड़ा ही बीभत्स व्यापार उपस्थित कर दिया है । परंतु इन सब बातों का 'नोटिस' न लेकर, देव-भक्त मिश्रजी ने, शंकरजी के 'ऊल' और 'ऊत' शब्दों पर व्यर्थ दंश देना उचित समझा । यही नहीं, तुलसीदासजी ने भी राजकुमारों के लिये 'ढोटा' आदि शब्दों का प्रयोग करने में कोई संकोच नहीं किया ।

शंकरजी के 'छूत' शब्द को स्पर्श-बोधक मानते हुए भी मिश्रजी ने उसे अपने आक्षेप से अछूता नहीं छोड़ा । 'छूत' सदा छूने के अर्थ में आता है । शंकरजी ने अपनी कविता में इसका समुचित प्रयोग किया है । 'छूत-छैया' और 'छूत-छात' भी 'छूत' शब्द से ही बने हैं ।

"उपजाय जरा, तन झूल गया,
अटका लटका सटकापन का ।"

'सटकापन' का अर्थ शंकरजी ने "लाठी के सहारे डगमगाकर चलना" लिखा है, जो बिलकुल ठीक है । व्रज में लाठी को 'सटक' या 'सटकिया' कहकर भी बोलते हैं । न-मालूम मिश्रजी ने इसमें क्यों दोष खोजने का व्यर्थ प्रयास किया है !

"परखी सब कोमल अंगों में अकड़ टटोल-टटोल ।"

'अकड़' का अर्थ ऐंठना, कड़ा होना प्रसिद्ध है । जान नहीं पड़ता, मिश्रजी ने इसके समझने में क्यों ग़लती की । मुहाविरे में भी तो लोग रात-दिन यही बोलते हैं— "भाई, जाड़े के मारे हाथ-पैर अकड़ गए", "मरने पर शरीर अकड़ जाता है"—इत्यादि ।

ऊपर जो बातें लिखी गई हैं, उनसे पाठकों को ज्ञात होगा कि मिश्रजी ने शंकरजी की कविता-कामिनी के सिर पर व्यर्थ ही दोषों का गट्ठर लादा है । वस्तुतः उनकी कविता रसवती और सब प्रकार के काव्य-दोषों से मुक्त है । शंकरजी व्रज-भाषा और खड़ी बोली, दोनों में समान सरसता से काव्य-रचना करते हैं । यही उनकी विशेषता है ।

(२) संप्रदाय की छाप

इस शीर्षक के नीचे मिश्रजी ने पूरे एक कॉलम में केवल इतनी बात लिखी है कि "शंकरजी का संबंध आर्य-समाज से है, और वह समाजी ढंग ही की कविता लिखते हैं । वह आर्य-समाजी पहले हैं और कवि पीछे ।" हम कहते हैं, यह बात बिलकुल ठीक है । शंकरजी अपने धर्म पर इतनी ही श्रद्धा रखते हैं । मगर उन्होंने आर्य-समाज-संबंधिनी कविताओं के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी बहुत कुछ लिखा है । कदाचित् वह मिश्रजी के देखने में नहीं आया । तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, विहारीलाल आदि महाकवियों की राम-कृष्ण-विषयक कविताओं को पढ़कर क्या कोई उनमें इस कारण दोषोद्भावना कर सकता है कि वे किसी संप्रदाय-विशेष से संबंध रखती हैं । इस प्रकार तो एक जाति या धर्म के काव्य-साहित्य में विधर्मी और विजातियों के लिये कुछ भी अच्छापन शेष न रह जायगा । आर्य-समाज हौआ नहीं है । वह भी अपने ढंग से देश और धर्म की सेवा कर रहा है । उसके सिद्धांतों के कारण किसी कविता को दूषित ठहराना सरासर अन्याय है । क्या कोई सनातन-

धर्मावलंबी महाकवि हाली और अकबर के मुसलमान होने के कारण उनकी कविताओं को ग़लत बता सकता है ? अगर नहीं, तो फिर शंकरजी के काव्य पर संप्रदाय की छाप का उलाहना क्यों ?

(३) उद्वेग-जनक उक्तियाँ

पं० कृष्णविहारी मिश्र ने यहाँ इतना लिखकर ही छोड़ दिया है कि शंकरजी की कविता अश्लील और रसाभास-दोष से दूषित है । कोई-कोई कथन तो बड़ा ही उद्वेग-जनक है । इसके लिये आपने कोई उदाहरण नहीं दिया। इसके उत्तर में हम भी इतना ही कहेंगे कि शंकरजी की कविता बिलकुल अश्लील नहीं है, और न उसमें रसाभास या उद्वेग-जनकता ही है । मिश्रजी यदि अपनी उपर्युक्त प्रतिज्ञा-पूर्ति में प्रमाण देंगे, तो हम भी उसके संबंध में लिखेंगे। बे-दलील दावे के लिये कुछ नहीं कहा जा सकता ।

(४) विविध दोष

"गौरव-अंगराग मलवाले ;
मेल-मिलाप-तेल डलवाले ।
न्हाते (?) शुद्ध सुशील-सलिल से ;
काढ़ कुमति-मैली चादर को ।"

शंकरजी का उपर्युक्त पद्य 'अनुराग-रत्न' से लिया गया है । उसमें 'न्हाले' पाठ है, 'न्हाते' नहीं; न-मालूम मिश्रजी ने 'न्हाते' कहाँ से लिख दिया । अस्तु । इस पद्य में मिश्रजी क्रम-भंग-दोष बताते हैं । आप कहते हैं— "पहले अंगराग लगाया जाता है, या तेल ? फिर यह भी सोचना चाहिए कि स्नान अंगराग और तेल लगाने के पहले होगा या बाद को ?" हमारी समझ से इस पद्य में क्रम-भंग-दोष खोजना भूल है । अंगराग (उबटन*) पहले लगाया जाता है, फिर तेल की मालिश, और तदनंतर स्नान करने का नियम है। देखिए, गोस्वामी तुलसीदासजी बालकांड में लिखते हैं—

"भाइन-सहित उबटि अन्हवाए ;
छ रस असन अति हेतु जिंवाए ।"

शंकरजी के पद्य में अंगराग के बाद 'तेल डालना' लिखा है, सो ठीक है । शरीर पर उबटन हो चुकने के बाद सिर में तेल 'डाला गया', तो इसमें क्रम-भंगता क्या हुई ? सिर में तेल डलवाने का मुहाविरा प्रसिद्ध है। शरीर पर तेल डलवाना कोई नहीं कहता । हाँ, उसका मलवाना ज़रूर कहा जाता है । आगे चलकर मिश्रजी लिखते हैं कि—"न्हाले शुद्ध सुशील सलिल से, इसमें 'सुशील' सलिल का विशेषण है, या संबोधन ?" हमारी राय में मिश्रजी ने यहाँ बड़ी ग़लती की है । यदि लेख लिखने से पूर्व तनिक विचार लेते, तो उन्हें मालूम हो जाता कि जिस प्रकार पद्य के पूर्वोक्त दो चरणों में रूपक द्वारा गौरव को अंगराग और मेल-मिलाप को तेल बतलाया गया है, उसी प्रकार तीसरी पंक्ति में सलिल को 'सुशील' अर्थात् अच्छे स्वभाव (खुशखुल्क़ी) से उपमा दी गई है । खेद है कि इतनी साधारण बात पर भी मिश्र-जी विचार न कर सके ।

× × ×

"कपट कंज-मकरंद हैं ।"

मिश्रजी की राय में शंकरजी को इस पद्य में अच्छी वस्तु 'कंज-मकरंद' की उपमा बुरी चीज़ कपट से न देनी चाहिए थी । परंतु हमें तो कपटियों की कुटिलता दिखाने के लिये 'कंज-मकरंद' का आश्रय लेने में कोई हानि नहीं दिखाई देती । गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी ऐसा किया है । देखिए—

"अस कहि रही चरण गहि रानी ;
प्रेम-पंक जनु गिरा समानी ।"

रामायण के बालकांड में गरीबिनी 'गिरा' को प्रेम की 'कीच' (पंक) में लथेड़ा गया है । आगे देखिए, इसी पुस्तक के अयोध्याकांड में "पाय कपट-जल अंकुर जामा" लिखा है । जिस कपट की जल के साथ उपमा दी जा सकती है, उसी को 'जलज' के साथ न घटाना कहाँ का न्याय है, यह बात हमारी समझ में नहीं आई ।

× × ×

"श्रोमुद्भूत नाम शंकर का सकल कलाधर धन्य ।"

उपर्युक्त पद्य में 'श्रोमुद्भूत' शब्द मिश्रजी के कानों में खटकता है ; अतएव वह शब्द होने पर भी 'श्रुति-कटु' है । परंतु हमें उसमें श्रुति-मधुरता के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता । सहृदय-समाज उसका साक्षी है । वस्तुतः कर्ण-कटुत्व कुछ और बात है । उसका उदाहरण देवजी के एक कवित्त के नीचे-लिखे चरण से भली भाँति मिल जाता है—

* अंगराग=उबटन (मंगलकोष) । केसर-चंदन आदि के लेप को भी अंगराग कहते हैं ।

"नीचे को निहारत, नगीचे नैन, अधर
दुबीचे परयौ श्यामारुण आभा-अटकन को।"

यहाँ देवजी के "श्यामारुण" पर हम पाठकों का ध्यान विशेष-रूप से आकर्षित करते हैं। सहृदय पाठक कृपया बतावें कि शंकरजी का ओमुद्‌भूत बुरा मालूम होता है, या देवजी का 'श्यामारुण'। निर्णय करते समय यह न भूल जाइए कि 'ओमुद्‌भूत' खड़ी बोली की कविता में प्रयुक्त हुआ है, परंतु 'श्यामारुण' व्रज-भाषा की वाटिका के अंतर्गत है।

× × ×

इसके बाद मिश्रजी ने शंकर की कविता में यति-भंग-दोष दिखाने की चेष्टा की है, और सबूत में 'गर्भ-रंडा-रहस्य' के कुछ पद्य उद्धृत किए हैं। स्थूल रीति से यति-भंग वह दोष है, जहाँ किसी पाद में नियत विराम पर शब्द के दो टुकड़े हो जायँ। इस दोष को संस्कृत या हिंदी के किसी भी पुराने कवि ने नहीं माना। सुप्रसिद्ध 'गंगालहरी' के रचयिता पंडितराज जगन्नाथ के—

"न काका नाकाधीश्वरनगरसाकांक्षमनसः"

इस पद में 'धी' पर यति भंग-दोष मौजूद है, तो क्या उनका काव्य दूषित हो सकता है? दूर जाने की ज़रूरत नहीं, हम मिश्रजी के इष्ट देवजी की ही कविता से यति-भंग के कुछ उदाहरण नीचे देते हैं—

"नीचे को निहारत, नगीचे नैन, अधर
दुबीचे परयौ श्यामारुण आभा-अटकन में।"

× × ×

"नीलमणि भाग हैं, पदुमराग ह्वैकै,
पुखराग है रहत बिध्यो छूवै निकटन को।"

× × ×

"राखी गहि गातनि ते, गातनि न रही,
अधरातन निहारैं अधरातन उसासुरी।"

× × ×

"मोहीं अबलाजन मरत, अब लाज औ
इलाज ना लगत, बंधु, साजन उदासुरी"

ऊपर देव-कृत घनाक्षरी-छंद के उदाहरण दिए गए हैं। इस छंद में १६ अक्षरों पर यति होती है। अब देखिए, रेखांकित शब्दों में 'यति-भंग-दोष' है कि नहीं। दो ही बातें हो सकती हैं। या तो छंदःशास्त्र ग़लत है, या देवजी के ये पाद अशुद्ध हैं। एक नहीं, देवजी के ऐसे बीसों पद्य पेश किए जा सकते हैं, जो यति-भंग-दोष से दूषित हैं।

पिंगल में समस्त पदों के लिये यति-भंग-दोष नहीं माना गया। शंकरजी की कविता में जहाँ मिश्रजी ने यति-भंग दिखाने की चेष्टा की है, वहाँ समस्त पद हैं—

'गोविंद-मिलन', 'गोलोक-धाम'
'धर्म-महामंडल', 'प्रेम-कथा'

ये सब समस्त पद होने के कारण यति-भंग-दोष के दायरे से बाहर हैं। गोविंद एक यति में और मिलन दूसरी में बेखटके प्रयुक्त हो सकते हैं। परंतु देवजी के दु + बीचे, पुख + राग, अध + रातन, इ + लाज आदि के लिये ऐसी व्यवस्था नहीं। सिद्ध हुआ कि शंकरजी की कविता यति-भंग-दोष से—यदि वह दोष माना जाय—मुक्त और देवजी की उससे युक्त है।

× × ×

"कारंडव कलहंस करें, जल-केलि निहारें।"

इस पंक्ति को उद्धृत कर मिश्रजी कहते हैं कि "बरसात में हंस नहीं रहते। फिर शंकरजी ने 'पावस-पंचाशिका' में उनका वर्णन क्यों किया?" वर्षा में हंस नहीं रहते? क्या भाड़ में चले जाते हैं? भला शंकरजी ने यह कहाँ लिखा है कि पावस में हंस अलीगढ़ के किसी तालाब में 'जल-केलि' करते हैं, या सीतापुर की पोखर में पंख फड़फड़ाते रहते हैं। वस्तुतः हंस और कलहंस, दोनों दो प्रकार के जल-पक्षी हैं। शंकरजी ने 'कलहंस' का वर्णन किया है। ये जल-पक्षी जहाँ भी रहते हैं, बरसात में जल-बाहुल्य के कारण प्रसन्न रहते हैं; तालाब के खूब लबालब भर जाने के कारण हर्ष से और भी अधिक किलोलें करते हैं। पावस-ऋतु दो-चार, दस-पाँच ज़िलों के लिये तो होती ही नहीं, सारे देश में मेह बरसता है, और उससे जल में रहनेवाले कलहंस अथवा हंस का प्रसन्न होना स्वाभाविक है। शंकरजी के इस भाव को न समझ अन्य अनेक प्रकार की खींच-तान करना व्यर्थ है।

(५) भावापहरण

इस शीर्षक के नीचे मिश्रजी लिखते हैं कि शंकरजी ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का 'भावापहरण' किया है, और वह उन कवियों की रमणीयता की रक्षा नहीं कर सके। यह मानते हुए भी कि कभी-कभी एक कवि के भावों की झलक अकस्मात् दूसरे कवि की कविता में देख पड़ती है, हम इस बात की संभावना कर सकते हैं कि कदाचित् शंकरजी ने

पद्माकरजी के उल्लिखित कवित्व का भावापहरण किया हो। पर हमारी राय में भावापहरण करना कोई बुरी बात नहीं है। तुलसी, केशव, सूर, विहारी और देव तक ने ऐसा किया है। फिर शंकरजी पर ही इलज़ाम क्यों? किरातार्जुनीय-काव्य के ८वें सर्ग के नीचे-लिखे श्लोक का 'भावापहरण' विहारी ने जिस ख़ूबी से किया है, वह देखने लायक़ है—

"प्रियेण संग्रथ्य विपक्षसन्निधा × × ×"

इत्यादि श्लोक पर विहारी का दोहा है—

"तुम सौतिन देखत दई अपने हिय तें लाल,
फिरति सबनि में डहडही उहै मरगजी माल।"

शायद विहारी के इस दोहे में भी 'डहडही' और 'उहै' शब्दों में मिश्रजी को 'श्रुति-कटुता' दिखाई दे। ख़ैर, तुलसीदासजी ने तो सबसे अधिक भावापहरण किया है, और देव भी इस रोग से नहीं बचे। तुलसीदास-जी ने पूर्ववर्ती कवियों की कविताओं के भावों का ही नहीं, शब्दों तक का किस प्रकार अपहरण किया है, उसका मुलाहिज़ा फ़रमाइए—

"बंदौं मुनिपद-कंज, रामायण जिन निरमयउ;
सखर, सुकोमल, मंजु, दोष-रहित, दूषण-सहित।"

यह सोरठा त्रिविक्रम-कृत नलचंपू-काव्य के नीचे-लिखे श्लोक का शब्दशः अनुवाद है—

"सदूषणाऽपि निर्दोषा सखरापि सुकोमला;
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा।"

और भी लीजिए—

"मूक होहिं बाचाल, पंगु चढ़ैं गिरिबर गहन;
जासु कृपा सु दयालु, द्रवहु सकल कलि-मल-दहन।"

यह—"मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्" इत्यादि श्लोक का तरजुमा है।

और भी लीजिए—

"भानु पृष्ठ सेइहि उर आगी;
सेइय स्वामि सकल छल त्यागी।"

'अर्क पृष्ठेन सेवयेत्' इत्यादि श्लोक का अनुवाद है। और भी इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं। पर विस्तार-भय से उन्हें नहीं लिखते।

× × ×

"त्याग विरोध मिले समता से सरदी और निदाघ।"

इस पर मिश्रजी का आक्षेप है कि वसंत में शीत और निदाघ (गरमी) का समता-सम्मिलन कैसा? हम पूछते हैं, वसंत में निदाघ और शीत का समता-सम्मिलन नहीं होता, तो क्या वर्षा और गरमी की अकुलाहट होती है? देखिए, वसंत-वर्णन में विहारी भी शंकर का समर्थन करते हैं—

"यह बसंत न निरी गरम, अरी न सीतल बात।"

यह वसंत-ऋतु न निरी गरम है, और न बिलकुल ठंडी हवा ही चलती है (अर्थात् सरदी गरमी का समता-सम्मिलन है)।

× × ×

"हरि, मृग प्यासे पास खड़े हैं; भूले नकुल, भुजंग पड़े हैं।
कंक, शचान, कबूतर, तोते, निरखे एक पेड़ पर सोते।"

मिश्रजी ने ये पद्य शंकरजी के "निदाघ-वर्णन" से उद्धृत किए हैं। आप कहते हैं कि "भूले नकुल, भुजंग पड़े हैं", इसमें भूले शब्द ने 'समीप निवास' की विचित्रता को बहुत कम कर दिया है। पर हमारी राय में इस 'भूल' ने निदाघ की प्रबलता बढ़ाने में बहुत सहायता की है। और, यहाँ इस शब्द के प्रयोग से शंकरजी का यही आशय जान पड़ता है। नेवला सर्प का शत्रु है। वह चाहे, तो अब, जब कि दोनों पास-ही-पास पड़े हैं, भुजंगजी के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दे; परंतु वहाँ तो गरमी इतनी तेज़ पड़ रही है कि नेवला साँप से वैर भूलकर ख़ुद अपनी जान की ख़ैर मना रहा है। गरमी कम हो, तो प्राण बचें! जिस ऊष्मा की घबराहट से व्यथित हो दुश्मन को अपने शिकार की भी सुध न रहे, उसका कुछ ठिकाना है!

आगे चलकर मिश्रजी लिखते हैं कि "जब शचान, कबूतर और तोते को हम एक ही वृक्ष पर 'सोते' पाते हैं, तब तो हमें निदाघ की विकरालता भूल जाती है। घोर गरमी में नींद कैसी?" हमारी राय में इससे भी निदाघ की प्रचंडता में कोई कमी नहीं दिखाई देती। बिलों में रहने-वाले नकुल और भुजंग तो गरमी के कारण अपना वैर ही भूल गए थे, परंतु सूर्य की तपिश में उड़नेवाले ये बेचारे पक्षी तो मूर्च्छित पड़े हैं, उन्हें तन-बदन तक की सुध नहीं, और इसी से वे हमें 'सोते'-से देख पड़ते हैं। हमारी राय में इन पंक्तियों से शंकरजी का यही आशय प्रकट होता है।

× × ×

अंत में मिश्रजी, शंकरजी का नीचे-लिखा छंद उद्धृत करके,

कहते हैं कि इसका भाव पद्माकरजी के कवित्त से लिया गया है, और शंकरजी उसके चमत्कार की रक्षा नहीं कर सके—

"शंकर नदी, नद, नदीसन के नीरन की
भाप बन अंबर तें ऊँची चढ़ जायगी ;
दोनों ध्रुव छोरन लौं पल में पिघलकर,
घूम-घूम धरनी धुरी-सी बढ़ जायगी।
झारेंगे अँगारे ये तरनि, तारे, तारापति,
जारेंगे ख-मंडल में आग मढ़ जायगी ;
काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नाहिं,
जो पै वा वियोगिनी की आह कढ़ जायगी।"

उपर्युक्त छंद की दूसरी पंक्ति में जो 'भाप' शब्द है, वह सरस्वती में 'भाव' छपा है ; जिससे अर्थ समझने में पाठकों को भ्रम हो सकता है। इस छंद को मिश्रजी खड़ी बोली का बताकर 'नदीसन' और 'नीरन' की 'अनोखी बहार' पर आश्चर्य करते हैं। खेद है कि मिश्रजी व्रज-भाषा के छंद को खड़ी बोली का समझकर दूसरों को भी भ्रम में डालना चाहते हैं। मालूम होता है, मिश्रजी खड़ी-पड़ी बोली की खिचड़ी को ही वर्तमान व्रज-भाषा का रूप देना चाहते हैं। जान पड़ता है, उन्हों ने इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रख 'देव और विहारी' के ८८ पृष्ठ पर निदर्शन-रूप नीचे-लिखी चार पंक्तियाँ लिखी हैं—

"देव-विहारी श्रीव्रजराज-
नेह निबाहैं धनि रसराज !
कृष्णविहारी युग कर जोर,
वंदत संतत युगलकिशोर।"

शंकरजी-कृत व्रज-भाषा के उपर्युक्त छंद में तो मिश्रजी को 'नीरन' और 'नदीसन' की 'अनोखी बहार' देख पड़ने लगी, परंतु अपनी चार पंक्तियों के 'कृष्ण', 'युग' और 'युगलकिशोर' की ओर ध्यान तक नहीं दिया ! मिश्रजी, आप ही बताइए, व्रज-भाषा के नियमानुसार आपकी कविता में 'जुग' और 'जुगलकिसोर' चाहिए, या जो आपने लिखा है सो ?

अब हम पद्माकरजी के उस छंद को उद्धृत करते हैं, जिसको शंकरजी के 'नीरन', 'नदीसन'-वाले कवित्त से बढ़िया बताकर मिश्रजी ने लिखा है कि शंकरजी उसके चमत्कार की रक्षा नहीं कर सके—

"दूरि ही तें देखत बिथा मैं वा बियोगिनि की,
आई भले भाजि ह्याँ इलाज मढ़ि आवैगी।
कहै "पदमाकर" सुनो हो घनश्याम जाहि,
चेतत कहूँ जो एक आह कढ़ि आवैगी।
सर-सरितान को न सूखत लगैगी देर,
एती कछु जुलुमिनि ज्वाला बाढ़ि आवैगी।
ताके तन-ताप की कहौं मैं कहा बात, मेरे
गात ही छुए तें तुम्हें ताप चढ़ि आवैगी।"

पद्माकरजी बड़े कवि थे, अतः हमें यहाँ शंकरजी और पद्माकरजी की तुलना करना अभीष्ट नहीं। पर साथ ही मिश्रजी की यह बात भी नहीं मानी जा सकती कि शंकरजी भावापहरण-पूर्वक पद्माकरके चमत्कार की रक्षा नहीं कर सके। हमारी राय में शंकरजी ने पद्माकर का मज़मून छीन लिया है, और उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति को पूर्ववर्ती कवि की अपेक्षा बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया है। अतिशयोक्ति की हद कर दी है। पद्माकरजी की कल्पना में 'ताप चढ़ि' आने के लिये 'गात छूने' की आवश्यकता पड़ेगी; परंतु शंकरजी की विरहिणी की 'आह कढ़' जाने-मात्र से सृष्टि का संहार हो जायगा—मनुष्य, पशु, पक्षी, पेड़, पहाड़, सब नष्ट हो जायँगे, और आसमान से अंगारे बरसने लगेंगे।

हरिशंकर शर्मा
रामस्वरूप शास्त्री

मिसर की बहुत पुरानी समाधि



सर-देश में लगभग तीन-साढ़े तीन हज़ार वर्ष की पुरानी जो समाधि हाल में खोदने से निकली है, उसकी चर्चा योरप और अमेरिका के पत्रों द्वारा सारे संसार में फैल गई है। भारत के भी पत्रों में उस समाधि और उसके भीतर से निकली हुई बहु-मूल्य वस्तुओं पर लेख और टिप्पणियाँ निकल रही हैं। विलायत के Sphere, graphic, Illustrated London News और Times आदि सुप्रसिद्ध पत्रों में वहाँ के सचित्र वर्णन छपे हैं। उन्हीं से सामग्री लेकर बँगला

के भारतवर्ष-पत्र ने एक सचित्र लेख छापा है। यह लेख उसी का आश्रय लेकर लिखा गया है।

इंगलैंड के लॉर्ड कार्नरवान और उनके सहकारी अमेरिकन युवक हावर्ड कार्टर का, जिनके तत्त्वावधान में यह खुदाई और जाँच का काम हो रहा है, अनुमान है कि वह मिसर के अठारहवें राजा तूतुनखामन की समाधि है। उसके अंदर से अनेक बहु-मूल्य वस्तुएँ और रत्नाभूषण निकले हैं। सोलह वर्ष के लगभग हुए, जब से पूर्वोक्त दोनों विद्वानों ने मिसर की प्राचीन राजधानी थीब्स के निकट लक्सर-नामक स्थान में मिसर के नरपतियों के समाधि-क्षेत्र में किसी राजकीय समाधि का पता लगाने का काम हाथ में लिया था। कारण, उस समाधि का कहीं पता नहीं लगता था। वह समाधि राजा तूतुनखामन की ही थी, जो अब निकली है, और लगभग तीन हज़ार वर्ष पहले की है। इतने दिन लगातार परिश्रम करते रहने पर अब जाकर उक्त समाधि का पता लगा है।



मिसर के राजा तूतुनखामन की मूर्ति
(नीचे राजा की तीन सील-मोहरें हैं)

मिसर के बीसवें राजा चतुर्थ 'रामसेस' की समाधि इस समाधि के ऊपर बनी हुई थी, और वह बहुत पहले डाकुओं के हाथ से लुट चुकी है। किंतु उसके नीचे बना हुआ यह तूतुनखामन का समाधि-भवन (मक़बरा) अभी अछूता है। प्रायः तीन हज़ार वर्ष हुए, जब से आज तक किसी मनुष्य ने इसके भीतर प्रवेश नहीं किया। इसके भीतर की सब बहु-मूल्य सामग्री जैसी-की-तैसी यथा-स्थान रक्खी हुई है। तूतुनखामन के पहले और पीछे के अधिकांश राजों की समाधियाँ लुटेरों के हाथ से लुट चुकी हैं; पर सौभाग्यवश यह जैसी-की-तैसी सुरक्षित है। इससे उस समय की बहुत-सी बातें प्रकाश में आकर संसार के पुरातत्त्व-संबंधी ज्ञान को बढ़ावेंगी।

समाधि का वृत्तांत वर्णन करने के पहले उसका पता लगानेवाले सज्जन का परिचय दे देना उचित है। लॉर्ड कार्नरवान * का जन्म इँगलैंड में, एक

* खेद की बात है कि जाँच करते-ही-करते, अभी हाल ही में, मिसर की राजधानी कैरो में, बीमार होकर लॉर्ड महोदय परलोक सिधार गए हैं। मिसरवालों का विश्वास है कि समाधि खोदने से ही इनकी अकाल मृत्यु हुई है। दैवी या भूत-योनि में स्थित आत्माओं की शक्ति पर विश्वास करनेवाले अन्यदेशीयों का भी यही ख़याल है। विलायत की प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका मिस मेरी कॉरेली ने प्रकाशित किया है कि उन्होंने एक बहुत प्राचीन अरबी-पुस्तक के अनुवाद में पढ़ा था कि जो कोई मिसर के मक़बरे खोदकर गुप्त धन का पता लगावेगा, उसे घोर विपत्ति का सामना अवश्य करना पड़ेगा। सर ए० कोननडायल ने भी लिखा है कि किसी बुरे प्रभाव से ही लॉर्ड कार्नरवान की मृत्यु हुई है। वह ऐसे और भी उदाहरण पेश करते हैं। कहते हैं, ब्रिटिश म्यूज़ियम में एक रानी (मिसर की) की ममी (दैवी शक्ति से सुरक्षित) रक्खी थी, उसे छूने के कारण उनके एक मित्र बीमार होकर मर गए। सर विलियम के लड़के ने भी इसी फेर में डूबकर जान गँवाई। उक्त ममी की छाती पर स्पष्ट लिखा था कि जो मुझे क़ब्र से निकालेगा, उसकी मृत्यु हो जायगी। कोननडायल का कहना है कि मिसर के भूत-विद्या जाननेवाले आज भी ३-४ हज़ार वर्ष की मृत आत्माओं से बातें करते हैं। मेरी कॉरेली और कोननडायल की धारणा ठीक मालूम पड़ती है। कारण, अभी समाचार मिला है कि हावर्ड कार्टर भी बीमार पड़ गए हैं। ईश्वर उनकी रक्षा करें।—संपादक

प्रतिष्ठित प्राचीन कुल में, सन् १८६६में, हुआ था। सन् १८६० में उन्हें पुश्तैनी लॉर्ड की उपाधि मिली, और उसी वर्ष विवाह भी हुआ। वह कार्नरवान-वंश के पाँचवें अर्ल हैं । उनके अधिकार में बहुत धन और संपत्ति है। अर्थात् वह धनी, मानी और ज्ञान भी हैं। एक दफ़े मोटर की टक्कर से गहरी चोट खाकर वह बहुत दिन तक पड़े भोगते रहे। उसके बाद चंगे हो उठने पर और सब काम-काज छोड़कर मिसर के पुरातत्त्व की खोज और जाँच में लग गए। अमेरिकन युवक हावर्ड कार्टर इस खोज के काम में उनका दाहना हाथ हैं। सन्



मिस्टर हावर्ड कार्टर

१६१३-१४ में लॉर्ड महाशय ने हावर्ड कार्टर के साथ मिलकर एक पुस्तक प्रकाशित की। पुस्तक का नाम है, 'थीब्स में पाँच साल खोज।' उसके बाद उन्होंने सन् १६२१ में एक प्रदर्शिनी की, जिसमें वे सब चीज़ें दिखलाई गईं, जो कि मिसर में पुरातत्त्व की खोज करते समय हस्तगत हुई थीं। लॉर्ड कार्नरवान के दो संतान हैं, एक पुत्र और एक कन्या। पुत्र सैन्य-विभाग में काम करता है, और कन्या 'इवेलिन' उन्हीं के साथ मिसर के पुरातत्त्व की खोज और जाँच में काम करती है। लॉर्ड कार्नरवान का चित्र गत संख्या में दिया जा चुका है।

हावर्ड कार्टर को जिस समय राजा तूतुनखामन की समाधि का पता लगा, उस समय लॉर्ड कार्नरवान इँगलैंड में थे। कार्टर का टेलीग्राम पाते ही कन्या को साथ लिए वह मिसर में उपस्थित हुए। कार्टर साहब उनकी अपेक्षा कर रहे थे। काम बंद था। कार्नरवान के पहुँचते ही फिर काम शुरू हुआ। समाधि-गृह की दीवार खोदकर बड़ी मुश्किल से उन्होंने राजा तूतुनखामन की क़ब्र के घर में प्रवेश किया *। उस समय भी इस क़ब्र के भीतर प्रवेश करने की सीधी राह—असली द्वार—का पता नहीं लगा था।

तूतुनखामन की समाधि के घर में प्रवेश करके इन लोगों ने मिसर-नरेश की बहुत-सी बहु-मूल्य सामग्री अवश्य देख पाई, किंतु राजा के शव का पता नहीं लगा, राजा की ममी † कहीं न देख पड़ी। ख़ैर साहब, खोज होने लगी। शवाधार को खोजते-खोजते उन्होंने देखा, उसी कमरे में दूसरी ओर दीवार में एक बंद द्वार है! तब तो आशा से उत्फुल्ल होकर उन्होंने अनुमान किया कि इस बंद द्वार के उधर ज़रूर दूसरा कमरा है, और उसी कमरे में तूतुनखामन का शव मिलेगा। मगर उस दूसरे कमरे में पहुँचकर भी उन्हें हताश होना पड़ा। उस कमरे में यद्यपि और भी

* इस मक़बरे के प्रवेश-द्वार और आस-पास के दृश्य का चित्र भी गत संख्या में दिया जा चुका है।

† मिसर में, पूर्व समय में, लाश पर एक प्रकार का रोग़न लगा देते थे, जिससे लाश हज़ारों वर्षों तक बिगड़ती नहीं थी। उन्हीं सुरक्षित लाशों को ममी कहते हैं।

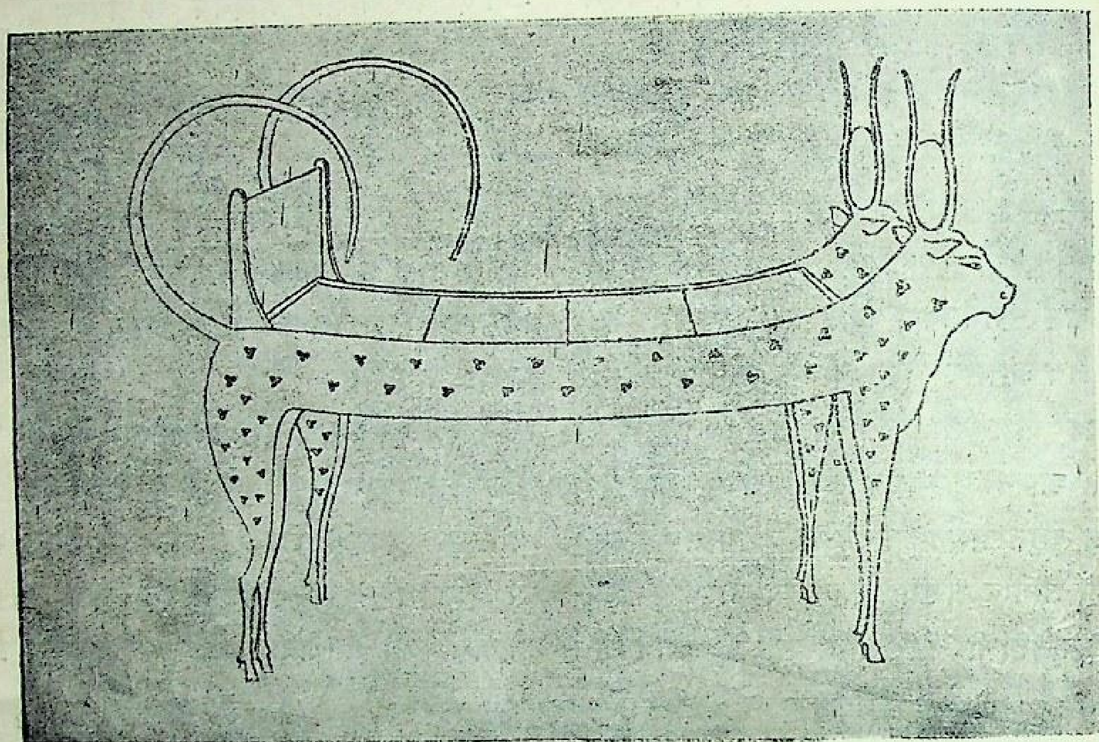
बहुत-सी बहु-मूल्य सामग्री पाई गई, मगर तूतुनखामन के शव का पता नहीं था ! तब फिर और भी अधिक उत्साह से जाँच शुरू हुई। कार्टर को दूसरे कमरे के बाद और एक तीसरे कमरे के चिह्न देख पड़े। अब की आशा और आनंद की सीमा नहीं रही। मगर बहुत चेष्टा करने पर भी तीसरे कमरे में प्रवेश करने का दरवाज़ा नहीं मिला। तब लाचार होकर दीवार खोदकर, चोर की तरह सेंध लगाकर, ये लोग भीतर घुसे। अब की आशा पूर्ण हुई। इस तीसरे कमरे में महाराज तूतुनखामन का बहु-मूल्य शवाधार मौजूद था। वहाँ तीन हज़ार वर्ष पहले का अद्भुत राज्यैश्वर्य दिखानेवाली और भी बहुत-सी सामग्री थी। उसे देखकर ये लोग आश्चर्य से अवाक् हो गए। इनकी विमुग्ध दृष्टि के सामने मिसर की प्राचीन सभ्यता, संपत्ति और कारीगरी अतुलनीय गौरव की महिमा से मंडित और प्रत्यक्ष हो उठी !

लॉर्ड कार्नरवान ने खुद इस अद्वितीय अद्भुत आविष्कार का आद्यंत मनोहर वर्णन लिखकर विलायती टाइम्स-पत्र में छपवाया है। उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

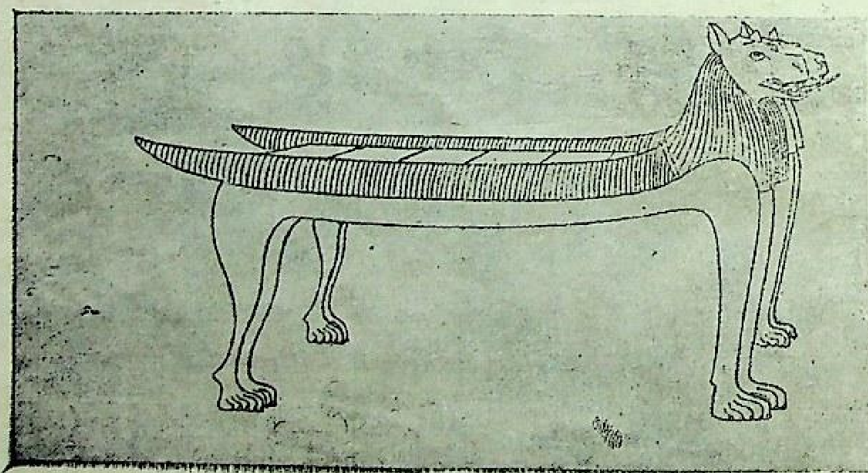
पहले कमरे में प्रवेश करते ही सबसे पहले हमें तीन अत्यंत अद्भुत शाही पलंग देख पड़े। वे पलंग सुनहले रंग से रँगे हुए और आदि से अंत तक अनुपम, अनिर्वचनीय, अद्भुत नक़्क़ाशी की कारीगरी से सुशोभित हैं। सिंह,



एक सिंह-शय्या, जिस पर राजा तूतुनखामन का नाम खुदा है

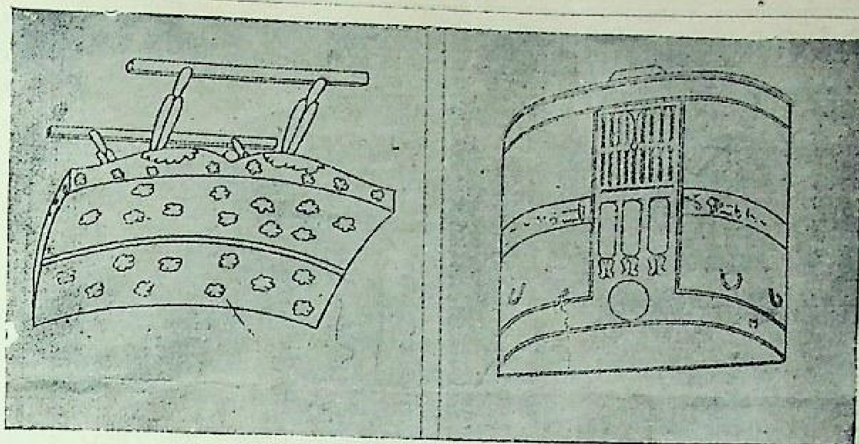


राजा के सोने की स्वर्ण-शय्या



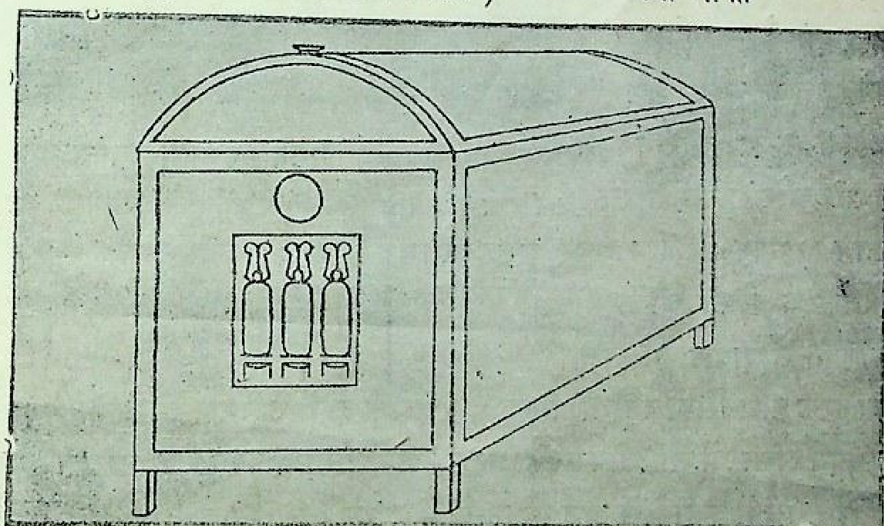
राजा का और एक पलंग

सर्प और मिसर की सौंदर्य-देवी हाथोरा की मूर्तियाँ उन्हें अलंकृत किए हुए हैं। इन पलंगों के ऊपर जो शय्या-पीठ है, उसका रंग उज्ज्वल सुनहरा है, उसमें हाथीदाँत और अन्य बहु-मूल्य पत्थर जड़े हुए हैं, उसमें मनोहर अद्भुत सूक्ष्म नक़ाशी का काम किया हुआ है। उस मक़बरे में बहुत ही सुंदर कारु-कार्य के कारण दर्शनीय असंख्य पेटियाँ (संदूकें) भी हैं। एक बक्स में ख़ास तौर पर आबनूस और हाथीदाँत का काम कारीगरी के साथ किया हुआ है, और उसके ऊपर सोने

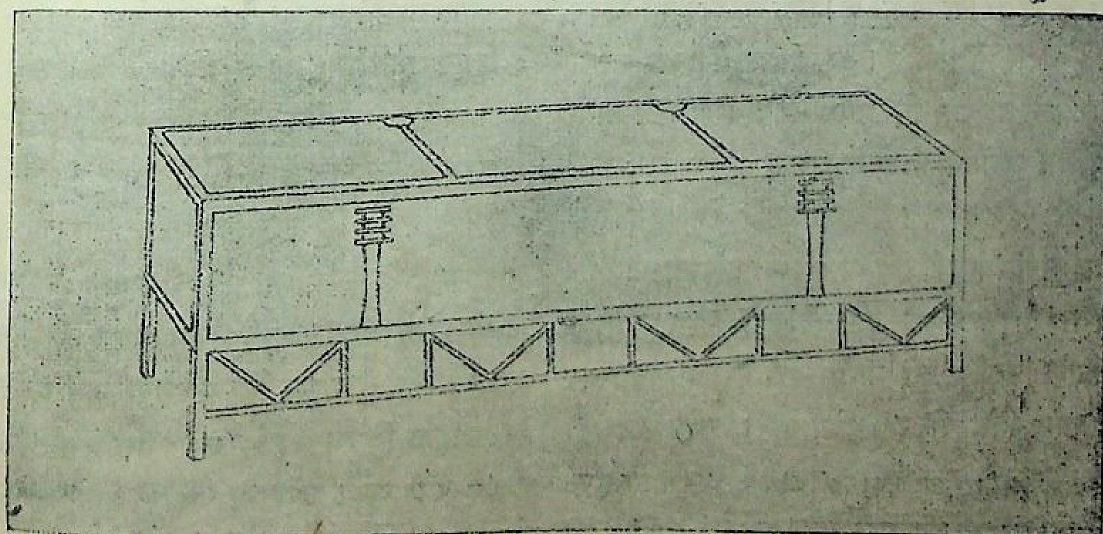


मणि-मुक्ता-जटित सुवर्ण की पेटी
(राजा का मुकुट या शिरस्त्राण रखने के लिये)

आबनूस और हाथीदाँत की
बनी चौकी



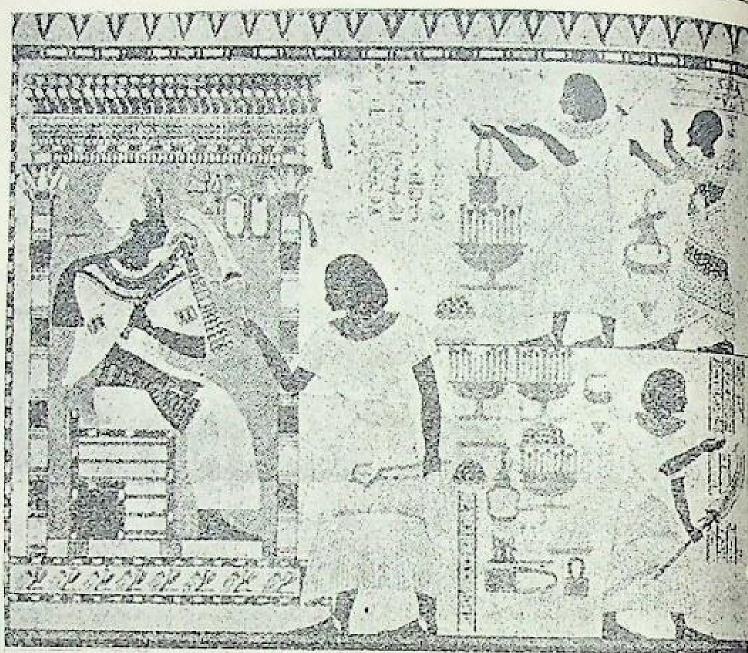
एक पोशाक रखने की संदूक; जिस पर राजा और रानी की मोहर अंकित है



राजा की पोशाक रखने की संदूक

के अक्षरों में कोई लिपि खुदी हुई है। और एक पलंग में पाताल का दृश्य पाया गया है । अन्य एक में राजा की पोशाक रक्खी है। उसमें बहुत बारीक़ और सुंदर सुई की कारीगरी दिखाई गई है। उसी में बहुत-से बहु-मूल्य मणि-माणिक्य-मुक्ता आदि रत्न और राजा की स्वर्ण-पादुकाएँ भी मिली हैं।

एक आबनूस की चौकी मिली है। इस पर हाथीदाँत का पच्चीकारी का काम किया हुआ है, और हंस के पैर की आकृति के चार पाए हैं; जिनमें सुचतुर सिद्धहस्त कारीगर ने बड़ी ही ख़ूबसूरती और सफ़ाई के साथ खुदाई का काम किया है । सूक्ष्म कारु-कार्य-खचित एक छोटी चौकी भी मिली है ; जो लड़कों के लायक़ है। राजा तूतुनख़ामन का एक राज-सिंहासन भी मिला है। उसका शिल्प-सौंदर्य संसार में अद्वितीय प्रतीत होता है। आज तक तो जगत् में कहीं ऐसे अनुपम कारु-कार्य का निदर्शन नहीं देखने को मिला ! चित्र गत संख्या में दिया जा चुका है। एक सुवर्ण की सुंदर बैठक (कुर्सी) मिली है। उसकी अपूर्व शिल्प-शोभा देखकर दर्शक को विस्मय से अवाक् हो जाना पड़ता है। उसकी पीठ में राजा और रानी की प्रतिमूर्ति अंकित है । उसमें आदि से अंत तक नीलम, चुन्नी, वैडूर्य आदि रत्नों का जड़ाऊ काम है।

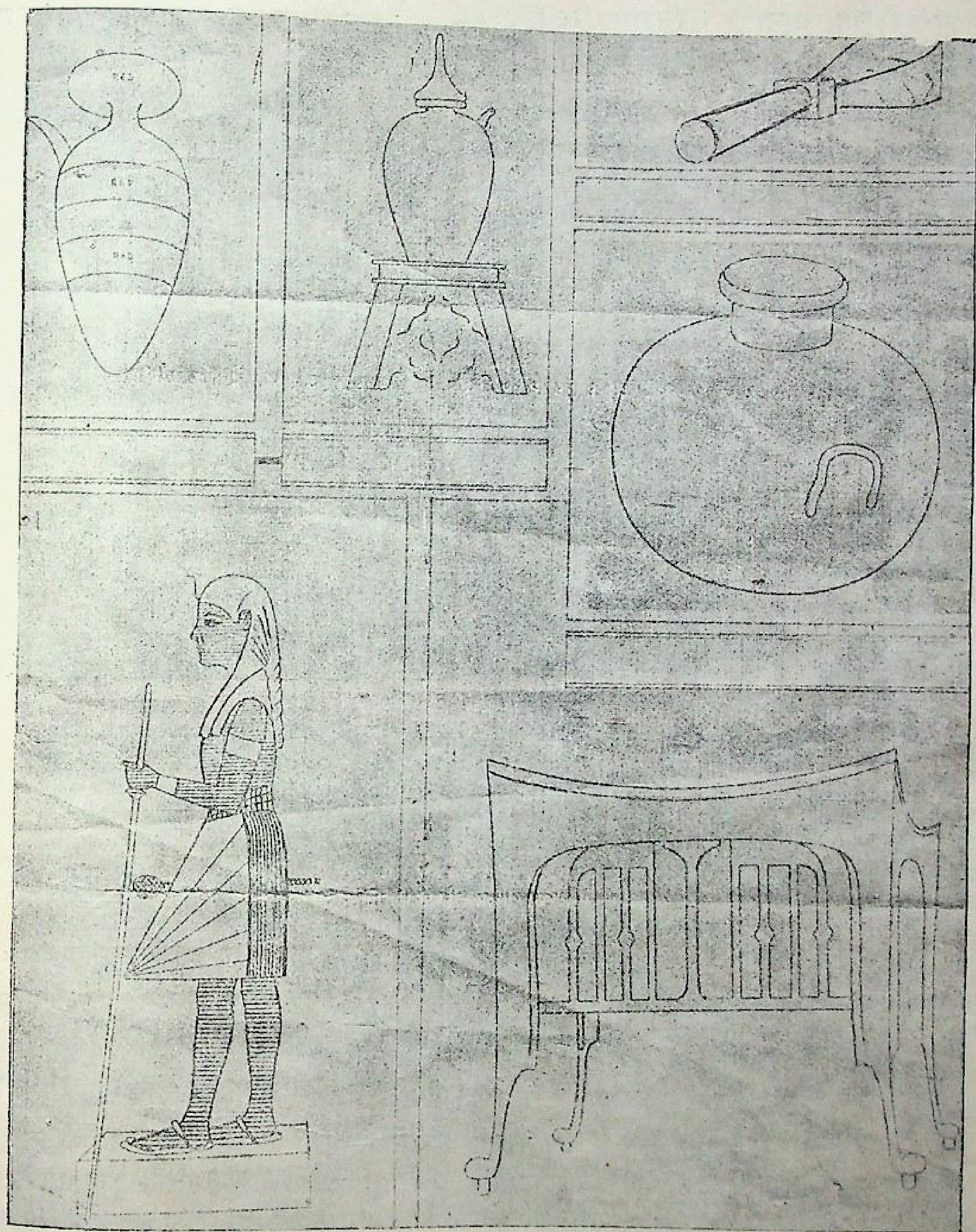


सिंहासन पर राजा तूतुनख़ामन

(राज-प्रतिनिधि 'हुयाई' राजा तूतुनख़ामन को तरह-तरह की भेंटें अर्पण कर रहे हैं। हुयाई के समाधि-भवन की दीवार में यह अपूर्व चित्र अंकित है। इस चित्र में अंकित कई चीज़ें राजा तूतुनख़ामन के समाधि-गृह में पाई गई हैं)

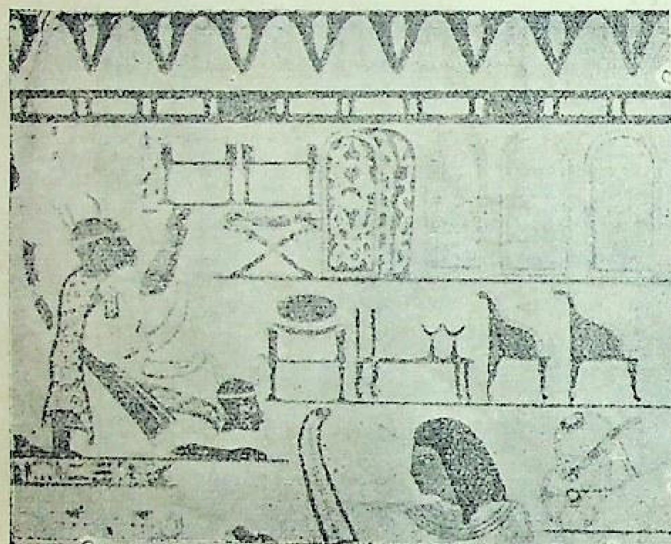
राजा तूतुनख़ामन की दो क़देआदम मूर्तियाँ भी काले पत्थर की बनी मिली हैं, और उन पर सोने का काम किया हुआ है । हाथ-पैरों की लीला-ललित भाव-भंगी मनोहर मूर्ति-निर्माण-शिल्प का परिचय दे रही है। मूर्ति की काँच की बनी दोनों उज्ज्वल आँखें देखकर जीवित का भ्रम हो जाता है। मूर्ति के मस्तक में मणि-मुक्ता-मंडित मुकुट (शिरस्त्राण) है । कमर में मणि-खचित पेटी और सुवर्ण का कटि-वस्त्र (फेंटा) है।

चार रथ मिले हैं । वे चारों ओर सुवर्ण से मढ़े हैं, और उनमें मणियों का जड़ाऊ काम किया हुआ है । रथों के पहिए खोलकर रख दिए गए हैं। सारथी के आसन में शेर की खाल की बनी एक पोशाक रक्खी है । शायद वह सारथी की ही पोशाक है । और भी अन्य अनेक वस्तुएँ हैं। उनमें राजा की कई छड़ियाँ भी हैं। एक आबनूस-लकड़ी की है। मूठ में एक पश्चिम एशिया के मनुष्य का सिर लगा है, और वह सोने का है। और एक छड़ी तले से ऊपर तक सोने-चाँदी के कारु-कार्य से सुशोभित है। वह एक बहुत

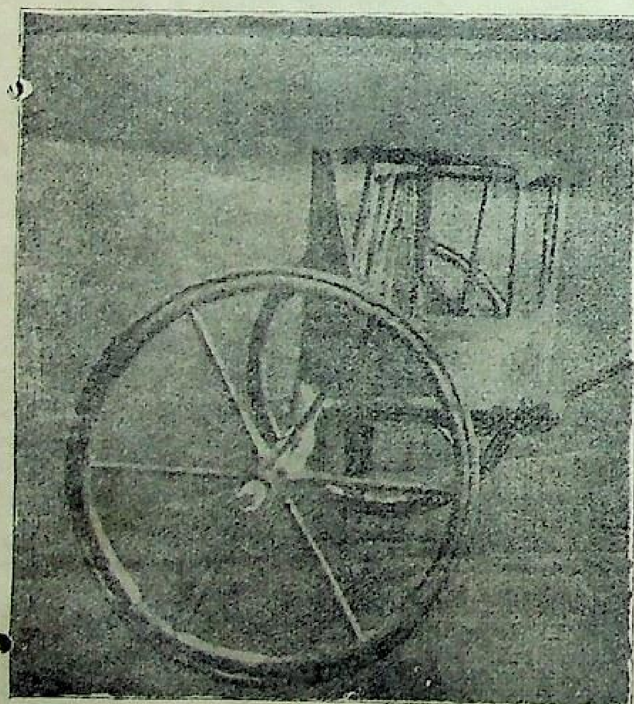


ऊपर से, बाईं ओर से—रँगा हुआ मिट्टी का घड़ा, बिल्लौर का बना इतरदान (नीचे बिल्लौर का आधार भी है; जिसमें जाली कटी है) देव-पूजा का सोने का घंटा, बिल्लौर का बना कलश, राजा तूतुनखामन की प्रति-मूर्ति और संगमरमर का बना उज्ज्वल ऊँचा आसन

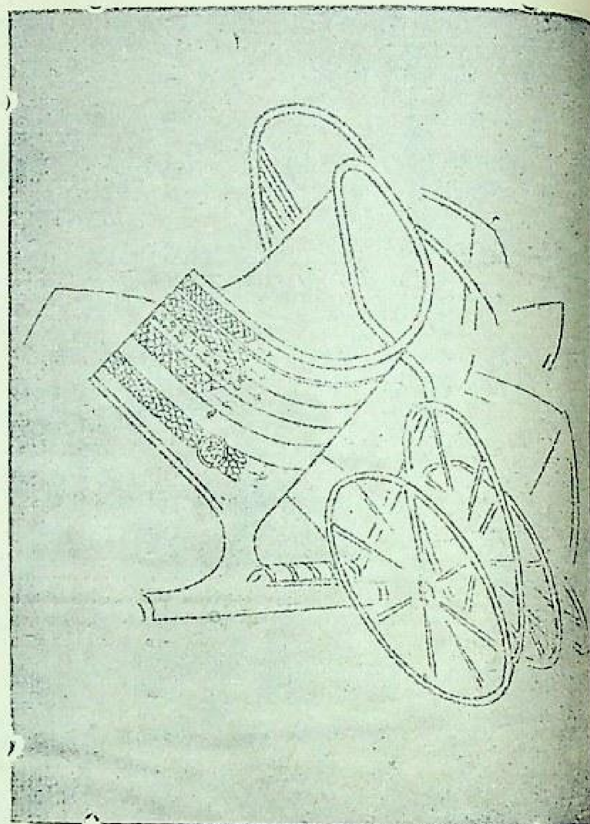
बढ़िया कारु-कार्य का नमूना है। सिंहासन पर बैठने की जो चौकी है, उसमें पश्चिम एशिया के निवासियों की मूर्तियाँ खुदी हैं। राजा तूतुन-ख़ामन ने जो पश्चिम एशिया-वासियों को जीता था, उसका एक यह भी प्रमाण है।



उपहार की चीज़ें—(दास, दासी, पलंग, ऊँची बैठक, चौकी, रथ, संदूक़ वग़ैरह सामग्री; जो समाधि-भवन में मिली है)

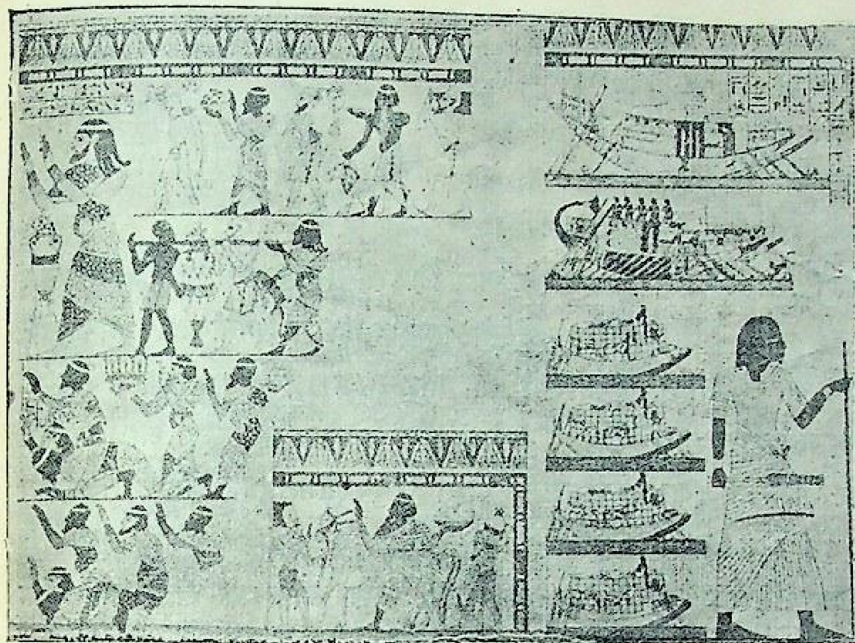


मिसर-देश का प्राचीन रथ



सुवर्ण का रथ

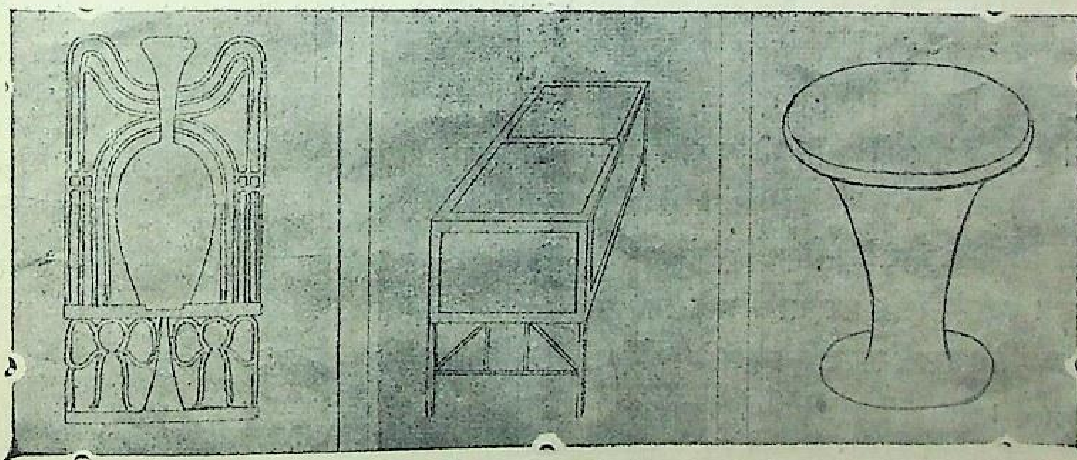
कई अद्भुत प्रकार के बाजे भी मिले हैं। राज-वेश, नक़ली केश और पगड़ी खोलकर रखने के लिये एक लकड़ी की मूर्ति रक्खी मिली है। अपूर्व शिल्प-चातुर्य का परिचय देनेवाली कई बिल्लौर की झारियाँ, कई उज्ज्वल नीले रंग के सोने के काम से सुशोभित, सुगठित, मिसर के बने, मिट्टी के बरतन रक्खे मिले हैं। मृत महाराज के लिये रक्खी हुई बहुत-सी भोजन की सामग्री भी उस समय की प्रथा के अनुसार एक बक्स में रक्खी हुई है। कई फूलों की मालाएँ भी हैं; जो अब तक एक दर्शनीय वस्तु हैं। ३००० वर्ष के बाद भी जान पड़ता है कि आज ही कोई फूलों की माला बनाकर रख



राजा के लिये आई हुई भेंट

(पश्चिम एशिया के राजों ने, जो मिसर के अधीन थे, राजा तूतुनख़ामन को नज़राने में जो चीज़ें भेजी थीं, वे ही इसमें अंकित हैं)

कठिन है। असंख्य आबनूस के सामान, सुवर्ण के पलंग, अद्भुत कारु-कार्य से शोभित बक्स-पिटारी इत्यादि, बिल्लौर और संगमरमर की झारी वग़ैरह वैसी ही अनेक वस्तुएँ हैं, जैसी कि पहले कमरे में मिली हैं। इस सामान में बहुत-सी चीज़ें बिलकुल नई और अछूती हैं। केवल कुछ ऐसी चीज़ें हैं, जिनकी हालत ज़रा ख़राब—जीर्ण—हो रही है। वे चीज़ें जिसमें टूटने-फूटने न पावें, इसलिये कार्टर साहब ने बड़ी सावधानी के साथ उन्हें उठाया-धरा है, और सुरक्षित-रूप से रखने की व्यवस्था की है।



बिल्लौर की बनी झारियाँ

गया है! एक बक्स में कुछ लिपटे हुए काग़ज़ भी मिले हैं। आशा है, अनुसंधान करने पर उनसे मृत राजा तूतुनख़ामन के संबंध की बहुत-सी बातों पर प्रकाश पड़ेगा।

दूसरे कमरे में फ़र्श से छत तक इतना असबाब ठसा पड़ा है कि उसके भीतर प्रवेश करना ही

बहुत कुछ खोज-तलाश करने पर भी पहले इन दोनों कमरों में से किसी में भी राजा तूतुन-ख़ामन का शवाधार नहीं देख पड़ा। मक़बरे में उक्त मृत राजा के व्यवहार में आनेवाली सभी

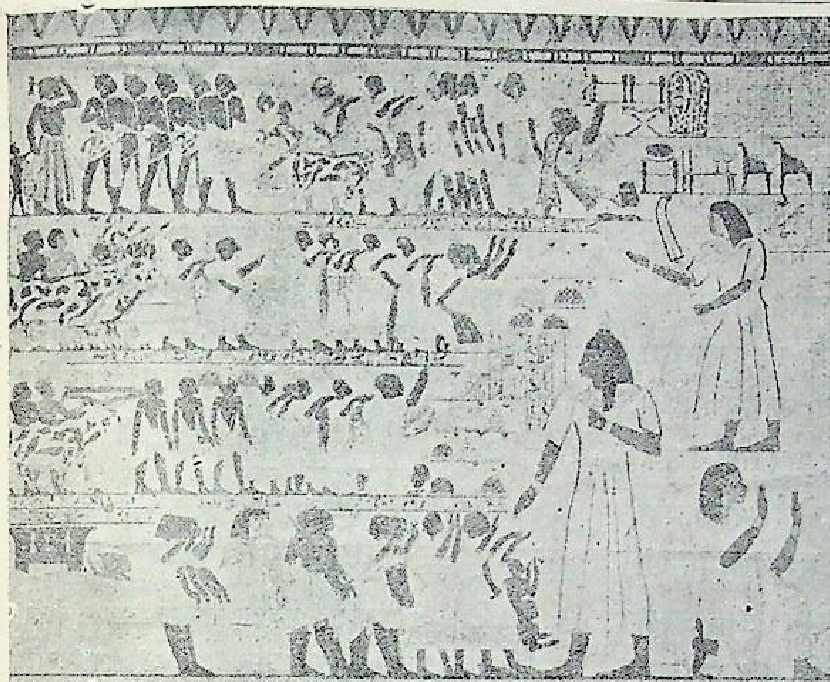
चीज़ें हैं, लेकिन उनकी ममी (लाश) नहीं है, यह देखकर लॉर्ड कार्नरवान की मंडली जिस समय बिलकुल नाउम्मीद-सी हो चुकी थी, उसी समय कुछ चिह्नों को देखकर विदित हुआ कि यहाँ केवल ये ही दो कमरे नहीं हैं, पास ही और भी कमरे अवश्य हैं, और उन्हीं में से किसी में राजा की ममी का होना संभव है।

आशा और निराशा के बीच झोंके खा रहे कार्टर साहब ने जब दीवार तोड़कर, धड़कते हुए हृदय को थामकर, रोशनी में दूसरी ओर झाँककर देखा, तो वह आनंद से चीत्कार कर उठे कि मिसर-नरेश तूतुनखामन की अंतिम शय्या मिल गई! यह कमरा चतुष्कोण और लंबाई-चौड़ाई में १४ फ़ीट है। भीतर से बाहर तक सुंदर-रूप से सुसज्जित इस कमरे के फ़र्श पर प्रायः सारे फ़र्श को घेरे हुए एक विराट् सुवर्ण-वेदी है। समुज्ज्वल नील-मणियों के जड़ाऊ और मनोहर कारु-कार्य से उसकी अपूर्व शोभा है। वेदी के ऊपर सुबृहत् समाधि-स्तूप है। ऊपर छतरी है; जो छत को छू रही है। स्तूप की चारों ओर की परिधि प्रायः दीवार तक पहुँची हुई है। वेदी के चारों ओर धर्म-शास्त्र के श्लोक और प्रेत-लोक के भयंकर दृश्य अंकित हैं। वेदी के सिरे पर चारों ओर अद्भुत कार्निस है, और उसके ऊपर सुवर्ण-मंडित चँदोवा तना हुआ है।

उसी चँदोवे के तले, मणि-वेदी के ऊपर, सुवर्ण-मंडित समाधि-स्तूप के बीच, राजा तूतुनखामन का बहु-मूल्य शवाधार रक्खा हुआ था। राजा की पर-लोक-यात्रा के लिये उस घर में सात नाव खेने के डाँड़ रक्खे थे। इस कमरे से मिले हुए और एक कमरे में राजा के मक़बरे का भंडार मिला है। इस कमरे में एक बहुत सुंदर शव-पीठ है। उसमें बहुत सुंदर शिल्प-कार्य किया हुआ है। उस पीठ-स्थान के आस-पास दो देवी-मूर्तियाँ खड़ी हुई हाथ फैलाए उसकी रक्षा कर रही हैं। कारीगरों ने ये मूर्तियाँ बहुत ही अद्भुत बनाई हैं। उनके मुख और आँखों में भय-चकित करुण भाव बड़ी सफ़ाई और ख़ूब-सूरती के साथ दिखलाया गया है। वे पीछे की ओर अपने उत्कंठित मुख को फिराकर जैसे आक्रमण-कारियों की ओर ताक रही हैं। इस शव-पीठ के ऊपर, चँदोवे के नीचे, चार बहु-मूल्य आधारों पर संभवतः राजा तूतुनखामन का देहावशेष रक्खा हुआ है।

इस कमरे में प्रवेश करने की राह में ही एक काले रंग का कृत्रिम सियार खड़ा है। उसके सारे शरीर में सुनहरा काम किया हुआ है। भीतर एक अद्भुत वेदी के ऊपर मिसर के देवता अनूबिस की प्रतिमूर्ति स्थापित है। मूर्ति के पीछे पाताल-पुरी की नक़ल के समान एक बड़ा भारी बैल का सिर है। उस स्थान में चारों ओर अनेक आकार-प्रकार के असंख्य संदूक़, पिटारी, वेदी, शवाधार और शव-पीठ देख पड़ते हैं। सभी बक्स और पिटारे बंद हैं, और उन पर सील-मोहर की हुई है। एक वेदी के ऊपर राजा की एक सोने की बनी प्रतिमूर्ति है। इसका चित्र इसी लेख में सबसे पहले दिया हुआ है।

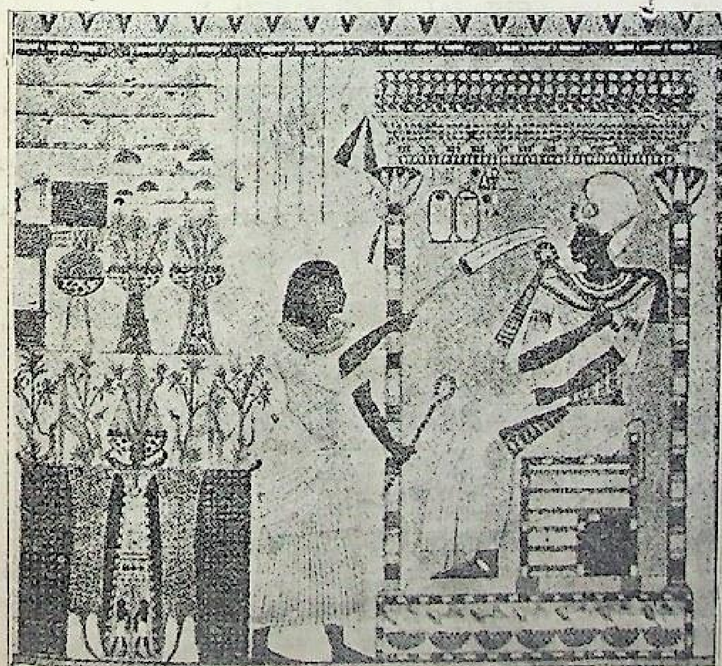
राजा तूतुनखामन अनायास वैतरणी-नदी पार हो जायँ, इस खयाल से कुछ छोटी-छोटी नावें बनाकर वहाँ रख दी गई हैं। वे नावें आकार में छोटी होने पर भी एकदम सर्वांग-पूर्ण हैं—पाल, डाँड़, हाल आदि सब कुछ है। वे नावें इस बात का प्रमाण हैं कि ३००० वर्ष पहले समुद्र-मार्ग में भी मिसर की सभ्यता का अभियान होता था। एक बहुत ही सुडौल, अद्भुत, बड़ा-सा, कान खड़े



राज-दर्शन
(एथियोपिया की राजकुमारी वृषभ-यान पर बहुत-सी उपहार-सामग्री लेकर राजा के दर्शन को आई हैं)

किए, बैठा हुआ विलाव ३०० सदियों से मिसर के राजा फेरोआ के शव की चौकसी कर रहा है—पहरा दे रहा है ! राजा तूतुनख़ामन के स्वर्णमय शवाधार के ऊपर एक विषधर नाग खुदा हुआ है; जो कि मिसर के राज-वंश का चिर-परिचित चिह्न है। उस पर अत्यंत सुंदर नीले रंग का मीने का काम किया हुआ है।

मिसर के राजा के मक़बरे में आज जो भारी ऐश्वर्य-संपत्ति देख पड़ती है, उसका शतांश भी पृथ्वी के किसी भी भाग्यशाली राजा के मक़बरे में नहीं देख पड़ता। सबसे बढ़कर विस्मय की अद्भुत बात यह है कि आज ३००० वर्षों के बाद भी मक़बरे के भीतर की हरएक चीज़ बिलकुल नई की तरह चमकती-दमकती नज़र आती है ! कई एक बिल्लौर के इतरदानों में जो इतर (या पुष्प-निर्यास) पाया गया है, उसकी अमर सुगंध इस समय भी तुरंत खिले हुए फूल की खुशबू के समान ही मीठी और भीनी बनी हुई है।

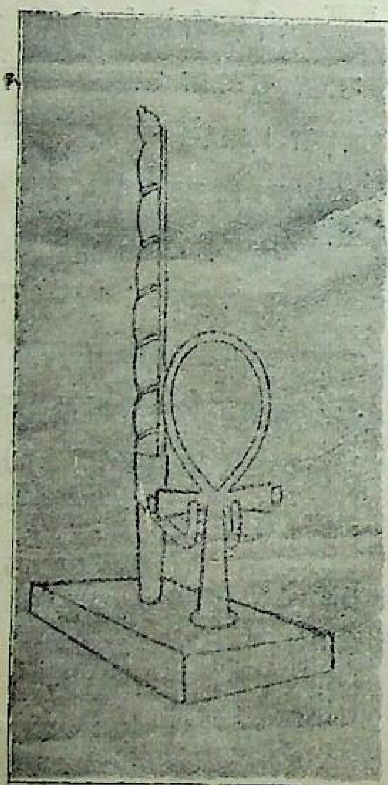


तूतुनख़ामन का सिंहासन
(यह चित्र दीवार में खुदा है। इसमें अंकित सिंहासन की कारीगरी देखकर जान पड़ता है कि तूतुनख़ामन की समाधि के घर में जो अद्भुत सिंहासन मिला है, उसे जगत् के शिल्प-सौंदर्य का अद्वितीय निदर्शन कहें, तो कुछ अनुचित न होगा)

राजा तूतुनख़ामन की समाधि का आविष्कार होने से सभ्य-जगत् में जो आंदोलन और कौतूहल की प्रबलता देख पड़ती है, उसका कारण केवल यही नहीं है कि उस समाधि

के भीतर बहुत कुछ बहुमूल्य ऐश्वर्य अथवा उसके अद्भुत शिल्प-सौंदर्य का पता लग गया है। इस आविष्कार का बहुत बड़ा ऐतिहासिक मूल्य है।

ईसा से पूर्व चौदह शताब्दी का मिसर का इतिहास अब तक अप्रकाशित पुरातत्त्व ही के बीच छिपा पड़ा था, और देख पड़ता है कि वही युग प्राचीन मिसर के सर्व-श्रेष्ठ गौरव का युग है। किंतु दुर्भाग्य-वश वर्तमान जगत् ने अब तक उसके उस चरम उत्कर्ष प्राप्त करने का कोई भी प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं देख पाया था। आज तूतुनखामन की इस समाधि का आविष्कार होने से—उसके भीतर के ऐश्वर्य और शिल्प-संपत्ति का परिचय



सोने की बनी दीवट (दीपाधार)

मिलने से—जान पड़ता है कि इस राजा के राज्य-काल में ही प्राचीन मिसर की शक्ति ने संपत्ति, कला-निपुणता, सभ्यता, गौरव और महिमा की ऊँची चोटी पर चढ़कर सारे मिसर-देश को प्रतिभा की प्रभा से समुज्ज्वल कर दिया था।

प्राचीन इतिहास का अध्ययन जिन्होंने किया है, वे जानते हैं कि राजा तूतुनखामन की मृत्यु के उपरांत से ही मिसर के अधःपतन का आरंभ हो गया था।

राष्ट्रीय-गीत

चलो यह जीवन सफल बना लें।
ममता, मोह, सौख्य, वैभव तज,
स्वतंत्रता के सभी साज सज,
मातृ-भूमि की चरण-रेणु-रज
अपने हृदय लगा लें।
समा रही तू मा, रग-रग में,
तू ही भरणी, तरणी जग में,
मातृ-भूमि ! तव सेवा-मग में
मरकर अमर कहा लें।
सत्य-न्याय से नहीं हटेंगे,
स्वत्व-हेतु हम मरें-मिटेंगे,
भारत-भारत सदा रटेंगे,
विजय-ध्वजा फहरा लें।
नहीं चाह सुख स्वर्ग-राज की,
नहीं चाह जीवन-समाज की,
नहीं चाह त्रैलोक्य, ताज की,
बस, स्वतंत्र कहला लें।
माता, तू ही तन-मन-धन है,
माता, तू यश-बल-जीवन है,
मा, तू ही सब सुख-साधन है,
आ आराध्य, मना लें।

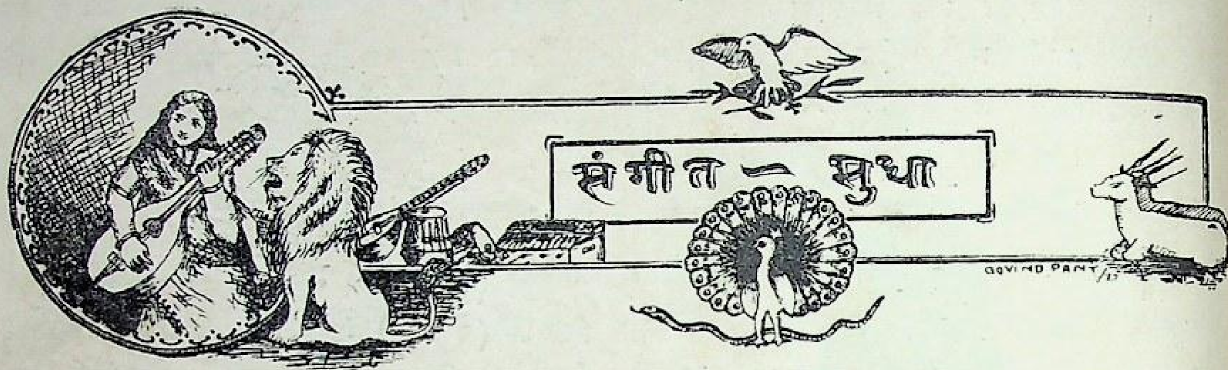
श्यामलाल पाठक

थैंक्स (THANKS)



जेंटिलमैन—थैंक्स सेठजी !

सेठ—माफ़ कीजिए साहब, मैं तो इस थैंक्स के बोझ से दबा जा रहा हूँ ; और कोरे थैंक्स कहाँ तक सँभालूँ ! अब इससे काम नहीं चलता । देखिए, एड़ी से चोटी तक मेरे पास इतने थैंक्स इकट्ठे हो गए हैं कि रखने को जगह नहीं ।



[बहार—तीन ताल]

स्वरकार—प्रोफ़ेसर मौलाबख़्श

शब्दकार—पं० गोविंदवल्लभ पंत

गीत

सखि ! वसंत-ऋतु फिर फिरि आई ;
सुमन-सुरभि-संजीवनी लाई ।
पुष्प-पुष्प में श्री बिखरी है ,
पात-पात में शोभा छाई ॥ १ ॥
शुक-पिक गावत, अलि-कुल गुंजत ,
पुण्य प्रकृति मेरे मन भाई ॥ २ ॥

स्थाई

०				१				+				३			
नी	प	म	प	प	प	ग	म	नी	ध	नी	सां	नीरें	नीसां	नी	ध
स	खि	व	सं	—	त	ऋ	तु	फि	र	फि	रि	आ	—	ई	—
गं	मं	रें	सां	नी	ध	नी	सां	सां	नी	सां	नी	नीरें	नीसां	नी	ध
सु	म	न	सु	र	भि	सं	—	जी	—	व	नी	ला	—	ई	—

अंतरा

०				१				+				३			
म	नी	ध	नी	सां	नी	सां	—	सां	नीनी	सां	सां	नीरें	नीसां	नी	ध
पु	—	ष्प	पु	—	ष्प	में	—	श्री	—	बि	ख	री	—	है	—
गं	मं	रें	सां	नी	ध	नी	सां	सां	नी	नी	सां	नीरें	नीसां	नी	ध
पा	—	त	पा	—	त	में	—	शो	—	भा	—	छा	—	ई	—

दूसरा अंतरा भी इसी तरह बजेगा



१. व्याधा-शब्द

"छप्पै-रामायण" में गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

"उठे ततक्षण मेघ, वृष्टि-जल अनल बुताने ;
निसरि भुवंगम डसेउ, वुद्धि **व्याधा** विकलाने।
कर ते छूटेउ तीर, जाइ शाचानहिं मारी ;
अस्तुति करत कपोत, नाथ, प्रणतारतिहारी।
सो प्रभु वेगि दयाल होहु म्वहिं, जिमि कपोत अरिदाप ना ;
कृपा करहु श्रीरामचंद्र, मम हरहु शोक-संताप ना।"

(नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १८९१वाली प्रति)

प्रसिद्ध टीकाकार, संस्कृतज्ञ विद्वान् और परम राम-भक्त आगरा-निवासी स्व० पं० रामेश्वर भट्ट-कृत "विनय-पत्रिका" की सरला टीका (द्वितीय बार, सन् १९१७, इंडियन प्रेसवाली प्रति) के पृष्ठ १४९ में देखिए भजन नं० १०१—

"खग, मृग, **व्याध**, पषान, विटप, जड़ जवन कवन सुर तारे।"

टीका—क्योंकि पक्षी (जटायु) मृग * (रीछ-बंदर), **व्याधा** (बाल्मीकि), पत्थर (अहल्या और दंडक-वन के), वृक्ष आदि और महामूर्ख यवन, इनको किस देवता ने तारा है ?

पाद-टीका—* मृग का अर्थ केवल हरिण ही नहीं है, वन के जीवों को भी मृग कहते हैं, इसलिये रीछ-बंदरों का अर्थ लिया गया। और, **व्याधा** का अर्थ बहेलिया और पाषाण का अर्थ पत्थर है ; परंतु प्रसंग-वश यहाँ व्याधे से बाल्मीकि और पाषाण से अहल्या का अर्थ किया है।

महात्मा गुसाँईजी का यह दोहा (तुलसी-सतसई का) तो प्रसिद्ध ही है कि—

"व्याधा बधो पपीहरा, परो गंग-जल जाय ;
चोंच मूँद पीवै नहीं, धिक पीवन पन जाय।"

रतनपुर के प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वान् कविवर रेवाराम बाबूजी ने अपने "रामाश्वमेध"-ग्रंथ में 'व्याधा'-शब्द का प्रयोग 'व्याध' के अर्थ में किया है। कलकत्ते से निकलनेवाले "साहित्य"-नामक मासिक पत्र में उस ग्रंथ के वे अंश उद्धृत हैं।

परसापाली-निवासी हिंदी के सुकवि पं० मेदिनीप्रसाद-जी पांडेय मालगुज़ार कृपा-पूर्वक सूचित करते हैं—

व्याधा-शब्द का उपयोग 'मृगी-सत्त' (सत्य) की पोथी में किया गया है। इस पोथी के रचयिता कोई विश्वंभरदास नाम के कवि हैं। शायद वह वैष्णव होंगे। कहाँ के रहनेवाले हैं, कब पुस्तक रची गई, यह कुछ पुस्तक में कहीं नहीं लिखा है। ४०-४९ वर्ष से इस पोथी का प्रचार है। यह पहले छपी न थी। अब पं० राजाराम तिवारीजी ने नरसिंहपुर के सरस्वती-विलास-प्रेस में इसे छपवाया है। उसके पृष्ठ २१-२२ में लिखा है—

"व्याधा पुनि चरनन सिर नाई,
अस्तुति कीन बहुत हरषाई।
अंत समय व्याधा-निकट आयो सुभग बिमान;
जात भयो सुरलोक में, मर्म न काहू जान।
व्याधा-स्वर्ग गयो सुखदाई;
तीनों तेर धर्म मन लाई।"

इतने पर भी युक्त-प्रांतीय विद्वान् (जो हिंदी के समालोचकों में अपने को गिना करते हैं) यह पूछा करते हैं कि 'व्याधा'-शब्द 'व्याध' (संस्कृत) के लिये कहाँ बोला जाता है ? उनको क्या उत्तर दिया जाय, वे ही विचार कर लें।

मध्य-प्रदेश की पुरानी तीसरी पुस्तक के "मित्र-लाभ"-पाठ में 'व्याधा'-शब्द कई स्थलों पर व्यवहृत है।

बिहार-प्रांत में जो हिंदी की पाठ्य-पुस्तकें आज-कल प्रचलित हैं, उनमें भी संस्कृत व्याध (अर्थात् बहेलिया) के लिये "व्याधा"-शब्द का प्रयोग किया गया है।

लोचनप्रसाद पांडेय

× × ×

२. भव्य भारतवर्ष

भव्य भू-मंडल भारतवर्ष;
बढ़े बस आगे ही प्रति वर्ष।
उज्ज्वल प्रतिकृति प्रकृति-पूर्ति का,
सुषमागार त्रिकोण मूर्ति का,
उद्‌गम दर्शन-शास्त्र-स्फूर्ति का,
प्राच्य प्रतिभा का उच्चादर्श ॥ १ ॥
मंद, सुगंध, सुशीतल मारुत;
ऋतुएँ रहें विविध शोभा-युत;
श्यामल, सघन वृक्ष बहु अद्‌भुत;
पत्र-मर्मर सुन होता हर्ष ॥ २ ॥
कहीं धवल हिम से गिरि-माला;
झरनों ने उज्ज्वल जल ढाला;
रवि-प्रतिबिंबित दृश्य निराला;
विदेशी भी मानें उत्कर्ष ॥ ३ ॥
सृष्टि-रत्न का आकर सुंदर,
प्रभा-पुंज, जीवन का निर्झर,
विश्व बने कृत-कृत्य अधिकतर,
प्राप्त जब होता इसका स्पर्श ॥ ४ ॥
प्राच्य छटा से विमुख न होना,
हृदय न बीज विदेशी बोना,
जन्म-सिद्ध अधिकार न खोना,
बनें यह पुत्रों का आदर्श ॥ ५ ॥
हो उन्नत साहित्य नागरी,
राष्ट्र-प्रेम-गुण-भरी आगरी,
ओज, चोज़ से युत उजागरी,
रहे अनुपम साहित्य-विमर्श ॥ ६ ॥

उदयशंकर भट्ट

× × ×

३. अरबी-भाषा का शब्द-भांडार

जो लोग अरबी-भाषा से परिचित नहीं हैं, उनमें से अनेक लोग इसके विषय में नाना प्रकार के विचित्र मत रखते हैं; परंतु संसार की जीती-जागती भाषाओं में अरबी का जो पद है, वह निस्संदेह सराहनीय है। निदान यह कि अरबी-भाषा अपने साहित्य तथा उसके सारे अंग और दर्शन, इतिहास, विज्ञान आदि शास्त्रों से भरपूर ही है। और, वास्तव में, इन बातों को उसके साहित्य के प्रेमी ही भली भाँति जानते हैं।

संभव है, बहुतेरे पाठक यह जानकर विस्मित हों कि अरबी में तलवार के लिये १०००, ऊँट के लिये १०००, साँप के लिये २००, शहद के लिये ८०, घोड़े के लिये १००० और चीते के लिये ५०० भिन्न-भिन्न शब्द हैं। यह बतला देना भी उचित मालूम होता है कि तलवार और ऊँट आदि के लिये हज़ारों या सैकड़ों शब्द क्यों हैं, अथवा किस प्रकार हैं। वास्तव में बात यह है कि अरबवालों ने अनेक वस्तुओं के लिये रंग, रूप, समय अथवा स्थानादि के विचार से भिन्न-भिन्न शब्द नियत कर रक्खे हैं। अर्थात्, एक ही प्रकार की वस्तुओं में उन्हें यदि किसी कारण से कुछ भेद प्रतीत हुआ, तो एक ही ढंग, रंग या रूपवाली वस्तुओं के लिये (किसी विशेषण से काम न लेते हुए) एक विशेष शब्द नियत कर लिया। उदाहरणार्थ जानना चाहिए कि अरबी में ऊँटनी के लिये साधारणतः नाक़ः (ناقة)-शब्द का प्रयोग किया जाता है; किंतु भिन्न-भिन्न विचारों से पृथक्-पृथक् शब्द हैं। जैसे—

जमालियः (جمالية) वह ऊँटनी, जो ऊँट के समान शक्तिशाली हो।

जलालः (جلالة) मोटी-ताज़ी चरबीदार ऊँटनी।

ऐतल (عيطل) लंबी गर्दनवाली ऊँटनी ।

ज़जूर (ضجور) बहुत चीख़नेवाली ऊँटनी ।

बलीयः (بليه) वह ऊँटनी, जो अपने मालिक के मरने के बाद उसकी क़ब्र पर बाँध दी जाय, और वहीं मर जाय ।

इस प्रकार के भेदों के कारण अरबी में किसी-किसी वस्तु के लिये सैकड़ों या हज़ारों शब्द हो गए हैं । इसके सिवा यह बात भी स्पष्ट ही है कि वही भाव, जो अरबी के एक शब्द में है, अन्य बहुतेरी भाषाओं के कई शब्दों द्वारा प्रकट किया जा सकता है ।

पाठकगण जानते हैं कि बालक तथा मनुष्य की अवस्थाएँ या दशा भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं । अस्तु । इस विचार से जो शब्द अरबी-कोष में हैं, वे इस प्रकार हैं—

जनीन (جنين) वह बच्चा, जो अभी माता के पेट में हो ।

वलीद (وليد) वह बालक, जो पैदा हुआ हो ।

रज़ीअ (رضيع) वह बच्चा, जिसका दूध अभी नहीं छूटा ।

फ़तीम (فطيم) जिस बालक का दूध छूट गया हो ।

दौज (دوج) वह बालक, जो चल-फिर सकता हो ।

ख़ुमासी (خماسی) जो पाँच बित्ता लंबा हो गया हो ।

मस्ग़ूर (مثغور) जिसके दूध के दाँत गिर गए हों ।

मुसग़ार (مثغر) जिसके नए दाँत निकल आए हों ।

नाशी (ناشی) जो दस वर्ष का हो ।

याफ़ा (يافع) युवा ।

बालिग़ (بالغ) पूर्ण युवा ।

किंतु यह भी ज्ञात रहे कि ग़ुलाम (غلام) शब्द का अर्थ अरबी में लड़का है, और यह ऐसा शब्द है, जो उक्त सारी दशाओं में से किसी दशावाले बालक के लिये प्रयुक्त हो सकता है। अब यह देखिए कि बड़ाई या छुटाई की दृष्टि से मनुष्य के लिये कौन-कौन शब्द हैं—

तवील (طويل) वह मनुष्य, जो साधारणतः लंबा हो ।

तिवाल (طوال) बहुत लंबा मनुष्य ।

शौब (شوب) बहुत ज़्यादा लंबा मनुष्य ।

अशन्नत (عشنط) इतना अधिक लंबा कि वैसे बहुत ही कम हों ।

अनतनत (عنطنط) जिसकी लंबाई बहुत ही ज़्यादा हो ।

साथ-ही-साथ यह भी बतला देना अनुचित नहीं है कि पुरुष अथवा स्त्री की बहादुरी, मुटाई या सौंदर्य के विचार से भी पृथक्-पृथक् शब्द हैं ।

प्रत्येक वस्तु के आदि, मध्य, और अंतिम अंश के लिये भी पृथक्-पृथक् शब्द हैं । अतः अनेक वस्तुओं के आरंभिक खंड की सूची इस प्रकार है—

तबाशीर (تباشير) प्रभात का आरंभ-समय ।

ग़सक़ (غسق) रात्रि का प्रथम भाग ।

लिबाअ (لباء) वह दूध, जो पहले दुहा जाय ।

सुलाफ़ (سلاف) वह मदिरा, जो अंगूर के निचोड़ने से पहले निकले ।

नुआस (نواس) ऊँघ (नींद का प्रारंभिक भाग)

तलीअः (طليعه) सेना का पहला भाग ।

वख़्त (وخط) सिर के बालों के सफ़ेद होने का आदिम समय ।

इस्तेहलाल (استهلال) पैदा होनेवाले बच्चे का प्रथम चिल्लाना ।

बाकूरः (باكوره) किसी वृक्ष या बाग़ का प्रथम फल ।

मैं समझता हूँ, अरबी-कोष के शब्दों की बाबत जो कुछ ऊपर लिखा गया है, उससे विचारशील पाठक भली भाँति अनुमान कर सकते हैं कि अरबी का शब्द-भांडार कितना भरपूर है । इसके सिवा धातुओं की उत्पत्ति और भाषा-विज्ञान-विषयक बातें भी कुछ कम महत्त्व-पूर्ण नहीं हैं। साथ ही यह भी जान लेना अच्छा होगा कि अरबी का शब्द-भांडार अब और भी ज़्यादा बढ़ गया है, और बहुत-से नवीन शब्द दिन-पर-दिन इसमें अधिक ही हो रहे हैं । किंतु जो कुछ ऊपर लिखा गया है, वह सब-का-सब प्राचीन साहित्य की दृष्टि से भी ठीक है ।

महेशप्रसाद

× × ×

४. तिरस्कृत प्रेम

(भिन्नतुकांत)

नस-नस में अदृश्य बिजली के हलके झिटके लगते हैं ।
स्वप्न-राज्य में मादकता के कंपित पंखों पर विह्वल
उड़ता है बेसुध-सा मन । वे आशा की कांचन-किरणें
डूब चुकी हैं । विकट भ्रुकुटि के कंटक पथ में बिखरे हैं ।
घुमड़-घुमड़कर हृदय-गगन में दुख के बादल उठते हैं ।
अश्रु-वृष्टि से धैर्य-सदन की पुष्ट भित्ति जर्जरित हुई ।

सब कुछ लुटा, निराश्रय मन भी प्रलय-काल की चिंता में डूब रहा है। करती है उपहास अधर पर नाच रही अग्नि-शिखा-सी हँसी गर्विता । मृत्यु-वेदना की छाया पड़ती है मुख पर। उन्मूलित दलित लता कब हरी हुई !

जंगबहादुरसिंह

× × ×

५. रमणीयता

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।"

कवि-कुल-मणि भवभूतिजी 'मालतीमाधव' के प्रधान नायक माधव के मुख से, जब कि वह मालती को सम्मुख आते हुए देखता है, निम्न-लिखित श्लोक कहलाते हैं—

"सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा
सौंदर्यसारसमुदायनिकेतनं वा ।
तस्याः सखे ! नियतमिंदुसुधामृणाल–
ज्योत्स्नादिकारणमभून्मदनश्च वेधाः ।"

सहृदय पाठक कवि की चतुराई को, कवि की विशेषज्ञता को, कवि की कविता को उपर्युक्त श्लोक में प्रत्यक्ष पा सकते हैं । भवभूति इधर-उधर की न कहकर प्राकृतिक बात कहते थे, और यही कारण है कि उन्होंने मालती की सुंदरता का वर्णन करते हुए और कवियों की तरह चंद्रमा से उसे उच्च नहीं बनाया, न कमल को ही उसके वदन से तिरस्कृत किया, पर यही कहा कि—

'सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा—'

(क्या वह सुंदरता के ख़ज़ाने की अधिष्ठात्रीदेवी थी ?)

संभव है, अलंकारों में मोहित मनवालों को इसमें कोई गुण न देख पड़ता हो; पर सहृदय, सच्चे रसिक तथा अनुभवी इस बात से सर्वथा अभिज्ञ हैं कि रमणीयता, प्राकृतिक रमणीयता, अलंकारों से सज्जित नहीं होती । वह रमणीयता रमणीयता नहीं, जो अलंकारों की अपेक्षा करती हो । फूल अपने ही रूप में भले लगते हैं; ऊपर से कितनी ही सजावट क्यों न करो, उनकी सुंदरता नहीं बढ़ेगी । गमलों में लाकर लगावेंगे, तो क्या होगा, थोड़ी देर बाद कुम्हला जायँगे । इसलिये भवभूति ने उस भुवन-मोहन रूप को और किसी से नहीं सजाया; उसे अपने ही रूप में पूरी तरह से दरसा दिया । सजकर निकलना वेश्याओं का काम है । वह रमणीयता प्राकृतिक नहीं, कृत्रिम है ; स्थायी नहीं, अस्थायी है । सुंदरता को किसी से मिलाना उसको हीन करना है । सुंदर वही है, जो कि औरों से अपने में एक नई विशेषता रखता हो । चंद्र ही यदि अधिक सुंदर होता, तो कामिनियों को कौन पूछता ? कमल ही यदि संसार में सबसे अधिक शोभित होते, तो और कुसुमों की क़दर कौन करता ?

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।"

(क्षण-क्षण में जो नवीन होती है, वही रमणीयता है ।)

कोई भी वस्तु क्यों न हो, वह अपने सच्चे रूप में ही भली मालूम होती है । ऊपर की दिखावट धोखे में डालनेवाली, ठगनेवाला और अंत को दुःख देनेवाली होती है । दूर क्यों जाइए, वर्तमान संसार को ही देख लीजिए । इसने क्या किया ? यही किया कि सजावट में बढ़ गया । अपने असली रूप को भूल बैठा, और ऊपरी अलंकार लादने लगा । निस्संदेह अलंकार रूप को अधिक अलंकृत करते हैं, और वर्तमान संसार की प्रकृति भी बिजली की 'बिजली' और विज्ञान के बाजूबंदों से चमक उठी है । सभी इस पर लुब्ध हो गए हैं । पर अंत को परिणाम क्या होगा ? परिणाम में वास्तविक रूप का नाश अवश्यंभावी है । जो स्त्री अधिक अलंकार पहनती है, उसके काले दाग़ भी उतने ही अधिक होते हैं, और रगों के दबने से उसके कपोल भी उतने ही अधिक पिचके हुए होते हैं । वैसे ही कृत्रिम अलंकार लादकर रमणीयता को विकृत करना उचित नहीं है ।

संस्कृत तथा हिंदी के कवियों ने प्रकृति को नष्ट कर दिया ; तभी तो उनकी यह दशा हुई । कितनी कविताएँ शिक्षा देती हैं ? कितनी कविताओं से देश तथा जाति का कल्याण हुआ है ? कितने हार्दिक विचारों को उन्नत करनेवाले कवि हुए हैं ? तुलसीदास, सूर, कबीर आदि हुए, तो क्या हुआ ? उनको कौन पूछता है ? उनकी रचनाएँ तो भजनों की पुस्तकें हैं ! मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति के इच्छुक ही उनसे शिक्षा लेते हैं । साधारण जनता में किस प्रकार की कविताओं का प्रचार है ? कहीं देखो, कहीं ढूँढ़ो, वही बनावटी बात और वही बेढंगा व्यंग्य नज़र आता है । 'वक्रोक्ति-अलंकार' ही उन कविताओं की जान है । सीधी बात कोई कहना चाहता ही नहीं । यह तो हुआ, सो हुआ । रही-सही कविता का नाश उर्दू की शेरों ने कर दिया । कहीं काली नागिन की लहर है, तो कहीं आफ़ताब और माहताब की चमक-दमक ।

पुरातन संस्कृत-ग्रंथों में, आदि-कवि वाल्मीकि की रचनाओं में, रूप का कहीं भी नाना भंगियों में, नाना उपमाओं में वर्णन नहीं किया गया। वन का वर्णन है, तो उसी के वृक्षों की गणना है। सरोवर का वर्णन है, तो उसमें विचरनेवाले पक्षियों के नाम हैं। कहीं भी पृथ्वी को आकाश और आकाश को पृथ्वी नहीं बनाया। इस बढ़ती हुई आलंकारिकता ने रमणीयता का नाश कर दिया। अब पता भी नहीं लगता कि रमणीयता किसे कहते हैं! देखनेवाले और उसके उस मधुर रस को पीनेवाले तो जानते ही हैं, और दिल भी उछलता ही है, आहें भी भरते ही हैं; पर किसी भी पुस्तक में रमणीयता का पूर्ण चित्र नयन-गोचर न हुआ। रहा वर्तमान हिंदी-संसार, सो उसमें अपना कुछ नहीं, सब अनुवाद है*, या पिष्ट-पेषण। अतः उसको क्या दोष दें? पर इसे चाहिए कि रमणीयता के तत्त्व को समझे और उसके वास्तविक रूप को चित्रित करे। प्रकृति—केवल प्रकृति—ही इसका मूल-कारण है। जब तक हम प्रकृति से प्रेम न करेंगे, और संपूर्ण वस्तुओं को उनके असली रूप में न देखेंगे, तब तक उनका वर्णन भी नहीं कर सकते। वर्तमान-कालीन नाटक या कविताएँ दिल पर असर क्यों नहीं करतीं? कारण स्पष्ट है। वर्तमान कवि संसार को भीतर से न देखकर बाहर से ही देखते हैं। रमणीयता बाह्य वस्तु नहीं। वह व्यापक है। उसके पूर्ण-रूप को देखने के लिये अंतस्तल पर दृष्टि डालनी चाहिए। अंतस्तल में जैसे विचार उठते हैं, वैसे ही चेहरे पर भावांतर उपस्थित हुआ करते हैं। अगर हमें कोई सुंदर वस्तु प्रिय लगती है. तो तभी, जब उसके मुख पर कोई भाव होता है। और, भाव अंतर्वर्ती है। अतः जो सच्ची रमणीयता को जानना चाहें, उन्हें चाहिए कि हृदय से प्रेम करें, और इस प्रकार दूसरे के दिल की बातों को जानें। फिर रमणीयता बाहर आप ही दिखाई देने लगेगी। जिसके हृदय को हम जान लेते हैं, उसका शुष्क वदन भी हमें सुंदर लगा करता है। रमणीयता बाहर की ही होती, तो शोक-ग्रस्त तथा रुदन करती हुई स्त्रियों से कोई प्रेम ही न करता, और न दूसरे की आँखों में उनकी सुंदरता ही झलकती। पर बात यह है कि हम उनके भावों को जानते हैं, और जब वे चेहरे पर नज़र आते हैं, तब उन्हें देखकर द्विगुण प्रसन्न होते हैं।

विद्याधर शास्त्री गौड़

× × ×

६. हिंदी में नाटकों का तूफ़ान

मैं 'माधुरी' के किसी पिछले अंक में यह बात लिख चुका हूँ कि समालोचकों की उदासीनता तथा संपादकों और प्रकाशकों के ऊधम-उत्पात के कारण आजकल बहुत-सा कूड़ा-कर्कट भी साहित्य-वाटिका में जमा होता चला जा रहा है। मालूम नहीं, उसकी ओर किसी का ध्यान गया या नहीं। आज फिर भी वैसे ही एक आवश्यक विषय की ओर मैं हिंदी-साहित्य के विद्वानों और सुयोग्य समालोचकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। आशा है, और कोई नहीं, तो कम-से-कम हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के कर्णधार ही इसकी ओर अवश्य दत्त-चित्त होंगे।

थोड़े दिन पहले तक रंग-मंचों पर हिंदी के नाटकों का अभिनय होना एक बड़ी विचित्र बात मालूम पड़ती थी। जहाँ देखो, वहीं पारसी कंपनियाँ और उनके इश्क़बाज़ी का सबक़ सिखानेवाले उर्दू-फ़ारसी-मिश्रित नाटक दिखलाई पड़ते थे। हाँ, यदा-कदा अव्यवसायी नाटक-मंडलियों के द्वारा शुद्ध हिंदी के नाटकों का अभिनय भी हो जाया करता था। ऐसी मंडलियाँ हिंदोस्तान-भर में इनी-गिनी ही थीं। काशी और प्रयाग में ही ऐसी दो-तीन मंडलियाँ थीं; और कहीं नहीं। क्रमशः ज़माने ने पलटा खाया। हिंदी का प्रचार बढ़ चला। प्राइवेट मंडलियों की प्रतिष्ठा होने लगी। रोज़गारियों ने देखा कि अब हिंदी को स्थान दिए बिना हमारा कल्याण नहीं। इसीलिये धीरे-धीरे पारसी कंपनियाँ भी हिंदी को अपनाने लगीं। लैला-मजनूँ, शीरीं-फ़रहाद, गुलरू-ज़रीना, सफ़ेद खून, शहीदेनाज़ आदि के साथ-साथ महाभारत, रामायण, पत्नी-प्रताप, सावित्री-सत्यवान्, नल-दमयंती, हिंदोस्तान इत्यादि नए ढंग के नाटकों के भी अभिनय होने लगे; जिनमें हिंदी ने भी जगह पाई। रोज़गार चमक गया—दर्शकों की संख्या बेहिसाब बढ़ गई। फिर क्या था! इन कंपनियों के अजीबोग़रीब नाटककार लगे शेक्सपियर और कालिदास के कान काटने! मनमानी भाषा, मनमाने उलटे-सीधे छंद और ऊटपटाँग कथा-कल्पना का साम्राज्य हो गया। हिंदुओं के पौराणिक चरित्रों की मिट्टी पलीत की जाने लगी।

* हम लेखक से इस जगह सहमत नहीं हो सके।—संपादक

रोग यहाँ तक बढ़ गया कि एक आधुनिक कालिदास ने जगज्जननी जानकी को रावण पर आशिक़ तक लिख मारा! मज़ा तो यह कि यह कालिदास हिंदू हैं, और अपने को श्रीरामचंद्र का भक्त भी कहते हैं!

ख़ैर, जहाँ ऐसे-ऐसे कूड़ा-कर्कट जमा होते रहे, वहाँ पं० नारायणप्रसाद "बेताब" और बाबू हरिकृष्ण "जौहर" के कुछ अच्छे नाटक भी देखने में आए। पर जो प्लेग के चूहे शुरू में दिखाई दिए थे, वे अब तक नज़र आते ही रहे। कंपनियों के प्राचीन संस्कार की छाप इनके नाटकों पर अब तक बराबर पड़ती चली आती है।

इन्हीं नाटककारों की देखा-देखी और भी बहुत-से कालिदास इस समय कलकत्ते में पैदा हो गए हैं। एक-आध इधर-उधर भी मँड़राते नज़र आते हैं ज़रूर; पर ज़ोर इनका कलकत्ते में ही विशेष-रूप से है। हिंदी के कई प्रकाशक आँख-कान बंदकर इन कालिदासों की रचना से हिंदी-साहित्य का श्रृंगार-संपादन कर रहे हैं। बढ़िया छपाई, सुंदर काग़ज़ और उत्तमोत्तम चित्रों से सजाकर दूषित कविता, व्याकरण-विरुद्ध भाषा-शैली और नाटकीय नियमों को फाँसी देनेवाले विचित्र नाटकों का नमूना हिंदी-रसिकों के आगे पेश किया जा रहा है। कंपनियों के नाटक उन्हीं के घर रह जाते हैं। उनका संबंध केवल अभिनेताओं और दर्शकों से है। उन नाटकों को साहित्य में स्थान नहीं मिलता; पर और-और नाटक, जो छपते-बिकते हैं, साहित्य-सुधा में कैसा विष घोल रहे हैं, उसकी ओर यदि सम्मेलन या उसी की-सी अन्य साहित्य-संस्थाएँ ध्यान नहीं देंगी, तो कितना बड़ा अनर्थ हो जायगा, इसकी कल्पना करते हुए भी दुःख होता है। इन कालिदासों को तो अपने को कालिदास या शेक्सपियर कहते हुए शर्म नहीं आती; पर मेरा सिर यह सोचकर शर्म से झुक जाता है कि कोई हिंदी का विद्वान् भिन्न-भाषा-भाषी इन उपद्रवियों की यह करतूत देखकर हिंदी को कितना तुच्छ समझेगा!

इस छोटी-सी टिप्पणी में इतना स्थान नहीं कि मैं हाल के प्रकाशित किसी नाटक के कर्ता की करतूतों की पोल खोलकर पाठकों को दिखलाऊँ; पर यदि अवकाश मिला, तो मैं आगे चलकर इन कालिदासों की ललित-ललाम लीला का परिचय भी पाठकों को अवश्य दूँगा। हाँ, इतना कह देना मैं अत्यंत आवश्यक समझता हूँ कि हाल के दो-चार नाटकों को पढ़कर ही मुझे यह निराशा-पूर्ण, कटु टिप्पणी लिखनी पड़ी है, और मैं चाहता हूँ कि सुधी-समुदाय इस ऊधम-उत्पात को बंद करा दे। नाटकों के इस तूफ़ान का ज़ोर जितनी शीघ्रता से घटे, उतना ही अच्छा है।

"कटुवादी"

× × ×

७. लेखकों का अधिकार

(१)

हिंदी-संसार के चिर-परिचित, सुयोग्य पंडित जगन्नाथ-प्रसादजी चतुर्वेदी की सम्मति है कि किसी लेख के लेखक को यह पूरा-पूरा अधिकार है कि वह चाहे तो अपने लेख की एक से अधिक प्रतियाँ प्रस्तुत करके उन्हें भिन्न-भिन्न पत्र-संपादकों की सेवा में प्रकाशनार्थ भेज दे। माधुरी के विद्वान् संपादक, "संपादक-स्मृति" का अनुसरण करते हुए, लिखते हैं कि लेखक को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने लेख की प्रतियाँ एक से अधिक संपादकों के पास प्रकाशनार्थ भेजे। साथ ही आपने यह भी लिखा है कि यदि अधिकांश की सम्मति हमारे प्रतिकूल हुई, तो हम सहर्ष मान्य चतुर्वेदीजी की बात मान लेंगे। माधुरी के संपादकजी को इस उदारता के लिये अनेकानेक धन्यवाद हैं।

नामी लेखकों के लेख जिस पत्र में छपा करते हैं, उस पत्र का पत्र-संसार में बड़ा आदर-सत्कार हुआ करता है। जो पत्र अन्य पत्रों से लेखों को लेकर अपने गात्र को मनोहर बनाते हैं, वे अन्य अभिनव-लेख-प्रकाशक पत्रों के समकक्ष नहीं माने जाते। अनुमानतः इसी भावना से प्रेरित होकर पत्र-संपादकगण नहीं चाहते कि जो लेख उनके पास भेजे जाते हैं, उनकी प्रतियाँ अन्य संपादकों के पास भी प्रकाशनार्थ भेजी जायँ; क्योंकि पीछे से छापनेवाले को उच्छिष्ट लेख छापने का दोषभाक् होना पड़ता है।

लेखक चाहते हैं कि उनके भावों और मतों का अधिक प्रचार हो। उनकी यह इच्छा तभी सफल हो सकती है, जब उनके लेखों को बहुत-से लोग पढ़ें। कभी-कभी संपादकगण उपयोगी लेखों को दूसरे पत्रों से उद्धृत कर अपने पत्रों में भी छाप दिया करते हैं। पर हिंदी के पत्रों में यह बात बहुत कम देखी जाती है। पूछ-ताछ करने पर हमें यह बात ज्ञात हुई है कि हिंदी-पत्रों के संपादक-

गए हिंदी के पत्रों को बहुत ही कम देखते-भालते हैं। ऐसी अवस्था में मेरी सम्मति है कि जो लेखक अपने लेख को एक से अधिक पत्रों में छपवाना चाहते हैं, उनको वैसा करने देने में संपादकों को सहायता देनी चाहिए; उनके विरोधी नहीं होना चाहिए।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

(२)

माधुरी में पंडित जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी का तथा संपादकजी का भी लेख पढ़ने में आया। परस्पर जो विवाद उठ खड़ा हुआ है, और उभय पक्ष अपने-अपने पक्ष के समर्थन में जो जो दलीलें दे रहे हैं, वे कभी समझौते की ओर नहीं ले जा सकतीं। मेरे विचार में दोनों का पक्ष स्पष्ट नहीं है। मेरी राय है कि यदि संपादक ने किसी लेख को विना पुरस्कार दिए छाप दिया है, तो उस लेख पर लेखक का ही अधिकार माना जाना चाहिए। ऐसे लेखों को लेखक इच्छानुसार चाहे जिस अन्य पत्रिका में छपवाने का अधिकारी है, क्योंकि लेख के स्वत्व का विक्रय नहीं हुआ। यदि लेखक ने पुरस्कार ले लिया है, तो उस लेख पर संपादक का अधिकार है, और लेखक ऐसे लेख को अन्य पत्रिकाओं में छपवाने का अधिकारी नहीं है।

जगन्नाथप्रसाद पचौली

× × ×

८. आधिभौतिक उन्नति कब तक ?

स्वीडन के एक प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता स्वांट अरहेनियस (Suante Arrhenius) ने Chemistry and Modern Life-नामक एक पुस्तक लिखी है; जिसमें यह दिखलाया गया है कि पाश्चात्य भौतिक सभ्यता किन खनिज पदार्थों तथा भौतिक शक्तियों पर अवलंबित है, तथा ये कितने समय तक काम दे सकेंगी। 'लिविंग एज' ने इसका सार इन शब्दों में लिखा है—

इस भू गोल पर जितने खनिज पदार्थ पाए जाते हैं, उनकी मात्रा परिमित है; परंतु मनुष्य के लाभ के लिये प्राकृतिक शक्तियों का भांडार प्रायः अनंत है, जैसे सूर्य का ताप, वर्षा का जल इत्यादि। जो खनिज पदार्थ पहले चुकेंगे, वे हैं लोहा, ताँबा, जस्ता, राँगा, सीसा तथा भूगर्भ से मिलनेवाले ईंधन। इनमें से मिट्टी का तेल सबसे पहले चुकेगा। इसलिये, मशीनों की रगड़ कम करने के लिये, प्रकाश और यंत्र चलाने की शक्ति के लिये, इसका उपयोग बहुत कम करना चाहिए, और इसकी जगह ऐसे साधन ढूँढ़ने चाहिए, जिनसे यंत्र में रगड़ बहुत कम रह जाय, तथा प्रकाश और चालक-शक्ति के लिये बिजली और स्पिरिट से काम लिया जाय।

संभव है, पत्थर का कोयला एक हज़ार वर्ष तक चले। परंतु इसकी बहुत बड़ी-बड़ी खानों के ख़ाली हो जाने पर इसका मूल्य बढ़ जायगा, और यह सुगमता-पूर्वक मिल भी नहीं सकेगा। इसलिये संभव है कि आनेवाला परिवर्तन-काल बहुत लंबा हो; जिसमें मनुष्य कोयले की जगह अन्य पदार्थों और युक्तियों से ईंधन का काम लेने की युक्ति सोचे। सीसा, जस्ता और ताँबा बहुत ही शीघ्रता से कम और महँगे हो रहे हैं, इसलिये आजकल जिनको दुर्लभ धातु कहते हैं, वही टाइटेनियम और बेरियम इनकी जगह बर्ती जाने लगेंगी। ताँबा, जो कि बार-बार काम में लाया जा सकता है, उस लंबी अवधि में भी स्थिर मात्रा में मिलता जायगा, जब कि इसकी उपज बहुत कम मात्रा में होगी; जिससे जो कमी अनिवार्य है, वह पूरी होती रहेगी। अंत में ताँबे का स्थान एलुमिनियम को मिल जायगा। विद्युत्-वाहक का काम तो एलुमिनियम से ही लेना पड़ेगा।

बहु-मूल्य धातुओं में चाँदी सोने से पहले चुकेगी; क्योंकि एक तो इसकी खपत शिल्प-कला में बहुत होती है, दूसरे अब तक चाँदी और सोने की जितनी खानों का पता लगा है, उनमें सोने की खानें अधिक हैं। प्लेटिनम की माँग अब भी इतनी अधिक है कि पर्याप्त मात्रा में यह धातु नहीं मिलती; जिससे इसके दाम दिन-दिन चढ़ रहे हैं, और संभव है कि चढ़ते ही जायँगे।

सभ्य मनुष्य के लिये और धातुओं की अपेक्षा लोहा बहुत आवश्यक है। १६१० ई० में, स्टाकहम में, भूगर्भ-वेत्ताओं की जो सभा हुई थी, उसमें संसार-भर की लोहे की खानों का हिसाब लगाया गया था; जिसका परिणाम बड़ा ही निराशा-जनक हुआ। इसमें संदेह नहीं कि यह धातु सब जगह मिल सकती है। भू-गोल के ठोस भाग का सैकड़े पीछे ४.२ भाग लोहा ही है। परंतु ऐसी खानें बहुत थोड़ी हैं, जिनसे लोहा लाभ उठाकर तैयार किया जा सकता है, चाहे कितनी ही उन्नति लोहा साफ़ करने की विधियों में की जाय।

भविष्य में एलुमिनियम ही एक धातु है, जो अत्यंत

अधिक मात्रा में मिलेगी; क्योंकि जिन-जिन स्थानों में यह पाई जाती है, उनका वर्णन नहीं हो सकता। इस बात की कल्पना भी नहीं हो सकती कि जब तक यह भू-गोल मनुष्य के रहने के योग्य रहेगा, तब तक एलुमिनियम की कमी पड़ेगी। इसी तरह पोर्सलेन और काँच की भी कमी नहीं पड़ेगी; क्योंकि इनके तैयार करने में जिन पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है, वे पृथ्वी में ६० प्रति सैकड़े मौजूद हैं।

इसका परिणाम क्या होगा? भौतिक सभ्यता के पीछे जो दीवाने हैं, उनकी क्या दशा होगी? उनको प्रकृति का यह मार्ग (प्रवृत्ति-मार्ग) छोड़ देना होगा, और निवृत्ति-मार्ग ग्रहण करना पड़ेगा। उसका आदर्श एक दूसरे को धर दबाना नहीं, बल्कि "परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ" का होगा। यंत्रों से दूसरों को नाश करने का काम नहीं लिया जायगा; बल्कि केवल उतना ही काम लिया जायगा, जिससे लोक-सेवा करने का काम न रुके। इस मार्ग को दिखाने का काम संसार के बड़े-बड़े विचारवान् करने लग गए हैं। भारतवर्ष के विचारवानों के विचार तो प्रायः सभी आदमियों को मालूम हैं। इसलिये उनका नाम न लेकर आज हम एच्० ऐडिंगटन ब्रूस महोदय के विचार लिखते हैं; जिन्हें उन्होंने सेंचुरी मैगज़ीन में यों लिखा है—

वर्तमान व्यापारिक ढंग (Industrialism) की बुराइयाँ

मानसिक उन्नति के रुक जाने, पाप-वृत्ति के बढ़ते जाने और नाना प्रकार के वात-रोगों (nervous disease) के बढ़ते जाने के कारण जो समस्याएँ उपस्थित हुई हैं, उनका यदि कोई कारण पूछे, तो मैं निस्संदेह होकर कहूँगा कि इनका एक-मात्र कारण है, भाप से चलनेवाले एंजिन तथा इसके पीछे अन्य यांत्रिक आविष्कारों को व्यापार की उन्नति के लिये काम में लाना। जिस समय यंत्रों का चलन नहीं हुआ था, उस समय की दशा का आजकल की दशा से मिलान करो। १९वीं शताब्दी के आरंभ तक, जब कि यंत्रों का प्रादुर्भाव हो ही रहा था, मनुष्य अधिकतर खुली हवा में काम करते थे।

जिस समय से परिश्रम का विभाग किया गया, और एक तरह का काम करनेवाले दूसरे तरह का काम करने से वंचित किए गए, तब से अगणित मनुष्यों को जीवन भारू हो गया। आवश्यकता से भी कम मज़दूरी पाने के कारण उनको गंदी जगहों में रहने के लिये लाचार होना पड़ा। अब हमको यह समझ पड़ने लगा कि जब यथेष्ट मात्रा में स्वच्छ हवा और धूप नहीं मिलती, तब मानसिक विकास असंभव हो जाता है। परंतु क्या गंदी जगहों में रहनेवाले मज़दूर साफ़ हवा और धूप का उपयोग करते हैं? क्या बड़े-बड़े नगरों के ही रहनेवाले इनसे लाभ उठाते हैं? बहुत थोड़े घर ऐसे होंगे, जहाँ काफ़ी धूप और हवा मिलती है। इतना ही नहीं, नगर-निवासियों को तो बहुधा ऐसी जगहों में काम करना पड़ता है, जहाँ रोशनी, गरमी और हवा का अभाव रहता है। आते-जाते समय भी वे गंदी ही हवा पाते हैं।

यंत्रों की बढ़ती के साथ साथ मनुष्य को जल्दी-जल्दी काम करने की ऐसी आदत पड़ गई है कि उससे शरीर के अंग शिथिल हो जाते हैं, तथा सुख-भोग की सामग्री ढूँढ़ने की और नई-नई बातें जानने की प्रवृत्ति ऐसी बढ़ जाती है कि मानसिक विकास उचित रीति से नहीं हो पाता। इसका परिणाम एक ओर तो यह हुआ कि भौतिकता (Materialism) बढ़ती जाती है, दूसरी ओर शिथिलता इतनी आती जा रही है कि उसके कारण उत्तम-उत्तम बातें सोचने को जी नहीं चाहता। यह दुर्गुण, क्या अमीर क्या ग़रीब, सभी श्रेणियों के मनुष्यों में पाया जाता है। लोगों की प्रवृत्ति साधारणतः भोग-विलास की सामग्री इकट्ठी करने में ही लगी रहती है, विचार करने की ओर किसी की रुचि ही नहीं देख पड़ती; क्योंकि साधारणतः सभी लोगों में एक प्रकार की शिथिलता देख पड़ती है; जिसके कारण विचार करना बड़ा कठिन जान पड़ता है। जैसे-जैसे यांत्रिक आविष्कार दिन-दूने रात-चौगुने हो रहे हैं, नगर बढ़ते जा रहे हैं, वैसे-वैसे एक ही जगह बहुत-से आदमियों के बसने और जल्दी-जल्दी काम करने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है।

इस कुप्रवृत्ति को दूर करने का उपाय क्या है? इस पर सबको विचार करना चाहिए।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

× × ×

९. भविष्य की आशा

(१)

तिमिर-पूर्ण है मेरा देश।
चारों ओर निराशा का ही है अधिकार विशेष;
हतोत्साह हैं वृद्ध, हृदय में नहीं हर्ष का लेश।

चारों ओर बेवसी ऐसी छाई कुछ सर्वेश,
जिससे असफलता ही सम्मुख रहती खड़ी हमेश।

(२)

किंतु गया ज्यों ही मैं स्कूल।
वहाँ दृश्य वह मैंने देखा, गया निराशा-मूल।
आशामय उत्साह-सने वे चेहरे जैसे फूल ;
आँखें चमक रही, भय को जो करती हैं निर्मूल।

(३)

तब से मेरा है विश्वास,
हम तो जो हैं, बने रहेंगे वही दास-के-दास।
पर ये बालक, ये कोमल शिशु हैं स्वदेश की आश ;
आशा-ऊषा का ये देखें उज्ज्वल परम प्रकाश।
जब ये होंगे बड़े, मेदिनी किया करेगी हास ;
तब न रहेगा अंधकार अति, नहीं शोक-उच्छ्वास।
भरत-समान महा बलशाली होंगे, है विश्वास ;
'श्रीवर' के भविष्य भारत का उज्ज्वल है आकाश।

श्रीवर चतुर्वेदी

× × ×

१०. दिन का प्रारंभ

माधुरी की गत संख्या में माननीय रायबहादुर गौरी-शंकर हीराचंदजी ओझा ने अपने लेख में प्रसंग-वश इस विषय पर भी कुछ लिखा है। आपने लिखा है कि 'यदि इस विषय के जानकार कोई ज्योतिष-शास्त्री इस विषय पर कुछ विशेष प्रकाश डालने की कृपा करें, तो उससे हिंदी के प्रेमियों को विशेष लाभ पहुँचेगा।' यद्यपि मैं एक छोटा-सा अल्पज्ञ मनुष्य हूँ, न तो ज्योतिष-शास्त्री ही हूँ, और न विशेष प्रकाश डालने की ताक़त रखता हूँ, तथापि यथामति दो शब्द अवश्य इस विषय में कहूँगा।

"न हि खलु सर्वः सर्वं जानाति" कहावत के अनुसार यह संभव नहीं कि कोई मनुष्य सब विषयों का विशिष्ट ज्ञाता, ज्ञान-सागर का पारदर्शी, हो जाय। सर्वज्ञ तो एक जगदीश्वर ही हैं। तो भी जो जितना ज्ञान प्राप्त कर सकता है, करता है, और करना ही चाहिए। आकाश अनंत है, तो क्या विविध पक्षी अपनी शक्ति के अनुसार उसमें नहीं उड़ते ?

ओझाजी ने अपने लेख में ज़ोर देकर यह कहा है कि "हिंदुओं के दिन, अर्थात् तिथि का प्रारंभ मध्य-रात्रि से नहीं होता।" इस पर मेरा वक्तव्य यह है—

मुसलमान लोग दिन या तिथि का प्रारंभ सूर्यास्त से और ईसाई लोग रात के बारह बजे से मानते हैं। हिंदुओं में और-और विषयों की भाँति इस विषय पर भी मत-भेद है।

किसी आचार्य ने रात के बारह बजे से, किसी ने चार घड़ी तड़के से, और किसी ने सूर्योदय से दिन या तिथि का प्रारंभ माना है। और मतों पर नहीं, केवल इस आधी रात से दिन का प्रारंभ माननेवाले मत पर ही यहाँ कुछ कहना और उसी का दिग्दर्शन कराना है।

इस मत का रूढ़ि या योग-रूढ़ि नाम "कपाल-वेध" है। इसे अर्द्धरात्र-वेध भी कहते हैं। यह मत बहुत पुराना है, और प्रायः सभी धर्म-शास्त्र और ज्योतिष के पुराने ग्रंथों में इसका उल्लेख है। इस मत के प्रवर्तक या समुद्भावक मुनींद्र निंबार्काचार्य हैं ; जो कि वैष्णवों के सुप्रसिद्ध चार संप्रदायों में से एक के प्रवर्तक—पुनरुज्जीवक—हैं। आप बहुत ही—अद्वैत-मत-प्रवर्तक श्रीशंकराचार्य-जी से भी—प्राचीन हैं। किसी काल में इनके मत का भारत में ख़ूब प्रचार हुआ था। पर अब समय के फेर से इस मत का ह्रास-सा हो गया है। बस, इसीलिये लोग इन महामुनींद्र के सिद्धांतों से अपरिचित-से हैं।

निंबार्काचार्य का मत कपाल-वेध या अर्द्धरात्र-वेध है। यह बात नहीं कि इनके पहले यह सिद्धांत न हो। था ज़रूर ; परंतु उसका इन्होंने ही प्रबलता के साथ प्रचार किया। इसलिये इस सिद्धांत के प्रवर्तक ये ही समझे गए और प्रख्यात हुए।

अर्द्धरात्र-वेध में आधी रात, अर्थात् रात के बारह बजे, से दिन का प्रारंभ माना जाता है। प्रसिद्ध स्मार्त पंडित कमलाकर भट्ट ने अपने "निर्णय-सिंधु"-नामक ग्रंथ में यथाप्रकरण इस मत का उल्लेख करते हुए लिखा है—'कपालवेधमित्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः"। निंबार्का-चार्य ही का दूसरा नाम 'हरिप्रियाचार्य' है; यह बात इन-के ग्रंथों में प्रसिद्ध है। ऊपर के वाक्य में बहु-वचन केवल आदर-सूचक है।

यह अर्द्धरात्र-वेध 'व्रतज्योत्स्ना', 'निंबार्क-व्रत-निर्णय' प्रभृति ग्रंथों में विस्तृत-रूप से लिखा है। विशिष्ट जिज्ञासु सज्जन वहीं देखें।

यह मत थोड़ा-बहुत प्रायः सभी बड़े-बड़े ज्योतिषियों को विदित है; क्योंकि प्रत्येक "पंचांग" में इस मत का या इसके प्रवर्तक का नाम लिखा रहता है। प्रायः एका-दशी और जन्माष्टमी आदि व्रत एवं उत्सवों के आगे

स्पष्ट-रूप से "स्मार्तानाम्", "निंबार्काणाम्" इस प्रकार मत-भेद लिखा रहता है। किसी-किसी पंचांग में "निंबार्काणाम्" नहीं, "वैष्णवानाम्" लिखा रहता है। पर, यह मत है अभी भारत के हिंदुओं में वर्तमान। इन पंक्तियों का लेखक भी इसी मत को माननेवाला है। अतः श्रीयुक्त रायबहादुर महोदय का यह लिखना उसे बहुत खटका कि "हिंदुओं के दिन, अर्थात् तिथि, का प्रारंभ मध्य रात्रि से होता ही नहीं।"

पाणिनि मुनि के मतानुवर्ती सब वैयाकरणों ने भी इसी मत को माना और पुष्ट किया है। जितने भी धुरंधर विद्वान् पाणिनि महाराज के व्याकरण के भाष्य या टीका-टिप्पणी बनानेवाले हुए हैं, उन सबने "अनद्यतने लङ्" इस सूत्र का अर्थ करते हुए इस मत को माना और यथावश्यक विवृत किया है। विशेषकर "कैयट", "शेखर" और "मनोरमा" आदि ग्रंथों में यह बात देखिए।

किशोरीदास शास्त्री वाजपेयी

× × ×

११. 'रस-सरस' या 'सरस-रस'?

चैत्र की माधुरी में 'कुछ सूचनाएँ'-शीर्षक के नीचे लिखा है कि 'रस-सरस'-ग्रंथ के प्रणेता सूरति मिश्र हैं। पर यह ठीक नहीं। ग्रंथ का नाम 'सरस-रस' है, और उसका संकलन आगरे के लाल कवि ने किया है। लाल कवि सूरति मिश्र के समकालीन हैं। उन्होंने उक्त ग्रंथ की रचना में सूरति मिश्र आदि अनेक कवियों की सम्मति ली है। रसिक-प्रिया, रस-राज आदि ग्रंथों में वर्णित नायिका-भेद के क्रम से इस ग्रंथ में वर्णित नायिका-भेद के क्रम में बहुत कुछ विलक्षणता है। कई नए और अधिक भेद इसमें दिखाए गए हैं। इस ग्रंथ में ८ विलास (अध्याय) हैं। संवत् १७९४ के वैशाख में यह पूर्ण हुआ है। इसमें कुल १३१ छंद हैं। उदाहरण में आलम, उदयनाथ, कल्याण, कवींद्र (यह शायद उदयनाथ ही का अन्य नाम था—सं०), केशवदास, गंग, दत्त, दयाराम, भगवंत, मतिराम, महाकवि, लाल, वीर, सुजान, सूरति मिश्र, सेनापति और हठी, इन १७ कवियों के छंद भी जगह-जगह उद्धृत किए गए हैं। लाल कवि ने इस ग्रंथ में सूरति मिश्र का नाम सूरतराम लिखा है। यह 'सरस-रस'-ग्रंथ भरतपुर-राज्य के पुस्तकालय में है। वहाँ से मँगाकर मैंने अपने हाथ से उसकी नक़ल कर ली है। खेद है कि उस प्रतिलिपि के अधिकांश स्थलों को कीड़ों ने नष्ट कर डाला है। उसके अंत के कुछ दोहे मैं यहाँ पर देता हूँ—

एक समै मधि आगरा × × × कह जोय;
मिल्यो हाय सुख ×× जन की कविता जोय ॥ १२३ ॥
तब सबहे मिलि मंत्र सब, कियो कबिन बहु जानि;
राच्यो ग्रंथ नवीन इक, नए भेद रस ठानि ॥ १२४ ॥
जिहि बिधि कबि मिलिकै कही यथायोग्य लहि रीति;
उनही में जे संभवे कहे भेद युत प्रीति ॥ १२५ ॥
अपनी मति परबीन सों कहे भेद बिसतारि;
लखो जु यामें न्यूनता सो कबि लेहु सुधारि ॥ १२६ ॥
कबि अनेक मत में हुते पै मुख्य कबि परबीन;
जाकी सम्मति से भयो पूरन ग्रंथ नवीन ॥ १२७ ॥
सूरत राम सुकबि रसिक कान्यकुब्ज वह जानि;
बासी वाही-नगर को कबिता ताहि प्रमानि ॥ १२८ ॥
केतक धरे सुग्रंथ में बर कबित्त कबिराय;
ताही सों गंभीरता अर्थ बरन दरसाय ॥ १२९ ॥
आठौ रस रस-भेद में जो बरने मति ठानि;
राजनीति में संभवे ते मत लीन्हो मानि ॥ १३० ॥
सत्रह से चौरानवे संबत सुभ बैसाख;
भयो ग्रंथ पूरन सु यह छठि ससि पुष सित पाख ॥१३१॥

इति लालकविसंचितसरस-रसग्रंथे रसनिरूपणो नाम अष्टमो विलासः ॥ ८ ॥

सूरतराम (सूरति मिश्र) ने इन ग्रंथों की रचना की है—साहित्य-परिचय, नखशिख, रसग्राहक-चंद्रिका, ज़ोरावर-प्रकाश (रसिकप्रिया की टीका), कविप्रिया की टीका, बेताल-पचीसी, अलंकार-माला, रस-रत्न, काव्य-सिद्धांत, भक्त-विनोद और अमर-चंद्रिका (बिहारी-सतसई की टीका)। इनमें पिछले पाँचों ग्रंथ मेरे पास हैं।

× × ×

१२. टुडरस कवि

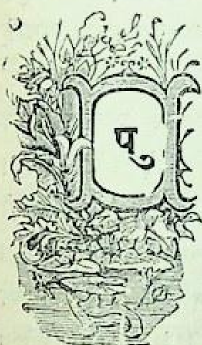
टहकन कवि के समान मुझको करौली-नगर में पूरब के पुरबिया टुडरस कवि की एक कविता मिली है। वह कविता यह है—

चतुर नायिका शिशिर ऋतुमध्ये क्रीड़ा करत ततच्छन फेन;
आयो सुभग चहूँ दिसि चितवत कर गहे कनक बनक सुखदैन।
रोके मास प्रवास अंगुधर घर सारँग भवनन पर बैन;
टुडरस कवि अचरज यह दीठो, फिरि गयो चतुर समझकर सैन।

गोविंदगिल्ला भाई



१. गंज के कारण



पुरुषों में गंजे बहुत देखे जाते हैं, किंतु शायद ही कोई गंजी स्त्री देखी जाती हो। इससे जान पड़ता है कि स्त्रियों में कोई ऐसी विशेषता होती है, जिसके कारण उनके सिर के बाल नहीं गिरते। मनुष्यों के सिर के बाल गिरने के कारण क्या हैं? मनुष्य तथा स्त्री की खोपड़ी एक ही-सी होती है; बाल एक ही प्रकार जमते हैं। उनका पोषण भी एक ही प्रकार होता है। तो भी मर्दों के बाल गिर जाते हैं, और स्त्रियों के नहीं। इसके अनेक कारण बतलाए गए हैं। उनमें से एक कारण बालों को बार-बार पानी से धोना और उन्हें गीला ही छोड़ देना है। मर्द जितना अधिक अपने बालों को धोते हैं, स्त्रियाँ उतना नहीं धोतीं। अधिक जल बालों के लिये हानिकारक है; क्योंकि वह बालों के स्वाभाविक तेल को—जो बालों का प्रधान पोषक है—नष्ट कर देता है। मर्द छोटे-छोटे बाल रखते हैं; उनका धोना आसान है। जब कभी मौक़ा मिला, उनमें साबुन भी लगा दिया जाता है। नए फ़ैशन के बाबू लोग बाहर जाने के पहले अपने बालों को सँवार लेते हैं। उस समय बालों को पानी से भिगो लिया जाता है। किंतु सबसे बुरी आदत यह है कि बाल भिगोने के बाद सुखाए नहीं जाते। बाल सुखाने के बदले उन्हें भीगा ही छोड़ देना बाबू लोग अधिक पसंद करते हैं। स्त्रियाँ अपने बालों को बहुत कम भिगोती हैं, और यदि भिगोती भी हैं, तो उन्हें अच्छी तरह सुखा लेती हैं।

डॉ० ज्यॉर्ज टी० जैक्सन का कहना है कि बालों का खाद्य एक प्रकार का तेलमय पदार्थ है। वह बालों को मुलायम और उनकी जड़ को मज़बूत करता है। उन्हें चमकीला बनाता, और नष्ट होने से उनकी रक्षा करता है। कभी-कभी बालों का धोना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि बालों की जड़ में मैल जम जाता है, और तेलमय पदार्थ को खोपड़ी से खींचने में बाधक बनता है। उसे यथासंभव शीघ्र धो डालना चाहिए। पानी से धोने के बाद बालों को अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए, और तब उनमें थोड़ा-सा तेल डालना चाहिए। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि तेल बालों ही में न लगा रह जाय, उनकी जड़ (खोपड़ी) में भी पहुँच जाय।

बहुत-से लोग यह भूल करते हैं कि बालों को धोने के बाद सुखा नहीं लेते। यदि बालों को सुखाकर उनमें तेल न लगाया जाय, तो वे शीघ्र ही उड़ने लगते हैं। तेल लगाने का तात्पर्य बाल धोने से जो तेलमय पदार्थ धुल जाता है, उसी को पूरा करना है।

Dr. Pohl Pincus नाम के जगत्-प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक भी ऊपर दिए हुए मत के समर्थक हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि मूछ या दाढ़ी के बाल, जो प्रायः नित्य तीन-चार या अधिक बार धोए जाते हैं, क्यों नहीं उड़ते? हमारी खोपड़ी बहुत पतली है। उसके बाद ही कड़ी हड्डी आती है। खोपड़ी पर जो बाल जमते हैं,



एक गंजी स्त्री

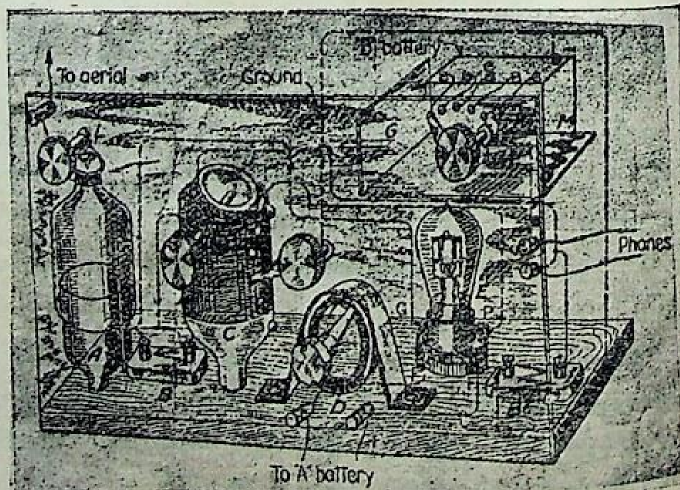
उन्हें बहुत कम खाद्य पदार्थ मिलता है ; क्योंकि खोपड़ी तक बहुत कम रक्त पहुँचता है । इसलिये वहाँ चर्बी भी थोड़ी ही रहती है । मूछ और दाढ़ी बालों के लिये बड़ी अच्छी ज़मीन है। वहाँ बालों को काफ़ी से भी अधिक चर्बी मिलती है । इन स्थानों पर इतना तेलमय पदार्थ रहता है कि जल्दी धुल नहीं सकता।

गंज होने का कारण केवल बालों का बार-बार धोना नहीं, किंतु तेलमय पदार्थ को धो डालना ही है । इसके अलावा मर्द कसी हुई टोपी या साफ़ा बाँधते हैं; जिससे बालों को काफ़ी हवा नहीं मिलती । स्त्रियाँ अपने सौंदर्य के ख़याल से बालों पर मर्दों से अधिक ध्यान रखती हैं। प्राकृतिक (organic) पदार्थों के लिये प्रकाश और हवा बहुत आवश्यक है । मर्द अपने बालों को प्रायः ढके ही रहते हैं । बहुत-से मर्दों का अभ्यास है कि काम करने के समय भी अपनी टोपी को अपने सिर पर रक्खेंगे । गंज में यह भी सहायता करता है ।

× × ×

२. रेडियो का यंत्र

पापुलर साइंस का कहना है कि कोई भी मनुष्य रेडियो का ग्राहक-यंत्र (Receiver) थोड़े-से यंत्र, बैटरी और कुछ शीशे की बोतलों से बना सकता है । शीशे की बोतलों के बदले पहले लकड़ी का इस्तेमाल होता था; किंतु उसमें से विद्युत् निकल जाया करती थी, और अस्पष्ट शब्द सुनाई देते थे । इस असुविधा को दूर करने के लिये शीशे की बोतलें Condenser के रूप में व्यवहृत होने लगी हैं, और उससे लाभ भी होते देखा जाता है। नीचे जो चित्र दिया हुआ है, उसमें A एक बड़ी बोतल है; जिसमें एक छोटी बोतल लगाई हुई है। दोनों के बीच के स्थान में टीन का पत्तर दिया हुआ है । D एक रीओस्टैट (Rheostat) है। बैटरी और तार के कनेक्शंस आदि साफ़-साफ़ दिखलाए गए हैं।



रेडियो का यंत्र

× × ×

३. फूलों को ताज़ा रखना

तोड़े हुए फूल का डंठल कच्चे आलू में एक सूराख़ करके गाड़ दीजिए। जब तक आलू सूखेगा नहीं, तब तक फूल भी ताज़ा रहेगा।

× × ×

४. विष-स्वरूप चीनी

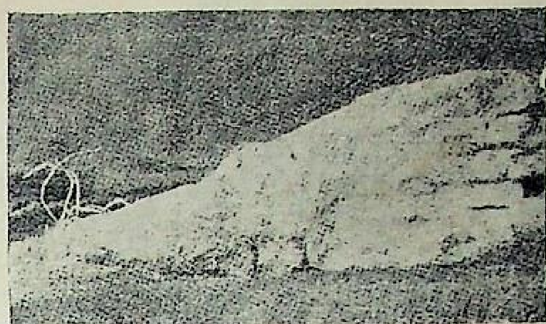
भलाई-बुराई सभी पदार्थों में है। जो वस्तु अच्छी है, समय पड़ने पर वही बुरी हो जाती है। विष जीव-घातक है, इसे एक लड़का भी बतला सकेगा। किंतु डॉक्टरों से पूछ देखिए, वे कहेंगे कि मुमूर्षु अवस्था में मनुष्य को विष खिलाकर बचाया जा सकता है। चीनी एक मीठा पदार्थ है; पर किसी-किसी समय वह भी विष हो जाती है।

जहाज़ के लिये डिनामाइट जितना भयंकर नहीं है, उससे अधिक चीनी नाविकों के लिये डर की वस्तु है। किसी जहाज़ को चीनी से लादकर गरम देशों की यात्रा करने की आज्ञा दे दीजिए। उसकी गंध से नाविक घबरा, और खट्टी वस्तु पाने के लिये लालायित हो उठेंगे। उनकी भूख जाती रहेगी, और वे जहाज़ को छोड़कर भागने की चेष्टा करेंगे। काफ़ी को भी चीनी से कम नहीं समझना चाहिए। रुई इन दोनों से भयानक है। उसे तेल के संसर्ग में लाना वस्त्र को दियासलाई दिखलाना है। कौन जानता था कि ये उपयोगी वस्तुएँ भी एक दिन भयंकर सिद्ध होंगी।

× × ×

५. मनुष्य के पैर की शकल का शक़रक़ंद

दो-तीन फलों का एकसाथ मिलकर कोई अद्‌भुत आकार ग्रहण कर लेना कोई नई बात नहीं है। विभिन्न प्रकार के फल-मूल समय-समय पर दिखलाई देते हैं। नाना प्रकार की वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा फल के ऊपर स्वाभाविक भाव से चित्र या अक्षर खिंचे हुए देखने को मिलते हैं। एक ही वृक्ष में दो प्रकार के फल पैदा करना या फूलों का स्वाभाविक रंग बदलकर किसी दूसरे रंग का कर देना भी देखा गया है। ये बातें विचित्र अवश्य हैं; किंतु स्वाभाविक विचित्रताएँ इनसे भी आश्चर्यमयी होती हैं। यहाँ मनुष्य के पैर की शकल के शक़रक़ंद का एक चित्र दिया गया है। यह शक़रक़ंद ऑल इंडिया इग्ज़िबीशन (अखिल भारतवर्षीय प्रदर्शिनी) में



मनुष्य के पैर की शकल का शक़रक़ंद

प्रदर्शित हुआ था। वह देखने में ठीक मनुष्य के बाएँ पैर-सा था। उसकी लंबाई १२$\frac{१}{३}$ इंच (मनुष्य के पैर से कुछ ज़्यादा) है। एँड़ी की ओर कुछ पतला है; किंतु और सब हिस्से पैर ही-जैसे हैं। इसमें सबसे आश्चर्य-जनक बात यह है कि मनुष्य के पैर के ऊपर और तली के आकार में भी सादृश्य रखता है। प्रकृति की महिमा अपार है।

× × ×

६. एक अद्भुत बालक

इस अद्‌भुत बालक का सिर उसके शरीर के अनुपात से बहुत बड़ा है। उसके सिर की गोलाई २१$\frac{३}{४}$ इंच, लंबाई ७$\frac{७}{८}$ इंच, चौड़ाई ९$\frac{१}{४}$ इंच है। उसकी उम्र आठ वर्ष और उँचाई ३ फ़ीट ७$\frac{३}{४}$ इंच है। कहा जाता है कि यह लड़का बड़ा मेधावी है, और भविष्य में एक बड़ा मनुष्य होगा। इसके सिर की लंबाई-चौड़ाई आदि देखकर लोगों ने अनुमान किया है कि यह भी दिशा में आश्चर्य-जनक उन्नति कर सकेगा।

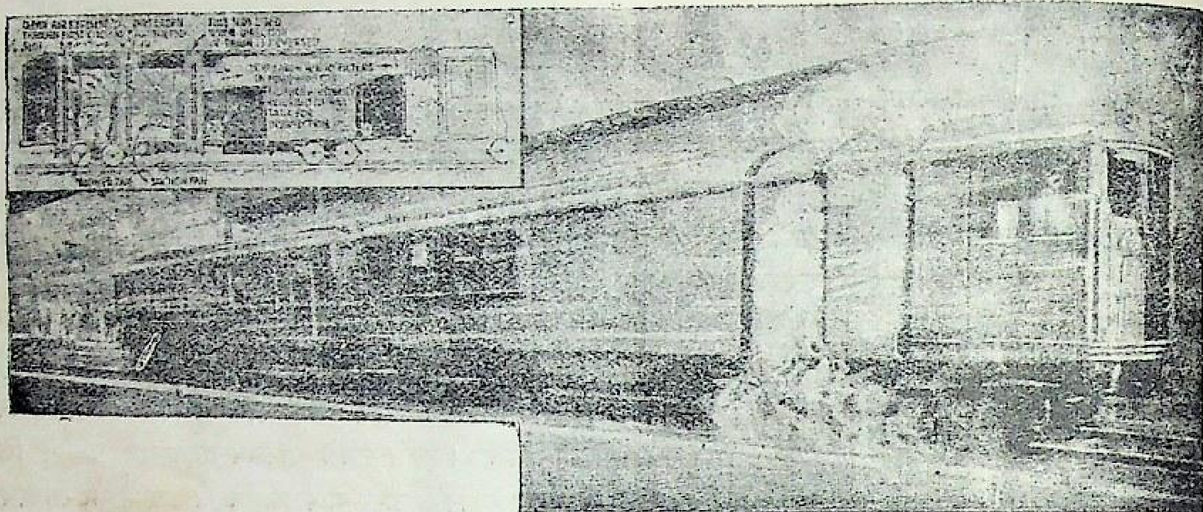


एक अद्‌भुत बालक का सिर

× × ×

७. धूल-भक्षक गाड़ी

न्यूयार्क में एक नई मोटर-गाड़ी चलनेवाली है। यह गाड़ी रास्ते पर चलने के समय जो धूल उड़ावेगी,



धूल-भक्षक गाड़ी

उसे अपने भीतर खींच लेगी। धूल गाड़ी के भीतर रहकर जब विशुद्ध हो जायगी, तब यह उसे छोड़ देगी। इससे रास्ता चलनेवालों को कोई कष्ट नहीं होगा, और उनके नाक-मुँह में अनावश्यक धूल भी प्रवेश नहीं करेगी।

× × ×

८. स्वीज़रलैंड का पनीर

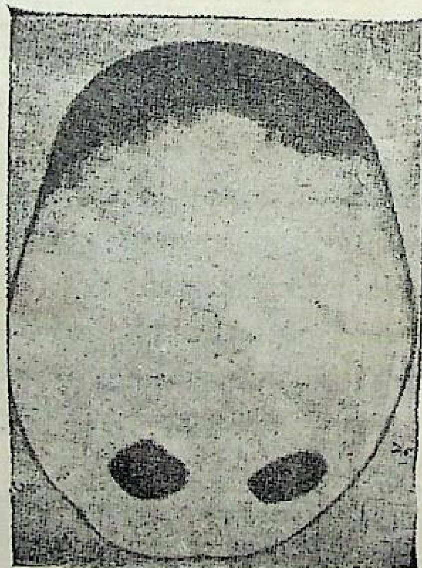
स्वीज़रलैंड में जिस परिवार का पनीर जितना ही पुराना होगा, वह परिवार उतना ही प्रतिष्ठित गिना जायगा। अतिथि को वे ख़ूब कड़ा पनीर खाने को देते हैं। उनका कहना है कि अतिथि को जितना कड़ा पनीर दिया जायगा, उतना ही अधिक उसका सम्मान करना होगा।

इँगलैंड, जर्मनी और नार्वे के मनुष्य भी पनीर का व्यवहार करते हैं; किंतु स्वीज़रलैंड में इसका सबसे अधिक प्रचार है। जर्मट-शहर का पनीर इतना कड़ा होता है कि उसे कुल्हाड़ी से काटते हैं। स्वीज़रलैंड में अब भी ऐसे बहुत-से परिवार हैं, जिनके घर में फ़्रांस के प्रथम विप्लव के समय का पनीर मिलेगा। यह पनीर बपतिस्मे और विवाह के समय व्यवहृत होता है। किसी-किसी घर में लड़का पैदा होने के समय जो पनीर तैयार किया जाता है, उसका नाम लड़के के नाम के अनुसार ही रक्खा जाता है। इस पनीर को यत्न-पूर्वक रख देते हैं, और लड़के का जब विवाह होने लगता है, उस समय फिर उसी पनीर का इस्तेमाल किया जाता है।

× × ×

९. सिर के पीछे आँखें

अमेरिका में एक परिवार है, जिसका नाम कैटलिन परिवार (Catlin Family) है। इस परिवार के बहुत-से मनुष्यों के सिर के पीछे भी आँखें होती हैं।



कैटलिन परिवार के एक मनुष्य की खोपड़ी
(जिसमें सिर के पीछे आँखें दिखलाई गई हैं)

× × ×

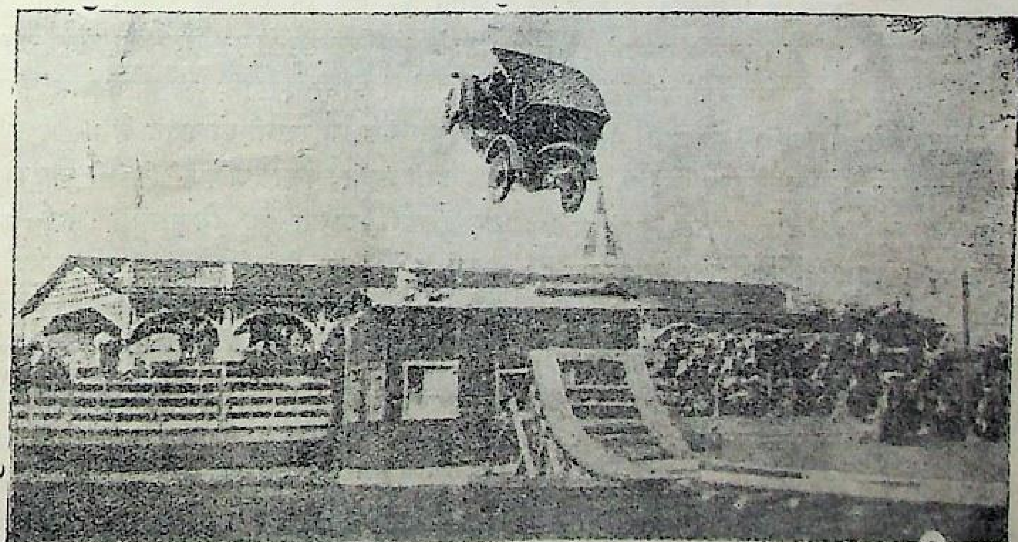
१०. नखों की वृद्धि

हमारी उँगलियों के नख ऋतु-विशेष के अनुसार कम या अधिक बढ़ते हैं। शीत काल की अपेक्षा गरमी में नख अधिक बढ़ते हैं। उँगलियों में कनिष्ठिका—सबसे छोटी उँगली—का नख और उँगलियों की अपेक्षा अधिक बढ़ता है। नख-वृद्धि में इस प्रकार की विभिन्नता क्यों होती है, इसका कारण मालूम नहीं होता। प्रायः ४३ महीने में नख संपूर्ण-रूप से बढ़ जाते हैं। सत्तर वर्ष तक यदि नख को न काटकर उसे बढ़ने दिया जाय, तो वह बढ़कर ७ फ़ीट ६ इंच लंबा हो जायगा। चीनी लोग बहुत बड़े-बड़े नख रखते हैं। नख लंबे होते-होते कहीं टूट न जायँ, इस डर से वे उँगली को बाँस के चोंगे में डालकर नखों की यत्न-पूर्वक रक्षा करते हैं।

× × ×

११. मोटरकार की अद्भुत फाँद

एक मोटरकार क्रमशः ऊँचे रास्ते पर यदि ज़ोर से आ रही हो, तो १५ फ़ीट ऊँचे घर को अनायास पार कर जा सकती है। चित्र देखने से पाठक समझ सकेंगे कि एक गाड़ी लकड़ी के रास्ते से आकर एक घर को उछलकर पार कर रही है।



एक मोटरकार १५ फ़ीट ऊँचा घर कूदकर पार कर रही है

रास्ते का आख़िरी हिस्सा कुछ ऊँचा है, इससे मोटर का मुँह आकाश की ओर फिरकर उसकी गति ऊर्ध्वमुखी हो गई है।

× × ×

१२. आँखों की रक्षा

१. आँखें, विशेषतः लड़कपन में, बहुत धीमी या तेज़ रोशनी से ख़राब हो जाती हैं। माता-पिता के ध्यान न देने के कारण लड़कों को कम उम्र में चश्मा लेना पड़ता है। उनके सिर में दर्द होने लगता है, और मानसिक शक्ति भी कम हो जाती है। बुढ़ापे में कुछ धुँधला भी दिखलाई देता है।

२. चमकीली रोशनी खुली आँख से नहीं देखनी चाहिए।

३. काँपते हुए (Flickering) प्रकाश से यथा-संभव आँख की रक्षा करनी चाहिए। पलकों का बिना कारण संकुचन-प्रसारण करने से पेशियाँ थक जाती हैं, और आँख में दर्द होने लगता है।

४. अँधेरे से एकाएक प्रकाश में या प्रकाश से एकाएक अँधेरे में न जाना चाहिए।

५. पढ़ने या सूक्ष्म काम करने के समय रोशनी ऊपर से या एक तरफ़ से आनी चाहिए।

६. प्रकाश को आँख के सामने यथासंभव नहीं रखना चाहिए।

७. उजला प्रकाश रंगीन प्रकाशों से लाभदायक है।

८. हरे, लाल और नीले रंग से पीला प्रकाश अधिक आरामदेह है।

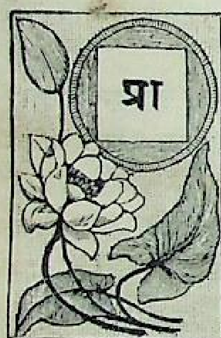
९. गाढ़ा, हरा या नीला रंग आँखों को जल्दी थका देता है।

१०. चमकीली वस्तु को पीले रंग के शीशे से देखा जाय, तो साफ़-साफ़ दिखलाई देगी, और आँख पर ज़ोर भी नहीं पड़ेगा।

रमेशप्रसाद



१. हमारी शक्तियाँ



प्राचीन ऋषियों ने अपने अमूल्य ग्रंथों में लिखा है कि यह आत्मा अनंत शक्तियों का भंडार है, और द्रव्य-क्षेत्र के अनुसार इसकी शक्तियाँ दबती या उछलती रहती हैं। वास्तव में बात भी यही है ; क्योंकि हम लोग इसका अनुभव स्वयं करती हैं।

यदि शांत हृदय से विचार किया जाय, तो भली भाँति ज्ञात होगा कि जितना मनुष्य कहता, लिखता अथवा इंद्रियों से प्रकट करता है, उससे कहीं अधिक अनुभव करता है। दृष्टांत के लिये एक शब्द-ज्ञान पर विचार कीजिए। एक मनुष्य सैकड़ों मनुष्यों की आवाज़ अलग-अलग पहचानता है, पिता के और मा या बहन के शब्दों को दूर से सुनकर ही पृथक्-पृथक् जान लेता है ; परंतु इन कंठ-स्वरों में जो कुछ सूक्ष्म भेद है, उसको विस्तृत-रूप से कभी नहीं कह सकता। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु की अवस्था है। एक सफ़ेदी को ही लीजिए। देखने में दीवार की सफ़ेदी एक प्रकार की, कपड़ों की अन्य प्रकार की तथा चावलों की और ही प्रकार की है। अर्थात् समझाने के लिये सफ़ेद रंग एक प्रकार का है ; परंतु स्वयं अनुभव द्वारा हज़ारों तरह का मालूम होता है। और, इस विभिन्नता का स्पष्ट ज्ञान हमारा आत्मा विना किसी कष्ट के स्वयं झटपट कर लेता है।

तात्पर्य यह कि अनंत शक्तिशाली आत्मा प्रत्येक देह में विराजमान है, और वह समय-समय पर, अवकाशानुसार, अपनी शक्तियों को संक्षिप्त स्वरूप में प्रकट करता रहता है।

जब यह पशु, पक्षी व कीट-पतंगों का पर्याय (योनि) प्राप्त करता है, तब इसकी शक्तियाँ बहुत ही मंद पड़ जाती हैं। यहाँ तक कि जब वृक्ष, फल, फूल आदि में जाता है, तब तो जड़ के समान अपनी शक्तियों को अत्यंत संकुचित-रूप में कर लेता है। और, जब पुण्योदय से स्वर्ग में जाकर देवतादि की योनि प्राप्त करता है, तब अद्भुत बल का स्वामी हो जाता है।

इसी प्रकार, पुरुष और स्त्री में भी एक ही प्रकार के शक्तिशाली आत्मा का निवास है ; केवल पर्याय की अपेक्षा से, व्यक्त शक्तियों में, बहुत-सा भेद देख पड़ता है। दैहिक विभिन्नता तो प्रत्यक्ष ही है। इसके अतिरिक्त मानसिक भेद भी बहुत हैं। इस पर विचार करने से मनन करने योग्य शिक्षा-प्रद बहुत कुछ बातें मिलती हैं।

प्रकृति ने स्त्रियों को कितने ही ऐसे विशेष गुण दिए हैं, जो पुरुष में हो ही नहीं सकते अथवा हों, तो बड़े अध्यवसाय और संयम की आवश्यकता रखते हैं। किंतु महिलाओं में वे स्वभाव से होते हैं ; जैसे सतीत्व, दया, सेवा, प्रेम, सहनशीलता आदि।

स्त्रीवाची सती-शब्द स्त्रियों के लिये ही रचा गया है। भारत की कई देवियाँ इस गुण की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुकी हैं, और उनका नाम आज तक मालाओं के मणियों पर जपा जाता है।

यद्यपि अनेक पुरुष भी ब्रह्मचारी हो गए हैं, तथापि

उनको इतना श्रेय नहीं मिला ; क्योंकि उन्होंने विपत्ति-काल का सामना करके व्रत का निर्वाह नहीं किया, बल्कि अपने अनुकूल स्थिति में किया है। किंतु सतियों ने सहस्रों प्रलोभनों को लात मारकर अपना शील बचाया है। अतएव अपनी निजी संपत्ति समझकर महिला-मंडली को उचित है कि इस गुण को शिथिल न होने दे ; अर्थात् स्त्रियाँ सतीत्व के सहायक लज्जा, विनय, इंद्रिय-दमन, पति-भक्ति आदि सद्गुणों का पालन सदैव दृढ़ता के साथ करें। पाश्चात्य विद्या और वेष-भूषा के मोह में अपने गुणों को भी न खो बैठें।

देखो, परिष्कृत (साफ़) न होने से भूमि की अच्छे-अच्छे फल-फूल उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो जाती है, और खाद आदि उत्तेजक पदार्थों को डालने से फिर उत्पादिका शक्ति ठीक हो जाती है। यही हाल प्रत्येक गुण के गुणी का है ; अर्थात् सहायक सामग्री को पाकर गुण विकसित होते हैं, और प्रतिरोध को पाकर छिप जाते हैं, अथवा अपने स्वरूप को छोड़कर भिन्न प्रकार के हो जाते हैं; जिस प्रकार किसी कु-भूमि में अगर पौधा जम भी जाता है, तो फल-काल में कीड़े लग जाते हैं, या नीरस और काने-कुतरे फल लगते हैं।

सद्विद्या के अभाव से हम स्त्रियों की सत् शक्तियाँ भी नष्ट होती जाती, और हमारी विद्या और कला-कौशल में नए रंग-ढंग के कीड़े-मकोड़े लगते जाते हैं, वे महत् प्रयत्न से प्राप्त उच्च विद्या के फल-काल को भी लाभ-प्रद नहीं होने देते; बल्कि आत्म-बल को नष्ट कर केवल भौतिक विज्ञान की लीला में फँसाते जाते हैं—अर्थात् भोली अवस्था में जो कुछ परमेश्वर में विश्वास और पापों से भय रहता है, उसको भी भगा देते हैं ; ग़रीब कुटुंबियों की सहानुभूति लोप कराकर और स्वच्छंद परिणति-शील बनाकर किसी निष्फल व्यवसाय में शेष कर देते हैं।

यद्यपि विद्या या कला-कौशल में यह दोष नहीं है कि वे मानव की शुभ शक्तियों को भुला दें, बरन् ये सामग्रियाँ तो आत्म-बल की उत्तेजक हैं, तथापि विपरीत होने से वर्तमान युग में विपरीत फल दिखलाई देता है। अतएव हमारी बहनों को चाहिए कि ऐसी विद्या को पढ़ें, और उस शिक्षा को ग्रहण करें, जिससे अपने आत्मा के गुण चमकते चले जायँ।

यह हमारा आत्मा स्वभाव से ही स्व और पर का कल्याणकर्ता है। इस गुण को स्वार्थ-रूपी कीच ने दबा दिया है। परंतु हमें बल-पूर्वक अपने स्वभाव पर चलना चाहिए, और ज्ञान-चक्षु से देखकर हित-पथ पर दृढ़ रहने की शक्ति प्रकट करनी चाहिए।

यदि हम लोग अपने आत्मा को स्व-शक्तियों को प्राप्त करने का अवकाश दे दें, तो पर-संग से उत्पन्न हुई सारी बुराइयाँ स्वयं हमें छोड़-छोड़कर भागने लग जायँगी, और यह शरीरस्थ आत्मा ऐसे-ऐसे पवित्र कामों को करने लग जायगा, जिनसे संसार का और इसका उद्धार होना संभव है। 'समय-सार' में कहा है—

आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् सदापरः ;
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते।

अर्थात् आत्मा अपने ज्ञान-दर्शनादि शुद्ध भावों को ही करनेवाला है। और जो कुछ राग, द्वेष, दुःख, चिंता आदि देख पड़ते हैं, ये सब परभाव, जड़ जो कर्म उसके, हैं।

आत्माज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ;
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्।

भावार्थ—यह आत्मा स्वयं ज्ञान-स्वरूप है, और जो कुछ करता है, ज्ञान-रूप ही करता है। परंतु सांसारिक परिणति-रूप व पाप-रूप भावों का करनेवाला इस आत्मा को मानना मोह का भ्रम है।

स्त्रियों के विशेष गुणों में लज्जा-गुण भी सम्मिलित है। इससे भी प्रमाद न करना चाहिए। लज्जा-विहीना स्त्री को देखने से स्वाभाविक घृणा होती है। केवल पर्दा रखना ही लज्जा नहीं है। विनम्रता-रूपी एक महान पर्दा अंतरंग में, हृदय-पट पर, प्रत्येक महिला को रखना चाहिए; जिससे स्त्रीत्व की रक्षा हो।

इंद्रिय-दमन भी स्त्रियाँ सरलता से कर सकती हैं, जब कि पुरुषों को इस काम में बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं।

गर्भ से लेकर संतान के पालन-पोषण में महिलाओं को बड़े-बड़े दुःखों का सामना करना पड़ता है। इससे इनकी इंद्रियाँ जल्दी सावधान हो सकती हैं। अतएव हम लोगों को चाहिए कि अपनी संपत्ति का भोग करें; अर्थात् अपने स्वाभाविक गुणों को बढ़ने का अवसर दें। तभी कल्याण होगा, तभी हमारी शक्तियाँ प्रकाशित होंगी।

चंदाबाई जैन

× × ×

२. जहाँगीर बादशाह और एक राजपूत की पुत्री

बात बहुत पुरानी—सन् १६११ की—है। दिल्ली के तख़्त पर बादशाह जहाँगीर विराजमान थे। मुग़लों की विजय-पताका सारे हिंदोस्तान में फहरा रही थी। बादशाह अकबर को मरे अभी बहुत ही थोड़े दिन हुए थे। जहाँगीर में अभी जोश दूना था, उल्लास की मात्रा अधिक थी। वह इस समय नूरजहाँ पर बेतरह लट्टू हो रहे थे। यदि नूरजहाँ कमल-कुसुम थी, तो वह भ्रमर थे। उसके पीछे वह जी-जान देने को उतारू थे। इसी वर्ष उन्होंने नूरजहाँ से निकाह भी कर लिया।

ख़ैर, यह तो भूमिका-मात्र हुई। अब असली कहानी शुरू होती है। शाम का समय था। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था; पर सूर्य की अंतिम लालिमा चारों ओर फैल गई थी। चिड़ियाँ मधुर तान से गान करती हुई अपने बसेरों को लौट रही थीं। दिन-भर के थके-माँदे किसान भी अपने पशुओं को लिए घर लौट रहे थे। समय अपूर्व था; प्राकृतिक छटा निराली थी। इसी सुंदर समय में बादशाह जहाँगीर भी अपने महल से निकले। उन दिनों बादशाहों को पूरी आज़ादी थी। जब चाहें, अकेले घूमने-फिरने को निकल सकते थे। इसका कारण भी था। वह यही कि उन्हें अपनी सेना के सिवा अपने हाथों पर भी पूरा भरोसा रहता था। ख़ैर, कुछ देर में हम बादशाह को यमुना-तट पर पाते हैं। इस समय यमुना ने भी अपूर्व रूप धारण किया था। उसकी लहरों की चंचलता चित्त को अस्थिर करनेवाली थी। हवा के हिलकोरों से यमुना का जल छलक रहा था; मानो मंद-मंद वायु साँवली-सलोनी सुंदरी यमुना के श्यामल कपोलों को चूम रही थी!

जहाँगीर के कानों में इसी समय गाने की भनक पड़ी। कोई गा रहा था—"भ्रमर, तू मत कर कमल से बैर।" स्वर बड़ा मीठा था, लय में लोच थी। जहाँगीर ने चारों ओर आँखें दौड़ाईं। देखा, एक सुंदरी युवती यमुना-जल में स्नान कर भीगे हुए कपड़ों को निचोड़ रही है। सुंदरी के चेहरे पर अपूर्व आभा, अकथनीय सुंदरता, थी।

जहाँगीर, जिनके महलों में एक-से-एक बढ़कर सुंदर नारियाँ मौजूद थीं, उसे देखकर दंग रह गए। सोचने लगे—ऐसी सुंदरता! ऐसा रूप! चाँद-सी सूरत! क्या इसके रहने से मेरा महल रोशन नहीं हो जायगा? जहाँगीर को बेचैनी सताने लगी। उन्होंने अपना अभिप्राय अपने मुसाहबों से कह सुनाया। एक मुसाहब ज़रा होशियार था। उसने हाथ जोड़कर कहा—"शाहंशाह! यह देखने से तो किसी राजपूत-कुल की रमणी मालूम होती है। राजपूतानियों को अपने धर्म का, अपने सतीत्व का, बड़ा गर्व रहता है। वे अपनी जान तक दे सकती हैं; पर अपने धर्म पर—अपने सतीत्व पर—दाग़ नहीं लगने दे सकतीं। हुज़ूर के महलों में एक-से-एक बढ़कर ख़ूबसूरत बेगमें मौजूद हैं; जिनके मिसाल की इस दुनिया में कम औरतें मिलेंगी। मेरी राय तो यह है कि जहाँपनाह इस औरत की ओर से दिल हटा लें। अब शाम भी हो रही है। हुज़ूर को लौट चलना ही वाजिब है।" दूसरे मुसाहबों ने भी कुछ इसी तरह की बातें कहीं। पर जहाँगीर के दिल में इन रूखी-सूखी बातों से तसल्ली नहीं हुई।

बहुत कहने-सुनने पर भी जब बादशाह ने नहीं माना, तो एक मुसाहब—काज़िरख़ाँ—बादशाह का प्रस्ताव लेकर उसके पास जाने को तैयार हो गया। कुछ लोगों का कहना है कि बादशाह ख़ुद गए; मगर चूँकि उनकी संख्या कम है, इसलिये यह बात ऊपर से जोड़ी हुई जान पड़ती है।

वह क्षत्रिय-कुल की कुमारी घर जाने को तैयार हो रही थी। इसी समय काज़िरख़ाँ ने वहाँ पहुँचकर पूछा—क्या आप मेहरबानी करके बताएँगी कि आप किसकी बेटी हैं?

सुंदरी—शक्तसिंह राठौर की।

काज़िर—मैं आपको एक ख़ुशख़बरी सुनाने आया हूँ। हुक्म दीजिए, तो कहूँ।

सुंदरी (प्रसन्नता-पूर्वक)—हाँ, सहर्ष कहिए।

काज़िर—आप सामने देख रही हैं, यहाँ से कुछ दूर पर हिंदोस्तान के बादशाह जहाँगीर खड़े हैं।

सुंदरी—मैंने तो नहीं देखा था। अब देख रही हूँ।

काज़िर—ख़ैर, तो बादशाह आपके इस गाने पर, आपकी इस बेमिसाल ख़ूबसूरती पर—माफ़ कीजिएगा—फ़रेफ़्ता हो रहे हैं। वह आपको अपनी सबसे बड़ी बेगम बनाना चाहते हैं। और आप इस क़ाबिल हैं भी—

सुंदरी—ख़ाँ साहब! मेरे सामने ऐसी बातें मुँह से भी न निकालिएगा! एक क्षत्रिय-कुल की बालिका सब सह सकती है, पर ऐसी बातों पर कान नहीं दे सकती।

काज़िर—आप नाराज़ न हों। मैंने इसीलिये तो पहले आपसे वादा करा लिया है। आपका कहना बजा है,

सही है, लेकिन आप तो अभी क्वाँरी मालूम पड़ती हैं। यह बादशाह आपको देखते ही समझ गए, नहीं तो वह किसी ब्याही औरत को अपनी बेगम बनाकर उसकी अस्मत पर दाग़ हर्गिज़ नहीं लगा सकते। शाहंशाह के महलों में कितनी ही हिंदू राजों-महाराजों की लड़कियाँ मौजूद हैं। लेकिन आपके जाने से तो उसकी ज़ीनत दूनी हो जायगी। जवाहिर की क़दर ग़रीब क्या जान सकता है—उसकी क़दर बादशाह ही जान सकता है। उसकी खूबसूरती बादशाह के ताज पर ही रहने से बढ़ सकती है।

सुंदरी (उत्तेजित होकर)—मैं आपकी बातों को सुनने के लिये वादा कर चुकी हूँ; नहीं तो ऐसी बातें सुन भी नहीं सकती थी। एक राजपूत की बेटी के लिये ऐसी बातें सुनना भी पाप है। आपने जो बादशाह के महल में हिंदू-कन्याओं के रहने की बात कही, सो ठीक है। मैं जानती हूँ, कुछ बेधरम राजपूतों ने अपनी बेटियाँ-बहनें मुग़ल-बादशाह के महलों में देकर अपने कुल का नाम डुबोया है। पर ख़ाँ साहब, याद रखिए, सच्ची राजपूत-रमणियाँ ऐसे ऐश-आराम को लात मारने के लिये तैयार रहती हैं। मैं जानती हूँ, मेरा देश परतंत्र है, मुग़लों द्वारा पद-दलित हो रहा है; पर अब भी मुझे अपने कुल और धर्म का गर्व है। क्षत्रिय-बालाएँ अपने कुल की—अपने धर्म की—रक्षा के लिये प्राण तक दे सकती हैं; पर उसमें धब्बा नहीं लगने दे सकतीं। मान-मर्यादा की रक्षा ही हमारा मुख्य धर्म है। आप जायँ, और बादशाह से कह दें कि एक राजपूत-बालिका के संबंध में इस तरह के विचार मन में न लाया करें।

काज़िर—क्या आप इस मान-मरजाद के पीछे इतनी दौलत और ऐश छोड़ रही हैं ? यह आपकी ग़लतफ़हमी है। जिस चीज़ के लिये भले-भले घर की औरतें तरस रही हैं, उसी को आप यों ठुकरा रही हैं ! मैं समझता हूँ, आप अभी नादान हैं, आपने अभी दुनिया की हालत नहीं देखी, इसीलिये इस तरह की नादानी कर रही हैं। पर, ज़रा बादशाह का भी तो ख़याल कीजिए। वह खुद बड़ी देर से खड़े हैं। आप मेरे साथ चलिए। आपके मा-बाप को भी शाही फ़रमान भेज दिया जाता है। शक्तसिंह को बादशाह अमीर ज़रूर बना देंगे। इसके सिवा, हिंदोस्तान के बादशाह और खूबसूरती में आला ! आप बादशाह को और बादशाह आपको पाकर फूले न समायँगे। आप बड़ी खुश-नसीब हैं, नहीं तो हम लोगों के घर की औरतों को यह बात कहाँ नसीब !

सुंदरी (क्रोध से)—बस ख़ाँ साहब, अब चुप रहिए। मैं अब ऐसी बातों को नहीं सुन सकती। मैं सारी दुनिया की दौलत पर लात मारने को तैयार हूँ; पर अपने धर्म और अपनी मान-मर्यादा को त्याग नहीं सकती।

काज़िर—यह बादशाह की मेहरबानी कहिए, अपनी क़िस्मत कहिए, कि बादशाह ने ऐसा इरादा भी किया है और मंज़ूर करना न करना आपकी मर्ज़ी पर छोड़ दिया है। नहीं, अगर वह चाहें, तो आपको ज़बरदस्ती पकड़ ले जायँ। राजपूत उनका एक बाल भी बाँका नहीं कर सकते।

सुंदरी—रहने दीजिए ऐसी बातों को। मैं प्राण रहते अपने शरीर पर किसी का हाथ भी नहीं लगने दे सकती हूँ। आप जाकर बादशाह से अर्ज़ कर दीजिए कि एक क्षत्रिय-पुत्री मुग़लों के सम्मान को, धन को, अपनी कुल-मर्यादा की रक्षा के लिये, ढेले की तरह पैरों से ठुकरा देती है।

इतना कहकर वह क्षत्रिय-कुल-लक्ष्मी वहाँ से चली गई। काज़िरख़ाँ देखता ही रह गया। उसे कुछ करने का साहस न हो सका। वह इस सुंदरी की वीरता तथा गौरव-पूर्ण बातें सुनकर दंग हो रहा था। जब वह आँखों से ओट हो गई, तब काज़िरख़ाँ ने जाकर बादशाह से उसकी बातें हर्फ़-ब-हर्फ़ कह सुनाईं। जहाँगीर भी सुनकर दंग हो गया। राजपूतों की मान-मर्यादा किसे कहते हैं, यह उसे आज ही ज्ञात हुआ। हम्मीर के संबंध में जो कहा गया है कि "तिरिया-तेल, हमीर-हठ चढ़ै न दूजी बार।", वह संपूर्ण क्षत्रिय-जाति के लिये लागू हो सकता है।

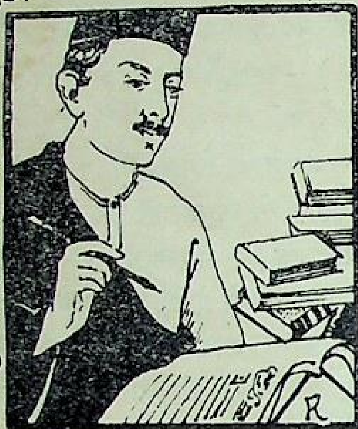
यह तो लीला (उपर्युक्त सुंदरी का नाम) के संबंध की एक छोटी, पर सच्ची कहानी है; पर ऐसी कितनी ही हिंदू-ललनाएँ हो गई हैं, जिनके गौरव-पूर्ण कृत्यों द्वारा भारत गौरवान्वित हुआ है। *

राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह

---

* राजपूताने के लोग अब भी लीला की कहानी को बड़े गौरव के साथ कहते हैं। एक दोहा भी है—

"राजपूत की बालिका राख्यो अपनो मान;
जहाँगीर बदसाह से कियो जाति-अभिमान।



पुस्तक-परिचय

१. पुस्तकें

साहित्यालोचन—लेखक, बाबू श्यामसुंदरदासजी बी० ए० ; प्रकाशक, बाबू रामचंद्र वर्मा, साहित्य-रत्नमाला कार्यालय, बनारस। डबल-क्राउन सोलह-पेजी साइज़ के ३८० पृष्ठों की जिल्ददार प्रति का मूल्य ३) है। कागज़ बढ़िया ऐंटिक। छपाई-सफ़ाई आदर्श।

बाबू साहब ने एम्० ए० के छात्रों को हिंदी में साहित्यिक आलोचना का विषय समझाने के लिये ३२ भिन्न-भिन्न ग्रंथों, पत्रों, लेखों आदि की सहायता से इस पुस्तक की रचना की है। पुस्तक शीघ्रता में लिखी जाने पर भी अच्छी हुई है। विलियम हेनरी हड्सन के An Introduction to the study of Literature नाम की अँगरेज़ी पुस्तक के आधार पर ही विशेष-रूप से इसकी रचना हुई है। हड्सन ने अपनी पुस्तक में नाटक, कविता, उपन्यास आदि प्रकरणों को अनेकों उदाहरण देकर खूब समझाया है ; मगर इस ग्रंथ में केवल तत्त्वों का प्रतिपादन करके छोड़ दिया है। उदाहरण कम दिए हैं। यह कमी खटकती है, और इससे विद्यार्थियों को उन प्रकरणों के तत्त्वों को समझने में भी उतनी आसानी न होगी। मैं आशा करता हूँ कि विद्वान् लेखक महाशय, अगले संस्करण में, मि० हड्सन ने जैसे योरप की भिन्न-भिन्न भाषाओं के साहित्य को मथकर उदाहरण उद्धृत कर अपना वक्तव्य समझाया है, वैसे ही संस्कृत, मराठी, गुजराती, उर्दू, बँगला, हिंदी, प्राकृत आदि भाषाओं के साहित्य का अनुशीलन कर, उदाहरण देकर, इस कमी को दूर कर देंगे। कुछ हो, पुस्तक उपयोगी, समयानुकूल और सुंदर हुई है, और इसके लिये मैं लेखक और प्रकाशक, दोनों को बधाई देता हूँ। साथ ही आशा करता हूँ कि बाबू साहब अब और भी अच्छी-अच्छी आवश्यक पुस्तकों की रचना कर मातृभाषा के साहित्य-भांडार को परिपूर्ण करने का श्रेय लेंगे। वर्माजी से भी मैं आशा करता हूँ कि वह अपनी ग्रंथ-माला में आगे भी सुंदर मौलिक ग्रंथ-रत्न निकालने की चेष्टा करेंगे।

"एक पाठक"

× × ×

बुद्ध-चरित—लेखक, पंडित रामचंद्रजी शुक्ल ; प्रकाशक, काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ २३० और मूल्य २।।) है। कागज़ बढ़िया ऐंटिक। छपाई-सफ़ाई आदर्श। जिल्द सुदृढ़, दर्शनीय और सचित्र।

यह सूर्यकुमारी पुस्तक-माला का चौथा ग्रंथ है। इसका संपादन स्व० चंद्रधरजी गुलेरी ने किया था। यह पुस्तक पद्य में है। भाषा ब्रज-भाषा। सर एड्विन आर्नल्ड के 'लाइट आफ़ एशिया' ग्रंथ के आधार पर इसकी रचना हुई है ; परंतु कवि की प्रतिभा ने इसे मौलिकता का महत्त्व देने में कुछ कसर नहीं रक्खी। यह कविता देखकर हमें बड़ा हर्ष हुआ। ब्रज-भाषा में कविता करनेवाले इस समय इने-गिने लोग हैं। शुक्लजी वास्तव में कवि-पदवी के योग्य हैं। आरंभ में काव्य और भाषा पर ९६ पृष्ठ का एक गवेषणा-

[illegible] विशेष भूमिका [illegible]

[illegible] किया है [illegible]

[illegible] ज्ञान [illegible]

[illegible] जाता है, इस पुस्तक [illegible]

[illegible] और रंगीन चित्र [illegible]

[illegible]

×

[illegible] आरोहण [illegible] पुस्तक-माला [illegible] और मूल्य [illegible]

[illegible] पुस्तक में, २६ प्रकरण [illegible] लेकर राष्ट्रीय [illegible] का विशद वर्णन [illegible]

[illegible]

× ×

[illegible]

पुस्तक-परिचय

[illegible] । कुछ हो, पुस्तक [illegible] हुई है, और इसके [illegible] को बधाई देता हूँ । [illegible] कि [illegible] अब और भी [illegible] पुस्तकों की रचना कर [illegible] का श्रेय लेंगे । [illegible] हूँ कि वह अपनी [illegible] ग्रंथ-रत्न निकालेंगे [illegible]

"[illegible]"

[illegible] पं० रामचन्द्रजी शुक्ल [illegible]

[illegible]

पूर्ण, ज्ञान-गर्भ निबंध भूमिका-रूप में देकर शुक्लजी ने पाठकों का बड़ा उपकार किया है। उसे पढ़कर शुक्लजी के कविता और भाषा-संबंधी ज्ञान की प्रशंसा किए विना नहीं रहा जाता। आशा है, इस पुस्तक का यथेष्ट प्रचार होगा। कई सादे और रंगीन चित्र देकर इस पुस्तक की शोभा और भी बढ़ा दी गई है।

× × ×

राष्ट्रीय आंदोलन—लेखक, श्रीप्रभुदयाल मीतल। प्रकाशक, राष्ट्र-भाषा-पुस्तक-भांडार, मथुरा। आकार वही। पृष्ठ-संख्या ३१६ और मूल्य १॥) है। कागज़ और छपाई-सफ़ाई साधारण है।

इस पुस्तक में, ५६ प्रकरणों में, अँगरेज़ी राज्य के आरंभ से लेकर राष्ट्रीय आंदोलन की अब तक की प्रगति तक का विशद वर्णन किया गया है। पुस्तक समयोपयोगी और ज्ञान-वर्द्धक है। राष्ट्रीय आंदोलन की सब बातों का एकत्र समावेश होने के कारण पुस्तक का प्रचार यथेष्ट होने की संभावना है।

× × ×

नीति-वाक्यामृत (सटीक)—प्रकाशक, माणिकचंद्र दिगंबर-जैन-ग्रंथ-माला-समिति, हीराबाग़, बंबई। आकार वही। पृष्ठ-संख्या ४२८ और मूल्य १॥।)। कागज़ बढ़िया। छपाई-सफ़ाई बहुत सुंदर।

इस ग्रंथ-रत्न में ३२ प्रकरण हैं। राजनीति के धर्म, अर्थ, काम, विद्या, आन्वीक्षिकी, त्रयी, मंत्री, पुरोहित, सेनापति, दूत, चर, अमात्य, जनपद आदि राज्य के भिन्न-भिन्न अंगों पर सुंदर उपदेश, सूत्र-रूप में, हैं। इस ग्रंथ-रत्न के लेखक जैन विद्वान् श्रीसोमदेव सूरि हैं। ग्रंथकार का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी का द्वितीय चरण है। इस ग्रंथ पर किसी अज्ञात बहुज्ञ विद्वान् की बढ़िया संस्कृत-टीका भी है। इसमें सुहृद्वर नाथूरामजी प्रेमी ने जो ऐतिहासिक भूमिका लिखी है, वह बहुत ही गवेषणा-पूर्ण और पढ़ने लायक़ है। यह पुस्तक जैन विद्वान् की लिखी हुई होने पर भी सांप्रदायिकता से मुक्त है, और सबके काम की है। भारत की पुरानी राजनीति का पता जिन्हें नहीं है, और जो विदेशियों को ही भारत का राजनीतिक गुरु मानने में आनाकानी नहीं करते, उनकी आँखें इस पुस्तक को पढ़कर खुल जायँगी। हम विद्या-प्रेमी सज्जनों और पुस्तकालयों के संचालकों से अनुरोध करते हैं कि वे इस ग्रंथ-रत्न की एक-एक प्रति अवश्य मँगाकर रक्खें।

× × ×

वर्तमान एशिया—अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग़, बंबई। हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-ग्रंथमाला के इस ५१वें ग्रंथ में ३८२ पृष्ठ हैं। मूल्य जिल्ददार का २॥), सादी का २) है। कागज़, छपाई-सफ़ाई और जिल्द, सब कुछ सुंदर है।

यह पुस्तक हर्बर्ट ऐडम्स गिबन्स के "The New Map of Asia"-नामक ग्रंथ का अनुवाद है। यह अंतर-राष्ट्रीय साहित्य की सुंदर पुस्तक एक निष्पक्ष अमेरिकन राजनीतिज्ञ की लिखी हुई होने के कारण अधिक महत्त्व रखती है। इसे पढ़कर केवल हिंदी जाननेवाले पाठकों का अंतरराष्ट्रीय ज्ञान बहुत कुछ बढ़ जायगा। इसमें २४ अध्याय हैं। हरएक अध्याय पर एक-एक पुस्तक लिखी जा सकती है। भारत से अन्य राष्ट्रों का क्या संबंध है, और एशिया की स्थिति इस समय क्या है, गत महायुद्ध किन कारणों से हुआ, किन-किन कारणों के उपस्थित होने पर आगे चलकर फिर महायुद्ध होना अनिवार्य होगा, इत्यादि विषय जानने योग्य तो हैं ही, मनोरंजक भी कम नहीं हैं। आशा है, इस पुस्तक का दूसरा संस्करण बहुत शीघ्र देखने को मिलेगा।

× × ×

भारतीय शासन—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत भगवान्दासजी केला, भारतीय ग्रंथमाला, वृंदावन। तीसरा संस्करण। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या १६८ और मूल्य ॥।=); छपाई-सफ़ाई सुंदर।

इस पुस्तक में भारतवर्ष के शासन-संबंधी १८ विषयों का वर्णन है। भारत-मंत्री, भारत-सरकार, प्रांतिक सरकार, व्यवस्थापक-विभाग, ज़िला, म्युनिसिपलिटी, सेना, पुलिस, जेल, सरकारी आय-व्यय आदि विषयों का ज्ञान प्रत्येक नागरिक के लिये आवश्यक है, और लेखक ने इस पुस्तक में थोड़े में उसका अच्छी तरह से समावेश कर दिया है। पुस्तक की सर्व-प्रियता का यह बहुत अच्छा प्रमाण है कि थोड़े ही समय में इसका तीसरा संस्करण प्रकाशित हो गया है। यह पुस्तक कई सरकारी तथा राष्ट्रीय संस्थाओं में पढ़ाई जाती है। अन्य संस्थाओं को भी चाहिए कि इसे अपनी पाठ-विधि में स्थान दें।

यह नवीन संस्करण, नए सुधारों के अनुसार संशोधित किए जाने से, पाठकों के लिये विशेष उपयोगी हो गया है। लेखक की इस सफलता पर मैं उन्हें सहर्ष बधाई देता हूँ।

दयाशंकर दुबे

× × ×

२. पत्र-पत्रिका

शिक्षा (सम्मेलनांक)—साप्ताहिक। श्रीसकलनारायण पांडेय सांख्य-काव्य-व्याकरण-तीर्थ द्वारा संपादित होकर बाँकीपुर (पटना) के खड्गविलास-प्रेस से प्रकाशित होती है। वार्षिक मूल्य ५) है।

यह विशेष अंक है। इसके संपादक उक्त पांडेयजी और पं० चंद्रशेखर शास्त्री हैं। इस अंक में बड़े साइज़ के ४८ पृष्ठ हैं। टाइटिल पर सम्मेलन के सभापति पुरुषोत्तमदासजी टंडन का चित्र है। कुल लेख २७ हैं। काग़ज़ बढ़िया लगा है। छपाई-सफ़ाई भी भव्य है। लेख सब अच्छे लेखकों के लिखे हुए हैं। सम्मेलनांक होने पर भी सम्मेलन-संबंधी केवल २ लेख हैं, यह बात ज़रा खटकती है। इस अंक का मूल्य ।।।) है। मूल्य कुछ अधिक होने पर भी अंक दर्शनीय और संग्रह-योग्य हुआ है। यह पत्रिका २६ वर्ष से निकल रही है, और अच्छी निकलती है। यह संख्या देखकर मुझे बड़ा संतोष हुआ। साधारण संख्याएँ भी इसकी सुसंपादित होती हैं। टिप्पणियाँ मार्के की और लेख काम के हुआ करते हैं। आशा है, बिहार के सिवा अन्य प्रांतों में भी इसका अच्छा प्रचार और आदर होगा।

× × ×

श्रीविद्या—मासिक। लाला भगवानदीन द्वारा संपादित होकर कचहरी रोड, गया से प्रकाशित होती है। वार्षिक मूल्य १)

यह १६ पेज की साधारण पत्रिका है। न तो इसमें कोई महत्त्व का लेख ही रहता है, और न इसका कुछ उद्देश्य ही जान पड़ता है। मगर नहीं, मैं भूलता हूँ। शायद हिंदी के लेखकों और कवियों को कोसकर 'हम चुनीं दीगरे नेस्त' साबित करना ही इसका उद्देश्य है। यह 'नाम बड़ा, दरसन थोड़े' का प्रत्यक्ष उदाहरण है। नाम तो श्रीविद्या है, पर काम एक कला का भी नहीं! यद्यपि इसके मोटो में ही 'पुण्य-प्रेम-दातारि' मौजूद है, फिर भी इसके संपादक ने * माधुरी के मोटोवाले दोहे को सदोष साबित करने में २-३ कॉलम रँग डाले हैं। इसके सुयोग्य संपादक स्वयं 'दाता' (अधिक-से-अधिक दातार) का स्त्री-लिंग 'दातारि' अपनी टकसाल में ढालते हैं, 'शिक्षा' को बिगाड़कर 'सिख' लिखते हैं, 'नित्य' को 'नित' लिखना अनुचित नहीं समझते; मगर माधुरी-संपादकों के 'साहित्य' को साहित लिख देने पर आपे से बाहर हो जाते हैं! कालिदास ने लिखा था कि एक दोष अनेक गुणों में छिप जाता है, जैसे किरणों के भीतर चंद्रमा का कलंक; मगर हमारे हिंदी के कालिदास लालाजी का सिद्धांत बिलकुल इसके विपरीत है। आप एक दोष में (यद्यपि वह दोष नहीं है) माधुरी के सब गुणों को छिपा डालना चाहते हैं। मैं पूछता हूँ, अगर 'साहित' लिखने से माधुरी का दोहा अशुद्ध हो गया, तो बिहारी के 'नित प्रति एकत ही रहत' इत्यादि दोहे को अशुद्ध मानकर लाला ने अपनी टीका से क्यों नहीं निकाल डाला? आप फ़रमाते हैं कि माधुरी में पहले छः महीने तक दोहा अशुद्ध ही छपता रहा। मगर यह भी ठीक नहीं। उसमें केवल एक दोष हो सकता था—यति-भंग। मगर समस्यंत पद में यति-भंग माना ही नहीं जाता। 'तिय-अधर' में तिय पर यति थी। उसका एक शब्द इधर और दूसरा शब्द उधर मज़े में उच्चारण किया जा सकता है। हाँ, एक शब्द के दो टुकड़े अगर होते हों, तो वह बेशक यति-भंग है। लेकिन बड़े-बड़े कवि-प्रवरों ने—पंडितराज जगन्नाथ-जैसों ने—उसकी भी पर्वा नहीं की है। मैं लालाजी को चैलेंज देता हूँ कि वह इसके सिवा और कोई दोष दोहे में दिखलावें। लालाजी ने विद्या में अपनी ओर से, अपनी समझ से बहुत बढ़िया, दो दोहे छापे हैं। मंशा यह कि माधुरी में मोटो का जो 'अशुद्ध' दोहा छपता है, उसकी जगह पर उनमें से कोई एक छापा जाय। माधुरी के दोहे की शब्द-योजना और सौष्ठव के साथ उन दोहों की शब्द-योजना और सौष्ठव का मिलान करके देखने से ही सहृदय जन लाला की योग्यता और माधुरी-संपादकों की अज्ञता का अनुभव कर लेंगे! लाला के दोहे ये हैं—

* 'आधुनिक कविता'-शीर्षक के नीचे श्रीविद्या में, ७वें वर्ष के ३रे अंक में, जो टिप्पणियाँ लिखी गई हैं, उनका तर्ज़ साफ़ कहता है कि उनके लेखक संपादकजी ही हैं। फिर भी लेखक की जगह 'साहित्य-पत्थर' नाम दिया है। मगर दूसरी टिप्पणी स्पष्ट पुकारकर कह रही है कि हमें लालाजी ने ही लिखा है। आज मालूम हुआ कि यह उपाधि भी लालाजी को किसी ने प्रसन्न होकर दी है। बधाई है!—लेखक

१.—मधु, मिसिरी, अबला-अधर, पय, पियीषहू (?) धन्य ;
नित्य नवल नव रसमयी यह माधुरी अनन्य ।
२—मधु, मिसिरी, अमृत, अधर, मधुक-माधुरी धन्य ;
पै प्रवीण कवि-कुंज(?)-कृत यह माधुरी अनन्य ।

लालाजी कविराय हैं, उन्हें कोई अपनी नई कल्पना की करामात दिखाना उचित था। ख़ैर, अगर माधुरी-संपादक स्थान-दान करेंगे, तो अब की बार इन दोहों की विस्तृत आलोचना और लाला की अन्य कविताओं की परख करूँगा ।

"सत्य-सेवक"

× × ×

विकास—त्रैमासिक । मध्य-प्रदेश के बिलासपुर-ज़िले की डिस्ट्रिक्ट कौंसिल के शिक्षा-विभाग की ओर से निकलता है। वार्षिक मूल्य ३) है । ७८ पृष्ठ डबल-क्राउन ८ पेजी साइज़ के हैं । काग़ज़, छपाई, लेख आदि बहिरंग और अंतरंग सब सुंदर है।

इस अंक में २० लेख और २ कार्टून हैं । लेख उपयोगी, मनोरंजक और ज्ञान-वर्द्धक हैं । पत्रिका विशेष-कर विद्यार्थियों के काम की होने पर भी प्रौढ़ों के लिये भी उपयोगी है ।

× × ×

तरुण कुमाऊँ—मासिक । संपादक तथा प्रकाशक, श्री-मुकुंदीलाल बी० ए०, बार-ऐट-ला हैं। देहरादून से निकलता है । ५८ पृष्ठ डेमी साइज़ के हैं । वार्षिक मूल्य ३) है। काग़ज़ अच्छा है । छपाई भी बुरी नहीं ।

इसके संपादक एक योग्य अनुभवी पुरुष हैं। संपादकीय टिप्पणियाँ उनकी योग्यता का परिचय देती हैं । यह प्रथम वर्ष का ८वाँ अंक हमारे सामने है । कुल ८ लेख हैं। हम इसे और भी उन्नत-रूप में देखना चाहते हैं । इसमें प्रायः सब मेटर संपादक ही का लिखा हुआ है। संपादकजी को हिंदी के अन्य श्रेष्ठ लेखकों से भी लेख लिखवाकर पत्र में वैचित्र्य लाने की चेष्टा करनी चाहिए ।

× × ×

निम्न-लिखित पत्र भी मिल गए हैं। धन्यवाद। स्थाना-भाव-वश हम केवल नामोल्लेख कर देने के लिये विवश हैं—

उदय—साप्ताहिक । संपादक, श्रीदेवेंद्रनाथ मुखर्जी वकील । पता—सागर । वार्षिक मूल्य २।≤) । पत्र का संपादन अच्छा होता है । एक बंगाली सज्जन के संपादक होने के कारण भाषा के दोष क्षंतव्य हैं ।

संप्रदाय—पाक्षिक । संपादक, श्रीगोवर्द्धननाथ महता। पता—संप्रदाय-कचहरी, सावली (बड़ौदा) और वार्षिक मूल्य २।) है । सांप्रदायिक लेख और ख़बरें ख़ासकर रहती हैं ।

पंच— साप्ताहिक । संपादक, बाबू गोपेश्वर मेहरा बी० ए० और हज़ारीलाल प्रेमी । पता—आगरा । मूल्य कुछ लिखा नहीं । साधारण व्यंग्य-विनोद रहता है ।

सारस्वत-खत्री-सेवक—साप्ताहिक । संपादक, श्री-रामचरण सेठ । पता—कानपुर । वार्षिक मूल्य ३) है । खत्रियों का जातीय पत्र है ।

आर्य-मार्तंड—साप्ताहिक । संपादक, पं० रामसहाय आर्य-उपदेशक । अजमेर से निकलता है । राजस्थान-मालवा की आर्य प्रतिनिधि-सभा का मुख-पत्र है । वार्षिक मूल्य २) है।

ज्ञान-शक्ति— साप्ताहिक । संपादक, पं० शिवकुमार शास्त्री । गोरखपुर से निकलती है । नीति नरम है । वार्षिक मूल्य सर्वसाधारण से ४), गवर्नमेंट और राजों से १२) तथा संरक्षकों से ५०) है !

सुबोध-सिंधु—साप्ताहिक । खंडवा, मध्य-प्रदेश से निकलता है । ४४ वर्ष का पुराना पत्र है । फिर भी उन्नति की बड़ी गुंजाइश है । वार्षिक मूल्य २)

मारवाड़ी—साप्ताहिक । संपादक, श्रीनारायणदत्त काश्यप। नागपुर से निकलता है । १५ वर्ष का पुराना पत्र है। वार्षिक मूल्य २।) । पत्र सर्वोपयोगी है ।

ब्रह्मचारी— मासिक । संपादक, श्रीकेदारनाथ शर्मा । ऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, हरद्वार से निकलता है । वार्षिक मूल्य २) । पत्र उपयोगी है । लेख सब अच्छे होते हैं। नव-युवकों को अवश्य इसका ग्राहक बनना चाहिए ।

माथुर-वैश्य-हितकारी—मासिक । पता—शम्साबाद, आगरा । वार्षिक मूल्य १।) । जातीय पत्र है ।

श्रीसुमेर-स्कूल-पत्रिका—मासिक । पता—मंत्री, श्रीसुमेर-स्कूल, जोधपुर, राजपूताना । वार्षिक मूल्य २।) ।

सूचना—हमारे पास समालोचनार्थ आई हुई पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का ख़ासा संग्रह हो गया है । स्थानाभाव-वश उनका परिचय निकलने में देर अवश्य होगी । हम क्रमशः सब का परिचय देंगे । प्रेषक सज्जन क्षमा करें ।—संपादक



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "महिला-महत्त्व", श्रीशिवपूजनसहायजी-लिखित दस आख्यायिकाओं का संग्रह। मूल्य २)

(२) "पृथ्वीराज", पं० चंद्रशेखर पाठक-लिखित सचित्र जीवन-चरित्र। द्वितीय संस्करण। मूल्य १।)

(३) "संजीवन-भाष्य", पं० पद्मसिंह शर्मा-कृत बिहारी-सतसई की टीका; जिसमें भूमिका भाग और सतसई-संजीवन-भाष्य का प्रथम खंड सम्मिलित है। मूल्य ४॥)

(४) "नवीन भारत", लाला कृष्णचंद 'ज़ेबा'-लिखित राष्ट्रीय नाटक। मूल्य ।॥)

(५) "अमृत में विष", लाला हरदयाल एम्० ए०-लिखित। मूल्य ।=)

(६) "हिंदी-महाभारत", पं० रामनरेश त्रिपाठी-लिखित अठारहों पर्वों की कथा का सरल और सचित्र चतुर्थ संस्करण। मूल्य १।)

(७) "एम्० ए० बनाके क्यों मेरी मिट्टी ख़राब की ?", श्रीछलूलाल द्विवेदी द्वारा अनुवादित उपन्यास। मूल्य २)

(८) "भारत-दर्पण", लाला कृष्णचंद 'ज़ेबा'-लिखित राष्ट्रीय नाटक। मूल्य १)

(९) "साहित्यालोचन", बा० श्यामसुंदरदास बी० ए०-लिखित। मूल्य २)

(१०) "केशव-कौमुदी", लाला भगवानदीन-कृत रामचंद्रिका की टीका। पूर्वार्ध। मूल्य २।)

(११) "कुमार-संभव", महाकवि कालिदास-प्रणीत कुमार-संभव का पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी-रचित हिंदी-गद्यानुवाद। द्वितीय संस्करण। मूल्य १)

(१२) "कुसुम-संग्रह", श्रीमती बंगमहिला-लिखित गल्पों तथा स्त्री-शिक्षा-संबंधी लेखों का संग्रह। मूल्य १॥)

(१३) "धर्म-अधर्म-युद्ध", लाला कृष्णचंद 'ज़ेबा'-लिखित राष्ट्रीय नाटक। मूल्य ॥।)

(१४) "रहिमन-विलास", श्रीव्रजरत्नदासजी द्वारा संकलित तथा संपादित। मूल्य ।=)

(१५) "महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात", श्रीरमेशचंद्रदत्त-लिखित बँगला-पुस्तक का श्रीरुद्रनारायण-कृत हिंदी-अनुवाद। द्वितीय संस्करण। मूल्य १॥)

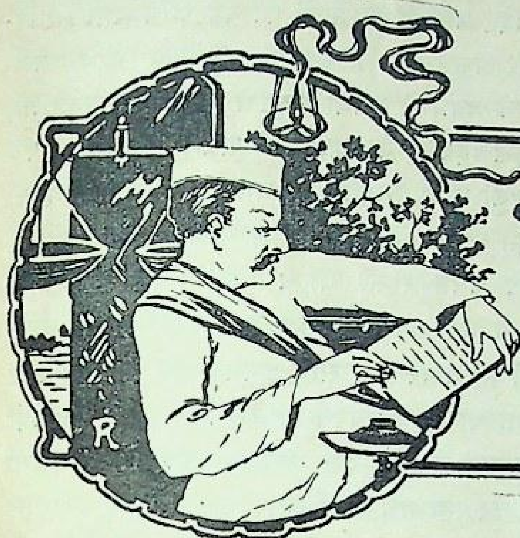
(१६) "गल्प-गुच्छ (प्रथम भाग)", श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर की बँगला-पुस्तक का पं० रूपनारायण पांडेय-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य ॥।)

(१७) "हमारा देश", श्रीकृष्णचंद 'ज़ेबा'-लिखित भारत के प्रसिद्ध देश-भक्त प्रो० टी० एल्० बस्वानी के विचारों का संग्रह। मूल्य ॥।)

(१८) "चरित्र-हीन"। मूल्य ३।)

(१९) "राजनीति-विज्ञान"। मूल्य १।=)

(२०) "देश-भक्त पार्नेल", पं० चंद्रवलिमणि त्रिपाठी-लिखित जीवनी। मूल्य ।=)



विविध विषय

१. कानपुर का हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का तेरहवाँ अधिवेशन, कानपुर में, सकुशल, सानंद, समारोह और सफलता के साथ, समाप्त हो गया। प्रतिनिधियों की उपस्थिति भी अच्छी—तीन-चार सौ के लगभग—रही। गरमी अधिक पड़ने के कारण और कानपुर में प्लेग की विभीषिका प्रकट होने से दूर-दूर के अधिकांश साहित्य-सेवियों के दर्शन नहीं हुए, यही खेद रहा। फूलबाग़ में सुरम्य मंडप * के बीच तीन दिन तक इस अधिवेशन का कार्य हुआ। पहले दिन ३ बजे मंगलाचरण के उपरांत सनेहीजी ने सुंदर स्वागत पढ़ा। फिर स्वागत-समिति के अध्यक्ष की वक्तृता हुई। द्विवेदीजी अस्वस्थ होने के कारण अपनी वक्तृता के आदि और अंत के कुछ अंश को ही पढ़ सके। शेष अंश सुकवि पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने पढ़ा। तत्पश्चात् कई माननीय सज्जनों के प्रस्ताव, अनुमोदन और समर्थन के उपरांत टंडनजी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। सभापति की वक्तृता समाप्त होने पर विषय-निर्वाचनी समिति के सभासदों का चुनाव होकर रात के ८ बजे पहले दिन की काररवाई समाप्त की गई। दूसरे दिन प्रातःकाल धर्मशाला में विषय-निर्वाचनी का कार्य होकर दो बजे फूलबाग़ में कार्यारंभ हुआ। पहले पं० माधव शुक्ल और कान्यकुब्ज राष्ट्रीय विद्यालय के छात्रों ने मंगलाचरण किया। फिर नवीनजी ने बाबू मैथिलीशरण गुप्त की 'ब्रज-भाषा और खड़ी बोली'-शीर्षक कविता पढ़ी। वियोगी हरिजी ने पं० राधाचरणजी गोस्वामी का ब्रज-भाषा पर एक लेख पढ़ा। फिर कौशिकजी ने अनुपस्थित सज्जनों के भेजे हुए सहानुभूति-सूचक पत्र और तार पढ़े। इनमें महाराज बड़ोदा, मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ़, पं० जवाहरलालजी नेहरू और पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० आदि के नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं। फिर पं० कृष्णविहारी मिश्रजी ने 'देव' पर एक लेख पढ़ा। उसके प्रतिवाद के लिये लाला भगवानदीन झपटकर रंग-मंच पर आए, और मिश्रजी के आरोप का लक्ष्य अपने ही को बताकर देव को एक सुकवि स्वीकार किया। फिर कई प्रस्ताव पास हुए। तदनंतर पं० गोविंदनारायणजी मिश्र ने आलोचनात्मक हिंदी-साहित्य और व्याकरण पर एक लंबा व्याख्यान दिया; जिसका उद्देश्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी के भाषण के कुछ इसी विषय के अंशों का विरोध करना ही था। तदनंतर सभापतिजी ने परीक्षोत्तीर्ण छात्रों को पदक, उपाधि और प्रमाण-पत्र दिए। मध्यमा-परीक्षा में सर्व-प्रथम होने के कारण टंडनजी के

* मंडप में भारत के राष्ट्रीय नेताओं के चित्र टँगे हुए थे। लेकिन हिंदी के सुप्रसिद्ध सुकवियों और सुलेखकों में से एक का भी चित्र वहाँ दृष्टि-गोचर नहीं हुआ। यह कमी आँखों को बहुत खटकती थी। हमारी राय में साहित्य-सम्मेलन के मंडप में राष्ट्रीय नेताओं के चित्र न टाँगकर साहित्य-सेवियों के चित्र ही टाँगे जाने चाहिए थे। आशा है, आगामी सम्मेलनों में यह अभाव न रहेगा—हिंदी के प्राचीन और अर्वाचीन सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवियों के चारु चित्र सम्मेलन-मंडप को सुशोभित करेंगे।—संपादक

सुपुत्र को एक स्वर्ण-पदक दिया गया। इस दिन उपस्थित प्रतिनिधियों का फ़ोटो भी लिया गया। तीसरे दिन प्रातः-काल से १२ बजे तक धर्मशाला में कवि-सम्मेलन हुआ। फिर स्थायी समिति का निर्वाचन हुआ। सभापति तो टंडनजी थे ही, उप-सभापति श्रद्धेय द्विवेदीजी और लाला भगवानदीन, प्रधान मंत्री पहले पं० कृष्णकांत मालवीय, और पीछे न-जाने क्या सोचकर उनके अस्वीकार करने पर प्रो० व्रजराजजी (अब अख़बारों में देखा, आपने इस्तीफ़ा पेश किया है !), प्रचार-मंत्री पं० कृष्णकांत मालवीय, परीक्षा-मंत्री बाबू गोपालस्वरूप भार्गव और प्रबंध-मंत्री पं० रामजीलाल शर्मा निर्वाचित हुए। स्थायी समिति के सदस्यों का निर्वाचन भी भिन्न-भिन्न प्रांतों से हुआ। अधिकारियों में से एक-आध चुनाव लोगों को पसंद नहीं आया। कुछ सज्जन बीच ही में उठकर चले गए थे। आज शाम को ५ बजे मंडप में कार्यारंभ हुआ। मंगलाचरण के उपरांत पं० गौरीशंकरजी भट्ट सुलेखक ने निज-निर्मित चित्रों द्वारा नागरी-लिपि की सुंदरता दिखाई। आपने कई चित्रों में तो कमाल ही कर दिखाया है। हमने आपसे २-३ चित्र माधुरी में प्रकाशित करने को माँगे हैं। मिल गए, तो अगली किसी संख्या में पाठकों की भेंट करेंगे। भट्टजी को एक स्वर्ण-पदक दिया गया। इसके बाद पं० पद्मसिंहजी शर्मा को मंगलाप्रसाद-पारितोषिक, १२००) रु० का, दिया गया। रामदास-जी गौड़ ने राष्ट्र-भाषा-संग्रहालय के लिये धन की अपील की—दो लाख रुपयों की आवश्यकता बताई। कई सज्जनों ने अनुमोदन और समर्थन किया। क़रीब १५-१६ सौ रुपए वहीं एकत्र हो गए। फिर कई प्रस्ताव पास हुए। नियमावली में कई संशोधन स्वीकृत हुए। मदरास में प्रचार-कार्य करनेवाले दो सज्जनों को स्वर्ण-पदक दिए गए। पं० रामजीलाल ने सम्मेलन के सालाना आय-व्यय की रिपोर्ट पढ़ी। लखनऊ और देहली से आगामी सम्मेलन के लिये निमंत्रण दिए गए। दो महीने के अंदर स्थायी समिति निश्चय करेगी कि कहाँ का निमंत्रण स्वीकृत हो। अंत को पं० विश्वंभरनाथजी कौशिक ने द्विवेदीजी की ओर से सबको धन्यवाद दिया। द्विवेदीजी अस्वस्थ होने के कारण अनुपस्थित थे। टंडनजी ने स्वागत-समिति के सदस्यों और प्रतिनिधियों को धन्यवाद देकर ११ बजे रात को सम्मेलन का कार्य समाप्त किया।

इसमें संदेह नहीं कि सम्मेलन का यह अधिवेशन महत्त्व-पूर्ण और सफल रहा। आगत प्रतिनिधि भी स्वागत-कारिणी के प्रबंध से सर्वथा संतुष्ट थे। सुहृद्वर सनेहीजी, लाला फूलचंदजी, वेणीमाधवजी खन्ना, कौशिकजी, पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी और पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी की प्रशंसा सर्वत्र होती थी। इस सम्मेलन में स्त्रियों की उपस्थिति यथेष्ट रहती थी। स्त्री स्वयं-सेविकाएँ भी तत्परता से अपना काम करती देख पड़ती थीं। स्वयं-सेवकों ने भी तत्परता के साथ अपना काम किया। स्पष्ट देख पड़ता था कि कानपुर के साहित्य-सेवियों में दलबंदी काम कर रही है। एक दल जहाँ प्राणपण से सफलता की चेष्टा कर रहा था, वहाँ दूसरा दल सर्वथा उदासीन देख पड़ता था। फिर भी कानपुर की कोई हेठी नहीं होने पाई। आगत सज्जनों में ये नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं—बाबू श्यामसुंदरदास, पं० गोविंदनारायणजी मिश्र, पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, प्रो० रामदास गौड़, पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० रामजीलाल शर्मा, पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, श्रीयुत लतीफ़हुसेन, पं० बदरीनाथ भट्ट, श्रीयुत पीरमुहम्मद 'मूनिस', खड्गविलास-प्रेस के मैनेजर बाबू गोकर्णसिंह, नेटाल-प्रवासी पं० भवानीदयालजी, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, पं० गोपीवल्लभ उपाध्याय, रसिकेंद्रजी, पं० कृष्णविहारी मिश्र, पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पं० कृष्णकांत मालवीय, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू जगन्नाथदास (रत्नाकर), पं० माधव शुक्ल, पं० दयाशंकर दुबे, पं० गोपालस्वरूप भार्गव इत्यादि।

× × ×

२. स्वागत-कारिणी समिति के अध्यक्ष का भाषण

स्वागत-कारिणी समिति के अध्यक्ष वयोवृद्ध पं० महावीर-प्रसादजी द्विवेदी ने जो भाषण दिया, वह सर्वथा उनके अनुरूप था। उसके आद्यंत के अंश बहुत ही असर डालने-वाले थे। आपने १७-१८ प्रकरणों में अपना उत्कृष्ट भाषण लिखा था। कई प्रकरण तो वास्तव में बड़े ही महत्त्व के हैं। भाषण के दो प्रकरण—हिंदी-भाषा का व्याकरण और कविता की भाषा—ऐसे हैं कि उन पर सभी साहित्य-सेवियों की एक राय न होगी, फिर भी वे कम महत्त्व के नहीं हैं। उन विषयों को अपने हाथ में लेकर अगर सम्मे-

लन कोई निश्चित निर्णय कर दे, तो बहुत अच्छा हो। हिंदी का स्वराज्य, मातृ-भाषा की महत्ता, पुरातत्त्व-विषयक साहित्य की आवश्यकता, साहित्य की समृद्धि के उपाय, हिंदी-भाषा द्वारा उच्च शिक्षा और हिंदी की स्वतंत्रता आदि विषय सर्व-वादि-सम्मत हैं, और द्विवेदीजी ने उनका प्रतिपादन बड़ी योग्यता के साथ किया है। मतलब यह कि द्विवेदीजी का वक्तव्य अध्ययन और मनन के योग्य है। हम बड़े ही आदर और नम्रता के साथ दो-एक बातें, जो हमें खटकती हैं, कह देना चाहते हैं। इस भाषण में कानपुर-ज़िले के प्राचीन प्रसिद्ध कविवर मतिराम और भूषण का नाम भी नहीं लिया गया। वैसे ही आधुनिक स्वर्गीय सुकवि ललिताप्रसाद त्रिवेदी और कविवर राय देवीप्रसादजी 'पूर्ण' का भी कहीं ज़िक्र नहीं है। मालूम नहीं, इनकी उपेक्षा क्यों की गई? मतिराम एक महाकवि हैं। भूषण वीर-रस के सिद्ध कवि माने जाते हैं। ललितजी की कविता भी साधारण नहीं है। पूर्णजी तो अभी कल हुए हैं, और अपने समय के अद्वितीय कवि थे। क्या पूर्णजी का साहित्यिक प्रभाव इतना हलका है कि इतनी जल्दी उनको हिंदी के साहित्यिक महारथी भूल गए? द्विवेदीजी ने व्याकरण को भाषा का स्वामी नहीं, अनुचर माना है। यह भी विवादास्पद है। जब व्याकरण की रचना पहले-पहल होती है, तब उसे भाषा का अनुगामी अवश्य होना पड़ता है; पर व्याकरण की रचना हो जाने पर भाषा को उसका शासन मानने के लिये बाध्य होना ही पड़ता है। अगर ऐसा न हो, तो फिर व्याकरण बनने की आवश्यकता ही क्या? इसी तरह द्विवेदीजी कहते हैं कि अगर प्रांत-का-प्रांत हाथी को स्त्री-लिंग बोलता है, तो वह उभय-लिंग माननीय होगा। यहाँ भी हम सहमत नहीं हो सके। जिन प्रांतों में हाथी आती है, दही खट्टी है, इत्यादि बोला जाता है, वहाँ के लेखक भी साहित्यिक भाषा में हाथी आता है, दही खट्टा है, इत्यादि ही लिखते हैं। फिर स्त्री-वाचक हथनी-शब्द के रहते भी हाथी-शब्द का स्त्री-लिंग में प्रयोग हास्यास्पद ही होगा। अतएव 'हाथी आती है' यह अशुद्ध ही है। अगर यह बात नहीं है, तो फिर हम मराठों या बंगालियों की लिंगाशुद्धि पर 'मराठी हिंदी', 'बंगाली हिंदी' कहकर क्यों हँसते हैं? हमारी राय में संस्कृत के जो शब्द अविकृत-रूप में ले लिए गए हैं, उनका लिंग वही रहना चाहिए, जो संस्कृत में है। हाँ, तद्भव शब्दों की बात दूसरी है। उदाहरण-स्वरूप समाज, आत्मा, देह, अग्नि, वायु आदि शब्द पुंलिंग हैं, और हिंदी में भी इनका प्रयोग वैसा ही होना चाहिए। आजकल के अधिकांश लेखक ऐसा ही करते हैं, और वह ठीक है। द्विवेदी ने 'गया' का मूल 'जाना' (यातः) माना है। हमारी समझ में गया का मूल गतः है। द्विवेदीजी 'करेणु' शब्द को 'हाथी' का पर्याय मानते हैं; पर हमें जहाँ तक ख़याल है, यह शब्द हथनी का पर्याय है, न कि हाथी का। आशा है, इतना लिखने के लिये द्विवेदीजी हमें क्षमा करेंगे। प्रबल इच्छा रहने पर भी स्थानाभाव-वश हम द्विवेदीजी का समग्र भाषण, यहाँ तक कि उसके कुछ अंश भी, नहीं दे सके, इसका हमें बड़ा खेद है।

× × ×

३. सम्मेलन के सभापति का भाषण

सम्मेलन के सभापति टंडनजी का भाषण बहुत ही कवित्व-पूर्ण, मनोरंजक और उनके अधिकाधिक अध्ययन का परिचायक है। उसमें सरस शब्दों और गंभीर भावों की भरमार है। इतने थोड़े समय में इतना सुंदर भाषण तैयार कर लेना कोई साधारण बात नहीं है। इतने कम समय में यह भाषण तैयार हुआ है कि कार्यारंभ के दिन दोपहर को टंडनजी इसे समाप्त कर सके हैं। भाषण बड़ा है, और स्थानाभाव-वश इसे या इसके अंशों को हम छाप नहीं सके। हमारे पाठक दैनिक और साप्ताहिक पत्रों में पूरे भाषण का पारायण कर ही चुके होंगे। संक्षेप में भाषण का निचोड़ यह है कि प्राचीन पुस्तकों की खोज करके उन्हें एक प्रकांड संग्रहालय में रक्खा जाय, हिंदी और उर्दू में भेद की दीवार खड़ी न करके दोनों के मेल से साहित्य का भांडार भरा जाय, पुराने रसीले साहित्य को छोड़कर स्वतंत्रता-प्रिय बनानेवाले, प्राकृतिक चित्रों से परिपूर्ण, साहित्य का निर्माण किया जाय। टंडनजी के ये उपदेश निःसंदेह बड़े काम के हैं, और इनके अनुसार काम होने पर हिंदी-साहित्य की बहुत कुछ उन्नति हो सकेगी। टंडनजी का भाषण सुंदर है सही, लेकिन हमें टंडनजी से केवल वाक्य-छटा की ही आशा नहीं थी। हम समझते थे कि टंडनजी हिंदी-साहित्य की समृद्धि-वृद्धि का कोई उपयोगी कार्य-क्रम हमारे आगे रक्खेंगे; वह बतलावेंगे कि

हिंदी में अच्छे मौलिक साहित्य का अभाव दूर करने के ये सहज साधन हैं। पर हमें इस दृष्टि से निराश ही होना पड़ा। इस समय सबसे बढ़कर इस बात की आवश्यकता है कि हिंदी-प्रेमी साहित्यिकों की शक्तियाँ मिलकर साहित्य-भांडार को भरने का उद्योग करें। जिस तरह हरएक उच्च शिक्षित बंगाली, मराठे या गुजराती सज्जन मातृ-भाषा में कुछ-न-कुछ लिखते रहना अपना कर्तव्य समझते हैं, उसी तरह वही प्रवृत्ति हिंदी-भाषा-भाषी उच्च शिक्षितों में भी उत्पन्न करने की आवश्यकता है। किस तरह यह बात पैदा की जाय, किस तरह इस कार्य का आरंभ किया जाय, किस तरह इधर लोगों का उत्साह बढ़े, यह सोचना और बतलाना भी सम्मेलन के सभापति का कर्तव्य होना चाहिए। इसके सिवा टंडनजी से हमें यह भी आशा थी कि वह हिंदी-साहित्य-संसार की वर्तमान स्थिति और प्रगति पर और भी अधिक विस्तृत तथा गहरी आलोचनात्मक दृष्टि डालेंगे। पर इसमें भी हमें निराशा ही हुई। सम्मेलन के सभापतियों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे साहित्य के प्रवाह का व्यापक सिंहावलोकन किया करें। उनके कुछ शब्दों से ही साहित्य-सेवी अधिक उत्साह के साथ काम करेंगे, और जिनके कार्य में कुछ कमी या दोष है, वे उसे दूर करने का प्रयत्न करेंगे। हमारी राय में सम्मेलन यदि सभापति के द्वारा प्रतिवर्ष कुछ पुस्तकों की रचना के लिये घोषणा कर दिया करे, तो बहुत कुछ काम हो सकता है। वह घोषणा कुछ इस प्रकार की होनी चाहिए कि अमुक-अमुक ४ या ५ विषयों पर सर्व-श्रेष्ठ पुस्तक-लेखक को इतना पुरस्कार सम्मेलन की ओर से दिया जायगा; अथवा मंगलाप्रसाद-पारितोषिक से ही यह काम लिया जाय, तो उसका उत्तम और उचित उपयोग हो। ऊपर जो हमने टंडनजी के भाषण में दो-एक कमियाँ दिखलाई हैं, उनका कारण शायद यही है कि टंडनजी साल-भर तक सरकार के घर में रहकर अभी आए हैं, और इतने दिनों तक साहित्य से उनका कुछ संबंध नहीं रहा। पर हमने इन कमियों का उल्लेख केवल इसलिये कर दिया है कि आगे चलकर जो सज्जन सभापति हों, वे ख़याल रक्खें।

× × ×

४. मंगलाप्रसाद-पारितोषिक

विद्वद्वर पं० पद्मसिंहजी शर्मा को उनकी सतसई भाग १ और २ के लिये इस बार सम्मेलन के बीच १२००) का मंगलाप्रसाद-पारितोषिक दिया गया है, और यह समाचार सुनकर सभी को हर्ष होगा। पद्मसिंहजी बहुत ही सीधे-सादे और सज्जन हैं। आपके दर्शन पाकर और वार्तालाप कर हमें बड़ा संतोष हुआ। आपका चित्र और चरित्र हम आगामी संख्या में देंगे। हमने सम्मेलन में जहाँ तक जाँचकर देखा, हमें वहाँ के साहित्यिक वातावरण में इस पुरस्कार-प्रदान के निर्णय पर अधिकांश असंतोष ही का आभास मिला। इस असंतोष का कारण, जाँच करने पर, यह मालूम हुआ—लोगों का कहना है कि पुरस्कार मौलिक रचना पर देने की घोषणा हुई थी, और दिया जाता है एक टीका-ग्रंथ पर। हमारी राय में एक ग़लती अवश्य की गई है। दोनों भागों पर न लिखकर पहले भाग पर पुरस्कार का देना लिखा जाता, तो ठीक था। दूसरा भाग टीका और वह भी अपूर्ण है। पहला भाग अवश्य ही मौलिक रचना है, और उसे एक पूर्ण ग्रंथ भी कह सकते हैं। दूसरी शिकायत लोगों को यह थी कि स्थायी समिति ने ऐन वक़्त पर अपना निर्णय प्रकट किया; उसे ऐसा न करके कुछ समय पहले यह निर्णय प्रकट कर देना चाहिए था। स्थायी समिति ने पहले जो कमेटी नियत की और उस कमेटी ने जो निर्णय किया, वह सब गुप्त ही रक्खा। उसको चाहिए था कि वह पत्रों में प्रकट कर देती कि अमुक-अमुक सज्जनों की कमेटी बनाई गई, अमुक-अमुक सज्जन ने अमुक-अमुक पुस्तक को पसंद किया, फिर दुबारा इन-इन सज्जनों की कमेटी बनी, और उन्होंने एकमत होकर यह निर्णय किया। ऐसा करने से पबलिक को भी विचार करने का मौक़ा मिल जाता, और कोई शिकायत न रहती। मालूम नहीं, स्थायी समिति ने शायद यह भी नियम बना दिया हो कि पारितोषिक-कमेटी का निर्णय और कारवाई गुप्त रक्खी जाय। कारण, हमने नियम देखे नहीं। पर यदि ऐसा कोई नियम है, तो उसे रद कर देना चाहिए। उससे लाभ कुछ नहीं, हानि अवश्य है। हमें यह भी मालूम हुआ है कि पुरस्कार-योग्य पुस्तक के चुनाव के नियम सदोष हैं। अतएव उनका संशोधन सर्व-सम्मति से हो जाना चाहिए। हम पहली और दूसरी कमेटी के सदस्यों का निर्णय छापना चाहते हैं; पर वे अभी हमें मिले नहीं हैं। हमारा नम्र निवेदन यही है कि यह पारितोषिक साहित्य-वृद्धि के कार्य के

लिये बड़ा उपयोगी है, इसलिये आइंदा इसका सब काम ऐसा होना चाहिए कि कोई दुलख न सके। पहली कमेटी में पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी, पं० अंबिका-प्रसाद वाजपेयी और पं० चंद्रशेखर शास्त्री थे। द्विवेदी-जी ने भारत-भारती को, वाजपेयीजी ने सतसई की पं० पद्मसिंह-कृत टीका को और शास्त्रीजी ने प्रिय-प्रवास को चुना था। मत-भेद के कारण दूसरी कमेटी बनी। उसमें पं० श्रीधर पाठक, बाबू रामदास गौड़ और वियोगी हरि-जी रक्खे गए, और उन्होंने पं० पद्मसिंह-कृत टीका को सर्व-सम्मति से पुरस्कार-योग्य ठहराथा।

× × ×

५. कवि-सम्मेलन

तीसरे दिन प्रातःकाल लाला फूलचंद की धर्मशाला में, जहाँ अधिकांश प्रतिनिधि ठहरे थे, कवि-सम्मेलन हुआ। यह कवि-सम्मेलन ख़ास तौर पर सनेहीजी, फूलचंदजी और पुरस्कार देने में प्रसिद्ध खन्नाजी के उद्योग और उत्साह से हुआ। अद्वितीय प्राचीन काव्य-मर्मज्ञ और व्रज-भाषा के वर्तमान कवींद्र बाबू जगन्नाथ-दासजी (रत्नाकर) बी० ए० ने पधारकर लाला भगवान-दीन और हास्य-रसावतार पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी के प्रस्ताव और समर्थन करने पर सभापति का आसन सुशोभित किया। उसके उपरांत समस्या-पूर्तियाँ और अन्य कविताएँ भी पढ़ी जाने लगीं। पूर्ति करनेवालों में बिहार के हिंदी-प्रेमी युवक श्रीयुत लतीफ़हुसेनजी भी थे, और हर्ष की बात है कि आपने सुंदर पूर्ति करके पुरस्कार और पदक प्राप्त किया। राष्ट्रीय आत्मा (राजाराम शुक्ल) और भगवतीचरण वर्मा ने 'एकांत' पर अच्छी कविताएँ लिखी थीं। ख़ासकर २-३ चरण उनके बहुत ही मनोरम थे। इन लोगों को भी पुरस्कार मिले। इसी तरह अन्य कई युवक पूर्तिकारों को पदक-पुरस्कार आदि से सम्मानित किया गया। सुप्रसिद्ध माधव शुक्लजी को लाला फूलचंद के सुपुत्र ने २५) पुरस्कार में दिए, और शुक्लजी ने वे रुपए सम्मेलन को दे दिए। सनेही-जी ने भी आग्रह करने पर, अनवरत परिश्रम से तबियत ठीक न रहने पर भी, अपनी एक सुंदर कविता पढ़ी। सुनकर सभापतिजी ने बड़ी प्रशंसा की, और ५१) का एक पदक देना चाहा। पर सनेहीजी ने प्रार्थना की कि पदक आदि से नवयुवकों को उत्साहित करना चाहिए, मुझे तो आपके प्रशंसा-वाक्य ही सब कुछ हैं। अपने को सर्वोत्कृष्ट कवि मानने और कहनेवाले, 'कवितादानी' के ठेकेदार कतिपय कवि-दिग्गजों ने कुछ भी नहीं लिखा, यह एक आश्चर्य की बात हुई! एक बात और देखने में आई। जो लोग तारीफ़ों के पुल बाँध रहे थे, उनमें कविता की ख़ूबियाँ समझने की शक्ति शायद बहुत ही कम थी। जैसे कुछ लोग गाना सुनते समय अपनी अज्ञता छिपाकर विज्ञता जताने के लिये बारंबार सिर हिलाते हैं, पर गवैए के किसी बेतुकेपन पर उनके सिर हिलाने से क़लई खुल जाती है, वैसे ही प्रशंसा के अयोग्य कविता पर भी उनकी वाह-वाह की झड़ी उनकी पोल खोल देती थी। कुछ पूर्ति करनेवाले ऐसे भी निकले, जिन्हें यह भी ज्ञान नहीं था कि छंद किस चिड़िया का नाम है, यति किसे कहते हैं। उनका कोई चरण १० अक्षर का और कोई ४० अक्षर का था! इस अनर्थ का कारण यही है कि इस समय कवि बनने की रुचि रखनेवाले लोग साहित्य के ग्रंथों का—कम-से-कम छंदःशास्त्र का भी—अध्ययन नहीं करते। ख़ैर, कवि-सम्मेलन अच्छा हुआ; ख़ूब मनोरंजन हुआ। खन्नाजी ने की हुई पूर्तियों और कविताओं में सर्वोत्कृष्ट रचना पर एक स्वर्ण-पदक देने की घोषणा की। इसके अलावा और अनेक पदक और रुपए लोगों ने समस्या-पूर्तिकारों और कवियों को दिए।

× × ×

६. सम्मेलन के प्रस्ताव

इस बार सम्मेलन में प्रस्तावों की संख्या परिमित ही थी। कुल ११ प्रस्ताव थे। स्थानाभाव से विस्तृत विवरण न देकर संक्षेप में ही उन पर लिखेंगे। पहला प्रस्ताव सभापति ने उपस्थित किया; जिसमें पं० बदरीनारायणजी चौधरी, पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पं० सोमदेवजी गुलेरी, पं० रामेश्वर भट्ट, पं० योगानंद कुँअर, पं० शिवनारायण द्विवेदी और श्रीमती जगरानीदेवी की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया। दूसरे प्रस्ताव में मारिशस, फ़िजी आदि उपनिवेशों में जा बसनेवाले भारतीयों से अपील की गई कि वे अपने यहाँ हिंदी के प्रचार का विशेष प्रबंध करें, और उनके हिंदी-प्रचार के विविध कार्यों के लिये आदर प्रकट किया गया। तीसरे प्रस्ताव में कांग्रेस को हिंदी के अपनाने के लिये धन्यवाद दिया गया, और इसी तरह हिंदी को अधिकाधिक अपनाने का अनुरोध किया गया।

चौथे प्रस्ताव में भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों से अनुरोध किया गया कि वे अपने यहाँ राष्ट्र-भाषा हिंदी के पढ़ने-पढ़ाने का प्रबंध करें। पाँचवें प्रस्ताव में व्यापारियों और संस्थाओं से यह प्रार्थना की गई कि वे अपने यहाँ के काम-काज में हिंदी-भाषा और नागरी-लिपि का ही व्यवहार करें। छठे प्रस्ताव का आशय देशी रियासतों में हिंदी-प्रचार का अनुरोध करने के लिये एक प्रतिनिधि-मंडल भेजना था। सातवें प्रस्ताव में भारत के हरएक हिंदी-भाषा-भाषी प्रांत में हिंदी-विद्यापीठ खोलने का निश्चय किया गया। आठवाँ प्रस्ताव बड़े महत्त्व का था। पाठकों को स्मरण होगा कि माधुरी की ८वीं संख्या में बाबू शिवपूजनसहाय ने राष्ट्र-भाषा के विराट् संग्रहालय की आवश्यकता जताते हुए एक ज़ोरदार लेख लिखा था। यह प्रस्ताव उसी के आधार पर है। पर प्रस्ताव करनेवाले महाशय ने शिवपूजनसहायजी की उस सूचना का कहीं ज़िक्र नहीं किया *। हम अपने पाठकों से एक बार फिर ध्यान देकर शिवपूजनसहायजी के उस लेख को पढ़ जाने का अनुरोध करते हैं। उसका परिशिष्ट और भी एक लेख हम लिखवा रहे हैं; जो शीघ्र ही माधुरी में प्रकाशित होगा। अस्तु। इस प्रस्ताव के दो भाग हैं। पहले भाग में यह प्रार्थना की गई है कि जिन सज्जनों के पास प्राचीन हस्त-लिखित दुर्लभ पुस्तकें हों, वे उन्हें सुरक्षित रखने के लिये सम्मेलन के स्थायी पुस्तकालय को अर्पण कर दें। हमारी राय में सम्मेलन को ऐसी पुस्तकों की नक़ल करा लेने का ही उद्योग करना चाहिए। असली पुस्तक शायद ही कोई विद्या-प्रेमी दे। दूसरे भाग में एक बृहत् संग्रहालय बनवाने और सजाने के लिये २ लाख रुपए की अपील की गई है। हमारे पास यह आठवाँ प्रस्ताव अलग छपा हुआ प्रबंध-मंत्री की ओर से आया है। उससे जान पड़ता है कि इसकी पूर्ति के लिये टंडनजी ४-५ सज्जनों का एक डेपुटेशन लेकर भारत के भिन्न-भिन्न नगरों और राज्यों में भ्रमण करेंगे †। हम देशी नरेशों और धनी रईसों से साग्रह अनुरोध करते हैं कि वे इस पुनीत कार्य में अवश्य आर्थिक सहायता करें। उनके लिये १०-५ हज़ार रुपए ऐसे महत्त्व के कामों में दे डालना कोई बड़ी बात नहीं है। उनका नाम इस काम से अमर हो जायगा। दो लाख रुपए दे डालना तो हमारे यहाँ के किसी एक धनी के लिये सहज बात है। केवल मातृ-भाषा का प्रेम होना चाहिए। देखें, कौन माई का लाल सामने आता है। हम अपने पाठकों से भी आग्रह के साथ अनुरोध करते हैं कि वे प्राचीन पुस्तकें, ताम्र-पत्र, हिंदी-भाषा और लिपि-संबंधी वस्तुएँ (अगर उनके पास हों) अथवा केवल धन ही देकर अवश्य अपने कर्तव्य का पालन करें। इस विषय पर हम आगामी संख्या में और भी अधिक लिखेंगे। नवें और दसवें प्रस्ताव में हिंदी का व्यवहार करने के लिये म्युनिसिपलटियों और ज़िला-बोर्डों से अनुरोध किया गया, तथा 'महिला-हिंदी-विद्यालय' स्थापित करने के लिये प्रयाग की म्युनिसिपलटी को धन्यवाद दिया गया। ये ही सम्मेलन के प्रस्ताव हैं। यदि इनके अनुसार काम भी हुआ, जैसी कि आशा की जाती है, तो कार्य बहुत कुछ अग्रसर हो जायगा। हिंदी-भाषा-भाषी जनता करोड़ों, हिंदी-प्रेमी लाखों, हिंदी के साहित्य-निर्माता हज़ारों और संपादक सैकड़ों हैं। फिर भी यदि ये प्रस्ताव कार्य-रूप में परिणत न हो सकें, काग़ज़ पर ही छपे रहें, तो इस जागरण के ज़माने में इससे बढ़कर लज्जा की बात और क्या हो सकती है। जिनमें कुछ योग्यता है, कुछ शक्ति है, उन सबको सारे मत-भेद दलबंदी और वैमनस्य छोड़कर मातृ-भाषा की उन्नति के कार्य में अग्रसर होना चाहिए। इस समय प्रायः सभी साहित्य-सेवी राजनीतिक कामों में अधिक मन लगाते हैं। कुछ ने तो राजनीति के आगे साहित्य को ताक़ पर रख दिया है। पर यह ठीक नहीं। राजनीतिक उन्नति मातृ-भाषा की उन्नति विना नहीं हो सकती! मातृ-भाषा का स्वराज्य ही राजनीतिक स्वराज्य की आधार-शिला है।

× × ×

७. कानपुर-सम्मेलन की स्वागत-कारिणी समिति

कानपुर-सम्मेलन की स्वागत-कारिणी समिति के सभी सज्जनों ने तन-मन-धन से आगत सज्जनों का स्वागत किया। विनय और प्रेम की मूर्ति लाला फूलचंद का नम्र व्यवहार देखकर सभी लोग मुग्ध थे। सनेहीजी सबका सत्कार करने में अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करते

* हाँ, प्रस्ताव-समर्थक पं० ईश्वरीप्रसादजी शर्मा ने अपने भाषण में इसका ज़िक्र किया था।

† टंडनजी लखनऊ आए थे, और आजकल धौलपुर गए हुए हैं।

देखे जाते थे। भोजन, जल-पान, पान तथा अन्य प्रकार की ख़ातिरें प्रत्येक समय ठीक समय पर की जाती थीं। कौशिकजी ने प्रधान मंत्री का काम बड़ी योग्यता से संपन्न किया। पं० लक्ष्मीधरजी और पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी के सत्संग से एक अनिर्वचनीय आनंद मिलता था। इसी प्रकार सब कार्यकर्ताओं ने प्रशंसनीय तत्परता दिखलाई। हम स्वागत-कारिणी समिति के हरएक सभ्य परिचय चित्र और चरित्र द्वारा पाठकों को देना चाहते हैं। स्थानाभाव के कारण आगामी संख्या में चित्र और चरित्र देंगे।

× × ×

८. सम्मेलन-पत्रिका का सम्मेलनांक

हर्ष की बात है कि पत्र-पत्रिकाएँ अब सम्मेलन से अधिक अनुराग प्रकट करने लगी हैं। अब की बार सम्मेलन-पत्रिका का भी सम्मेलनांक निकलने की सूचना हमें प्राप्त हुई है। इसमें सम्मेलन का संपूर्ण कार्य-विवरण, दोनों सभापतियों की संपूर्ण वक्तृताएँ, कवि-सम्मेलन की चुनी हुई कविताएँ और अन्य अनेक ज्ञातव्य विवरण रहेंगे। मूल्य ।) होगा। जो सज्जन किसी कारण से सम्मेलन में नहीं उपस्थित हो सके, उन्हें अवश्य यह अंक मँगाना चाहिए। मंत्री हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के पास एक पत्र भेजकर अपने ग्राहक होने की सूचना पहले ही दे देना ठीक होगा। हमारी प्रार्थना है कि इसमें मंगलाप्रसाद-पारितोषिक के योग्य श्रेष्ठ पुस्तक का निर्णय करने के लिये नियुक्त दोनों समितियों के सभ्यों का वक्तव्य भी संपूर्ण छपना चाहिए।

× × ×

९. लेखकों के अधिकार

'लेखकों के अधिकार' के संबंध में हमारे पास जो सम्मतियाँ आई हैं, उन्हें हम प्रकाशित कर रहे हैं। खेद है कि संपादक-मंडली अभी तक इस विषय में मौन है। संपादकों को भी अपनी-अपनी निष्पक्ष सम्मति प्रकट करनी चाहिए। अब तक जो सम्मतियाँ आई हैं, उनसे हम सहमत हैं। हमारा वक्तव्य यही था और है कि हर पत्र या पत्रिका के संपादक की प्रवृत्ति यही होती है कि उसके पत्र या पत्रिका में नया, उपयोगी और उत्कृष्ट लेख निकले। यदा-कदा अच्छे और महत्त्व के लेख उद्धृत भी कर दिए जाते हैं। अगर लेख अधिक महत्त्व का हो, और उसका बहुल प्रचार वांछनीय हो, तो लेखक को संपादक के पास उसे भेजते समय स्पष्ट सूचना दे देनी चाहिए कि यह लेख अन्य पत्रों में भी भेजा गया है, आप भी छाप दें। ऐसी स्थिति में संपादक भ्रम में नहीं रहेगा कि यह लेख ख़ास उसी की पत्रिका के लिये आया है। एक महाशय ने लिखा है कि अगर पुरस्कार नहीं दिया गया, तो लेखक को वह लेख अन्य पत्रों में छपाने का अधिकार है। पर हमारी राय में, उस दशा में भी, संपादक को इसकी सूचना अवश्य मिल जानी चाहिए। पुरस्कार देने योग्य स्थिति कितनी पत्र-पत्रिकाओं की है? इने-गिने दो-चार पत्र ही पुरस्कार देते हैं। अतएव इस अधिकार में पुरस्कार की बात उठाना ही व्यर्थ है। फिर बँगला, मराठी आदि के पत्रों में लेखकों को पुरस्कार देने का नियम ही नहीं देख पड़ता। उनके अधिकांश लेखक मुफ़्त ही साहित्य-सेवा करते हैं। मगर हिंदी की बात निराली ही है। इसके वे लेखक भी जो शुद्ध भाषा तक नहीं लिख सकते, पुरस्कार का दावा पहले करते हैं। अन्य प्रकार से अच्छी आमदनी जिनको है, ऐसे लेखक भी मुफ़्त साहित्य-सेवा करने को तैयार नहीं देख पड़ते। यही कारण है कि अनेक अच्छे पत्रों को भी लेखों का टोटा ही रहता है। अस्तु। हम इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं, और अपने कृपालु लेखकों से निवेदन करते हैं कि वे यदि हमारे पास भेजे हुए लेख को अन्यत्र भी छपने को भेजें, तो उसकी सूचना अवश्य हमें दे दें। अगर उनका लेख महत्त्व-पूर्ण होगा, और उसका बहुल प्रचार वांछनीय समझ पड़ेगा, तो हम अवश्य उसे छापेंगे। अन्य सहयोगियों से भी प्रार्थना है कि वे अपने पत्रों में अपनी सम्मति इस विषय पर अवश्य प्रकट करें।

× × ×

१०. हमारे कृपालु आक्षेपकर्ता

माधुरी जब से निकली है, तब से उसके संचालकों और संपादकों को उत्साहित करने के लिये जहाँ अनेक सज्जनों ने अयाचित-रूप से अपनी बहु-मूल्य सम्मतियाँ देकर हार्दिक हर्ष प्रकट किया है, वहाँ कुछ कृपालु सज्जनों ने लगातार आक्षेप और व्यंग्य करके माधुरी को 'बिलकुल ही कौड़ी-काम की नहीं' साबित करने की चेष्टा की है। कुछ सज्जन कहते हैं कि माधुरी में सब कूड़ा-कर्कट ही भरा रहता है, सब लेख और कविताएँ अशुद्ध और रद्दी रहती

हैं; कोई सज्जन कहते हैं कि माधुरी के संपादक बड़े घमंडी, हैं; कोई सज्जन कहते हैं कि माधुरी को कलेवर-वृद्धि का रोग हो गया है। हम सबको धन्यवाद देते हैं। माधुरी को हमने जिस उद्देश्य से निकाला है, वह है यथाशक्ति मातृ-भाषा की सेवा करना। अतएव हम निंदा-स्तुति की पर्वा न करके यथाशक्ति, यथामति अपने कर्तव्य का पालन करते ही रहेंगे। रह गया कविताओं और लेखों का शुद्ध और उच्च कोटि का न होना। सो, जब वे आक्षेप-कर्ता महाशय कोई अच्छी पत्रिका निकालकर, शुद्ध और उच्च कोटि के लेख व कविताएँ प्रकाशित कर, एक आदर्श हमारे सामने उपस्थित करेंगे, तब हम सधन्यवाद उसका अनुसरण करने की चेष्टा करेंगे। उन्हें मालूम होना चाहिए कि कहने और करने में बड़ा अंतर होता है। जो सज्जन हमें घमंडी बताते हैं, उनसे हमें कुछ कहना नहीं है। कारण, अपनी जान में हमने कभी गर्व को प्रश्रय नहीं दिया। कलेवर-वृद्धि के संबंध में हमारा निवेदन यह है कि माधुरी-मैनेजर ने, संचालकों की ओर से, तीसरी या चौथी संख्या में ही, जब कि किसी भी पत्रिका ने अपनी कलेवर-वृद्धि करने का विचार तक प्रकट नहीं किया था, यथेष्ट ग्राहक होने पर अधिक पृष्ठ-संख्या करने की इच्छा प्रकट कर दी थी। हम किसी पत्र-पत्रिका को हानि पहुँचाने के लिये ऐसा नहीं कर रहे हैं। हम अपने पाठकों से जानना चाहते हैं कि वे पृष्ठ-संख्या बढ़ाना पसंद करते हैं, या घटाना? अगर पाठक कहें, तो हम पृष्ठ बढ़ावेंगे तो है ही नहीं, और भी घटा दें। अस्तु। हम ऐसे आक्षेप करनेवाले सज्जनों को हृदय से धन्यवाद देते हुए यह निवेदन करते हैं कि संसार में निर्दोष कुछ नहीं है, फिर भी चेष्टा वैसी ही की जाती है। अगर उनका हृदय शुद्ध है, और वे हमारे हितैषी हैं, तो उन त्रुटियों को दूर करने में हमारा हाथ बटावें, जो माधुरी में सचमुच मौजूद हों। इस तरह ख़ाली लिख देने में ही उनकी शोभा नहीं है।

× × ×

११. साहित्यिकों में सद्भाव का अभाव

हमें एक कटु अनुभव यह हुआ है कि हिंदी-साहित्य का काम करनेवाले लोगों में से अधिकांश के हृदय में सद्भाव का अभाव है। मिलने पर मुँह से भले ही हँसकर परस्पर श्रद्धा और सौहार्द का परिचय दिया जाय, पर पेट में छुरी ही चलती हैं, और उसका परिचय प्रायः मिल जाता है। प्रायः हरएक लेखक, कवि या संपादक अपनी ही श्रेष्ठता के मद में मस्त हो रहा है; दलबंदियाँ करके एक दूसरे को अपदस्थ और अज्ञ प्रमाणित करने में ही अपना महत्त्व मानता है। मौक़ा मिलते ही एक दूसरे के बारे में ज़हर उगलने लगता है। हम इस स्थिति पर प्रकाश डालने की चेष्टा कभी न करते, अगर हमें इससे साहित्यिक उन्नति को हानि पहुँचने की आशंका न होती। नीति में कहा है— जहाँ सभी नेता हैं, कोई अनुयायी नहीं, सभी अपने को पूर्ण पंडित मानते हैं, सभी महत् बनना चाहते हैं, उस वृंद को अवश्य विपत्ति में पड़ना होता है। हमारे यहाँ जो लोग बहुत दिन से साहित्य-सेवा कर रहे हैं, और वयोवृद्ध हैं, उनमें अगर अपने ही को सर्वश्रेष्ठ समझने का भाव हो, तो वह किसी प्रकार, किसी हद तक उचित और क्षम्य भी है। लेकिन जब हम देखते हैं कि १७-१८ वर्ष के नवयुवक, जिन्होंने अभी कल से क़लम पकड़ना सीखा है, कुछ लिखने लगे हैं, वे भी अपने तईं हिंदी-साहित्य का एक महारथी मानकर अपने से ज्ञान और अवस्था में बड़े लोगों का उपहास करने को तैयार हैं. उन्हें अज्ञ ठहराकर अपनी अभिज्ञता या बहुज्ञता का ढोल आप ही पीटते हैं, तब क्षोभ की सीमा नहीं रहती। विनय क्या इस ज़माने में रहा ही नहीं? अगर यही हाल रहा, तो बड़ा अनर्थ होगा। साहित्य-संसार के कर्णधारों को उचित है कि साहित्यिकों में सद्भाव और अदब का भाव उत्पन्न करने की चेष्टा करें। नहीं तो उनकी उपेक्षा से यह विष-वृक्ष बढ़कर बड़ा बुरा फल देगा। सहज उपाय यही है कि विद्या-वयोवृद्ध साहित्य-सेवी स्वयं आपस में सद्भाव रक्खें। कारण, उन्हीं को देखकर नौसिखुए बालकों में भी यह रोग फैलता जाता है।

× × ×

१२. पत्र-पत्रिकाओं और ग्रंथ-मालाओं की भरमार

इधर नवजात हिंदी-पत्रों की इतनी भरमार नज़र आ रही है कि देखकर हर्ष, आश्चर्य और भय होता है। हर्ष इस बात का कि हिंदी का साहित्य बहु-विस्तृत होता जाता है। आश्चर्य इस बात का कि अनेक अच्छे और पुराने पत्रों को ग्राहकों के अभाव से बंद होते देखकर भी—सब सामान महँगा (ख़ासकर योग्य संपादकों का अभाव) होने पर भी—इतने पत्र कैसे निकल रहे हैं। भय इस

बात का कि ये पत्र क्या जीवित रह सकेंगे, और कहीं इनके उदयास्त का बुरा असर पुराने पत्रों पर भी न पड़े। कोई पत्र दो पृष्ठ का है, कोई चार का, किसी में अच्छे पठनीय लेखों का सर्वथा अभाव है, किसी का संपादन महा रद्दी होता है, फिर भी बराबर पत्र निकलते जा रहे हैं। अगर इन पत्रों के निकलने का कारण हिंदी-प्रेम ही होता, तो कुछ कहना न था। मगर यहाँ तो संचालकों को टके कमाने की इच्छा ने पत्र निकालने के लिये प्रवृत्त किया है, जो कि सुदूरपराहत है। हरएक प्रांत से चाहे २-४ ही पत्र निकलें, पर वे हों सुसंपादित और सुसंचालित। उनसे हिंदी-साहित्य का, साथ ही पाठकों का, बड़ा उपकार होगा। ये निकले हुए दर्जनों रद्दी पत्र चार दिन निकलकर कुछ उपकार नहीं करेंगे। इनका बंद हो जाना भी निश्चित ही है। कारण, पाठक तो उतने ही हैं। उन्हीं में से १००-५० ग्राहक इनमें से हरएक पत्र को भी परिश्रम करने पर मिल जायँगे। पर इतनी ग्राहक-संख्या में कोई पत्र कब तक चल सकता है? ऐसे पत्रों के निकलने और बंद हो जाने का बुरा असर यह होता है कि भविष्य में निकलनेवाले अच्छे पत्रों का भी मार्ग संकीर्ण और कंटकाकीर्ण हो जाता है। उनके चलने पर भी लोगों को विश्वास नहीं होता। बेचारे उनके संचालकों को बरसों यथेष्ट ग्राहक नहीं मिलते। उदाहरण-स्वरूप नागपुर के प्रणवीर को ही ले लीजिए। उसका संपादन इतना अच्छा और इतनी योग्यता से होता है कि हिंदी में बहुत ही कम पत्रों का संपादन होता होगा। फिर भी उसकी ग्राहक-संख्या यथेष्ट नहीं है। यह सब रद्दी पत्रों के निकलकर बंद होने का ही कुफल है। हमने ये शब्द शुद्ध हृदय से लिखे हैं, किसी पर आक्षेप करने के लिये नहीं। यही हाल ग्रंथ-मालाओं का है। दिन-दिन ग्रंथ-मालाएँ निकलती ही चली आती हैं। अगर ये ग्रंथ-मालाएँ यथेष्ट पूँजी रखकर निकाली गई होतीं, और इनमें अच्छे अनुवाद या मौलिक ग्रंथ निकलते, तो इससे बढ़कर हर्ष की बात और न थी। मगर जब हम देखते हैं कि रद्दी-रद्दी पुस्तकों के अनुवादों से ये ग्रंथ-मालाएँ अलंकृत हो रही हैं, तब घोर दुःख होता है। किसी-किसी माला में नाम-मात्र को मौलिक, किंतु मामूली, अनुपयोगी पुस्तकें भी निकली हैं। किंतु रद्दी अनुवादित पुस्तकों के समान इनसे भी कुछ लाभ नहीं होना। छपाई, काग़ज़ आदि तो, कुछ मालाओं को छोड़कर, और भी रद्दी देखने में आता है। मगर मूल्य, आसमान से बातें करता है। सौ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य डेढ़-दो रुपए तक छपा देखा गया है। ऐसी ग्रंथ-मालाओं में से किसी-किसी में तो सालों गुज़र गए, पर एक के सिवा दूसरी पुस्तक नहीं निकली! हमारा अनुरोध है कि इन मालाओं के संचालक इस व्यवसाय को छोड़कर और किसी प्रकार से मातृ-भाषा की सेवा करें, तो अच्छा हो। हिंदी में जो १०-५ अच्छी ग्रंथ-मालाएँ निकल रही हैं, उन्हीं को इस क्षेत्र में काम करने दिया जाय, अथवा आदर्श ग्रंथ-मालाएँ निकाली जायँ। कुछ सचित्र पुस्तकें निकालनेवालों ने भी मनमानी मचा रक्खी है। उनकी पुस्तकें उतनी अच्छी नहीं होतीं; पर चित्रों की चटक-मटक के बल पर उनकी अच्छी खपत हो जाती है। कोई-कोई तो रद्दी पुस्तक भी चित्रों के सहारे चतुर्गुण मूल्य पर बिक रही है। हिंदी की पुस्तकों के बहुल प्रचार में एक बड़ी भारी बाधा यह मूल्य की अधिकता भी है। पुस्तकों का मूल्य कितना अधिक रक्खा जाता है, इसका अनुमान केवल एक ही उदाहरण से किया जा सकेगा। कलकत्ते से एक यंग इंडिया नाम की पुस्तक अभी निकली है। उसमें ४४० पृष्ठ हैं, फिर भी मूल्य केवल १) रक्खा गया है। काग़ज़, छपाई, सब कुछ बढ़िया है। इतने मूल्य में भी कुछ मुनाफ़ा रक्खा ही गया होगा। फिर यह पुस्तक अन्य प्रेस में छपाई गई है। उसके चार्ज अधिक होंगे। हम यह नहीं कहते कि सभी लोग इतना कम मूल्य रक्खें। ऐसा होना असंभव है। कारण, प्रकाशकों को अन्य अनेक फुटकल ख़र्च, कमीशन, विज्ञापन का व्यय भी उसी से निकालना होता है। हमारा कहना यही है कि मूल्य समझ-बूझकर रक्खा जाय। यहाँ तो लोग निज के प्रेस में छपी ४०० सफ़े की पुस्तक के दाम निःसंकोच ३-४ रु० तक रखते हैं! अब की बार इतना ही। फिर कभी इस विषय पर विस्तृत रूप से लिखेंगे।

× × ×

१३. रशिया की आधुनिक शासन-प्रणाली

सन् १६१७ की बारहवीं मार्च को रशिया में क्रांति हुई और ज़ार को अपना सिंहासन छोड़ना पड़ा। उसी वर्ष के १० नवंबर तक संपूर्ण रशिया का शासन बोल्शेविक लोगों के हाथों में आ गया, और आजकल भी पुरानी रशिया का अधिकांश भाग इन्हीं के क़ब्ज़े में है। आधु-

निक रशिया का क्षेत्र-फल क़रीब ६२ लाख वर्गमील है, और मनुष्य-संख्या क़रीब १३ करोड़ १४ लाख है। फ़िनलैंड और पोलैंड-सरीखे कुछ देश जो पहले रशिया में थे, अब स्वतंत्र हो गए हैं, और इनके कम हो जाने से रशिया की आबादी क़रीब तीन करोड़ कम हो गई है। परंतु वहाँ की सरकार रशिया के आस-पास के देशों को अपने राज्य में मिलाने का प्रयत्न कर रही है, और वह बोख़ारा, खिवा और मंगोलिया को अपने साथ मिलाने में सफल भी हो चुकी है। अन्य देशों पर भी वहाँ की सरकार अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न कर रही है। रशिया की सब ज़मीन राष्ट्रीय सरकार की मिल्कियत बना ली गई है, और सब खानें, कारख़ाने, बैंक और रेल इत्यादि तथा उत्पत्ति के सब साधन सरकार ने अपने हाथों में ले लिए हैं। हाल में कुछ कारख़ानों को, ख़ास-ख़ास व्यक्तियों को, किसी ख़ास शर्त पर चलाने के लिये देने की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक व्यक्ति को फ़ौजी शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी राय देने या प्रकाशित करने का पूरा अधिकार है। प्रेस को भी पूरी तरह से स्वतंत्रता है। १८ वर्ष से अधिक के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को, जो कि अपने हाथों से या दिमाग़ से काम करता हो, अथवा फ़ौज में नौकर हो, चाहे वह फिर किसी भी क़ौम या कैसी भी हैसियत का हो, वोट देने का अधिकार है। शहरों या गाँवों का सब प्रबंध सोवियट द्वारा किया जाता है; जो कि वहाँ के मज़दूरों द्वारा प्रति वर्ष चुनी जाती है। ये सोवियटें अपने ज़िला-कांग्रेस के प्रतिनिधियों को चुनती हैं, और ज़िला-कांग्रेस के प्रतिनिधि प्रांतीय कांग्रेस के प्रतिनिधियों को चुनते हैं। यह चुनाव प्रति वर्ष होता है। संपूर्ण रशिया की कांग्रेस देश की सब प्रकार की शासन-व्यवस्था का प्रबंध करती है। इस कांग्रेस में नगर-सोवियट से प्रत्येक २५००० मनुष्य पीछे एक प्रतिनिधि और प्रांतीय कांग्रेस से प्रत्येक १२५००० मनुष्य पीछे एक प्रतिनिधि चुनकर भेजा जाता है। यह कांग्रेस एक कार्य-कारिणी समिति चुनती है। उसमें क़रीब ३०० सदस्य रहते हैं। इस कार्य-कारिणी समिति की दो मास में कम-से-कम एक बैठक अवश्य हो जाती है। इस कार्य-कारिणी समिति के अतिरिक्त प्रति वर्ष १८ मिनिस्टर भी चुने जाते हैं; जिसको कौंसिल आफ़ पीपुल्स कमिसरीज़ (Council of Peoples' Commissiories) कहते हैं। ये मिनिस्टर ही कार्य-कारिणी समिति की देख-रेख में राज्य की सब व्यवस्था करते हैं। प्रत्येक मिनिस्टर को एक विभाग सौंप दिया जाता है; और वह अपने विभाग के कामों के लिये पूरी तरह से ज़िम्मेदार रहता है। मिनिस्टर को सहायता देने के लिये प्रत्येक विभाग में एक बोर्ड भी रहता है। मुख्य विभाग ये हैं—कृषि, भोजन-सामग्री, सामाजिक भलाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, अर्थ, आंतरिक व्यवस्था, न्याय, मज़दूर, विदेशी व्यापार, विदेशी संबंध, आर्थिक कौंसिल, पोस्ट और टेलीग्राफ़, रेल और सड़क इत्यादि। देखें, यह मज़दूर-सरकार अपनी शासन-व्यवस्था अच्छी तरह से चलाए रखने में कहाँ तक सफल होती है।

× × ×

१४. क्षमताशाली उपन्यास-लेखक 'पियर लोटी'

'पियर लोटी' एक फ्रेंच लेखक का छद्म नाम है। असल नाम 'जूलियाँ वियों' (Julien Viaud) है। अभी ख़बर उड़ी थी कि आपका देहांत हो गया ; पर प्रसन्नता की बात है कि यह कोरी ग़प ही निकली। पियर लोटी की कहानियाँ जगत्प्रसिद्ध हो रही हैं। वैसे ही आपके उपन्यास भी समझे जाते हैं। उनका प्रथम उपन्यास An Iceland Fisherman (आइसलैंड का एक मछुआ) एक सजीव चरित्र-चित्र है। लोगों को आश्चर्य होता है कि इन छोटी जातियों के हृदय के सूक्ष्म भावों का विश्लेषण वह कैसे कर सके ! इन ग़रीबों पर लेखक की गहरी ममता और सहानुभूति प्रत्येक पृष्ठ में दृष्टि-गोचर होती है। उसके बाद उन्होंने Oriental Phantoms, Jerusalem और Romance of a spahi आदि अनेक उपन्यास लिखकर उनमें प्राच्य देशों के नर-नारियों का चरित्र जैसा अंकित किया है, उनके हार्दिक भावों की तहें जैसे खोल-खोलकर पाठकों के सामने रक्खी हैं, उसे देखकर कहना पड़ता है कि पाश्चात्य देशों की कौन कहे, प्राच्य देशों का कोई लेखक भी उस तरह अपने देश के लोगों का हृदय प्रकट नहीं कर सकता था। कुछ दिन हुए, हंगरी के बुडापेस्ट-शहर से निकलनेवाले 'जर्मन-हंगेरियन डेली' पत्र में किसी विद्वान् ने पियर लोटी के बारे में एक प्रबंध लिखा है। उसका सारांश यह है—

"पियर लोटी मानव-चरित्र के जानने में, तह तक

दृष्टि ले जाने में और अपने अनुभवों को व्यक्त करने में एक ही हैं। कम-से-कम कोई सम-सामयिक लेखक तो इन बातों में उनकी बराबरी नहीं कर सकता। जापान के नर-नारियों का जैसा वास्तविक चरित्र उन्होंने अंकित किया है, वैसा शायद लाफ़ू काडियो हार्न भी नहीं लिख सके! पियर लोटी के अंकित मुस्लिम-चित्र के सामने जेरार्ड दा नार्वल और थियोफ़िल गटिए की क़लम से निकले हुए चित्र भी मलिन और निर्जीव-से प्रतीत होते हैं। उनकी लेखन-शैली में ख़ास बात यह होती है कि उसमें सहानुभूति की मात्रा यथेष्ट हुआ करती है। वह विदेश और विजाति के लोगों का चित्र भी इस तरह अंकित करते हैं, जैसे वे उनके स्वदेशी और सहधर्मी ही हों। उनके उपन्यास सब देशों और सब कालों में रमणीय और नवीन हैं। विजाति और विदेशी लोगों के बाहरी आचरण के आवरण को तोड़कर उनका हृदय देखने की शक्ति ही उनकी इस सफलता का मुख्य कारण है।"

× × ×

१५. उपनिवेशों में प्रवासी भारतीय

माननीय श्रीनिवास शास्त्री ने जो सरकारी ख़र्च से उपनिवेश-यात्रा की थी, उसका विवरण सरकार की ओर से प्रकाशित हुआ है। उससे विदित होता है कि शास्त्रीजी तीन उपनिवेशों में पधारे थे। आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और कनाडा। आस्ट्रेलिया की रियासतों में २१०० भारतीय हैं। ७०० न्यूसाउथवेल्स में और ४०० विक्टोरिया में। इनमें अधिकतर मुसलमान ही हैं। अधिकांश लोग फुटकर व्यापार या खेती ही करते हैं। बहुत कम भारतीयों ने अपनी उन्नति की है। केवल सिंध के मि० बादुल्ला ने अच्छी उन्नति की है। उनके पास, पश्चिमी आस्ट्रेलिया में, २½ लाख एकड़ खेत और २५००० भेड़ें हैं। वहाँ मज़दूरों को १२ शिलिंग से कम रोज़ाना मज़दूरी नहीं मिलती। वहाँ की सामाजिक दशा का हाल शास्त्रीजी अच्छी तरह नहीं जान सके। वहाँ के प्रधान मंत्री ने मध्यवर्ती कौंसिल के लिये भारतीयों को मताधिकार देने के प्रश्न पर विचार करने का वादा किया है। दक्षिण-आस्ट्रेलिया की सरकार ने आबपाशी क़ानून में सुधार करने की प्रतिज्ञा की है। इससे भारतीयों को ज़मीन का पट्टा पाने में सुविधा होगी। क्वींसलैंड की सरकार ने वह रुकावट दूर कर दी है, जो हिंदोस्तानियों के केले की खेती करने में थी। न्यूज़ीलैंड में ६०० के लगभग भारतीय हैं उनकी ख़ास शिकायत यह है कि उन्हें बुढ़ापे में पेंशन मिलती नहीं; न नौकरी ही दी जाती है। वर्ण-भेद का पक्षपात ही नौकरी न मिलने का कारण है। यहाँ के भारतीय आस्ट्रेलिया के भारतीयों के समान भी उन्नति नहीं कर पाए हैं। शिक्षा का प्रबंध भारतीयों के लिये दोनों उपनिवेशों में यथेष्ट नहीं है। पासपोर्ट की कठिनाई दोनों उपनिवेशों में भारतीयों के लिये एक-सी है। कनाडा में १२००० भारतीय हैं। इनमें आधे के क़रीब सिख हैं। शास्त्रीजी ने ख़ुद भारतीयों को मताधिकार देने की प्रार्थना की है। टसकोलंबिया में प्रांतीय और म्युनिसिपल मताधिकार मिल भी गया है। वहाँ के प्रधान मंत्री ने पार्लियामेंट के लिये मताधिकार दिलाने के बारे में विचार करने का वादा किया है। काले-गोरे लोगों की जीविका के संबंध का झगड़ा ब्रिटिश कोलंबिया के समान प्रबल और कहीं नहीं है। इस रगड़-झगड़ के शीघ्र दूर होने की आशा भी नहीं है। शास्त्रीजी उपनिवेशों में भारतीयों की दशा सुधारने के लिये ख़ास तौर पर सलाह देते हैं कि भारत को इन उपनिवेशों के साथ वाणिज्य-व्यवसाय का संबंध बढ़ाना चाहिए। इधर ६० वर्षों में भारत ने जो उन्नति की है, उससे औपनिवेशिक लोग बहुत कम परिचित हैं। पर हमारी क्षुद्र सम्मति में जब तक उपनिवेशों के गोरों की यह धारणा न होगी कि भारतीयों के साथ कुव्यवहार करने से उनके साथ भी भारत वैसा ही बुरा व्यवहार करेगा, तब तक कुछ नहीं हो सकता।

× × ×

१६. हिंदू और मुसलमानों का एका

लोगों को विश्वास हो चला था कि अब की बार हिंदू-मुसलमानों का एका पक्का और असली है। पंजाब में हिंदू-मुसलमानों के ख़ून ने मिलकर जिस एके की सृष्टि की है, उसका रंग कभी फीका नहीं पड़ेगा। इसी धारणा के वशवर्ती होकर हिंदुओं ने महात्माजी की आज्ञा के अनुसार मुसलमानों की मदद की, ख़िलाफ़त का मामला आगे बढ़ाया, और धन देकर, जेल जाकर, अनेक कष्ट उठाकर मुसलमानों का साथ दिया। मुसलमानों की कुछ ज़्यादतियों को भी हिंदू जगह-जगह तरह दे गए। मोपलों ने हिंदुओं पर जो अत्याचार किए, उन पर भी हिंदुओं ने कुछ नहीं कहा। मुल्तान में मुसलमान-गुंडों ने

जो कुछ उपद्रव किया, उसे भी पी गए। पर यह उनकी भूल थी। मुसलमान भाई रत्ती-भर भी दबना नहीं चाहते ; बल्कि दबाने की अपनी नीति में भी कमी नहीं करना चाहते। मुसलमान जानते हैं, हिंदुओं में हमारा-जैसा जोश नहीं है। यही कारण है कि इस समय जगह-जगह मुसलमान अपना असली रूप प्रकट कर रहे हैं।

हम मानते और जानते हैं कि राजनीतिक उन्नति के लिये दोनों जातियों में मेल की बड़ी आवश्यकता है। परंतु हम अपनी बहू-बेटियों का अपमान कराकर, अपने बिछड़े भाइयों को गले लगाने का हक़ छोड़कर वह बनावटी मेल बनाए रखने के पक्षपाती नहीं हैं। मलकाने, जो हिंदू ही अब तक बने हुए हैं, नाम-मात्र के मुसलमान हैं, हमारे गले लगने को छटपटा रहे हैं, उन्हें भी हम सादर ग्रहण न करें, और उधर मुसलमान लोग मज़े से नित्य हर शहर में छल-बल-कौशल से १०-५ हिंदुओं को बहकाकर मुसलमान बनाते रहें—यह कहाँ का न्याय है! यह मेल का कौन नियम है! अभी अमृतसर में मुसलमान-गुंडों ने जिस नीचता का परिचय दिया है, उससे किस सजीव हिंदू का ख़ून जोश से उबल न पड़ेगा! एक हिंदू-बालिका पर दिन-दहाड़े अत्याचार होते देखकर ही तो हिंदुओं से नहीं रहा गया, और वे मरने-मारने को तैयार हो गए। मुसलमान लोग अभी डेढ़-दो सौ वर्ष पहले के ही सपने देख रहे हैं, जब वे मनमाने अत्याचार करते थे। पर उन्हें याद रखना चाहिए कि अब वह ज़माना नहीं है। अगर कोई अत्याचार करेगा, तो हिंदू-जाति ख़ून के घूँट पीकर नहीं रह जायगी। हम इस समय देखते हैं कि भारत के प्रत्येक प्रांत और शहर में मुसलमान उत्तेजित हो रहे हैं, और वे धौंस छोड़कर हिंदुओं को दबाना चाहते हैं। ये लक्षण अच्छे नहीं हैं। मुसलमान जाति के प्रभावशाली नेताओं से ही हम क्या आशा करें, जब ख़िलाफ़त-कमेटी ने ५००००) रु० हिंदुओं के शुद्धि-कार्य के ख़िलाफ़ ख़र्च करने का प्रस्ताव पास किया है। अभी ख़ैर है, अभी दोनों जातियों को सँभलने का मौक़ा है। अभी अमृतसर में ही सैकड़ों ज़ख़्मी हुए हैं। किसी के मरने की ख़बर नहीं मिली। कुछ छोटी-मोटी दूकानें भी लुटी हैं। बाज़ार खुला है। फिर भी पूरी शांति नहीं है। द्वेष की आग सुलग ही रही है। सुना है, मुल्तान में तो दोनों जातियों के नेता भी मेल की चेष्टा में अकृतकार्य हो गए हैं। अमृतसर में मेल कराने की चेष्टा चल रही है। अभी अवसर है कि दोनों जातियों के प्रभावशाली नेता इस दुर्भाव को दूर करने का फिर शीघ्र प्रयत्न करें। मुसलमान-नेता अपनी जाति के लोगों को वस्तु-स्थिति समझाकर शांत करें। अगर ऐसा न हुआ, तो हमें भय है कि ज़रा-सी ढिलाई में वह महाअनर्थ हो जायगा, जिसके लिये दोनों जातियों को सदियों तक अपनी मूर्खता पर पछताना पड़ेगा।

मुसलमान लोग समझते हैं, टर्की का उद्धार हो ही चुका है, अब हमें हिंदुओं से मेल रखने की ज़रूरत नहीं है। पर यह उनकी भ्रांत धारणा है। टर्की से उनका उतना घनिष्ठ संबंध नहीं है, जितना कि भारत से। भारत की भलाई के लिये उन्हें हिंदुओं पर ज़बरदस्ती न करनी चाहिए। वे हिंदुओं से रत्ती-भर दबकर न रहें, हिंदुओं का ज़ोर-ज़ुल्म जहाँ हो, वहाँ बराबर अपने अधिकार का दावा करें। कहना केवल यही है कि इस तरह अंधे जोश में आकर हिंदुओं के कर्तव्य में बाधा न डालें। वे भी मलकानों को मुसलमान बने रहने के लिये उपदेश दें, जैसा कि अभी कर रहे हैं। वे अपने धर्म की श्रेष्ठता और अच्छाई समझाकर अगर किसी को मुसलमान बना सकें, तो हिंदू कुछ नहीं कहेंगे। हिंदू तो केवल यह चाहते हैं कि मुसलमानों को जैसे अपने धर्म का प्रचार करने का अधिकार है, वैसे ही हिंदुओं का अधिकार भी स्वीकार किया जाय। आशा है, मुसलमान भाई शीघ्र ही अपनी ग़लती समझकर इस मूर्खता से बाज़ आवेंगे, और अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी न मारेंगे। हिंदुओं को शीघ्र ही स्थान-स्थान में अपना संगठन करके इस प्रतिकूल स्थिति का सामना करने के लिये तैयार हो रहना चाहिए। अगर वे आत्म-रक्षा के लिये आवश्यक संगठन में ग़फ़लत करेंगे, तो अवश्य ही उसका फल उनके लिये बड़ा घातक सिद्ध होगा।

× × ×

१७. हड़तालें

इस समय देश और विदेशों में सर्वत्र हड़तालों का ज़ोर-शोर दिखाई पड़ रहा है। देश की हड़तालों में अहमदाबाद की मिल की हड़ताल भारी है। २००० से अधिक तो केवल मुसलमान हड़तालिए हैं। हड़तालियों

ने ४-५ महीने तक हड़ताल जारी रखने का निश्चय प्रकट किया गया है। कानपुर और बर्मा में भी हड़तालें हुई हैं। हड़ताल का होना मालिक और नौकर, दोनों को हानि पहुँचानेवाला है। हड़ताल मज़दूरों और नौकरों का अंतिम अस्त्र है। जब अनुनय-विनय आदि अन्य उपायों से काम नहीं चलता, तभी हड़ताल की जाती है। अगर मज़दूरों की स्थिति ऐसी हुई कि कुछ समय तक वे अपनी बात पर अड़े रह सकें, तो अवश्य ही यह अस्त्र अमोघ भी है। जब मालिकों का लोभ हद दर्जे को पहुँच जाता है, जब वे ग़रीब मज़दूरों या नौकरों से कसकर काम लेते हैं, मगर दाम देने में कंजूसी करते हैं, मज़दूरों के दुख-दर्द पर ध्यान नहीं देते, तभी मज़दूर हड़ताल करने को विवश होते हैं। यह अस्त्र पाश्चात्य है; पर पूर्व के देशों में भी इसका यथेष्ट प्रयोग होने लगा है। पाश्चात्य साम्य-वाद की हवा के झोंके जब से भारत में आने लगे हैं, तब से हड़तालों की संख्या यहाँ भी बढ़ गई है। केवल सन् १६२२ के एप्रिल और मई, इन दो महीनों में भारत में होनेवाली हड़तालों और हड़तालियों की संख्या सहयोगी प्रणवीर से उद्धृत की जाती है—

प्रांत	हड़तालें	हड़ताल करनेवाले	बेकारी के दिन*
आसाम	१	५००	६०००
बंगाल	२३	४२६१४	३०२०६५
विहार-उड़ीसा	१	७५	१५०
बंबई	३६	१५८६६	७१४२२
मदरास	३	६०८	१०८७०
युक्त-प्रांत	१	१२४	३७२
बर्मा	१	३०	३०

अकेले बंबई-हाते में सन् १६२२ के पहले १० महीनों में इस प्रकार हड़तालें हुईं—

महीना	हड़तालें	बेकारी के दिन
जनवरी	१७	३३३८६
फ़रवरी	१२	३२०८७
मार्च	८	३००८२६
एप्रिल	१५	१८३५२
मई	१५	५४६३०
जून	१०	४२५०
जुलाई	१४	५८८०६
अगस्त	१३	८७६२७
सितंबर	७	२०७०६
ऑक्टोबर	२४	६२३७२

पहले कह चुके हैं कि हड़तालों से दोनों पक्षों की हानि होती है। जिस धन के लोभ से मालिक मज़दूरों की बात नहीं मानते, उसी धन की, करोड़ों की, हानि इस तरह वे बरदाश्त करते हैं! अगर मालिक लोग वेतन बढ़ाकर, बोनस देकर, काम के घंटे ठीक नियत कर, रोग आदि में मज़दूरों की सहायता कर, उनके रहने का, खाने-पीने-पहनने का, शिक्षा का उचित प्रबंध कर अपने कर्तव्य का पालन करते रहें, तो कम ख़र्च में ही दोनों पक्ष संतुष्ट रहें, और यह करोड़ों की हानि भी न हो। पर यह हो कैसे, वहाँ भी तो हमारी सरकार की तरह प्रेस्टिज का भूत सताए हुए है। वे सोचते हैं, आज अगर मज़दूरों की बात मान ली, अगर दब गए, तो ये आगे दबाते ही जायँगे। यहाँ के मालिकों का एक यह भी ख़याल है कि मज़दूर कब तक हड़ताल जारी रक्खेंगे? उनके पास पूँजी ही कितनी है? भूखे तो रहा ही न जायगा; लाचार होकर हमारी शरण में आवेंगे। मगर यह उनकी भूल है। यह सच है कि अभी मज़दूरों का वैसा संगठन नहीं हुआ है, अभी उनकी पूँजी काफ़ी नहीं जमा हुई है, अभी उनमें उतना प्रबल एका नहीं हुआ है, जितना कि पाश्चात्य देशों में। मगर यह भी सच है कि अब दबने का युग गया। हर जाति में, हर समुदाय में साम्यवाद की, अधिकार प्राप्त करने की, ऐसी लहर उठ रही है कि वह दबाए नहीं दब सकती। अभी नहीं, तो कुछ दिन में यहाँ भी श्रमजीवी-दल प्रबल हो उठेगा, और अपना प्राप्य कौड़ी-कौड़ी वसूल किए बिना नहीं रहेगा। उस समय विवश होकर उनकी बात मानने में कोई प्रतिष्ठा नहीं है। किसी का हक़ उसके द्वारा बाध्य किए जाने के पहले ही दे देने में प्रशंसा होती है। मालिकों को उचित है कि वे मज़दूरों और नौकरों को प्रसन्न करके अपने कर्तव्य का पालन करें, और

* सब मजदूर मिलकर जितने दिन बेकार रहे, उसके अनुसार यह हिसाब है। जैसे ५०० आदमी १८ दिन बेकार रहे, तो बेकारी के दिन ९,००० शुमार किए जायँगे; अर्थात् हर मनुष्य का एक दिन। इसी हिसाब से समझ लो, कौन हड़ताल कितने दिन रही।

स्वयं भी हानि से बचें। ईश्वर उन्हें सुबुद्धि दे। बंबई के 'सोशलिस्ट', कलकत्ते के 'कर्मी' आदि के समान मज़दूरों का पक्ष-समर्थन और उनमें अपनी स्थिति का ज्ञान उत्पन्न करनेवाले ज़ोरदार पत्रों के निकलने की भी बड़ी आवश्यकता है। अन्यान्य सहयोगियों को भी इधर ध्यान देना चाहिए।

× × ×

१८. डॉक्टर गौड़ का असवर्ण-विवाह-बिल

समाचार-पत्रों के पाठक जानते हैं कि डॉ० गौड़ के असवर्ण-विवाह-बिल को भारत-सरकार की बड़ी व्यवस्थापक सभा से मंजूरी मिल गई है। स्टेट कौंसिल भी शायद मंजूरी दे ही देगी। अब से ११ वर्ष पहले बाबू भूपेंद्रनाथ वसु ने भी ऐसा ही एक बिल पेश किया था, पर वह नामंजूर हुआ। फिर मि० पटेल ने भी ज़ोर मारा; पर असफल रहे। अब की डॉ० गौड़ ने इस बिल को यहाँ तक अग्रसर कर दिया है। बहुत लोगों को इस बिल की बातें नहीं मालूम होंगी, इसलिये हम इसका प्रस्तावित रूप यहाँ पर देते हैं—

चूँकि स्पेशल मैरेज ऐक्ट (१८७२) का संशोधन करना बहुत आवश्यक है, इसलिये निम्न रूप से नियम बनाए जाते हैं—

१. यह ऐक्ट स्पेशल मैरेज (एमेंडमेंट) ऐक्ट (१९२३) कहलावेगा।

२. स्पेशल मैरेज ऐक्ट (१८७२) की भूमिका में (ज़िसका अब उक्त ऐक्ट कहकर संकेत किया जायगा) 'जैन-धर्म' शब्दों के बाद ये शब्द जोड़ दिए जायँ—"और उन व्यक्तियों के लिये जो हिंदू, बौद्ध, सिख या जैन-धर्मावलंबी हैं।"

३. उक्त ऐक्ट की दूसरी धारा में 'जैन-धर्म' शब्दों के बाद ये शब्द जोड़ दिए जायँ—"अथवा उन व्यक्तियों के बीच, जिनमें प्रत्येक हिंदू, बौद्ध, सिख और जैन, इन चार धर्मों में से किसी भी धर्म का माननेवाला हो।"

४. उक्त ऐक्ट की २१वीं धारा के बाद ये धाराएँ जोड़ दी जायँ—

"२२—इस ऐक्ट के अनुसार हिंदू, बौद्ध, सिख अथवा जैन-धर्मावलंबी सम्मिलित परिवार के किसी व्यक्ति का विवाह होने से वह व्यक्ति सम्मिलित परिवार से पृथक् समझा जायगा।"

"२३—कोई हिंदू, बौद्ध, सिख अथवा जैन-धर्मावलंबी, जो इस ऐक्ट के अनुसार विवाह करेगा, उसके जायदाद और उत्तराधिकार से संबंध रखनेवाले अधिकार और प्रतिबंध वे ही होंगे, जो किसी व्यक्ति के कास्ट डिसेबिलिटीज़ रिमूवल ऐक्ट, १८७९ (Cost Disabilities Removal Act of 1879) के अंतर्गत हैं। मगर शर्त यह रहेगी कि इस दफ़ा के अनुसार विवाहित कोई भी शख़्स किसी धार्मिक संस्था या कार्य में भाग न ले सकेगा, अथवा किसी धार्मिक संपत्ति का प्रबंधक नहीं हो सकेगा।"

"२४—इस क़ानून के माफ़िक़ अगर कोई हिंदू, बौद्ध, सिख या जैन-धर्मावलंबी विवाह करेगा, तो उसकी तथा उसकी संतान की संपत्ति का उत्तराधिकारित्व इंडियन सक्सेशन ऐक्ट १८६५ (Indian Succession Act, 1865) की व्यवस्थाओं के अनुसार होगा।"

'२५—जो हिंदू, बौद्ध, सिख अथवा जैन इस ऐक्ट के अनुसार ब्याह करेगा, उसे गोद लेने का अधिकार न होगा।"

"२६—अगर कोई हिंदू, बौद्ध, सिख या जैन इस ऐक्ट के अनुसार ब्याह करेगा, तो उसके पिता को यह अधिकार होगा कि दूसरे पुत्र के न होने पर वह किसी दूसरे व्यक्ति को अपने धर्म के नियमानुसार पुत्रवत् गोद ले ले।"

५. उक्त ऐक्ट के दूसरे 'शेडयूल' में 'जैन-धर्म' शब्दों के बाद दोनों जगहों पर, जहाँ वे आते हैं, ये शब्द और जोड़ दिए जायँगे—"अथवा (जैसा कि हो) मैं हिंदू, बौद्ध, सिख या जैन-धर्मावलंबी हूँ।"

× × ×

१९. कुछ जानने लायक़ बातें

१—भारतीयों की आमदनी दिन-दिन घटती ही जाती है। सन् १८५० में हर आदमी की रोज़ाना आमदनी की औसत =) थी। सन् १८८२ में -)॥ और सन् १९०० में केवल)॥। रह गई। सन् १९२० के हिसाब से मालूम होता है कि अब ढाई पैसे से भी कम है!

२—हंगेरिया के हेजसोफ़ी नाम के इंजीनियर ने हवा से बिजली बनाने का एक यंत्र बनाया है। इसका प्रधान यंत्र वैसा ही ऊँचा एक खंभा है, जैसे प्रयाग के क़िले में बिना तार के तार के खंभे हैं। खंभे की उँचाई के अनुसार बिजली की शक्ति में अंतर पड़ता रहता है।

इंजीनियर का कहना है कि ९०० फ़ीट ऊँचे खंभे से ४० हज़ार बोल्ट की बिजली बन सकती है। यह आविष्कार अभी बिलकुल आरंभिक अवस्था में है। कई मकानों में यह यंत्र लगाकर रोशनी के लिये बिजली निकाली गई है। आधी रात के समय बिजली की शक्ति बहुत कम और दिन में दोपहर को बहुत अधिक रहती है।

३—बिहार के गवर्नर ने आरे की नागरी-प्रचारिणी सभा को १०००) की सहायता दी है।

४—अमेरिका में एक ९३ साल का बुड्ढा है। उसके २० लड़के, १२० पोते और नाती तथा २७ पड़पोते हैं!

५—मदरास-सरकार ने नेलोर-म्युनिसिपल-कौंसिल को आज्ञा दी है कि हिंदी के सब अध्यापक बर्ख़ास्त कर दिए जायँ, और म्युनिसिपलिटी हिंदी-प्रचार में रुपए न ख़र्च करे। यह हिंदी-द्रोह क्यों!

६—परेल (बंबई) में एक अखिल द्राविड़ राष्ट्रीय संघ स्थापित हुआ है। उसके सदस्यों को हिंदी की शिक्षा देने का प्रबंध किया गया है। बहुत-से दक्षिणी मनुष्य वहाँ हिंदी सीखने जाते हैं। उस संघ ने हिंदी को राष्ट्र-भाषा मानकर ही यह उद्योग शुरू किया है।

७—अमेरिका में एक ऐसी मशीन निकली है, जिसमें निकल की इकन्नी डालकर अपना पाँव लगा देने से जूते पर पालिश और सफ़ाई हो जाती है।

८—जर्मनी की एक नए ढंग की पिस्तौल भारत में आई है। उसके फ़ायर से आदमी मरता नहीं, थोड़ी देर के लिये बेहोश-भर हो जाता है। कारतूस में कुछ बारूद और एक मसाला रहता है। मसाले से उत्पन्न ज़हरीला धुआँ ही बेहोश कर देता है। पुलीस ने इसे भी आर्म्स ऐक्ट के अंतर्गत माना है। विना लाइसेंस लिए कोई इसे मँगा या रख नहीं सकता। अभी कलकत्ते में ही ये आई हैं।

९—अमेरिका के व्यवसाय-विभाग का अनुमान है कि वहाँ जुलाई के अंत तक २७ लाख ५० हज़ार गाँठ से अधिक रुई न होगी। केवल अमेरिका में ही ६५ लाख गाँठें खपती हैं। संसार-भर के लिये अगली फ़सल में १३०००००० गाँठों की आवश्यकता का अनुमान किया गया है। पर इससे भी अधिक भूमि में फ़सल होने के कारण १३०००००० गाँठों से भी अधिक माल की आमदनी हो सकने की आशा की जाती है। हाँ, कीड़ों के कारण होनेवाली हानि से कमी हो जाय, तो कुछ कहा नहीं जा सकता।

१०—विलायत के वाइकाउंट चर्चिल के पुत्र विक्टर स्पेंसर की राय में समाज या रोज़गार आदि की चिंता के काम करने के उपरांत मस्तिष्क को ताज़ा करने के लिये संस्कृत के ग्रंथ पढ़ना बहुत लाभदायक है। आपने छोटी अवस्था में ही संस्कृत पढ़ ली थी।

११—डॉ० बर्नार्ड एक मनोविज्ञान के विशेषज्ञ विद्वान् हैं। आपकी राय में ज़ेहन (धारणा-शक्ति) बढ़ाने का उपयोगी उपाय बिजली का प्रवाह है। कुंद-ज़ेहन लड़कों के मस्तिष्क को बिजली की उत्तेजना देने से वे आसानी से परीक्षाओं में पास हो सकते हैं।

१२—एक अमेरिकन वैज्ञानिक ने मिट्टी के तेल को बर्फ़ की तरह जमाकर कड़ा करने की विधि निकाली है। जमे हुए तेल के टुकड़े करके उन्हें लकड़ी या कोयले की तरह जला सकते हैं।

१३—भारत में हर साल ४९२६० टन अन्न बाहर से आता है, और २६१३०० टन बाहर जाता है। इस हिसाब से भारतीयों के लिये ६४८०८२६० टन अन्न रह जाता है।

१४—बहुत-सी देशी रियासतों को इस समय भी अँगरेज़ी-सरकार को कर-स्वरूप बहुत-सा धन देना पड़ता है। कुछ का हिसाब यह है—जयपुर ४०००००), कोटा ४३४७१५), उदयपुर २०००००), जोधपुर २१३०००), बूँदी १२००००), मध्य-प्रांत और बरार के राज्य २६५४४०), शान (बर्मा) ४२८०१०), कूचबिहार ६७७१०), बनारस २१९०००), कपूरथला १३००००), मैसूर ३००००००), ट्रावनकोर ८०००००), कोचीन २०००००), काठियावाड़ की रियासतें ४६९९३५), बंबई की छोटी रियासतें ४२३७५) और बड़ोदा ३७५०००)।

१५—मि० हचिनसन एक प्रसिद्ध लेखक हैं। उनकी This freedom पुस्तक अभी निकली है। सिर्फ़ ३ महीने में उसके ४ एडीशन हो गए हैं, और १ लाख २० हज़ार कॉपियाँ बिक गई हैं। इन्हीं की एक और किताब है If winter comes. उसके डेढ़ साल में ३१ संस्करण हो गए हैं!

१६—संसार में सबसे अधिक धनी पुरुष राक फ़ेलर या कार्नेगी समझे जाते थे। पर अब मालूम हुआ है कि फ़ोर्ड-मोटर के निर्माता मि० हेनरी फ़ोर्ड सबसे बड़े

मालदार हैं। ये अमेरिकन हैं। इनका कारोबार ६ अरब रुपए का बतलाया जाता है। इनकी दैनिक आमदनी १५ लाख के लगभग है। सन् १६२२ में सब तरह के टैक्स देकर इन्हें ३३ करोड़ का लाभ हुआ है।

१७—संसार में जितनी मोटरें हैं, उनमें फ़ी सदी ८३ अमेरिका में हैं। अमेरिका की कुल आबादी १०½ करोड़ है, और १६२२ की १ जुलाई की गणना के अनुसार १ करोड़ १० लाख मोटरें हैं। इन मोटरों से सरकार को हर साल १ अरब ५ करोड़ रुपए महसूल में मिलते हैं।

१८—संसार में सबसे अधिक उत्पत्ति रोमानिया में होती है। वहाँ हर हज़ार में ४६ के हिसाब से बच्चे पैदा होते हैं। उसके बाद दक्षिण-अमेरिका की रियासतों का नंबर है। भारत में हज़ार पीछे ३१ बच्चे पैदा होते हैं। पर मृत्यु-संख्या में भारत का पहला नंबर है। हज़ार पीछे ३० मौतें यहाँ होती हैं। केवल चिली (दक्षिण-अमेरिका) इससे कुछ अधिक है। वहाँ हज़ार पीछे ३१ मौतें होती हैं। पर वहाँ जन्म-संख्या भी हज़ार पीछे ३७ है। यहाँ हज़ार पीछे केवल १ की वृद्धि होती है। किंतु इँगलैंड में हज़ार पीछे १०, अमेरिका में ८, जर्मनी में १३, आस्ट्रेलिया में १७ और रोमानिया में २३ है।

१६—संसार में सबसे घनी आबादी बेलजियम में है। वहाँ प्रति वर्ग-मील में ६५८ मनुष्य रहते हैं। उसके बाद हालैंड का नंबर है। वहाँ प्रति वर्ग-मील में ५५० मनुष्य रहते हैं। किंतु भारत में प्रति वर्ग-मील में केवल १५८ आदमी ही रहते हैं! (प्रणवीर)

२०—आगामी १ मई से नोटों का रंग-रूप बदल जायगा। नोट रक़म की कमी-बेशी के अनुसार छोटे-बड़े होंगे। ये देखने में सुंदर भी होंगे। पुराने नोट भी जारी रहेंगे। १०) के नोट ६½ इंच लंबे और ४ इंच चौड़े होंगे।

× × ×

२०. भारत में प्लेग का प्रकोप

इस वर्ष फिर प्लेग ने ज़ोर-शोर से हमला करके भारत में हाहाकार मचा दिया है। अधिक ज़ोर युक्त-प्रांत, मध्य-प्रांत और पंजाब में ही है। नीचे मार्च के अंतिम दो सप्ताहों का ब्योरा दिया जाता है। इसी से पाठक समझ लेंगे कि प्लेग ने कैसी भयंकर स्थिति उपस्थित कर दी है—

प्रांत	१८ से २४ मार्च तक मरे	२५ से ३१ मार्च तक मरे
युक्त-प्रांत	३६३६	४२०६
मध्य-प्रांत	८८७	३३६
बिहार-उड़ीसा	...	१०७६
पंजाब	६७६	६६६
बंबई	१४५	४५८
दिल्ली	...	२८२
बर्मा	२१५	१७७
मैसूर	६४	६६
बंगाल	३	६
मध्य-भारत	६	५
सीमा-प्रांत	१	२

मार्च के तीसरे सप्ताह में यू० पी० के सिर्फ़ आज़मगढ़-ज़िले में ही १७४६ मौतें हुई थीं। बिहार-उड़ीसा में भी मृत्यु-संख्या भयंकर है। मार्च के बाद ख़बर मिली है कि दिल्ली में नित्य १०० से ऊपर मरने लगे हैं—६ एप्रिल तक १५०० मर चुके थे। उधर जनवरी से मार्च तक ३१८३ मरे थे। काशी में भी प्लेग पहुँच गया है। बनारस-ज़िले में तो सैकड़ों रोज़ मरते हैं। कलकत्ते में भी इस रोग का ज़ोर-शोर है। भारत में प्लेग का पदार्पण हुए २५ वर्ष हो गए। सन् १८६८ से प्लेग शुरू हुआ था। तब से अब तक हर पाँच वर्ष में यों मौतें हुई हैं—सन् १८६८ से सन् १६०३ तक १७०७४५६, सन् १६०३ से सन् १६०८ तक ४३२५२३७, सन् १६०८ से १६१३ तक २०४२१२७, सन् १३ से सन् १८ तक २१७६४०१ और सन् १८ से सन् २३ के गत मार्च तक ५१३४४० मनुष्य भारत में मरे हैं। गत समय के अनुभव से विदित होता है कि बंबई और मैसूर की तरफ़ जुलाई में सबसे कम और ऑक्टोबर में सबसे अधिक प्लेग का आक्रमण होता है। इधर युक्त-प्रांत, बिहार और पंजाब में दिसंबर से प्लेग शुरू होता है, और मार्च-एप्रिल में उसका वेग बहुत अधिक होता है। प्लेग का आरंभ अक्सर गंदे घरों और कंगालों से ही होता है। योरपियनों पर इसका आक्रमण बहुत कम होता है। अतएव यह निश्चित है कि अच्छा और भर-पेट भोजन न मिलना और सफ़ाई के साथ रहने की क्षमता का न होना ही प्लेग आदि रोगों के

फैलने का मूल कारण है। अब स्वास्थ्य ठीक रखनेवाला नमक भी सरकार की कृपा से महँगा हो गया है, ग़रीबों के लिये सुलभ नहीं रहा। ऐसे समय वही कहावत याद आती है कि "मरे को मारें शाह मदार !"

× × ×

२१. हिंदुओं का ह्रास

हिंदुओं की संख्या दिन-दिन घटती जा रही है। पंजाब की बड़ी रियासत जंबू और कश्मीर में हिंदुओं से मुसलमान बढ़ गए हैं। हिंदुओं में २८४३ अछूत हैं; जिन्हें अपनाया न गया, तो अवश्य मुसलमानों या ईसाइयों में मिल जायँगे। दक्षिण के ट्रावनकोर-राज्य में ईसाइयों का बड़ा दौरदौरा है। इस राज्य का क्षेत्रफल ७६२५ वर्गमील है। सन् २१ में वहाँ की कुल आबादी ४००६०६२ थी। उसमें २०३२५५३ पुरुष और १९७३५०९ स्त्रियाँ थीं। सन् १८७५ से अब तक यहाँ की जन-संख्या फ़ी सदी ७३ बढ़ी है। यहाँ हिंदू २५४६६६४, मुसलमान २७०४७६, ईसाई ११७२९३४ और अन्य १२६३७ हैं। मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से मालूम होता है कि सन् १६०१ में प्रति दस हज़ार में ६८६५ हिंदू थे। दस साल के बाद १९११ में ६६५७ और १९२१ में ६३६५ ही रह गए। यहाँ हिंदुओं की संख्या जिस तेज़ी से घट रही है, ईसाइयों की संख्या उतनी ही तेज़ी से बढ़ रही है। भारत-भर में जितने ईसाई हैं, उनका चतुर्थांश इसी रियासत में है ! उन्होंने इतने ही समय में ३७५२८ हिंदुओं को ईसाई बना लिया है।

बंगाल में भी हिंदुओं की संख्या घटी और मुसलमान, क्रिश्चियन आदि की बढ़ी है। नीचे का नक़्शा देखिए—

सन्	हिंदू	मुसलमान	ईसाई	असभ्य	बौद्ध	अन्य
१८७२	१७०५१५३३	१६६१९१९१	६३४८२	५४८९३	८४८९२	२४४६७९
१८८१	१८०६७८१६	१८३६५४२४	७२२७९	३१३०८९	१५५१०६	१०८९७
१८९१	१८९७४२७९	२०१७३२०१	८२३३९	३६४८२०	१९३६४४	१६९०८
१९०१	२०१५२१०१	२३६५१८१८	१०३५९६	४४३५८५	२१६५९६	१०८४४
१९११	२०९४५३७९	२४२३६७६६	१२९७०६	७३९८८०	२५६८६६	१६६४३
१९२१	२०८७९१४८	२४४८६१२४	१८९०७५	८४९००६	२७५६४९	२०३१४

सन् १८७२ में हिंदू मुसलमानों से ४½ लाख अधिक थे। पर ५० वर्ष के बाद मुसलमान ५० लाख अधिक हो गए ! १८७२ में ईसाई ६३४८२ थे, पर १९२१ में १४९०७५ हो गए। १८७२ में बौद्ध ८४८९२ थे, पर १९२१ में २७५६४९ हो गए। १९११ से १९२१ तक अन्य लोगों की संख्या बढ़ी है; पर हिंदू १३६२३१ घट गए हैं। यह सब हिंदू-जाति की लापर्वाही और निम्न जातियों से घृणित व्यवहार का फल है। ज़रा-ज़रा-सी बात पर अगर हिंदू-जाति अपने भाइयों को बाहर ढकेलकर भीतर आने का रास्ता बंद न कर लेती, तो मुसलमान-ईसाई आदि के लाख सिर पटकने पर भी हिंदू कभी अन्य धर्मावलंबी न होते। समाज-बहिष्कृत हिंदुओं में अभी इतना जाति-प्रेम है कि ज़रा इशारा पाते ही वे साग्रह अपने धर्म और जाति में आने को तैयार हैं। उदाहरण-स्वरूप मलकानों को ही देख लीजिए। इस समय यह स्वर्ण-सुयोग उपस्थित है।

हिंदू-जाति के बड़े-बड़े लोगों को आँखें खोलकर यह दशा देखनी चाहिए। अगर अब भी ग़फ़लत में पड़े रहे, तो हिंदुओं का अस्तित्व भी किसी दिन नहीं रहेगा। भारत के भिन्न-भिन्न सभी प्रांतों में भिन्न धर्मावलंबी लोग हिंदू-जाति के अंगों को काट-काटकर हड़प कर रहे हैं। यह शुद्धि का कार्य जो उठाया गया है, वह सर्वथा उचित है। किसी दबाव में पड़कर इसे स्थगित नहीं करना चाहिए। हम अन्य जातियों को अपने में मिलाना नहीं चाहते। हमारे जिन भाइयों को छल-बल-कौशल से अलग कर लिया गया है, उन्हीं को हम अपनाकर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहते हैं। इसमें अगर कोई बुरा माने, तो हम लाचार हैं। शुद्धि का विरोध करनेवाले अन्य धर्मावलंबी भाइयों को अपने ही हृदय पर हाथ रखकर न्याय करना चाहिए कि जब पराए माल को वापस करने में उन्हें इतना अखरता है, तब जिसका सर्वस्व लुट रहा है, वह कैसे चुप-चाप उसे लुटते देख सकता है ! उसका अपनों को अपनाना तो किसी तरह अनुचित कहा ही नहीं जा सकता। हिंदू लोग फुसलाकर, ज़ोर डालकर या धोका

देकर अपने बिछड़े भाइयों को भी अपनाना नहीं चाहते। जो लोग समझाने से ख़ुशी से अपने घर वापस आना चाहें, उन्हीं का स्वागत करने को तैयार हैं। हमें आशा है, हमारे समझदार मुसलमान भाई दुराग्रह छोड़कर इस हमारे मनुष्योचित कार्य के मार्ग में बाधा नहीं डालेंगे, और पहले ही की तरह हिल-मिलकर अपनी उन्नति करने में अग्रसर होंगे। इस तरह मनोमालिन्य बढ़ाने में हिंदुओं की ही नहीं, मुसलमानों की भी भारी हानि है।

× × ×

२२. भारत में डाक और तार-विभाग की उन्नति

भारत में डाक और तार रोज़ के आहार की तरह अत्यावश्यक हो गए हैं। इनके विना एक दिन भी काम नहीं चल सकता। यही कारण है कि दिन-दिन यहाँ इस विभाग का विस्तार बढ़ता जाता है। पाठकों के मनोरंजन और जानकारी के लिये इस विभाग की कुछ ख़ास बातें, सहयोगी प्रणवीर से लेकर, यहाँ दी जाती हैं। उन्नति दिखाने के लिये केवल दो वर्षों की तुलनात्मक स्थिति नीचे दी गई है—

	सन् १८९८	सन् १९२१
डाकख़ाने (भारत-भर में)	११७४२	१९४९६
डाक-गाड़ी की लाइनों का विस्तार	१२६३५१ मील	१५७३०१ मील
डाक से भेजे गए पत्र, पैकट, अख़बार आदि	४६०८९९३४४	१३७५२६६४४६
पार्सलें भेजी गईं	४११९७८१	१४१११०३६
मनीआर्डर भेजे गए	११७९५०४१(२४१९४५४५५ रु० के)	३८५०४८१४ (९८३६४८३१७ रु० के)
बीमा-पार्सल गए	३२६६४५ (१०००६२५९० रु० के)	४५१०४७१ (१३७६६७१००२ रु० के)
सेविंग बैंक के खातों की संख्या	७३०३८७(इनमें९२८७२९७८ रु० जमा थे)	१८७७९५७ (इनमें २२८६२१७१६ रु० जमा थे)

सन् १९२१ के ३१ मार्च को (अर्थात् सरकारी साल ख़तम होने के दिन) डाक-विभाग में कुल नौकरों की संख्या १ लाख २ हज़ार ८८७ थी, और समाप्त होनेवाले वर्ष में ४५९९३१२) का घाटा रहा था।

यह तो हुआ डाक-विभाग, अब तार-विभाग को देखिए—

	सन् १८९८	सन् १९२२
भारत में जल और स्थल का मिलाकर सब तार	५०३०५ मील	९११६० मील
[उसमें लगा हुआ इकहरा तार	१२५०८८ मील	४११८९२मील]
डाकख़ानों में शामिल तार-घर	१६६४	३४३७
तार भेजे गए	५७५४४१५	१९६९७९९४

इस वर्ष इस विभाग में १८ करोड़ ५ लाख ९१ हज़ार ७ रु० की आय हुई, और ख़र्च निकालकर ४५ लाख ९१ हज़ार ४०६ रु० बचे। इस साल की अंतिम तिथि (अर्थात् ३१ मार्च १९२२) को टेलीफ़ोन-एक्सचेंज-दफ़्तर २१६ थे, और उनके ज़रिए से ११९७३ स्थानों में वार्तालाप किया जा सकता था। टेलीफ़ोन-कंपनियों के एक्सचेंज-दफ़्तर १० थे, और उनके द्वारा २३९५८ स्थानों में बात-चीत हो सकती थी।

× × ×

२३. बेतार का तार और बेतार का टेलीफ़ोन

भारत में इस समय बेतार के तार का अच्छा प्रचार है। उसके २२ ऑफ़िस खुल चुके हैं। उनके नाम ये हैं—बंबई, कलकत्ता, देहली, प्रयाग, डायमंड टापू, जटोग, कराची, लाहौर, मदरास, मेमियो, मऊ, नागपुर, पटना, पेशावर, पूना, पोर्ट ब्लेयर, क्वेटा, रंगून, सैंड हेड्स (दो स्थान), सिकंदराबाद और विक्टोरिया पाइंटाइन। मदरास और रंगून में और दो नए ऑफ़िस बन रहे हैं। उक्त ऑफ़िसों में से अधिकांश की स्थापना सरकार ने अपने ही लिये की है। सिर्फ़ डायमंड टापू, पोर्ट ब्लेयर और विक्टोरिया पाइंटाइन में ही आम लोगों के तार भेजे जाते हैं।

बेतार के टेलीफ़ोन का भी प्रचार भारत में शीघ्र होनेवाला है। भारत-सरकार ने मंज़ूरी ले ली है। उसका काम विलायत की तरह यहाँ भी जारी होगा। वहाँ ब्रॉड-

कास्टिंग (अर्थात् आम तौर से ख़बर पहुँचाने का) काम एक कंपनी को सौंपा गया है । उस कंपनी का प्रोग्राम प्रति रविवार को प्रकाशित कर दिया करेगी । उदाहरण-स्वरूप जैसे—९ बजे बाज़ार-दर, १० बजे बाहर के ज़रूरी तार-समाचार, १२ बजे किसी ख़ास और बड़े मुक़द्दमे का हाल, शाम को ५ बजे बाजा, ७ बजे बच्चों के लिये कहानी, ८ या ९ बजे थिएटर के गीत आदि । विलायत में तो अँगरेज़ी में सब ख़बरें आदि प्रचारित होती हैं ; क्योंकि अँगरेज़ी वहाँ की राष्ट्र-भाषा है । पर यहाँ कलकत्ता, बंबई आदि शहरों में ब्रॉड-कास्टिंग कई भाषाओं में करना पड़ेगा । कम-से-कम हिंदी, बँगला, उर्दू, मराठी, गुजराती आदि के बिना तो काम ही नहीं चलेगा । जब तक सर्वत्र हिंदी का काफ़ी प्रचार नहीं होता, तब तक तो जिस प्रांत के शहर में यह काम होगा, वहाँ की प्रांतिक भाषा को अवश्य ही अपनाना होगा । इसके प्रचार से बहुत-कुछ लाभ भी हो सकता है ।

× × ×

२४. प्राचीन नगर और मूर्तियाँ

बंगाल की तरफ़ सांताहार से तीन कोस उत्तर में जमालगंज-स्टेशन है । इस स्टेशन से ढाई मील दूर पहाड़पुर नाम का एक गाँव है । वहाँ ८० फ़ीट ऊँचा एक ढूह (टीला) है । बहुतों का ख़याल है कि वह किसी प्राचीन बौद्ध-नगर का खँड़हर है । इस ध्वंसावशेष की खुदाई और जाँच का काम शुरू हो गया है । श्रीयुत अक्षयकुमार मैत्रेय और डॉ० भांडारकर ने यह काम अपने हाथ में लिया है । बंगाल के ज़मींदार कुमार शरत्कुमार रायजी ने १००००) और भारत-सरकार ने २००००) इस कार्य की सहायता के लिये दिए हैं ।

इसी तरह पंजाब के हाँसी-नामक स्थान में महाराजाधिराज पृथ्वीराज के क़िले का खँड़हर है । उसमें कुछ पुरानी मूर्तियाँ मिली हैं ; जो कि विष्णु तथा अन्य देवतों की प्रतीत होती हैं । मूर्तियाँ एक मंदिर में विधिपूर्वक स्थापित कर दी गई हैं । दर्शनों के लिये दूर-दूर से लोग आते हैं । लोगों को भय है कि सरकार का पुरातत्त्व-विभाग इन मूर्तियों को लेकर किसी अजायबघर में न रख दे । इसी भय को दूर करने के लिये वहाँ के हिंदुओं ने एक बृहत् सभा करके यह प्रस्ताव पास किया है कि अगर सरकार कोई ऐसी बात करने को उद्यत हो, तो उसका विरोध किया जाय । इस संबंध में सरकार से पत्र-व्यवहार करने के लिये एक प्रबंध-समिति के संगठन की भी आवश्यकता बताई गई है । हमारी समझ में सरकार ऐसी कोई बात करने का विचार नहीं करेगी, जिसमें अकारण हिंदुओं का दिल दुखे ।

× × ×

२५. सौर-रोज़नामचा (डायरी)

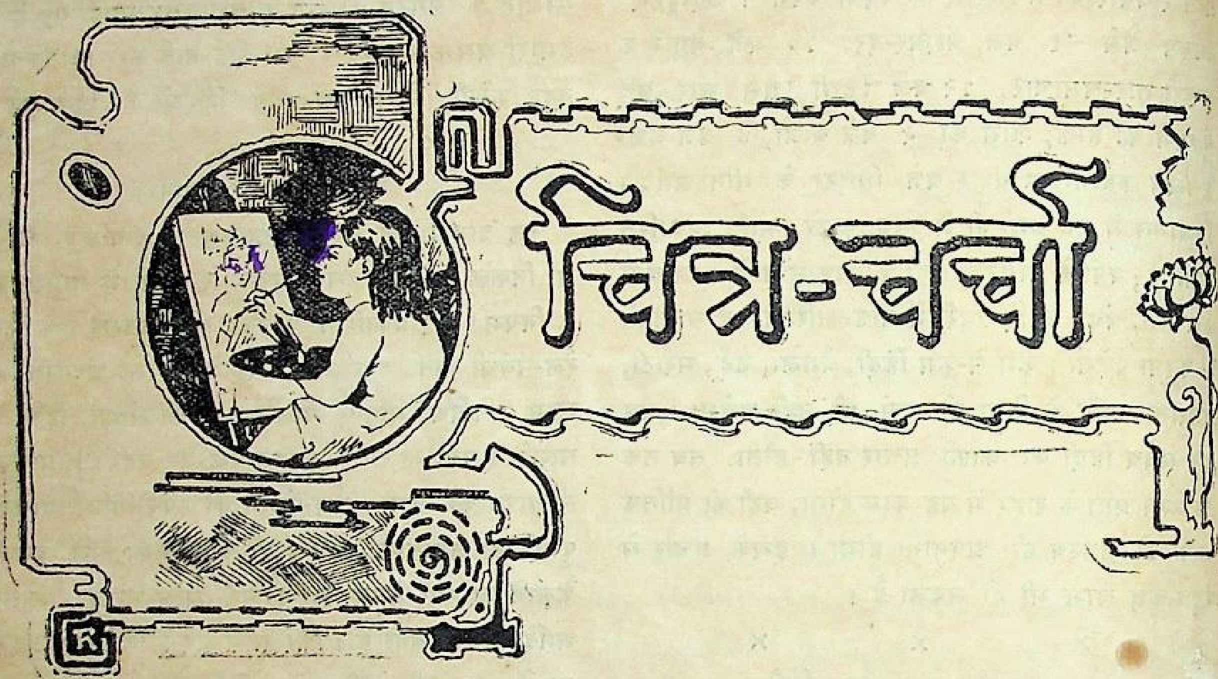
यह डायरी कई वर्ष से, ज्ञानमंडल कार्यालय, काशी से, निकल रही है । इसमें पहले २२ पृष्ठों में ज्ञानमंडल के नियम और प्रकाशित पुस्तकों का विवरण है । फिर रेल-संबंधी बातें, डाक और तार के नियम, अदालत के रसूम, विविध भाषाएँ बोलनेवालों की संख्या, हिंदी के सामयिक पत्रों का ब्योरा (यह अप-टू-डेट नहीं है), प्रसिद्ध संस्थाओं की सूची, सौर-पंचांग की उपयोगिता, प्रसिद्ध पुरुषों की जयंतियाँ, पंजाब की अशांति का हाल, ब्याज फैलाने का और वेतन का नक़्शा, साल-भर का पंचांग आदि ज्ञातव्य बातें हैं । फिर साल-भर के लिये सादे ३६५ पृष्ठ हैं । उनमें अँगरेज़ी व हिंदी-तिथियाँ दी हैं । नीचे उत्तम उक्तियाँ छपी हैं । हर महीने के अंत में आय-व्यय के जोड़ के लिये २ पृष्ठ हैं । अंत में कुछ पृष्ठ याददाश्त लिखने के लिये हैं । इस प्रकार यह डायरी सर्वांग-पूर्ण और उपयोगी बनाई गई है । हम अनुरोध करते हैं कि सबको इस डायरी की एक-एक कॉपी अवश्य अपने पास रखनी चाहिए । छापे की ग़लतियों पर अगर मंडल विशेष ध्यान रक्खे, तो अच्छा हो । मंडल की पुस्तकों में भी यह त्रुटि बहुत खटकती है । मूल्य ॥) बहुत ठीक रक्खा गया है । आशा है, इस डायरी का यथेष्ट आदर और प्रचार होगा ।

× × ×

२६. साहित्य-संसार के लिये शुभ समाचार

एक स्वर्ण-पदक और १५००) का पुरस्कार

गंगा-पुस्तकमाला के संचालक हिंदी के उत्कृष्ट साहित्य की वृद्धि के पुनीत कार्य को अधिक अग्रसर करने के विचार से अपनी माला में अब प्रति वर्ष ५० पुस्तकें निकालना चाहते हैं, और उनमें जो पुस्तक सर्वश्रेष्ठ समझी जायगी उस पर एक स्वर्ण-पदक और १५००) नक़द का पुरस्कार देने की घोषणा करते हैं । इस संबंध का विशेष विवरण और नियम आगामी संख्या में दिए जायँगे ।



१. रंगीन-चित्र

पहला रंगीन चित्र "उदयकुमारी" माधुरी के सुनिपुण चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा के क़लम की करामात है। चित्रांकण दर्शनीय है। सूर्योदय के साथ ही उदयकुमारी के भाग्य का भी आज उदय हुआ है। प्यारे पति की प्रेम-पत्रिका पाकर वह प्रेमोन्मत्त हो उठी है, और हर्ष से फूली नहीं समाती। उसकी प्रसन्नता का आज पारावार नहीं। पतिदेव के सादर स्वागतार्थ अपने को सुसज्जित करने में वह व्यस्त है। इस सुंदर चित्र का यही भाव है। खेद है, ब्लाक छोटा बन गया, अन्यथा यह चित्र सुंदरतर होता।

दूसरे रंगीन चित्र में "सूर्यास्त" का दृश्य दिखलाया गया है। इसका निर्माण जयपुर के सुप्रसिद्ध राजपूताना-आर्ट-स्टूडियो ने किया है। उठ रहे बादल, आकाश के संध्या-कालीन विविध रंग, उनका पानी में पड़नेवाला प्रति-बिंब, चट्टान आदि खूब खूबसूरती के साथ अंकित किए गए हैं। चित्र-सौंदर्य बरबस सहृदयों के हृदय को अपनी ओर खींच लेता है।

तीसरे रंगीन चित्र "वाचन" के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। कारण, यह उन्हीं श्रीयुत काशिनाथ गणेश खातू की रचना है, जो माधुरी में प्रकाशित अपने "प्यारा तोता", "उत्कंठिता", "रात्रि-पलायन" आदि ३-४ चित्रों से ही हिंदी-संसार में खूब मशहूर हो चुके हैं। इस चित्र में कोई स्त्री पुस्तक पढ़ने में तन्मय दिखलाई गई है। स्त्री का रूप-सौंदर्य और तन्मयता, उसका मुँडेर पर बैठने का स्वाभाविक ढंग, चित्रांकण आदि देखने ही योग्य हैं।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला व्यंग्य-चित्र उन रँगे सियारों पर है, जो अंदर तो विदेशी ढंग के बिलकुल विदेशी वस्त्र—कोट-पतलून, टाई-कालर – डाँटते हैं, लेकिन उसके ऊपर देश-भक्ति दिखलाने के लिये—लीडर बनने के लिये खादी की धोती पहनते हैं, खद्दर की चद्दर ओढ़ते हैं और गांधी-कैप लगाते हैं। यही नहीं, औरों को स्वदेशी का उपदेश भी करते हैं।

दूसरा व्यंग्य-चित्र "थैंक्स" नई रोशनी के उन जेंटिल-मैन भारतवासियों पर है, जो बड़े-बड़े उपकारों के बदले केवल थैंक्स (धन्यवाद) देना जानते हैं। कैसा व्यंग्य है!

दोनों ही चित्र चतुर चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा ने खूब ही बनाए हैं।

Registered No. A. 1127.

Printed and Published by K. D. Seth, at the Nawal Kishore Press, Lucknow.

वर्ष १ ; खंड २]

ज्येष्ठ, २९९ तुलसी-संवत्

[संख्या ५ ; पूर्ण संख्या ११



संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव
श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥)

छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

लेख-सूची

चित्र-सूची

(क) रंगीन

(ख) व्यंग्य-चित्र

(ग) सादे



[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र, मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रस-मयी अनन्य !

वर्ष १ खंड २ | ज्येष्ठ-शुक्ल ७, २९९ तुलसी-संवत् (१९८० वि०)— २१ जून, १९२३ ई० | संख्या ५ पूर्ण संख्या ११

शूल के बदले फूल

निर्दय होकर छुड़ा दिया तुझसे तेरा गृह-द्वार,
बाँधा और कसा फिर तुझको, किए अनेक प्रहार ।
फिर मुँह काला किया, बिगाड़ा तेरा शुचि शृंगार;
हाय ! अंत में तुझे दबाया, कैसा अत्याचार !
पर इतने दुख-दल सहकर भी किया न हाहाकार;
प्रत्युत अपने रिपु का तूने किया महा उपकार ।
उसे पाठ करने को सुंदर पुस्तक दी उपहार ;
हे टाइप ! तू धन्य, हृदय तेरा अत्यंत उदार ।

गोविंदवल्लभ पंत

काव्य में प्राकृतिक दृश्य

पूर्वार्द्ध



श्य'-शब्द के अंतर्गत, केवल नेत्रों के विषय का ही नहीं, अन्य ज्ञानेंद्रियों के विषयों का भी (जैसे शब्द, गंध, रस) ग्रहण समझना चाहिए । "महकती हुई मंजरियों से लदी और वायु के झकोरों से हिलती हुई आम की डाली पर काली कोयल बैठी मधुर कूक सुना रही है", इस वाक्य में यद्यपि रूप, शब्द और गंध, तीनों का विवरण है, पर इसे एक 'दृश्य' ही कहेंगे । बात यह है कि कल्पना द्वारा अन्य विषयों की अपेक्षा नेत्रों के विषयों का ही सबसे अधिक आनयन होता है, और सब विषय गौण-

रूप से आते हैं। बाह्य करणों के सब विषय अंतःकरण में 'चित्र'-रूप से प्रतिबिंबित हो सकते हैं। इसी प्रतिबिंब को हम 'दृश्य' कहते हैं।

यह तो स्पष्ट है कि 'प्रतिबिंब' या 'दृश्य' का ग्रहण 'अभिधा' द्वारा ही होता है। पर 'अभिधा' द्वारा ग्रहण एक ही प्रकार का नहीं होता। हमारे यहाँ आचार्यों ने संकेत-ग्रह के जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा, ये चार विषय तो बताए, पर स्वयं संकेत-ग्रह के दो रूपों का विचार नहीं किया। अभिधा द्वारा ग्रहण दो प्रकार का होता है—बिंब-ग्रहण और अर्थ-ग्रहण। किसी ने कहा 'कमल'। अब इस 'कमल'-पद का ग्रहण कोई इस प्रकार भी कर सकता है कि ललाई लिए हुए सफ़ेद पँखड़ियों और नाल आदि के सहित एक फूल का चित्र अंतःकरण में थोड़ी देर के लिये उपस्थित हो जाय; और इस प्रकार भी कर सकता है कि कोई चित्र उपस्थित न हो, केवल पद का अर्थ-मात्र समझकर काम चलाया जाय। व्यवहार में तथा शास्त्रों में इसी दूसरे प्रकार के संकेत-ग्रह से काम चलता है। वहाँ एक-एक पद के वाच्यार्थ के रूप पर अड़ते चलने की फ़ुरसत नहीं रहती। पर काव्य के दृश्य-चित्रण में संकेत-ग्रह पहले प्रकार का होता है। उसमें कवि का लक्ष्य 'बिंब-ग्रहण' कराने का रहता है, केवल अर्थ-ग्रहण कराने का नहीं। वस्तुओं के रूप और आस-पास की परिस्थिति का ब्योरा जितना ही स्पष्ट या स्फुट होगा, उतना ही पूर्ण बिंब-ग्रहण होगा, और उतना ही अच्छा दृश्य-चित्रण कहा जायगा।

'बिंब-ग्रहण' कराने के लिये चित्रण काव्य का प्रथम विधान है; जो 'विभाव' में दिखाई पड़ता है। काव्य में 'विभाव' मुख्य समझना चाहिए। भावों के प्रकृत आधार या विषय का कल्पना द्वारा पूर्ण और यथातथ्य प्रत्यक्षीकरण कवि का पहला और सबसे आवश्यक काम है। यों तो जिस प्रकार विभाव, अनुभाव आदि में हम कल्पना का प्रयोग पाते हैं, उसी प्रकार उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों में भी; पर जब कि रस ही काव्य में प्रधान वस्तु है, तब उसके संयोजकों में कल्पना का जो प्रयोग होता है, वही आवश्यक और प्रधान ठहरता है। रस का आधार खड़ा करनेवाला जो विभावन व्यापार है, वही कल्पना का सबसे प्रधान कार्य-क्षेत्र है। किंतु वहाँ उसे यों ही उड़ान भरना नहीं होता; उसे अनुभूति या रागात्मिका वृत्ति के आदेश पर चलना पड़ता है। उसे ऐसे स्वरूप खड़े करने पड़ते हैं, जिनके द्वारा रति, हास, शोक, क्रोध इत्यादि का स्वयं अनुभव करने के कारण कवि जानता है कि श्रोता या पाठक भी उनका वैसा ही अनुभव करेंगे। अपनी अनुभूति की व्यापकता के कारण मनुष्य-मात्र की अनुभूति तथा उसके विषयों को अपने हृदय में रखनेवाले ही ऐसे स्वरूपों को अपने मन में ला सकते हैं, और कवि कहे जाने के अधिकारी बन सकते हैं।

विभाव के अंतर्गत दो पक्ष होते हैं—

(१) आलंबन (भाव का विषय)

(२) आश्रय (भाव का अनुभव करनेवाला)

इनमें से प्रथम तो मनुष्य से लेकर कीट, पतंग, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि सृष्टि का कोई भी पदार्थ हो सकता है। किंतु दूसरा हृदय-संपन्न मनुष्य ही होता है। प्राचीन कवि-गण इन दोनों का स्वरूप प्रतिष्ठित करने में—इनका बिंब-ग्रहण कराने में—कल्पना का पूरा-पूरा उपयोग करते थे। वाल्मीकीय रामायण को मैं आर्य-काव्य का आदर्श मानता हूँ। उसमें राम के रूप, गुण, शील, स्वभाव तथा रावण की विरूपता, अनीति, अत्याचार आदि का पूरा चित्रण तो मिलता ही है, साथ ही अयोध्या, चित्रकूट, दंडकारण्य आदि का चित्र भी पूरे ब्योरे के साथ सामने आता है। इन स्थलों के वर्णन में हमें हाट, बाट, वन, पर्वत, नदी, निर्झर, ग्राम, जनपद इत्यादि न-जाने कितने पदार्थों का प्रत्यक्षीकरण मिलता है।

साहित्य के आचार्यों की दृष्टि में वन, उपवन, ऋतु आदि शृंगार के 'उद्दीपन'-मात्र हैं; वे केवल नायक या नायिका को हँसाने या रुलाने के लिये हैं। जब यही बात है, तब फिर इनका संश्लिष्ट चित्रण करके श्रोता को 'बिंब-ग्रहण' कराने से क्या प्रयोजन? उनके नाम गिनाकर अर्थ-ग्रहण करा दिया, बस, हो गया। पर सोचने की बात है कि क्या प्राचीन कवियों ने इनका वर्णन इसी रूप में किया है? क्या विश्व-हृदय वाल्मीकि ने वनों और नदियों आदि का वर्णन इसी उद्देश्य से किया है? क्या महाकवि कालिदास ने कुमारसंभव के आरंभ में ही हिमालय का जो विशद वर्णन किया है, वह केवल शृंगार के उद्दीपन की

दृष्टि से ? कभी नहीं । ये वर्णन पहले तो प्रसंग-प्राप्त हैं, अर्थात् आलंबन की परिस्थिति को अंकित करनेवाले हैं। इनके बिना आश्रय और आलंबन शून्य में खड़े मालूम होते हैं। इस पर यों ग़ौर कीजिए। राम और लक्ष्मण के दो चित्र आपके सामने हैं। एक में केवल दो मूर्तियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, और दूसरे में पयस्विनी के द्रुम-लताच्छादित तट पर, पर्ण-कुटी के सामने, दोनों भाई बैठे हैं। इनमें से दूसरा चित्र परिस्थिति को लिए हुए है, इससे उसमें हमारे भावों के लिये अधिक विस्तृत आलंबन है। हमारी परिस्थिति हमारे जीवन का आलंबन है, अतः उपचार से वह हमारे भावों का भी आलंबन है। उसी परिस्थिति में—उसी संसार में—उन्हीं दृश्यों के बीच, जिनमें हम रहते हैं, राम-लक्ष्मण को पाकर हम उनके साथ तादात्म्य-संबंध का अधिक अनुभव करते हैं, जिससे 'साधारणीकरण' पूरा-पूरा होता है।

पर प्राकृतिक वर्णन केवल अंग-रूप से ही हमारे भावों के आलंबन नहीं हैं, स्वतंत्र-रूप में भी हैं। जिन प्राकृतिक दृश्यों के बीच हमारे आदिम पूर्वज रहे, और अब भी मनुष्य-जाति का अधिकांश (जो नगरों में नहीं आ गया है) अपनी आयु व्यतीत करता है, उनके प्रति प्रेम-भाव, पूर्व-साहचर्य के प्रभाव से, संस्कार या वासना के रूप में, हमारे अंतःकरण में निहित है। उनके दर्शन या काव्य आदि में प्रदर्शन से हमारी भीतरी प्रकृति का जो अनुरंजन होता है, वह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इस अनुरंजन को केवल किसी दूसरे भाव का आश्रित या उत्तेजक कहना अपनी जड़ता का ढिंढोरा पीटना है। जो प्राकृतिक दृश्यों को केवल कामोद्दीपन की सामग्री समझते हैं, उनकी रुचि भ्रष्ट हो गई है, और संस्कार-सापेक्ष है। मैंने पहाड़ों पर या जंगलों में घूमते समय बहुत-से ऐसे साधु देखे हैं, जो लहराते हुए हरे-भरे जंगलों, स्वच्छ शिलाओं पर चाँदी-से ढलते हुए झरनों, चौकड़ी भरते हुए हिरनों और जल को झुककर चूमती हुई डालियों पर कल रव कर रहे विहंगों को देख मुग्ध हो गए हैं। काले मेघ जब अपनी छाया डालकर चित्रकूट के पर्वतों को नील-वर्ण कर देते हैं, तब नाचते हुए नीलकंठों (मोरों) को देखकर सभ्यताभिमान के कारण शरीर चाहे न नाचे, पर मन अवश्य नाचने लगता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसे दृश्यों को देखकर हर्ष होता है। हर्ष एक संचारी भाव है। इसलिये यह मानना पड़ेगा कि उसके मूल में रति-भाव वर्तमान है, और वह रति-भाव उन दृश्यों के प्रति है।

रीति-ग्रंथों की बदौलत रस-दृष्टि परिमित हो जाने से उसके संयोजक विषयों में से कुछ तो 'उद्दीपन' में डाल दिए गए और कुछ 'भाव-क्षेत्र' से ही निकाले जाकर 'अलंकार' के हाते में हाँक दिए गए। इसी व्यवस्था के अनुसार वस्तुओं के स्वाभाविक रूप और क्रिया का वर्णन 'स्वभावोक्ति' अलंकार हो गया। जैसे लड़कों का खेलना, चीते का पूँछ पटककर झपटना, हाथी का गंड-स्थल रगड़ना इत्यादि। पर मैं इन्हें प्रस्तुत विषय मानता हूँ; जिन पर अप्रस्तुत विषयों का उत्प्रेक्षा आदि द्वारा आरोप हो सकता है। वात्सल्य रति-भाव के प्रदर्शन में यदि बच्चे की क्रीड़ा का वर्णन हो, तो क्या वह अलंकार-मात्र होगा ? प्रस्तुत वर्ण्य विषय अलंकार नहीं कहा जा सकता। वह स्वयं रस के संयोजकों में से है; उसकी शोभा-मात्र बढ़ानेवाला नहीं। मैं अलंकार को केवल वर्णन-प्रणाली-मात्र मानता हूँ; जिसके अंतर्गत करके किसी-किसी वस्तु का वर्णन किया जा सकता है। वस्तु-निर्देश अलंकार का काम नहीं। इस दृष्टि से कई अलंकार ऐसे हैं, जिन्हें अलंकार न कहना चाहिए—जैसे स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति से भिन्न अत्युक्ति, उदात्त इत्यादि। सारांश यह कि 'स्वभावोक्ति' अलंकार नहीं है, और इसी से उसका ठीक-ठीक लक्षण भी नहीं स्थिर हो सका है। कुछ लोग 'अलंकार' का बहुत व्यापक अर्थ लेने लगे हैं। इन सब बातों का विस्तृत विवेचन फिर कभी किया जायगा।

मनुष्य, शेष प्रकृति के साथ अपने रागात्मक संबंध का विच्छेद करने से, अपने आनंद की व्यापकता को नष्ट करता है। बुद्धि की व्याप्ति के लिये मनुष्य को जिस प्रकार विस्तृत और अनेक-रूपात्मक क्षेत्र मिला है, उसी प्रकार "भावों" (मन के वेगों) की व्याप्ति के लिये भी। अब यदि आलस्य या प्रमाद के कारण मनुष्य इस द्वितीय क्षेत्र को संकुचित कर लेगा, तो उसका आनंद पशुओं के आनंद से विशाल किसी प्रकार नहीं कहा जा सकेगा। अतः यह सिद्ध हुआ कि वन, पर्वत, नदी, निर्झर, पशु, पक्षी, खेत-बारी इत्यादि के प्रति हमारा प्रेम स्वाभाविक है, या कम-से-कम वासना के रूप में अंतःकरण में निहित है।

पर प्रेम की प्रतिष्ठा दो प्रकार से होती है—(१) सुंदर रूप के अनुभव द्वारा, और (२) साहचर्य द्वारा। सुंदर रूप के आधार पर जो प्रेम-भाव या लोभ (मेरे मानस-कोश में दोनों का अर्थ प्रायः एक ही निकलता है) प्रतिष्ठित होता है, उसका हेतु संलक्ष्य होता है; और, जो केवल साहचर्य के प्रभाव से अंकुरित और पल्लवित होता है, वह एक प्रकार से हेतु-ज्ञान-शून्य होता है। यदि हम किसी किसान को उसकी झोपड़ी से हटाकर, किसी दूर देश में ले जाकर, राज-भवन में टिका दें, तो वह उस झोपड़ी का, उसके छप्पर पर चढ़ी हुई कुम्हड़े की बेल का, सामने के नीम के पेड़ का, द्वार पर बँधे हुए चौपायों का ध्यान करके आँसू बहावेगा। वह यह कभी नहीं समझता कि मेरा झोपड़ा इस राज-भवन से सुंदर था; परंतु फिर भी झोपड़े का प्रेम उसके हृदय में बना हुआ है। यह प्रेम रूप-सौंदर्य-गत नहीं है; सच्चा, स्वाभाविक और हेतु-ज्ञान-शून्य प्रेम है। इस प्रेम को रूप-सौंदर्य-गत प्रेम नहीं पहुँच सकता।

इससे यह स्पष्ट है कि अपने सुख-विलास के अथवा शोभा और सजावट की अपनी रचनाओं के आदर्श को लेकर जो प्रकृति के क्षेत्र का अवलोकन करते हैं, और अपना प्रेमानंद केवल इन शब्दों में प्रकट करते हैं कि "अहा-हा! कैसे लाल-पीले और सुंदर फूल खिले हैं, पेड़ किस प्रकार यहाँ से वहाँ तक एक पंक्ति में चले गए हैं, लताओं का कैसा सुंदर मंडप-सा बन गया है, कैसी शीतल, मंद, सुगंध हवा चल रही है", उनका प्रेम कोई प्रेम नहीं—उसे अधूरा समझना चाहिए। वे प्रकृति के सच्चे उपासक नहीं। वे तमाशबीन हैं, और केवल अनोखापन, सजावट या चमत्कार देखने निकलते हैं। उनका हृदय मनुष्य-प्रवर्तित व्यापारों में पड़कर इतना कुंठित हो गया है कि उसमें, उन सामान्य प्राकृतिक परिस्थितियों में, जिनमें अत्यंत आदिम काल में मनुष्य-जाति ने अपना जीवन व्यतीत किया था, तथा उन प्राचीन मानव-व्यापारों में, जिनमें वन्य दशा से निकलकर वह अपने निर्वाह और रक्षा के लिये लगी, लीन होने की वृत्ति दब गई। अथवा यों कहिए कि उनमें करोड़ों पीढ़ियों को पार करके आनेवाली अंतस्संज्ञावर्तिनी वह अव्यक्त स्मृति नहीं रह गई, जिसे वासना या संस्कार कहते हैं। वे तड़क-भड़क, सजावट, रंगों की चमक-दमक, कलाओं की बारीकी पर भले ही मुग्ध हो सकते हों, पर सच्चे सहृदय नहीं कहे जा सकते।

कँकरीले टीलों, ऊसर पटपरों, पहाड़ के ऊबड़-खाबड़ किनारों या बबूल-करौंदे के झाड़ों में क्या आकर्षित करनेवाली कोई बात नहीं होती? जो फ़ारस की चाल के बग़ीचों के गोल चौखूँटे कटाव, सीधी-सीधी रविशें, मेहँदी के बने भद्दे हाथी-घोड़े, काट-छाँटकर सुडौल किए हुए सरो के पेड़ों की क़तारें, एक पंक्ति में फूले हुए गुलाब आदि देखकर ही वाह-वाह करना जानते हैं, उनका साथ सच्चे भावुक सहृदयों को वैसा ही दुःखदायी होगा, जैसा सज्जनों को खलों का। हमारे प्राचीन पूर्वज भी उपवन और वाटिकाएँ लगाते थे। पर उनका आदर्श कुछ और था। उनका आदर्श वही था, जो अब तक चीन और योरप में थोड़ा-बहुत बना हुआ है। आजकल के पार्कों में हम भारतीय आदर्श की छाया पाते हैं। हमारे यहाँ के उपवन वन के प्रतिरूप ही होते थे। जो वनों में जाकर प्रकृति का शुद्ध स्वरूप और उसकी स्वच्छंद क्रीड़ा नहीं देख सकते थे, वे उपवनों में ही जाकर उसका थोड़ा-बहुत अनुभव कर लेते थे। वे सर्वत्र अपने को ही नहीं देखना चाहते थे। पेड़ों को मनुष्य की क़वायद करते देखकर ही जो मनुष्य प्रसन्न होते हैं, वे अपना ही रूप सर्वत्र देखना चाहते हैं; अहंकार-वश अपने से बाहर प्रकृति की ओर देखने की इच्छा नहीं करते।

काव्य का जो चरम लक्ष्य सर्वभूत को आत्मभूत कराके अनुभव कराना है (दर्शन के समान केवल ज्ञान कराना नहीं), उसके साधन में भी अहंकार का त्याग आवश्यक है। जब तक इस अहंकार से पीछा न छूटेगा, तब तक प्रकृति के सब रूप मनुष्य की अनुभूति के भीतर नहीं आ सकते। खेद है कि फ़ारस की उस महफ़िली शायरी का कुसंस्कार भारतीयों के हृदय में भी इधर बहुत दिनों से जम रहा है, जिसमें चमन, गुल, बुलबुल, लाला, नरगिस आदि का ही कुछ वर्णन विलास की सामग्री के रूप में होता है—कोह, बयाबान आदि का उल्लेख किसी भारी विपत्ति या दुर्दिन के ही प्रसंग में मिलता है। फ़ारस में क्या और पेड़-पौदे नहीं होते? पर उनसे वहाँ के शायरों को कोई मतलब नहीं। अल-बुर्ज़-जैसे सुंदर पहाड़ का विशद वर्णन किस फ़ारसी-

काव्य में है ? पर इधर वाल्मीकि को देखिए । उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में केवल मंजरियों से छाए हुए रसालों, सुरभित सुमनों से लदी हुई मालती-लताओं, मकरंद-पराग-पूरित सरोजों का ही वर्णन नहीं किया, इंगुदी, अंकोट, तेंदू, बबूल और बहेड़े आदि जंगली पेड़ों का भी पूर्ण तल्लीनता के साथ वर्णन किया है। इसी प्रकार योरप के कवियों ने भी अपने गाँव के पास से बहते हुए नाले के किनारे उगनेवाली झाड़ी या घास तक का नाम आँखों में आँसू भरकर लिया है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य को उसके व्यापार-गर्त से बाहर प्रकृति के विशाल और विस्तृत क्षेत्र में ले जाने की शक्ति फ़ारस की परिमित काव्य-पद्धति में नहीं है—भारत और योरप की पद्धति में है।

स्वाभाविक सहृदयता केवल अद्‌भुत, अनूठी, चमत्कार-पूर्ण, विशद या असाधारण वस्तुओं पर मुग्ध होने में ही नहीं है । जितने आदमी भेंड़ाघाट, गुलमर्ग आदि देखने जाते हैं, वे सब प्रकृति के सच्चे आराधक नहीं होते ; अधिकांश केवल तमाशबीन होते हैं। केवल असाधारणत्व के साक्षात्कार की यह रुचि स्थूल और भद्दी है, और हृदय के गहरे तलों से संबंध नहीं रखती। जिस रुचि से प्रेरित होकर लोग आतशबाज़ी, जलूस वगैरह देखने दौड़ते हैं, यह वही रुचि है । काव्य में इसी असाधारणत्व और चमत्कार की ओछी रुचि के कारण बहुत-से लोग अतिशयोक्ति-पूर्ण अशक्त वाक्यों में ही काव्यत्व समझने लगे । कोई विहारी के विरह-वर्णन पर सिर हिलाता है, कोई 'यार' की कमर ग़ायब होने पर वाह-वाह करता है। कालिदास ने अत्यंत प्राकृतिक ढंग से रथ को धूल के आगे निकाला, तो भूषण ने घोड़े को छोड़े हुए तीर से एक तीर आगे कर दिया। पर मुबालग़ा जहाँ हद से ज़्यादा बढ़ा कि मज़ाक़ हुआ । खेद है कि उर्दू की शायरी ऐसे ही मज़ाक़ की सूरत में आ गई।

'अनूठी बात' सुनने की उत्कंठा रखनेवाले जब काव्य-रसिक समझे जाने लगे, तब भिन्न-भिन्न रसों के प्रवाह को दबाकर अद्‌भुत रस सबके ऊपर उछलने लगा, और नारायण पंडित-जैसे लोगों को सर्वत्र वही दिखाई देने लगा। उन्होंने कह ही डाला कि—

रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते ।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्‌भुतो रसः ॥

भावों का उत्कर्ष दिखाने के लिये काव्य में कहीं-कहीं असाधारणत्व अवश्य अपेक्षित होता है, पर उतनी ही मात्रा में, जितनी से प्रकृत भाव दबने न पावे । इस उत्कर्ष के लिये कहीं-कहीं असाधारणत्व पहले आलंबन में अधिष्ठित होकर भाव के उत्कर्ष का कारण-स्वरूप होता है। पर यह कहा जा चुका है कि भावों के उत्कर्ष के लिये भी सर्वत्र आलंबन का असाधारणत्व अपेक्षित नहीं होता। साधारण-से-साधारण वस्तु हमारे गंभीर-से-गंभीर भावों का आलंबन हो सकती है । साहचर्य-जन्य प्रेम कितना बलवान् होता है, उसमें वृत्तियों को तल्लीन करने की कितनी शक्ति होती है, यह सब लोग जानते हैं ; पर वह असाधारणत्व पर अवलंबित नहीं होता। जिनका हमारा लड़कपन में साथ रहा है, जिन पेड़ों के नीचे, जिन टीलों पर, जिन नदी-नालों के किनारे, हम अपने साथियों को लेकर बैठा करते थे, उनके प्रति हमारा प्रेम जीवन-भर स्थायी होकर बना रहता है। अतः चमत्कारवादियों की यह समझ ठीक नहीं कि जहाँ असाधारणत्व होता है, वहीं रस का परिपाक होता है, अन्यत्र नहीं।

प्रसंग-प्राप्त साधारण, असाधारण सभी वस्तुओं का वर्णन कवि का कर्तव्य है। काव्य-क्षेत्र अजायबख़ाना या नुमाइशगाह नहीं है। जो सच्चा कवि है, उसके द्वारा अंकित साधारण वस्तुएँ भी मन को तल्लीन करनेवाली होती हैं। साधारण के बीच में यथास्थान असाधारण की योजना करना सहृदय और कला-कुशल कवि का ही काम है। साधारण, असाधारण, अनेक वस्तुओं के मेल से एक विस्तृत और पूर्ण चित्र संघटित करनेवाले ही कवि कहे जाने के अधिकारी हैं । साधारण के बीच में ही असाधारण की प्रकृत अभिव्यक्ति हो सकती है। साधारण से ही असाधारण की सत्ता है। अतः केवल वस्तु के असाधारणत्व या व्यंजन-प्रणाली के असाधारणत्व में ही काव्य समझ बैठना अच्छी समझदारी नहीं।

सारांश यह कि केवल असाधारणत्व-दर्शन की रुचि सच्ची सहृदयता की पहचान नहीं है। शोभा और सौंदर्य की भावना के साथ-साथ, जिनमें मनुष्य-जाति के उस समय के पुराने सहचरों की वंश-परंपरागत स्मृति वासना* के रूप में बनी हुई है, जब वह प्रकृति के खुले क्षेत्र में विचरती थी, वे ही पूरे सहृदय कहे जा सकते हैं। पहले

कह आए हैं कि वन्य और ग्रामीण, दोनों प्रकार के जीवन प्राचीन हैं, दोनों पेड़-पौदों, पशु-पक्षियों, नदी-नालों और पर्वत-मैदानों के बीच व्यतीत होते हैं, अतः प्रकृति के अधिक रूपों के साथ संबंध रखते हैं। हम पेड़-पौदों और पशु-पक्षियों से संबंध तोड़कर नगरों में आ बसे; पर उनके बिना रहा नहीं जाता। हम उन्हें हर वक़ पास न रखकर एक घेरे में बंद करते हैं, और कभी-कभी मन बहलाने को उनके पास चले जाते हैं। हमारा साथ उनसे भी छोड़ते नहीं बनता। कबूतर हमारे घर के छज्जों में सुख से सोते हैं—

तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।

गौरे हमारे घर के भीतर आ बैठते हैं, बिल्ली अपना हिस्सा या तो म्याऊँ-म्याऊँ करके माँगती है या चोरी से ले जाती है, कुत्ते घर की रखवाली करते हैं और वासुदेव-जी कभी-कभी दीवार फोड़कर निकल पड़ते हैं। बरसात के दिनों में जब सुरख़ी-चूने की कड़ाई की पर्वा न करके हरी-हरी घास पुरानी छत पर निकल पड़ती है, तब मुझे उसके प्रेम का अनुभव होता है। वह मानों हमें ढूँढ़ती हुई आती है, और कहती है कि तुम मुझसे क्यों दूर-दूर भागे फिरते हो?

वनों, पर्वतों, नदी-नालों, कछारों, पटपरों, खेतों, खेतों की नालियों, घास के बीच से गई हुई दुर्रियों, हल-बैलों, झोपड़ों और श्रम में लगे हुए किसानों इत्यादि में जो आकर्षण हमारे लिये है, वह हमारे अंतःकरण में निहित वासना के कारण है, असाधारण चमत्कार या अपूर्व शोभा के कारण नहीं। जो केवल पावस की हरियाली और वसंत के पुष्प-हास के समय ही वनों और खेतों को देखकर प्रसन्न हो सकते हैं, जिन्हें केवल मंजरी-मंडित रसालों, प्रफुल्ल कदंबों और सघन मालती-कुंजों का ही दर्शन प्रिय लगता है, ग्रीष्म के खुले हुए पटपर खेत और मैदान शिशिर की पत्र-विहीन नंगी वृक्षावली और झाड़-बबूल आदि जिनके हृदय को कुछ भी स्पर्श नहीं करते, उनकी प्रवृत्ति राजसी समझनी चाहिए। वे केवल अपने विलास या सुख की सामग्री प्रकृति में ढूँढ़ते हैं। उनमें उस 'सत्त्व' की कमी है, जो सत्ता-मात्र के साथ एकीकरण की अनुभूति द्वारा लीन करके आत्मसत्ता के विभुत्व का आभास देती है। संपूर्ण सत्ता, क्या भौतिक क्या आध्यात्मिक, एक ही परम सत्ता या परम भाव के अंतर्गत है। अतः ज्ञान या तर्क-बुद्धि द्वारा हम जिस अद्वैत भाव तक पहुँचते हैं, उसी भाव तक इस 'सत्त्व' गुण के बल पर हमारी रागात्मिका वृत्ति भी पहुँचती है। इस प्रकार अंततः दोनों वृत्तियों का समन्वय हो जाता है। यदि हम ज्ञान द्वारा सर्वभूत को आत्मवत् जान सकते हैं, तो रागात्मिका वृत्ति द्वारा उसका अनुभव भी कर सकते हैं। तर्क-बुद्धि से हारकर परम ज्ञानी भी इस 'स्वानुभूति' का आश्रय लेते हैं। अतः परमार्थ दृष्टि से दर्शन और काव्य, दोनों, अंतःकरण की भिन्न-भिन्न वृत्तियों का आश्रय लेकर, एक ही लक्ष्य की ओर ले जानेवाले हैं। इस व्यापक दृष्टि से काव्य का विवेचन करने से लक्षण-ग्रंथों में निर्दिष्ट संकीर्णता कहीं-कहीं बहुत खटकती है। वन, उपवन, चाँदनी इत्यादि को दांपत्य रति के उद्दीपन-मात्र मानने से संतोष नहीं होता।

पहले कहा जा चुका है कि रस के संयोजक जो विभाव आदि हैं, वे ही कल्पना के प्रधान क्षेत्र हैं। कवि की कल्पना का पूर्ण विकास उन्हीं में देखना चाहिए। पर वहाँ कल्पना को कवि की अनुभूति के आदेश पर चलना पड़ता है, उसकी श्रेष्ठता कवि की सहृदयता से संबंध रखती है, अतः उस कृत्रिमता के काल में, जिसमें कविता केवल अभ्यास-गम्य समझी जाने लगी, कल्पना का प्रयोग काव्य का प्रकृत स्वरूप संघटित करने में कम होकर अलंकार आदि बाह्य आडंबर फैलाने में अधिक होने लगा। पर विभावन द्वारा जब वस्तु-प्रतिष्ठा पूर्ण-रूप से हो ले, तब आगे और कुछ होना चाहिए। विभाव वस्तु-चित्र-मय होता है; अतः जहाँ वस्तु श्रोता या पाठक के भावों का आलंबन होती है, वहाँ अकेला उसका पूर्ण चित्रण ही काव्य कहलाने में समर्थ हो सकता है। पिछले कवियों में इस वस्तु-चित्र का विस्तार क्रमशः कम होता गया। प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि सच्चे कवियों की कल्पना ऐसे रूपों की योजना करने में, ऐसी वस्तुएँ इकट्ठी करने में, प्रयुक्त होती थी, जिनसे किसी स्थल का चित्र पूरा होता था, और जो श्रोता के भाव का स्वयं आलंबन होती थीं। वे जिन दृश्यों को अंकित कर गए हैं, उनके ऐसे ब्योरों को उन्होंने सामने रक्खा है, जिनसे एक भरा-पुरा चित्र सामने आता है। ऐसे दृश्य अंकित करने के लिये

प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता होती है, उसके स्वरूप में इस प्रकार तल्लीन होना पड़ता है कि एक-एक ब्योरे पर ध्यान जाय। उन्हें इस बात का अनुभव रहता था कि कल्पना के सहारे चित्र के भीतर एक-एक वस्तु और व्यापार का संश्लिष्ट-रूप में भरना जितना ज़रूरी है, उतना उपमा आदि ढूँढ़ना नहीं। इसी से उनके चित्र भरे-पुरे हैं, और इधर के कवियों ने जहाँ परंपरा-पालन के लिये ऐसे चित्र खींचे भी हैं, वहाँ वे पूर्ण चित्र क्या, चित्र भी नहीं हुए हैं। उनके चित्र (यदि चित्र कहे जा सकें) ऐसे ही हुए हैं, जैसा किसी चित्रकार का अधूरा छोड़ा हुआ चित्र; जिसमें कहीं एक रेखा यहाँ लगी है, कहीं वहाँ — कहीं कुछ रंग भरा जा सका है, कहीं जगह ख़ाली है। चित्र-कला के प्रयोग द्वारा इस बात की परीक्षा हो सकती है। वाल्मीकि के वर्षा-वर्णन को लीजिए, और जो-जो वस्तुएँ आती जायँ, उनकी आकृति ऐसी सावधानी से अंकित करते चलिए कि कोई वस्तु छूटने न पावे। फिर गोस्वामी तुलसीदासजी का भागवत से लिया गया वर्षा-वर्णन लेकर ऐसा ही कीजिए, और दोनों चित्रों को इस बात का ध्यान रखकर मिलाइए कि ये किष्किंधा की पर्वत-स्थली के चित्र हैं।

आदि-कवि का कैसा सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण है, वस्तुओं और व्यापारों की कैसी संश्लिष्ट योजना है, उन्होंने किस प्रकार एक-एक पेचीले ब्योरे पर ध्यान दिया है, यह दिखाने के लिये नीचे कुछ पद्य दिए जाते हैं—

व्यामिश्रितं सर्जकदंबपुष्पै-
　　नवं जलं पर्वतधातुताम्रम्।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं
　　शैलापगाः शीघ्रतरं वहंति ॥
रसाकुलं षट्पदसन्निकाशं
　　प्रभुज्यते जंबुफलं प्रकामम्।
अनेकवर्णं पवनावधूतं
　　भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥
मुक्तासकाशं सलिलं पतद्वै
　　सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम्।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः
　　सुरेंद्रदत्तं तृषिताः पिबंति ॥ *

अब पंचवटी में लक्ष्मण हेमंत का कैसा दृश्य देख रहे हैं, उसका एक छोटा-सा नमूना लीजिए—

अवश्यायनिपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥
स्पृशंस्तु विपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम्।
अत्यंततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥
अवश्याय तमोनद्धा नीहारतमसावृताः।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यंते विपुष्पा वनराजयः ॥
वाष्पसंछन्नसलिला　रुतविज्ञेयसारसाः।
हिमार्द्रवालुकैस्तीरैः सरितो भांति सांप्रतम् ॥
जराजर्जरितैः पद्मैः शीर्णकेसरकर्णिकैः।
नालशेषैर्हिमध्वस्तैर्न भांति कमलाकराः ॥ (अरण्य १६ सर्ग) †

महाकवि कालिदास ने भी जहाँ स्थल-वर्णन को सामने रखकर दृश्य अंकित किया है, वहाँ उनका निरीक्षण अत्यंत सूक्ष्म है—

आमेखलं संचरतां घनानां
　　छायामधःसानुगतां निषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयंते
　　शृंगाणि यस्यातपवंति सिद्धाः ॥
कपोलकंडूः करिभिर्विनेतुं
　　विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।

* पर्वत की नदियाँ सर्ज और कदंब के फूलों से मिश्रित, पर्वत-धातुओं (गेरू) से लाल, नए गिरे जल से कैसी शीघ्रता से बह रही हैं, जिनके साथ मोर बोल रहे हैं। रस से भरे भौंरों के समान काले-काले जामुन के फलों को लोग खा रहे हैं। अनेक रंग के पके आम के फल वायु के झोंके से टूटकर भूमि पर गिरते हैं। प्यासे पक्षी, जिनके पंख पानी से बिगड़ गए हैं, मोती के समान इंद्र के दिए हुए जल को, जो पत्तों की नोक पर लगा हुआ है, हर्षित होकर पी रहे हैं।

† वन की भूमि, जिसकी हरी-हरी घास पाला गिरने से कुछ-कुछ गीली हो गई है, नई धूप पड़ने से कैसी शोभा दे रही है। अत्यंत प्यासा जंगली हाथी बहुत शीतल जल के स्पर्श से अपनी सूँड़ सिकोड़ता है। बिना फूल के वन-समूह कुहरे के अंधकार में सोए-से जान पड़ते हैं। नदियाँ, जिनका जल कुहरे से ढका हुआ है और जिनमें के सारस पक्षी केवल शब्द से जाने जाते हैं, हिम से आर्द्र बालू के तटों से ही पहचानी जाती हैं। कमल, जिनके पत्ते जीर्ण होकर झड़ गए हैं, जिनकी केसर और कर्णिका टूट-फूटकर छितरा गई हैं, पाले से ध्वस्त होकर नाल-मात्र खड़े हैं।

यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः
सानूनि गंधः सुरभीकरोति ॥
भागीरथीनिर्झरशीकराणां
वोढा मुहुःकंपितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातै-
रासेव्यते भिन्नशिखंडिबर्हः ॥ *

उपमाएँ देने में कालिदास अद्वितीय समझे जाते हैं, पर वस्तु-चित्र को उपमा आदि का अधिक बोझ लादकर उन्होंने भद्दा नहीं किया । उनका मेघदूत--विशेषकर पूर्वमेघ—तो यहाँ से वहाँ तक एक मनोहर चित्र ही है । ऐसा काव्य तो संस्कृत क्या, किसी भाषा में भी शायद ही हो । जिनमें ऐतिहासिक सहृदयता है, देश के प्रकृत स्वरूप के साथ जिनके हृदय का सामंजस्य है, मेघदूत उनके लिये भावों का भरा-पुरा भंडार है । जिनकी रुचि भ्रष्ट हो गई है, जो सर्वत्र उपमा, उत्प्रेक्षा ही ढूँढ़ा करते हैं, जो " अनूठी उक्तियों " पर ही वाह-वाह किया करते हैं, उनके लिये चाहे उसमें कुछ भी न हो ।

कालिदास ने वन-श्री, पुर की शोभा आदि का ही वर्णन एक-एक ब्योरे पर दृष्टि ले जाकर नहीं किया, उजाड़ खँड़हरों का भी ऐसा ही वर्णन किया है, उनका ऐसा स्वरूप सामने रक्खा है, जिसे अतीत स्वरूप के साथ मिलाने पर करुणा का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। कुश जब कुशावती में जाकर राज्य करने लगे, तब अयोध्या उजड़ गई । एक दिन रात को अयोध्या की अधिदेवता स्त्री का रूप धरकर उनके पास गई, और अयोध्या की हीन दशा का अत्यंत मर्मस्पर्शी शब्दों में वर्णन किया । उस प्रसंग के केवल दो श्लोक नीचे दिए जाते हैं : जिनसे सारे वर्णन का अनुमान पाठक कर लेंगे —

कालांतरश्यामसुधेषु नक्तम्
इतस्ततो रूढतृणांकुरेषु ।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि
हर्म्येषु मूर्च्छंति न चंद्रपादाः ॥
रात्रावनाविष्कृतदीपभासः
कांतामुखश्रीवियुता दिवापि ।
तिरस्क्रियंते कृमितंतुजालै-
र्विच्छिन्नधूमप्रसरा गवाक्षाः ॥ †

भाव-मूर्ति भवभूति ने यद्यपि शब्दालंकार की ओर अधिक रुचि दिखाई, पर प्रकृति के रूप-माधुर्य की ओर उनका पूर्ण ध्यान रहा । नाटक में स्थल-चित्रण के लिये पूर्ण अवकाश न होने पर भी उन्होंने बीच बीच में उसकी जो झलक दिखाई, उससे वन्य प्राकृतिक दृश्यों का गूढ़ अनुराग लक्षित होता है। खेद है कि जिस कल्पना का उपयोग मुख्यतः पदार्थों का रूप संघटित करने, प्राकृतिक व्यापारों को प्रत्यक्ष करने और इस प्रकार किसी दृश्य-खंड के ब्योरे पूरे करने में होना चाहिए था, उसका प्रयोग पिछले कवियों ने उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत आदि की उद्भावना करने में ही अधिक किया । महाकवि माघ प्रबंध-रचना में जैसे कुशल थे, वैसे ही उसके पक्षपाती भी थे ; पर उनकी प्रवृत्ति हम प्रस्तुत वस्तु-विन्यास की ओर कम और अलंकार-योजना की ओर अधिक पाते हैं । उनके दृश्य-वर्णन में वाल्मीकि आदि प्राचीन कवियों का-सा प्रकृति का रूप-विश्लेषण नहीं है, उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, अर्थांतर-न्यास आदि की भरमार है । उदाहरण के लिये उनके प्रभात-वर्णन से कुछ श्लोक दिए जाते हैं—

अरुणजलजराजी मुग्धहस्ताग्रपादा
बहुलमधुपमाला कज्जलेंदीवराक्षी ।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरंती
रजनिमचिरजाता पूर्वसंध्या सुतेव ॥

* मेखला तक घूमनेवाले मेघों के नीचे के शिखरों में प्राप्त छाया का सेवन करके वृष्टि से कँप हुए सिद्ध लोग जिसके धूपवाले शिखरों का सेवन करते हैं । जिस (हिमालय) में कपोलों की खुजली मिटाने के लिये हाथियों के द्वारा रगड़े गए सरल (सलई) के पेड़ों से टपके हुए दूध से उत्पन्न सुगंध शिखरों को सुगंधित करती है । गंगा के झरने के कणों को ले जानेवाला, बार-बार देवदारु के पेड़ों को कँपानेवाला, मयूरों की पूँछों को छितरानेवाला जिसका पवन मृगों के ढूँढ़नेवाले किरातों द्वारा सेवन किया जाता है ।

† समय के फेर से काले पड़े हुए चूनेवाले मंदिरों में, जिनमें इधर-उधर घास के अंकुर उगे हैं, रात्रि के समय मोती की माला के समान वे चंद्र-किरणें अब प्रकाश नहीं करतीं । रात्रि में दीपक के प्रकाश से रहित, और दिन में स्त्रियों के मुख की कांति से शून्य, जिनमें से धुएँ का निकलना बंद हो गया है, ऐसे झरोखे मकड़ियों के जालों से ढक गए हैं ।

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः ।
कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभि-
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ॥
व्रजति विषयमक्ष्णामंशुमाली न यावत्
तिमिरमखिलमस्तं तावदेवारुणेन ।
परपरिभवितेजस्तन्वतामाशु कर्तुं
प्रभवति हि विपक्षोच्छेदमग्रेसरोऽपि ॥ *

इस वर्णन में यह स्पष्ट लक्षित होता है कि कवि को दृश्य की एक-एक सूक्ष्म वस्तु और व्यापार प्रत्यक्ष करके चित्र पूरा करने की उतनी चिंता नहीं है, जितनी कि अद्भुत-अद्भुत उपमाओं आदि के द्वारा एक कौतुक खड़ा करने की । पर काव्य कौतुक नहीं है, उसका उद्देश्य गंभीर है ।

पाश्चात्य काव्य-समीक्षक किसी वर्णन के ज्ञातृपक्ष (Subjective) और ज्ञेय-पक्ष (Objective)—अथवा विषयि-पक्ष और विषय-पक्ष—दो पक्ष लिया करते हैं । जो वस्तुएँ बाह्य प्रकृति में हम देख रहे हैं, उनका चित्रण ज्ञेय-पक्ष के अंतर्गत हुआ, और उन वस्तुओं के प्रभाव से हमारे चित्त में जो भाव या आभास उत्पन्न हो रहे हैं, वे ज्ञातृपक्ष के अंतर्गत हुए । अतः उपमा, उत्प्रेक्षा आदि के आधिक्य के पक्षपाती कह सकते हैं कि पिछले कवियों के दृश्य-वर्णन ज्ञातृपक्ष-प्रधान हैं । ठीक है; पर वस्तु-विन्यास प्रधान कार्य है । यदि वह अच्छी तरह बन पड़ा, तो पाठक के हृदय में दृश्य के सौंदर्य, भीषणता, विशालता इत्यादि का अनुभव थोड़ा-बहुत आप-से-आप होगा । वस्तुओं के संबंध में इन भावों का ठीक-ठीक अनुभव करने में सहारा देने के लिये कवि कहीं बीच-बीच में अपने अंतःकरण की भी झलक दिखाता चले, तो यहाँ तक ठीक है । यह झलक दो प्रकार की हो सकती है—भावमय और अपर-वस्तुमय । जैसे, किसी ने कहा—"तालाब के उस किनारे पर खिले कमल कैसे मनोहर लगते हैं !" । यहाँ कमलों के दर्शन से सौंदर्य का जो भाव चित्त में उदित हुआ, वह वाच्य द्वारा स्पष्ट कह दिया गया । यही बात यदि यों कही जाय कि "तालाब के उस किनारे पर खिले कमल ऐसे लगते हैं, मानों प्रभात के गगन-तट पर की ललाई ।", तो सौंदर्य का भाव स्पष्ट न कहा जाकर दूसरी ऐसी वस्तु सामने ला दी गई, जिसके साथ भी वैसे ही सौंदर्य का भाव लगा हुआ है । एक में भाव वाच्य द्वारा प्रकट किया गया, दूसरे में अलंकार-रूप व्यंग्य द्वारा । इससे स्पष्ट है कि दृश्य-वर्णन करते समय कवि उपमा, उत्प्रेक्षा आदि द्वारा वर्ण्य वस्तुओं के मेल में जो दूसरी वस्तुएँ रखता है, सो केवल भाव को तीव्र करने के लिये । अतः ये दूसरी वस्तुएं ऐसी होनी चाहिए, जिनसे प्रायः सब मनुष्यों के चित्त में वे ही भाव उदित होते हों, जो वर्ण्य वस्तुओं से होते हैं । यों ही खिलवाड़ के लिये बार-बार प्रसंग-प्राप्त वस्तुओं से श्रोता या पाठक का ध्यान हटाकर दूसरी वस्तुओं की ओर ले जाना, जो प्रसंगानुकूल भाव उद्दीप्त करने में भी सहायक नहीं, काव्य के गांभीर्य और गौरव को नष्ट करना है, उसकी मर्यादा बिगाड़ना है । इसी प्रकार बात-बात में "अहा-हा ! कैसा मनोहर है ! कैसा आह्लाद-जनक है !," ऐसे भावोद्गार भी भद्देपन से ख़ाली नहीं, और काव्य-शिष्टता के विरुद्ध हैं । तात्पर्य यह कि भावों की अनुभूति में सहायता देने के लिये केवल कहीं-कहीं उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग उतना ही उचित है, जितने से बिंब ग्रहण करने में, दृश्य का चित्र हृदयंगम करने में, श्रोता या पाठक को बाधा न पड़े ।

जहाँ एक व्यापार के मेल में दूसरा व्यापार रक्खा जाता है, वहाँ या तो (क) प्रथम व्यापार से उत्पन्न भाव को अधिक तीव्र करना होता है, जैसे हिलती हुई मंजरियाँ मानों भौंरों को पास बुला रही हैं । अथवा (ख)

* अरुण कमल-रूपी कोमल हाथ-पैरवाली, मधुपमाला-रूपी कज्जल-युक्त कमल-नेत्रवाली, पक्षियों के कलरव-रूपी रोदनवाली यह प्रभात-वेला सद्योजात बालिका के समान रात्रि-रूपी अपनी माता की ओर लपकी आ रही है । जिस प्रकार घड़ा खींचते समय स्त्रियाँ कुछ कोलाहल करती हैं, उसी प्रकार के पक्षियों के कोलाहल से पूर्ण दिशा-रूपी स्त्रियाँ, दूर तक फैली हुई किरण-रूपी रस्सियों से सूर्य-रूपी घड़े को बाँधकर, बड़े भारी कलश के समान समुद्र के भीतर से खींच-कर ऊपर निकाल रही हैं । सूर्य के उदय होने से पहले ही सूर्य के साथी अरुण ने सारा अंधकार दूर कर दिया; वैरियों को नष्ट करनेवाले स्वामियों के आगे चलनेवाला सेवक भी शत्रुओं को मार भगाने में समर्थ होता है ।

द्वितीय व्यापार का सृष्टि के बीच एक गोचर प्रतिरूप दिखाना, जैसे—

"बुंद-अघात सहैं गिरि कैसे ? खल के बचन संत सह जैसे ।"

दूसरी अवस्था में प्रस्तुत दृश्य स्वयं सृष्टि या जीवन के किसी रहस्य का गोचर प्रतिबिंबवत् हो जाता है । अतः उस प्रतिबिंब का प्रतिबिंब ग्रहण करने में कल्पना उत्साह नहीं दिखाती । इसी से जहाँ दृश्य-चित्रण इष्ट होता है, वहाँ के लिये यह अवस्था अनुकूल नहीं होती ।

वाल्मीकिजी भी बीच-बीच में उपमाएँ देते गए हैं ; पर उससे उनके सूक्ष्म-निरीक्षण में कसर नहीं आने पाई है । वर्षा में पर्वत की गेरू से मिलकर नदियों की धारा का लाल होकर बहना, पर्वत के ऊपर से पानी की मोटी धारा का काली शिलाओं पर गिरकर छितराना, पेड़ों पर गिरे वर्षा के जल का पत्तियों की नोकों पर से बूँद-बूँद टपकना और पक्षियों का उसे पीना, हेमंत में कमलों के नाल-मात्र का खड़ा रहना और उसके छोर पर केसर का छितराना, ऐसे-ऐसे व्यापारों को वह सामने लाते चले गए हैं । सुंदर-कांड के पाँचवें सर्ग में जो छोटा-सा "चंद्र-नामा" है, वह इसके विरोध में नहीं उपस्थित किया जा सकता ; क्योंकि वह एक प्रकार की स्तुति या वर्णन-मात्र है । वहाँ कोई दृश्य-चित्रण नहीं है ।

विषयी या ज्ञाता अपने चारों ओर उपस्थित वस्तुओं को कभी-कभी किस प्रकार अपने तत्कालीन भावों के रंग में देखता है, इसका जैसा सुंदर उदाहरण आदि-कवि ने दिया है, वह वैसा अन्यत्र कहीं कदाचित् ही मिले । पंचवटी में आश्रम बनाकर हेमंत में जब लक्ष्मण एक-एक वस्तु और प्राकृतिक व्यापार का निरीक्षण करने लगे, उस समय पाले से धुँधली पड़ी हुई चाँदनी उन्हें ऐसी दिखाई पड़ी, जैसी धूप से साँवली पड़ी हुई सीता—

ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते ।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न तु शोभते ॥

इसी प्रकार सुग्रीव को राज्य देकर माल्यवान् पर्वत पर निवास करते हुए, सीता के विरह में व्याकुल, भगवान् रामचंद्र को वर्षा आने पर ग्रीष्म की धूप से संतप्त पृथ्वी जल से पूर्ण होकर सीता के समान आँसू बहाती हुई दिखाई देती है, काले-काले बादलों के बीच में चमकती हुई बिजली रावण की गोद में छटपटाती हुई वैदेही के समान दिखाई पड़ती है, और फूले हुए अर्जुन के वृक्षों से युक्त तथा केतकी से सुगंधित शैल ऐसा लगता है, जैसे शत्रु से रहित होकर सुग्रीव अभिषेक की जल-धारा से सींचा जाता हो ।

यथा—

एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुंचति ॥
नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरंती प्रतिभाति माम् ।
स्फुरंती रावणस्यांके वैदेहीव तपस्विनी ॥
एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरधिवासितः ।
सुग्रीव इव शांतारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥

ऐसा अनुमान होता है कि कालिदास के समय से, या उसके कुछ पहले ही से, दृश्य-वर्णन के संबंध में कवियों ने दो मार्ग निकाले । स्थल-वर्णन में तो वस्तु-वर्णन की सूक्ष्मता कुछ दिनों तक वैसी ही बनी रही, पर ऋतु-वर्णन में चित्रण उतना आवश्यक नहीं समझा गया, जितना कुछ इनी-गिनी वस्तुओं का कथन-मात्र करके भावों के उद्दीपन का वर्णन । जान पड़ता है, ऋतु-वर्णन वैसे ही फुटकर पद्यों के रूप में पढ़े जाने लगे, जैसे बारहमासा पढ़ा जाता है । अतः उनमें अनु-प्रास और शब्दों के माधुर्य आदि का ध्यान अधिक रहने लगा । कालिदास के ऋतु-संहार और रघुवंश के नवें सर्ग में सन्निविष्ट वसंत-वर्णन से इसका कुछ आभास मिलता है । उक्त वर्णन के श्लोक इस ढंग के हैं—

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवा-
स्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधु-
र्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥

रीति-ग्रंथों के अधिक बनने और प्रचार पाने से क्रमशः यह ढंग ज़ोर पकड़ता गया । प्राकृतिक वस्तु व्यापार का सूक्ष्म-निरीक्षण धीरे-धीरे कम होता गया । किस ऋतु में क्या-क्या वर्णन करना चाहिए, इसका आधार 'प्रत्यक्ष' अनुभव नहीं रह गया, 'आप्त-शब्द' हुआ । वर्षा के वर्णन में जो कदंब, कुटज, इंद्रवधू, मेघ-गर्जन, विद्युत् इत्यादि का नाम लिया जाता रहा, वह इसलिये कि भगवान् भरत मुनि की आज्ञा थी—

कदंबनिंबकुटजैः शाद्वलैः सेंद्रगोपकैः ।
मेघैर्वातैः सुखस्पर्शैः प्रावृट्कालं प्रदर्शयेत् ॥

कहना नहीं होगा कि हिंदी के कवियों के हिस्से में यही आया । गिनी गिनाई वस्तुओं के नाम लेकर अर्थ-ग्रहण-मात्र कराना अधिकतर उनका काम हुआ, सूक्ष्म-रूप-विवरण और आधार-आधेय की संश्लिष्ट योजना के साथ 'बिंब-ग्रहण' कराना नहीं ।

ऋतु-वर्णन की यह प्रथा निकल ही रही थी कि कवियों को भी औरों की देखा-देखी दंगल का शौक़ पैदा हुआ । राजसभाओं में ललकारकर टेढ़ी-मेढ़ी विकट समस्याएँ दी जाने लगीं, और कवि लोग उपमा, उत्प्रेक्षा आदि की अद्भुत-अद्भुत उक्तियों द्वारा उनकी पूर्ति करने लगे । ये उक्तियाँ जितनी ही बे-सिर-पैर की होतीं, उतनी ही वाहवाही मिलती । काश्मीर के मंखक कवि जब अपना श्रीकंठचरित-काव्य काश्मीर के राजा की सभा में ले गए, तब वहाँ क़न्नौज के राजा गोविंदचंद्र के दूत सुहल ने उन्हें यह समस्या दी—

एतद्बभ्रुकचानुकारि किरणं राजद्रुहोऽह्नः शिर-
श्छेदाभं वियतः प्रतीच्चि निपतत्यब्धौ रवेर्मंडलम् ।

अर्थात् — नेवले के बालों के सदृश पीली किरणों को प्रकट करता हुआ सूर्य का यह बिंब, चंद्रमा का द्रोह करनेवाले दिन के कटे हुए सिर के समान, आकाश से पश्चिम-समुद्र में गिरता है (राज=राजा, चंद्रमा) ।

इसकी पूर्ति मंखक ने इस प्रकार की—

एषापि द्युरमा प्रियानुगमनं प्रोद्दामकाष्ठोत्थिते
संध्याग्नौ विरचय्य तारकमिषाज्जातास्थिशेषस्थितिः ॥

अर्थात् —दिशाओं में उत्पन्न संध्या-रूपी प्रचंड अग्नि में अपने प्रियतम का अनुगमन करके आकाश की श्री (शोभा) भी तारों के बहाने (रूप में) अस्थि-शेष हो गई। (काष्ठोत्थिते=काष्ठा+उत्थिते और काष्ठ+उत्थिते । काष्ठा=दिशा; काष्ठ=लकड़ी) । मतलब यह कि सती हो जानेवाली आकाश-श्री की जो हड्डियाँ रह गईं, वे ही ये तारे हैं ।

जो कल्पना पहले भावों और रसों की सामग्री जुटाया करती थी, वह बाज़ीगर का तमाशा करने लगी । होते-होते यहाँ तक हुआ कि "पिपीलिका नृत्यति वह्निमध्ये" और "मोम के मंदिर माखन के मुनि बैठे हुतासन आसन मारे" की नौबत आ गई ।

कहाँ ऋषि-कवि का पाले से धुँधले चंद्रमा का मुँह की भाप से अंधे दर्पण के साथ मिलान, और कहाँ तारे और हड्डियाँ ! ख़ैर, यहाँ दोनों का रंग तो सफ़ेद है ! आगे चलकर तो यह दशा हुई कि दो-दो वस्तुओं को लेकर सांग रूपक बाँधते चले जाते हैं, वे किसी बात में परस्पर मिलती-जुलती भी हैं या नहीं, इससे कोई मतलब नहीं, सांग रूपक की रस्म तो अदा हो रही है । दूसरी बात विचारने की यह है कि संध्या समय अस्त होते हुए सूर्य को देख मंखक कवि के हृदय में किसी भाव का उदय हुआ या नहीं, उनके कथन से किसी भाव की व्यंजना होती है या नहीं ? यहाँ अस्त होता हुआ सूर्य 'आलंबन' और कवि ही आश्रय माना जा सकता है । पर मेरे देखने में तो यहाँ कवि का हृदय एकदम तटस्थ है । उससे सारे वर्णन से कोई मतलब ही नहीं । उसमें रति, शोक आदि किसी भाव का पता नहीं लगता । ऐसे पद्यों को काव्य में परिगणित देख यदि कोई "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" की व्याप्ति में संदेह कर बैठे, तो उसका क्या दोष ? "ललाई के बीच सूर्य का बिंब समुद्र के छोर पर डूबा, और तारे छिटक गए", इतना ही कथन यदि प्रधान होता, तो वह दृश्य कवि और श्रोता दोनों के रति-भाव का आलंबन होकर काव्य कहला भी सकता था । पर अलंकार से एकदम आक्रांत होकर वह काव्य का स्वरूप ही खो बैठा । यदि कहिए कि यहाँ अलंकार द्वारा उक्त दृश्य-रूप वस्तु व्यंग्य है, तो भी ठीक नहीं ; क्योंकि 'विभाव' व्यंग्य नहीं हुआ करता । 'विभाव' में शब्द-चित्र द्वारा उन वस्तुओं के स्वरूप की प्रतिष्ठा करनी होती है, जो भावों का आश्रय, आलंबन और उद्दीपन होती हैं । जब यह वस्तु-प्रतिष्ठा हो लेती है, तब भावों के व्यापार का आरंभ होता है । मुक्तक में जहाँ नायक-नायिका का चित्रण नहीं होता, वहाँ उनका ग्रहण 'आक्षेप' द्वारा होता है, व्यंजना द्वारा नहीं ।

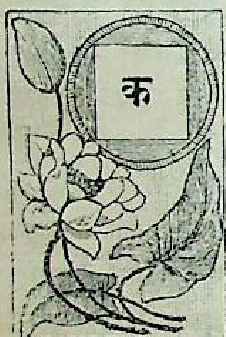
दृश्य-वर्णन में उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का स्थान कितना गौण है, इसकी मनोविज्ञान की रीति से भी परीक्षा हो सकती है । एक पर्वत-स्थली का दृश्य वर्णन करके किसी को सुनाइए । फिर महीने-दो महीने पीछे उससे उसी दृश्य का कुछ वर्णन करने के लिये कहिए । आप देखेंगे कि उस संपूर्ण दृश्य की सुसंगत योजना करनेवाली वस्तुओं और व्यापारों में से वह बहुतों को कह जायगा, पर आपकी दी हुई उपमाओं में से शायद ही किसी का उसे स्मरण हो । इसका मतलब यही है कि उस वर्णन

के जितने अंश पर हृदय की तल्लीनता के कारण पूरा ध्यान रहा, उसका संस्कार बना रहा; और इसलिये संकेत पाकर उसकी तो पुनरुद्भावना हुई, शेष अंश छूट गया।

रामचंद्र शुक्ल

जीजाजी

(१)



नागत बीत रहे थे। अँधेरी रात बादलों से घिर रही थी। रोगिणी ने अर्द्ध-तंद्रावस्था में पुकारा—"जीजाजी !"

रोगिणी के पिता खाट के पास ही बैठे थे। उन्होंने भरे हुए कंठ से दिलासा देते हुए कहा—"बिटिया! ऐसी अधीर मत हो, ज़रा धीरज धरो। अभी तो गाड़ी का समय है। तार तो ठीक समय पर पहुँच ही गया होगा; वह क्या रुकनेवाले हैं।"

रोगिणी ने मानो कुछ सुना ही नहीं। उसने वैसे ही अधीर और आर्त स्वर में पुकारा—"जीजाजी !"

बूढ़ा बाप चुप-चाप रोने लगा। द्वार पर शब्द हुआ। अमृतकला दौड़ी हुई आई, और उसने चिल्लाकर कहा—"जीजाजी आ गए !"

रोगिणी ने आँख खोली। उसकी अवस्था सर्वथा आशा-हीन थी। छाती का भयंकर फोड़ा इधर छाती के पार था, उधर कमर के। सात महीने से करवट भी नहीं ले सकती थी। दोनों पैर मारे गए थे। एक हाथ रह गया था—दूसरे में हिलने की शक्ति नहीं थी। दस्तों की गिनती न थी। खाट काट दी गई थी। सिर्फ़ एक सुबीता था, वह सिर को यथेच्छ हिला सकती थी। आँख खोलकर उसने द्वार की ओर सिर फेरा।

एक श्याम-वर्ण सुडौल युवक ने घर में प्रवेश किया। उसके एक हाथ में फलों का रूमाल था, और दूसरे में चमड़े का बैग। दोनों वस्तुओं को वह नीचे न रख सका, वज्राहत की तरह मुमूर्षु स्त्री के मुख को देखने लगा।

एकाएक उसी उन्मत्त और विकल स्वर में रोगिणी चिल्ला उठी—"जीजाजी !"

बंदूक़ की गोली की तरह यह क्रंदन युवक के मस्तिष्क में घुस गया। उसने देखा, रोगिणी के नेत्रों में सदा की लज्जा या संकोच नहीं है। उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। उसने अवरुद्ध कंठ से सास की ओर देखकर कहा—"क्या पहचानती नहीं है?" बूढ़ा फूटकर रो पड़ा, और बुढ़िया पछाड़ खाकर खाट पर झुक गई। उसने कहा—"मेरी बच्ची ! ज़रा देख तो, ये तेरे पूज्य पतिदेव हैं।"

वैसे ही स्वर में रोगिणी ने फिर नाद किया—"जीजाजी !"। इसके बाद उसका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा, और दाँत कटकटाने लगे।

युवक ने घबराकर कहा—"दवा, दवा, दवा लाओ—यह क्या हो रहा है।" कुछ ही क्षण में रोगिणी सचेत, सावधान हो गई। युवक खाट के किनारे बैठकर रोने लगा। धीरे से, किंतु बड़े कष्ट से, अपना रूखा लकड़ी-सा हाथ युवक के कंधे पर रखकर उसने कहा—"रोओ मत जीजाजी।"

इस स्वर में वह उन्माद न था, वह विकलता भी न थी। एक ठंडा—बहुत ही ठंडा—धैर्य था। बूढ़ा और बुढ़िया वहाँ खड़े न रह सके। युवक ने देखा, रोगिणी की पथराई हुई आँखें चिर विदा

माँग रही हैं। आँखें चार होते ही उनमें से अश्रु-धारा बह चली। युवक के मुँह से शब्द नहीं निकला—वह अनंत रुदन रो रहा था।

फिर वही हाहाकार गूँज उठा—"जीजाजी!" घर का वातावरण कंपायमान हो गया। युवक ने अधीर होकर कहा—"इस तरह मत पुकारो प्यारी! मैं तो तुम्हारा लुटा हुआ दास हूँ। क्या तुम मुझे पहचानती भी नहीं हो?"

रोगिणी ने क्षीण स्वर में कहा—'बड़ी मुशकिल से पहचाना है; अब भुलावा मत दो जीजाजी!" इतना कहकर उसने अपनी बर्फ़ के समान ठंडी और सफ़ेद उँगलियों से युवक का हाथ छू लिया।

उसके हाथ को आदर से अपने हाथ में लेकर युवक ने विकृत स्वर से कहा—"तो क्या धर्म से हम दोनों पति-पत्नी नहीं हैं?"

रोगिणी पर पति की रोती हुई करुणा-पूर्ण बात का कुछ भी असर नहीं पड़ा। न वह रोई, न काँपी। उसने स्थिर स्वर में कहा—"ना"

"ना?"—यह युवक ने चकित होकर पूछा।

इस बार रोगिणी रो उठी। शीघ्र ही उसकी हिचकियाँ बँध गईं। कुछ देर बाद उसने कहा—"हम लोगों का ब्याह कब हुआ था? वह एक भूल थी, जो अब सुधर रही है। तुमने अमृत-कला की जगह मेरा हाथ पकड़ लिया जीजाजी! अब मैं अपने घर जाती हूँ। तुम्हारी जोड़ी सला-मत रहे।"

युवक ने अंत को अधीर होकर दोनों हाथों से उसका मुँह बंद कर दिया, और पागल की तरह कहा—"ना, ना, बस करो। यह नहीं सुना जाता। कदापि नहीं। इसके सुनने में भी पाप है।"

रोगिणी ने मुँह पर से हाथ हटाकर कहा—"इतनी शक्ति नहीं है कि तुम्हारे इतने ज़ोर-ज़ुल्म सहूँ। अच्छा, तुम्हें क्या ब्याह की बात याद है?"

युवक ने हाय करके कहा—"वह दिन तो विना याद किए ही सदा याद रहता है—कैसा उत्साह और जीवन का वह दिन था?"

"फिर? वह सुख, उत्साह और जीवन कहाँ गया?"

"यहीं, मेरे सामने ही पड़ा है।"

युवक मुँह ढाँपकर रोने लगा।

रोगिणी ने गद्गद स्वर में कहा—"यही भूल थी। तुमने भूल से पराई वस्तु ले ली थी; सो तृप्त होकर उसे कैसे भोग सकते थे जीजाजी! मैं सिर्फ़ एक दफ़े तीन दिन के लिये तुम्हारे घर गई थी। हम लोगों ने परस्पर एक दूसरे को न देखा, न छुआ। हम दोनों पवित्र हैं।"

"मेरा तुम्हारा इतना ही भोग था।"

"वही तो जीजाजी! सो हमने भोग लिया। अब असली अधिकारी को भोगने दो।"

"असली अधिकारी कौन?"

"अमृतकला।"

"ना, यह नहीं होने का।"

"यह अवश्य होने का है। करो, बहस करो, मुझ मरती हुई से करो बहस।" इतना कहने पर वह एकदम बदहवास हो गई। उसकी आँखें पथरा गईं।

युवक चुप-चाप दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर रोने लगा। पीछे से किसी के हाथ का स्पर्श पाकर जो फिरकर देखा, तो बुढ़िया सास खड़ी है। उसने कहा—"आज एक सप्ताह से इसने 'जीजा-जी' की धुन बाँध रक्खी है। इसी की बात रहे बेटा! अमृतकला को ही पैर धोने दो।" युवक

ने देखा, बुढ़िया के पीछे बूढ़े ससुर भी करुण दृष्टि से यही विनय कर रहे हैं।

युवक ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—"ना मा! मुझसे यह पाप न होगा।"

बूढ़े ने अपनी दाढ़ी हाथ में ले और आगे बढ़ युवक के आगे झुककर कहा—"मेरी सफ़ेदी की ओर तो देखो! मुझे अकेला मत छोड़ो—बिटिया की ही बात रक्खो।"

युवक ने बड़े ही दुःख के साथ कहा—"ना, ना, मुझसे यह न होगा।"

रोगिणी धीमे और उखड़े हुए स्वर में बोली—"तो जाने दो, मैं भी नहीं मरूँगी। इसी यंत्रणा में पड़ी-पड़ी सदा सड़ती रहूँगी। और, जो कहीं बिना मेरी इच्छा के ही मेरा दम निकल गया, तो भी मेरी आत्मा यहीं मड़राती रहेगी। हम सबमें से कोई कभी सुखी नहीं रहेगा जीजाजी!"

उसके सूखे और पीले मुख पर आँसू ढुलकने लगे। पहले हिलकियाँ आईं, पीछे हुचकी आने लगीं, और उन्हीं हुचकियों के साथ उसकी पसलियाँ चलने लगीं। आँखें बाहर निकल आईं। चेहरे पर मुर्दनी छा गई। अमृतकला 'हाय जीजी!, हाय जीजी' चिल्ला उठी।

तीनों विमूढ़ हो गए। युवक ने देखा, बूढ़ा और बुढ़िया, दोनों टूटे दिल से उसकी ओर देख रहे हैं। उसने लज्जा से मुँह ढाँपकर कहा—'यह जो कहेगी, वही करूँगा—पर, हाय! ईश्वर!—" कहता हुआ युवक धरती पर बैठ गया।

रोगिणी ने धीरे-धीरे आँखें खोलकर जल माँगा। फिर उसने कहा—"कहाँ है अमृत, उसे मेरे पास लाओ।"

'घर-भर छान डाला। अमृतकला गई कहाँ? वह छत पर, बूँदों से भीगती हुई, पड़ी, मुँह छिपाए, सिसक-सिसककर रो रही थी। बाप को देखते ही वह धाड़ मारकर रो उठी।

वृद्ध ने बड़े दुलार से उसे गोद में उठा लिया, और रोगिणी के पास लाया। वह रो रही थी, सिकुड़ रही थी, और मरी-सी जाती थी। सबने देखा, इतने ही समय में वह बालिका पीली पड़ गई है। कमरे में घुसते ही उसने कहा—"ना, ना, जीजी! मैं मर जाऊँगी। ना—ना—ना।"

यों कहकर अपने को छुड़ाकर वह भाग जाने के लिये छटपटाने और हाथ-पैर मारने लगी।

मा ने कहा—"बेटी, जीजी की ओर तो देख। फिर वह कहाँ देखने को मिलेगी? कब कुछ कहने आवेगी?"

रोगिणी ने सतेज स्वर में "बहन! इधर आ।" इतना कहकर बालिका का हाथ पकड़ लिया। एक नवीन बल उसके शरीर में जैसे आ गया। बालिका ने रोते-रोते बदहवास होकर कहा—"मैं नहीं, मैं नहीं जीजी!"

रोगिणी ने उधर न देखकर युवक से कहा—"यहाँ आओ जीजाजी!" पत्थर की मूर्ति की तरह युवक वहीं खड़ा रहा। उसके सारे शरीर से पसीना बह चला। एक बार उसने कातर दृष्टि से स्त्री की ओर देखा। उस समय रोगिणी की दृष्टि निस्पंद धारा में असंख्य अनुनय-विनय बरसा रही थी। वह कैसी विनय थी, जो उठती जवानी की सब कामनाओं के अंतिम छोर से प्रारंभ होती थी। वह कैसा कटाक्ष था, जिसमें निराशा के सूखे बादलों के बीच केवल एक अनुनय की कालिमा थी। युवक न देख सका। वह वध-स्थान पर बकरे की तरह रोगिणी के पास जा खड़ा हुआ। रोगिणी चंद्रकला ने झट

अमृतकला का हाथ उसके हाथ में देकर कहा— "तुम दोनों आदमी सुख से रहना।"

इसके बाद वह थकावट से शिथिल हो गई; किंतु क्षण-भर के बाद ही उसके मुख पर मुसकिराहट आई। उसने उत्साह से पुकारा— "जीजाजी!"

इस बार इस ध्वनि में न वह उन्माद था, न हाहाकार! उस मध्य-रात्रि में वह मानों विहाग रागिनी का एक स्वर था। पर यह स्त्री-हृदय का अंतिम उकास था। उस हर्ष के उद्वेग में एकाएक उसके हृदय का स्पंदन बंद हो गया। मुसकिराने को जो दाँत निकले थे, वे निकले ही रह गए। मस्तानी रागिनी का जो स्वर उठा था, वह बीच ही में टूट गया। पंछी उड़ गया, पींजरा पड़ा रह गया!

चतुरसेन

ईसाइयों का तीर्थाटन

तीर्थ-यात्रा



तीर्थ-यात्रा की चाल नई नहीं है, और न यह मूर्ति-पूजक हिंदुओं की ही ख़ास संपत्ति है, जैसा कि बहुधा कहा जाता है। आजकल जितने संप्रदाय हैं, सबके यहाँ तीर्थाटन प्रचलित है। यही नहीं, पुराने-से-पुराने ज़माने में भी यह चाल किसी-न-किसी रूप में पाई जाती है। जब लोग जड़-जगत् की पूजा करते थे, प्रकृति में सर्वत्र किसी-न-किसी ख़ास देवता का वास मानते थे, उस समय भी शायद एक प्रकार का तीर्थाटन ज़रूरी था। जल में वास करनेवाले देवता स्थल पर बे-काम हैं; वहाँ उनका कुछ वश नहीं चलता। जंगल के देवता मैदान में कुछ नहीं कर सकते। पहाड़ पर जो देवता रहते हैं, वे समतल पर नहीं आते। यही पुराने ज़माने की असभ्य-जातियों की धारणा थी। इसलिये जब पहाड़ी पहाड़ छोड़कर समतल में रहने लगता था, तब भी उसे, ज़रूरत पड़ने पर, अपने देवता को प्रसन्न करने के लिये पहाड़ पर ही जाना पड़ता था। यहीं तीर्थ-यात्रा का आरंभ होता है। संभव है, इसका और भी कोई दूसरा कारण रहा हो। जब लोगों में यह धारणा बँध गई कि ईश्वर कभी-कभी मनुष्य के रूप में प्रकट होते हैं, पर हर जगह नहीं, सिर्फ़ ख़ास-ख़ास सिद्ध-पीठों पर, तब तो उन स्थानों का दर्शन करना, वहाँ जाकर पूजा चढ़ाना, जिसमें वहाँ के देवता प्रसन्न हों, वहाँ जाकर जप-तप करना, जिसमें शीघ्र फल मिले, एक ज़रूरी कर्तव्य हो गया। इन्हीं सब कारणों के संयोग से पवित्र स्थलों के दर्शन की प्रथा चली आ रही है। हमारे देश में जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारका और बदरिकाश्रम के चारों धाम, तथा अयोध्या, काशी, मथुरा, प्रयाग इत्यादि देव-स्थानों का दर्शन करना धार्मिक हिंदुओं के लिये आवश्यक है। बौद्धों के लिये भगवान् बुद्ध की लीला से संबंध रखनेवाले स्थल (कपिल-वस्तु, बौद्ध-गया, सारनाथ, कुशीनगर) पवित्र हैं। सीरिया, फ़िनीसिया, मेक्सिको और मिसर में भी यही चाल थी। वहाँ भी पवित्र स्थलों पर जाकर निश्चित समय पर झुंड-के-झुंड नर-नारी देव-देवियों की पूजा किया करते थे। यहूदी लोग यिरूशलीम को सबसे पवित्र स्थल मानते थे। अपने देव-मंदिरों में पूजा-अर्चना के लिये यूनानी भी दूर-दूर से आते रहते थे। ओलिंबिया और डोडोना में जूपिटर तथा डेलफ़ी में अपोलो के वे इतिहास-प्रसिद्ध मंदिर थे, जहाँ यात्रियों की भीड़ बराबर लगी रहती थी। जब यूनानियों का स्थान रोमनों ने लिया, तब भी यह सिलसिला चलता ही रहा— मंदिर या यात्री, कोई भी कम न हुए। मुसलमानी ज़माने में तीर्थाटन ने और तरक़्क़ी पाई। पैग़ंबर ने तो स्पष्ट आज्ञा दे रक्खी थी कि जीते-जी एक दफ़े मक्का-शरीफ़ जाकर हज कर आना प्रत्येक मुसलमान का फ़र्ज़ है। तब से आज तक न-मालूम कितने मज़हबी मुसलमान तकलीफ़ों का ख़याल न कर, सात समुद्र पार कर, मक्के-मदीने की यात्रा करते आए हैं।

मैं इस लेख में इन संप्रदायों से संबंध रखनेवाले तीर्थाटन की कहानी नहीं सुनाऊँगा। यहाँ केवल ईसाइयों

की तीर्थ-यात्रा का थोड़ा-सा हाल देने का इरादा है। वह संप्रदाय जो दिखावटी पूजा-पाठ के विरुद्ध खड़ा हुआ था, जिसका न कोई मंदिर था न पवित्र तीर्थ, जिसके यहाँ ईश्वराराधन के लिये किसी विशेष अनुष्ठान की ज़रूरत न थी, जो घोषणा करता था कि "भगवान् की पूजा के लिये यिरूशलीम में सुलेमान के मंदिर पर जाने की ज़रूरत नहीं है; क्योंकि मन चंगा, तो कठौती में गंगा", उसी संप्रदाय में फिर मंदिर तथा पुजारी, तीर्थ और देव-स्थान कहाँ से, कैसे, घुस पड़े, इसका क़िस्सा बड़ा मनोरंजक है। यह स्पष्ट सिद्ध करता है कि मनुष्य-मात्र में एक-सी कमज़ोरियाँ फैली हुई हैं; शैव, वैष्णव, बौद्ध, ईसाई, मूसाई या महम्मदी में ऊपर जितना अंतर है, भीतर उतना नहीं। मनुष्य पूजा-अर्चना या श्रद्धा-भक्ति के सुबीते के लिये हमेशा कुछ ऐसी युक्ति गढ़ लिया करता है, जो उसकी स्थूल बुद्धि या इंद्रियों से परे न होकर आँखों के सामने खड़ी रहती है, हाथों से स्पर्श की जा सकती है। निराकार परमेश्वर से सभी के मन की कामना पूरी नहीं होती; उनके लिये किसी-न-किसी रूप में साकार-उपासना का सिलसिला खड़ा करना ज़रूरी हो जाता है।

ईसा-मसीह

ईसाइयों के यहाँ ज़ियारत की चाल ज़रा घुमा-फिराकर शुरू हुई। पहले तो ईसा के भक्तों में उन स्थानों को देखने की लालसा रही, जहाँ मसीह जन्मे थे, बढ़े थे, जहाँ उन्होंने लोगों को उपदेश दिया था, जहाँ विरोधियों ने उन्हें सूली दी थी। इसी लालसा ने बढ़ते-बढ़ते तीर्थ-यात्रा का रूप धारण किया; फिर तो योरप, आफ़्रिका और एशिया-भर में क्रस्तानों के गिरजे और शहीदों के मज़ार कसरत से फैल गए। इस फैलाव को समझने के लिये मसीह के जीवन-वृत्तांत तथा तत्कालीन इतिहास का थोड़ा-सा ज्ञान ज़रूरी होगा।

एशिया का महादेश—विशेषकर योरप, आफ़्रिका और एशिया का संधिस्थल—ही ज़माने से दुनिया को धर्म की शिक्षा देता रहा है; यहीं आदि-काल से पैग़ंबरों के अवतार होते रहे हैं। इसलिये ज़रूरी था कि क्रस्तानों के मसीह भी इसी देश में प्रकट हों। भगवान् कृष्ण ने श्री-मुख से गीता में कहा है कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ। यही बात यहाँ भी चरितार्थ हुई। जिस प्रकार बुद्ध-भगवान् के अवतार के समय भारत में शुद्ध वैदिक धर्म कर्म कांड के काले बादलों में छिप गया था, तपोधन ऋषि-संतान केवल दक्षिणा के लोभ में पड़ी हुई थी, तथा अग्नि-कुंड में केवल पशु-होम करके लोग धार्मिक कृत्यों से छुट्टी पा जाते थे, उसी तरह यिहूदिया के यहूदियों की हालत थी। याजक तथा प्राचीन वर्ग दोनों ही विषय-लोलुप हो रहे थे, धर्म की आड़ में एक रोज़गार खड़ा किया गया था, दाऊद और सुलेमान का पवित्र मंदिर सर्राफ़ों तथा कबूतर बेचनेवालों का बाज़ार बन गया था। लोग आचार-भ्रष्ट हो गए थे, धर्म का लोप हो चुका था। यहूदी-जाति की स्वतंत्रता रोमनों के पैरों तले लुढ़क रही थी; पुरोहित लोग स्वार्थ-लोलुप होकर विदेशी शासकों के मुँह-लगे गुलाम हो रहे थे। जब कि देश में इस प्रकार सब तरह से अंधकार छाया हुआ था, उसी समय ईसा-मसीह का अवतार हुआ।

ईसवी सन् के प्रायः चार वर्ष पहले ईसा का जन्म माना जाता है। इनके पिता का नाम यूसफ़ और माता का मरियम था। गालील-झील के आस-पास नासरत में इनका घर था। कहा जाता है, ब्याह होने के पहले ही कुमारी मरियम के गर्भ में ईश्वर ने प्रवेश किया था! ख़ैर, जब दिन पूरे हो रहे थे, उसी समय यूसफ़-दंपति को बादशाही हुक्म से मर्दुम-शुमारी में नाम लिखाने के लिये यिरूशलीम जाने की ज़रूरत हुई, और रास्ते ही में, बैतलहम की सराय में, ईसा का जन्म हो गया! इंजील में कहा गया है कि जन्म के समय देवतों ने खुशियाँ मनाईं, और देव-वाणी हुई। यहूदियों की रीति के अनुसार, आठवें दिन बच्चे का ख़तना हुआ, चालीसवें दिन मरियम सूतिका-गृह से निकली, और बेटे को सुलेमान के मंदिर में ले गई। इसी समय कई प्राच्य ज्योतिषियों के, इस नए अवतार की खोज में, आने की कथा कही जाती है। इधर यहूदियों के निर्दय राजा हेरोद को आशंका बढ़ती जाती थी। उसे भय हो रहा था कि कहीं उसके-जैसे पापाचारियों का अंत न आ रहा हो। उन विद्वानों से आनेवाले अवतार की कथा सुनकर, घबराकर, उसने दो वर्ष से कम के जितने बच्चे पाए, उन सबको मरवा डाला। मगर ज्योतिषियों के कहने से यूसफ़-परिवार

ईसा को लेकर पहले ही मिसर भाग चुका था। वहाँ से ये लोग तभी लौटे जब हेरोद मर चुका था। यह सब कथा देवकी के गर्भ से कृष्ण-भगवान् के जन्म लेने की भविष्य-वाणी, वसुदेव के कृष्ण को लेकर भागने तथा कंस द्वारा बच्चों के मारे जाने की कथा से बिलकुल मिलती-जुलती है! ख़ैर, मिसर से लौटकर यूसफ़-परिवार नासरत में बस गया, और यूसफ़ पहले की तरह बढ़ई का काम करने लगा। यहीं ईसा ने अपनी उम्र के तीस वर्ष बिताए। इधर तो ईसा के गृहस्थाश्रम के दिन कट रहे थे, और उधर योहन नाम का एक महापुरुष दुनिया से अलग होकर पवित्र यर्दन-नदी के आस-पास तपस्या में समय लगा रहा था, और लोगों को आनेवाले मसीहा को स्वीकार करने के लिये तैयार कर रहा था। ईसा ने तीसवें वर्ष में इसी साधु से बपतिसमा लिया। जब वह बपतिसमे के लिये यर्दन में स्नान कर रहे थे, तभी एक ईश्वरीय दिव्य ज्योति ने उनके शरीर में प्रवेश किया। उसी आवेश की अवस्था में वह वहाँ से जंगल को चले गए, और चालीस दिन तक भूखे-प्यासे तपस्या में लीन रहे। इंजीलवाले कहते हैं कि इनके तेज से हिंस्र जंतु भी डरकर दूर हो गए। तपस्या समाप्त होने पर शैतान ने तीन बार बहकाने की कोशिश की; पर तीनों दफ़े नाकामयाब हुआ।

ईसा, सिद्ध होने के बाद, प्रायः तीन वर्ष तक लोगों को धर्मोपदेश देते रहे, प्रचलित बुराइयों को सुझाते रहे। इसी समय में उन्होंने बहुत-से चमत्कार भी दिखाए --मुर्दों को जिलाया, रोगियों को चंगा किया, अंधों को आँखें दीं, कितनों को प्रेत-मुक्त किया, पानी को शराब बनाया, सिर्फ़ पाँच रोटियों और दो मछलियों से पाँच हज़ार लोगों को खिलाया—इत्यादि।

कहीं तो लोगों ने स्वागत किया, और कहीं दिल्लगी उड़ाई। ख़ास इनकी बस्ती के लोगों ने इन्हें मार भगाया; जिससे यह फिर कभी नासरत को न लौटे। घरवालों ने भी इन्हें एक तरह का दीवाना ही समझ रक्खा था; और दो बार घर लौटा ले जाने तथा इस तरह उपदेश देना और चमत्कार दिखाना बंद कराने की चेष्टा की थी। उस समय की प्रथा के अनुसार यहूदी लोग दूर-दूर से अपने जातीय त्योहारों पर यिरूशलीम में उपस्थित हुआ करते थे। ईसा-मसीह भी इन अवसरों पर वहाँ जाते और लोगों को उपदेश दिया करते थे। पर यह यहूदी पुरोहितों को बहुत बुरा लगता था। धीरे-धीरे वे लोग यहाँ तक चिढ़े कि ईसा के ख़ून के प्यासे हो गए। वह ज़माना भी कुछ ऐसा बुरा था कि तीन वर्ष तक उपदेश देने के बाद भी ईसा ने देखा कि कोई उन्हें मानने को तैयार नहीं है। क्या नासरत, क्या गालील के बाशिंदे, क्या कफ़र्नाहुम और क्या बथसैदा के मछुए, किसी के यहाँ इनकी रसाई नहीं हुई—सब जगह से इन्हें निराश ही होना पड़ा। रह गए थे सिर्फ़ बारह चेले; जिनमें केवल तीन (जेम्स, जॉन और पीटर) प्रियतम थे। इन चेलों में भी यिहूदा नाम के एक यहूदी ने, जो आख़िर को बे-वफ़ा निकला, कुल तीस सिक्कों के बदले अपने गुरु को दुश्मनों के हाथ सौंप दिया!

ईसा ने हर जगह से निराश हो, तेंतीस वर्ष की उम्र में, अपने चेलों समेत यिरूशलीम की आख़िरी यात्रा की। यहूदियों के जातीय त्योहार—निस्तारपर्व—का मौसम आ रहा था। हर जगह से लोग सुलेमान के मंदिर में पूजा चढ़ाने को उमड़े आ रहे थे। यह त्योहार आठ दिन तक होता था। ईसा भी, जो पास ही कुछ समय के लिये अपने मित्र लजेरस के यहाँ बेथनिया-नामक क़सबे में ठहरे हुए थे, रविवार के दिन अपने चेलों सहित एक जुलूस के साथ यिरूशलीम पहुँचे। दिन-भर वहाँ मंदिर में उपदेश देकर रात जैतून-पर्वत पर ईश्वर-भजन में बिताई। सोमवार और मंगल के दिन भी यिरूशलीम में उपदेश देते बीते। हाँ, रात शहर के बाहर ही कटती थी। इसी मंगल के दिन यहूदी पुरोहितों से आख़िरी अनबन हुई, और इसी समय से उनका षड्यंत्र भी शुरू हुआ। यिहूदा केवल तीस रुपयों के बदले ईसा को फँसा देने को राज़ी हो गया! बुध का दिन ईसा ने ईश्वर के ध्यान में बिताया, यिरूशलीम का जाना बंद रक्खा, और बृहस्पतिवार को निस्तारपर्व की आख़िरी तैयारी की। चेलों ने शहर के अंदर यूसफ़ नाम के एक भलेमानस के कोठे पर खाने की तैयारी की। रात को चेलों समेत आख़िरी भोजन किया गया, और वहीं से यिहूदा तो पुरोहितों के यहाँ निकल भागा, और ईसा चेलों समेत चाँदनी में शहर के बाहर गेतशिमनी के बग़ीचे में निकल आए। कहा जाता है कि वहाँ चेले तो सो गए, पर ईसा ने तीन घंटे बड़ी यातना-यंत्रणा से काटे। आख़िर इन्हें नैसर्गिक शांति मिली। इधर बेवफ़ाराम भी पुरोहितों के झुंड के

साथ आ धमके, और ईसा को गिरफ़्तार कर शहर के अंदर ले गए। इस घटना से चेलों की बुरी गति हुई। कुछ तो भाग निकले, और कुछ छिप-लुककर तमाशा देखते रहे। पकड़ाने के डर से ख़ुद पीटर ने, जो पीछे चलकर एक बड़ा भारी महंत कहलाया, ईसा से तीन दफ़े इनकार किया। रात थोड़ी रह गई थी, इसलिये पुरोहितों ने जो न्याय का ढोंग रचा था, वह पूरा न हो सका। उन्होंने ईसा की हर तरह से बेइज़्ज़ती की, मारा-पीटा, और अंत को हाजत में डाल दिया। सबेरे शुक्रवार को फिर विचार का प्रहसन किया गया। उन्हें एक अदालत से दूसरी अदालत में घसीटते रहे, और आख़िर न्याय का गला घोंटकर एक निरपराध की जान ली। दोपहर होते-होते इन लोगों ने शहर के बाहर गलगथा में ले जाकर ईसा को सलीब (क्रूस) पर चढ़ा ही दिया! शाम होने के पहले ही यूसफ़ नाम के एक भले आदमी ने बड़ी हिम्मत करके पास ही अपने बाग़ में क़ब्र दी। कोई इनकी लाश ले न भागे, इसलिये कड़ा पहरा भी बिठाया गया था। पर, तो भी, कहा जाता है, रविवार के सबेरे क़ब्र से लाश ला-पता थी। कहते हैं, ईसा-मसीह जी उठे, और सूक्ष्म शरीर से चालीस दिन तक जीते रहे। इस अरसे में उनके भक्तों और चेलों ने कई बार दर्शन पाए, और उपदेश सुने! चालीसवें दिन ईसा अपने भक्तों और चेलों के देखते-देखते आँखों के सामने यिरूशलीम के बाहर सदेह स्वर्ग चढ़ गए। उसके बाद से चेलों ने उनके उपदेश फैलाना शुरू किया। कुछ ही दिनों के भीतर पाल नाम के एक दूसरे संत को मसीह का दर्शन मिला। तब से वह एक बड़ा भक्त हो गया, तथा क्रस्तानी-धर्म फैलाने में बड़ा मददगार हुआ। यहाँ तक कि अब उसे दूसरा ईसा ही कहा करते हैं! इधर यिरूशलीम तथा कुचक्रियों पर ख़ुदा की मार पड़ी। इस निरपराध ख़ुदा के बेटे की हत्या में जो-जो शामिल थे, सब बे-मौत मरे। यहूदियों का वह पवित्र शहर भी रोमनों के हाथ से तबाह हुआ। उनके ख़ुदा के मंदिर के रोड़े-रोड़े ढह गए, हज़ारों-लाखों यहूदियों की जानें गईं, और उनकी जातीयता, उनका जातीय राष्ट्र तो इस तरह तबाह हुआ कि नामो-निशान भी न बचने पाया। अपना कहने को उन्हें कोई जगह न रही। आज प्रायः दो हज़ार वर्ष बीत चुके हैं, फिर भी वे मारे-मारे फिरते हैं!

पूर्व काल

मसीह के स्वर्गारोहण के बाद क्रस्तानों ने अपने को अथाह समुद्र में पड़ा पाया। चेले सब ख़ुद डरे हुए थे। इधर जन-साधारण तो असंतुष्ट थे ही। ग़रीब चेलों के पास न धन था, न जन-बल। उनके लिये हर तरफ़ अंधकार-ही-अंधकार था। ऐसी हालत में यात्री कहाँ थे, जो तीर्थ-यात्रा की बात छिड़ती। पर, हाँ, देर भी न लगी। इतिहास से पता चलता है कि ईसवी सन् की दूसरी सदी होते-होते धर्म-भीरु क्रस्तान यहूदियों की तरह तीर्थ करने लग गए। यह स्वाभाविक था कि वे लोग पहले उन्हीं स्थानों पर जायँ, जो उनके जीवन से संबंध रखते थे। इसीलिये पहले तो लोगों का दौरा बैतलहम की सराय पर ही हुआ करता था, जहाँ ईसा ने जन्म लिया था। वहाँ बड़ी भक्ति से लोग उस नाँद को दिखाया करते थे, जिसमें मरियम ने अपने बच्चे को सुला रक्खा था। कुछ लोग जैतून-पर्वत पर भी जाया करते थे, जहाँ मसीह ने ईश्वर-ध्यान में रात बिताई थी। हाँ, रोमनों ने जो यिरूशलीम को ध्वंस कर नया शहर बसाया था, उससे कुछ दिनों तक उन जगहों का पता नहीं चलता था, जहाँ मसीह को लोगों ने सूली पर चढ़ाया और समाधिस्थ किया था। पर ज्यों-ज्यों यह संप्रदाय पुराना होता गया, ज्यों-ज्यों क्रस्तानों की संख्या बढ़ती गई, त्यों-त्यों आडंबर भी फैलता गया। तीसरी सदी पहुँचते-पहुँचते तो पुरोहितों, महंतों, भिक्षुकों और भिक्षुकियों से क्रस्तान-समाज भर गया। अब क्रस्तान भी गिरजाघर बनाने लगे! कारण, इन्हें और संप्रदायों की तरह ख़ुदा के रहने के लिये घर की ज़रूरत सूझने लगी थी। जब मंदिर बना, तब फिर पूजा-अर्चना, धूप-नैवेद्य, बलि वग़ैरह तो ज़रूरी ही थे।

लौकिक नियमों का आरंभ होने-भर की देर होती है, फिर तो उनका फैलाव स्वार्थियों तथा सहज-विश्वासियों के लिये आसान हो जाता है। एक और दूसरी बात थी, जो उनके सुबीते की हुई। जो रोमन-बादशाह एक समय इस धर्म के कट्टर दुश्मन थे, वे भी अंत को क्रस्तान हो गए, और हर तरह से धर्म की सहायता में तत्पर रहने लगे। जब से रोमन कुस्तुंतुनियाँ में राजधानी लाए, तब से तो उनका जोश और भी बढ़ा। बादशाह कौंसटैंटाइन ने ईसा की क़ब्र खोज निकाली, और उस जगह पर एक बड़ा गिरजा बनवाया। बैतलहम में भी दूसरा मंदिर बना। बादशाह

की मा तो ऐसी श्रद्धालु थीं कि उसको क्रूस की लकड़ी तथा काँटियों तक का पता चल गया। ये चीज़ें बड़ी भक्ति के साथ वहाँ के गिरजाघरों में रक्खी गईं, और तब से मंदिरों की महिमा भी बढ़ गई। रोज़ नई विभूति प्रकट होने लगी। पाँचवीं सदी होते-होते तो क्रस्तान-साधुओं के लिये इन तीर्थों का पर्यटन करना कर्तव्य हो गया। झुंड-के-झुंड साधु पूजा-ध्यान करने को पहुँचने लगे। कोई श्रद्धा की आँखों से बैतलहम के गिरजे में बालक ईसा की मूर्ति देखने लगा, कोई गेतशिमनी के गिरजे में क़फ़न में लपेटे हुए ईसा को फ़रिश्तों से घिरा पाने लगा! लोग मन्नतें मानने लगे। किसी की लड़की का ब्याह न होता था, इसलिये तीर्थ-यात्रा करता था, तो कोई बीमारी से रिहाई पाने के लिये हज़ारों मील का सफ़र तयकर वहाँ पहुँचता था। दुआ-तावीज़ की भी कमी न रह गई। लोग क्रूस का चिह्न लटकाकर प्रेत बाधा निवारण करने लगे।

जब ईसा के जीवन-संग्राम से संबंध रखनेवाले स्थान पवित्र माने जा चुके थे, तब यह मुनासिब ही था कि उनके चेले तथा अन्य शहीदों की भी इसी तरह प्रतिष्ठा हो। सबसे पहले तो साधु पाल और संत पीटर की क़ब्रों की पूजा शुरू हुई; क्योंकि इन लोगों ने धर्म के हेतु रोम में प्राण न्योछावर कर दिए थे। कुछ काल के उपरांत तो फिर ये शहीद इतने सस्ते हुए कि हर इलाक़े में मिलने लग गए। धर्म-विश्वासी मनोकामना सिद्ध होने के लिये इन समाधियों पर जाकर पूजा चढ़ाते थे, सुगंधित तेल डालते थे, अपने आँसुओं से मज़ारों को मानों नहला देते थे। और, साधु-संन्यासी सिद्ध-पीठ समझकर वहाँ तपस्या करते थे। शुरू से ही क्रस्तानों का यह विश्वास रहा है कि शहीद मरने के समय शास्त्र-विहित प्रायश्चित्त से लोगों को मुक्त कर जा सकते हैं; भक्तों का पाप वे ख़ुद अपने ऊपर ले लेंगे। पीछे फिर यह भी कहा जाने लगा कि मरने के उपरांत भी वे शहीद ऐसा कर सकते हैं; पर हाँ, उनके मज़ारों पर जाकर पूजा करनी पड़ेगी। यही उस समय की तीर्थ-यात्रा का कारण है।

मध्य युग

मध्य युग में तो एक और निराली हवा बह चली। यह ज़माना जर्मन, फ़रासीसी तथा अँगरेज़-जातियों के उत्कर्ष का था। इन नई जातियों के लिये यूनानियों तथा रोमनों की नक़ल करना ज़रूरी था, नहीं तो सभ्य किस तरह कहलातीं? धन-संपत्ति, राज-पाट, सेना-सिपाही, सब कुछ तो हुआ, पर एक चीज़ की कमी रह गई, और वह समय पाकर बहुत अखरने भी लगी। रोमनों के देश में तो बड़े-बड़े ईसाई महात्मा हो गए थे, इसलिये वहाँ पवित्र आत्माओं की क़ब्रें बहुतायत से मिलती थीं; देश-देश के लाखों नर-नारी पूजा चढ़ाने जाया करते थे, और मुँहमाँगा वर लेकर घर लौटते थे। पर जर्मनी, फ्रांस या इँगलैंड में क्या धरा था? वहाँ तो एक प्रकार से पवित्र तीर्थों का टोटा ही था, और यह कमी उनके जातीय गौरव में बट्टा लगाती थी। पर करते क्या? कुछ दिनों तक तो ये लोग रोम की दौड़ लगाते रहे। कोई क़ब्रों पर जली हुई बत्तियों के मोम से संतुष्ट हो लौटता था, कोई वहाँ की धूल और कोई चादरों के टुकड़े लेकर ही घर आता था। पर इतने से संतुष्ट रह जाना संभव न था। इसलिये कोई नया तरीक़ा ढूँढ़ना ज़रूरी समझा गया। आख़िर इस बढ़ती हुई लालसा को पूर्ण करने के लिये लोग मरे हुए महापुरुषों की लाश तक चुरा लेने से बाज़ न आए! पीरों की लाश ला-पता करनेवाले जर्मन-चोरों का नाम इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है। धन्य है यह धार्मिकता! शाबास हैं वे मसीह के भक्त! बुद्ध, कबीर और नानक की लाशों के लिये भक्तों ने जो झगड़ा किया था, उसको भी उन्होंने मात कर दिया!

मध्य युग में महंत-पुरोहितों का ख़ूब ज़ोर रहा। ऐसी हालत में यह स्वाभाविक ही था कि वे लोग अपना पंजा ख़ूब फैलावें, ख़ुदा के भेड़-बकरों को जकड़ रखने के लिये नई-नई तरकीबें सोचते रहें। यही कारण है कि उस युग में पाप-पुण्य की चर्चा ख़ूब ज़ोरों पर होती रही। इधर पापियों को डराने के लिये तो नरक की यातनाओं का बहुरंगा नक़्शा खींचा गया, और उधर पुण्यात्माओं को ललचाने के लिये स्वर्ग की घूस दी गई। उस समय की निरीह जनता पर इस पाप-पुण्य का ख़ूब सिक्का जमा। प्रभु ईसा-मसीह ने जो क्रूस पर जान दी थी, वह आदम की सारी संतान को पापों से मुक्त करने के लिये। सबका पाप लेकर वह ख़ुद अपने को बलिदान कर गए थे। भविष्य मनुष्य-संतान भी इस पाप से मुक्त हो सकती है, सिर्फ़ उसे ईसा को मध्यम पुरुष स्वीकार करना पड़ेगा।

इसमें पुरोहितों की सहायता आवश्यक है ; क्योंकि मसीह ने पाप-ग्रहण करने का अधिकार चर्च को दे रक्खा था। इस हेतु इस धर्म में कई प्रकार के संस्कार आवश्यक माने जाते हैं। पहले तो बपतिसमे की ज़रूरत है। फिर समय-समय पर उस पवित्र रोटी के खाने और शराब पीने की व्यवस्था है, जो मसीह के मांस और रक्त के रूपांतर हैं। इनके भक्षण से पाप-क्षय होता है। एक और नियम है, जिसके अनुसार पुरोहितों के सामने लोग अपना पाप स्वीकार कर सकते हैं, तब पुरोहित उन्हें प्रायश्चित्त की व्यवस्था देंगे। जब तक पाप स्वीकार न किया जायगा, जब तक पुरोहितों की सहायता न ली जायगी, तब तक ईश्वरीय दंड से बचने का कोई उपाय नहीं है। पाप स्वीकार करने पर पुरोहित लोग प्रायश्चित्त में तीर्थाटन की व्यवस्था देने लगे। समझा गया कि यात्रा का कष्ट तथा भिक्षाटन का दंड यथेष्ट होगा। इन यात्रियों को नंगे पैर चलना पड़ता था। एक जगह एक रात से ज़्यादा टिकने का हुक्म न था। प्रायः उपवास कर तथा रात जागकर ईश्वर-भजन करना पड़ता था। कभी-कभी ये लोग अपने शरीर को ज़ंजीर से भी जकड़े रहते थे ; जिसमें शारीरिक कष्ट अधिक हो। पाठकों को शायद मालूम होगा कि आजकल भी हमारे देश में कहीं-कहीं गोहत्या का अपराधी हिंदू पाप से मुक्त होने के लिये घर-घर, गाय की बोली बोलकर, भीख माँगता है, तब कहीं छुटकारा पाता है ! यह संभव नहीं था कि सब कोई तीर्थ-यात्रा करें। इसलिये यह व्यवस्था की गई कि जो यात्रियों के रहने और खाने-पीने का प्रबंध कर देते हैं, वे भी तीर्थ के पुण्य के भागी होते हैं।

जब यिरूशलीम मुसलमानों के हाथ में चला गया, तब उसे छुड़ाना क्रुस्तानों ने अपना कर्तव्य माना। इसका बीड़ा पोप ने उठाया, और धर्म-युद्ध छेड़ दिया। उस समय सिपाही भरती करने का एक सुगम उपाय निकाला गया। मसीह तथा उनके चेले धर्म के लिये जान देकर अपने उपासकों के लिये अतुल पुण्य-संचय कर गए थे। उस पुण्य का ख़ज़ाना पोपों को मिला था। पोपों ने सोचा कि उसमें से थोड़ा सा पुण्य जिज्ञासुओं को बाँट देने में कोई हर्ज न होगा ; किसी तरह ख़ज़ाना ख़ाली नहीं हो सकता। बस, पोप इन जिज्ञासुओं की सिफ़ारिश करते हुए ख़ुदा के फ़रिश्तों के नाम चिट्ठी काटने लगे। प्रत्येक सिपाही, जो इस धर्म-युद्ध में पोप की तरफ़ से भरती होने को राज़ी होता था, पाप और नरक से छुटकारा पा जाता था। इस लोभ में पड़कर झुंड-के-झुंड क्रुस्तान, राजा-बाबू, अमीर-ग़रीब घर-द्वार बेंचकर लड़ाई में शामिल हो गए। पर लालच का अंत नहीं है। जहाँ लगाम ढीली की कि मन हाथ से बे-हाथ हुआ। जब प्रचुर धन मिलने लगा, तब पोप भी ख़र्चीले बन गए, और ख़र्च जुटाने को आमदनी की नई मद ढूँढ़ निकालने लगे। सोचा गया कि अपने अतुल ख़ज़ाने में से थोड़ा-सा पुण्य महंतों के हाथ बेंचने में कोई हर्ज नहीं। यह देख-सुनकर जितने छोटे-बड़े महंत थे, सब थोड़ा-बहुत पुण्य-संचय करने लगे। अब पुण्य के ख़्वाहाँ क्रुस्तानों को घर-द्वार छोड़कर रोम जाने की ज़रूरत न रह गई। आस-पास के गिरजाघरों में ही, पोप की मेहरबानी से, पादरी लोग रुपए लेकर पाप काटने को तैयार हो गए। फिर तो आदमी पैसे के ज़ोर से एक-दो पापों से क्या, जन्म-भर के लिये पाप-मुक्त हो जा सकता था। इतना ही नहीं, अगर काफ़ी चढ़ावा चढ़ावे, तो उसको क्या, उसके मरे पुरखों तक को पाप नहीं छू सकता था ! पुरखे अगर नरक में पड़ गए हों, तो पादरी लोग सिफ़ारिशी चिट्ठी के ज़ोर पर फ़रिश्तों को ख़बर भेजकर स्वर्ग में जगह दिलवा देने का बीमा लेते थे। पाठको, आप हताश न हों। अगर स्वर्ग की ख़्वाहिश है, तो आजकल भी बंबई के इसमाईलियों के महंत को ख़ुश कर आप भी फ़रिश्ते जिब्राईल के नाम ख़त ले सकते हैं !

मध्य युग में यिरूशलीम या रोम की यात्रा का बड़ा महत्त्व था। घर से निकलने के पहले यात्री गिरजाघरों में जाकर पुरोहितों के सामने पाप स्वीकार करता था, पवित्र रोटी और शराब का प्रसाद लेकर देह पवित्र करता था। पहनने को झूल और सरंजाम में झोरा, तुंबा और सोंटा साथ रहता था। पुरोहित महाराज इन्हें एक-एक कर मंत्र से अभिषिक्त करते और यात्री को पहना देते थे। सोंटा बहुत काम का था। कभी-कभी भीड़ में, मंदिर में घुसने के लिये, इसका व्यवहार कर लिया जाता था। जब तक बाहर रहते थे, दाढ़ी बढ़ाया करते थे। सफ़र दूर तथा जोखिम का था, इसलिये झुंड

बाँधकर रास्ते में गीत-भजन गाते चलते थे। जिन्होंने बैजनाथ, जगन्नाथ, बदरीनाथ के पैदल यात्रियों का झुंड देखा है, उन्हें इसका पूरा अनुभव हो जायगा। तीर्थ-यात्रा की निशानी कुछ-न-कुछ अवश्य लानी पड़ती थी। जगन्नाथजी से लौटे हुए हिंदू-यात्रियों की तरह कोई 'पट' या तमग़ा लाना ज़रूरी था। पश्चिम-योरप के यात्री या तो मारशेल्स में या वेनिस में जहाज़ पर सवार होकर एशिया-माइनर जाते थे। डेढ़-दो महीने सफ़र में लग जाते थे, और ख़र्च भी पूरा बैठता था। बारहवीं सदी में कोई दो हज़ार रुपए फ़ी आदमी का ख़र्च था। जब तक यात्रियों की संख्या थोड़ी रही, तब तक ये लोग जहाँ-तहाँ गृहस्थों के यहाँ टिकते-टिकते सफ़र तय कर लेते थे। ख़ास शाही हुक्म था कि कोई गृहस्थ इन्हें टिकाने से इनकार न कर सकेगा। पर जब संख्या बढ़ने लगी, तब तो बाबा रामनाथ कालीकमलीवाले की चट्टियों की तरह, जगह-जगह पर विश्राम-शालाएँ खुलीं। आल्प्स की पहाड़ी पर की शालाएँ आज तक मशहूर हैं। पूरब की यात्रा करनेवालों की सहायता के लिये समाज भी स्थापित हुए थे। पर जब से यिरूशलीम मुसलमानों के हाथ गया, तब से यात्रियों के खाने-पीने के अलावा उनकी प्राण-रक्षा का भी प्रबंध करना पड़ा। बारहवीं-तेरहवीं सदियों के धर्म-युद्ध (जंग-सलीबी) इसीलिये हुए थे। जब एक-एक करके बिलकुल इलाक़ा क्रस्तानों के हाथ से छूट गया, तब यह चेष्टा हुई कि यात्रा ही रुक जाय। पर धर्म की लौ प्राणों से बढ़कर प्यारी होती है। पंद्रहवीं सदी तक यात्रियों में कमी न हुई। हाँ, क्रस्तान-धर्म-क्रांति के बाद से अलबत्ता संख्या घटने लगी।

ख़ास योरप में रोम-नगर बड़ा पवित्र गिना जाता था; क्योंकि वहाँ संत पाल और साधु पीटर के मज़ार थे। इन स्थानों की महिमा बढ़ाने के लिये पोपों ने 'कुंभ' की तरह 'जुबली-वर्ष' लगाया। घोषणा की गई कि यह सौ वर्ष बाद एक बार हुआ करेगा। जुबलीवाले वर्ष में जो इटालियन तीस दिन और परदेशी पंद्रह दिन तक इन मक़बरों का दर्शन करेगा, वह सब पापों से मुक्त हो जायगा! बस, लाखों की भीड़ रोज़ लगने लगी। क्यों न हो, यदि सस्ते में पाप छूट जायँ, तो फिर उससे बढ़कर और क्या अच्छा होगा? मध्य युग में दो और प्रसिद्ध तीर्थ माने जाते थे—स्पेन में कंपसटेला, जहाँ संत जेम्स का मज़ार था, और इँगलैंड में कंटरबरी, जहाँ शहीद टामस बेकेट का स्थान था। कोलोन (जर्मनी में) भी एक बड़ा पवित्र स्थल माना जाता था।

मध्य युग में तीर्थ-यात्रा का इतना महत्त्व होते हुए भी असंतोष की आवाज़ उठती ही रहती थी। बहुतों को यह दिखावट नापसंद थी। इस तरह सस्ते में पाप से छूटते देखकर लोगों को समाज के नैतिक नियमों के भ्रष्ट होने का डर था। स्त्रियों के लिये तीर्थ-यात्रा का तो एक प्रकार से निषेध ही था। मन शुद्ध न कर तीर्थों में भटकने से क्या होता है? एक बात और थी, जिसकी हँसी उड़ाई जाती थी। पुरोहितों ने पीरों का दर्जा क़ायम कर किसी को बड़ा और किसी को छोटा बनाया था। देव-स्थानों की भी यही हालत थी। मामूली अपराधों के लिये जहाँ पूजा चढ़ाना होता था, वहाँ के पीर या देवता गुरुतर अपराध काटने में अक्षम थे!

वर्तमान काल

धर्म-क्रांति—रिफ़ार्मेशन—ने तीर्थ-यात्रा को बड़ा धक्का पहुँचाया। लूथर ने तो इसी का आंदोलन शुरू किया था कि धन लेकर पाप क्योंकर कट सकता है? और जब पाप ही नहीं कटेगा, तो फिर तीर्थ-यात्रा किसलिये होगी? प्रोटेस्टेंट संप्रदायवाले तीर्थ-यात्रा और पाप-क्षय का संबंध स्वीकार नहीं करते। पर ग्रीक चर्चवाले अब तक इसके क़ायल हैं, और ख़ूब तीर्थ-यात्रा करते हैं। रोमन चर्च ने भी तीर्थ-यात्रा का एकदम त्याग नहीं किया है। १८०० से रोम-नगर का 'कुंभ' बंद है सही, पर यात्रा के दूसरे-दूसरे कारण मौजूद हैं। कभी-कभी लोगों को मरियम के गर्भ में ईश्वर के प्रवेश करने की कथा पर विश्वास नहीं होता था। इसलिये मरियम ने बहुत जगह दर्शन देकर संदेह दूर किया है। इटली, फ़्रांस, स्पेन, बेलजियम, जर्मनी में मरियम के नाम से स्थापित गिरजाघरों की संख्या बे-शुमार है। इन देशों में बहुत-से ऐसे स्थल हैं, जो मरियम के उपासकों के लिये सिद्ध-पीठ हैं। फ़्रांस का लूर्ड-नामक क़सबा इसीलिये प्रसिद्ध है। रोमन-कैथलिकों का विश्वास है कि १८५८ में यहाँ मरियम ने एक किसान की लड़की को दर्शन दिया था। १८७६ में वहाँ बड़े समारोह से गिरजा बनाया गया। इस गिरजे के पास के झरने के जल से बीमारी छूटती है। हर साल लाखों रोगी आराम होने को वहाँ जाया करते हैं। उसी तरह एक टरनैक

नाम का क़सबा लक्सेंबर्ग में है। कहते हैं, किसी ज़माने में वहाँ हैज़ा बड़े ज़ोरों का शुरू हुआ था, तभी से वहाँ एक विशेष प्रकार की यात्रा हुआ करती है। आजकल तो अब हर क़िस्म के रोगी आस-पास के जर्मन तथा बेलजियन क़सबों से वहाँ जाते हैं। यात्रा के दिन बड़ी भीड़ होती है। हज़ारों नर-नारी बाजा बजाते, गीत गाते जुलूस निकालते हैं। इसी जुलूस में उन रोगियों का दल भी होता है, जो रोग-निवारण के लिये वहाँ जाते हैं। ये तीन पग आगे बढ़कर फिर दो पग पीछे हटते हैं। यही वहाँ की ख़ास तपस्या है। इसी तरह नाचते हुए लोग उस गिरजे पर जाते हैं, जो वहाँ की पहाड़ी पर बना हुआ है। उस पर चढ़ने के लिये ६० सीढ़ियाँ हैं। आप अनुमान कर सकते हैं कि इस तरह उछलते-कूदते इन साठ सीढ़ियों पर चढ़ जाना कैसा कठिन है। ६० सीढ़ियों के लिये तीन सौ क़दम उठाने की ज़रूरत होती है। कितने तो थककर वहीं गिर जाते या बेहोश हो जाते हैं। उन्हें अगर हटा न दिया जाय, तो भीड़ में कुचल जाने का डर होता है। यह यात्रा हर साल हुआ करती है।

कैथलिकों के और भी बहुत-से तीर्थ हैं। जैसे प्रुशिया में आकेन, जहाँ मरियम तथा ईसा के वस्त्र हर सातवें वर्ष दिखाए जाते हैं; बेलजियम में ब्रूजेस, जहाँ पर मसीह का ख़ून हर साल दिखाया जाता है। चार्टरूश में मरियम की समाधि है। ट्रियर में मसीह का कोट देखने को मिलता है। इन स्थलों पर जब मेला लगता है, तब धार्मिकों की भीड़ लग जाती है।

क्रस्तान-धर्म-संबंधी एक और रवाज का उल्लेख कर लेख समाप्त करूँगा। हमारे यहाँ राम-लीला या रास-लीला की चाल है। मुसलमान मुहर्रम करते हैं। उसी तरह क्रस्तान लोग भी 'निस्तारपर्व' का तमाशा दिखाते हैं। बवेरिया में, आल्प्स की पहाड़ियों में, 'ओबेरामरगाव' नाम का क़सबा इसके लिये प्रसिद्ध है। दुनिया-भर के लोग यहाँ आया करते हैं, और बड़ी भक्ति से मसीह का यिरूशलीम पहुँचना, इजलास पर उनका विचार होना, सूली पर उनका चढ़ाया जाना इत्यादि दृश्य देखते हैं!

क्या इतने पर भी हिंदू ही मूर्ति-पूजक कहे जाकर लांछना के भागी हैं?

'ऐतिहासिक'

मयंक-महिमा

(भाद्रपद की संख्या से आगे)

सटे सदन के सहन से सजे ग्रीष्म-भवन से मैं होकर,
मिले सरोवर-तट सुंदर थल पर ज्योंही पहुँचा जाकर,
मध्यवर्ति रमणीय रविश पर आसन सुखद बिछा पाया;
बैठ गया मैं जाकर उस पर, जो था अति मन को भाया।

बनी-ठनी बाटिका-बनी की बनक जहाँ से दिखलाती,
शोभा-सरिता उमड़ी लहराती थी मन को नहलाती।

सोही सूही सुरँग चूनरी पहन मोतिया बेली की;
गोल मुहर की चादर चारु बढ़ाती प्रभा नबेली की।

कुसुम-सावनी की कंचुकी गुलाबी शोभा देती थी;
स्वर्णलता, स्वर्णालंकार सजाए, मन हर लेती थी।

था थल-कमल अमल प्रफुल्ल आनन अनूप शोभाकर-सा;
हंसराज अलकावलि मानो नर्गिस नैन मैन-सर-सा।

पद्मरागमणि-कर्णफूल करवीर-कुसुम छवि छाता था;
सुमन-समूह माधवी हीरे का लच्छा बन भाता था।

बना मोतिया मोती-माला हिय पर, हिय हर लेती थी;
चंपाकली कली चंपा मिल कुच-श्रीफल छवि देती थी।

लाल-लाल के लटकन-से गुल-अनार थे मन हर लेते;
जपा कुसुम के झब्बे चारों ओर झूलते, छवि देते।

कलित कांची बेगम बेइलिया की ललित मनोहर थी;
चारु चाँदनी कुसुमावलि की पायल सजती सुंदर थी।

किस-किस अंग-परिच्छद अलंकार की शोभा जाय कही!
जिधर दीठ यह पड़ी, अड़ी, मोहित होकर बस वहीं रही।

शुभ शृंगार सुसज्जित देख दूलहिन की शोभा प्यारी।
बनी-ठनी सब गईं संग की सहेलियाँ उस पर वारी।

सरस राग सच्चे सुर साधे गीत ब्याह के गाती थीं;
बनी प्रेम-मद-माती निज गुन-रूप-गर्व प्रगटाती थीं।

बनरा सेहरा सुना सुहाना मन में मोद मचाती थीं;
बर बिहगावलि बोल ब्याज से बहु विनोद बगराती थीं।

चारों ओर मंगलाचार मचा सचमुच था मन भाता;
साज-बाज सब विवाह का-सा, जिधर देखता, मैं पाता।

चतुष्कोण प्राकार मध्यवर्ती उचित स्थल पर सोहैं,
नव दल फल फूले फूलों से दबकर द्रुम-दल मन मोहैं

लेते थे। मानो है लगी कनात हरी उनकी अवलीं,
चारु चमत्कृत चमन की अवनि जिसके बीचो-बीच भली।
लीची औ सहकार पनस बन फ़र्शी झाड़ सुहाते थे;
लाल, हरे, पीले फल कवल कुमकुमे कलम दिखाते थे।
कदलीपत्र लिए पंखा था, गौध बनाए चामर था;
दास पपीता आतपत्र ले खड़ा देखता सुंदर था।
चोबदार बाअदब खड़े-से सर्व कतार सुहाती थी;
द्विज-अवली के बोल-व्याज से उचितादेश सुनाती थी।
लतिका-कुंज द्वार पर परदे पड़े सुमन-गुच्छावलि के,
जिसके भीतर जाने को थे वृंद अनेक अड़े अलि के।
सजी-सजाई-सी मजलिस थी शोभा अपनी दरसाती;
जिसे देखते ही बनता था, कहने में थी कब आती?
ऊपर अंबर का दल-बादल नीला तना सुहाता था;
लगा चोब सागू औ नारिकेल तरु दल मन भाता था।
हरी दूब क़ालीन मख़मली बिछी मनो मन हर लेती;
बने बेलबूटे-खे गुल फिरंग की क्यारी छवि देती।
साज मजलिसी पानदान आदिक थे सब मीनाकारी;
किए काम के औ गंगाजमुनी सुंदर शोभाधारी।
अति विचित्र दल फूले फूलों के गमले थे बने हुए;
रक्खे क्रोटन और कोलियस आदि लगे छवि छने हुए।
रत्न-जटित पत्रों के-से जो मन को मोहे लेते थे;
शहनशित वेदिका मनोहर के आगे छवि देते थे।
जिसके चारों ओर सभासद विराजते थे बने-ठने;
मानो वस्त्र-विभूषण-भूषित रूप गर्व के रूप बने।
विविध-जाति औ भाँति के लगे आलबाल लघु तरु सोहे;
रंग-बिरंगी फूल खिलाए लेते थे मन को मोहे।
शीतल, मंद मलय मारुत चल मानो व्यजन डुलाता था;
फैलाता सुगंध की लहरें मन की कली खिलाता था।
धूप-धूम-सा पराग उड़ता हुआ हृदय हरसाता था;
विशद विनोद-बाढ़ लाता मकरंद बिंदु बरसाता था।

(असमाप्त)

(स्वर्गीय) उपाध्याय बदरीनारायण
चौधरी "प्रेमघन"

क्या श्रीमद्भागवत में मूर्ति-पूजा का निषेध है ?



अनेक विद्वानों की सम्मति है कि जितने पुराण हैं, उनमें श्रीमद्भागवत सर्व-श्रेष्ठ है। सृष्टि की उत्पत्ति, वंश-वर्णन, मन्वंतरों की कथाएँ, प्राचीन इतिहास आदि का विवरण देना ही पुराणों का लक्षण है। उनमें ये सभी विषय, न्यूनाधिक रूप में, पाए जाते हैं। श्रीमद्भागवत में भी ये सब बातें हैं। यह सब होने पर भी उसमें कुछ विशेषता है। सांख्य, योग, वेदांत, मीमांसा आदि दर्शनों के तत्त्वों का बड़ा ही विशद विवेचन उसमें है। भक्ति-योग पर तो जो कुछ उसमें है, वह शायद ही कहीं अन्यत्र हो। उसके कुछ स्थल इतने सरस और सालंकार हैं कि उनके परिशीलन से सहृदयों को उतनी ही, किं बहुना उससे भी अधिक, आनंद की प्राप्ति होती है, जितनी कि कालिदास, भारवि और श्रीहर्ष इत्यादि महाकवियों के काव्यों से। उसमें कहीं-कहीं क्लिष्टता भी है; पर क्लिष्टता और सरलता पाठक की संस्कृतज्ञता पर अवलंबित रहती है। संस्कृत-भाषा पर जिसका यथेष्ट अधिकार है, उसके लिये श्रीमद्भागवत का कोई भी स्थल विशेष क्लिष्ट नहीं।

इस पुराण में कुछ ऐसी ख़ूबियाँ या विशेषताएँ हैं, जो और पुराणों में नहीं। इसी से किसी-किसी का मत है कि जो व्यक्ति इसका प्रणेता है, वही औरों का भी प्रणेता नहीं; क्योंकि श्रीमद्भागवत की रचना-शैली और पुराणों की शैली से मेल नहीं खाती। इस पुराण में जो अनेक विशेषताएँ हैं, इसी से इसका आदर औरों से अधिक है, और इसी से

इसके अधिक पारायण और "सप्ताह" हुआ करते हैं। कुछ "पंडितों" का जीविका-निर्वाह तो अकेले इसी पुराण की बदौलत होता है।

कुछ लोगों को संस्कार या संगति के प्रभाव से मूर्ति-पूजा से चिढ़ है। वे दस वर्ष के लड़के से लेकर अस्सी वर्ष के जरठ तक के लिये—मूर्ख से लेकर महापंडित तक के लिये—निराकार ईश्वर की उपासना ही को अच्छा समझते हैं। काठ, पत्थर या धातु में ईश्वर का आरोप करना उन्हें सह्य नहीं। इसी से वे मूर्ति-पूजकों की निंदा और हँसी ही नहीं करते, उन्हें मूर्ख, जड़ और अज्ञानी तक बनाते हैं। वे पुराणों को यों तो कुछ भी मान नहीं देते, पर मूर्ति-पूजकों को अप्रतिभ करने के लिये श्रीमद्भागवत के दो-तीन श्लोक सुनाकर उनसे कहते हैं—देखो, तुम्हारे इस पुराण में भी मूर्ति-पूजा की आज्ञा नहीं। उनके उद्धृत उन्हीं श्लोकों पर कुछ निवेदन करना है।

श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कंध में कपिल और देवहूति का संवाद है। कपिल ने उसमें, और-और बातों के सिवा, सांख्य, अष्टांग योग और भक्ति-योग का विवेचन किया है। पहले सांख्य-शास्त्र के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति का उपाय बताया है, फिर योग-शास्त्र के अनुसार, तदनंतर भक्ति-योग के अनुसार। पिछले, अर्थात् भक्ति-प्रकरण, का विवेचन उंतीसवें अध्याय में है। उसमें आरंभ से लेकर बीसवें श्लोक तक सारूप्य, सायुज्य, सामीप्य और सालोक्य आदि भक्ति-मार्गों का निरूपण करके कपिलजी भगवान् के मुख से कहलाते हैं—

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडंबनम् ॥ २१ ॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु संतमात्मानमीश्वरम्।
हित्वाऽर्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥ २२ ॥

अर्थात् भूतों की आत्मा के रूप में मैं समस्त भूतों (पदार्थों) में अवस्थित हूँ। मेरी इस अवस्थिति को न जानकर, अज्ञान मनुष्य (कल्पित) मूर्ति का पूजन करते हैं। वह पूजन नहीं, वह तो पूजन अथवा मेरी मूर्ति की विडंबना है। सभी भूतों में विद्यमान मुझ ईश्वर को छोड़कर जो मनुष्य, मूर्खता-वश, पूजा-अर्चा अथवा मूर्ति का भजन-भाव करता है, वह मानों राख में आहुतियाँ डालता है—वह मानों निरग्नि भस्म में हवन करता है।

ये ही वे श्लोक हैं, जिनके आधार पर यह कहा जाता है कि श्रीमद्भागवत में मूर्ति-पूजा का निषेध है। पर यथार्थ में बात ऐसी नहीं। इन श्लोकों में तो केवल इतना ही लिखा गया है कि मुझ परमात्मा को छोड़कर, या उसकी अवज्ञा करके, जो लोग मूर्ति-पूजा करते हैं, उनकी वह पूजा व्यर्थ है। अब यदि कोई भगवान्, ईश्वर, परमेश्वर या परमात्मा की अवज्ञा न करके—उसे सर्वत्र व्याप्त समझकर—साधन के सुबीते के लिये उसी की कल्पित मूर्ति की अर्चना करे, तो, इन श्लोकों के अनुसार, उसका वह कृत्य निषिद्ध कैसे माना जा सकेगा? हाँ, यदि, वह जड़-मूर्ति ही को सब कुछ समझे, उससे भिन्न परमात्मा की अवस्थिति का स्वीकार ही न करे, अथवा यदि भूत-प्रेतों और मनुष्यविशेष की मूर्तियों की पूजा करे, तो अलबत्ते उसका वैसा करना निंद्य माना जायगा। परंतु, हम देखते हैं कि अल्पज्ञ, अज्ञ और मूर्ख मनुष्य भी, देवालयों में मूर्ति-पूजा करते समय, जड़-मूर्ति ही को सब कुछ नहीं समझते। मूर्ति में जिस देवता का आरोप किया जाता है, उसी की पूजा, उसी का ध्यान और उसी की स्तुति वे करते हैं। मूर्ति से पृथक् देवता का अस्तित्व वे अवश्य अंगीकार करते हैं, और उसी की पूजा भी करते हैं।

जिस अध्याय में ये श्लोक हैं, उसके पहले, अर्थात् अट्ठाईसवें अध्याय में, अष्टांग योग का विवेचन है। पातंजल-योग-दर्शन में साधक के लिये किसी मूर्ति-विशेष की पूजा-अर्चा की आवश्यकता नहीं बताई गई है। परंतु श्रीमद्भागवत में लिखा है--

यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम्।
काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः॥

अर्थात् मन विरज किंवा निर्मल और निश्चल हो जाने पर योगी को भगवान् की मूर्ति का ध्यान करना चाहिए। इसके आगे फिर उस मूर्ति का सविस्तर वर्णन है। यही नहीं, साधक के लिये भगवान् के साकार रूप के प्रत्येक अवयव का ध्यान करने की भी आवश्यकता बताई गई है। इस दशा में भला इस पुराण के कर्ता, अथवा कपिल महामुनि, मूर्ति-पूजा का निषेध करेंगे, यह बात क्या सच्चे हृदय से कोई भी सत्यशील मनुष्य स्वीकार कर सकेगा? योगी के लिये भी जब साकारोपासना की आवश्यकता है, तब इतरों की क्या कथा। जिस ग्रंथ में भगवान् के साकार अवतारों की इतनी महिमा गाई गई है, उसी में मूर्ति-पूजा के निषेध का उल्लेख ढूँढ़ने की चेष्टा करना बहुत बड़े साहस का काम है। वह तो लोगों की आँखों में धूल झोंकना है।

जहाँ पर ऊपर उद्धृत किए गए दोनों श्लोक हैं, वहीं, दो श्लोक आगे, यह उक्ति है—

अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत्।
यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम्॥

जिसने ये श्लोक कहे हैं, वही इस श्लोक में कहता है—स्वकर्म-निरत साधक तब तक मुझ ईश्वर की आराधना, मूर्ति के द्वारा, करना चाहे, तो खुशी से करे, जब तक उसे यह ज्ञान न हो जाय कि सर्वत्र व्यापक मैं स्वयं उसी के हृदय में विद्यमान हूँ। मतलब यह कि वैसा ज्ञान हो जाने पर फिर मूर्ति-पूजा की आवश्यकता नहीं रह जाती। बात बिलकुल साफ़ है। भेद-दृष्टि दूर हो जाने पर—इस जड़-चेतन सृष्टि में परमात्मा सर्वत्र ही व्याप्त है, यह परम तत्त्व ज्ञात हो जाने पर—क्या फिर भी मूर्ति-पूजा की आवश्यकता रह जायगी? उसकी आवश्यकता तो तभी तक रहती है, जब तक यह ज्ञान नहीं होता कि परमात्मा तो मेरे ही हृदय में बैठा हुआ है।

जो पहुँचे हुए साधक हैं, अथवा जिन्हें किसी सद्गुरु की कृपा से परमात्मज्ञान की उपलब्धि का और कोई सरल मार्ग मिल गया है, वे यदि मूर्ति-पूजा करें तो निःसंदेह उस मूर्ति में अधिष्ठित देवता या ईश्वर की विडंबना है। और, ऐसे साधक मूर्ति-पूजा करते ही कब हैं? रहे अन्य समस्त सांसारिक जीव, सो उनके लिये मूर्ति-पूजा और भगवद्भजन छोड़कर अभीष्ट-सिद्धि का और साधन ही कौन-सा है? काम और क्रोध, लोभ और मोह के जाल में फँसे हुए जो मनुष्य निराकार-निराकार का नाद करते फिरते हैं, वे उन वेदांतियों के सदृश हैं, जिनके विषय में किसी ने बहुत ठीक कहा है—

कलौ वेदांतिनो भांति फाल्गुने बालका इव।

समाहित-चित्त होकर क्षण-भर भगवान् अथवा अपने अन्य इष्टदेव की मूर्ति की पूजा-अर्चा करके दीनता-दर्शन-पूर्वक उसे आत्मनिवेदन करने से और कुछ नहीं, तो चित्त-शुद्धि तो थोड़ी-बहुत होती ही है। केवल मौखिक निराकार-वाद में रत रहनेवालों और बिना किसी साधना के शुष्क शास्त्रार्थ करके कालातिपात करनेवालों को आत्मज्ञान की कितनी प्राप्ति होती है, अथवा उनके हृदयों में निर्विकार-भावों की कितनी जागृति होती है, यह वे ही बतावें, तो बता सकते हैं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

मनचले यार

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]



मनचले यार

देखा किसी का हुस्न, तबीयत मचल गई ;
आँखों का था क़सूर, छुरी दिल पे चल गई ।

क्लाउन

अरे मनचले यार ! टुक देखो अपनी ओर;
भलमंसी के भाव की करो न हत्या घोर !

"साहित्य-कला और प्रेमाश्रम"

(प्रत्यालोचना)



मार्च-मास की प्रभा में "साहित्य-कला और प्रेमाश्रम"-शीर्षक एक आलोचनात्मक लेख छपा है। उसके लेखक श्रीयुत हेमचंद्र जोशी बी० ए० हैं। इस निबंध के सहारे साहित्य कला की दृष्टि से 'प्रेमाश्रम' को सत्य, शिव तथा सुंदर के गुण से शून्य बतलाते हुए इसकी तुच्छता और अनुपयोगिता सिद्ध करने की चेष्टा की गई है, और कहा गया है कि इसमें साहित्य के एक भी महान् तत्त्व का पता नहीं है।

'प्रेमाश्रम'-जैसे समुज्ज्वल साहित्य-रत्न को व्यर्थ ही कांति-विहीन सिद्ध करने तथा उसे इस प्रकार की उपेक्षा-दृष्टि से देखने का चाहे जो कुछ अभिप्राय रहा हो, किंतु फिर भी समालोचक महाशय इसमें कृतकार्य नहीं हो सके। इसमें संदेह नहीं कि प्रतिभा-पूर्ण प्रबंध-शैली तथा ललित शब्द-योजना से आपकी साहित्य-मर्मज्ञता का कुछ पता चलता है; परंतु अपने विचारों के पुष्टीकरण के लिये आपने जिन-जिन युक्तियों से काम लिया है, वे सर्वथा असंगत और असत्य हैं। ऐसा एक भी युक्ति-पूर्ण प्रमाण नहीं दिया गया, जिसके द्वारा 'प्रेमाश्रम' की उपर्युक्त त्रुटियाँ दृष्टि-गोचर हो सकें। लेख को आद्यंत पढ़ चुकने के बाद अत्यंत खेद के साथ यही कहना पड़ता है कि इसे लिपि-बद्ध करके जोशीजी ने केवल अपनी साहित्यिक योग्यता का ही अपव्यय नहीं किया, प्रत्युत उत्कृष्ट समालोचना-शक्ति का दुरुपयोग भी कर डाला है! समालोचक का काम साहित्योपवन को कंटक-विहीन बनाना है; परंतु इस लेख में इस पवित्र कर्तव्य का किंचिन्मात्र पालन नहीं किया गया। इसमें समालोचना-सिद्धांत की जिस निर्दयता से हत्या की गई है, उसे देखकर रोमांच हो आता है! 'प्रेमाश्रम' को इस प्रकार नीचा दिखाने में समालोचक ने अपनी जिन शक्तियों का संहार किया है, वे ही शक्तियाँ यदि किसी हितकर कार्य में लगाई जातीं, तो देश तथा साहित्य का बड़ा उपकार होता। पर हम दुःख के साथ देखते हैं कि एक सुयोग्य साहित्य-सेवी ने प्रतिस्पर्द्धा के आवेग में आकर 'प्रेमाश्रम' पर साहित्य-संहारक क़लम-कुल्हाड़े का प्रहार कर डाला है!

लेख के प्रारंभ में विश्व-विख्यात साहित्यज्ञ 'रोम्याँ रोलाँ' का एक ललित वाक्य उद्धृत किया गया है। फिर श्रीयुत रघुपतिसहाय द्वारा लिखित 'प्रेमाश्रम' की समालोचना पढ़कर लेखक ने अपने दंग होने की कथा अंकित की है, और उसी अवस्था में आपने यह भी लिख मारा है कि प्रेमाश्रम के "पारखी (रघुपति बाबू) की आँखें धुँधली हैं!" यह क्यों? इसलिये कि सहायजी ने "इस उपन्यास को विश्व-साहित्य का एक उज्ज्वल रत्न सिद्ध कर दिया है।" उनकी ये प्रशंसात्मक बातें भला क्योंकर सह्य हो सकती थीं?

मूल-विषय पर विचार करने के पहले जोशीजी ने 'प्रेमाश्रम' के संबंध में अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान करने की कृपा की है, और बड़ी गंभीरता से कहा है कि "यह अच्छी पुस्तक निकली है। ××× हिंदी-साहित्य के कुहराम में कुछ प्रकाश डालेगी।" ठीक है, असल छिपा नहीं रहता। भला कहाँ तक सत्य का संहार किया जाता? बाध्य होकर आपको सच्ची बातें प्रकट करनी ही पड़ीं! परंतु मालूम नहीं कि इसी प्रकार की औचित्य-पूर्ण प्रशंसात्मक बातें लिखने के अपराध में बेचारे रघुपति बाबू की आँखें क्यों धुँधली बनाई गईं?

आगे चलकर हमारे समालोचक महाशय के क्रोध का पारा और भी बढ़ गया है। इसका भी यही कारण है कि सहाय बाबू ने देशी भाषा के इतिहास में 'प्रेमाश्रम' का प्रकाशित होना एक स्मरणीय घटना माना है, और इसी प्रकार की कितनी ही प्रशंसात्मक बातें कही हैं; जिनका सहन कर लेना समालोचक की सहन-शक्ति की सीमा से परे है। फिर इस प्रकार की व्याकुलता में आश्चर्य की कौन-सी बात है?

एक जगह 'प्रेमाश्रम' की प्रशंसाओं से बे-तरह ऊबकर आप उसके समालोचकों (बाबू रामदास गौड़, श्रीयुत कालिदास कपूर आदि) को लक्ष्य करके लिखते हैं कि "यहाँ तो पुस्तकों के गुण-दोष-वर्णन में मित्रता निभाई जाती है; जान-पहचान का ख़याल रक्खा जाता है।" सचमुच यह बात बड़े मार्के की कही गई है। परंतु इसके साथ ही हम पाठकों को यह भी बता

देना चाहते हैं कि साहित्यज्ञ के नाते श्रीयुत प्रेमचंदजी के साथ उपर्युक्त महानुभावों की जैसी मित्रता हो सकती है, उसी प्रकार के संबंध से जोशीजी भी आबद्ध हैं। आप भी प्रेमचंदजी के मित्रों में से ही हैं। ऐसी अवस्था में यदि वास्तविक प्रशंसा करने के कारण उन लोगों पर मित्रता के दुरुपयोग करने का दोष लगाया जा सकता है, तो इन अयथार्थ और विद्वेष-पूर्ण बातों से भरे हुए लेखों को लिखने के कारण जोशीजी पर भी शत्रुता साधने के विचारों से प्रेरित होकर अनुचित आलोचना करने का दोष लगाया जाना भी अनुचित नहीं प्रतीत होता।

आगे चलकर, इसी संबंध में, 'प्रेमाश्रम' के प्रस्तावना-लेखक सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू रामदास गौड़ के ऊपर असत्य-भाषण का मिथ्या दोषारोपण करते हुए यह लिखा गया है कि "यदि ऐसा न होता (यदि समालोचना में मित्रता न निभाई जाती), तो क्या बाबू रामदास गौड़ यह लिखने का साहस करते कि 'शरत् बाबू प्रेमचंदजी की तुलना दबी ज़बान से रवींद्रनाथ ठाकुर से कर गए?' इससे अधिक ग़लत बात और कोई हो ही नहीं सकती। × × × जिस मनस्वी साहित्य-धुरंधर को रवि बाबू नमस्कार करते हैं, वह यह कहे कि प्रेमचंदजी रवींद्र से टक्कर लेते हैं! कदापि नहीं। असंभव से भी अधिक असंभव।" मैं नहीं समझ सकता कि किस प्रमाण * के बल पर शरत् बाबू की इस सम्मति का खंडन करते हुए इसे सरासर असत्य सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। ऐसा लिखते समय लेखक को भली भाँति समझ लेना चाहिए था कि बाबू रामदास गौड़-जैसे बड़े विद्वान्, केवल मित्रता-मात्र निभाने के लिये तो क्या, किसी भी अवस्था में, ऐसा सफ़ेद झूठ नहीं बोल सकते। ऐसे पवित्रात्मा और निःस्वार्थ स्वदेश-सेवी साहित्यज्ञ के ऊपर इस प्रकार का दोषारोपण करना सर्वथा अनुचित है। उचित तो यह था कि पहले इस विषय का पूर्ण अनुसंधान कर लिया जाता, तब इसके विरुद्ध लेखनी उठाने तथा इसे असत्य सिद्ध करने की चेष्टा की जाती। परंतु विद्वेष बुद्धि में यह स्फूर्ति कहाँ? क्या यह भी कोई कारण हो सकता है कि जिसे रवींद्र बाबू नमस्कार करें, वह ऐसा कदापि नहीं कह सकता? कितनी लचर दलील है? क्षुद्राशय व्यक्ति के लिये यह बात भले ही लागू समझी जाय; परंतु शरत् बाबू-जैसे परमोच्च साहित्यज्ञ तथा उदाराशय पुरुष को इसकी क्या आवश्यकता? वह निष्पक्ष भाव से यथार्थ सम्मति देते समय किसी व्यक्ति-विशेष का क्यों ख़याल करने लगे? मैं न केवल जोशीजी से ही, प्रत्युत ऐसे विचारवाले प्रत्येक पुरुष से, ललकारकर कहता हूँ कि जिसे शरत् बाबू के इस कथन पर विश्वास न हो, वह प्रेमाश्रम-प्रकाशक के पास जाकर खुली आँखों से देख ले कि यह बात कहाँ तक सत्य है। प्रकाशक के पास उक्त सम्मति-पत्र, ज्यों-का-त्यों, विद्यमान है। इस प्रकार निराधार आक्षेप करना किसी भी सभ्य पुरुष के लिये सराहनीय नहीं है।

* मई की 'प्रभा' में जोशीजी ने शरत् बाबू से मिलकर उनकी ऐसी ही सम्मति होने की बात लिखी है। पर इस प्रत्यालोचना के लेखक भी आगे चलकर लिखते हैं कि प्रेमाश्रम के प्रकाशकों के पास शरत् बाबू की वह लिखित सम्मति मौजूद है, जिसमें उन्होंने रवि बाबू से प्रेमचंद की समता स्वीकार की है। किसकी बात पर विश्वास किया जाय, समझ में नहीं आता।
संपादक

शरत् बाबू की इस सम्मति से जोशीजी अस्त-व्यस्त हो गए हैं। तभी तो आपने बिना समझे-बूझे लिख मारा कि "प्रेमाश्रम में धरा ही क्या है? एक भी चरित्र नहीं, जो साहित्य का सम्मान रख सके। एक वाक्य ऐसा नहीं, जो दिल पर असर करे। एक परिच्छेद ऐसा नहीं, जिसमें भद्दी-भद्दी भूलें न हों। मुझे तो यह भी पता न चला कि यह किस श्रेणी का उपन्यास है। संसार का प्रकृत चित्र है? भावुकता-पूर्ण है? आसमान से बातें करनेवाला है, अथवा इन सबका घोल (?) है?"

जिस प्रेमाश्रम ने साहित्य-संसार में युगांतर उपस्थित कर दिया, जो हिंदी-भाषा की मौलिकता और सुंदरता का गौरव-स्वरूप है, जिसमें साहित्य-सम्मान की सामग्रियाँ कूट-कूटकर भरी पड़ी हैं, उसी के संबंध में, उसका तीव्र तिरस्कार करते हुए, यह कह देना कि 'इसमें धरा ही क्या है?', सत्य और न्याय का गला घोटना; और मातृ-भाषा का घोरतर अपमान करना नहीं, तो और क्या है? अनेक अनुपम सामग्रियों से परिपूर्ण प्रेमाश्रम में भी यदि किसी को कुछ न देख पड़े, तो इसमें दोष किसका है?

'प्रेमाश्रम' को देखकर जिस हिंदी-सेवी की आँखों से विशुद्ध गौरवामृत-बूँदें टपकने के बदले विद्वेष-पूर्ण चिनगारियाँ झड़ रही हों, उसे उसमें भद्दी-भद्दी भूलों के अतिरिक्त और क्या दिखाई दे सकता है? प्रतिस्पर्द्धा

की रगड़ खाते-खाते जिसका हृदय घिसे हुए पत्थर के समान कठोर हो गया हो, उसके दिल पर इसके किसी भी वाक्य का असर ही क्या पहुँच सकता है ? जिसके मस्तिष्क में विषैली बुद्धि ने अपना घर बना लिया हो, उसे क्योंकर ज्ञात हो सकता है कि यह किस श्रेणी का उपन्यास है ? उसके लिये तो यह आसमान से बातें ही करनेवाला है । मुझे आश्चर्य है कि एक सुयोग्य 'कला-कुमार' (Bachelor f Arts) होते हुए भी जोशीजी इस ग्रंथ-रत्न का श्रेणी निर्णय तक नहीं कर सके !

माननीय जोशीजी ने इस लेख में अपने कथन-पार्थक्य को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है । आपने लिखा है कि "प्रेमाश्रम को पूरा पढ़ चुकने के बाद यह शंका रह जाती है कि लेखक ने इसमें क्या बात बतलाने की चेष्टा की है।" परंतु आगे चलकर आप अपने ही मुख से अपनी शंका का समाधान करते हुए लिखते हैं कि "इस उपन्यास में किसानों के दुःख-निवारण का उपाय बतलाने की चेष्टा की गई है । उपन्यास का प्रेमाश्रम नाम बतलाता है कि इसका मुख्य उद्देश्य 'प्रेमशंकर' की प्रेमाश्रम की महत्ता दिखलाना है । × × × लेखक ने उपन्यास-भर में जिन घटनाओं का वर्णन किया है, वे सब प्रेमाश्रम का तात्पर्य स्पष्टतया दिखलाती हैं । प्रेमाश्रम के सहारे प्रेमचंदजी ने यह बतलाने की चेष्टा की है कि ज़मींदार का क्या कर्तव्य होना चाहिए ? किसानों की दुरवस्था किस प्रकार दूर की जा सकती है ? किस प्रकार किसान शिक्षित और सुचरित्र बनाए जा सकते हैं ? ये बातें नज़र में रखकर उन्होंने ज्ञानशंकर के समान अर्थ-लोलुप, धर्म-ध्वज तथा पाखंडी नर-पिशाच, गायत्री के समान सरल-हृदया तथा जीवन की अभिज्ञताओं से अपरिचित युवती, शक्ति के अद्‌भुत उपासक कमलानंद तथा ज्ञान-वृद्ध साम्यवादी मायाशंकर आदि व्यक्तियों के चरित्र का चित्रण किया है। × × × और भी कई पात्रों के सहारे जगह-जगह पर नैतिक उपदेश तथा लोक-हित की शिक्षा दी गई है ।"

कैसी विचार-विलक्षणता है ? सम्यक् रूप से सब बातें जानते हुए तथा ग्रंथ के उद्देश्यों को स्पष्टतया समझते हुए भी जोशीजी को यह शंका रह गई कि इसमें क्या बतलाने की चेष्टा की गई है ! ख़ूब !

इसी के संबंध में आपने एक क़दम और भी आगे बढ़कर पूछा है कि अब प्रश्न यह उठता है कि औपन्यासिक साहित्य का उद्देश्य केवल लोक-हित की शिक्षा देना है, या नैतिक उपदेश के साथ-ही-साथ मनुष्य-जीवन के अंतर्गत छिपे हुए महान् सत्य को प्रकट करना भी ?" इस संबंध में अनेक विद्वानों के भिन्न-भिन्न मतों का भी आपने उल्लेख किया है । निस्संदेह यह प्रश्न अत्यंत महत्त्व-पूर्ण, गंभीर और विचारणीय है । किंतु इसका उत्तर देने के पहले मैं नम्रता-पूर्वक जोशीजी से यह पूछता हूँ कि आख़िर लोक-हित की शिक्षा या नैतिक उपदेश देने का उद्देश्य क्या है ? क्या इससे मानव-जीवन के भीतर का छिपा हुआ महान् सत्य नहीं प्रकट किया जाता है ? जिन साधनों के सहारे असत्य का अंधकार दूर किया जाता है, वे ही साधन क्या सत्य-प्रकाश के लिये लागू नहीं हैं ? अगर ऐसा नहीं है, तो क्या लोक-शिक्षकों का काम उपदेशों द्वारा सत्य को संदूक़ में बंद कर देना है ? श्रद्धास्पद जोशीजी महाराज ! उतावली में आकर नहीं, अत्यंत गंभीर विचारों से काम लेकर, इन प्रश्नों का उत्तर सोचिए । अंततः आपको मानना पड़ेगा कि महान् सत्य एक-मात्र नैतिक उपदेश तथा लोक-हित की शिक्षा ही के सहारे प्रकट किया जाता है । मैं समझ नहीं सका कि आपके इस प्रश्न का कारण क्या है ? मेरी तुच्छ बुद्धि में तो प्रत्येक प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक ने लोक-शिक्षक का काम करते हुए इस महान् सत्य को ही प्रकट करने की चेष्टा की है ; उसका तो एक-मात्र यही उद्देश्य रहा है कि लोक-हितकर शिक्षा द्वारा असत्य का अंधकार दूर करते हुए सत्य की ज्योति छिटकाई जाय। अगर ऐसा न होता, तो फिर किसी भी उपन्यास का महत्त्व ही क्या रह जाता ? प्रेमाश्रम का भी एक-मात्र उद्देश्य यही है । और, फिर, जब इस संबंध में प्रत्येक विद्वान् का मत विभिन्न है, तो लेखक अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जिस मार्ग का अवलंबन करे, उसमें किसी को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता ही क्या है ?

टुर्गेनिक, टालसटाय, रोम्याँ रोलाँ तथा रवींद्र बाबू और प्रेमचंदजी की रचनाओं में आकाश-पाताल का अंतर बतलाते हुए एक जगह कहा गया है कि "प्रेमाश्रम में जो समस्याएँ सामने रक्खी गई हैं, वे ही सब कुछ हैं; प्रेमाश्रम उन्हीं को लेकर बना है । उन्हें निकाल दीजिए, तो इसमें कुछ भी बाक़ी न रहेगा । उनके निकालने से उपन्यास की और सब घटनाएँ बालू की भीत के समान गिर पड़ेंगी ।" न-मालूम इस कथन का असली अभिप्राय क्या है ? यह

तो स्वयं-सिद्ध ही है कि जिन-जिन सामग्रियों के संकलन से किसी वस्तु-विशेष का निर्माण किया जाता है, उन्हें निकालते ही उसका स्वरूप नष्ट हुए बिना नहीं रहता। इसी प्रकार जिन-जिन समस्याओं को सामने रखकर तथा जिन-जिन सामग्रियों के आश्रय से 'प्रेमाश्रम' की रचना की गई है, उन्हें निकाल लेने पर वह कुछ रह ही नहीं जायगा। यह तो ठीक वैसी ही तर्क-विहीन बात है, जैसे कोई कहे कि अमुक घर जिन-जिन स्तंभों के बल पर खड़ा है, वे ही उसके सब कुछ हैं; यदि वे खींच लिए जायँ, तो तुरंत ही घर गिर पड़ेगा। हम पूछते हैं कि इस बात में कौन-सी नवीनता है? यह निर्विवाद सिद्ध है कि लेखक जिन-जिन घटनाओं तथा समस्याओं को सम्मुख रखकर ग्रंथ-रचना करता है, वे ही उसकी रचना के प्राण हैं। यह बात केवल 'प्रेमाश्रम' ही के लिये लागू नहीं है। क्या जोशीजी किसी भी ऐसे ग्रंथ का नाम बता सकते हैं, जिसकी प्रधान समस्याएँ तथा घटनाएँ अलग कर देने पर भी उसका स्वरूप सर्वांग-सुंदर रह जाय?

'प्रेमाश्रम' में जिन-जिन मानव-भावों का विश्लेषण किया गया है, उन्हें हलके ढंग का, कृत्रिम और असत्य बतलाते हुए लिखा गया है कि "ज्ञानशंकर का चरित्र आरंभ में धूर्तता, अर्थ-लोलुपता तथा छल-कपट से पूर्ण है; पर बाद में उसका चरित्र जिस प्रकार चित्रित किया गया है, वह असत्य है। गायत्री के प्रति ज्ञानशंकर का जो मनो-भाव लेखक ने प्रकट किया है, वह अनोखा है। लेखक ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि ज्ञानशंकर का हृदय गायत्री के प्रति आकर्षित हो रहा है पर साथ-ही-साथ उसके धन को अपहृत करने की प्रबल लालसा घट नहीं, बढ़ रही है। ऐसा अयथार्थ भाव संसार में किसी भी मनुष्य के हृदय में स्थान नहीं पा सकता।" इस कथन को पुष्ट करने के लिये यह भी कहा गया है कि "यह साधारण बात है कि जहाँ हृदय में प्रेम-भाव अंकुरित हुआ, वहाँ भयंकर-से-भयंकर अर्थ पिशाच की भी मनोवृत्ति ऐसी हो जाती है कि वह अपनी प्रेम-पात्री से कुछ लेने की इच्छा करने के बदले उलटे उसे ही कुछ दान करना चाहता है। हमें आश्चर्य होता है कि मनस्तत्त्व का यह साधारण तत्त्व तथा प्रीति की यह रीति लेखक को दृष्टि-गोचर क्यों नहीं हुई?"

ऐसा लिखते समय प्रीति की रीति तथा मनस्तत्त्व के गंभीर ज्ञाता श्रीमान् जोशीजी को समझ लेना चाहिए था कि गायत्री के प्रति ज्ञानशंकर के आकृष्ट होने का मुख्य कारण क्या था? ज्ञानशंकर का तो एक-मात्र उद्देश्य उसकी अतुल संपत्ति का अपहरण करना ही था, जिसकी सिद्धि के लिये उसने प्रेम का जाल फैलाकर गायत्री को फँसाने की चेष्टा की थी। निस्संदेह प्रेमी अपनी प्रेमिका से कुछ लेने के बदले उसे देना ही चाहता है; परंतु यह उस अवस्था की बात है, जब प्रेमिक की आत्मा निःस्वार्थ, पवित्र और कुवासना-रहित प्रेम-सागर में निमग्न हो गई हो, जब उसके प्रेम में किसी प्रकार का कलंक न रह गया हो। मगर जब कुत्सित प्रेम का एक-मात्र उद्देश्य अपनी काम-लिप्सा पूर्ण करते हुए किसी स्वार्थ की सिद्धि करना है, तब वहाँ ये बातें कैसे लागू हो सकती हैं? आदि से अंत तक ज्ञानशंकर का लक्ष्य गायत्री की संपत्ति की ही ओर था। उसी के लिये उसने सारी लीलाएँ रची थीं। फिर वहाँ प्रीति की रसीली रीति का क्या ठिकाना? हमें आश्चर्य और दुःख है कि नित्य घटनेवाली घटनाएँ भी जोशीजी नहीं समझ सके अथवा भूल गए हैं! ज्ञानशंकर की इस स्वार्थ-पूर्ण कुत्सित कुवासना को प्रेम के नाम से पुकारकर आपने 'प्रेम'-शब्द की जैसी दुर्दशा की है, उसे देखकर कलेजा काँप उठता है! इसी के संबंध में यह भी कहा गया है कि "यह कहा जा सकता है कि ज्ञानशंकर जिसे 'प्रेम' समझे बैठा था, वह काम-वासना-मात्र थी। परंतु (प्रेमाश्रम के) लेखक ने यह बात कहीं भी नहीं कही।" क्या खूब? सचमुच प्रेम-चंदजी से बड़ी भयंकर भूल हो गई। मगर वह बेचारे क्या जानते थे कि इतनी मोटी-सी बात भी किसी के दिमाग़ में न समा सकेगी? उन्हें तो दृढ़ विश्वास था कि मनस्तत्त्व के तत्त्वों तथा प्रीति की रीति को जाननेवाले रसीले जोशीजी इस छिपी बात को तो तुरंत ही ताड़ जायँगे। फिर स्पष्टीकरण की क्या आवश्यकता?

ज्ञानशंकर के चरित्र-चित्रण के संबंध में, आगे चलकर, लिखा गया है कि "ज्ञानशंकर द्वारा कमलानंद को विष खिलाकर लेखक ने ज़्यादती की है ××× । उसके समान छल-प्रपंच में कुशल व्यक्ति ऐसी कच्ची कार्यवाही करे, यह विकट बात है।" आश्चर्य है कि समालो-चकजी इसे किस प्रकार 'कच्ची कार्यवाही' बता रहे हैं। जो विष २०-२५ मनुष्यों को सुला देने के लिये काफ़ी था, उसी विष का अकेले रायसाहब पर प्रयोग किया जाना

यदि कच्ची कार्यवाही है, तो मालूम नहीं पक्की कार्यवाही किसे कहते हैं ? जिसके संबंध में स्वयं कमलानंद ने कहा है कि 'इसका एक कौर खा लेने के बाद दूसरे कौर को उठाने की ज़रूरत ही नहीं रह जाती', उसी विष के प्रयोग की क्रिया को 'कच्ची' कहकर जोशीजी ने सचमुच कमाल कर दिया है ! यदि ज्ञानशंकर के उस उपाय से राय-साहब की मृत्यु न हो सकी, तो इसका कारण यह कदापि नहीं है कि 'उपाय त्रुटि-पूर्ण था ।' बल्कि मृत्यु न हो सकने का एक-मात्र कारण रायसाहब की अद्भुत निवारण-शक्ति तथा योग-शक्ति थी। यदि वह योग-बल से विष के असर को न हटा सकते, तो उनकी मृत्यु निश्चित थी। ज्ञानशंकर ने तो ऐसी पक्की कार्यवाही की थी कि रायसाहब के स्थान पर यदि दूसरा मनुष्य होता, तो उसे उसी क्षण सदा के लिये सो जाना पड़ता। यहीं न रुककर, एक क़दम और भी आगे चलकर, आपने कहा है कि जिस मानसिक अवस्था के कारण ज्ञानशंकर ने ऐसा किया, उसका कारण निर्मूल है। क्या ख़ूब ? सारी राम-कथा पढ़ गए; मगर सीता किसकी स्त्री थी, यही नहीं जान सके ! 'प्रेमाश्रम' के ४३१वें पृष्ठ में स्पष्ट लिखा हुआ है कि ज्ञानशंकर की ऋद्धि-प्राप्ति के मार्ग में रायसाहब ही एक बाधक थे, इसलिये उस बाधा को हटाना आवश्यक जानकर ही उसने अपनी आकांक्षाओं की वेदी पर उन्हें बलिदान करने की ठानी । किंतु, नहीं मालूम, फिर भी, जोशीजी को इसका कारण क्यों निर्मूल दिखाई दे रहा है ?

ज्ञानशंकर पर टिप्पणियों की समाप्ति यहीं पर नहीं हुई, आगे चलकर एक जगह और भी कहा गया है कि 'ज्ञानशंकर के चरित्र का अंत जिस प्रकार दिखलाया गया है, वह हास्य-जनक है । उससे अकस्मात् आत्म-हत्या करवाकर चरित्र के विकास का एकदम ह्रास किया गया है । ××× जो ज्ञानशंकर जीवन-भर निराशा से लड़ते रहे, रायसाहब को ज़हर खिलाकर पकड़े जाने पर भी जो सोलहों आने निर्लज्ज और धूर्त बने रहे, गायत्री के विषय में कई बार हताश होकर जिस नीच-हृदय ने सुदृढ़ हिंदू-समाज को तृणवत् समझा और धर्म को ताक़ पर रखकर गायत्री को अपने क़ाबू में कर ही लिया, उसकी जायदाद हड़प ली, उसको अपनी तरफ़ से प्रायः नष्ट ही कर डाला, और यह सब करने पर भी जिसके चित्त में आत्म-ग्लानि की छाया भी न पड़ी, वह 'माया-शंकर' का व्याख्यान सुनने पर प्रलय के सागर में ऐसा डूब जाता है, मानो उसे नई रूह मिल गई हो ! क्या उसे उस समय एक तिनके का भी सहारा नहीं मिला ?''

इन बातों से स्पष्ट जान पड़ रहा है कि जोशीजी ने ज्ञानशंकर के चरित्र का बिलकुल ही अध्ययन नहीं किया । यदि वह इसमें थोड़ा-सा भी जी लगाते, तो भली भाँति समझ जाते कि अकस्मात् आत्म-हत्या करने के कारण ज्ञानशंकर के चरित्र-विकास का किंचिन्मात्र ह्रास नहीं हो सका है । ऐसी घटना तो उस अवस्था के लिये सर्वथा उपयुक्त और स्वाभाविक ही है । जोशीजी यहाँ पर यह समझने में चूक गए हैं कि ज्ञानशंकर की इस अद्भुत जीवन-घटना का असली रहस्य क्या था। लाला प्रभाशंकर से अलग हो जाने, प्रजा को पीड़ा पहुँचाने, प्रेमशंकर को अपने घर में न रखने, अपने एक-मात्र साले की मृत्यु पर भी मन में प्रसन्न होने आदि दुर्वृत्तियों का क्या कारण था ? किसलिये उसने रायसाहब को विष खिलाकर परले सिरे की नीचता और निर्लज्जता दिखाई ? एक सुशिक्षित व्यक्ति होते हुए भी उसमें इतनी स्वार्थांधता होने का क्या कारण था ? किस आशा और भरोसे पर वह जीवन-भर निराशा के साथ घनघोर युद्ध करता रहा, और अंत को किस कारण उसे आत्म-हत्या करनी पड़ी ? इन सभी प्रश्नों का एक-मात्र उत्तर है—'मायाशंकर के कारण' । केवल उसी के लिये उसने सारे काम किए, वही उसका स्वार्थ था, और उसी की उसे आशा थी । अपने लिये भी वह जो काम करता था, उसमें भी मायाशंकर की ही हित-चिंता के भाव भरे रहते थे। एक-मात्र उसी के लिये उसने लोक-लज्जा को तिलांजलि दे डाली, और अनेकों भीषण नारकीय कृत्य करने में भी आगे-पीछे का विचार न किया। मगर वही मायाशंकर जब उसके सारे मनोरथों को मिट्टी में मिलाते हुए साम्य-वाद के मैदान में उतर पड़ा, तब वह बिलकुल हताश हो गया । जिसके लिये उसने चोरी की थी, वही उसे चोर कहकर अलग हट गया । जिसके लिये उसने इतनी भीषण यंत्रणाएँ सहन कीं, उसी के प्रतिकूल हो जाने पर वह ऐसा पागल हो गया कि उसकी बुद्धि भी उसे छोड़कर भाग गई। मायाशंकर की वक्तृता सुनते ही वह व्याकुल हो उठा। आख़िर अवस्था इतनी भयंकर हो गई कि उसे अपना जीवन भी भार-सा मालूम होने लगा । प्रलय के अंधकार में जब कुछ नहीं सूझ

पड़ा, तब उसने गंगाजी के उदर में प्रविष्ट होकर अपनी आत्मा की ज्वाला शांत कर दी ! वह सदा के लिये यहाँ से भाग गया ! ऐसी घटनाएँ प्रायः घटती रहती हैं। सच्चे पुत्र-स्नेही पिता को पुत्र की प्रतिकूलता के कारण जो मार्मिक पीड़ा होती है, उसे जब वह नहीं सहन कर सकता, तब लाचार होकर ज्ञानशंकर की तरह आत्म-हत्या कर डालता है, ऐसे उदाहरण अनेकों विद्यमान हैं। किंतु फिर भी जोशीजी ने इसे हास्य-जनक माना है, यह देखकर आश्चर्य होता है। केवल यही नहीं, आपका यह भी कहना है कि मृत्यु के समय 'हाय ! मैं ज़बरन् मारा जा रहा हूँ' कहने के बदले यदि वह यह कहता कि 'बचूँगा, तो और भी लड़ूँगा', तो अधिक उचित होता। समझ में नहीं आया कि ऐसा कहना आपको क्यों उचित जँच रहा है ? ज्ञानशंकर की तो एक-मात्र यही अभिलाषा थी कि "मायाशंकर सुख-पूर्वक राज्य करे, और मैं इसके आनंद का उपभोग करूँ।" लेकिन उसकी इस आशा पर पानी फिर गया। जिसके लिये वह जीवन-भर लड़ता रहा, वही जब उससे अलग हट गया, तब फिर वह यह किसलिये कहता कि "बचूँगा, तो और भी लड़ूँगा ?" उस बेचारे को उस समय क्या यह मालूम था कि मेरी यह अंतिम वाणी जोशीजी को इतनी अखरेगी ? नहीं तो वह (एक लेखक होने के कारण समालोचक को चिढ़ाने के लिये) ऐसी गुस्ताख़ी कदापि न करता !

आगे चलकर प्रेमशंकर के संबंध में लिखते हुए कहा गया है कि "प्रेमशंकर का कार्य-क्रम महात्मा गांधी के मूल-सिद्धांत पर प्रतिष्ठित है। प्रेमशंकर के चरित्र का अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि लेखक का उद्देश्य प्रेमशंकर के गुण तथा प्रेमाश्रम की महत्ता दिखलाकर एक प्रकार का प्रचार-कार्य करना है, और यह बात साहित्यिक उद्देश्य के अनुकूल नहीं है।" यहाँ किसी ग्रंथ द्वारा प्रच[ार-]कार्य को साहित्यिक उद्देश्य के प्रतिकूल सिद्ध करने के लिये 'रोम्याँ रोलाँ' के जिस कथन का हवाला दिया गया है, उससे यह कदापि नहीं सिद्ध होता कि उसने प्रचार-कार्य को साहित्यिक उद्देश्य के प्रतिकूल बताया है। उस वाक्य से तो केवल उसकी साहित्य-कला-प्रियता का ही पता चलता है। अगर मैं भूलता नहीं हूँ, तो संसार के किसी भी साहित्यिक या साहित्यज्ञ ने इसे बुरा नहीं बताया। ऐसा एक भी धुरंधर लेखक नहीं है, जिसने किसी प्रचार-विशेष के लिये अपने ग्रंथ की रचना न की हो। चाहे ग्रंथ किसी भी उद्देश्य से लिखा गया हो, किंतु किसी-न-किसी रूप में उसके अंदर किसी प्रचार का भाव अवश्य छिपा रहता है। क्या रवि बाबू के 'गोरा' में किसी भी प्रचार-कार्य के भावों का समावेश नहीं है ? 'गोर्की' की रचनाओं का उद्देश्य क्या प्रचार-कार्य करना नहीं है ? Art for art's sake के सिद्धांतवाले लेखकों ने भी किसी-न-किसी प्रकार का प्रचार अवश्य किया है, और मेरी सम्मति में ऐसा करना सर्वथा उचित है। जिस साहित्य का उद्देश्य लोक-हित की शिक्षा देना है, उसमें प्रचार-कार्य के भावों का समावेश कदापि अनुचित नहीं हो सकता। ऐसा होने से उसकी मर्यादा घटने के बदले और भी बढ़ जाती है।

इसके पश्चात् लिखा गया है कि "श्रद्धा के प्रति प्रेमशंकर के मनोभाव और प्रेमशंकर के प्रति श्रद्धा के भाव असंगत हैं। ××× इन दोनों का धार्मिक झगड़ा पढ़कर जी ऊबने लगता है। ××× गायत्री का चरित्र भी निराला है। रात-दिन ज्ञानशंकर के साथ हँसी-मज़ाक़ करना, उसके प्रति उत्पन्न हुए प्रेम को कृष्ण-प्रेम समझना और साथ ही अपने सतीत्व को अक्षुण्ण रखना अस्वाभाविक है। खुले-आम मंच पर खड़े होकर व्याख्यान देना और नाटक में भाग लेना अनुचित और अनावश्यक है।" न-मालूम किस आधार पर प्रेमशंकर तथा श्रद्धा के पारस्परिक मनोभावों को आपने असंगत कह डाला ? अँगरेज़ी शिक्षा के रंग में शराबोर होने के कारण उन दोनों के धार्मिक झगड़ों से आपके जी का ऊब जाना तो उतना आश्चर्य-जनक नहीं प्रतीत होता, परंतु आपको न-मालूम गायत्री के चरित्र से किस निरालेपन की बू आती है ? गायत्री के सतीत्व के संबंध में जो बात कही गई है, उसे हम भी मानते हैं कि उस अवस्था में उसके लिये सतीत्व का अक्षुण्ण रखना सर्वथा असंभव है। प्रेमाश्रम के लेखक ने भी कहीं ऐसा नहीं कहा है कि गायत्री का सतीत्व अक्षुण्ण रह गया था। हाँ, उसकी सतीत्व-भ्रष्टता की बात स[ाफ़] नहीं की है। प्रेमचंदजी ने जिस चतुरता के साथ कृष्ण-लीला करते समय गायत्री और ज्ञानशंकर का पारस्परिक आलिंगन करवा दिया है, उसी से समझ लेना चाहिए कि उसका क्या तात्पर्य है। खुले-आम मंच पर गा[यत्री] गायत्री से व्याख्यान दिलवाया गया है, तो इसमें क[ौन]

आपत्ति नहीं। एक स्वतंत्र विचार की स्त्री के लिये ऐसा करना स्वाभाविक ही है। क्या आजकल हमारे देश की देवियाँ खुले-आम मंच पर खड़ी होकर वीरोचित भावों से भरी हुई वक्तृताएँ नहीं दे रही हैं? क्या उनका यह काम अनुचित समझा जाता है? यदि यह अनुचित नहीं है, तो गायत्री भी इसके लिये सर्वथा निर्दोष है।

एक जगह प्रेमाश्रम की कई घटनाओं को अनावश्यक बतलाया गया है, और इसके संबंध में कहा गया है कि "तेजू और पद्मू की भयंकर मंत्र-सिद्धि, गायत्री की अकाल-मृत्यु, तथा प्रभाशंकर के चटोरेपन का उल्लेख न होने में कोई नुक़सान नहीं था।" मेरी सम्मति में तो इसके बिना बड़ा ही नुक़सान था। तेजू और पद्मू की उस भयंकर मंत्र-सिद्धि का उल्लेख करके लेखक ने यह समझाने की चेष्टा की है कि बालचापल्य-पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा के भावों से प्रेरित होकर बिना पुरुषार्थ किए ही, केवल मंत्र-सिद्धि के सहारे, उन्नति-शिखर पर चढ़ने की चेष्टा करनेवाले बालकों की क्या दुर्गति होती है। इसके द्वारा मानव-समाज को कर्तव्य-प्रधानता की शिक्षा दी गई है। गायत्री की मृत्यु के संबंध में भी कोई दूषण नहीं सिद्ध किया जा सकता। लाला प्रभाशंकर की वृद्धावस्था में उनके चटोरेपन को बतलाते हुए लेखक ने यही शिक्षा दी है कि किसी भी मनुष्य को किसी भी अवस्था में स्वाद का ग़ुलाम नहीं बनना चाहिए। लालाजी की उस दशा को देखकर अनायास ही इस भाव का उदय हो जाता है कि मनुष्य को अपनी प्रत्येक इंद्रिय पर पूरा अधिकार रखना चाहिए। जिसका उल्लेख करने से ऐसी-ऐसी शिक्षाएँ मिल रही हैं, उसे अनावश्यक कहना कहाँ तक ठीक है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं।

अपने लेख के अंत में जोशीजी ने छिपे रूप से 'प्रेमाश्रम' पर यह दोषारोपण करने का प्रयत्न किया है कि लेखक ने उपन्यास के पात्रों से मनमाना काम करवाया है; पात्र के जीवन में होनेवाली घटनाएँ लेखक ने अपनी कल्पना और इच्छा पर निर्भर कर रक्खी हैं, उसके जीवन की परिस्थिति के अनुकूल नहीं। इसकी सत्यता प्रमाणित करने के लिये फिर भी उसी ज्ञानशंकर की मृत्यु का हवाला दिया गया है। उसकी मृत्यु के विषय में हम सम्यक् रूप से पहले ही कह चुके हैं, और फिर भी कहते हैं कि उसका प्राणांत परिस्थिति के अनुकूल ही हुआ था। यह एतराज़ बिलकुल ग़लत है कि लेखक ने पात्रों से मनमाना काम करवाया है। हमारा फिर भी जोशीजी से यही आग्रह है कि यदि वह एक बार प्रेमाश्रम के प्रत्येक पात्र का चरित्र मनोयोग-पूर्वक पढ़ जाने की कृपा करें, तो शीघ्र ही जान जायँगे कि उनका यह एतराज़ कहाँ तक न्याय-संगत है। मैंने प्रेमाश्रम के शब्द-शब्द पर विचार किया है, और मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि कहीं भी प्रेमचंदजी ने ऐसी घटना नहीं घटने दी है, जो किसी पात्र की परिस्थिति की सहगामिनी न हो। जब जिसका जैसा मौक़ा आया है, उस समय उससे वैसा ही काम करवाया गया है। अपनी कल्पना तथा इच्छा पर किसी भी पात्र की जीवन-घटना निर्भर नहीं रक्खी है। फिर भी यदि इसके संबंध में व्यर्थ ही एतराज़ किया जाय, तो यह ज़्यादती अन्याय-युक्त है।

श्रीयुत बाबू रघुपतिसहायजी ने प्रेमाश्रम को Realistic Novel अर्थात् प्रकृत जीवन का चित्र बतलाया है। इस पर जोशीजी बे-तरह नाराज़ होकर अपने लेख के अंत में लिखते हैं कि "हमारी तुच्छ बुद्धि में तो 'कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते', अर्थात् कथा के रूप में बालकों को नीति का उपदेश दिया गया है।" ठीक है! जो 'प्रेमाश्रम' इस बीसवीं सदी में नैतिक जीवन से भ्रष्ट जगत् के लिये आदर्श शिक्षक का काम कर रहा है, वही आपकी बुद्धि में एक बाल-कथा की पुस्तक-मात्र है! जो ग्रंथ-रत्न अपनी समुज्ज्वल ज्योतियों से सारे साहित्य-संसार को आलोकित कर रहा है, वही आपके लिये एक फीके पत्थर का टुकड़ा है! जो प्रेमाश्रम आज हिंदी के गौरव को अत्यंत ऊँचा बनाए हुए है, उसे इतना नीचा समझकर जोशीजी ने सचमुच कवि के इस कथन को सत्य सिद्ध कर दिया है कि—

"गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवंति
ते निर्गुणं प्राप्य भवंति दोषाः ॥"

जनार्दनप्रसाद झा

कुस्तुंतुनियाँ की सैर



कुस्तुंतुनियाँ की यात्रा का विवरण देने से पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि हम उसकी संक्षिप्त ऐतिहासिक घटनाएँ अपने पाठकों की भेंट करें।

बास्फ़ोरस का एक-मात्र रत्न

२५०० वर्ष पूर्व कुस्तुंतुनियाँ बाइज़ेंटियम-नामक राज्य का मुख्य स्थान था। यह एक व्यापारिक केंद्र था, और इसके ऊँचे भवन, मंदिर तथा सुंदर गलियाँ संपूर्ण प्रायद्वीप पर विस्तृत थीं। वर्तमान कुस्तुंतुनियाँ उसी स्थान पर सुशोभित है। यहाँ के बंदरगाह का दृश्य दर्शनीय होता है।



बंदरगाह का दृश्य

कुस्तुंतुनियाँ का इतिहास धर्म-युद्ध तथा क्रमानुगत राज्याधिकारों से परिपूर्ण है। आजकल की भाँति पूर्व समय में भी इस अनमोल रत्न पर फ़ारसी और यूनानी इत्यादि जातियों की आँखें लगी रहती थीं। सन् ईस्वी से ३३० वर्ष पूर्व इस नगर पर आक्रमणों का क्रम जारी रहा, और इसकी भूमि पर रक्त की धाराएँ बहीं। पश्चात् रोम के राजा कौंस्टेंटाइन का भी विचार हुआ कि इस नगर को जीतकर अपनी राजधानी बनाऊँ। नगर का यह नाम इसी बादशाह के नाम पर कुस्तुंतुनियाँ रक्खा गया है। इस बादशाह ने अपनी राजधानी की चारों ओर की सीमा स्थापित करने के लिये ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी कराईं; जिन पर लगातार आक्रमण होते रहे।

कहा जाता है, इस नगर पर फ़ारसी, रूसी तथा लाटिनों और तुर्कों ने २६ बार घेरे डाले। ६ बार सारसेन-नामक जाति ने अपनी सेना भेजी। ८ बार शत्रु-सेना ने विजय प्राप्त की, और शहर में आग लगाई, रक्त-पात किया, और लूट-मार करके शहर को नष्ट-भ्रष्ट किया।

तुर्कों का अधिकार

तुर्कों ने ३ बार आक्रमण किया, और तीसरी बार सुलतान मुराद के पुत्र मुहम्मद द्वितीय नाम के बादशाह ने बड़े भयानक युद्ध के पश्चात् इस नगर को अपने अधीन किया।

'कुस्तुंतुनियाँ में आग' (Constantin ple in flames)-नामक पुस्तक का इटालियन रचयिता तुर्कों के अधिकार का इस प्रकार वर्णन करता है—"पाँच लाख तुर्क-सेना ने १४ सहस्र इटालियन और यूनानी-सेना के लगातार रक्षा करने पर भी अपना आधिपत्य जमा ही लिया। जब मैं यह लिखने लगता हूँ, तो मेरे सम्मुख ईसाइयों और मुसलमानों के इस भयंकर संग्राम का चित्र-सा खिंच जाता है। विष-युक्त तीरों की सनसनाहट, पत्थर फेंकनेवाली भारी तोपों की गड़गड़ाहट तथा दीवार तोड़ने का भयंकर शब्द मेरे कानों के पर्दे फाड़े डालता है। धूल और विष से युक्त धुएँ के बीच में रण-भेरी का मार्मिक नाद करते हुए मुसलमानों के झुंड ने ईसाइयों पर तलवारों और छुरियों से आक्रमण किया, और रक्षकों ने उन पर खौलता हुआ तेल और पिघला हुआ शीशा डालना शुरू किया। बात-की-बात में मृतक तथा मृतप्राय (सिसकते हुए) मनुष्यों के शरीरों से खाइयाँ भर गईं। अंत को बाइज़ेंटीन नाम की राजधानी का पतन हुआ, और सेंट-सोफ़िया का महान् गिर्जा इस्लाम-धर्म का केंद्र हो गया।"

एक अद्भुत साँकल और उसका वर्णन

सन् १२०४ ई० में, जब कि शहर पर अंधे 'डिंडोलो'-नामक राजा ने आक्रमण किया था, तुर्कों ने गेलाटा के प्रसिद्ध पुरातन ऐतिहासिक स्तंभ से गोल्डेन हॉर्न (Golden Horn) के पार तक शत्रु-सेना को रोकने के लिये एक लोहे की साँकल बाँधी थी। परंतु किसी प्रकार आक्रमण-कारियों ने उसे तोड़ डाला, और उनका बेड़ा गोल्डेन हॉर्न से होता हुआ अयूब (Aycob) तक पहुँच गया, और कुस्तुंतुनियाँ-नगर उनके अधिकार में आ गया।

यही साँकल सन् १४५३ ई० में, उपर्युक्त स्थान में, फिर

लगाई गई। 'कुस्तुंतीन पुलूकौलूगस' नाम का बादशाह, आधी रात के समय, एक छोटी-सी नौका में बैठकर, यह देखने जाया करता था कि जंज़ीर ठीक दशा में है या नहीं। तुर्कों ने बहुत प्रयत्न किया, परंतु गोल्डेन हॉर्न तक न पहुँच सके। तब एक सुंदर विचार उत्पन्न हुआ, जिससे बादशाह मुहम्मद द्वितीय कृतकार्य हुआ, और तुर्की बेड़े को भूमि द्वारा बास्फ़ोरस से गोल्डेन हॉर्न के जल तक पहुँचाया गया। यह आश्चर्य-प्रद घटना एक रात्रि में ही हो गई, और गैलाटा-दुर्ग के सैनिकों को इसका पता भी नहीं लगा। बास्फ़ोरस के तूफ़ानी-नामक स्थान से तुर्कों के बारूद-ख़ाने तक एक खाई खोदी गई, और उसमें से होकर तुर्की बेड़ा अँधेरे में घसीटकर ले जाया गया। दूसरे दिन जब गैलाटा के सैनिकों की आँखें तुर्की बेड़े पर, जिसकी विजय-पताकाएँ गोल्डेन हॉर्न पर फहरा रही थीं, पड़ीं, तो वे आश्चर्य से अवाक् हो गए। इसके तीन सप्ताह पीछे कुस्तुंतुनियाँ-नगर विजेता मुहम्मद शाह के हाथ में पूर्ण रूप से आ गया।

गैलाटा का पुल

समुद्र-यात्रा से व्यथित यात्री को गैलाटा के पुल का चित्ताकर्षक दृश्य अत्यंत मनोहर प्रतीत होता है। कुस्तुंतुनियाँ में उतरने पर स्तंबोल नाम के अति प्राचीन और प्रसिद्ध नगर तक पहुँचने में गैलाटा का पुल पार करना पड़ता है। संसार-भर में शायद कोई ऐसा पुल नहीं है, जिस पर गैलाटा-पुल से अधिक बोझ निकलता हो। यदि 'बाबुल' को देखना हो, तो गैलाटा-पुल पर कुछ देर ठहरने से अपना मनोरथ सफल हो जाता है।



गैलाटा का पुल

इस पुल पर लगभग सभी देशों के निवासी आते-जाते रहते हैं। कुछ मनोविनोद के लिये आए हुए लोग धीमी-धीमी चाल चलने में ही आनंद पाते हैं; किंतु इसके विपरीत बहुत-से व्यापारी अपनी सरपट चाल से देखने-वालों को चकित करते हैं।

कुस्तुंतुनियाँ की सभी सड़कें प्रायः पत्थर की हैं; जिन पर गाड़ी के घोड़ों का गिर पड़ना एक साधारण-सी बात है। चार पहियों की गाड़ियाँ, जिन्हें 'अरबा' कहते हैं, पुल की पत्थरवाली सड़क पर झूम-झूमकर चलती हैं। उनके हाँकनेवाले पैदल यात्रियों का तनिक भी ध्यान न रखते हुए घोड़ों पर कोड़े फटकारते हुए उनको हाँकते हैं; बेचारे पैदल यात्री की तनिक भी असावधानी उसके लिये प्राण-घातक हो सकती है।

अबीसीनिया और सुदान के हबशी अपनी मुख्य पोशाक पहने हुए, अरब-निवासी योरपियन लिबास पहने हुए, गौरांग तुर्क— जो केवल रूमी टोपी से ही पहचाने जा सकते हैं—मैले कुचैले, यूनानी धक्के देते और खाते हुए, अँगरेज़, फ्रेंच और इटालियन सैनिक तथा सेना-नायक भिन्न-भिन्न वर्दियाँ पहने हुए, जहाज़ों के मल्लाह तथा तुर्की स्त्रियाँ काली पोशाक पहने और अपने मुँह का नक़ाब खोले हुए, और रूसी रूस के बर्फ़ीले मैदानों से भागकर आए हुए, संबूर के कपड़े पहने हुए, एक ही स्थान पर देख पड़ते हैं। इन विविध जातियों को विचित्र पोशाकों में एक ही स्थान पर देखना कैसा मनोहर और सुहावना दृश्य होता है, यह जिसने देखा है, वही जान सकता है। 'हमाल' अर्थात् तुर्की कुली को, जिसकी पीठ वर्षों से बोझा ढोने के कारण झुककर दुहरी हो गई है, और जो राह चलनेवालों से राह छोड़ देने के लिये चिल्लाता हुआ चलता है, इस अवसर पर भूलने की धृष्टता हम नहीं कर सकते।

यद्यपि भारतवर्ष का रेलों के कुली भारी बोझ ले जाने के लिये प्रसिद्ध हैं; परंतु तुर्की कुली उनसे बढ़े-चढ़े हैं। ये कुली बोझ अपनी पीठ पर ले जाते हैं, सिर पर कदापि नहीं। और, जितना बोझ ये ले जाते हैं, उसका परिमाण निःसंदेह आश्चर्य में डालने-वाला है। हमने एक ऐसे कुली के विषय में सुना है, जो अपनी पीठ पर एक पियानो (बड़ा अँगरेज़ी बाजा) ले गया था। फल और मछलियाँ, रोटी और

मिठाई, कापी और पेंसिल तथा कंघे और थैलियाँ बेचनेवाले अपनी-अपनी वस्तुओं का मूल्य चिल्लाकर बताते हुए तथा अपने ग्राहक से सौदा पटाने में मस्त पुल के एक किनारे की ओर खड़े रहते हैं।

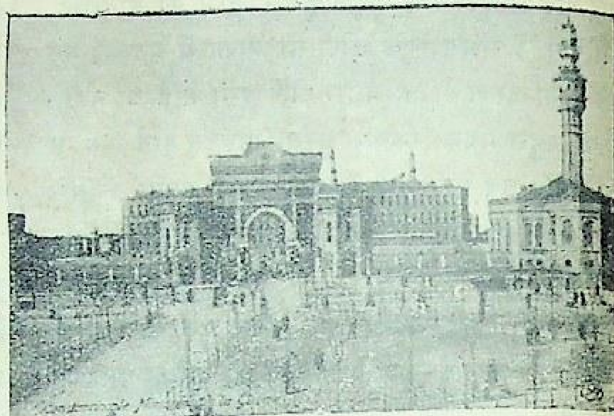
'पैरा' और 'स्तंबोल'-नामक पुल के दोनों सिरों में से प्रत्येक पर छः-छः भाड़ा वसूल करनेवाले नियत किए गए हैं। चाहे आप कैसे ही ग़रीब क्यों न हों, आपको पुल पर पैर रखने से पहले ही १ पेस्टर (आध आना) देना पड़ेगा। मोटर तथा घोड़ा-गाड़ी और जानवरों का भाड़ा इससे बहुत अधिक है। × × × मित्रों की सेना के सैनिक इस भाड़े से बरी हैं।

इस पुल के निचले हिस्से में प्लेटफ़ार्मों की एक लंबी क़तार है। उनसे फ़ेरी-स्टेशनों का काम लिया जाता है, और वहाँ से बड़े-बड़े Ferry Boats (अगिनबोट) एशिया के किनारे तक हैदरपाशा, बास्फ़ोरस-समुद्र के तटस्थ रम्य स्थानों तथा प्रिंकियो को, और भीतर की ओर गोल्डेन हॉर्न को रवाना होते हैं।

दर्शक शुक्रवार के दिन पुल पर चढ़कर बंदरगाह में सभी तुर्की नौकाओं के मस्तूलों पर लाल झंडे उड़ते देख सकता है।

स्तंबोल

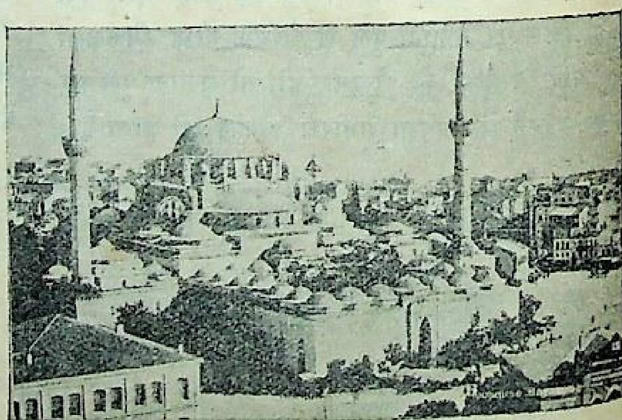
ज्यों ही हम गैलाटा-पुल को पार करते हैं, हमें सामने ही भूल-भुलैयाँ तथा तंग गलियोंवाला स्तंबोल-नगर, जिसमें कई शताब्दी व्यतीत हो जाने पर भी ख़लीफ़ाओं के बग़दाद से नाम-मात्र का भेद है, दिखाई देता है। यह एक प्राचीन और ऐतिहासिक नगर ऐसी घटनाओं से परिपूर्ण है, जिनकी शान एशिया की ओर बास्फ़ोरस के दक्षिणी तट तक प्रकट है। स्तंबोल-नगर मारमोरा-सागर के तट पर के सात मीनारों से लेकर उत्तर की ओर गोल्डेन हॉर्न (जिसके गहरे पानी की सतह पर समस्त संसार के जहाज़ी बेड़े तैर सकते हैं) तक फैला हुआ है, और सेरेग्लिओ (eraglio) अंतरीप से भूमि की ओर, चार मील के अंतर पर, लाखों की मनुष्य-गणना का एक बड़ा शहर है। इस समय टर्की के युद्ध-मंत्रियों का कार्यालय भी यहीं है।



टर्की के युद्ध-मंत्रियों का कार्यालय (स्तंबोल)

यह नगर अपनी चारों ओर की हद के अंदर, 'रोम' की तरह, सात नीची पहाड़ियों के बीच स्थित है। इन पहाड़ियों की सजावट उन मसजिदों की शोभा से बहुत बढ़ गई है, जिनकी गोल महराबें और ऊँचे-ऊँचे मीनार नीले आकाश के मुक़ाबिले में एक सीमा बाँधे हुए बास्फ़ोरस-समुद्र की सतह पर दृष्टिगोचर होते हैं।

सुंदर महल और गंदी गलियों के होते हुए भी एक वस्तु, जो अधिक आश्चर्य में डालनेवाली है, और जिसे हम कभी नहीं भूल सकते, उसका आश्चर्यजनक इतिहास है, जो कि इसके सैकड़ों मसजिदों, ईसाई गिर्जों और प्राचीन स्थानों पर अंकित है।



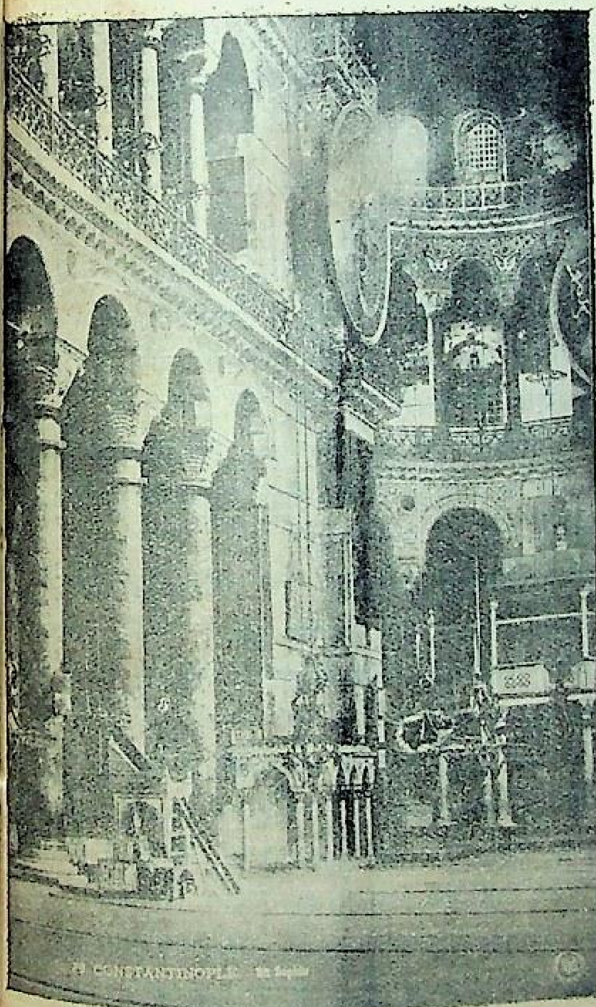
बायज़ेद की पुरानी मसजिद

पुल के पार करते ही सबसे प्रथम ग्रेनाइट पत्थर की बनी हुई वालिदा (माता) की मसजिद है, जो एक मुस्तैद पक्के संतरी की तरह पहरा दे रही है। इसको सन् १६१५ ई० में सुल्तान अहमद की स्त्री ने

शुरू कराया था, और सन् १६६९ ई० में चौथे मुहम्मद की माता ने पूरा करवाया। इसीलिये इसका नाम वालिदा, अर्थात् माता, के नाम से प्रकट है। इस मसजिद का भव्य भवन सुंदर खपरैलों से सुशोभित है।

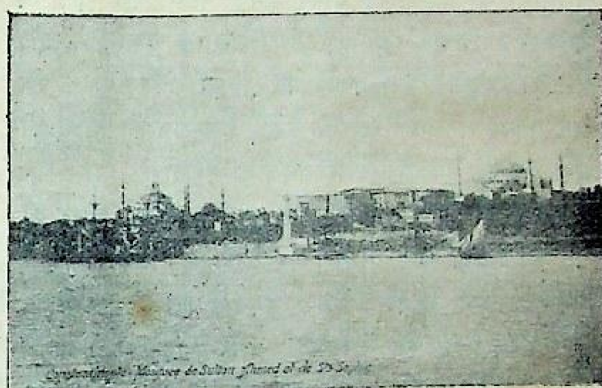
सेंट-सोफ़िया

उसके बाद हमारा पग सेंट-सोफ़िया की प्रसिद्ध मसजिद की ओर बढ़ता है। यह वही मसजिद है, जिसको महायुद्ध की समाप्ति पर संसार के सबसे बड़े ईसाई पादरियों ने फिर गिर्जे के रूप में परिवर्तित करने का आदेश दिया था।



कुस्तुंतुनियाँ की सबसे बड़ी सेंट-सोफ़िया-मसजिद (भीतरी दृश्य)

सन् १२०४ ई० में, कुस्तुंतुनियाँ के नष्ट होने पर, जब लूट-मार का बाज़ार गरम हुआ, तब दूसरे गिर्जों की भाँति सेंट-सोफ़िया की भी पवित्र तथा बहु-मूल्य वस्तुएँ लूटी गईं। प्रायः सभी कोष और अमूल्य शिल्पकारी की वस्तुएँ आक्रमणकारियों ने लूटीं, और यह व्यवहार ईसाइयों ने ईसाइयों के प्रति किया। सन् १४५३ में जब यह नगर तुर्कों के हाथ में आया, तो सेंट-सोफ़िया भी अन्य गिर्जों की भाँति मसजिद के रूप में परिवर्तित किया गया, और इसी रूप में आज तक विद्यमान है।



बाईं ओर पुरानी अहमदिया-मसजिद। मध्य में प्राचीन सेरग्लिओ (शाही महल), और दाहनी ओर सेंट-सोफ़िया की मसजिद

क़ाज़ी, जो कि मसजिद की निगरानी करते हैं, यात्री से बड़े कमरे में प्रवेश करने से पहले जूता उतारने अथवा अपने बूटों के ऊपर कपड़े की चट्टियाँ, जो उसे उसी समय मिल सकती हैं, पहनने के लिये अनुरोध करते हैं।

यात्री ग़लीचेदार फ़र्श पर पहुँचकर इस बड़े-बड़े मीनार तथा स्तंभोंवाले भवन को देखता है। स्तंभ के निकट पहुँचकर प्रदर्शक घोड़े के पद-चिह्न की ओर संकेत करता है। इसके विषय में यह कहा जाता है कि युद्ध के पश्चात् विजेता मुहम्मद घोड़े पर सवार होकर आया, और उसने गिर्जे का निरीक्षण किया। चरण-चिह्न उसी के घोड़े के हैं। स्तंभ के इतने ऊपर टाप का चिह्न होने का कारण यह बताया जाता है कि मृतकों के शवों के बहुत-से ढेर, जो पृथ्वी पर ऊँचे पड़े हुए थे, उनके ऊपर घोड़े के शेष तीन पैर रक्खे थे!

दीवारों पर बड़े-बड़े गोल और हरे तख़्ते, जिन पर सुनहरे अक्षरों में कुरान-शरीफ़ के वाक्य लिखे हैं, लटक रहे हैं। इसी मसजिद का तुर्की नाम आया-सोफ़िया है।

इसकी रक्षा तुर्क-सैनिक करते हैं। परंतु प्रत्येक जाति के दर्शक अपनी इच्छा के अनुसार विना आज्ञा और किसी प्रकार की रोक-टोक के यहाँ घूम सकते हैं।

अहमद की मसजिद

आकाश को चूमनेवाले बड़े-बड़े मीनारोंवाली यह मसजिद आया-सोफ़िया-मसजिद से तनिक आगे है। सुलतान अहमद ने सन् १६०८ से १६१४ तक में इसे बनवाया था। मक्का के बाहर केवल यही एक मसजिद ऐसी थी, जिसके छः बुर्ज़ हों। मक्का के इमाम ने, इस बात से चिढ़कर, इस प्रकार का ढिंढोरा पिटवाया था कि सब प्रकार से मान-रक्षा के लिये सुलतान को मक्का की मसजिद पर एक बुर्ज़ और बनवाना पड़ेगा।

लगभग दो सौ वर्ग-फ़ीट के कमरे की एक पत्थर की छत को केवल चार मीनारों पर ठहरा हुआ देख पड़ना निस्संदेह बड़ा आश्चर्य-जनक दृश्य है। इसके खंभों का घेरा १०० फ़ीट से अधिक है। मसजिद का प्लेटफ़ार्म मक्का की मसजिद के प्लेटफ़ार्म की नक़ल है, और वह अत्यंत सुंदर है। इसी प्लेटफ़ार्म पर से वह घोषणा हुई थी, जिससे जैनेसरी लोगों का अत्याचार समाप्त हुआ था।

सुलेमान की मसजिद

आटोमेन-शिल्पकारी का सबसे अधिक स्मरणीय पदार्थ सुलेमान-मसजिद है। कुस्तुंतुनियाँ की मसजिदों की भाँति सुलेमान-मसजिद तथा सेंट-सोफ़िया में नाम-मात्र का अंतर है। चाल्सडन के सेंट-यूफ़ेमिया (St.



सुलेमान की मसजिद

Euphemia)-नामक गिर्जे के पदार्थों को लेकर यह मसजिद बनी थी। मीनारों पर रंग-बिरंगे संगमरमर के टुकड़े जड़े हैं। सुलतान का बक्स तथा चबूतरे नक़्क़ाशी-दार पत्थरों से सुसज्जित हैं। दो खिड़कियाँ फ़ारस की लूट का माल हैं, और शेष सब शराबी इब्राहीम-नामक कारीगर की कारीगरी का नमूना हैं।

बुर्ज़ों के चारों ओर, द्वार के ऊपर तथा मसजिद की दीवारों पर कुरान की आयतें प्रसिद्ध सुचारु लेखक 'कारा हिसरी' ने लिखी हैं। उपवन में पश्चिम की ओर 'प्रथम सुलेमान' और उसकी प्रसन्नमुखी प्रिया 'खुर्रमा' की क़ब्रें हैं। यह 'खुर्रमा' गुलाम-वंश में पैदा होकर भी समय पर राज्य की एक प्रधान शक्ति हो गई थी, और पश्चिमी संसार में 'राक्सेलिना' (Roxelena) के नाम से प्रसिद्ध हुई। उसकी समाधि संसार की सर्वोत्तम समाधियों में से एक है।

अन्य ऐतिहासिक दृश्य

'हिपोड्रोम' में, जहाँ रोम के तमाशगीरों के मनोविनोदार्थ पहलवान लड़ते तथा रथों की दौड़ होती थी, २००० वर्ष से 'डेल्फ़ी' के मंदिर में तीन सर्पों के नाम का एक प्रसिद्ध स्तंभ स्थित है। थियोडोर का चौखंभा, जिसे साधारणतः क्लिओपेट्रा की सुई भी कहते हैं, और जो शताब्दियों पूर्व के लाए हुए ग्रेनाइट-पत्थर की एक-मात्र कारीगरी है, तीनों साँपों के स्तंभ के सन्निकट स्थित है।

यरवटन का भूतल-स्थित महल, जिसका हाल ही में पता लगा है, वर्षों पूर्व का बना हुआ है। दर्शक उसमें सीढ़ियों से नीचे उतरकर एक सुंदर नौका में सैर कर सकते हैं।

यदि हम भूलते नहीं, तो कह सकते हैं कि वहाँ छत के आधार-रूप १६४ स्तंभ हैं, और यह स्थान ७०० वर्ष पूर्व का बना होगा। जिस कंपनी के हाथ में इसका प्रबंध है, उसने यहाँ पर बिजली की रोशनी लगवा दी है। यहाँ टिकट लेकर प्रवेश किया जाता है। हमारे रूसी प्रदर्शक ने हमें यह भी बतलाया कि भूतल का यह स्थान तथा अन्य स्थान स्वच्छ जल के चश्मे थे।

प्राचीन तुर्की शाही महल (erag.io) शताब्दियों पूर्व की इस्लामी उत्कृष्टता का स्मरण दिलाता है। किसी समय राजधानी होने के कारण, अब भी यहाँ पर टकसाल, अजायबघर, वाचनालय तथा अपरिमित

मूल्य के रत्न और सुनहरे आभूषणों से परिपूर्ण कोष विद्यमान हैं।

युद्ध के अजायबघर में पुराने ढंग की तोपें, बंदूकें, तलवार, किर्चें तथा दूसरे शस्त्र और गोला-बारूद हैं। यहाँ पर वह ऐतिहासिक साँकल है, जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। यह देखकर हमको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह साँकल, जो कि सर्प की भाँति लिपटी हुई पड़ी है, शत्रु के बेड़े को रोकने के लिये किस प्रकार प्रयुक्त की जाती होगी। यह बहुत मोटी नहीं है, और हमारे विचार में वर्तमान समय के एक अगिनबोट की ताक़त का भी मुक़ाबिला नहीं कर सकती।

साँकल के पास एक तख़्ती लटकती है, जिस पर उसके प्रयोग की विधि तथा स्थान वर्णित है।

स्तंबोल का बड़ा तुर्की बाज़ार, जो कि शताब्दियों पूर्व का बना है और जिसमें दर्जनों पटी हुई गलियाँ हैं, सैर को सफल बनाता है। यहाँ पर हमें जौहरी तथा कपड़े, संबूर, क़ालीन और हथियार आदि के व्यापारी अपनी छोटी दूकानों में ठीक वैसे ही बैठे मिलते हैं, जैसे उनके पूर्वज शताब्दियों पूर्व बैठते थे।

सबसे अधिक आनंद-दायक स्थानों को देखकर हम लौटते और पुल को पार करके गैलाटा में आते हैं।

गैलाटा

यह नाम प्रसिद्ध गैलाटा-नामक मीनार के नाम पर रक्खा गया है। यह मीनार सहस्रों वर्ष पूर्व की भाँति ही ऊँचे स्थल पर, जहाँ से समस्त नगर दिखाई पड़ता है, स्थित है। जहाँ पहले क़िला था, वहाँ सीढ़ियों की गली है। इस मैली, परंतु अत्यंत घनी, गली के उठे हुए स्थानों में बने हुए गृह 'पैरा' का मार्ग दिखाते हैं। यदि आप चढ़ते चलें, तो आपको छोटे-छोटे मकान तथा दूकानें, जिनमें अधिकतर रूसी बैठते हैं, मिलेंगी। दूकानदार आपको बिना कुछ ख़रीदे शायद ही वापस आने दें। चित्रों के कार्ड, बूट पालिश, मोज़े, बनयायन, उस्तरे, चाक़ू तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ बिकती हैं। उनके मुख से गोरे सैनिकों के प्रति ये शब्द निकलते हैं—Come on Johnny, अर्थात् जोनी आओ। हिंदुस्तानी से वे कहते हैं—"हाजी क्या माँगता ? उस्तरा माँगता, साबुन माँगता ?" ऐसे ही अन्य टूटे-फूटे शब्द, जो कि ग्राहकों से उनके पल्ले पड़ गए हैं, चिल्लाते हैं।

गैलाटा व्यापारियों का एक घना स्थान है। पग-पग पर मकार खेरीजवाले मिलेंगे। यहाँ पर एक सराफ़ा (Bourse) है, जहाँ तुर्की पेस्टर, जर्मन मार्क, इटालियन लीरा तथा फ्रेंच फ्रांक का बदला किया जाता है।

सारांश यह कि गैलाटा व्यापारिक व्यवहार, बैंकों, दलालों तथा जहाज़ी एजेंसियों और दुनिया के जहाज़ों से आने-जानेवालों का केंद्र हो रहा है।

पैरा

'गैलाटा' से बढ़कर हम 'पैरा' पहुँचते हैं। यह शहर का योरपियन ढंग से सुसज्जित स्थान है। हमें 'पैरा' तक पहुँचने के लिये ट्राम अथवा सीढ़ियों की गली के ऊपर होकर जाना पड़ता है। 'टनेल ट्राम' का मार्ग पृथ्वी के नीचे सुरंग में है; जिसमें एक लोहे की रस्सी के प्रत्येक सिरे पर एक गाड़ी बँधी है; जिससे जब एक गाड़ी इस नीचे स्टेशन (गैलाटा) से ऊपर चढ़ती है, तो दूसरी ऊँचे स्टेशन (पैरा) से उतरती है। यह सब काम बिजली द्वारा होता है। इस प्रकार १ मिनट लगता है। किराया नाम-मात्र को है, और आना-जाना बहुत है।

'पैरा' में कुस्तुंतुनियाँ की प्रतिनिधि गवर्न्मेंटों के राज-दूतों के स्थान हैं। नगर की योरपियन आबादी का सब-से बड़ा भाग 'पैरा' में रहता है। 'पैरा' में हम सुंदर सुसज्जित बड़ी दूकानें, कल-कारख़ाने, होटल, आराम के स्थान—जहाँ सुंदर रूसी स्त्रियाँ नौकर हैं, तथा गायक बाजा, बजाते हैं—और अन्य मनोविनोद के दृश्य (जैसे सिनेमा, थिएटर, बाइस्कोप; जिनमें नए-से-नए फ़िल्म दिखाए जाते और नाटक खेले जाते हैं) देखते हैं।

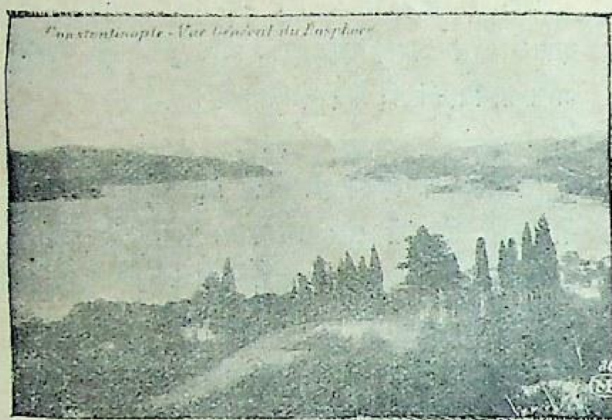
यहाँ के मनुष्य तुर्की के अलावा जिस भाषा को सबसे अधिक सिखते और बोलते हैं, वह 'फ्रेंच' है। बड़े व्यापारी अपना पत्र-व्यवहार तथा बही-खाता 'फ्रेंच'-भाषा में रखते हैं। बड़ी-बड़ी दूकानों के साइनबोर्ड 'फ्रेंच'-भाषा ही में छपे हैं। नाट्य-शाला में दिखाए जानेवाले फ़िल्म भी 'फ्रेंच' भाषा में ही हैं। यहाँ के स्कूलों में कोई प्रसिद्ध स्कूल ऐसा नहीं, जिसमें 'फ्रेंच'-भाषा न पढ़ाई जाती हो।

यहाँ यह भी वर्णन करना उचित जान पड़ता है कि महायुद्ध के पश्चात् कुस्तुंतुनियाँ पर अँगरेज़ी अधिकार होने पर यहाँ के निवासी, जो व्यापारी हैं, अँगरेज़ी

सीखने लगे हैं, और बहुतेरे स्थानों पर हमारी माँग को दूकानदार पूर्ण कर सकते हैं। कोई-कोई व्यापारी अनुवादक भी रखते हैं।

बास्फ़ोरस

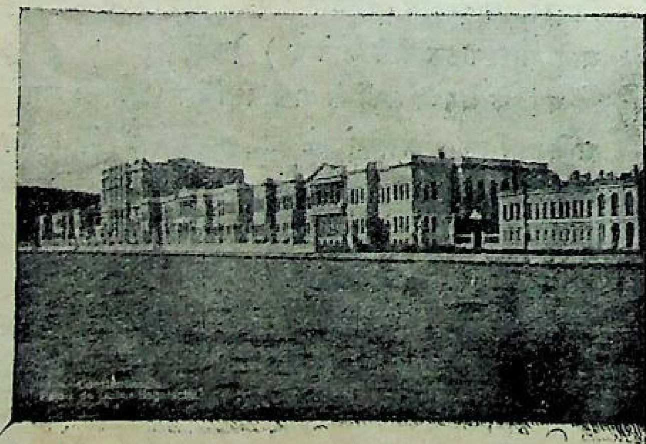
काम-काजी आदमी, जब स्थान-परिवर्तन अथवा छुट्टी



संपूर्ण बास्फ़ोरस का एक सुंदर दृश्य

पर जाना चाहते हैं, तब प्रिंकिपो-द्वीप अथवा बास्फ़ोरस के ऊपर सैर करने जाते हैं। इतवार के दिन सीरासैक्रिया-कंपनी की बड़ी-बड़ी फ़ेरी नौकाएँ, जो कि यात्रियों से पूर्ण होती हैं, प्रिंकिपो को, और शरकर-हैरी-कंपनी की नौकाएँ बास्फ़ोरस को, रवाना होती हैं। उस आनंद का, जो भरी हुई नौकाओं पर भीड़ के धक्कों से प्राप्त होता है, बहुत कम आदमी अनुमान कर सकते हैं।

'बूयूक डीयर' और 'थेरेपिया' बास्फ़ोरस के तट पर

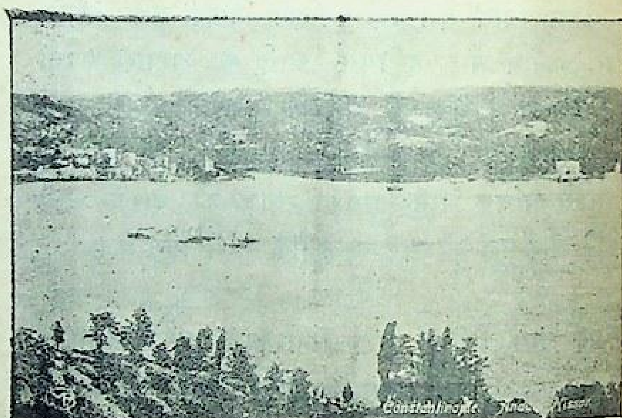


बास्फ़ोरस पर स्थित दोलमा-बागचा-महल, जिसमें सुलतान साल में अधिकतर निवास करते हैं

सबसे अधिक आनंद-प्रद स्थान हैं। यहाँ का जल-वायु सर्वोत्तम है, और यहाँ हर-एक अपना फ़ुरसत का वक़्त अच्छी तरह बिता सकता है। वे लोग, जो मकानों का भारी किराया दे सकते हैं, यहाँ गर्मी में जाते हैं।

'बास्फ़ोरस' की लंबाई १६ मील के लगभग है। चौड़ाई मारमोरा के प्रवेश-द्वार पर ३२०० गज़ और काले सागर के द्वार पर लगभग ४००० गज़ है। 'रूमेली-हिसार' और 'अनाटोली-हिसार' नाम के दो नष्ट क़िलों के बीच की चौड़ाई १२०० गज़ है, जो कि सबसे कम है।

गहराई अनुमानतः ३० फ़ैदम से अधिक है। सबसे तंग हिस्सा, जिसकी गहराई ४३ फ़ैदम है, सबसे अधिक गहरा है। लहरों के कारण, जो कि सदा आया करती हैं, बास्फ़ोरस को तैरकर पार



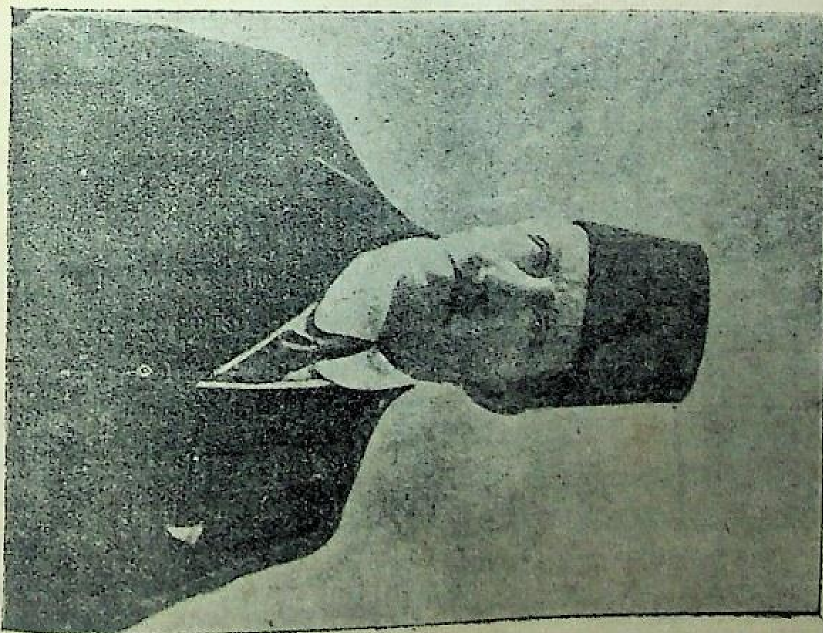
अंदोल-हिसार (जहाँ बास्फ़ोरस का पाट सबसे कम चौड़ा है)

करना ऐसा सहज काम नहीं है, जैसा कि मालूम होता है। हर्ष का विषय है कि सबसे पहला हिंदुस्तानी, जिसने सन् १९२१ की वसंत-ऋतु में 'बास्फ़ोरस' को तैरकर पार किया था, ३१ नं० पंजाबी पल्टन के सिख ऑफ़िसर लेफ़्टिनेंट सरदार अमरसिंह हैं।

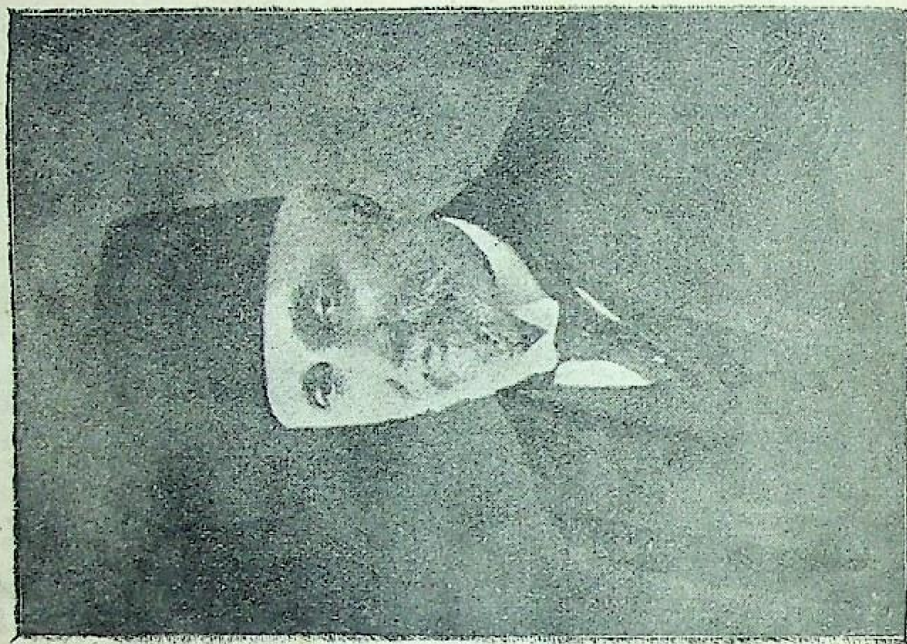
टर्की के भूतपूर्व सुलतान, वर्तमान सुलतान, उद्धारकर्ता कमालपाशा आदि का वृत्तांत सुप्रसिद्ध हो रहा है। इस कारण उनके केवल चित्र ही



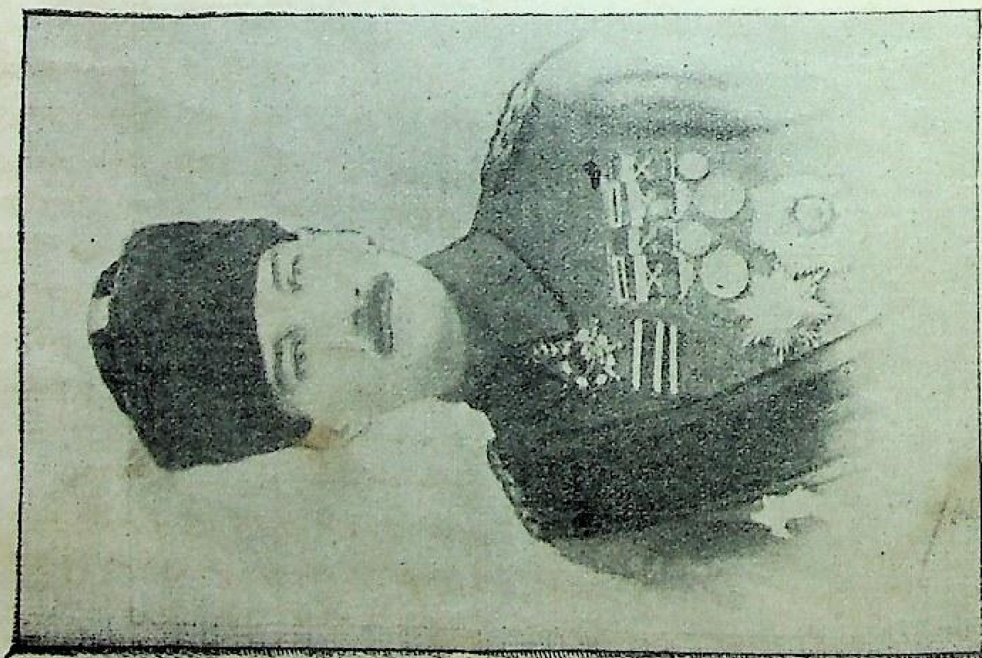
टर्की के भूतपूर्व सुल्तान वहीदुद्दीनख़ाँ (महम्मद छठे)



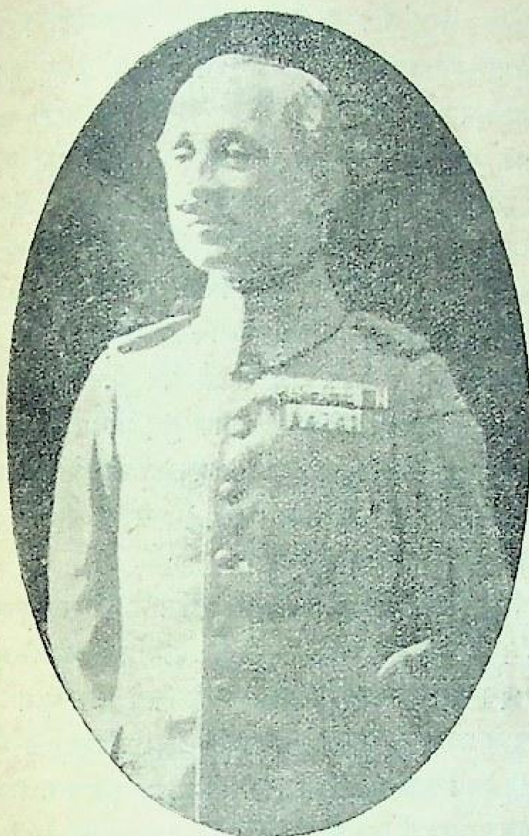
टर्की के नए ख़लीफ़ा अब्दुलमजीदख़ाँ



टर्की के भूतपूर्व महामंत्री तौफ़ीकपाशा



टर्की के उद्धारकर्त्ता ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा



रफ़अतपाशा (कुस्तुंतुनीयाँ के भूतपूर्व गवर्नर)



इस्मतपाशा (लासेन-कानफ़रेंस में तुर्क-प्रतिनिधियों के नेता बनकर गए थे।)

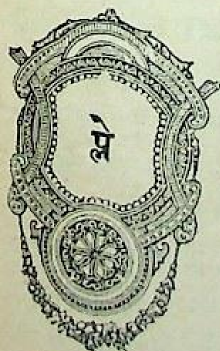
दिए जाते हैं। साथ ही तीन और टर्की के बड़े पदाधिकारियों के भी केवल चित्र दिए जाते हैं।

बलवंतसिंह

ग्रीक राजनीतिक सिद्धांत

(३)

अरस्तू का राजनीति-शास्त्र



अरस्तू का महत्त्व

प्लेटो में राजनीतिक सिद्धांत और भाव हैं, परंतु विवेचना नहीं है, प्रबंध नहीं है; अर्थात् कविता है, किंतु शास्त्र नहीं है। राजनीति-शास्त्र के जन्म-दाता की उपाधि सर्व-सम्मति से अरस्तू को दी गई है। चाहे अरस्तू में बहुत मौलिकता न हो, परंतु उसकी विचार-शैली इतनी सुंदर और स्पष्ट है, उसका ज्ञान इतना विस्तृत और परिपक्व है, उसके सिद्धांतों में इतना पारस्परिक सामंजस्य है, उसकी दृष्टि का कोण इतना व्यावहारिक है कि उसके ग्रंथ अजर-अमर हो गए हैं। ग्रीस पर तो उसका प्रभाव पड़ा ही, किंतु मध्य-काल में सारा योरप उसे अपना गुरु मानता था। वह संसार का प्रधान दार्शनिक समझा जाता था, और उसके ग्रंथ बाइबिल की तरह प्रामाणिक समझे जाते थे। अर्वाचीन युग में राजनीतिक अनुभव इतना बढ़ गया है कि अरस्तू या किसी भी प्राचीन लेखक के सिद्धांत वेद-वाक्य नहीं माने जा सकते। तथापि, आज भी, राजनीति-शास्त्र के कई अंगों का आधार वही है, जो अरस्तू ने स्थापित किया था। आज भी राजनीति-दर्शन के आलोचक संकट के समय अरस्तू की शरण लेते हैं।

ग्रीस के कैलसिडसी-नामक प्रदेश के स्टैजरा-नामक

नगर में अरस्तू का जन्म हुआ था। परंतु

अरस्तू के जीवन पर दृष्टि-पात

लड़कपन में ही वह एथेंस में आ बसा था। आज तक किसी नगर ने इतनी मानसिक उन्नति नहीं की, आज तक किसी नगर की सारी जनता दार्शनिक और राजनीतिक विचारों से, साहित्य और कला के प्रेम से, इतनी परिपूर्ण नहीं हुई, जितनी कि ईसवी सन् के पूर्व पाँचवीं और चौथी सदी में एथेंस में दृष्टि-गोचर होती थी। उत्कृष्ट एथेनियन जीवन से अरस्तू ने पूरा-पूरा लाभ उठाया। उसने सोफ़िस्ट-समुदाय और आइसोक्रेटीज़ के ग्रंथों का परिशीलन किया। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह प्लेटो का शिष्य हो गया। जैसे दीपक की ज्योति से दीपक जलता है, वैसे ही प्रतिभा के संपर्क से प्रतिभा जाग्रत् होती है। प्लेटो के सत्संग ने जो मानसिक स्फूर्ति पैदा की, वह यावज्जीवन अरस्तू के काम आई। ईसवी सन् के पूर्व ३४७ में प्लेटो का देहांत हुआ। तत्पश्चात् दो वर्ष तक अरस्तू एशिया-माइनर के एक निरंकुश राजा, हर्मियस, के यहाँ रहा। अगले नव वर्ष उसने मक़दूनिया के राजा फ़िलिप के दरबार में बिताए। इस समय फ़िलिप ग्रीस के विविध राज्यों को अपने वश में ला रहा था। समकालीन ग्रीक-राजनीति का केंद्र वही था। उसने अरस्तू को अपने पुत्र सिकंदर का अध्यापक नियत किया। इसी सिकंदर ने आगे चलकर पश्चिम और मध्य-एशिया के राज्यों का ध्वंस किया, और भारतवर्ष में पदार्पण करके पंजाब और सिंध के अधिकांश भाग को, थोड़े दिनों के लिये, अपने अधिकार में किया। एशिया-माइनर और मक़दूनिया में रहकर अरस्तू ने बहुत-से राज-पुरुषों, कूटनीतिज्ञों, अत्याचारियों एवं निरपराध अत्याचार-पीड़ितों से परिचय प्राप्त किया। यहाँ अरस्तू ने प्रत्यक्ष देखा कि राज्यों की उन्नति कैसे होती है, पतन कैसे होता है, प्रजा के भिन्न-भिन्न वर्गों के पारस्परिक संबंध कैसे बनते और बिगड़ते हैं, पर-राष्ट्र-नीति में कैसे छल-कपट से काम लिया जाता है, बल के सामने सबको कैसे सिर झुकाना पड़ता है, संकट के समय भिन्न-भिन्न प्रकार की राज-पद्धतियों में कैसे-कैसे दोष दिखाई पड़ते हैं, उद्योग व व्यापार की वृद्धि और हानि कैसे होती है, कुटुंब में फूट कैसे फैलती है, पति किस तरह पत्नी का तिरस्कार करता है, पत्नी किस तरह पति की हत्या कराती है, पिता और पुत्र कैसे एक दूसरे का गला घोटने को तैयार हो जाते हैं। यह सब अरस्तू ने देखा, और इसका मनन किया। व्यावहारिक जीवन के घटना-चक्र के निकट परिचय से अरस्तू को मानवी प्रकृति और मानवी कारोबार का ऐसा सूक्ष्म ज्ञान हो गया, ऐसी अंतर्दृष्टि हो गई, जैसी और किसी तरह नहीं हो सकती थी। जो लोग मानव-समाज पर विवेचना करने का साहस करते हैं, उन्हें अपने जीवन के किसी-न-किसी युग में व्यावहारिक जीवन से अवश्य संपर्क कर लेना चाहिए। आज तक जितने राजनीतिक लेखक हुए हैं, उन सबमें मानव-प्रकृति के ज्ञान की दृष्टि से अरस्तू और बर्क सबसे उत्तम हैं। बात यह थी कि दोनों ही समकालीन राजनीति के भँवर (चक्कर) में थे।

अरस्तू ने मक़दूनिया से लौटकर एथेंस में एक पाठशाला खोली, और तेरह वर्ष तक बहुत-से विद्यार्थियों को शिक्षा दी। इस समय सिकंदर दिग्विजय के लिये निकला था। एथेंस में उसका प्रतिनिधि था एंटिपेटर। एंटिपेटर से भी अरस्तू का निकट संपर्क था। इसी समय, संभवतः राजनीतिक पराजय के कारण, एथेंस में एक प्रभावशाली, धार्मिक और राजनीतिक आंदोलन खड़ा हुआ। अरस्तू के चित्त में उस आंदोलन ने धर्म और आचार का महत्त्व अंकित कर दिया। चाहे जिस ओर से देखिए, अरस्तू का युग एक महान युग था। उस समय नगर-राज्यों की स्वतंत्रता नष्ट हुई। एक चक्रवर्ती राज्य स्थापित हुआ। धार्मिक और नैतिक जागृति हुई। साहित्यिक उन्नति हुई। अरस्तू के शास्त्रों की रचना हुई। ईसवी सन् के पूर्व ३२२ में अरस्तू का देहांत हुआ।

अरस्तू की विचार-पद्धति

कविता, आचार इत्यादि अनेक विषयों पर अरस्तू ने लिखा है। परंतु यहाँ केवल उसके राजनीतिक ग्रंथ की आलोचना की जायगी। ऊपर संकेत कर चुके हैं कि अरस्तू ने अपने गुरु और अन्य पूर्व-वर्ती दार्शनिकों के विचारों को सुव्यवस्थित किया है, उसने अपने समय के एवं भूतपूर्व राज्यों की राज-पद्धतियाँ जमा की हैं, और उन सबके आधार पर अपना शास्त्र बनाया है। कहीं तो बहुत-से तथ्यों की तुलना से व्यापक निष्कर्ष निकाले हैं, और कहीं व्यापक सिद्धांतों की कसौटी से तथ्यों की परीक्षा की है। सर्वत्र व्यवहार का ध्यान रक्खा है। दूसरे, आचार-शास्त्र को राजनीति-शास्त्र से अलग किया है।

अरस्तू के राजनीतिक ग्रंथ का नाम है पालिटिक्स। ग्रीक-भाषा में इस शब्द का अर्थ नगर-राजनीति है। ग्रीक लोग नगर-राज्यों से ही बहुधा परिचित थे। इसलिये नगर-नीति ही उनको संपूर्ण राजनीति मालूम होती थी। योरप की भाषाओं में पालिटिक्स-शब्द का अर्थ है राजनीति। अरस्तू के ग्रंथ की रचना के विषय में बहुत वाद-विवाद हो चुका है। आजकल विद्वानों की सम्मति इस ओर झुक रही है कि यह ग्रंथ, वास्तव में, पुस्तक के रूप में नहीं रचा गया था, व्याख्यानों की टिप्पणियों का संग्रह है। इस समय अध्यायों का जो क्रम मिलता है, वह क्रम भी शायद उन टिप्पणियों का न रहा होगा।

"राजनीति"

जो हो, इस समय जो ग्रंथ संसार के सामने है, वह आठ भागों में बँटा हुआ है। पहले भाग में गृह-प्रबंध की दृष्टि से राज्य की समालोचना की गई है। दूसरे भाग में भिन्न-भिन्न वास्तविक तथा काल्पनिक राज-पद्धतियों के गुण-दोषों की विवेचना हुई है। तीसरे में राज-पद्धतियों की परिभाषा और वर्गीकरण है। इस प्रकार इन तीनों भागों में राज्य के सिद्धांत पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् चौथे और पाँचवें भाग में आदर्श राज्य की चर्चा की गई है, यथा—राज्य का क्षेत्रफल कितना होना चाहिए, जन-संख्या कितनी होनी चाहिए, शिक्षा और संयम कैसे होने चाहिए। इन्हीं विषयों की मीमांसा की गई है। परंतु राज्य-संगठन और क़ानून बनाने के विषय में अधिक नहीं कहा गया, और न शिक्षा की आलोचना ही संतोष-जनक है। तत्पश्चात् तीन भागों में वास्तविक राज-पद्धतियों का वर्णन और उनके भिन्न-भिन्न सिद्धांतों की परीक्षा है। अर्थात्, छठे भाग में ग्रीस के वर्तमान राज्यों की आलोचना है, उनकी राज-पद्धतियों पर विस्तार से विचार किया गया है, सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार साधारणतः सर्वोत्तम राज-प्रणाली का संकेत किया गया है। सातवें भाग में यह दिखाया गया है कि राज्यों की रक्षा तथा उन्नति कैसे होती है, नाश कैसे होता है। अंतिम भाग में कुलीन-सत्तात्मक तथा जन-सत्तात्मक राज्यों के लिये कुछ व्यापक सिद्धांत बताए हैं। ख़ासकर इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि कुलीन-सत्ता में कुलीनों को अपना अधिकार बहुत न जताना चाहिए, और जन-सत्ता में जनता को भी।

राजनीति का विश्लेषण

इसके बाद स्वभावतः यह आशा की जाती है कि क़ानूनों पर विचार किया जायगा। परंतु या तो अरस्तू ने ऐसा किया नहीं, या पुस्तक अथवा टिप्पणियों के वे भाग लुप्त हो गए हैं। तथापि विषय-सूची से यह स्पष्ट है कि अरस्तू ने राजनीति के अधिकांश खंडों की आलोचना करके सदा के लिये शास्त्र का संगठन कर दिया था। यह इमारत व्यवहार की नींव पर बनाई गई है, और इसी कारण अब तक स्थिर है।

"राजनीति"-ग्रंथ को ध्यान-पूर्वक पढ़ने से अरस्तू के मुख्य सिद्धांत इस प्रकार जान पड़ते हैं—राज्य कोई कृत्रिम पदार्थ नहीं है; किंतु एक स्वाभाविक संस्था है। अरस्तू के शब्दों में मनुष्य एक राजनीतिक जीव है। जैसे स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार मनुष्य ने खाना-पीना, शरीर को ढकना और बातें करना सीख लिया है, वैसे ही समाज में राज-पद्धति बनाकर रहना भी। मनुष्य की सामाजिकता और राजनीतिकता के विषय में अरस्तू का कथन सर्वत्र, कहावत की तरह, उद्धृत किया जाता है।

राज्य की उत्पत्ति

राज्य के स्वाभाविक जन्म की विधि इस तरह कही है कि उसमें पहले केवल कुटुंब ही थे, और फिर कुटुंबों के बढ़ने और मिलने से उपजातियाँ पैदा हुईं। उपजातियों के बढ़ने और मिलने से जातियाँ बनीं, और इसी प्रकार जातियों की वृद्धि तथा मिश्रण से राज्य बने। उपजातियाँ या जातियाँ गाँवों में रहती थीं। राज्य की कल्पना होने पर वे नगरों में रहने लगीं, और इस प्रकार नगर-राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ। आजकल वैज्ञानिक लोग अरस्तू के बताए हुए राज्योत्पत्ति-क्रम को नहीं मानते। वैज्ञानिक क्रम बिलकुल इससे उलटा है, अर्थात् पहले जंगली मनुष्य बड़े-बड़े झुंडों में रहते थे। पशु-पालन की प्रथा का प्रारंभ होने पर प्रत्येक गरोह के कई भाग हो गए। कृषि का प्रादुर्भाव होने पर ये भाग भी उपविभागों में विभक्त हो गए। इसी काल में राजनीतिक संगठन भी हो गया। यद्यपि आज अरस्तू का सिद्धांत नहीं माना जाता, तथापि अरस्तू की महिमा इसी से प्रकट है कि उन्नीसवीं सदी तक बहुत-से लोग इसी सिद्धांत के पक्ष में थे।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि यद्यपि राजनीतिक संगठन स्वाभाविक है, तथापि उसका उद्देश्य क्या है? अरस्तू ने इसका उत्तर

राज्य का उद्देश्य

दिया है कि राजनीतिक संगठन की छाया में ही वास्तविक मनुष्य-जीवन संभव है। राज्य का उद्देश्य है, मनुष्य-जीवन को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ बनाना। जो राज-पद्धति इस उद्देश्य का अनुसरण नहीं करती, वह हेय है।

नगर-राज्य

मनुष्य-जीवन की पूर्णता के लिये यह आवश्यक है कि राज्य छोटे-छोटे हों। जिस राज्य में लाखों मनुष्य रहते हैं, वहाँ लोग एक दूसरे को नहीं जान सकते, एक दूसरे के गुण-दोषों से परिचित नहीं हो सकते, और इसलिये राज्य के अधिकारियों का चुनाव भी अच्छी तरह नहीं कर सकते। इस परिस्थिति में सच्चा राजनीतिक जीवन संभव नहीं। इसलिये यहाँ सच्चे राज्य का अस्तित्व भी नहीं मान सकते। तात्पर्य यह कि राज्य केवल नगर-राज्य होने चाहिए। उनके स्वतंत्र नागरिकों की जन-संख्या तीस-पैंतीस हज़ार से अधिक न होनी चाहिए। अरस्तू के इस सिद्धांत को अर्वाचीन संसार स्वीकार नहीं कर सकता। आजकल के राज्य लाखों नहीं, करोड़ों की जन-संख्या का दम भरते हैं। उनको छोटे-छोटे बेशुमार टुकड़ों में बाँटना असंभव है। अरस्तू के समय में बहुधा ग्रीक-राज्य नगर-राज्य थे। जहाँ बड़े-बड़े देश-राज्य प्रकट हुए थे, वहाँ राजनीतिक जीवन का ह्रास हुआ था। इसीलिये उसने छोटे-छोटे नगर-राज्यों के सिद्धांत की घोषणा की है। इस समय वैसे राज्य स्थापित नहीं हो सकते। परंतु हम अरस्तू के सिद्धांत से इतना निष्कर्ष अवश्य निकाल सकते हैं कि विशाल राज्यों में स्थानिक स्वराज्य का प्रचार खूब होना चाहिए। शहर की म्युनिसिपलटियों और गाँवों की पंचायतों को, जितने हो सकें, उतने अधिकार देने चाहिए। जिस क्षेत्र के लोग एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं, वहाँ शासन की बहुत-सी प्रचलित बुराइयाँ जड़ नहीं पकड़तीं।

प्रत्येक राज्य में कुटुंब का स्थान बहुत महत्त्व-पूर्ण है। राज्य में कुटुंब का स्थान

कौटुंबिक जीवन से स्नेह, सहानुभूति, कोमलता, क्षमा, परिश्रम इत्यादि आवश्यक राज्योपयोगी गुण मनुष्य-स्वभाव में दृढ़ होते हैं। दूसरे, कुटुंब के विना बच्चों का लालन-पालन अच्छी तरह नहीं हो सकता। प्लेटो ने कहा था कि विवाह-प्रथा और कुटुंब-प्रथा को नष्ट कर दो, और बच्चों का लालन-पालन समस्त राष्ट्र को सौंप दो। इसका उत्तर अरस्तू ने यों दिया है कि जो चीज़ सबकी होती है, और किसी भी व्यक्ति से विशेष संबंध नहीं रखती, उसकी पर्वा कोई नहीं करता। जो बच्चे किसी मा-बाप के न होंगे, परंतु सारे राष्ट्र के होंगे, उनकी चिंता सचमुच किसी को भी न होगी। माता-पिता के, अथवा संबंधियों के उचित स्नेह से वंचित होकर वे या तो मर जायँगे, या शरीर, मन और भाव में कुंठित हो जायँगे।

व्यक्ति-गत संपत्ति

इसी सिद्धांत के अनुसार अरस्तू ने प्लेटो के संपत्ति-संबंधी समष्टि-वाद का भी विरोध किया है। अगर ज़मीन सबकी होगी, तो वास्तव में किसी की भी न होगी। दूसरी संपत्ति भी यदि व्यक्ति-गत न हुई, तो उपेक्षा के कारण ही शीघ्र नष्ट हो जायगी। व्यक्ति-गत संपत्ति से चाहे जितनी बुराइयाँ होती हों, परंतु मनुष्य-स्वभाव ऐसा है कि उसके विना काम ही नहीं चल सकता। दूसरे, कुटुंब और व्यक्ति-गत संपत्ति के लोप से मनुष्य-जीवन के आनंद की मात्रा बहुत घट जायगी। जो चीज़ अपनी होती है, उसमें विशेष आनंद आता है, वह चाहे बच्चे हों, चाहे ज़मीन हो, चाहे रुपया-पैसा हो। जहाँ ममत्व नहीं, वहाँ उल्लास भी नहीं होता।

संपत्ति का नियमन

इस प्रकार, यद्यपि अरस्तू समष्टि-वाद का विरोधी था, तथापि वह अच्छी तरह जानता था कि संपत्ति के अति विषम वितरण से घोर हानि होती है। जहाँ कुछ आदमी तो धन-दौलत पर लोटते हैं, और कुछ आदमी भूखों मरते हैं, वहाँ अवश्य कुछ गड़बड़ होगी। किसी को यह अधिकार भी नहीं है कि इतनी अधिक संपत्ति अपने हाथों में इकट्ठी कर ले कि दूसरों के पास कुछ न रह जाय। अतएव संपत्ति का वितरण नियम से होना चाहिए। न किसी के पास बहुत ज़्यादा दौलत होनी चाहिए, और न बहुत कम। इस मामले में आवश्यकतानुसार राज्य को हस्तक्षेप करना चाहिए।

तीन प्रकार के राज्य

अरस्तू ने राज्यों के वे ही तीन विभाग किए हैं, जो प्लेटो ने किए थे—एक-सत्तात्मक, कुलीन-सत्तात्मक और जन-सत्तात्मक। उसने प्रत्येक विभाग को प्लेटो की तरह दो प्रकार का माना है। एक तो जहाँ सबके हितों पर ध्यान दिया जाता है, और

दूसरे, जहाँ केवल अधिकारियों के हितों की रक्षा और दूसरों के हितों की अवहेलना की जाती है। जैसा राज्य होता है, वैसे ही गुण प्रजा में उत्पन्न होते हैं; अर्थात् प्रत्येक राज्य एक प्रकार के अनोखे धर्म की वृद्धि करता है। राजनीतिक पद्धति का नैतिक प्रभाव सर्वत्र दृष्टि-गोचर है।

राज्य के शासन में जिनको अधिकार है, वे ही नागरिक कहे जा सकते हैं। उन्हीं का जीवन राजनीतिक कहा जा सकता है। राजनीतिक जीवन के लिये शिक्षा, विचार और अनुभव की परम आवश्यकता है, इन आवश्यकताओं की पूर्ति अवकाश के बिना नहीं हो सकती।

राजनीतिक जीवन

नागरिकों को यथोचित अवकाश हो, इसके लिये परमावश्यक है कि मेहनत-मज़दूरी के काम कोई और लोग कर दिया करें। यदि ये काम गुलामों को सौंप दिए जायँ, तो सबसे अच्छा है। बस, गुलाम तो दिन-रात मेहनत-मज़दूरी किया करें, और स्वतंत्र नागरिक, मानसिक तथा राजनीतिक आनंद का उपभोग करें। यदि कोई कहे कि यह व्यवस्था गुलामों के लिये अन्याय-पूर्ण है, तो अरस्तू उत्तर देता है कि संसार में लोग स्वभावतः दो प्रकार की प्रकृतियों के हैं। एक तो प्रभुता और राजनीतिक जीवन के उपयुक्त हैं, और दूसरे, केवल दासता के ही उपयुक्त हैं। दूसरी श्रेणी के लोगों को दास ही रहना चाहिए। अरस्तू का यह सिद्धांत अप्रामाणिक है। वास्तव में मनुष्यों की प्रकृति में ऐसा कोई अंतर नहीं है। बाह्य परिस्थिति ही किसी को प्रभुता और किसी को आज्ञा-पालन के योग्य बना देती है। गुलामी में तो किसी भी मनुष्य को रखना न्याय-संगत नहीं है। कारण, गुलामी उसके विकास और आनंद को बिलकुल रोक देती है। बात यह थी कि अरस्तू के समय में सर्वत्र गुलामी की प्रथा प्रचलित थी। इसलिये न तो वह और न उसका गुरु प्लेटो दासता-हीन समाज की कल्पना करने में समर्थ हुआ।

गुलामी

अरस्तू ने शांति की उपयोगिता स्वीकार की है। उस समय ग्रीक-राज्यों के कुलीन-सत्तावादी और जन-सत्तावादी दल आपस में बहुधा लड़ते और एक दूसरे का खून बहाया करते थे। अरस्तू ने इस रोग को भीषण बतलाया और इसे दूर करने की अनुमति दी है। कृषि, उद्योग और व्यापार की उन्नति करनी चाहिए। सिक्कों और बाँटों की व्यवस्था ठीक-ठीक करनी चाहिए। यद्यपि अरस्तू ने स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार नहीं दिए, तथापि समाज में उनको गौरवान्वित स्थान दिया है। बालकों के पालन-पोषण और उचित शिक्षण को अत्यंत महत्त्व-पूर्ण बतलाया है। राष्ट्र और व्यक्ति में कोई विरोध है, या हो सकता है, यह अरस्तू नहीं मानता। अथवा यों कहिए कि ऐसे विरोध की कल्पना भी अरस्तू या प्लेटो के मन में कभी नहीं आई। राष्ट्र का जीवन ही सबका जीवन है। राष्ट्र के हित के लिये सबको उद्योग करना चाहिए। राष्ट्र के अधिकार की कोई सीमा नहीं है। व्यक्ति-गत अधिकार की कल्पना ग्रीक-दार्शनिकों ने नहीं की थी। इस ग्रीक-विचार को लेकर उन्नीसवीं सदी में कांट, हीगेल इत्यादि जर्मन-दार्शनिकों ने और तत्पश्चात् ग्रीन, ब्रैडले, बोज़ंके इत्यादि अँगरेज़-दार्शनिकों ने अपने दर्शन-शास्त्रों की रचना की है। इस दर्शन का प्रभाव इस समय भी बहुत है। अस्तु। स्पष्ट है कि ग्रीक-दार्शनिक आजकल भी हमारे ऊपर प्रभाव डाल रहे हैं। यही नहीं, किंतु बहुत-सी राजनीतिक समस्याओं को हल करने में अरस्तू की दुहाई दी जाती है।

अन्य सिद्धांत

आजकल की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभाव अरस्तू को मध्यकालीन योरप में प्राप्त था। जैसा कि कह चुके हैं, उन दिनों उसका दरजा ईश्वर-वाक्य से कम नहीं था।

मध्य-काल में अरस्तू का प्रभाव

वेणीप्रसाद

अलबेली

(राग—भैरवी, तिताला)

डगरिया में मो कों ह्वै गई रात ;
इन आँखिन में घटा उठी है, पंथ न नेकु दिखात ।
सँकरी खोर में आय फँसी हौं, कँकरी चुभि-चुभि जात ;
हौं वारी इन काँकरियन पे, जिनहिं न फूल लुभात ।
या वन में घिरि-घिरि के आवत दुख के डारऽरु पात ;
इन लतान में, देख सखी री, मेरो पट अरुझात ।
मेरे घाव कों कोउ जनि बाँधो, नेकु न पूछो बात ;
या मीठी-सी कटुक कसक पै मेरो मन मँड़रात ।
मैं न जाउँगी यह निसि तजिकै ढूँढ़न को वह प्रात ;
हे सूरज, मोहिं पथ न दिखइयो, मैं तुव हा-हा खात ।

"नवीन"

जनमेजय या नाग-यज्ञ

नाटक

(गत संख्या से आगे)

तृतीय अंक

पहला दृश्य

(स्थान – सिंधु-तट)

(वेदव्यास और जनमेजय)

जनमेजय—आर्य ! मुझे आश्चर्य है !

व्यास—क्या वत्स ?

जनमेजय—भगवान् बादरायण के रहते ऐसा भीषण कांड क्यों हुआ ? इस गृह-युद्ध में पूज्यपाद देवव्रत-सदृश महानुभावों ने क्यों भाग लिया ?

व्यास—आयुष्मन्, तुम्हारे पितामहों ने मुझसे पूछकर कोई काम नहीं किया, और न विना पूछे मैं उनसे कुछ कहने ही गया। क्योंकि वह नियति थी। दंभ और अहंकार से पूर्ण मनुष्य अदृष्ट-शक्ति के क्रीड़ा-कंदुक हैं। अंध नियति कर्तृत्व-मद से मत्त मनुष्यों की कर्म-शक्ति को अनुचरी बनाकर अपना कार्य कराती है, और ऐसी क्रांति के समय विराट् का वर्गीकरण होता है। यह एकदेशीय विचार नहीं है। व्यक्तित्व की मर्यादा का वहाँ ध्यान नहीं ! 'सर्वभूत-हित' की कामना पर ही लक्ष्य होता है !

जनमेजय—इसका क्या तात्पर्य ?

व्यास—परमात्म-शक्ति उत्थान का पतन और पतन का उत्थान करती है। इसका नाम है दंभ का दमन। प्रकृति की नियामिका-शक्ति स्वयं कृत्रिम स्वार्थों की रुकावट करती है। ऐसे कार्यों को कोई जान-बूझकर नहीं करता, और न उनका प्रत्यक्ष में कोई बड़ा कारण दिखाई पड़ता है। उस उलट-फेर को शांत विचार-शील महापुरुष समझते हैं, पर उसे रोकना उनके वश की बात नहीं है; क्योंकि इसमें विश्व-भर के हित का रहस्य है।

जनमेजय—तब तो मनुष्य का कोई दोष नहीं, वह निष्पाप है ?

व्यास—(हँसकर) एक कार्य के क्षुद्र अंश को लेकर विवेचना करने से इसका कूल-किनारा नहीं हो सकता। पौत्र, स्मरण रक्खो, पाप का फल दुःख नहीं, किंतु एक दूसरा पाप है। जिन कारणों से भारत-युद्ध हुआ, वे कारण या पाप बहुत दिनों से संचित हो रहे थे। वह व्यक्ति-गत दुष्कर्म नहीं था। जैसे स्वच्छ प्रवाह में कूड़े का थोड़ा-सा अंश रुककर बहुत-सा कूड़ा एकत्र कर लेता है, वैसे ही कुत्सित वासना इस अनादि प्रवाह में अपना बल कभी-कभी संकलित कर लेती है। फिर जब उस समूह का ध्वंस होता है, तब प्रवाह में उसकी एक लड़ी लग जाती है। फिर आगे चलकर वह कहीं-न-कहीं ऐसा ही प्रपंच किया करती है।

जनमेजय – प्रभो, कहीं इनका अवसान भी है ?

व्यास – प्रशांत महासागर ब्रह्मनिधि में।

जनमेजय – आर्य, कुछ मेरा भविष्य कहिए।

व्यास—वत्स, यह कुतूहल अच्छा नहीं। जो हो रहा है, उसे होने दो। अंतरात्मा को प्रकृतिस्थ करने का उद्योग करो। मन को शांत बनाओ।

जनमेजय—पूज्यपाद, मुझे भविष्य जानने की बड़ी अभिलाषा है।

व्यास—(ध्यानस्थ होकर) जनमेजय, तुम्हारा भविष्य भी बड़ा रहस्य-पूर्ण है। तुम्हारा जीवन श्रीकृष्ण के एक आरंभ की इति करने के लिये है। (हँसकर) गोपाल, इसे तुम इतने दिनों के लिये स्थगित कर गए थे।

जनमेजय—भगवन्, पहेली न बनाइए।

व्यास—नियति, जनमेजय, और कुछ नहीं। ब्राह्मणों की उत्तेजना से तुमने जो अश्वमेध करने का दृढ़ संकल्प किया है, उसमें कुछ विघ्न होगा, और वैदिक धर्म के नाम पर जो आज तक बहुत-सी हत्याएँ होती आती हैं, वे बहुत दिनों तक के लिये रुक जानेवाली हैं।

जनमेजय—यदि कोई ऐसी बात है, तो प्रभु, मैं यज्ञ न करूँ।

व्यास—वत्स, तुमको करना ही होगा। ब्रह्म-हत्या और इतनी नाग-हत्या का अपराध तुम्हारे सिर पर है। इसी बात की आशा से ब्राह्मण-समाज ने अभी तुम्हें पतित नहीं बनाया है। धर्म का शासन तुम्हें मानना ही पड़ेगा। तुम्हारी आत्मा इतनी स्वच्छंद नहीं कि उस प्रचलित परंपरा का उल्लंघन कर सके। वैसा होने में अभी तुमको विलंब है। यद्यपि भगवान् का सदैव सार्वत्रिक स्मरण ही सर्वोत्तम धर्म है, परंतु तुमको तो यह क्रियापूर्ण यज्ञ करना ही होगा, फल चाहे जो हो। यज्ञेश्वर भगवान् की इच्छा। जाओ जनमेजय, कल्याण हो।

[illegible] करके जाता है। वेदव्यास ध्यानस्थ [illegible] सोमश्रवा, आस्तीक तथा मणिमाला का प्रवेश)

[illegible] अभी तो भगवान् ध्यानस्थ हैं। [illegible] तक आर्य! हम लोग इस मंत्र-मुग्ध वन [illegible]। क्यों भाई आस्तीक, स्वर्गोपम [illegible] कहीं देखने में आई है?

[illegible] सिंधु की सुंदर तरंग-भंगी हिमालय के [illegible] के साथ निसर्ग मनोहर क्रीड़ा कर रही [illegible] यहाँ के तरुवर कैसी निराली काट- [illegible]

[illegible] आर्यावर्त के समस्त प्रांतों से इसमें कुछ [illegible] है। [illegible] की आप्ति से और कल्पना के [illegible] स्थली कुछ अकथनीय आनंद, न- [illegible] हृदय में उत्पन्न कर देती है! [illegible] पहुँचते थककर यहीं कहीं सो गया है। [illegible] के लिये वन-लक्ष्मी की तरह आगतों का [illegible] है। सरलता-पूर्ण जीवन का सच्चा चित्र [illegible] पर खिंचा हुआ देखकर चित्त चमत्कृत [illegible]

[illegible] —भाई, मुझे तो अपनी समस्त वृत्तियों [illegible] में क्षण-भर के लिये स्थिर होने [illegible] रहा है। वह करुणा की कल्पना, जो [illegible] रखती है, यहाँ पर शांति में परिव- [illegible] विदित होता है कि मानव-जीवन को जो [illegible] मिल गया।

[illegible] —(कान लगाता है)

[illegible] —क्या?

[illegible] —यहाँ तो कोई उपदेश हो रहा है। थोड़ा-सा [illegible], सब स्पष्ट हो जायगा।

(सब चुप होते हैं)

[illegible] आप-ही-आप बोलता है) बुला लो, [illegible] जंगली वसंत को, जो सब को [illegible] है, जो मन में फूल के सदृश [illegible] हृदय की धूल में मकरंद का [illegible] हृदय में बुला लो! जो [illegible] बुलाता है, जो हमारे कई [illegible] होकर इस अंध जगत् में [illegible] है, जो कोकिल के [illegible]

आवाहन करता है, जिसमें विश्व-भर से सम्मिलन का उल्लास स्वतः प्रकट होता है, एक आकर्षण सबको कानों से लगाना चाहता है। उस वसंत को, उस गई हुई निधि को, लौटा लो। कानों में फूल खिलें। विकास हो, प्रकाश हो, सौरभ फैल जाए! विश्व-भाव एक कुसुम-स्तवक के सदृश किसी निष्काम करों में अर्पित हो। आनंद का रसीला राग विस्मृति को सुला दे, सबमें समता की धुन गूँज उठे! विश्व-भर का क्रंदन कोकिल की काकली में परिणत हो जाय। आम के बौरों में से मकरंद-मदिरा पान किए हुए पवन सब तप्त अंगों को शीतल करे।

व्यास—(आँख खोलते हुए) "नमो रुद्राय ब्रह्मणे।"

सोमश्रवा—आर्य के श्रीचरणों में उग्रश्रवा का पुत्र सोमश्रवा प्रणाम करता है।

आस्तीक—यायावर-वंशी आस्तीक आर्य को प्रणाम करता है।

व्यास—कल्याण हो! सद्बुद्धि का उदय हो!

शीला—आर्य! उग्रश्रवा की पुत्रवधू भगवान् के चरणों में प्रणाम करती है।

मणिमाला—महात्मा के चरणों में नागराज-बाला मणिमाला प्रणाम करती है।

व्यास—कल्याण हो! विश्व-भर के कल्याण में तुम दोनों दत्तचित्त हो! सोमश्रवा, वत्स, तुम राज-पुरोहित हुए, यह अच्छा हुआ। धर्म का शासन बिगड़ने न पावे।

सोमश्रवा—आर्य, आशीर्वाद दीजिए कि मैं कर्तव्य पर दृढ़ रहूँ।

व्यास—वत्स आस्तीक, तुम्हारा प्रादुर्भाव किसी विशेष कार्य के लिये है। आशा है, तुम उसे करोगे!

आस्तीक—आर्य, आशीर्वाद दीजिए कि मैं सफल होऊँ।

व्यास—शीला, पुत्री, तुम आर्य-ललनाओं के समान ही अपने पति के सत्कर्म में सहकारिणी बनो।

शीला—भगवान् की जैसी आज्ञा! आशीर्वाद दीजिए।

व्यास—नागराज [illegible], भावी शक्ति ने तुम्हारे हिस्से [illegible] एक बड़ा [illegible] कार्य दिया है, जो इस आर्य और [illegible] ही नहीं, किंतु समस्त मानव-जाति के इतिहास में एक नया युग उत्पन्न करेगा! विश्वात्मा इसमें तुम्हें सफलता दे!

जनमेजय का नाग-यज्ञ

[illegible]

([illegible])

तृतीय अंक

पहला दृश्य

(स्थान—सिंधु-तट)

(वेदव्यास और जनमेजय)

जनमेजय—आर्य ! मुझे आश्चर्य है !

व्यास—क्या वत्स ?

जनमेजय—भगवान् बादरायण के रहते ऐसा भीषण कांड क्यों हुआ ? इस गृह-युद्ध में पूज्यपाद देवव्रत-सदृश महानुभावों ने क्यों भाग लिया ?

व्यास—आयुष्मन्, तुम्हारे पितामहों ने मुझसे पूछकर कोई काम नहीं किया, और न बिना पूछे मैं उनसे कुछ कहने ही गया। क्योंकि वह नियति थी। दंभ और अहंकार से पूर्ण मनुष्य अदृष्ट-शक्ति के क्रीड़ा-कंदुक हैं। अंध नियति कर्तृत्व-मद से मत्त मनुष्यों की कर्म-शक्ति को अनुचरी बनाकर अपना कार्य कराती है, और ऐसी क्रांति के समय विराट् का वशीकरण होता है। वह एक-देशीय विचार नहीं है। व्यक्तित्व की मर्यादा का वहाँ ध्यान नहीं ! 'सर्वभूत हित' की कामना पर ही लक्ष्य होता है !

जनमेजय—इसका क्या तात्पर्य ?

व्यास—परमात्म-शक्ति उत्थान का पतन और पतन का उत्थान करती है। इसका नाम है दंभ का दमन। प्रकृति की विराधिका शक्ति स्वयं कृत्रिम स्वार्थों की रुकावट करती है। जैसे कोई उसे जान-बूझकर नहीं करता, और न उसका प्रत्यक्ष में कोई बड़ा कारण दिखाई पड़ता है। उस उलट-फेर को शांत विचार-शील महापुरुष समझते हैं, पर उसे रोकना उनके वश की बात नहीं है; क्योंकि इसमें विश्व-भर के हित का रहस्य है।

जनमेजय—तब [illegible] का कोई दोष नहीं, वह [illegible] है ?

व्यास—([illegible]) [illegible] को लेकर [illegible] से [illegible] नहीं हो सकता ! [illegible], [illegible], [illegible] नहीं, [illegible] एक दूसरा पाप है। [illegible] से [illegible] हुआ, [illegible] का पाप बहुत दिनों से संचित हो रहे थे। वह व्यक्ति-गत तुम्हारा नहीं था। जैसे स्वच्छ प्रवाह में कूड़े का थोड़ा-सा अंश रुककर बहुत-सा कूड़ा एकत्र कर लेता है, वैसे ही [illegible] इस अनादि प्रवाह में अपना मल कभी-कभी संकलित कर देती है। फिर जब उस समूह का ध्वंस होता है; तब प्रवाह में उसकी एक लड़ी लग जाती है। फिर आगे चलकर वह कहीं-न-कहीं ऐसा ही प्रपंच किया करती है।

जनमेजय—प्रभो, कहीं इनका अवसान भी है ?

व्यास—अशांत महासागर ब्रह्मनिधि में।

जनमेजय—आर्य, कुछ मेरा भविष्य कहिए।

व्यास—वत्स, यह कुतूहल अच्छा नहीं। जो हो रहा है, उसे होने दो। अंतरात्मा को प्रकृतिस्थ करने का उद्योग करो। मन को शांत बनाओ।

जनमेजय—पूज्यपाद, मुझे भविष्य जानने की बड़ी अभिलाषा है।

व्यास—(ध्यानस्थ होकर) जनमेजय, तुम्हारा भविष्य भी बड़ा रहस्य-पूर्ण है। तुम्हारा जीवन श्रीकृष्ण के एक आरंभ की इति करने के लिये है। (हँसकर) भोले, इसे तुम इतने दिनों के लिये स्थगित कर गए थे।

जनमेजय—भगवन्, पहेली न बनाइए।

व्यास—नियति, जनमेजय, और कुछ नहीं। ब्राह्मणों की उत्तेजना से तुमने जो अश्वमेध करने का दृढ़ संकल्प किया है, उसमें कुछ विघ्न होगा, और वैदिक धर्म के नाम पर जो आज तक बहुत-सी हत्याएँ होती आती हैं, वे बहुत दिनों तक के लिये रुक जानेवाली हैं।

जनमेजय—यदि कोई ऐसी बात है, तो प्रभु, मैं यज्ञ न करूँ।

व्यास—वत्स, तुमको करना ही होगा। ब्रह्म-हत्या और इतनी नाग-हत्या का अपराध तुम्हारे सिर पर है। इसी बात की आशा से ब्राह्मण-समाज ने अभी तुम्हें पतित नहीं बनाया है। धर्म का शासन तुम्हें मानना ही पड़ेगा। तुम्हारी आत्मा इतनी स्वच्छंद नहीं कि उस प्रचलित परंपरा का उल्लंघन कर सके। वैसा होने से अभी तुमको विलंब है। यद्यपि भगवान् का संदेश सार्वभौमिक [illegible] ही सर्वोत्तम धर्म है, परंतु तुमको तो यह क्रिया [illegible] करना ही होगा, फल चाहे जो हो। [illegible] [illegible] हुआ। जाओ जनमेजय, कल्याण हो।

(जनमेजय प्रणाम करके जाता है। वेदव्यास ध्यानस्थ होते हैं। शीला, सोमश्रवा, आस्तीक तथा मणिमाला का प्रवेश)

शीला—आर्यपुत्र, अभी तो भगवान् ध्यानस्थ हैं।

सोमश्रवा—तब तक आओ, हम लोग इस मंत्र-मुग्ध वन की शांत शोभा देखें। क्यों भाई आस्तीक, रमणीयता के साथ ऐसी शांति कहीं देखने में आई है?

मणिमाला—सिंधु की सुंदर तरंग-भंगी हिमालय के शीत सुरभि पवन के साथ निसर्ग मनोहर क्रीड़ा कर रही है। बहन शीला, यहाँ के तरुवर कैसी निराली काट-छाँट के हैं!

आस्तीक—आर्यावर्त के समस्त प्रांतों से इसमें कुछ विचित्रता है। भावना की प्राप्ति से और कल्पना के प्रत्यक्ष से यह संगम-स्थली कुछ अकथनीय आनंद, न-जाने कैसा उल्लास, हृदय में उत्पन्न कर देती है! द्वेष यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते थककर यहीं कहीं सो गया है। करुणा आतिथ्य के लिये वन-लक्ष्मी की तरह आगतों का स्वागत कर रही है। सरलता-पूर्ण जीवन का सच्चा चित्र इस कानन के पत्तों पर लिखा हुआ देखकर चित्त चमत्कृत हो जाता है!

मणिमाला—भाई, मुझे तो अपनी समस्त वृत्तियों के साथ इस दृश्य-जगत् में क्षण-भर के लिये स्थिर होने को युद्ध करना पड़ रहा है। वह करुणा की कल्पना, जो मुझे उदासीन बनाए रखती है, यहाँ पर शांति में परिवर्तित हो गई है। विदित होता है कि मानव-जीवन को जो कुछ प्राप्य है, वह सब मिल गया।

आस्तीक—सुनो—(कान लगाता है)

सोमश्रवा—क्या?

आस्तीक—यहाँ तो कोई उपदेश हो रहा है। थोड़ा-सा मन को शांत बनाओ, सब स्पष्ट हो जायगा।

(सब चुप होते हैं)

आस्तीक—(आप-ही-आप बोलता है) बुला लो, उस वसंत को, उस जंगली वसंत को, जो मन को महलों में उदास कर देता है, जो मन में फूल के महल बना देता है, जो सूखे हृदय की धूल में मकरंद का सिंचाव करता है, उसे अपने हृदय में बुला लो! जो पतझड़ करके नई कोंपल बुलाता है, जो हमारे कई जन्म की मादकता में उत्तेजित होकर इस भ्रांत जगत् में असली बात चिता देता है, जो कोकिल के सदृश स-स्नेह, स-करुण आवाहन करता है, जिसमें विश्व-भर से सम्मिलन का उल्लास स्वतः उत्पन्न होता है, एक आकर्षण सबको कलेजे से लगाना चाहता है। उस वसंत को, उस गई हुई निधि को, लौटा लो। काँटों में फूल खिलें। विकास हो, प्रकाश हो, सौरभ खेल करे! विश्व-मात्र एक कुसुम-स्तवक के सदृश किसी निष्काम करों में अर्पित हो। आनंद का रसीला राग विस्मृति को भुला दे, सबमें समता की धुन गूँज उठे। विश्व-भर का क्रंदन कोकिल की काकली में परिणत हो जाय। आम के बौरों में से मकरंद-मदिरा पान किए हुए पवन सब तप्त अंगों को शीतल करे।

व्यास—(आँख खोलते हुए) "नमो रूपाय ब्रह्मणे।"

सोमश्रवा—आर्य के श्रीचरणों में उग्रश्रवा का पुत्र सोमश्रवा प्रणाम करता है।

आस्तीक—यायावर-वंशी आस्तीक आर्य को प्रणाम करता है।

व्यास—कल्याण हो! सद्बुद्धि का उदय हो!

शीला—आर्य! उग्रश्रवा की पुत्रवधू भगवान् के चरणों में प्रणाम करती है।

मणिमाला—महात्मा के चरणों में नागराज-बाला मणिमाला प्रणाम करती है।

व्यास—कल्याण हो! विश्व-भर के कल्याण में तुम दोनों दत्तचित्त हो! सोमश्रवा, वत्स, तुम राज-पुरोहित हुए, यह अच्छा हुआ। धर्म का शासन बिगड़ने न पावे।

सोमश्रवा—आर्य, आशीर्वाद दीजिए कि मैं कर्तव्य पर दृढ़ रहूँ।

व्यास—वत्स आस्तीक, तुम्हारा प्रादुर्भाव किसी विशेष कार्य के लिये है। आशा है, तुम उसे करोगे!

आस्तीक—आर्य, आशीर्वाद दीजिए कि मैं सफल होऊँ।

व्यास—शीला, पुत्री, तुम आर्य-ललनाओं के समान ही अपने पति के सत्कर्म में सहकारिणी बनो।

शीला—भगवान् की जैसी आज्ञा! आशीर्वाद दीजिए।

व्यास—नागराज-कुमारी, अदृष्ट शक्ति ने तुम्हारे हिस्से भी एक बड़ा भारी कार्य दिया है, जो इस आर्य और अनार्य ही नहीं, किंतु समस्त मानव-जाति के इतिहास में एक नया युग उत्पन्न करेगा! विश्वात्मा उसमें तुम्हें सफलता दे।

मणिमाला - भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य है।

व्यास—प्रिय वत्सगण, किसी कार्य को उत्तेजित होकर न तो करना और न करने देना। शुद्ध बुद्धि की शरण जाने पर वह तुम्हें आदेश करेगी, और सीधा पथ दिखावेगी। जाओ तुम सबका कल्याण हो, और सबका तुमसे कल्याण हो।

सब—जो आज्ञा!

(प्रणाम करके जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

× × ×

दूसरा दृश्य

(स्थान—वपुष्टमा का प्रकोष्ठ)

(वपुष्टमा अकेली)

वपुष्टमा—आर्यपुत्र अश्वमेध में व्रती हुए हैं। यह मनोहर पृथ्वी का उद्यान रक्त-रंजित होगा। भगवन्! क्या तुम भी बलि से प्रसन्न होते हो? यह तो बड़ा संकट है। मन हिचकता है; विवशता उसे करने को कहती है। धर्म की आज्ञा और ब्राह्मणों का निर्णय है, ब्रह्म-हत्या का प्रायश्चित्त करना ही होगा। बिना यज्ञ किए छुटकारा नहीं। आश्चर्य है! एक प्रकार की हत्या, जो अनजान में हो गई है, विधि-विहित असंख्य हत्याओं से छुड़ाई जायगी! अखंडनीय कर्म-लिपि! क्या तेरा उद्देश्य है?

प्रमदा—(प्रवेश करके) महादेवी की जय हो! परमेश्वर ने संदेश भेजा है कि बहुत शीघ्र ही गांधार-विजय करके मैं लौटता हूँ। प्रिय अनुजों के साथ महादेवी यज्ञ-संभार का आयोजन करें।

वपुष्टमा—प्रमदा, जब से मैंने अश्वमेध का नाम सुना है, तब से मेरा हृदय काँप रहा है। न-जाने क्या होनेवाला है?

प्रमदा—महादेवी, भगवान् सब कुशल करेंगे। आप आर्य-सम्राज्ञी होकर अपने हृदय को इतना दुर्बल बनाती हैं! सहस्रों राजकुमारों और ज्ञानियों के मुकुट-मणियों की प्रभा से ये पवित्र चरण रंजित होंगे, और उन्हें देखकर आर्यावर्त की समस्त ललनाएँ उस माहात्म्य को, उस गौरव को उच्च कंठ से गाती हुई पुलकित होंगी। भला ऐसे सुअवसर पर आपको प्रसन्न होना चाहिए कि उद्विग्न?

वपुष्टमा—उद्विग्न! प्रमदा मेरा हृदय बहुत ही उद्विग्न है। मेरा चित्त चंचल हो उठा है। भविष्य कुछ टेढ़ी रेखा-खींचता-सा दिखाई दे रहा है।

प्रमदा—महादेवी, यह भ्रम है। बलिहारी! आपको यह बातें शोभा नहीं देतीं। एक नई परिचारिका आई है, उसे बुलाऊँ? वह बहुत अच्छा गाना जानती है। मन बहलाइए।

वपुष्टमा—जैसी तेरी इच्छा।

(प्रमदा जाती है और परिचारिका के वेश में सरमा को लाती है)

प्रमदा—यही नई परिचारिका है?

सरमा—सम्राज्ञी को मैं प्रणाम करती हूँ।

वपुष्टमा—(चौंककर) कौन? क्या तुम्हारा नाम है?

सरमा—मुझे लोग कलिका कहते हैं।

वपुष्टमा—हूँ।

प्रमदा—नाम तो बड़ा अनोखा है।

कलिका—महादेवी! मुझे उदासी के गाने आते हैं।

वपुष्टमा—वही गाओ।

प्रमदा—(गाती है)

मन जागो-जागो।
मोह-निशा छोड़ के, मन जागो-जागो।
विकसित हों कमल-वृंद, वीणा-ध्वनि
बजकर करती पुकार—जागो-जागो।
हेम-पान-पात्र प्रकृति, सुधा सिंधु से
भरकर है लिए खड़ी, जागो-जागो।

वपुष्टमा—तुम्हारे गाने का क्या अर्थ है, कलिका?

कलिका—जैसा लगा लिया जाय महादेवी!

वपुष्टमा—किंतु इसमें उदासी क्या है?

कलिका—अच्छा दूसरा सुनिए।

(गाती है)

फूल जब हँसते हैं अभिराम
मधुर माधव-ऋतु में अनुकूल।
लगी मकरंद-झड़ी अविराम;
कहे जो रोना, उसकी भूल।
लोग सब हँसने लगते हैं,
तभी हम रोने लगते हैं।
उषा में सीमा पर के खेत
लहलहाते कर मलयज-स्पर्श,
गिर पड़े हिमकण विकल अचेत,
उसे हम रोना कहें कि हर्ष?

कुछ सब हँसने लगते हैं,
तभी हम रोने लगते हैं।
इसी 'हम' को तुम ले लो नाथ,
लूटना मत कुछ मेरी वस्तु।
उसे दे दो करुणा के हाथ,
सभी हो गया तुम्हारा, अस्तु।
लोग जब रोने लगते हैं,
तभी हम हँसने लगते हैं।

वपुष्टमा—सचमुच कलिका, जब एक रोता है, तभी तो दूसरे को हँसी आती है। यह संसार ऐसा ही है।

कलिका—दंभ, और कुछ नहीं स्वामिनी! साधारण मनुष्यता से कुछ ऊँचे उठा लेनेवाला दंभ हृदय को बड़े वेग से पटक देता है। वह चूर हो जाता है! महादेवी, चूर होकर इस धूल में मिलकर समता का अनुभव करते हुए चरण-चिह्नों की गोद में लोटने का एक प्रकार का सुख है, वह सबकी समझ में नहीं आता!

वपुष्टमा—जी चाहने पर भी कर नहीं सकती।

(सोमश्रवा और उतंक का प्रवेश)

वपुष्टमा—पौरव-कुल-वधू आर्य के चरणों में प्रणाम करती है।

उतंक—कल्याण हो, सौभाग्यवती हो, वीर-प्रसूति हो। श्रुतसेन, उग्रसेन, और भीमसेन, ये तीनों पांडव-कुल के महावीर विजयोपहार के साथ लौट आए। अश्व भी गांधार तथा उत्तर-कुरु-विजय करने के लिये प्रेरित किया गया है। सम्राट् भी स्वयं इस बार अश्व की रक्षा के लिये बढ़ेंगे। स्कंधावार में चंड भार्गव और याज्ञिक अश्व की राह देखते होंगे।

वपुष्टमा—आर्य के रहते हुए प्रबंध में कोई त्रुटि न होगी। कृती देवरों की संवर्धना करने के लिये मैं यज्ञशाला में चलती हूँ। किंतु प्रभो, यह यज्ञ कैसा होगा?

उतंक—जैसा सदैव होता आया है! सम्राज्ञी, ब्रह्म-हत्या और अपयश का उपद्रव बचाने के लिये ही तो यह आयोजन है। बड़ी अनुनय-विनय करने पर कुछ ब्राह्मणों ने इसे स्वीकार किया है, सो भी जब कुलपति शौनक ने आचार्य होना स्वीकार किया है, तब। नहीं तो कुछ ब्राह्मणों ने यज्ञ के लिये व्यवस्था देने में भी आना-कानी की थी। सम्राट् ने जब यह काम मेरे ऊपर छोड़ा, और मेरी प्रतिज्ञा उन्होंने रक्खी, तब तो मुझे इसके लिये काश्यप के विरुद्ध ब्राह्मणों में आंदोलन करना ही पड़ा।

वपुष्टमा—यह सब करके भी क्या होगा?

उतंक—राष्ट्र और धर्म तथा समाज के शासन को दृढ़ करना इसका उद्देश्य है।

वपुष्टमा—तब आर्य इसे धर्म क्यों कहते हैं?

उतंक—सम्राज्ञी, क्या धर्म कोई इतर वस्तु है? धर्म तो व्यापक है। राष्ट्र-नीति और समाज-नीति विना धर्म के कहीं चल सकती है?

वपुष्टमा—मैं तो घबरा रही हूँ!

उतंक—कल्याणी, सावधान रहो। जो बोझ उठाता है, उसे काँपना न चाहिए। सार्वजनिक कार्य का उत्तरदाता सम्राट् होता है। आप सम्राज्ञी हैं, फिर ऐसी दुर्बलता क्यों? नियति का क्रीड़ा-कंदुक नीचा-ऊँचा होता हुआ अपने स्थान पर पहुँच ही जायगा। चिंता क्या है? कर्म करते रहिए।

वपुष्टमा—आर्य, आशीर्वाद दीजिए कि पतिदेवता के कार्य में मैं सहकारिणी रहूँ, और मरण में भी पश्चात्पद न होऊँ।

उतंक—पौरव-कुल-वधू के योग्य साहस हो, कल्याण हो!

(जाता है)

(पट-परिवर्तन)

× × ×

तीसरा दृश्य

(स्थान—कानन, पहाड़ की तराई)

(मनसा और नाग-वीरगण)

(मनसा और उसकी दो सखियाँ गाती हैं)

क्यों सुना नहीं कुछ, अभी पड़े सोते हो?
क्यों निज स्वतंत्रता की लज्जा खोते हो?
प्रतिहिंसा का विष तुम्हें नहीं चढ़ता क्या?
इतने शीतल हो, वेग नहीं बढ़ता क्या?
जब दर्प-भरा अरि चढ़ा चला आता है,
तब भी क्या जी में जोश न लहराता है?
जातीय मान के शव पर क्यों रोते हो?
क्यों निज स्वतंत्रता की लज्जा खोते हो?
धिक्कार और अवहेला की बलिहारी!
सचमुच तुम सब हो पुरुष या कि हो नारी!

लांछित होंगी कुल-ललना, तुम देखोगे !
दासत्व करोगे, उसको सुख लेखोगे !
जातीय क्षेत्र में अयश-बीज बोते हो।
क्यों निज स्वतंत्रता की लज्जा खोते हो ?
लज्जा मेरी या अपना सुख रखना है ?
परिणाम सुखद है, कड़वा फल चखना है।
अपमान-शल्य से छिदी हुई है छाती।
निज दीन दशा पर दया नहीं क्या आती ?
अपने स्वत्वों से स्वयं हाथ धोते हो।
क्यों निज स्वतंत्रता की लज्जा खोते हो ?

तक्षक—देवी, जातीयता की प्रतिमूर्ति, तुम्हारी जो आज्ञा होगी, वही होगा ! जय नाग-माता की, जय !

सब—जय नाग-माता की, जय !

वासुकि—हम लोग उपहार लेकर जनमेजय की अगवानी करने न जायँगे।

नागगण—किंतु मारेंगे और मर जायँगे !

मनसा—यही तो वीरों के उपयुक्त आचरण हैं ! अच्छा तो, सावधान ! अश्व संभवतः अब यहाँ आया ही चाहता है, उसे पकड़ना होगा।

(आस्तीक और मणिमाला का प्रवेश)

आस्तीक—क्यों मा, क्या तुमको रक्त-रंजित धरणी मनोरम जान पड़ती है ? क्या एक प्राणी दूसरे का संहार करे, और उसके लिये तुम उत्तेजना देती हो ? मेरी मा, यह क्या है ?

मणिमाला—पिताजी, जब कि आर्यों ने इधर उपद्रव बंद कर दिया है, और वे भी एक दूसरे रूप में संधि के अभिलाषी हैं, तब आप क्यों युद्ध के लिये उत्सुक हैं ?

मनसा—बेटी, यदि तू जानती—

मणि०—क्या ?

मनसा—यही कि तेरे पिता को जलाने के लिये वे अभी खोज रहे हैं, और इस नाग-जाति को धूल में मिला देना चाहते हैं।

आस्तीक—फिर इससे क्या ? आप अपने को क्या मानव-जाति से भिन्न मानते हैं ? क्या यह केवल आप लोगों के कल्पित गौरव का दंभ नहीं है ? निज की बड़ाई के वश होकर ही क्या आप लोग यह कार्य नहीं कर रहे हैं ?

मनसा—किंतु वत्से, क्या यह आर्यों का दंभ नहीं है ? क्या वे तुम्हारे इस ऊँचे विचार को नहीं समझते।

आस्तीक—आपका कथन ठीक है मा ! किंतु जब एक दूसरे प्रकार से नाग-जाति के भाग्य का निपटारा होने को है, तब इस युद्ध-विग्रह से क्या लाभ ? आर्यों का अश्व आवेगा, घूमकर चला जायगा। हम लोगों की स्वाधीनता पर कोई प्रभाव इसका नहीं पड़ता। क्या हम लोग मित्र-राष्ट्र के समान उनसे व्यवहार नहीं कर सकते ? जब हम युद्ध करके उनके सुव्यवस्थित राष्ट्र का अधःपात नहीं कर सकते, तब उनसे मित्रता रखने में क्या बुरा है ? यह तो कल्पित मानापमान के बहाने युद्ध-पिपासा दिखाई देती है।

तक्षक—क्यों न हो, आर्य-रक्त का कुछ तो प्रभाव होना ही चाहिए।

मनसा—सुना था, मेरी संतान से नाग-जाति का कुछ उपकार होगा। इसीलिये मैंने तुझे उत्पन्न किया। यदि तू तलवार लेकर इस जातीय युद्ध में नहीं सम्मिलित होता, तो आज से तू मेरा त्याज्य पुत्र है।

मणिमाला—बुआ, ऐसा न करो। भाई आस्तीक—

मनसा—चुप लड़की ! मनसा को तू अभी नहीं पहचानती।

आस्तीक—मुझे विदित है, मैं जिस प्रकार इस जाति की सहायता करूँगा। तो फिर मा, मैं प्रणाम करता हूँ। तलवार लेकर नहीं, यदि हो सका, मैं दूसरी तरह इस विवाद को मिटाऊँगा। इस क्रोध की बढ़िया में मैं बाँध बनूँगा, चाहे मैं ही फिर क्यों न तोड़कर बहा दिया जाऊँ। (जाता है)

मणिमाला—फिर मुझे क्या आज्ञा है ?

तक्षक—जा बेटी, तू घर में जा।

(जाती है)

मनसा—सावधान ! वह अश्व आ रहा है।

(अश्व के साथ आर्य-सैनिकों का गाते हुए प्रवेश)

पद-दलित किया है जिसने भू-मंडल को,
निज हेषा से चौंकाता आखंडल को,
वह विजयी याज्ञिक अश्व चला है आगे ;
हम सब हैं रक्षक, देख शत्रुगण भागे।
यह अरुण पताका नभ तक है फहराती,
जो विजय-गीत मिल मलय-पवन से गाती।
जय आर्य-भूमि की, जय आर्यों की, जय हो ;
अरिगण को भय हो, विजयी जनमेजय हो।

मनसा—छीन लो, इस अश्व को छीन लो !

(नाग सब हल्ला करके दौड़ते हैं । युद्ध होता है । नाग अश्व पर अधिकार करते हैं । दूसरी ओर से चंड भार्गव और जनमेजय सैनिकों के साथ आकर नागों को भगाकर अश्व छुड़ा ले जाते हैं)

(मणिमाला का प्रवेश)

मणि०—क्या ही वीर-दर्प से पूर्ण मुख-श्री है ! प्रणय-वृक्ष, तू कैसे भयानक पानी से टकरानेवाले कगारे पर लगा है ! पिता ! नहीं, तुम नहीं मानोगे । ओह ! कितना भीषण रक्त-पात क्षण-भर में हो गया ।

(घायलों को देखती है)

(मनसा का पुनः प्रवेश)

मनसा—कौन ! मणिमाला !

मणिमाला—हाँ बुआ, देखो तुम्हारी उत्तेजना ने क्या परिणाम दिखलाया । आहा ! बेचारे का हाथ ही कट गया है !

मनसा—(गंभीर होकर) बेटी, सचमुच यह बड़ा भयानक दृश्य है । इसे देखकर तो मेरा भी हृदय काँप उठा है ।

मणि०—नहीं बुआ, तुम न काँपो । तुम वज्र-कठोर चरणों से त्रिशूल लिए हुए इन शवों पर रण-चंडी का तांडव-नृत्य करो । संसार-भर की रमणीयता और कोमलता बीभत्स क्रंदन करें, और तुम्हारे रमणी-सुलभ मातृ-भाव की धज्जियाँ उड़ जायँ ! विश्व-भर में डर से रमणियों के नाम का आतंक छा जाय ! सेवा, वात्सल्य, स्नेह, और भी ऐसी समस्त दुर्बलताओं के चिह्न कहीं न रह जायँ ; क्योंकि सुनती हूँ, इन सब विडंबनाओं के लिये स्त्रियाँ ही कलंकित हैं । हाँ बुआ, एक बार विकट हुंकार कर दो ।

मनसा—बस बेटी, बस ! अधिक नहीं । मेरी भूल थी, वह आज समझ में आई । विश्व में क्रूरता की अग्नि प्रज्वलित ही नहीं हो सकती, यदि स्त्रियाँ उसमें अपने इंगित की आहुति न दें । बर्बर रक्त को खौला देना इन्हीं दुर्बल रमणियों की उत्तेजना-पूर्ण स्वीकृति का कार्य है । जो बल, जो कर्तृत्व-शक्ति उनकी कातर-शक्ति में है, वह मानव-शक्ति की संचालक है । जब अनजान में उसका दुरुपयोग हो जाता है, तब तत्काल इस लोक में दूसरा ही दृश्य उपस्थित हो जाता है । बेटी, क्षमा कर ! तू देवी है !

मणि०—तो चलो बुआ, इन घायलों की सुश्रूषा करें ।

मनसा—अच्छा बेटी !

(घायलों को उठाती है)

(पट-परिवर्तन)

जयशंकर 'प्रसाद'

सेनापति का ग्रीष्म-वर्णन



रद, पावस और वसंत-ऋतु के वर्णन के सदृश ही कविवर सेनापति का ग्रीष्म-वर्णन भी बहुत उत्कृष्ट है । ग्रीष्म-ऋतु की विकरालता का जीता-जागता चित्र यदि किसी भाषा-कवि की कविता में देखना हो, तो कविवर सेनापति का उक्त वर्णन पढ़ना चाहिए । हिंदी-भाषा के अधिकांश कवियों की तरह सेनापतिजी ने ऋतुओं के वर्णन में उद्दीपन का मसाला अधिक नहीं भर रक्खा है । उनकी कविता में प्राकृतिक शोभा का अच्छा समावेश है । यद्यपि सूर, तुलसी और देव आदि कुछ कवियों की रचना में अनेक स्थलों पर प्रकृति-वर्णन पाया जाता है, किंतु फिर भी इस ओर अधिकांश भाषा-कवियों ने उतना ध्यान नहीं दिया । हर्ष की बात है, कविवर सेनापति ने इस अभाव की पूर्ति के लिये अच्छा श्रम किया है । इनके प्राकृतिक वर्णनों में एक अनूठापन और स्वाभाविकता झलकती है । बड़े ही खेद की बात है कि इन महाकवि का कोई भी ग्रंथ अब तक प्रकाशित नहीं हुआ । 'शिवसिंह-सरोज' में इनके दो ग्रंथों का उल्लेख है । एक का नाम 'काव्य-कल्पद्रुम' और दूसरे का 'कवित्त-रत्नाकर' है । मेरे पुस्तकालय में इनका 'कवित्त-रत्नाकर' हस्त-लिखित मौजूद है । इस ग्रंथ का रचना-काल

सं० १७०६ वि० है। इस लेख में इसी ग्रंथ के ग्रीष्म-ऋतु-संबंधी कुछ छंद दिए जाते हैं। पाठक देखेंगे कि ग्रीष्म की विकरालता का कैसा स्वाभाविक वर्णन सेनापतिजी ने किया है।

ज्येष्ठ-मास की विकल बना देनेवाली गरमी का ख़याल कीजिए। प्रचंड मार्तंड—वृष-राशि-स्थित सूर्य—अपनी प्रखर किरणों से आग बरसा रहे हैं! पृथ्वी अतीव उत्तप्त है। मनुष्य, पशु, पक्षी, सभी ग्रीष्म की विकरालता से संतप्त हैं। वायु भी शांत है—कहीं एक पत्ता भी नहीं हिलता! बेचारे यात्री और पक्षी किसी वृक्ष की छाया में, किसी प्रकार, प्रचंड धूप से अपनी रक्षा कर रहे हैं! मध्याह्न-काल में चारों ओर सन्नाटा है! मालूम पड़ता है, वायु भी किसी शीतल स्थान को खोजकर वहीं चुप-चाप बैठा धूप से अपनी रक्षा कर रहा है! कैसा विकल बना देनेवाला वर्णन है! सेनापति के शब्दों में सुनिए—

वृष को तरनि-तेज सहसौ करनि तपै,
ज्वालनि के जाल बिकराल बरखत है;
तचति धरनि, जगु झूरतु झरनि, सीरी
छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत है।
'सेनापति' नेक दुपहरी ढरकत, होत
धमका बिषम, जो न पात खरकत है;
मेरे जान, पौन सीरे ठौर को पकरि कोनो,
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है।

चारों ओर प्रचंड आतप की 'उतपति' (उत्पत्ति) से ज़मीन तच रही है। विरहिणी बेचारी के 'पति उत छाए' हैं—विदेश में हैं; इसी से वह और भी विरहाग्नि से जल रही है। बेढब लू चल रही है! शरीर पर वस्त्र रखने को जी नहीं चाहता! अनंत आकाश, चारों दिशाएँ धूलिमय हैं। प्रतीत होता है, भाड़-रूप आकाश से भस्म की वर्षा हो रही है! धरा और व्योम पूर्णतया उत्तप्त हैं। आग लगानेवाला दुष्ट 'ज्येष्ठ' मानो प्राणियों का 'पुटपाक' (मुँह-बंद बर्तन में दवा रखकर उसे गड्ढे के भीतर पकाने का विधान)-सा कर रहा है! ग्रीष्म की प्रचंडता का रोमांचकारी वर्णन है! देखिए—

'सेनापति' तपति तपन-उतपात तैसो,
छायो उत पति ताते बिरह बरत है;
लूवन की लपटैं तैं चहूँ ओर लपटैं, पै
ओढ़े साल लपटैं न चैन उपजत है।
गगन गरद धूँधि, दसौ दिसा रहीं रूँधि,
मानौ नभ भार की भसम बरषत है;
बरनि बताई छिति, ब्योम की तताई, जेठ
आयो आततार्इ पुटपाक-सो करत है।

प्रातःकाल सूर्य के निकलते ही प्रचंड लू चलने लगती है। आतप की प्रबलता के कारण कूप, नदी, नद शुष्क हो रहे हैं। लू के भीषण व्यापार से वन-उपवन मुरझाए जा रहे हैं! पृथ्वी तच रही है। ग्रीष्म की भीषणता से शीतल अंबु-कण बेचारे डरकर तहख़ानों में जा छिपे हैं! इसी से वहाँ कुछ ठंडक है! प्रतीत होता है, इन अंबु-कणों को शीत-लता के बीज जानकर विधाता ने शीत-काल में 'जमाने' के लिये ज़मीन के अंदर रख छोड़ा है! कैसी सरस उक्ति है! सेनापतिजी कहते हैं—

'सेनापति' उवै दिनकर के चलत लुवै,
नदी, नद, कुवै कोपि डारत सुखाइ कै।
चलत पवन, मुरझात उपवन, बन,
लाग्यो है तवन जरौ भूतलौ तचाइ कै।
भीषम तपत ऋतु-ग्रीषम, सकुच तातें,
सीकर चपत तहखाननि मैं जाइ कै;

मानो सीतकाल सीतलता के जमाइबे को,
राखे हैं बिरंचि बीज धरा मैं धराइ कै।

ज्येष्ठ के प्रबल उत्ताप से जगत् भस्म हुआ जाता है ! भगवान् भुवन-भास्कर अंगारे बरसा रहे हैं। इधर आषाढ़ लगते ही नई-नई सघन घन-घटाएँ उठने लगी हैं। शीतल, सुखद समीर हृदय में अपूर्व आनंद का संचार करने लगा है। एक ओर शरीर को विकल बनानेवाली गरमी का अनुभव होता है, तो दूसरी ओर शीतल समीर 'हीतल' में 'मोद' बढ़ा रहा है ! ग्रीष्म की भीषणता है। मानो बड़वाग्नि से समुद्र जल रहा हो ! कितना अनूठा वर्णन है !—

तपत है जेठ, जग जात है झरनि जरथो,
ताप की तरनि मानौ झरनि झरत है;
इतहि असाढ़ उठी नूतन सघन घटा,
सीतल समीर हिय धीरज हरत है।
आधे अंग ज्वालनि के जाल बिकराल, आधे
सीतल सुभग मोद हीतल भरत है;
'सेनापति' ग्रीषम तपति ऋतु भीषम है,
मानौ बड़वानल सों बारिधि बरत है।

भूपतिगण प्रातःकाल ही स्नान-भोजन से निवृत्त हो, सुंदर वस्त्र धारणकर राज-सभाओं में कुछ समय तक बैठते हैं। धूप की प्रखरता होते ही दरबार बरख़ास्त हो जाते हैं। ख़स की टट्टियों से आच्छादित रंग-मंदिरों में प्रियतमाओं के साथ ही उनका दोपहर का समय व्यतीत होता है। आतप से बचाव के लिये किवाड़े बंद और परदे पड़े हैं। चारों ओर निस्तब्धता है—पत्ता भी नहीं खड़कता ! जेठ की ऐसी दोपहर को देखकर अर्द्धरात्रि की नीरवता का आभास होता है !—

प्रात भूप न्हात, करि असन, बसन गात
पैंधि सभा जात, जौलौं बासर सोहात है;
पीछी अलसाने प्यारी संग सुखसाने,
बिहरत खसखाने, जब घाम नियरात है।
लागे हैं कपाट 'सेनापति' रंग-मंदिर के,
परदा परे, न खरकत कहूँ पात है;
कोई न मनक है कै चनक-मनक रही,
जेठ की दुपहरी कि मानौ अधरात है।

कविवर सेनापति ने राजमहलों एवं उपवनों में छूटते हुए फ़व्वारों का वर्णन कई स्थलों पर किया है। ग्रीष्म-ऋतु में जिन वस्तुओं से चित्त-विनोद होता है, उनमें से एक 'फ़ुहारा' भी है। इसी प्रकार के एक फ़व्वारे का दृश्य देखिए। सुंदर उपवन के बीच में फ़व्वारा छूट रहा है ! जल सीधी धारा में कुछ दूर ऊपर उठकर गिरता है। जल-धारा के ऊपर उठकर गिरने का सुंदर दृश्य देखकर सेनापतिजी को अनूठा भाव सूझ पड़ा ! जल जल-यंत्र (फ़व्वारा) के मिस से ऊपर को उठकर मानो यह देख रहा है कि बाग़ का कोई वृक्ष कहीं बिना सींचा हुआ तो नहीं रह गया ! भूल से यदि कोई वृक्ष सींचा न जा सका हो, तो वह अब सींच दिया जाय ! उक्ति की रमणीयता दर्शनीय है—

सुधा के भवन उपवन बीच छूटैं नल,
सलिल सरल धार ताते निकरत है;
ऊरध गमन करि, ताकी छबि को निहारि,
सेनापति कछू बरनन को करत है।
मति कोऊ तरु बिन सींचे रहि गयो होइ,
ताकौं फिरि सींचौं यह जिय मैं धरत है;
याते मनौ जल जल-जंत्र के कपट करि,
बाग देखिबेकौं ई उपर उछरत है।

गरमी के दिन कितने बड़े होते हैं, इसका

भी वर्णन सेनापति के एक छंदांश में देखिए।

दिन में खूब सोकर जब आँख खुली, तब भ्रम हुआ कि क्या आज का दिन बीत गया— दूसरे दिन का प्रभात है ? प्रभात के भ्रम में आज ही की बातें कल की-सी समझ पड़ने लगीं !—

ग्रीषम की बासर बड़ाई बरनी न जाइ,
'सेनापति' कबि कहिबे को उमहत है।
सोइ जागे जानै दिन दूसरो भयो है, बातैं
कालिह की-सी करी मोरे मोर के कहत है।

ज्येष्ठ में मरीचिमाली पूर्ण प्रताप से अपने सहस्र करों (किरण और हाथ) के द्वारा अपना अपूर्व बल-विक्रम बहुत समय तक प्रदर्शित करते रहते हैं। पर पौष में उनका वह सारा बल-विक्रम न-मालूम कहाँ विलीन हो जाता है, और वह हज़ार पैरों से—द्रुत गति से—पलायन करते हैं ! गरमियों में दिन लंबे होते हैं, और जाड़ों में छोटे। ज्येष्ठ के सहस्र-'कर' सूर्य पौष में सहस्र-'पाद' हो जाते हैं !

याते जानी जाति जिय जेठ मैं सहस-कर
दिनकर पूस मैं सहस-पाँइ होतु है।

ग्रीष्म-ऋतु में साँझ के समय राजमहलों में अपूर्व शोभा दिखलाई पड़ती है ! फ़व्वारे छूट रहे हैं। वे वर्षा की याद दिला रहे हैं ! उनके छिड़काव से शरद् का स्मरण होता है। खस की टट्टियों से आच्छादित स्थानों में बैठने से गरमी दूर भागती है, और हेमंत तथा शिशिर की-सी शीतलता का बोध होता है ! फुलवाड़ियों में विविध फूल फूले हुए हैं—तरु-वृंद पल्लवित हो रहे हैं। अवश्य ही यह वासंती शोभा का प्रसार है ! गरमी की ऋतु में संध्या के समय सचमुच ही राजमहलों में षट्ऋतु की शोभा एकत्र देखने को मिलती है !—

छूटत फुहारे, तेई बरषा सरिस ऋतु,
और सुखदाई है सरद छिरकाइ की;
हेमँत-सिसिर हू ते सीरे खसखाने जहाँ,
छिन रहै तपति मिटति सब काइ की।
फूले तरुवर, फुलवारी सोहै फूलन की,
'सेनापति' सोभा सो वसंत के सुभाइ की;
ग्रीषम के समै साँझ राजमहलन-माँझ,
पाइयतु सोभा षटऋतु-समुदाइ की।

सेनापतिजी श्लेषात्मक रचना करने में बहुत ही सिद्ध-हस्त थे। ऋतुओं में शिशिर और वर्षा, वर्षा और ग्रीष्म, ग्रीष्म और हिम-ऋतु आदि के 'श्लेष' बड़े सुंदर बने हैं। नीचे आपके 'वारवधू और ग्रीष्म' के श्लेष का उदाहरण दिया जाता है—

मिलत ही जाके बढ़ि जात घर 'मैन' चैन,
तन को बसन डारियतु बगराइ कै;
आवत ही जाके नीर चंदन लगत, प्यारी
'छाया' 'जोबनी की' चाहियतु सुखदाइ कै।
जाही के 'अरुन' 'कर' 'पाइ' अब नित प्रति,
सुखित सरस जाके संगम को पाइ कै;
ग्रीषम की ऋतु बारबधू के समान करी,
'सेनापति' बचन की रचना बनाइ कै।

इसमें 'मैन', 'छाया', 'जोबनी की', 'अरुन', 'कर', 'पाइ' आदि शब्द श्लिष्ट हैं।

ग्रीष्म-पक्ष में इनके अर्थ क्रम से हैं—'मैं नहीं', 'छाया', 'जो अब अच्छी है', 'सूर्य के सारथी', 'किरण' और 'पाकर' आदि ! वारवधू-पक्ष में इन्हीं के अर्थ हैं—'कामदेव', 'समीपत्व', 'युवती', 'लाल', 'हाथ' और 'पैर' आदि।

सुगंधित जल तथा चंदन ताप-निवारण करता ही है, उधर अंगराग एवं उद्दीपन की सामग्री भी है। ग्रीष्म-ऋतु में सुंदर छाया परम सुख देती है। वारवधू-विलासी युवती वेश्या के निकट रहना पसंद करते हैं। संसार को भस्म होते देखकर दयालु-हृदय 'अरुण' ने सूर्य के रथ का सारथी होना स्वीकार किया था। सूर्य की प्रखर किरणें अपनी पीठ पर लेकर 'अरुण' ने संसार को भस्म होने से बचाया था। 'अरुण' की इस कृपा के कारण ही उस समय संसार सुखी हो सका था। उधर वारवधू के हाथ-पैरों में मेंहदी की अपूर्व छटा है! उसके सम्मिलन से वेश्यानुरक्त को नित्य-प्रति अपार आनंद की प्राप्ति होती है। सेनापतिजी ने 'वचन की रचना बनाइ कै' सचमुच ग्रीष्म-ऋतु को वारवधू के समान बना डाला। 'सखंड श्लेष' का कैसा उत्तम उदाहरण है!

वैभव-शालियों को इस भीषण ग्रीष्म-ऋतु में भी विशेष कष्ट नहीं होता। सुखोपभोग की सब सामग्री उनके लिये प्रस्तुत है। प्रियतमा और प्रियतम, भगवान् की कृपा से, कैसे आनंद-पूर्वक समय व्यतीत कर रहे हैं—

सुंदर बिराजैं राजमंदिर सु ताके बीच,
सुख-देनी सेनी तैसी सीकर उसीर की;
उछलैं सजिल जल-जंत्र ह्वै बिमल, उठै
सीतल, सुगंध, मंद लहरि समीर की।
भीने हैं गुलाब, तन सने हैं अरगजा सों,
छिरकी पटीर नीर टाटी तीर-तीर की।
ऐसे बिहरत दिन ग्रीषम के बितवत,
'सेनापति' दंपति दया ते रघुबीर की।

ग्रीष्म की भीषणता प्रकट करनेवाला एक और छंद देकर यह लेख समाप्त किया जाता है—

पवन परम ताते लगत, सहि नहिं सकत सरीर;
बरषत रबि सहसौ करनि अवनि तपति के तीर।
अवनि तपति के तीर नीर मज्जन सीतल तन;
'सेनापति' रति करति नारि घर मुक्ता-भूषन।
भूषन मंदिर बास सकल सूखत सरितागन;
पात-पात मुरझात जात बेली, बन, उपबन।

आतप की प्रखरता के कारण पृथ्वी तच रही है, नदियाँ सूखी जा रही हैं। आभूषण भी गरम हो उठे हैं। अतः विहार करनेवाली प्रमदाएँ केवल शीतल मुक्ताओं के आभूषण धारण करती हैं। सुंदर उद्यानों में वृक्ष, लता आदि के पत्ते मुरझाए जा रहे हैं! अहो! ग्रीष्म की कैसी विकरालता है!

विपिनविहारी मिश्र

युद्ध, जीवन-संग्राम और सदाचार

(१)



भी प्रकार के विकास को स्पेंसर ने तीन श्रेणियों में विभक्त किया है। उसका वर्गीकरण इस प्रकार है—निर्जीव विकास (Inorganic Evolution), आंगिक विकास (Organic Evolution) और अंगातीत विकास (Super-organic Evoluition)।

विकास का वर्गीकरण

विकास-वाद के विद्यार्थी को प्रथम श्रेणी में वे बातें मिलती हैं, जिनका वर्णन ज्योतिष-शास्त्र और भू-गर्भ-शास्त्र में दिया जाता है; यथा—पृथ्वी का पहले क्या स्वरूप था, तथा एक साधारण बदली से इस पृथ्वी का और उस पर के सभी पदार्थों का किस प्रकार विकास हुआ? दूसरे शब्दों में ज्ञान के इस अंश को पृथ्वी और पदार्थ के जीवन का इतिहास अनुमान

करना चाहिए। द्वितीय श्रेणी में वे बातें हैं, जो प्राणि-शास्त्र में वर्णित होती हैं; अर्थात् आंगिक विकास के अध्ययन से हमें प्राणियों के जीवन के इतिहास का पता चलता है। हमें मालूम होता है कि क्षुद्र-से-क्षुद्र जीवाणुओं से किस प्रकार संसार के उन्नत-से-उन्नत प्राणियों की उत्पत्ति हुई है, किस-किस प्रकार और किन-किन कारणों से जीवों का शारीरिक विकास हुआ है इत्यादि। परंतु विकास की एक तीसरी श्रेणी भी है; जिसे अन्य किसी उपयुक्त शब्द के न मिलने के कारण स्पेंसर ने अंगातीत विकास कहा है। इस तरह के विकास का आरंभ जीवों के बहुत उन्नत होने पर होता है; अनेक जंगम (Organic) जीवों के एकसाथ संगठित होने—अर्थात् जीवों के मध्य सामाजिकता के पदार्पण करने—से ही इसका श्रीगणेश होता है। यद्यपि मनुष्य के अतिरिक्त कुछ अन्य जीवों में भी सामाजिकता का कुछ फीका प्रतिबिंब अवश्य दृष्टि-गोचर होता है, परंतु मानव-जाति में ही यह (सामाजिकता) स्पष्टता के साथ दिखलाई पड़ती है, और इसलिये यदि हम यह भी कहें कि मनुष्य-समाज में ही इस तरह के विकास का आरंभ होता है, तो कोई बड़ी भूल नहीं कर सकते। अतएव इस तृतीय प्रकार के विकास को हम विशेष-रूप से मनुष्य का विकास कह सकते हैं। हम कह सकते हैं कि इसके अंतर्गत जितने प्राकृतिक नियम हैं, वे ही मानव-जीवन के नियम भी हैं।

सदाचार ही अंगातीत विकास या सामाजिक जीवन की कुंजी है

अंगातीत विकास का आरंभ होने के पूर्व तक ही युद्ध इस जीवन का नियम नहीं रहा है, बाद को भी अनेक समय तक मनुष्य के भाग्य-निर्माण में युद्ध ने बहुत बड़ा भाग लिया है। जीवन-संग्राम का अर्थ ही युद्ध है। आदिम अवस्था में अनेक समय तक शारीरिक बल या युद्ध-कौशल ही के द्वारा जीवों को जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त होती थी। परंतु कालांतर में जीवों में सामाजिकता का भी प्रादुर्भाव हुआ; स्वेच्छाचारी जीवन के स्थान पर सामाजिक जीवन प्रतिष्ठित हुआ; सफलता का साधन युद्ध नहीं रहा; बल्कि जीवों को सफलता प्राप्त करने के लिये सदाचार—जो कि सामाजिक जीवन की कुंजी है—का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। यद्यपि स्पष्ट-रूप से नहीं, तो भी मनुष्य ने जान लिया कि शारीरिक बल और पराक्रम की अपेक्षा प्रकृति सच्चरित्रता को कहीं अधिक पसंद करती है। उसने जान लिया कि मनुष्य सामाजिक जीव है; बिना समाज के न तो मानव-जीवन पूर्ण ही हो सकता है, और न टिका ही रह सकता है। उसने अनुभव कर लिया कि सदाचार के ही द्वारा पूर्ण सामाजिक जीवन की प्राप्ति हो सकती है। अतएव यह स्पष्ट ही है कि उन्नत अवस्था में सफलता का साधन युद्ध नहीं, बल्कि सदाचार ही है। सदाचार ही जीवन का नियम है। बिना सदाचार के मनुष्य का जीवन तक भी असंभव है।

मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति का दृढ़ीकरण अभी तक पूर्णता के साथ नहीं हुआ है

परंतु मनुष्य ने अभी तक अपने स्वार्थी, स्वेच्छाचारी और असामाजिक स्वभाव को संपूर्ण नहीं छोड़ा है। लड़ाई को वह अभी तक प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता है। युद्ध में अनेकों निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करनेवाले, असंख्यों को अनाथ और निराश्रित बनानेवाले, हरे-भरे खेतों को मरु-स्थल-सदृश बनानेवाले, अनेकों जन-कोलाहल-पूर्ण ग्रामों को सदा के लिये निस्तब्ध करनेवाले, उद्भट योद्धा शांत व्यवसायियों और निरुपद्रवी श्रमजीवियों की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त करते हैं। नेपोलियन और सीज़र के सदृश लोगों को देवतों का-सा आदर प्राप्त होता है। इनके नामों के पीछे "महान्" शब्द को जोड़ा जाता है। हम अभी तक समझते हैं कि युद्ध में मरने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, कितने ही देशों के विद्वान् राज-कर्मचारी तो युद्ध की उपयोगिता को वैज्ञानिक रीति से भी प्रतिपादित करते हैं, और मानव की उन्नति के लिये युद्ध को एक-मात्र आवश्यक भी सिद्ध करते हैं।

युद्ध और सदाचार के संबंध के देखने से ही युद्ध की उपयोगिता और अनुपयोगिता पूर्णता के साथ प्रमाणित होती है

अब यदि, जैसा कि हमने अन्यत्र * प्रमाणित करने की चेष्टा की है, और इसमें मत-भेद होना असंभव जान

* देखो "लक्ष्मी", जुलाई १९१९ का लेख "सदाचार और प्राकृतिक चुनाव"

पड़ता है कि सदाचार ही सामाजिक जीवन की कुंजी है, अर्थात् सदाचार के ही द्वारा मनुष्य का विकास और उन्नति हो सकती है, ठीक है, तो युद्ध-वाद और सदाचार के संबंध के देखने ही से युद्ध-वाद की उत्तमता और निकृष्टता पूर्ण रूप से प्रमाणित हो जाती है। हम अपने अन्वेषण में अनुमान-वाद (Deduction) और व्याप्ति-वाद (Induction), दोनों से काम लेंगे।

प्रथम विचार-पद्धति का अवलंबन करने से यह स्पष्ट देख पड़ता है कि युद्ध-वाद और सदाचार में स्वाभाविक विरोध है। सदाचार की स्थिति सामाजिकता, सहृदयता, समवेदना, न्यायपरता इत्यादि के भावों पर है, और युद्ध-वाद से इन भावों की स्वाभाविक शत्रुता है। शत्रुओं को मार गिराना, उनकी पत्नियों को पति-हीन और उनके बच्चों को मातृ-पितृ-हीन बनाना ही तो युद्ध का उद्देश्य होता है। तब युद्ध-नीति में सहानुभूति और सहृदयता को कोई स्थान कहाँ से प्राप्त हो सकता है? न्याय का पहला सिद्धांत तो यही है कि दूसरों के प्रति ऐसा कोई काम न करो, जिसे तुम स्वयं अपने प्रति किया जाना नापसंद करते हो। तब युद्ध में न्यायपरता कहाँ से बरती जा सकती है! छल, बल, कौशल, या चाहे किसी भी प्रकार से विजय-लाभ करना ही युद्ध का प्रधान लक्ष्य है। भारत के युद्धों में भी, जहाँ के युद्ध की न्यायपरता जगद्विख्यात है, छल और कौशल का संपूर्ण अभाव नहीं है। उदाहरण के लिये द्रोणाचार्य और अभिमन्यु के वध का उल्लेख यहाँ यथेष्ट होगा। तब न्यायपरता और युद्ध-वाद में मित्रता क्योंकर हो सकती है? युद्ध एक बहुत बड़ा अभिशाप है, जो हमारी सहानुभूति को शिथिल करता है, जो हमारे जीवन की गति को रोकता है, जो हमारी उन्नति में बाधा डालता है, जो हमारे हृदय को फैलने नहीं देता, जो हमें दूसरों के, संसार-मात्र के, सुख से सुखी और दुख से दुखी नहीं होने देता, जो हमें अपनी हृदय-तंत्री को दूसरों की हृदय-तंत्री के साथ मिलाने नहीं देता, जो हमारे फैलते हुए हृदय को संकुचित कर देता है, जो हमारी लहलहाती हुई सहानुभूति-लतिका पर तुषार-वर्षा करता है, जो हमें निर्दयता और निष्ठुरता का पाठ पढ़ाकर हमारे धक-धक करनेवाले हृदय-स्पंदन को निस्तब्ध करता है। युद्ध-वाद के मरु-स्थल में सहानुभूति की कलकल-नादिनी गंगा प्रवाहित ही नहीं हो सकती। युद्ध-वाद के प्रचंड ताप-मय, शुष्क निदाघ में सहृदयता का इंद्र-धनुष उदय ही नहीं हो सकता।

युद्ध हृदय को सहृदयता-शून्य बनाता है

परंतु जीवन के इतिहास पर नजर दौड़ाने से तो यही विदित होता है कि चेतना के बढ़ने और हृदय के अधिक संक्षुब्ध होने का ही नाम विकास है। चेतना के विकास को ही जीवन की उन्नति या विकास कहते हैं। अतएव युद्ध-वाद विकास के नियमों, जीवन के नियमों, के प्रतिकूल है। यदि उसे जानकर भी हम युद्धवादी रहेंगे, तो हमें इसका अवश्यं-भावी फल अवश्य चखना होगा। प्रकृति किसी के अधीन नहीं है, और उसके नियमों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतएव हमें उसके नियमों का पालन करना ही पड़ेगा, चाहे हमारी इच्छा हो या नहीं; अन्यथा हमें मर मिटना पड़ेगा।

परंतु हृदय के अधिक संक्षुब्ध होने का ही नाम विकास है

जैसा कि कुछ विद्वान् सदा कहा करते हैं, यदि जीवन-संग्राम सदा इस संसार में विद्यमान रहे भी, तो भी उसके द्वारा युद्ध की उपयोगिता कदापि प्रमाणित नहीं होती। प्राकृतिक चुनाव का नियम सदा के लिये जारी रह सकता है, अपने प्यारे जीवों और जातियों के निर्वाचन के काम में प्रकृति सदा लगी रह सकती है; परंतु हमें यह जान लेना चाहिए कि उन्नत अवस्था में सफलता के लिये किन-किन बातों की आवश्यकता है। मैं अन्यत्र प्रमाणित कर चुका हूँ कि उन्नत अवस्था में सफलता के लिये सदाचार ही एक-मात्र आवश्यक वस्तु है। प्रकृति सच्चरित्रता को पसंद करती है; वह सच्चरित्रों को चुनती है, सबसे अधिक लड़ाकुओं को नहीं। युद्ध करके—अन्याय का सहारा लेकर—निर्बलों और निस्सहायों पर जुल्म करके—अपना जीवन व्यतीत करना पशुओं के लिये ठीक हो सकता है, चेतना-युक्त, ज्ञान-युक्त मनुष्यों के लिये कदापि नहीं। आह! और, यदि हम सचमुच युद्ध करने को व्याकुल हैं, तो क्या हमारे और शत्रु नहीं हैं, जो हम मनुष्यों से लड़ते हैं और उनका खून बहाते हैं? क्या दुःख और दारिद्र्य, व्याधि और अज्ञान से लड़ने में

युद्ध और जीवन-संग्राम

कम शूरता है ? नहीं। इन्हीं शत्रुओं के साथ लड़ने और लड़ाई में इन्हें परास्त करने, या स्वयं युद्ध-क्षेत्र में वीर-गति प्राप्त करने, में ही सच्ची शूरता केंद्रीभूत है। याद रहे, युद्ध करने में, अपनी बढ़ी हुई शक्ति के द्वारा दूसरों को घर दबाने में, उनके घर-द्वार, वस्तु-संपत्ति पर अधिकार जमाने में, बलात् छीन लेने में, कोई वीरता नहीं है। बल्कि वह नामर्दी, कायरता, भीरुता, कापुरुषता का ही परिचायक है। युद्ध-मय जीवन-संग्राम के द्वारा—निष्ठुरता, निर्दयता के द्वारा—पशुओं का चुनाव हो सकता है ; किंतु अच्छों का, वास्तविक मनुष्यों का, कदापि नहीं। युद्ध के द्वारा जो चुनाव होता है, वह बेईमानी का चुनाव है ! उस चुनाव में अन्याय मिला हुआ होता है। वह चुनाव सभी मनुष्यों को समान अधिकार और अवसर देकर नहीं किया जाता। इसमें दबाव और बल-प्रयोग का समावेश होता है। इसलिये युद्ध में कोई वीरता नहीं है।

युद्ध वास्तविक वीरता का परिचायक नहीं है, बल्कि यह पाशविकता, कापुरुषता और अमानुषता का ही परिचय देता है

अपने नियम के अनुसार प्रकृति वैयक्तिक जीवन की अपेक्षा उपजातियों के जीवन की और उपजातियों के जीवन की अपेक्षा जातियों के जीवन की अधिक पर्वा करती है। जाति-रक्षा के लिये वह व्यक्तियों और उपजातियों के बलि-प्रदान से कुंठित नहीं होती। अतएव इस स्थान पर हम युद्ध-वाद की उत्तमता और निकृष्टता पर जो विचार कर रहे हैं, वह सारी मनुष्यता के ऊपर इसके परिणामों के लिहाज से, व्यक्ति-विशेष की हानि या लाभ—या जाति-विशेष के उत्थान और अधःपतन—के लिहाज से नहीं। पर क्या विजयी व्यक्तियों और जातियों को भी युद्ध के द्वारा स्थायी लाभ होता है ? नहीं, कदापि नहीं। प्रमाण के लिये इतिहास यथेष्ट है। आज प्राचीन समय के समुन्नत मिश्र, खुल्द, असीरिया और बैबिलन कहाँ हैं ? आज संसार-विजयी रोम की पताका कहाँ-कहाँ उड़ रही है ? आज सिकंदर-प्रसविनी यूनान की क्या हालत है ? परंतु वही भारत, जिसके दर्शन और अध्यात्म-तत्त्व की निंदा की जाती है, भौतिक बल और विभव की उपेक्षा करने के कारण लोग जिस पर हँसा करते हैं, जो जीव-मात्र के प्रति दया और अहिंसा का आदेश देता है, जो मनुष्यों का तो क्या, पशुओं का भी खून बहाना नहीं चाहता, आज भी संसार में आध्यात्मिकता की लहरें भेज रहा है, और गर्व-पूर्वक संसार की विजयी और धन-बल-ऐश्वर्य-मत्त जातियों के प्रति कह रहा है—

युद्ध का प्रभाव

"न धनेन न प्रजया त्यागेनैकेन अमृतत्वमाप्यते।"

सैनिक समाज उन्नति-शील कदापि नहीं हो सकता। उन्नति के लिये परमावश्यक वस्तु है वैयक्तिक स्वतंत्रता। परंतु स्वतंत्रता और सैन्य-वाद में स्वाभाविक विरोध है। पलटन का हर सिपाही युद्ध के संबंध में अपनी राय नहीं दे सकता, और किसी सेना के अध्यक्ष का प्रत्येक सिपाही से पूछकर काम करना कदापि बुद्धिमत्ता में शामिल नहीं हो सकता। अतएव सैनिक-समाज में व्यक्तित्व (स्वतंत्रता) को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। कारण, आज्ञाधीनता ही सैनिक-समाज की जान है। व्यक्ति शासक के कामों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। उसे केवल-मात्र निष्प्राण कठपुतली की भाँति शासकों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। कार्यतः सैनिक-समाज में व्यक्तियों के चरित्र और उनकी शक्तियों का पूर्ण विकास नहीं होने पाता। इसलिये सैनिक-समाज में उन्नति की गति शिथिल हो जाती है, तथा इसके एकदम बंद हो जाने पर समाज मृत्यु के मुख में पतित होता है। एक दूसरे लेख में मैं इन बातों की कुछ विस्तृत व्याख्या कर चुका हूँ।

सैनिकता से हानि। सैनिकता और स्वतंत्रता

इतना ही नहीं, वह समाज, जो दूसरों पर जुल्म करता है, जो दूसरे लोगों के घरों पर अपना आधिपत्य जमाता है, जो दूसरों को स्वयं अपने घरों में बेगाना बनाता है, जो दूसरों के धन को लूटकर अपने को ऐश्वर्य-शाली और विजेता कहता है, जो दुर्बलों का धन शोषण करके अपने को धनाढ्य अनुमान करता है, स्वयं भी निरापद नहीं रहता। अनंत-शक्ति-संपन्न प्रकृति दूसरी तरह से उस जाति से बदला लेती है, और उसे सदाचार-विहीन बनाकर संसार से उसका उन्मूलन कर डालती है। सदाचार और युद्ध-वाद एकसाथ नहीं रह सकते। व्यवसायी-समाज की अपेक्षा सैनिक-समाज का सदाचार निकृष्ट दर्जे का अवश्य होता है। अतएव सैनिक-समाज का अधःपतन भी अवश्यंभावी है।

सैनिकता के साथ सदाचार का क्या संबंध है, यह इरूकयैस जाति के ऊपर दृष्टिपात करने से स्पष्टता के साथ झलक पड़ेगा। उनके बारे में लिखा है कि "अपराध और कुकर्म की मात्रा उनके यहाँ इतनी कम है कि उन्हें किसी दंड-विधान (Criminal Code) की आवश्यकता ही नहीं होती, और इसलिये उनके यहाँ दंड-विधान का प्रायः अभाव ही है।" पुनः इस जाति की सामाजिक संस्थाओं के संबंध में वर्णित है—"इरूकयैस लोग गर्व-पूर्वक कहते हैं कि शांति ही उनके संघ का प्रधान उद्देश है। निरंतर युद्ध करते रहने की प्रवृत्ति (जिसके द्वारा लाल जाति का बहुत समय से नाश हो रहा है) का मूलोच्छेद ही उनका ध्येय है।" इस दृष्टांत के द्वारा सदाचार और युद्ध का संबंध साफ़ तौर पर नज़र आने लगता है। अधिक उदाहरण देने को यहाँ पर स्थान नहीं है। लेखकों ने सभ्य तथा असभ्य जातियों का जो वृत्तांत दिया है, पाठकगण उसे देखें। प्रमाणों से निष्कर्ष यही निकलता है कि आंतरिक और बाहरी लड़ाई जब तक अनवरत-रूप से जारी रहती है, तब तक सदाचार की उन्नति नहीं हो सकती। यह निस्संदेह है कि शांति ही से समाज को लाभ होता है।

व्यास्ति-वाद की रू से सैनिकता और सदाचार का संबंध

युद्ध-वाद से इस शांति-भाव का (सदाचार का) ह्रास होता है, और इसलिये मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार में हिंसा-भाव अधिक रहता है। बच्चों की हत्या करना, मनुष्यों को मारकर खा डालना, किसी के मरने पर उसके अनुचरों, स्त्रियों इत्यादि को मार डालना, देवतों के सामने मनुष्यों की बलि देना आदि बातें लड़ाकू जातियों के ही बीच पाई जाती हैं। हिंसा उनके यहाँ सत्कर्म समझी जाती है। फ़्रीज़ियन मनुष्य—जिसके बारे में यह लिखा गया है कि वह सदा अपने सिर को हथेली पर लिए फिरता है—समझता है कि उसके स्वर्ग में भी देवता नित्य आपस में लड़ा करते हैं, और एक दूसरे को मारकर भक्षण कर डालते हैं। बुशमेन लोग हत्या करना बड़े गर्व की बात समझते हैं, और कार्यतः वे सदा पारस्परिक मार-काट में लगे रहते हैं। इन्हीं के सदृश वधून-जाति के लोग, जो लड़ाई में मरने के अतिरिक्त अन्य हर तरह की मौत को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, सदा परस्पर की लड़ाई में तल्लीन रहते हैं। बगैंडा लोग, जो अपनी युद्ध-प्रवृत्ति के लिये मशहूर हैं, अनवरत लड़ाई में लगे रहते हैं। उनका जीवन ही युद्ध-मय है।

सैनिक-समाजों की रक्त-प्रियता

बाहरी लड़ाई-दंगे की मात्रा जितनी कम होती है, उतना ही आंतरिक लड़ाई-दंगा भी कम होता है, उतना ही आंतरिक द्वेष और हिंसा भी कम होता है, उतना ही न्यायपरता भी बढ़ती है, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की नीति का पालन नहीं किया जाता और मनुष्यों का अधिकार भी विस्तीर्ण होता है। असमानता कम होती है, सबके अधिकार समान माने जाते हैं, और प्रजातंत्रात्मक शासन-पद्धति का जन्म होता है। व्यवसायी-समाज में ही शुद्ध और पूर्ण प्रजा-तंत्र की प्राप्ति होती है। प्रजातंत्रात्मक शासन और युद्ध में कितना बड़ा विरोध है, इसका ज्वलंत प्रमाण हाल के महाभारत से मिलता है। अनेक शताब्दियों में असंख्यों वीर पुरुषों की यंत्रणाओं और रक्त से स्थापित योरप के प्रजातंत्रों और वहाँ की प्रजातंत्रात्मक संस्थाओं पर, योरप के युद्ध-वादी होने पर, कितना बड़ा आघात हुआ, यह सभी निरीक्षकों पर ज़ाहिर है। योरप की गर्वित वैयक्तिक स्वतंत्रता और समानाधिकार लड़ाई के समय प्रायः अंतर्धान हो गए थे, यह सभी निष्पक्ष लोग स्वीकार करेंगे। युद्ध-वाद और प्रजातंत्र एकसाथ कदापि नहीं रह सकते। युद्ध के परिमाण के अनुसार प्रत्येक समाज में असमानता, बल-प्रयोग, अन्याय और अत्याचार भी अवश्य रहेंगे। युद्ध-वाद के परिमाण के अनुसार वैयक्तिक स्वतंत्रता भी अवश्य कम होगी।

सैनिकता और अन्याय। सैनिकता और प्रजातंत्रात्मक शास्त्र में विरोध

गोवर्द्धनलाल

ऊसर

शुष्क कंठ में रुद्ध श्वास की वेदना—
अंतस्तल आकुल था श्रम के भार से।
अस्थिर हो उच्छ्वास भरा जब विश्व ने,
ऊसर! क्या निकले थे तुम उद्गार से?

२

पाद-चिह्न संशय के बनते नित्य हैं,
बैठ-बैठ जाता है बौरा भटक मन।

कैसो है नैराश्य-जनित यह शुष्कता,
ईर्षा का अविरल जिसमें है प्रज्वलन ?

३

विरह-सूर्य का संतत शिर पर ताप है,
आशा-शशि आह्लाद-ज्योत्स्ना-हीन है।
पथिक ! शून्य इस सृष्टि बीच आँखें उठा,
किन आँखों को देख रहे हो दीन हो ?

४

झोंकेंगी जब धूल आँख में आँधियाँ,
कैसे तुम ढूँढ़ोगे मैले वेष में ?
चातक ! अब वह जलद स्वप्न तक में नहीं,
"पी" कहने की चाल नहीं इस देश*में।

५

रागी मन तो रोना ही है चाहता,
करती यह व्यर्थता हृदय में शूल है।
निरमोही ! साँसों का केवल संग है,
दामन छू-छूकर छुट पड़ती धूल है।

"काशी-वासी"

* यह कविता मारवाड़ के लाडनूँ-नामक स्थान पर लिखी गई थी।—लेखक

१३वें हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत-कारिणी समिति के सभ्य



हमने गत संख्या में गत सम्मेलनकी स्वागत-कारिणी समिति के सभ्यों के चित्र और चरित्र प्रकाशित करने का वादा किया था। तदनुसार सबके चरित्र और चित्र भी, जो मिल सके, प्रकाशित किए जाते हैं। इनमें से कुछ महाशय यद्यपि हिंदी-संसार में भली भाँति विख्यात हैं, तथापि कुछ ऐसे भी हैं, जिन्हें वैसी ख्याति अभी तक नहीं प्राप्त हुई है। आशा है, उनसे भी परिचित होकर माधुरी के पाठक प्रसन्न होंगे।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

श्रीमान् द्विवेदीजी की जीवनी सम्मेलन-संख्या में ही निकल चुकी है, इसलिये इस संख्या में उनका वर्तमान काल का चित्र ही दिया जा रहा है।



पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

१३वें हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का स्वागत-कारिणी समिति के सभापति

पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक

आप कौशिक-गोत्रीय आदिगौड़-ब्राह्मण हैं। आपका जन्म आश्विन-कृष्ण प्रतिपदा, संवत् १९४८ वि०, को अंबाला-छावनी में हुआ था। वहीं आपके पिता पं० हरिश्चंद्रजी कमसरियट में स्टोर-कीपर थे। निवास-स्थान क़स्बा गंगोह, ज़िला सहारनपुर था; परंतु जीविका-वश आप

सपरिवार अंबाला-छावनी में ही रहते थे। कौशिकजी को उनके पितामह के भाई इंद्रसेनजी वकील ने ३ वर्ष की अवस्था में गोद ले लिया। तब से कौशिकजी आपके साथ कानपुर में ही रहने लगे। आपने अपने उद्योग और परिश्रम से फ़ारसी, उर्दू, अँगरेज़ी के सिवा बँगला, गुजराती, मरहठी तथा गुरुमुखी आदि भाषाओं में भी अच्छी योग्यता प्राप्त की है।

आप चार भाई हैं; जिनमें सबसे छोटे आप ही हैं। शेष तीन भाई अंबाला-छावनी में रहते हैं। कौशिकजी के पितामह पं० इंद्रसेनजी ने कानपुर में रहकर अच्छी संपत्ति का उपार्जन किया। आपके यहाँ पर कई मकान हैं, तथा इसी ज़िले में ज़मींदारी भी है। सन् १६०४ में इंद्रसेनजी का देहांत हो गया।



पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक
प्रधान मंत्री

जिन दिनों अध्यापक द्वारा आप घर पर उर्दू तथा फ़ारसी की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उसी समय आपके हृदय में काव्य-शास्त्र की ओर अनुराग उत्पन्न हुआ। जहाँ कहीं मुशायरा होता, आप तुरंत उसमें योग देते, और अपनी रचना सुनाते। आपका उपनाम 'साग़िब' है। हिंदी-शिक्षा में ज्यों-ज्यों उन्नति करते गए, त्यों-त्यों ललित साहित्य (उपन्यास तथा गल्प) पर आपका प्रेम बढ़ता गया। सन् १६०८ से आपका रचना-काल आरंभ होता है। तब से बराबर हिंदी की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मासिक पत्र-पत्रिकाओं में आपके गल्प-लेख निकलते रहे।

आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। अनुवाद भी किए हैं। सन् १६२० में अपने मित्र-मंडल को मनोरंजन-समिति का रूप देकर उससे 'हिंदी-मनोरंजन'-नामक एक मासिक पत्र निकाला। मनोरंजन-समिति ने वर्ष-भर चलाकर हिंदी-मनोरंजन का भार 'प्रभा' तथा प्रताप-पुस्तकमाला के व्यवस्थापक पं० शिवनारायण मिश्र वैद्य को दे दिया। मिश्रजी के रायबरेली-केस में फँसे रहने के कारण कुछ मास बाद ही वह बंद हो गया।

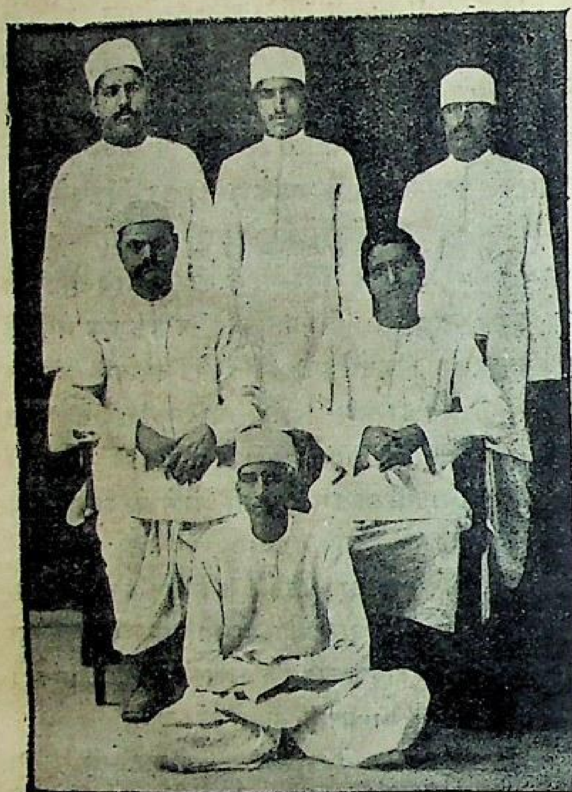
आप ज्योतिष अच्छा जानते हैं। संगीत-कला से आपको बड़ा प्रेम है, और आप हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते हैं। बायस्कोप के संबंध में आपको अच्छा ज्ञान है। आप फ़ोटोग्राफ़ी भी अच्छी जानते हैं।

आप हिंदी-संसार के सफल गल्प-लेखकों में से हैं। स्वभाव के बड़े सरल और उदार हैं। आपकी-सी सहृदयता बहुत कम लोगों में पाई जाती है। आप बड़े हँस-मुख और विनोद-प्रिय हैं। आजकल आपका अधिकांश समय विनोद तथा साहित्य-सेवा में ही व्यतीत होता है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के १३वें अधिवेशन में आपने प्रधान मंत्री का कार्य बड़ी योग्यता तथा परिश्रम के साथ किया।

पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

आपका जन्म श्रावण-शुक्ल त्रयोदशी संवत् १६४० वि० को हड़हा, ज़िला उन्नाव में हुआ था। आपके चचेरे भ्राता पं० ललिताप्रसाद शुक्ल ने आपका पालन-पोषण किया, और आपकी शिक्षा का समुचित प्रबंध रक्खा। ६ वर्ष की अवस्था से आपने विद्याध्ययन आरंभ किया। परीक्षा पास कर स्कालरशिप पाई, और उर्दू-वर्नाक्युलर-फ़ाइनल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। प्रथम उर्दू से नार्मल पास किया, और पश्चात् प्राइवेट तौर पर हिंदी से। आपने प्रायः सभी कक्षाओं की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में पास कीं। नार्मल स्कूल में फ़ारसी के अध्यापक उर्दू के

एक अच्छे कवि थे। उनके साथ से आपको कविता के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ, और वहीं से कविताएँ लिखना आरंभ



आतिथ्य-विभाग

सनेहीजी (बैठे बाईं ओर) पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी (बैठे दाहनी ओर) श्रीकृष्णजी टंडन (खड़े बाईं ओर) पं० मनीरामजी (खड़े दाहनी ओर) (बीच में खड़े और आगे बैठे स्वयंसेवक हैं)

कर दिया। बहुत काल तक शिक्षा-विभाग में ट्रेनिंग इंस्ट्रक्टर तथा टाउन स्कूल के हेड-मास्टर रहे। शिक्षा-विभाग में रहकर ही आपकी प्रतिभा का विकास हुआ, और इसी जीवन में आपने बड़ी अच्छी-अच्छी कविताएँ लिखीं। अंत में आपने सरकारी पद से नाता तोड़ दिया। तब से आप कानपुर में ही रहते हैं, और सस्ती हिंदी-पुस्तक-माला का प्रकाशन तथा संपादन करते हैं। आपने कानपुर आने के पूर्व स्थानीय 'वर्तमान-पत्र' तथा हिंदी-जॉब-प्रेस के स्थापन में भी भाग लिया था।

यों तो आपने सैकड़ों रचनाएँ की हैं, परंतु आपकी कुछ रचनाएँ बड़ी ही प्रसिद्ध हैं। एक-एक मिनट में आपने उर्दू की समस्याओं में गिरह दी, और उनकी पूर्ति की है। आपकी पुस्तकों में 'त्रिशूल-तरंग' का अच्छा मान है। 'राष्ट्रीय वीणा' के दोनों भागों का आपही ने संपादन किया है। गोरखपुर-ज़िले से 'कवि'-नामक एक काव्य का मासिक पत्र निकलता है। इस समय आप ही उसके संपादक हैं। उन्नाव में रहते समय आपने उन्नाव से निकलनेवाले 'स्वराज्य' के संपादन में भी भाग लिया था। परसाल हिंदू-होस्टल, प्रयाग में जो कवि-सम्मेलन हुआ था, उसके आप सभापति हुए थे। आप हिंदी-संसार के गण्य-मान्य कवियों में से हैं। साहित्यिक रचनाओं के लिये आप 'सनेही' तथा राष्ट्रीय रचनाओं के लिये 'त्रिशूल' हैं।

आप स्वभाव के बड़े उदार हँस-मुख, विनोद-प्रिय और रसिक हैं। कानपुर में होनेवाले १३वें अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत-कारिणी समिति के आतिथ्य-विभाग के आप ही मंत्री थे। अपने इस पद का उत्तरदायित्व आपने पूरी तरह निभाया, और स्वागत तथा आतिथ्य का सराहनीय प्रबंध रक्खा। इस समय आप कानपुर की हिंदी-साहित्य-परिषद् के सभापति हैं।

पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी

आपका जन्म मैथा, ज़िला कानपुर में चैत्र-शुक्ल दशमी, संवत् १९४४ वि० में हुआ था। पाँच वर्ष की अवस्था में आपका विद्यारंभ हुआ, और १४ वर्ष की अवस्था में आपने हिंदी-पाठशालाओं की अंतिम शिक्षा समाप्त की। तत्पश्चात् दैवात् माता तथा पितामह का देहांत तथा पिता के विक्षिप्त हो जाने के कारण १५ वर्ष की अवस्था में ही कुटुंब के भरण-पोषण का भार आप पर आ पड़ा। इसके सिवा आपका विवाह १२ वर्ष की ही अवस्था में हो चुका था, अतएव शिक्षालय द्वारा अध्ययन-कार्य आगे न चल सका। अस्तु। विवश होकर आपको ग्राम की हिंदी-पाठशाला का अध्यापन-कार्य हाथ में लेना पड़ा। इसी अवस्था से सामयिक समाचार-पत्र पढ़ने का शौक़ लग गया, और साहित्य-प्रेम का अंकुर हृदय में उत्पन्न होने लगा। आपने छोटे-छोटे लेख तथा कविता लिखना आरंभ कर दिया। इसके बाद श्रीयुत माधवराव सप्रे बी० ए० के

साथ रहकर आपने अच्छी उन्नति की । उन दिनों सप्रेजी नागपुर से हिंदी-ग्रंथ-माला प्रकाशित करते थे। अतएव इन्हें उसमें कार्य करने का अच्छा अवसर मिला, और सप्रेजी को इनसे यथेष्ट सहायता प्राप्त हुई । आपकी कविताएँ तथा लेख हिंदी के लब्ध-प्रतिष्ठ पत्रों में प्रकाशित होने लगे । श्रीयुत पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी से भी कविता-प्रेम में अच्छा प्रोत्साहन मिला । सन् १९०७ ई० में सप्रेजी ने हिंदी-केसरी-नामक पत्र निकाला । आपने उसमें सहकारी संपादक का कार्य बड़ी योग्यता तथा परिश्रम-पूर्वक किया । सन् १९०९ ई० में हिंदी-केसरी बंद हो गया, अतएव सप्रेजी के साथ आप भी रायपुर चले आए । यहाँ आकर सप्रेजी ने पुस्तक-लेखन-कार्य आरंभ किया ; आपने उनके इस कार्य में यथेष्ट योग दिया । इसी समय सप्रेजी ने पूना के चित्रशाला-प्रेस के मालिकों को एक मासिक पत्र निकालने के लिये प्रोत्साहित किया, और 'हिंदी चित्रमय जगत्' निकलना निश्चित हो गया। सप्रेजी ने आपको उसका संपादक बनाकर भेजा। आपने पूना में रहकर 'हिंदी चित्रमय जगत्' का ३ वर्ष तक बड़ी योग्यता-पूर्वक संपादन किया । इसके पश्चात् आर्य-प्रतिनिधि-सभा (संयुक्त-प्रांत) ने 'आर्य-मित्र' के संपादन-कार्य के लिये आपको बुलाया, अतएव आप आगरे चले आए, और 'आर्य-मित्र' का संपादन ३ वर्ष तक करके, पुनः मत-भेद के कारण, पूना वापस आ गए, और पुनः 'हिंदी चित्रमय जगत्' का २ वर्ष तक संपादन-कार्य किया । इसके पश्चात् आप स्वतंत्र रूप से साहित्य-सेवा करने के लिये प्रयाग में आकर रहने लगे । यहाँ आपने 'तरुण भारत-ग्रंथावली' को जन्म दिया । अब तक इस ग्रंथमाला से कई अच्छी-अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। तब से आप स्थायी रूप से प्रयाग में ही रहते हैं, और स्वतंत्र रूप से साहित्यिक जीवन व्यतीत करते हैं ।

आप प्रकृति के बड़े सरल, हँसमुख और स्पष्ट-वक्ता हैं। आपने अब तक कई ग्रंथ लिखे और अनुवाद किए हैं । आपका हिंदी-संसार में अच्छा स्थान है । १३वें हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर आगत प्रतिनिधियों का आतिथ्य-सत्कार-कार्य करने में आपने प्रशंसनीय श्रम किया। आपका चित्र आतिथ्य-विभाग के ग्रूप में है ।

पं० उदयनारायण वाजपेयी

आपका जन्म कानपुर में फाल्गुन-शुक्ल ६, संवत् १९४१ वि० को हुआ था । आपके पिता पं० नारायणप्रसाद वाजपेयी उन्नाव की कलेक्टरी में सदर ख़ज़ांची थे । ७ वर्ष की अवस्था से आपका शिक्षारंभ हुआ । कानपुर के जुबिली तथा गवर्नमेंट-स्कूल में शिक्षा पाई, और प्रत्येक कक्षा में प्रथम आते रहे । स्थानीय गवर्नमेंट-स्कूल में इंट्रेंस तक की शिक्षा प्राप्त करके स्कूली शिक्षा समाप्त की।



पं० उदयनारायण वाजपेयी पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी
साहित्य-मंत्री सहायक साहित्य-मंत्री

स्कूल छोड़ने का कारण पिता का स्वर्गारोहण था । इसी अवस्था से आपके वास्तविक विद्यार्थि-जीवन का प्रारंभ हुआ । स्थानीय कॉलेज-लाइब्रेरी की शत-शत पुस्तकें मित्रों से प्राप्त करके उनका भरपूर अध्ययन किया। स्थानीय वंग-साहित्य-समाज में उस समय जितनी पुस्तकें थीं, उनमें से प्रायः समस्त पुस्तकों का आपने अध्ययन किया । आप अँगरेज़ी, उर्दू तथा बँगला का अच्छा ज्ञान रखते हैं । इनके सिवा आपको गुजराती तथा मरहठी

का भी साधारण ज्ञान प्राप्त है। संवत् १९६१ में बिठूर (कानपुर) से 'मित्र'-नामक एक पत्र निकला था ; उसके आप सहायक संपादक रहे। आपका साहित्यिक जीवन इसी समय से आरंभ हुआ। संवत् १९६४ से १९६६ तक आप 'सरस्वती' के सहकारी संपादक रहे। आँखों के ख़राब होने के कारण ही विवश होकर 'सरस्वती' से संबंध तोड़ना पड़ा।

एक साल तक इटावे से निकलनेवाली 'बिजली' का तथा एक साल तक कानपुर से प्रकाशित होनेवाले संसार-नामक मासिक पत्र का संपादन किया। आपका अध्ययन बहुत बढ़ा-चढ़ा रहा है। क़ुरान, बाइबिल, ६ दर्शन, ३ वेद, १० उपनिषद्, मनुस्मृति, गीता तथा देव-समाज, ब्रह्म-समाज एवं आर्य-समाज के साहित्य का आपने अच्छा अध्ययन किया है। सब धर्म-ग्रंथों की छान-बीन के पश्चात् आजकल आप स्वतंत्र विचार के हैं। इधर कानपुर में हिंदी-साहित्य के उत्तरोत्तर प्रचार का अधिकतर श्रेय आपको प्राप्त है। आप ही ने श्रीयुत गणेशशंकर विद्यार्थी तथा बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा को इधर साहित्यिक क्षेत्र में प्रवृत्त किया। प्राचीन भारत का वैदेशिक व्यापार, सम्राट् पंचम जार्ज का जीवन-चरित, इलियट-काव्य-सार तथा स्वदेश-प्रेम-नामक आपकी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आप नेत्रों के पुनः अधिक बिगड़ने तथा निर्बल होने के कारण साहित्यिक कार्य का संपादन करने में असमर्थ हैं, और आजकल स्थानीय मारवाड़ी-विद्यालय में अध्यापक हैं।

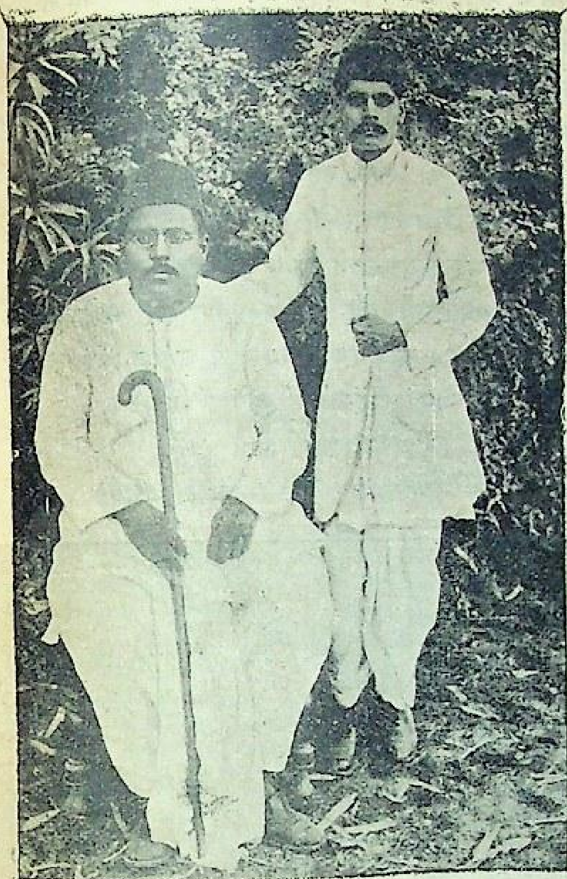
आप बड़े अनुभवी स्पष्ट-वक्ता, गंभीर तथा उदार हैं। अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के १३वें अधिवेशन में आप साहित्य-मंत्री थे। इस समय स्थानीय हिंदी-साहित्य-परिषद् के उप-सभापति हैं।

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी

आश्विन-शुक्ल सप्तमी, संवत् १९२६, को आपने कानपुर-ज़िले के मंगलपुर-ग्राम में जन्म लिया था। आपके पिता का नाम पं० शिवरत्नलालजी वाजपेयी है। सात वर्ष की अवस्था में आपका शिक्षारंभ हुआ, और संवत् १९६३ से लेकर १९७७ विक्रमाब्द तक शिक्षा-काल चलता रहा। इतने समय में आपने हिंदी का अच्छा अध्ययन किया, और हिंदी-भाषा के अतिरिक्त उर्दू, अँगरेज़ी तथा बँगला में भी साधारण ज्ञान प्राप्त किया। यद्यपि समय-समय पर आपके जीवन पर उन महानुभावों का अधिक प्रभाव पड़ा, जिनका प्रेम और अनुराग हिंदी-साहित्य तथा देश-सेवा से था, किंतु उन सबके साथ-साथ आपके साहित्य-क्षेत्र के पथ-प्रदर्शक और प्रोत्साहक मंगलपुर-निवासी सुकवि श्रीयुक्त पंडित बाँकेविहारीलालजी चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जब आपने शिक्षा समाप्त करके साहित्य-मार्ग में पैर रक्खा था, और घर-बार तथा माता-पिता की सेवा आपके योग्य ज्येष्ठ भ्राता के सिर पर थी, तभी, ठीक यौवन-काल में, माता-पिता, भाई-बहन और बालिका-पत्नी को संसार के अंधकार में असहाय छोड़कर ज्येष्ठ भ्राता ने संसार-त्याग किया। प्रकृति ने वह रोड़ा नहीं अटकाया, जिसे मनुष्य-हृदय सहन कर सकता; किंतु आप अपने पथ और उद्देशों से किसी प्रकार विचलित नहीं हुए, और इसी प्रकार जीवन के प्रहार-पर-प्रहार सहकर पारिवारिक भार अपने कंधों पर रक्खा। आपने राष्ट्रीय कार्यों में हाथ बँटाते हुए लगातार साहित्य का अध्ययन बनाए रक्खा। इन्हीं दिनों से आपने उच्च कोटि के पत्रों में 'व्यक्ति-विशेष' के नाम से कविताएँ लिखना आरंभ किया। इसके पश्चात् कानपुर से निकलनेवाले हिंदी-भाषा के उच्च कोटि के पत्र 'संसार' में कुछ दिन सहायक संपादक रहे। उसके पश्चात् संपादक होकर आपने बड़ी योग्यता के साथ उसका संपादन किया। इसके पश्चात् दैनिक 'विक्रम' के संपादकीय विभाग में ६ मास तक कार्य किया। अब आपके नाम से हिंदी के प्रायः समस्त उच्च कोटि के मासिक पत्रों में आपके लेख प्रकाशित होते हैं। कानपुर के १३वें हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में साहित्य-विभाग के सहायक मंत्री की हैसियत से जो सेवा आपने की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। लगभग २ मास से आप 'माधुरी' के संपादकीय विभाग में काम करते हैं। आपका चित्र पीछे दिया जा चुका है।

पं० रामप्रसाद मिश्र

आप स्वागत-समिति के प्रकाशन-विभाग के मंत्री थे। कानपुर-हिंदी-साहित्य-परिषद् के उप-सभापति भी हैं। आप परसू के मिश्र हैं। आपके पिता का नाम पं० शारदाप्रसाद मिश्र था। मिश्रजी को हिंदी पर प्रेम उसी समय से है, जब कि आप एक प्रकार से बालक थे। आप हिंदी-सेवा उस समय से कर रहे हैं, जब कि कानपुर में हिंदी-सेवकों की श्रेणी में गिने जाने-योग्य एक ही दो सज्जन थे।



पं० रामप्रसाद मिश्र — पं० चंडिकाप्रसाद मिश्र

प्रकाशन-मंत्री — सहकारी प्रकाशन-मंत्री

कानपुर का हिंदी का पहला साप्ताहिक पत्र "जीवन" मिश्रजी ने ही निकाला था, और आप स्वयं उसका संपादन करते थे। पहले कुछ दिनों तक "जीवन" मासिक रूप में निकला था। मिश्रजी हिंदी के अच्छे लेखक हैं। आपने "राजसिंह"-नामक एक नाटक तथा हाल ही में "महात्मा लेनिन"-नामक पुस्तक लिखी है। आपने कुछ दिनों उरई से निकलनेवाले "उत्साह" का संपादन भी योग्यता-पूर्वक किया था। हिंदी-साहित्य-क्षेत्र में तो आपकी सेवाएँ बहुत हैं, परंतु राजनीतिक क्षेत्र में भी आपकी सेवाएँ कम नहीं हैं। आप पक्के और निर्भीक असहयोगी हैं। एक बार जेल भी हो आए हैं।

हर्ष की बात है कि इस वर्ष कानपुर की जनता ने आपको कानपुर-म्युनिसिपैलिटी का मेंबर और उसकी शिक्षा-उप-समिति का मंत्री चुनकर अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है।

पं० चंडिकाप्रसाद मिश्र

आप स्वागत-समिति के प्रकाशन-विभाग के सहकारी मंत्री थे। आप सोंठियाएँ के मिश्र हैं। आपके पिता का नाम पं० राम-प्रसाद मिश्र था। मिश्रजी हिंदी के सेवक तथा साहित्या-नुरागी हैं। आप बँगला अच्छी जानते हैं। आपने तीन उपन्यास अभागिनी, विरागिनी तथा सुहागिनी लिखे हैं।

लाला चंपाराम

आप लाला लक्ष्मणदासजी (जिनकी धर्मशाला में हिंदी साहित्य-सम्मेलन के प्रतिनिधि ठहरे थे) के बड़े सुपुत्र हैं। आप स्वागत-कारिणी समिति के उप-सभापति



लाला छुंगामल — लाला चंपाराम

उप-सभापति — उप-सभापति

थे। आप सार्वजनिक कामों में बड़ी तत्परता से भाग लेते हैं; गंगाजी की बाढ़ में और ऐसे ही अवसरों पर जनता की सहायता में सदा आगे रहते हैं। आपको गायन-कला और कविता से भी बड़ा प्रेम है। हिंदी-साहित्य सम्मेलन की सफलता के लिये आपने बड़ा उद्योग किया।

लाला छुंगामल

आप कानपुर के प्रसिद्ध रईस और कपड़े के बड़े

व्यापारी हैं। आप सर्व-हितकारी कार्यों में सदा सबसे आगे रहते हैं। गत वर्ष गंगा की बाढ़ के अवसर पर दिन-रात घोर परिश्रम करके आपने बाढ़-पीड़ितों की सहायता की थी। स्वागत-कारिणी समिति के आप उप-सभापति थे। सम्मेलन की सफलता में आपका बड़ा हाथ रहा। आपने कानपुर के नवजीवन-पुस्तकालय के लिये बड़ी लागत का एक विशाल भवन प्रदान किया है। चित्र पीछे देखिए।

लाला मनीराम

आप हिंदी-प्रचार के काम में बड़ा उत्साह रखते हैं। नवजीवन-पुस्तकालय आप ही के उद्योग का फल है।



लाला मनीराम

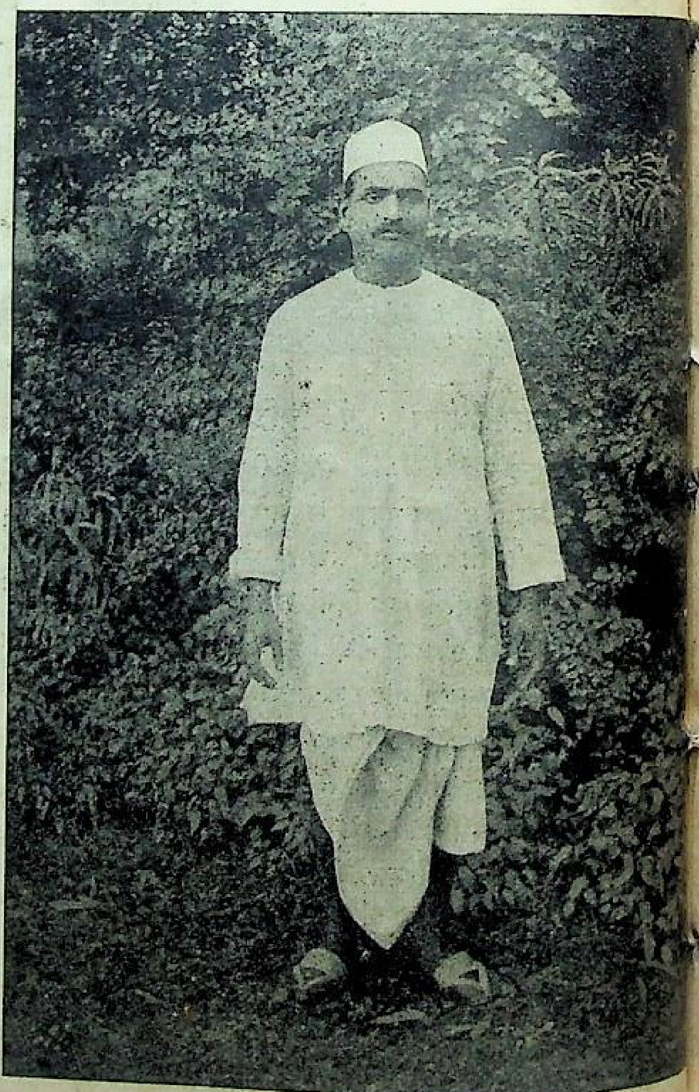
आप हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत-कारिणी समिति के मुख्य सदस्यों में से थे। आतिथ्य-विभाग में आपने बहुत सहायता पहुँचाई।

लाला फूलचंद

आप लाला लक्ष्मणदासजी के सुपुत्र और बड़े ही सज्जन हैं। यद्यपि आपने तन, मन, धन से सम्मेलन की सेवा की, और एक प्रकार से आपको स्वागत-कारिणी का सर्वस्व कहना चाहिए, तथापि आप इतने सीधे-सादे और प्रसिद्धि से दूर भागनेवाले हैं कि हमारे लाख कहने-सुनने पर भी अपना चित्र और चरित्र प्रकाशित कराने को राज़ी नहीं हुए। आपका परिचय केवल इन शब्दों में दिया जा सकता है कि आप हिंदी के अनन्य भक्त, देश-प्रेमी और सज्जन हैं। आपसे जिसका परिचय होगा, वह आपके गुणों पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहेगा। सम्मेलन के स्थल में आपकी हँसमुख मुद्रा और नम्र व्यवहार देखते ही बनता था।

बाबू वेणीमाधव खन्ना

खन्नाजी का नाम आज हिंदी-संसार में छिपा नहीं



बाबू वेणीमाधव खन्ना

है। सुकवियों को समय समय पर पुरस्कार देकर आपने जो आदर्श देश के धनी व्यक्तियों के सामने रक्खा है, वह उपयोगी और प्रशंसनीय है। आप श्रीयुत लालजीमल खन्ना के सुपुत्र हैं। आपकी अवस्था इस समय लगभग ३५ वर्ष की है। आप कंट्रैक्टर हैं और मिलों की सप्लाई का कार्य करते हैं। आप सदा हिंदी की उन्नति के उपाय सोचा करते हैं। खन्नाजी और फूलचंदजी अभिन्न-हृदय मित्र हैं। कानपुर की सस्ती-हिंदी-पुस्तकमाला आप ही के उद्योग का फल है।

राष्ट्र और साहित्य



किसी संगठित मनुष्य-समाज का नाम राष्ट्र है। किसी समाज को संगठित तभी कहते हैं, जब उसमें प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार सुरक्षित हों। प्रत्येक व्यक्ति किसी समाज में रहने के कारण ही उस समाज का सदस्य हो जाता है, और तब उसे अपने कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं जिन्हें वह समाज स्वीकार करता है। व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा राष्ट्र करता है, और आवश्यकतानुसार व्यक्तियों की इच्छा पर दबाव भी डालता है।

इस प्रकार का कथन सुनने में तो बड़ा विचित्र जान पड़ेगा, क्योंकि व्यक्ति-गत स्वतंत्रता हुई कैसे, जब उस पर राष्ट्र ही के दबाव हुए? परंतु थोड़ा ध्यान देने से जान पड़ेगा कि वैसी अनियंत्रित स्वतंत्रता को स्वतंत्रता नहीं कहते। उसे तो अराजकता कहेंगे; क्योंकि तब तो जो मनुष्य जिसको चाहे लूट ले, या जैसा चाहे मनमाना काम कर डाले, फिर उससे चाहे दूसरे को हानि पहुँचती हो या लाभ। ऐसी स्वतंत्रता तो शायद मनुष्य-समाज ने देखी ही नहीं। हाँ, रूसो ने ऐसी स्वतंत्रता का ज़िक्र किया है। वह भी कब, जब मनुष्य 'प्राकृतिक दशा' में थे, और जिसका परिणाम यह हुआ कि परस्पर एक दूसरे के अधिकार पर आक्रमण होने लगे। तब एक ऐसे संगठन की आवश्यकता हुई, जो मनुष्य के वास्तविक अधिकारों की रक्षा करे।

अरस्तू और प्लेटो ने राष्ट्र को नैतिक संगठन बताया है। राष्ट्र के मुख्य कर्तव्य व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा, उसकी सब प्रकार की नैतिक, आर्थिक, शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विकास, और मनुष्य-समाज में इन सारी शक्तियों का पूर्ण विकास करने के लिये प्राकृतिक क्षेत्र तैयार करना है। राष्ट्र अपने इन कर्तव्यों का पालन अपने कुछ चुने हुए व्यक्तियों के समूह द्वारा करता है, जिसे हम शासक-वर्ग, सरकार या गवर्न्मेंट कहते हैं।

इस कारण राजनीति-तत्त्व के अनुसार स्वतंत्रता से मतलब राष्ट्राधीन स्वतंत्रता से ही है। प्रत्येक व्यक्ति के आचरण का प्रभाव राष्ट्र पर पड़ता है। राष्ट्रीय जीवन का निर्माण व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न आचरणों द्वारा होता है। जैसा प्रजा सोचती और काम करती है, वैसा ही राष्ट्र का जीवन होता है। परंतु राष्ट्र की संगठित सरकार व्यक्तियों की मानसिक और नैतिक प्रकृतियों को जैसा चाहे वैसा बना सकती है। इस प्रकार राष्ट्र-निर्माण में प्रजा और सरकार का प्रभाव परस्पर होता है। मेरी समझ में, सरकार का ही प्रभाव विशेष होता है। इस कारण राष्ट्र की सरकार व्यक्तियों की मनमानी स्वतंत्रता को रोकती है, और उन्हें वैसी ही स्वतंत्रता प्रदान करती है, जिससे उसके कर्तव्य-पालन में किसी प्रकार की बाधा न हो।

अब प्रत्येक राष्ट्र का कर्तव्य नीति और सच्चरित्रता का प्रचार करना है। राजनीति-तत्त्ववेत्ता 'ग्रीन' ने अपनी पुस्तक "Principles of Politi-

cal obligati n" में लिखा है कि सच्चरित्रता दो प्रकार की शक्ति—विचार-शक्ति और इच्छा-शक्ति—पर निर्भर है। यदि मनुष्य की मानसिक प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाय, तो विदित होगा कि भाव और विचार ही मनुष्य का चरित्र बनाते हैं। मनुष्य जैसा सोचता है, या जैसा अनुभव करता है, वैसा ही हो जाता है, यह एक पुरानी कहावत है। सोचने की क्रिया मन से होती है, और अनुभव की क्रिया हृदय से। और, मन और हृदय की शिक्षा पर ही चरित्र का निर्माण निर्भर है। इस कारण प्रत्येक राष्ट्र को अपने राष्ट्रीय जीवन की उन्नति के लिये व्यक्तियों के मन और हृदय को सुशिक्षित करना है; उनकी विचार शक्ति (reason) और इच्छा-शक्ति (will) को काट-छाँटकर इस प्रकार बनाना है, जिसमें राष्ट्र में नैतिक बल आवे।

साहित्य का संबंध राष्ट्र की इन दोनों शक्तियों से है। इन दोनों प्रवृत्तियों का सरोकार मन और हृदय से है, और साहित्य का सरोकार भी मन, विशेषकर हृदय, से है।

साहित्य है क्या ? यह मानव-हृदय का अक्षर-रूप में चित्रण है। यह अनुभव का विषय है। इसके आनंद को साहित्यिक पुरुष ही जानते हैं। सूर्यास्त और सूर्योदय के दृश्य से जो आनंद कवि को होता है, वह दूसरों को नहीं होता। किसी विशेष कविता में कौन-सा ऐसा माधुर्य है, जिससे कवि मुग्ध हो जाते हैं, इसे साधारण व्यक्ति नहीं जान सकते। कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर, देव, बिहारी और रवींद्र बाबू की कविता में कौन-सा जादू है, इसे वही जान सकता है, जिसने अपनी हृदय-वाटिका को साहित्य-रस से सींचा हो। जब पाठक के भावों और मन के विचारों से लेखक के भावों और विचारों की टक्कर होती है, तो अपूर्व बिजली पैदा होती है; जिसका केवल साहित्यिक पाठक ही अनुभव करते हैं। बात तो यह है कि साहित्य का विशेष संबंध हृदय से है। साहित्य के अध्ययन से हृदय-सागर में पवित्र भावों की तरंगें उठती हैं।

जब साहित्य का उद्देश्य बिलकुल स्वच्छ और निर्मल है, और जब इससे मनुष्य की विचार-शक्ति और इच्छा-शक्ति, दोनों का विकास होता है, तब यह निश्चय है कि साहित्य-स्रोत से राष्ट्रीय जीवन का भारी उपकार हो। बात भी यही है। जितना तीव्र और शीघ्र मनुष्य के आचरण पर साहित्य के माध्यम द्वारा प्रभाव पड़ता है, उतना किसी और प्रकार से नहीं। कारण, मनुष्य साधारणतः भावों के वशीभूत होते हैं। वे प्रायः आवेश (emotion) और जोश (sentiment) से भरे होते हैं। और, साहित्य का जीवन तो भावों पर ही निर्भर है।

इसी कारण राष्ट्र अपने चरित्र-निर्माण के लिये साहित्य का आश्रय लेता है। राष्ट्र देखता है, उद्देश्य की पूर्ति के लिये इसमें बड़ी-बड़ी शक्तियाँ हैं, और वह इसकी उन्नति के लिये समुचित प्रबंध करता है।

प्राचीन काल से ही साहित्य का प्रभाव राष्ट्रीय जीवन पर पड़ता चला आया है। "रिफ़ार्मेशन" और फ्रांस की राज्य-क्रांति के समय में तो इसने जादू का काम किया। रूसो और मौंटेस्क की लेखनी का प्रभाव बहुत बड़ा पड़ा। अमेरिका की दासत्व प्रथा को नष्ट करने में साहित्य ने भारी भाग लिया। प्रेस के आविष्कार और शिक्षा के प्रचार के कारण अब साहित्य की शक्ति नित्यप्रति बढ़ती जा रही है। अब तो साहित्य को राष्ट्रीय

जीवन से पृथक् रखना कठिन जान पड़ता है। अच्छे साहित्य से मतलब अब उसी साहित्य से है, जिसमें राष्ट्रीय भाव भरे हुए हों, जिसमें मातृ-भूमि के प्रति आदर्श भक्ति-भाव दिखाए गए हों। २०वीं शताब्दी का साहित्य ऐसे ही भावों से पूर्ण है। कवियों ने यदि प्रकृति का आह्वान किया है तो उसमें भी देश और राष्ट्र का दुःख-सुख रोया है।

इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान राष्ट्रों ने साहित्य को अब अपना मुख्य अस्त्र बना डाला है, और इसे वे राष्ट्रीय शिक्षा का मुख्य अंग मानने लगे हैं। इस कारण राष्ट्र इसे अपनी पाठशालाओं के शिक्षा-क्रम में मुख्य विषय समझता है। प्रायः लोग कहा करते हैं कि साहित्य की आवश्यकता ही क्या है? शेक्सपियर के नाटक, कालिदास के काव्य, ड्यूमा के उपन्यास, बंकिम बाबू के उपन्यास और रवींद्र बाबू की कपोल-कल्पित कहानियों के पढ़ने से क्या लाभ? पढ़ना तो चाहिए इतिहास, अर्थ-शास्त्र और राजनीति आदि विषयों को, जिनका विशेष संबंध राष्ट्र से है, और जिनके पढ़ने से राजनीति का ज्ञान होता है। पर ऐसा सोचते समय वे उन कपोल-कल्पित कथाओं का महत्त्व भूल जाते हैं। इतिहास, अर्थ-शास्त्र आदि विषय मनुष्य के कर्मों के बाह्य फल-स्वरूप हैं; और वे कर्म, मनुष्य के विचार (reason) और इच्छा (will) से उत्पन्न होते हैं। मगर विचार और इच्छा को साहित्य ही पुष्ट करता है। इस कारण राष्ट्रीय दृष्टि से साहित्य का महत्त्व और-और विषयों से कहीं बढ़कर है। राष्ट्र, इसी से इसके महत्त्व को विचारकर, इसे बालकों के शिक्षा-क्रम में मुख्य स्थान देते हैं।

परंतु राष्ट्र साहित्य को उस दृष्टि से नहीं देखता, जिस दृष्टि से साहित्य-भक्त देखते हैं। चूँकि इससे विशेष आनंद प्राप्त होता है, इसीलिये वह इसका संरक्षण नहीं करता। वह इसे बिलकुल प्रयोगात्मक दृष्टि से देखता है। उसे तो मतलब उन्हीं अस्त्रों से है, जिनसे राष्ट्र की नैतिक भित्ति दृढ़ हो। यदि साहित्य राष्ट्र के आदर्श की पूर्ति में किसी प्रकार की अड़चन डालता है, तो वह तुरंत साहित्य की उन्नति को रोकता है। जब कभी साहित्य के भाव असात्त्विक हो जाते हैं, तब राष्ट्र, तुरंत वैसे भावों को रोककर, उनके प्रचार से समाज को बचाता है। प्रथम तो राष्ट्र ऐसी व्यवस्था करता है, जिसमें व्यक्तियों के विचार और इच्छा शुद्ध और पवित्र हों, और साहित्य कुत्सित भावों से बचा रहे। परंतु इतनी व्यवस्था करने पर भी यदि साहित्य को कोई व्यक्ति कुत्सित भावों से अपवित्र करना चाहता है, तो राष्ट्र अपने क़ानून के बल से उसे ऐसे काम करने से रोकता है, और समाज तथा राष्ट्र की रक्षा करता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या राष्ट्र की यह करतूत साहित्य की स्वाभाविक उन्नति को नहीं रोकती? मान लिया कि साहित्य में कभी-कभी असात्त्विक प्रेम, ईर्ष्या आदि विकार आ जाते हैं। तो भी साहित्य की उन्नति में ऐसे नियमों का रहना बाधक हो जाता है। साहित्य के प्रवाह को स्वतंत्र होना चाहिए। उसमें यदि कोई रुकावट हुई, तो फिर साहित्य साहित्य ही नहीं रहता। इस प्रकार के यम-नियमों की बेड़ी लगाने से साहित्य की मौलिकता नष्ट होती है, और उसकी शोभा उसी प्रकार चली जाती है, जिस प्रकार मोर की शोभा पिंजड़े में रखने से।

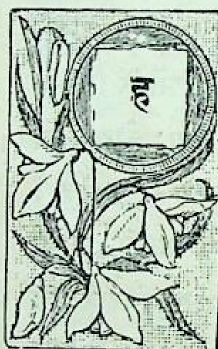
राष्ट्र को यहाँ कई बातों का विचार करना पड़ता है। वह सबसे पहले राष्ट्र की शांति और नीति

का खयाल करता है। वह व्यक्ति-गत अधिकारों का विचार करता है, और तब इसका भी खयाल करता है कि किसी प्रकार के कड़े नियमों से राष्ट्र के मौलिक विचारों में कमी न आवे। इस प्रकार राष्ट्र का यह आशय, वहाँ तक, जहाँ तक वह राष्ट्र को अधःपतन से बचाता है, न्याय्य है। पर बहुत-से राष्ट्र अपने स्वार्थ-साधन के लिये भी, बुरे भावों से प्रेरित होकर, साहित्य के स्वाभाविक प्रवाह को, कड़े नियमों द्वारा, रोकते हैं। ऐसे कार्य कभी न्याय्य नहीं कहे जा सकते। राष्ट्र और साहित्य का संबंध बड़ा घनिष्ठ है। राष्ट्र का जीवन साहित्य और साहित्य का संरक्षक राष्ट्र है। एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते। राष्ट्र के आदर्श को साहित्य पूरा करता है; यही व्यक्तियों के मन और हृदय को शिक्षित कर, राष्ट्र को चरित्रवान् और बलवान् बनाता है। साहित्य की संजीवनी-शक्ति ही राष्ट्र को स्वातंत्र्य-प्रिय बनाती है। यही उसे अजर और अमर बनाता है। यह इसी का प्रभाव है, जो व्यक्ति अधिकार और स्वतंत्रता के लिये अपने प्राण तक न्योछावर कर देते हैं। साहित्य ने ही मनुष्य-समाज को सभ्यता की इस सीढ़ी तक पहुँचाया है। यदि यह नहीं रहता, तो मनुष्य-समाज के मन और हृदय का संस्कार होने में भी संदेह था। इसी कारण सभ्यता का प्रारंभ साहित्य से हुआ है। पहले काव्यों की ही रचना हुई; पीछे और-और शास्त्र बने। साहित्य ही मानव-हृदय को रसों और भावों से पूर्ण करता है। पत्थर को पिघलाकर मोम बनाने की शक्ति भी साहित्य ही में है।

राष्ट्र भी साहित्य को अधःपतन से बचाता और बुरे भावों से उसकी रक्षा करता है। वह साहित्य के आदर्श को ऊँचा करके मानव-समाज की बुराइयों को दूर करता है। वह व्यक्तियों की शिक्षा का उत्तरदायित्व लेकर, उनके मानसिक और हार्दिक भावों का विकास कर, साहित्य को मौलिक विचारों से पूर्ण करता है। वास्तव में, साहित्य राष्ट्र को संजीवित करता और राष्ट्र साहित्य को संस्कृत करता है।

हरिनंदनसिंह

दीनजी की दीनता



हमने अपनी "पद्य-परीक्षा" नाम की पुस्तक में लाला भगवानदीन (दीन) के दूषित पद्यों पर जो शंकाएँ की हैं, उनके समाधान में उन्होंने सम्मेलन-पत्रिका, भाग १०, अंक २, के ६$\frac{1}{2}$ पृष्ठ रँग डाले हैं; अपने संबंध में उत्तर देने के अतिरिक्त हमारी भूलें तलाश करने को सारी किताब छान मारी है। इस परिश्रम पर (सैकड़ों भूलें होते हुए भी!) आपने केवल दो-तीन भूलें दिखाई हैं; जो बिलकुल लचर और पोच हैं। जैसे—

क—"दुन्या" शब्द हमने ग़लत लिखा है; "दुनिया" लिखना चाहिए था।

क्यों? वजह? जब कि दुन्या का 'नून' साकिन है, तो बिला ज़रूरत मुतहर्रिक बनाने से मतलब? यदि हिंदी-अक्षरों में आते ही फ़ारसी, अरबी के शब्दों को बिगाड़ना धर्म है, तो आपने अपने समाधान-पत्र में—मुब्तदी शब्द में—'ब' की टाँग क्यों तोड़ी है?

ख—एक जगह पर प्रूफ़-संशोधक की नज़र से बचकर निषेध का "निषेद" छप गया है!

ग—पंडित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय के बयान में "रसना" वाली शंका को आपने फ़ुज़ूल छेड़ा है। लालाजी ! इस सूक्ष्म विषय को आप नहीं छू सकेंगे। अगर एक ही अर्थ के अनेक शब्द मौजूद हों, तो उनमें से किसका प्रयोग कहाँ होना चाहिए, यह समझ लेना बड़ी टेढ़ी खीर है। मौलाना शिबली नौमानी का कथन है—

"सहरा, जंगल, बयाबाँ, दश्त इत्यादि समानार्थ शब्द हैं; तथापि इनका प्रयोग अपने-अपने मौक़े पर ही होता है, तो मज़ा देता है।"

रसना का प्रयोग भी कहाँ और कैसे होता है, इसे हम फिर कभी समझा देंगे।

लेकिन यह ज़िक्रे-ग़ैर है, इसको न छेड़िए;
हासिल पराई फ़िक्र से ? अपनी निबेड़िए।

बस, ऐसी ही दो-चार अशुद्धियाँ (जो असल में अशुद्धियाँ नहीं हैं) दिखाकर जी खुश किया है। हम कहते हैं, हमारी हज़ार ग़लतियाँ भी आप दिखा सकें, तो भी आप पर जो एतराज़ हुए हैं, वे इनसे दूर नहीं हो सकते। अपने बचाव में तो हमको केवल मूर्ख, नादान, मुब्तदी, नावाक़िफ़ इत्यादि कहकर ही टाला गया है। इससे कुछ न लिखते, तो अच्छा था—

आबरू ली क़लम उठाने ने;
लायक़ी जान ली ज़माने ने।
थी ख़मोशी बयान से अच्छी;
बात खो दी ज़बाँ हिलाने ने।

ऐसे निस्सार समाधान से तो आप उदारता-पूर्वक यह कह देते कि ये कविताएँ बाल्यावस्था की या प्रमादावस्था की लिखी हुई हैं, तो बुज़ुर्गी के साथ आपका सहृदय होना भी सिद्ध हो जाता। परंतु आपने तो उन ज़टलक़ाफ़ियों की हिमायत करके भुस पर लीपने की कोशिश की है। झूठ का पक्ष लिया, उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया ! चीथड़ों में पैबंद लगाने से क्या लाभ हुआ ?

कपड़ा गला-सड़ा है, तो मुमकिन नहीं रफ़ू;
सीते थे आस्तीन, गरीबान फट गया।
बारे-गुनाह बढ़ गया उज़्रे-गुनाह से;
धोने से और दामने-ईमाँ चिकट गया।

× × ×

'पद्य-परीक्षा', पृष्ठ ६०, शंका नं० १२, में हमने पूछा है कि "आपने 'नरेश', 'गणेश' इत्यादि के क़यास पर 'जगतेश' किस व्याकरण-सूत्र के आधार पर लिखा है ?"

इसके उत्तर में आप फ़रमाते हैं—"उस व्याकरण से, जिसे आपने अभी तक पढ़ा ही नहीं।"

उत्तर की माक़ूलियत पाठक जाँच सकते हैं। व्याकरण का नाम क्या स्पष्ट बताया है कि पाणिनि मुनि भी सुनकर मौन हो जायँ; क्योंकि वह व्याकरण लालाजी की ही घर की रचना है।

लालेशजी ! जिस तरह आपने अपने छंद का कल्पित नाम "लालाशाही" रख लिया है, उसी तरह उस व्याकरण-ग्रंथ का नाम भी "दीनशाही" रख लीजिए। विद्वान् लोग आपके सफ़ेद झूठ को ताड़ लेंगे, तो ताड़ लें; साधारण पुरुषों में तो कुछ हवा बँधी रहेगी।

आपने "जगत्" को "जगत" मानकर हिंदी बना लिया, तो फिर संधि संस्कृत-क़ायदे से करने का आपको क्या हक़ है ? हिंदी-क़ायदे से संधि कीजिए, और हिंदी के कुछ ऐसे शब्दों का नाम भी लिखिए, जिनमें संस्कृत-क़ायदे से बचकर संधि हुई हो। मान लिया कि जो अर्थ संस्कृत में 'जगत्' का है, वही हिंदी में 'जगत' का है। यहाँ तक तो

कोई मुज़ायक़ा नहीं। मगर दो शब्दों के मेल में तो इस पर ध्यान देना ही पड़ेगा। मुसलमान लोग अपनी तहरीर में "भगवान्" के स्थान में "अल्लाह" लिखें, तो कोई बुराई नहीं; लेकिन जब वे आपका नाम लिखेंगे, तो क्या "अल्लादीन" लिख सकते हैं? और क्या उस अल्लादीन से लालाजी का ही बोध होगा, या किसी अन्य व्यक्ति का?

यह भी आपने अच्छा चकमा दिया कि **'हिंदी में कोई शब्द हलंत नहीं माना जाता'** बहुत ख़ूब! नहीं माना जाता है, तो हिंदी के विद्वान् सुलेखक पश्चात्, भगवन्, संवत् इत्यादि शब्दों को हलंत क्यों लिखते हैं? "सदुपदेश" को (आपकी तरह बहककर) "सतोपदेश" क्यों नहीं लिखते? औरों को जाने दीजिए, ख़ुद आपने ही "वीर-पंचरत्न" की भूमिका के पृष्ठ ५ में "तदनंतर" लिखकर हिंदी की हत्या क्यों की है? "ततानंतर" लिखते, या उस भूमिका की भाषा को संस्कृत बताने का दुस्साहस करेंगे?

× × ×

हमारी कई शंकाओं के उत्तर आपने ये दिए हैं—

"ऐसा करने का हमें अधिकार है।"

"ऐसा करने की आज्ञा हमारा शास्त्र हमें देता है।"

"ऐसा करने से हमें कोई नहीं रोक सकता।"

क्या ख़ूब!

१—जगदीश को जगतेश बनाने की आज्ञा आपको मिल गई।

२—छंदों में मात्रा न्यूनाधिक लिखना आपकी इच्छा पर निर्भर है।

३—मँहदी को मँहदी मौज़ूँ करने का हक़ आपको हासिल है।

४—क़ाफ़िया बे-जोड़ लिखने से आपको कोई नहीं रोक सकता।

क्या विश्व-भर के अधिकार शास्त्रों ने आपको ही दिए हैं?

× × ×

२६ मात्रा के १९६४१८ छंद बनते हैं। ये हिंदसे (अंक) पिंगलज्ञता सिद्ध करने के लिये पेश करने की ज़रूरत नहीं; क्योंकि प्रस्तार को विस्तार-सहित अब से बहुत दिनों पहले हम अपनी पुस्तक "पिंगल-सार" में प्रकाशित कर चुके हैं। अब वक्तव्य यह है कि १९६४१८ छंदों में २६ मात्राएँ समान होने पर भी जो विशेषता एक से दूसरे को अलग कर देती है, वह भी कोई वस्तु है या नहीं? आपका कर्तव्य है कि अपने छंदों की विशेषता लिखें। यों "लालाशाही", "दीन-शाही", "सुथरेशाही" गढ़ंतों से काम नहीं चलेगा; पूरा लक्षण लिखिए।

एक तेली का अधसेरा ७ छटाँक का था। किसी दिन संयोग-वश पुलिस ने पकड़ लिया; पूछा, यह क्या बाँट है? तेली ने झट चालाकी से उत्तर दिया—सरकार! यह अधसेरा नहीं, "पौंड" है। जब पौंड से जाँचा, तो पूरा पौंड भी न उतरा। तेली था ज़रा ज़बाँदराज़, और कुछ ढीठ भी। कहने लगा—यह बंबई का सेर है हुज़ूर! (बंबई में तेल तोलने का सेर २८ तोले का होता है) उसमें तोला, तो बढ़ गया। फिर तो गाँगूजी फ़रमाते हैं कि बंबई का सेर न सही, लंदन का, रूस का, जापान का, जर्मनी का, अमेरिका का दुन्या में हज़ारों तोल मौजूद हैं—आख़िर कहीं का तो ज़रूर होगा।

ठीक इसी तरह तीसरे उत्तर में लालाजी फ़रमाते हैं कि—

"………५१४२२९ प्रकार के छंद बनते हैं। यह भी एक छंद है।"

काव्य-मर्मज्ञता सिद्ध करने को क्या यह उत्तर काफ़ी नहीं है !

× × ×

"सही" और "नहीं" के क़ाफ़िए को सही सिद्ध करने के लिये गुलाब कवि का सवैया पेश करके आप बड़े खुश हुए हैं। इसी तरह अगर गुलाब के सवैए पर कोई एतराज़ करेगा, तो वह या उनके अनुयायी आपका पद्य पेश करके प्रसन्न हो सकेंगे। हम पद्य-परीक्षा के पृष्ठ ५ पर लिख चुके हैं कि—

"वर्तमान रचनाएँ थोड़े दिनों बाद प्राचीन हो ही जायँगी; फिर कोई कारण नहीं कि वे आवश्यकता के समय उदाहरणों में पेश न हों।"

वही अवसर इस समय उपस्थित है। जिस तरह गुलाब कवि का सवैया आपका साथ दे रहा है, उसी तरह आपका ग़लत कलाम भी आगे चलकर ग़लत-नवीसों की हिमायत करेगा। इसमें आश्चर्य ही क्या है! श्रीमानजी, ऐसे अवसरों पर पहले नियम बयान करना चाहिए, फिर उदाहरण। आपने उदाहरण से ही शुरू कर दिया! इसके लिये तो इतना ही कहना काफ़ी है कि वह भी आपकी तरह ग़लत है। यही हाल इस प्रकार के अन्य उत्तरों का भी समझिए।

× × ×

क़ाफ़ियों की ग़लती का उत्तर आप यह देते हैं कि—

"क़ाफ़िया तंग हुआ करता है उर्दूवालों का, हमारे यहाँ तो एक मात्रा तक का तुकांत जाइज़ है।"

क्यों लालाजी, "हमारे यहाँ" से क्या मुराद है? क्या आपके घर में, या आपकी कविता में? यदि हिंदी-काव्य-शास्त्र की तरफ़ इशारा है, तो जिस ग्रंथ में एक मात्रा का तुकांत जाइज़ लिखा है, कृपया उसका नाम-निशान लिखिए; हम उसी क़ानून से आपकी ग़लती साबित कर देंगे। वर्ना आपके कथन का अर्थ बला टालने के सिवा और कुछ नहीं है।

× × ×

मेंहदी का समर्थन आप बड़े दावे से करते हैं, मगर अमेरिका के क़ानून से भारत की अदालत में। मेंहदीवाली कविता लिखी है खड़ी बोली में, उदाहरण देते हैं पद्माकर की व्रज-भाषा की रचना का। दीनदयालो! व्रजभाषा में तोड़-मरोड़, अपभ्रंश, न्यूनाधिक कर लेना जाइज़ है, खड़ी बोली में दस्तंदाज़ी का हक़ हरगिज़ नहीं है। अब श्रीगोस्वामी तुलसीदास-लिखित सिय, सीय, सीया के रूपांतरों का कारण समझ में आ गया होगा कि वह खड़ी बोली की कविता नहीं है, इसलिये सब शुद्ध है। आपकी व्रजभाषा नहीं है, इसलिये सब ग़लत है।

मेंहदीवाली बहर को ज़बरदस्ती हिंदी-छंदों में घसीटते हैं, तो उचित है कि उस छंद का नाम ग्रंथ के हवाले से और संपूर्ण नियम लिखकर अपनी काव्य-मर्मज्ञता की रक्षा करें; वर्ना हम कह देंगे कि यह उर्दू-बहर है, और उर्दू-बहर में आपकी मजाल नहीं कि मेंहदी (बर वज़न फेंक दी) मौज़ूँ कर सकें। यही खंडन ३, ४, ५, ६ नंबर के उत्तरों का समझिए। बाक़ी शंकाओं का समाधान हमें मूर्ख और नादान बताकर ही कर दिया गया है, सो वह शिरोधार्य है।

× × ×

अंत में "पहली चितावनी" के नाम से यह धमकी भी दी है कि "आपने इसी तरह अनधिकार उछल-कूद मचाई, तो हमें कुछ अधिक कष्ट उठाना पड़ेगा।"

इसमें संदेह नहीं कि कष्ट तो अब भी आपको बहुत उठाना पड़ा है, और आगे भी कुछ लिखा, तो इससे अधिक कष्ट उठाना पड़ेगा। हम ख़ूब जानते हैं, आपके दिल में एक ख़लिश हो रही होगी, हृदय अंतर्दाह से जल रहा होगा, अपने बे-जोड़ जवाब से भी शांति नहीं हुई होगी; क्योंकि १३ एतराज़ों के उत्तर में नंबर ही तो पूरे किए हैं। चाहे मुँह से न कहें, परंतु मन में तो जानते हैं कि यह जवाब कोई जवाब नहीं है, बल्कि उज्रेगुनाह बदतर अज़ गुनाह है। लालाजी, जो कुछ दुःख आपको पहुँचा है, वह हमारी बद-नीयती से नहीं। हम तो किसी के साथ द्वेषमूलक पक्षपात करना महापाप समझते हैं। आपसे भी हमारा कोई परिचय नहीं। केवल पद्य-प्रयोग और साहित्य-रक्षा के लिये वह पुस्तक लिखी गई है। आपके इस कष्ट का कारण हमारी पुस्तक नहीं। सच्चा कारण यह है कि आपने साहित्य को कष्ट दिया है, छंदःशास्त्र की हत्या की है, उन बे-गुनाहों का ख़ूने-नाहक़ ही यह रंग लाया है। इन ख़ूने-नाहक़ के धब्बों को आप जितना धोवेंगे, ये और चमकेंगे।

"पिंगल का क़त्ल है, यह छिपाया न जायगा।" *

नारायणप्रसाद "बेताब"

मन

सिंधु में, चौदह भुवन ब्रह्मांड में,
वायु-मंडल में समा सकते नहीं।
मैं कहूँगा, व्योम के भी गर्भ में,
मन, कभी हैं आप आ सकते नहीं॥ १॥

वास कर नर-देह में तुमने सदा,
गति-कुगति इसकी न पहचानी कभी।
मस्त अपने मान के अभिमान में,
मन, तजी करनी न मनमानी कभी॥ २॥

तुम कुएँ सबको झँकाते ही रहे;
दुख किसी का देखकर कब दुख-भरे।
सुत मनोभव ही जलाता फल-स्वरूप,
मन, कहो अब किसलिये जाते मरे? ३॥

हो कभी उपकार में लगते न मन,
है छछोरी रीति नित भाती तुम्हें।
टूटते प्रति-पाद पर खा ठोकरें;
मन, निलज हो, लाज कुछ आती तुम्हें? ४॥

योग के, जप के, बिछाए जाल हैं,
बहु कसीं संयम-नियम की साँकलें।
बाँध लेना तो तुम्हें अति दूर है,
छाँह छू लें, मन, न यह भी वश चले॥ ५॥

यंत्र से, या मंत्र से, या तंत्र से,
तुम तनिक आए न क़ाबू में कभी।
किंतु पाकर प्रेम की कुछ भी झलक,
भूल जाते चौकड़ी, मन, हो सभी॥ ६॥

दामिनी, झंझा पवन, या तेज से
तीव्रतर चंचल तुम्हारा वेग है।
किंतु रम जाते रमण हो जब कहीं,
मन, कहाँ जाता विषम आवेग है? ७॥

मारना इनका नहीं कुछ भी कठिन,
सिंह, चीते का बड़ा, बस, नाम है।
छान डालीं, खोज लीं, सब युक्तियाँ,
मार लेना, मन, तुम्हें, हाँ, काम है॥ ८॥

सहज ही जिसके न क़ाबू में प्रजा,
व्यर्थ राजा, व्यर्थ वह सरकार है।
इंद्रियों को रोक जब सकते नहीं,
मन, तुम्हारा राजपन बेकार है॥ ९॥

दम न लेते जागते-सोते कभी,
क्या कहें, जाते न किस-किस ठौर हो।
हो भटकते मारते सिर घूमते,
बावले हो या कि, मन, कुछ और हो॥ १०॥

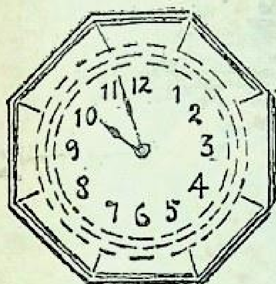
राधावल्लभ पांडेय

---

* यह लेख बहुत पहले हमारे पास आ गया था। स्थानाभाव के कारण देर से प्रकाशित हुआ।—संपादक

क्लर्क

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]





इधर बजाने को दस प्रस्तुत हुई घड़ी की सुई बड़ी;
उधर आप घबराए, सोचा—आज पड़ेगी डाँट कड़ी !
पट्टा पड़ा ग़ुलामी का है ; फ़ाइल का है बोझ बँधा ;
देखो, दौड़ा चला जा रहा कैसा सरपट क्लर्क-गधा !



[परज—तीन ताल]

स्वरकार और शब्दकार—प्रोफ़ेसर विश्वंभरसहाय "व्याकुल"

सजनी री ! कहा करूँ नींद न आवत,
बैरन मैका पलक न लागत,
रैन जात करवटियाँ ले-ले ।
जब ते गए, सपनेहु न आए, ऐसी कोऊ सौतन बिरमाए,
"व्याकुल" पिया बिन, घड़ी-घड़ी पल-छिन,
कल न परत जिया डरत अकेले ।

स्थाई

०				१				+				३			
सां	नी	सां	नी	ध	प	म	प	नी	—	सां	नी	ध	—	प	प
स	ज	नी	री	क	हा	क	रूँ	नीं	—	द	न	आ	—	व	त
म	प	ध	प	म	—	ग	—	रे	ग	म	ग	रे	—	सा	सा
बै	—	र	न	मै	—	का	—	प	ल	क	न	ला	—	ग	त
सा	रे	ग	म	म	म	ग	म	प	ध	प	ध	म	प	ग	म
रै	—	न	जा	—	त	क	र	व	टि	याँ	—	ले	—	ले	—

अंतरा

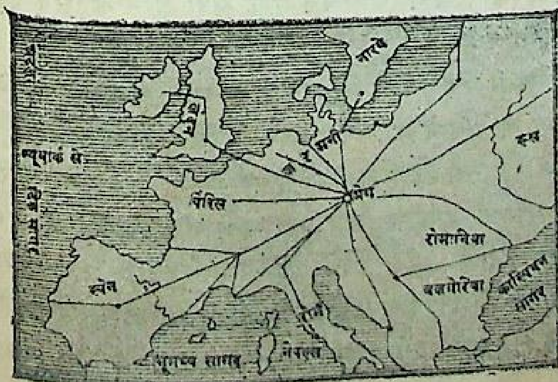
०				१				+				३			
म	म	प	प	नी	—	सां	सां	सां	रें	सां	रें	सां	नी	सां	—
ज	ब	ते	ग	ए	—	स	प	ने	—	हु	न	आ	—	ए	—
गं	—	मं	पं	मं	गं	रें	सा	ध	नी	सां	रें	सां	नी	ध	प
ऐ	—	सी	को	—	ऊ	सौ	—	त	न	बि	र	मा	—	ए	—
सा	सा	रे	रे	ग	ग	म	म	प	ध	प	म	प	नी	सां	सां
व्या	—	कु	ल	पि	या	बि	न	घ	ड़ी	घ	ड़ी	प	ल	छि	न
रें	ग	रें	सां	नी	ध	प	ध	म	प	ध	प	म	प	ग	—
क	ल	न	प	र	त	जि	या	ड	र	त	अ	के	—	ले	—



१. प्रेग की प्रदर्शिनी

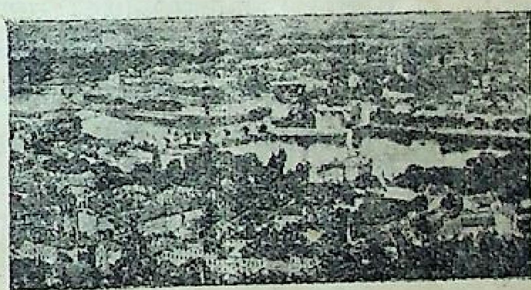


रतवर्ष में ऐसा कोई भी प्रसिद्ध स्थान नहीं है जहाँ समय-समय पर कोई मेला न होता हो। इसी प्रकार योरप आदि देशों में प्रदर्शिनियाँ हुआ करती हैं; जिनमें व्यापारियों को अपनी वस्तुओं के बेचने और उनका प्रचार करने में बड़ी सुविधा होती है। इसी प्रकार की एक बहुत बड़ी प्रदर्शिनी आस्ट्रिया के प्रसिद्ध नगर प्रेग में हो रही है। यह प्रदर्शिनी प्रयाग की प्रदर्शिनी की भाँति नहीं है। इसमें देखने के अतिरिक्त अधिकतर वस्तुएँ बेचने के लिये ही आती हैं। नीचे दिए हुए नक़्शे



योरप में प्रेग का केंद्रस्थ स्थान

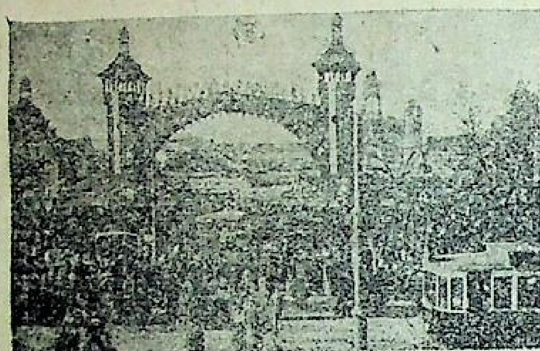
से यह ज्ञात होगा कि योरप भर में प्रेग का स्थान केंद्रस्थ है, और इसी से रूस, इँगलैंड, स्पेन आदि सभी देशों से मनुष्य तथा वस्तुएँ बड़ी सुगमता से आ-जा सकती हैं।



प्रेग-नगर का बाह्य दृश्य

प्रेग की यह प्रदर्शिनी नितांत व्यावसायिक ही है। यह सदैव खुली रहती है, परंतु समय-समय पर इसका अधिवेशन-सा हुआ करता है। इसके अनेक विभाग हैं। मुद्रण-विभाग से इस प्रदर्शिनी की एक मासिक पत्रिका निकलती है। इसका नाम है, The Bulletin of the Prague fair. इसमें संसार के अनेक दूकान-दारों और व्यवसायियों के विषय में समाचार रहते हैं। यह पत्रिका कई भाषाओं में प्रकाशित होती है, और प्रत्येक देश के व्यवसायी लोगों के पास जाती है। जो लोग अपनी वस्तुएँ प्रदर्शिनी में भेजते हैं, उनकी सूची पूरे पते के साथ एक बृहत् सूचीपत्र में मिलती है। यह भी बारह भाषाओं में छपा है, और

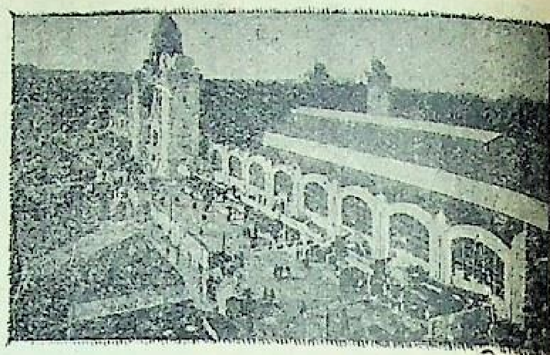
३ शिलिंग में मिलता है। सूचीपत्र तथा पत्रिका, दोनों ही में छपाई देकर कोई भी अपना विज्ञापन प्रकाशित करा सकता है।



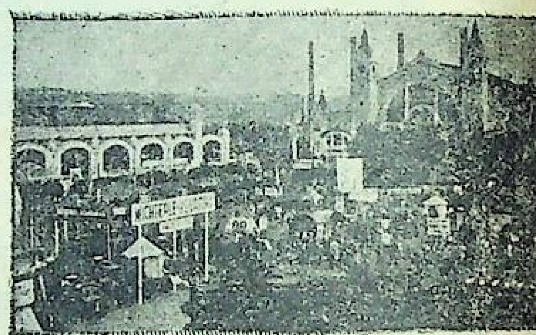
प्रदर्शिनी में जाने का बड़ा फाटक
(कितनी भीड़ है !)

इसका एक अधिवेशन आगामी सितंबर-महीने के प्रथम सप्ताह में होगा। उसमें जाने के लिये प्रवेश-पत्र ५ शिलिंग का मिलता है। यह प्रवेश पत्र(टिकट) संसार के सभी देशों में मिल सकता है। भारतवर्ष में इसके प्रतिनिधि श्रीयुत जी० एन्० मुहम्मद महाशय हैं; जिनका पता "३०५२ पोष्ट-बॉक्स, मांडवी, बंबई" है। प्रदर्शिनी के विषय में इनसे सभी समाचार ठीक-ठीक मिल सकते हैं। तार (Cable) का पता तो केवल "Fair, Prague" है।

प्रेग के इर्द-गिर्द देश-भर में शीशा खिलौने, जौ की शराब, बटन, चीनी के बर्तन आदि सामान बहुत बनते हैं। इस प्रदर्शिनी में ये वस्तुएँ बहुत ही सस्ती मिल सकती हैं। इसके अतिरिक्त अन्यदेशीय दर्शकों के साथ और भी बहुत-सी रियायतें की जाती हैं। स्कोस्लोवाक-रेलों में व्यय का ⅓ तो उनसे लिया ही नहीं जाता, और यदि आवश्यकता हो, तो स्पेशल ट्रेनों का प्रबंध भी सुगमता से हो सकता है। उन्हें हर प्रकार के समाचार बिना किसी फ़ीस के भेजे जायँगे, और उनकी सहायता के लिये दुभाषिए भी रहेंगे। अनेक कार्यालय भी रहेंगे; जहाँ बैंक, डाकघर तथा आर्थिक विनिमय (Exchange) का काम भी चल सकेगा। उनके खाने-पीने का भी प्रबंध प्रदर्शिनी की ओर से होगा।



प्रदर्शिनी का बीचवाला भवन



प्रदर्शिनी की मशीनों का बड़ा हाल

इन चित्रों से पता चलेगा कि प्रदर्शिनी बड़े ही भव्य रूप से संगठित की गई है। जो लोग इसे देखने नहीं जा सकते, वे भी घर-बैठे वहाँ के व्यापारियों और बड़े-बड़े कारीगरों के विषय में पता लगा सकते और वस्तुएँ भी ख़रीद सकते हैं। इसके लिये उन्हें प्रदर्शिनी के व्यापार-विभाग (Commercial Department) को लिखना होगा। इस विभाग ने विज्ञप्ति निकाली है कि अन्यदेशीय लोगों की यथाशक्ति सेवा करने के लिये वह सर्वथा तत्पर है।

अभी प्रदर्शिनी के लिये टिकट ख़रीदने, समाचार जानने तथा आने-जाने का प्रबंध करने के लिये काफ़ी समय है। आशा है, अनेक भारतीय सज्जन वहाँ जाकर भारत के व्यापार की वृद्धि के लिये बहुत कुछ कल्याणकर समाचार तथा शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न करेंगे। भारत का व्यापार जो कुछ रहा-सहा है भी, उसमें अंतरदेशीयता लाने की बड़ी ही आवश्यकता है। ऐसी ही प्रदर्शिनियों तथा मेलों में इस प्रकार का संगठन संभव हो सकता है। इस-

के लिये न तो कुछ अधिक रुपया लगता है, न और कोई कठिनता है। आवश्यकता है केवल एकता की, जिससे संसार के सभी संगठन सुगम हो जाते हैं। हमें विश्वास है कि हमारे देश के व्यापारी सज्जन तथा अन्य महानुभाव, जो व्यावसायिक उन्नति के पक्षपाती हैं, इस प्रदर्शिनी में पधारकर देश का कल्याण-साधन करेंगे।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी

× × ×

२. कौमुदी

चंदन-चर्चित, नील कलेवर नभ का शोभन शांति लिए,
विलस रहा था कुंद-कुसुम-अवली सी मनहर कांति लिए।
धारण किए मयूर-चंद्रिका वनमाली-सा रूप अहा!
चारु चाँदनी-विलसित नभ का मधुर मनोज्ञ अनूप रहा।

(२)

व्योमकेश[1] के जटा-जूट में गंगा के जल-कण जैसे
सुछवि-छटा छिटकाते, नभ में शोभित तारागण वैसे।
स्वर्ग-सुरसरी-तट पर मानो दिक्कुंजर क्रीड़ा करते,
बिखरे अभ्र-कुसुम-कण सुविमल जिसके नयन-प्रगति हरते।

(३)

कुसुमित देख विश्व विटपी के नील निबिड़ पल्लव-दल में,
लोचन लुब्ध हो रहे थे अति, शीत-रश्मि छवि अविचल में।
सरिता, सर, निर्झर, गिरि, कानन, लतिका, तृण, द्रुम-दल जितने
प्रकृति-सुंदरी के तनु-अवयव मग्न धवलिमा में कितने!

(४)

मलय-पवन मानस-स्नात हो, हरण किए पंकज-रस को,
दबे पाँव आता, कलिका चटकाता, गाता शशि-यश को।
चिंता-रेख लसित आनन पर, सजल, विमुग्ध, विलोचन से
देख रहा था प्रकृति एक जन, व्यथा झलकती थी तन से।

(५)

श्याम, सजल, घन-बीच जिस तरह पूर्ण चंद्र शोभा देता,
ज्यों शैवाल-जाल में शतदल[3] विकसित हो मन हर लेता,
जांबूनद[4] ज्यों सार[5]-खानि में, तिमिर-बीच दीपक जैसे,
शोक-बीच आशा लसती थी उसकी आकृति पर वैसे।

(६)

देख चंद्र को, तारागण को, प्रकृति धवलिमा-मय सारी,
कहने लगा—"जगत्पति, तेरी छटा निराली मनहारी,
जीवन बीत गया नटवर! लखते यह तेरी नाट्य-कला;
किंतु न पाया ओर-छोर यह करुणा कैसी नाथ भला!"

(७)

निकले ये उद्गार और वह पुनः विचाराधीन हुआ;
बिजली-जैसा शोक जलद में चमक उठा, फिर लीन हुआ।
किंतु न शांत रह सका फिर भी, निकल पड़े उद्गार वहीं;
सुधा-स्निग्ध, अनमोल शब्द फिर तुरत सींचने लगे मही।

(८)

"सम्मुख गिरि पर अहा कौमुदी क्या अपूर्व क्रीड़ा करती!
शोक-हर्ष से विगत शिखर पर प्रकृति अंक में पग धरती।
अथवा यह मम भ्रम, गिरि मज्जन स्वतः कर रहा है उसमें,
धोता है शरीर विनिमज्जित देख पड़ रहा वह जिसमें।

(९)

नहीं, नहीं, यह तो पवित्र नैसर्गिक, इसमें मल कैसा?
हुआ कभी भव-सृष्टि-बीच क्या कोई भी पावन ऐसा?
फिर, क्या मज्जन-मिस यह मेरी मन-मलीनता बता रहा?
धोकर जिसे पवित्र बनूँ मैं, मानों मुझको जता रहा।

(१०)

ठीक, यही है तत्त्व, मुझे है बता रहा यह बात यहीं—
मोह त्याग कर्तव्य-मार्ग में रहूँ अग्रसर सभी कहीं।
यही कहा था प्राणप्रिया ने, त्याग जिसे मैं रुष्ट चला;
मोह-मग्न मन, बता आज उसका तुझको क्या दोष खला;

(११)

जीवन-वन की पिकी! प्राणप्रिय! भाव-भूमि की ललित लते!
सुधा-बिंदु-गर्भित घन-बिजली! प्रणय-मूर्छना-राग-रते!
मानस-सर-सरोजिनी! मेरे हृदय-गगन की चंद्र-कला!
क्षमा मुझे करना प्राणेश्वरि! विरह-वह्नि में हृदय जला।"

(१२)

शांत हुआ वह कह इतना, फिर 'रुन-झुन' की ध्वनि मनभाई
कर्ण-कुहर में सुधा ढालती 'प्राणनाथ!' स्वर-सँग आई।
चकित हुआ, पीछे फिर देखा, निरख विलोचन सजल हुए;
गद्गद कंठ, न शब्द निकलते, केवल दृग-पट अचल हुए।

लक्ष्मीनारायण मिश्र (श्याम)

× × ×

३. बुत

मुसलमान हिंदुओं को बुत-परस्त कहते हैं। और, हमारे पूर्वजों को भाँति-भाँति की मानसिक तथा दैहिक पीड़ाओं का पात्र बनाने का औचित्य सिद्ध करने का यही हेतु

१. भगवान् शंकर, २. मेघपुष्प=जल, ३. शतपत्र कमल, ४. स्वर्ण, ५. लोहा।

बताया जाता है कि हम लोग बुत-परस्त अर्थात् मूर्ति-पूजक हैं। यह तो सब लोग जानते ही हैं कि इसलाम-धर्म का प्रचार अरब-देश में हुआ। परंतु बुत अरबी-भाषा का शब्द नहीं है। अरबी में मूर्ति का पर्याय 'सनम' है। बुत फ़ारसी-भाषा का भी शब्द नहीं, और न तुर्की का है। विचारना चाहिए कि मूर्ति के अर्थ में बुत का प्रयोग कैसे होने लगा। बुतों की पूजा की जाती है, इससे मुसलमान कवि माशूक़ को बुत कहते हैं। फ़ारसी के कवि ख़ुसरो का यह शेर प्रसिद्ध है—

ऐ चेहरए ज़ेबाय तो रश्के बुताने आज़री।

उर्दू में आतिश ने कहा है—

दाग़े फ़ुरक़त जीस्त भर सोज़े जहन्नुम बाद मर्ग;
इन बुतों को किस तवक़्क़े पर ख़ुदाया चाहिए।

पर माशूक़ को बुत बनाकर उसकी पूजा का अधिकारी बनने के लिये आप भी काफ़िर बन जाना पड़ता है। हिंदी में बुत का रूढ़ अर्थ मौन या चुप-चाप है; क्योंकि बेचारी मूर्तियाँ इस कराल कलिकाल में चुप-चाप बैठी रहती हैं। बुत शब्द अगर न अरबी है, न फ़ारसी है, न तुर्की है, न संस्कृत है, तो आया कहाँ से ? मुसलमान-धर्म के आविर्भाव के समय मूर्ति-पूजा अरब में भी होती थी; और, मूर्ति नहीं, तो पत्थर (संग असवद-काला पत्थर, क़िबला) अब तक पूजा ही जाता है। पर मक्के के मंदिर को नष्ट-भ्रष्ट करना उचित न समझा गया। हाँ, जब इसलाम का लश्कर धर्म के प्रचार के बहाने मार-काट करता हुआ पूर्व की ओर बढ़ा, तो पहला बड़ा धर्म, जिससे मुठभेड़ हुई, बौद्ध-धर्म था। उक्त धर्म उस समय धूम-धाम से मध्य एशिया में प्रचलित था और उसके मुख्य स्थान का नाम वहाँ भी वही था, जो कि उसकी जन्म-भूमि में। वह नाम है बिहार। बौद्ध-संन्यासियों के मठ को बिहार कहते हैं। इन्हीं बिहारों का समुदाय होने से हमारे देश का एक प्रांत ही अब तक बिहार कहा जाता है। मंगोलियन उच्चारण विचित्र है। मंगोलियन के मुख में बिहार बख़ार हो गया, और बख़ार से बुख़ारा बन गया; जो आज तक तातार का एक बड़ा नगर है।

बौद्ध-धर्म में, प्रारंभ में, मूर्ति-पूजा नहीं होती थी, और इस बात पर बड़ा ध्यान रक्खा जाता था कि धर्म में भेद न पड़ने पावे। सारनाथ के स्तंभ पर महाराज अशोक ने स्पष्ट रूप से लिख दिया है कि संघ में भेद न डालना चाहिए; और जो भिक्षुक संघ में भेद डालेगा, वह सफ़ेद कपड़े पहनाकर मठ के बाहर रक्खा जायगा। पर काल की गति प्रबल है। भेद पड़ ही गया, और इस धर्म के दो भेद हो गए—एक महायान, दूसरा हीनयान। सर एडविन आर्नाल्ड ने अपने 'लाइट आफ़ एशिया' (Light of Asia) की भूमिका में लिखा है कि "यद्यपि बुद्ध-देव ने पूजा-अर्चा मना की थी, परंतु एशिया की कृतज्ञता ने उनके नाम के करोड़ों मंदिर स्थापित करा दिए, जिनमें नित्य करोड़ों डलियाँ फूलों की चढ़ाई जाती हैं, और करोड़ों मनुष्य 'बुद्धो मे शरणम्' कहकर अपने को धन्य समझते हैं।" आजकल इन मंदिरों में बुद्ध की मूर्तियों को चीनवाले सामी (स्वामी) और ब्रह्मावाले गौदम (गौतम) कहते हैं। महायान-भेद के ऐसे मंदिर मध्य एशिया में फैले हुए थे। इसलाम का लश्कर इन्हीं पर टूट पड़ा। अरबी, फ़ारसी, दोनों में 'ध' अक्षर नहीं है। अतः बुद्ध बुद रह गया, और पीछे से बुत हो गया। यह बुत केवल बुद्ध की ही नहीं, पूजा की सारी मूर्तियों के लिये प्रयुक्त होने लगा।

बुख़ारे के आस-पास सैकड़ों स्तूप थे, जो "आकार-संवरण" करके मुसलमानों की क़ब्रें बना डाले गए। इनमें एक मुसलमानों के प्रसिद्ध महात्मा इब्राहीम अदहम की क़ब्र बताई जाती है। एक योरपियन विद्वान् का मत है कि अदहम बुद्ध-देव ही के मुसलमान अवतार (रूपांतर) हैं।

श्रीअवध-वासी सीताराम

× × ×

४. शुद्धि

आजकल भारतवर्ष में शुद्धि की चर्चा चारों ओर हो रही है। प्रत्येक समाचार-पत्र का पाठक पत्र खोलते ही यह देखना चाहता है कि कितने आदमी शुद्ध हुए। परस्पर बात-चीत में, घरों में, दूकानों में, दफ़्तरों में, सभा-सोसाइटियों में, यहाँ तक कि कांग्रेस के मंच पर भी अब शुद्धि की चर्चा होने लगी। भारतवर्ष में प्रायश्चित्त और शुद्धि कोई नई बात नहीं है। हमारे धर्म-ग्रंथों में इसका अनादि काल से विधान है। स्मृति-कारों ने शुद्धि की विधियाँ लिखी हैं। एक समय तो शुद्धि की ऐसी लहर चली थी कि स्वामी शंकराचार्य को केवल शंख की ध्वनि से ही शुद्ध करना पड़ा था। जितने आदमी उसकी ध्वनि सुन लेते थे, वे सब शुद्ध होकर शंकर-मतानुयायी हो जाते

थे। मुसलमानों के राज्य में भी लाखों भाई गुरुगोविंद-सिंह और शिवाजी महाराज के द्वारा केवल गंगा-स्नान से ही पुनः हिंदू-धर्म में ले लिए जाते थे । परंतु इधर शुद्धि का कार्य धीमा पड़ गया । धीरे-धीरे हिंदू-जाति में यह विचार घर कर गया कि जो हिंदू-धर्म को त्यागकर मुसलमान या ईसाई हो गया, वह पुनः हिंदू-धर्म में प्रविष्ट नहीं हो सकता। जाति-संबंध से बँधी हुई हिंदू-जाति धीरे-धीरे क्षीण होने लगी ।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने पुनः इस शुद्धि का प्रचार किया । आर्य-समाज निरंतर इस कार्य में गत ४० वर्ष से लगा हुआ है । परंतु हिंदू-जाति की नींद नहीं टूटी। मामूली हिंदू के घर से यदि किसी विधवा को कोई मुसलमान भगाकर ले जाता, तो हिंदू कर्म ठोककर बैठ जाता, और रोकर कहता—जाने दो, चली गई, अब वह हमारे काम की नहीं रही। कभी भूली-भटकी विधवा अपने आपको प्रायश्चित्त कर पुनः हिंदू-धर्म में आना चाहती हो, तो हिंदू-समाज उसके लिये अपने दरवाज़े बंद कर लेता है। इसी तरह लाखों आदमी प्रति वर्ष मुसलमान, ईसाई होते रहे । हिंदू-समाज उस मुर्दे के समान पड़ा रहा, जिसका कोई अंग काटो, तो उसे दुःख का अनुभव न हो । ईश्वर की कृपा से मलाबार में मोपलों का भयानक अत्याचार और मुलतान में मुसलमानों की पाशविक करतूतों ने हिंदुओं की आँखें खोल दीं। साथ ही सन् १९२१ ई० की मर्दुम-शुमारी की रिपोर्ट ने हिंदुओं को विश्वास दिला दिया कि वे दिन-पर-दिन क्षीण हो रहे हैं, और, यदि यही हालत रही, तो हिंदू-जाति का नाम केवल इतिहास में ही रह जायगा । मुर्दा दिलों में जोश आया, और हिंदू-मलकाने-राजपूत, जो ज़बरदस्ती औरंगज़ेब के समय में मुसलमान बनाए गए थे, परंतु जिन्होंने कभी मुसलमान-धर्म नहीं स्वीकार किया, और न मुसलमानी प्रथाओं का, सिवा निकाह और मुर्दे गाड़ने के, अपने यहाँ प्रचार होने दिया, बल्कि अपनी चोटी क़ायम रक्खी, और न मुसलमानों के हाथ का छुआ भोजन खाया, उन्होंने अपनी क्षत्रिय-बिरादरी में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। प्रसन्नता की बात है कि राजा सर रामपालसिंहजी और महाराजाधिराज शाहपुरा के सभापतित्व में क्षत्रिय-महासभा ने इन मलकाना-राजपूतों को क्षत्रिय-जाति में सम्मिलित तथा उनके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। मलकाना-राजपूतों को सम्मिलित करने के लिये स्वामी श्रद्धानंदजी के सभापतित्व में भारतीय हिंदू-शुद्धि-सभा संगठित हुई। मुसलमान-भाइयों के विरोध करने पर भी हज़ारों मलकाने-राजपूतों का जाति-प्रवेश-संस्कार सानंद हो गया ।

अब प्रत्येक के सामने प्रश्न ये हैं—

(१) क्या इन शुद्धियों से हिंदू-मुस्लिम ऐक्य टूट जायगा ?

(२) क्या हिंदुओं को शुद्धि करने का अधिकार है ?

(३) क्या मुसलमानों को शुद्धियों से चिढ़कर मार-पीट करनी चाहिए ?

(४) क्या इससे जातीय महासभा बंद हो जायगी ?

(५) क्या हिंदुओं को शुद्धि का कार्य रोक देना चाहिए ?

(६) क्या मुसलमानों का भी यह कर्तव्य नहीं कि वे हिंदुओं को मुसलमान बनाना छोड़ दें ?

(७) क्या धार्मिक स्वतंत्रता में बाधा डालना कांग्रेस को उचित है ?

(८) क्या स्वराज्य-प्राप्ति के लिये हमें अपने धार्मिक सिद्धांत त्यागकर मुसलमानों से मिलना चाहिए ?

(९) क्या स्वराज्य की लड़ाई में भाग लेना मुसलमानों का भी कर्तव्य नहीं है ? यदि है, तो फिर हिंदुओं से ही शुद्धि का काम बंद करने को क्यों कहा जाता है ?

(१०) क्या राजनीतिक सुधारों के साथ-साथ सामाजिक, धार्मिक सुधारों की आवश्यकता नहीं है ?

(११) क्या स्वतंत्रता की लड़ाई में हमें अपने मुसलमान-भाइयों को यह सिखाना उचित नहीं है कि उन्हें हिंदू-भाइयों को वे ही अधिकार देने होंगे, जो वे अपने लिये चाहते हैं ?

(१२) क्या विदेशी हिंदू-धर्म पर पृथक् रहने का दोष नहीं लगाते ? यदि लगाते हैं, तो शुद्धि से हम बाहरवालों को भी अपने धर्म का रसास्वादन करने का मौक़ा देते हैं या नहीं ? इसलिये यह शुद्धि तो हिंदू-धर्म की अत्यंत उदारता प्रदर्शित करनेवाली है ।

अब इन प्रश्नों के उत्तर भी सुनिए—

(१) इन शुद्धियों से हिंदू-मुस्लिम-ऐक्य नहीं टूट सकता ; क्योंकि इससे मुसलमानों को भली प्रकार विदित हो जायगा कि हिंदू भी अपने धर्म में दूसरों

को सम्मिलित कर सकते हैं, और फिर जिस प्रकार वे ईसाइयों से मुसलमानों को ईसाई बनाने पर नहीं लड़ते, उसी प्रकार हिंदुओं से लड़ना बंद कर देंगे। धमकाकर वे मुसलमान नहीं बनावेंगे ; क्योंकि वे जानते हैं कि इससे उनको लाभ नहीं होगा, और वह बहँकाया हुआ, समझाने पर, पुनः हिंदू हो जायगा।

(२) यह तो प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रेमी तथा हिंदू-शास्त्र का ज्ञाता जानता है कि हिंदुओं को उतना ही अपने धर्म के बढ़ाने का अधिकार है, जितना कि मुसलमान या ईसाई को। इसी वास्ते न केवल सारे आर्य-समाज और सनातन-धर्म के नेताओं ने शुद्धि करने में प्रोत्साहन दिया, बल्कि देश के नेता, जैसे मोतीलालजी नेहरू, दास महोदय, मौलाना अब्दुलक़लाम आज़ाद, हकीम अजमलख़ाँ, और डॉक्टर अंसारी आदि ने स्पष्ट कहा है कि हिंदुओं को शुद्धि करने का पूर्ण हक़ है।

(३) अब रही यह बात कि इन शुद्धियों से मुसलमान चिढ़कर ख़ून-ख़राबी करेंगे, और सारे भारत में देवासुर-संग्राम शुरू हो जायगा, इस वास्ते शुद्धि रोक देनी चाहिए, सो इस पर हमारा उत्तर यह है कि पशु-बल से डरकर कभी हमें अपना आर्य-पथ नहीं छोड़ना चाहिए। नौकर-शाही से भी हमारी यही लड़ाई है कि वह पशु-बल के डंडे से दबाकर हमें रखना चाहती है, और हमें हमारे आर्योचित अधिकार नहीं देती। जैसे नौकर-शाही के प्रति हम शांति-मय सत्याग्रह करते हैं, वैसे ही जो पागल मुसलमान क़ाफ़िर को मारने की आवाज़ें उठाते हैं, उनको शांत करना हमारा कर्तव्य है।

(४) श्रीमान् राजगोपालाचार्य यंग-इंडिया में बराबर लिख रहे हैं कि शुद्धि के कारण बहुत शीघ्र जातीय महासभा बंद हो जायगी। हम इस बात को नहीं मानते। हिंदू-मुस्लिम-इत्तहाद यदि ऐसी काँच की चूड़ी है, और नेशनल कांग्रेस यदि ऐसी कमज़ोर है, तो जितनी जल्दी भंडा फूटे, उतना अच्छा है। स्वराज्य से हिंदू-मुसलमान, दोनों को बराबर का लाभ है। इसलिये उसकी प्राप्ति के लिये दोनों को नौकर-शाही से लड़ना चाहिए। शुद्धि के कारण स्वराज्य की लड़ाई बंद नहीं हो सकती। बल्कि हिंदू-मुसलमान, दोनों अधिक बलवान् होकर नौकर-शाही से भिड़ेंगे।

(५) अब रही यह बात कि हिंदुओं की संख्या अधिक है ; यदि वे मुसलमान-भाइयों को अधिक अधिकार दे दें, तो अच्छा हो—हिंदुओं को अपना शुद्धि करने का अधिकार त्याग देना चाहिए। हमारा उत्तर यह है कि हिंदू उतने बलवान् नहीं हैं, जितना कि कुछ राष्ट्रीय पक्षवाले सोचते हैं। दूसरे, हिंदुओं के अधिकार छिनने से स्वराज्य की जड़, जो न्याय तथा सत्य पर स्थिर है, उखड़ जायगी, और लोग "माइट इज़ राइट" के अनुसार पशु-बल को ही बड़ा मानने लगेंगे। इस वास्ते हिंदुओं को कदापि शुद्धि का काम नहीं रोकना चाहिए। बल्कि अपने न्यायानुकूल सब अधिकारों को प्राप्त करने पर डटे रहना चाहिए।

(६) हाँ, एक बात हो सकती है, और वह यह है कि मुसलमान भी यह इक़रार लिख दें कि वे किसी हिंदू को मुसलमान नहीं बनावेंगे, तो हिंदू भी वैसा लिख देने को तैयार हैं। पर यह मुसलमान कभी नहीं मानेंगे; क्योंकि उनके मुल्ला उनके क़ाबू में कदापि नहीं रह सकेंगे, और उसमें दोनों तरफ़वाले धर्म की अवहेलना होने की बात कहेंगे। अतः स्वराज्य प्राप्त करने के लिये धार्मिक स्वतंत्रता आवश्यक है, और प्रत्येक धर्म को अपने-अपने धर्म का प्रचार करने का हक़ है।

(७) सामुहिक रूप से कांग्रेस को इस विषय में सर्वथा निष्पक्ष रहना चाहिए ; क्योंकि उसकी निगाह में सब धर्म एक-से हैं।

(८) नौकर-शाही से लड़ने के लिये हमें अपने धार्मिक सिद्धांत कदापि न त्यागने चाहिए ; क्योंकि हम किसी व्यक्ति-विशेष या जाति-विशेष से नहीं लड़ते। हम तो अन्याय से युद्ध करते हैं, और अन्यायी चाहे अँगरेज़ हो, मुसलमान हो या हिंदू हो, उसको दंड देना प्रत्येक का कर्तव्य है।

(९) यह प्रश्न सर्वथा उचित है ; क्योंकि नमक पर कर बढ़ा, तो दोनों को हानि हुई। इस वास्ते हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सबको स्वराज्य-प्राप्ति का यत्न करना चाहिए। वे लोग मूर्ख हैं, जो हिंदुओं को शुद्धि-कार्य बंद करने की सलाह देते हैं। यह तो वही ठहरी

"सबहिं सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय ;
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय।"

(१०) हाँ, अवश्य ही राजनीतिक सुधारों के साथ-

साथ सामाजिक और धार्मिक सुधार होने चाहिए। तभी तो कांग्रेस के साथ-साथ सामाजिक कांग्रेस, हिंदू-सभा और मुस्लिम-सभाएँ होती हैं।

(११) अवश्य ही हमें इस शुद्धि-कार्य से अपने मुसलमान-भाइयों को यह समझाना है कि वे किसी पर अत्याचार नहीं कर सकते, इसलाम के फैलाने का उनको जितना हक़ है, उतना ही हमको वैदिक धर्म के फैलाने का, और यह हक़ स्वराज्य-प्राप्ति के पहले और पीछे अवश्य ही प्रत्येक धर्म को रहेगा।

(१२) यह बिलकुल सत्य है। शुद्धि हिंदू-धर्म की अत्यंत उदारता प्रदर्शित करती है। इससे हम अपने अधिकार उनको भी देते हैं, जो उनसे वंचित थे। यह तो स्वतंत्रता के युग की मुख्य और समानता फैलानेवाली बात है। इससे मुसलमान-भाइयों को या राष्ट्रीय पक्ष-वालों को घबराना नहीं चाहिए, और प्रत्येक हिंदू को तन, मन, धन से अछूतोद्धार और शुद्धि में सहायता देनी चाहिए।

यदि मुसलमान-भाई अपने धर्म की तरह हिंदू-धर्म के महत्त्व का भी ख़याल रक्खें, और असहिष्णुता कम कर दें, तो कदापि हिंदू-मुसलमानों का झगड़ा नहीं हो सकता। हिंदुओं का इस समय यह विचार चरितार्थ हो रहा है—

मुझी से सब यह कहते हैं कि रख नीची नज़र अपनी ;
कोई उनसे नहीं कहता, न निकलो यों अयाँ होकर।

चाँदकरण शारदा

× × ×

५. मेरे प्रेम।

दिखलाने को निज छवि अनुपम
हो जाना उस समय निकटतम।
जब कुवासना की बेड़ी से मम मन बंदी बन जावे,
धैर्य-रहित प्रेमालिंगन-हित जब न चित्त अति अकुलावे,
प्रभो ! मिटाने को सारा भ्रम
हो जाना उस समय निकटतम।
लोलुपता के निंद्य नियम जब मुझे नीच करते आवें,
आत्मोन्नति में, आत्म-समर्पण में, जब बाधाएँ आवें,
मुझे उठाने को सर्वोत्तम !
हो जाना उस समय निकटतम।
महामोह का अंधकार जब, प्रकृति विकृत निस्तब्ध रहे,
चिंतानल से चित्त जले जब, फल देती प्रारब्ध रहे,
जीवन-ज्योति ! हटाने को तम
हो जाना उस समय निकटतम।
जब मैं सांसारिक बातों में पड़कर तुम्हें भूल जाऊँ,
जब मैं पार्थिव प्रलोभनों में पड़कर वृथा फूल जाऊँ,
सदुपदेश देने अमृतोपम
हो जाना उस समय निकटतम।
भेद-भाव के भ्रम में भूलूँ, जब प्रतिबिंब भुवन-भर में
तेरा ही मैं देख न पाऊँ हर, नर और चराचर में,
वीणा विशद बजाने को सम
हो जाना उस समय निकटतम।
काल-सिंधु में जीर्ण-शीर्ण मम नौका जब डूबने लगे,
उसके तरल तरंग-मध्य मन मेरा जब ऊबने लगे,
प्राणाधार ! पकड़ने को कर
हो जाना उस समय निकटतर।
कर-कमलों में कर न सकूँ जब आत्म-समर्पण मैं सानंद,
घृणित घमंड मुझे घेरे हो, लंपटता से हो मति मंद,
हरने को उत्पात-उपक्रम
हो जाना उस समय निकटतम।
हो अधीर प्रेमार्त प्राण-प्रिय, जब न पुकार सकूँ 'प्यारे',
अंधकार-ही-अंधकार हो, न हों कहीं रवि-शशि-तारे,
मुझे शांति देने को प्रियतम !
हो जाना उस समय निकटतम।

श्रीरत्न शुक्ल

× × ×

६. श्रीगंगा भागीरथी

"इमम्मे गंगे यमुने सरस्वति"
(श्रुतिः)

श्रीगंगाजी भारतवर्ष के भाग्य में रत्न हैं। श्रीगंगाजी पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त रूपकों से भी समर्थित होती हैं। श्रीगंगाजी का नाम विष्णुपदी इसलिये है कि हिमालय के आकाश-चुंबी शिखरों से श्रीगंगाजी की उत्पत्ति है। आकाश का नाम "विष्णुपद" है। जो श्रीमहादेवजी की जटाओं में गंगाजी का विहार मानते हैं, वे महादेवजी के निवास-स्थान कैलास-पर्वत के शिखरों से उनका उद्गम मानते हैं। अथवा कैलास-पर्वत पर अक्षयवट है, और वट श्रीमहादेवजी का रूप है, उस-

की जटाओं में होकर श्रीगंगाजी केलि करती हुई आ रही हैं। जह्नु ऋषि गंगाजी को पी गए, और फिर उन्हें कर्णों से निकाल दिया। यह क्या है? पहले जह्नु-पर्वत में श्रीगंगाजी लुप्त हो गईं, फिर उसी पर्वत को फोड़कर निकलीं ; इसी से जाह्नवी कहलाईं। पर सबसे अधिक श्रेय महाराज भगीरथ को प्राप्त है। भगीरथ सूर्यवंशी राजा थे। उनके मृत पितृगण की भस्म बंगाल के समुद्र के तट पर थी, और श्रीगंगाजी का जल हिमालय की दरियों में अठखेलियाँ कर रहा था। प्रायः १ हज़ार कोस का अंतर! हम आज पराधीन हैं, विद्या-शून्य हैं। स्वेज़-नहर को देखकर हत-प्रभ हैं, किंतु उस युग में हमारे महाराज भगीरथ ने अपनी शिल्प-कला से गंगाजी का प्रवाह, जो अब तक हिमालय-पर्वत का ही हार था, मैदान में लाकर समुद्र तक पहुँचा दिया था। उससे आधे से अधिक भारत-भूमि उर्वरा हो गई। नौकाओं द्वारा जल-पथ के व्यापार का मार्ग खुला। यमुना, चंबल, गोमती, गंडकी, सरयू, शोण आदि नदियाँ भागीरथी में मिलीं। उससे जल-यानों की बड़ी उन्नति हुई। भारत के मध्य में हिमालय से समुद्र तक 'स्वर्णरेखा' खिंच गई। भगीरथ के तप के प्रभाव से श्रीगंगाजी ने भारतवर्ष पर इतनी कृपा की। वेद, मनु, महाभारत, रामायण, अष्टादश पुराण, जहाँ देखो वहीं, श्रीगंगाजी का प्रभाव वर्णित है। काव्यों में श्रीगंगा-लहरी (पीयूष-लहरी) रत्न है। श्रीभागवत, पंचम स्कंध, १७ अध्याय के १-१० गद्यों में श्रीगंगाजी के रूप का असाधारण वर्णन है। श्रीगंगाजी, कवि, ऋषि, मुनि, भक्त सबका जीवन और अवलंब हैं।*

श्रीराधाचरण गोस्वामी

× × ×

७. समर्पण

(क)

प्रेम का कवि मन की गुफा में आँखें बंद किए, हाथ-पर-हाथ रक्खे, उदास बैठा था। चारों ओर शुद्ध विचार एवं हृदय के भाव, मनोहर गीत बन-बनकर, संसार में जाने तथा प्रेमियों के अशांत हृदय को शांति देने के लिये, भटक रहे थे ; पर वह आँखें उठाकर उनकी ओर देखता भी न था। उसकी असीम चिंता ने स्नेह-संसार को चिंतामय बना दिया था। सूर्य भगवान् का, सुनहरी किरणों का ताज पहनकर, पूर्व में उदय होना, सुंदर कमल के पुष्पों का सरोवर के पानी पर सुगंधित वायु के साथ अठखेलियाँ करना, वृक्षों पर पक्षियों का मंगलमय राग अलापना आदि मन को लुभानेवाली वस्तुएँ फीकी पड़कर अँधियारी की चादर में छिप गई थीं। इस चिंता की चादर को कौन उठावे? कवि तो स्वयं संसार की चिंता हरने-वाले होते हैं, उनकी चिंता को कौन दूर करे?

(ख)

मन के भेदों को पूर्ण-रूप से जाननेवाली, वाणी की रानी, भगवती सरस्वती से संसार की यह दशा न देखी गई। उसे शुद्ध भावों की आराधना करनेवाले कवि तथा सौंदर्योपासक प्रेमियों पर दया आ गई। वह कवि के पास आकर अंधकार को नष्ट करनेवाले स्वर से बोली—"हे कवि! तू उदास क्यों है? उठ, प्रेम का राग क्यों नहीं अलापता? अपनी मधुर वाणी से आनंद की वर्षा क्यों नहीं करता?"

(ग)

कवि ने उत्तर दिया—"मैं प्रेम का राग क्योंकर अलापूँ? मैं अपने प्रियतम, अपने मनमोहन को एक राग का समर्पण करना चाहता हूँ। मेरे रागों को सुनकर संसार चकित हो जाता है; पर अपने हरि के चरणों में समर्पण करने-योग्य इच्छानुसार राग मुझसे न बन सका। संसार के लिये राग गाने से क्या लाभ, जब मैं प्रियतम के लिये एक राग भी नहीं गा सकता? मैं अपनी वीणा के तारों को तोड़ डालूँगा। मन की अँधेरी गुफा में बैठकर अकेला तपस्या करूँगा।"

(घ)

भगवती सरस्वती ने उत्तर दिया—"हे कवि, क्या तू हृदय-सम्राट्, हृदय-साम्राज्य के राजकुमार, प्यारे मनमोहन, प्राणनाथ को, जो तेरे हृदय-सागर के सारे मोतियों के स्वामी हैं, केवल एक मोती देकर प्रसन्न किया चाहता है? तेरे सारे राग प्रियतम की बाँसुरी ही से तो निकले हैं। संसार के आनंद में उनकी मंद मुसकिराहट की ही तो झलक है। आँखें खोल, हृदय की अंधकारमय कंदरा में अकेले बैठकर तपस्या करना असंभव है। प्रियतम के होते संसार में अंधकार कहाँ? आँखें खोल, वीणा ले, और संसार में प्रेम का राग अलापता फिर। सारे राग उसी

* गंगा-दशहरा के अवसर पर लिखित।

के राग हैं। सारे ही गीत अच्छे हैं। हाँ, कवि, उठ; सागर के स्वामी को एक मोती देकर रिझाने का विचार छोड़ दे। पुष्प-वाटिका के मालिक को एक पुष्प देकर संतुष्ट करने की इच्छा न कर। देख, प्रियतम तेरे सामने खड़े हैं।"

(ङ)

कवि ने आँखें खोलीं, तो प्रियतम को सामने खड़ा पाया। मन की गुफा उनके मुख-मंडल की ज्योति से जगमगा रही थी। उसके होंठों से रागों की गंगा बह निकली।

ईश्वरदयाल टौंकले

× × ×

८. हिंदी-साहित्य में कुछ आवश्यकताएँ

किसी भाषा का भी साहित्य केवल उपन्यासों, काव्यों, आत्मिक ज्ञान-संबंधी पुस्तकों और थोड़े-से पत्र-पत्रिकाओं से पूर्ण नहीं कहा जा सकता। साहित्य-भंडार की पूर्ति के लिये बहुत-सी वस्तुओं की आवश्यकता होती है। यही बात आज हमारी हिंदी-भाषा के साहित्य के लिये भी कही जा सकती है। यद्यपि प्रायः समस्त भारत उसको राष्ट्र-भाषा बनाने के लिये उद्यत है, परंतु वह अभी बहुत कुछ अपूर्ण ही है।

इसलिये हमको हिंदी की पूर्णता के लिये निम्न-लिखित विषयों पर ग्रंथ लिखने-लिखाने की अधिक चेष्टा करनी चाहिए; जिसमें शीघ्र ही उसके साहित्य-भंडार की वृद्धि हो, और कोई यह कहने का मौक़ा न पावे कि हिंदी का साहित्य अपूर्ण है। वे विषय हैं—(१) पशु-शास्त्र, (२) विज्ञान, (३) बालकोपयोगी पुस्तकें, (४) अर्थ-शास्त्र, (५) सामुद्रिक-शास्त्र, (६) कृषि-शास्त्र, (७) हाइजीन (Hygiene), (८) इंजीनियरिंग आदि, (९) संगीत-विद्या, (१०) भू-तत्त्व-विद्या, (११) वनस्पति-शास्त्र, (१२) इतिहास इत्यादि। यह काम एक ही मनुष्य का नहीं है। मंगला-प्रसाद-पारितोषिक से हम बड़ी आशा करते हैं। लेकिन उसका उपक्रम निराशा-जनक देख पड़ा है। इस पर अधिक लिखना ठीक नहीं। केवल इतना ही इशारा काफ़ी है कि आइंदा से इसकी उपयोगिता पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। हिंदी के बहुत-से लेखकों में इस कार्य के प्रति उदासीनता भी देख पड़ती है। इसलिये इसका सरल उपाय यह हो सकता है कि इस कार्य के लिये एक बृहत् पुस्तकालय, किसी केंद्र-स्थान पर, खोला जाय; जिसकी ब्रांचें चुने-चुने शहरों में, समस्त भारतवर्ष में, फैलाई जायँ। हरएक ब्रांच तथा स्वयं बड़े पुस्तकालय के लिये कुछ प्रौढ़ सदस्य नियुक्त किए जायँ; जो अपने शेष समय को इनमें बिताकर अपने ज्ञान से तथा दूसरी भाषाओं की पुस्तकों के सहारे किसी ख़ास विषय पर कुछ-न-कुछ लिखा करें। महीने के अंत में सब हस्त-लिखित कापी उस बृहत् पुस्तकालय को भेज दी जायँ, जहाँ कुछ प्रतिष्ठित विद्वानों की मंडली काट-छाँटकर प्रत्येक विषय की पुस्तक का अलग-अलग संकलन करे। इस प्रकार सभी विषयों की पूर्ति थोड़े ही समय में हो जायगी। साथ ही देश में सभी विषयों का ज्ञान और विद्या भी फैलती जायगी।

इस कार्य के लिये धन की बड़ी भारी आवश्यकता है। परंतु जहाँ उद्योग है, वहाँ धन की कमी नहीं रहती। क्या भारतीय धनी-मानी सज्जन अपनी मातृ-भाषा के लिये इतना भी नहीं कर सकते कि आवश्यक धन न्योछावर कर दें? यदि हमसे इतना भी नहीं हो सकता, तो फिर हम क्या कर सकते हैं!

बंगाली, मराठी आदि भाइयों के आदर्श पर हमको अवश्य अपने देश और देश-भाषा की उन्नति के लिये बड़े ज़ोर-शोर से आगे बढ़ना चाहिए। रुकावटों के बादल घिरने दीजिए। हम यदि उद्योग करेंगे, तो अवश्य कृतकार्य होंगे।

मकरंद ढौंड्याल

× × ×

९. अनुरोध

मोह का जादू अधिक न डाल;
दिन-दिन बिगड़ा ही जाता है सारा हाल-हवाल।
मद में भूल चुका हूँ, सारा लुटा चुका हूँ माल;
अब क्यों फँसा रहा है मुझको नूतन फंदा डाल?
इधर-उधर से दौड़ रहे हैं सांसारिक जंजाल;
अपने इस अशांत मन को भी सकता नहीं सँभाल।
भटका रहा मोह में मुझको—ऐसी खेली चाल;
मृग-तृष्णा है, किंतु नहीं जल पाता हूँ तत्काल॥

राजेश्वरप्रसादनारायणसिंह



१. चलता हुआ रास्ता



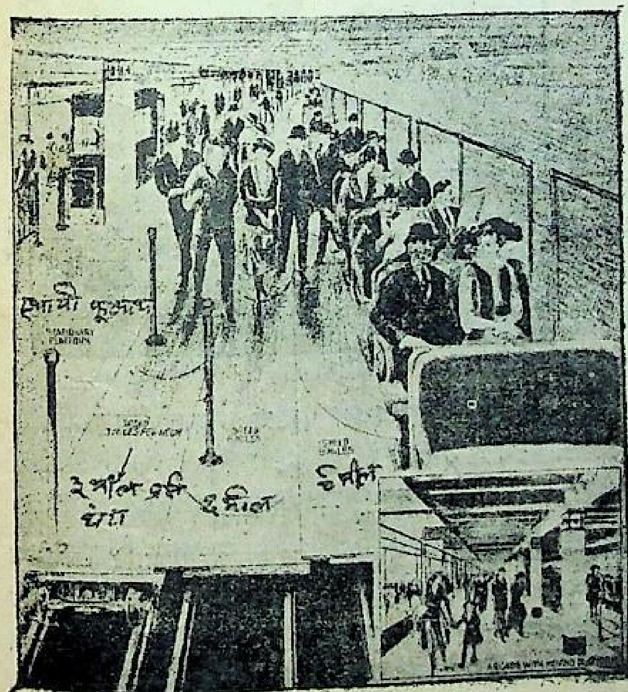
मारे-जैसे देहातियों की बात छोड़िए। हमें एक पग भी कहीं जाना हुआ, तो खेतों के बीच पगडंडियों की शरण लेनी पड़ती है। मैं आप-जैसे शहर में रहनेवालों की बात कहता हूँ। आपके चलने के लिये पक्की, चिकनी और सीधी सड़क म्युनिसिपलिटी ने तैयार कर दी है; किसी किसी शहर में सड़कों के अगल-बगल फुट-पाथ भी बने हैं। शहर के रहनेवाले लोग अपने को हमसे भाग्यशाली अवश्य समझते होंगे। हमें तो आपका-सा बढ़िया रास्ता नसीब नहीं; किंतु यही सोचकर अपने मन को दिलासा देता हूँ कि भारतवर्ष के प्रायः ९० सैकड़े मनुष्य पगडंडी पर ही चलते हैं।

क्या आप जानते हैं कि आपसे भी अधिक भाग्यशाली मनुष्य पाश्चात्य देशों के लोग हैं? उन्हें चलने का कष्ट भी उठाना नहीं पड़ता। उनके घर के पास से ज़मीन के नीचे जो 'फुट-पाथ' जाता है, वही चलता है। चार समानांतर 'फुट-पाथ' परस्पर, एक के साथ दूसरे, लगे रहते हैं। पहला स्थायी होता है। वह चलता नहीं। इससे लगा हुआ जो 'फुट-पाथ' है, वह तीन मील प्रति घंटे के हिसाब से चलता है। स्थायी फुट-पाथ से उस पर आप धीरे से पैर बढ़ाकर रख दीजिए, और खड़े-खड़े, तीन मील प्रति घंटे के हिसाब से, चलने लगिए। लेकिन शायद आप सोचें कि तीन मील की गति धीमी है, और आप कहीं शीघ्र पहुँचना चाहते हैं, तो पास ही ६ मील प्रति घंटे के हिसाब से चलनेवाला 'फुट-पाथ' भी जा रहा है; उस पर चढ़ चलिए। हाँ, आपने कहा था—"मुझे दूर जाना है।" कब तक खड़े-खड़े चलिएगा? ९ मील प्रति घंटे के हिसाब से चलनेवाला रास्ता भी पास ही से गुज़र रहा है। वह इन दोनों से चौड़ा है, और उस पर बैठने का भी इंतज़ाम है। उसी पर क्यों नहीं चढ़ लेते? शायद आप सोच रहे हैं कि उस पर बैठने के जितने स्थान हैं, वे सब भरे होंगे। अच्छा, थोड़ी देर ठहर जाइए, कोई-न-कोई स्थान अवश्य ख़ाली हो जायगा।

न्यू यार्क की सड़कों—ख़ासकर मोड़ों और चौमुहानों पर आजकल इतनी भीड़ रहती है कि मनुष्यों को कौन पूछे, मोटरों को घंटों खड़े रहने के बाद कहीं जाने की आज्ञा मिलती है। गाड़ी, मोटर, लारी आदि की भीड़ में मनुष्यों की कैसी दुर्दशा होती होगी, सहज ही इसका अनुमान किया जा सकता है। वहाँ के Rapid Transit Commission के मुख्य इंजीनियर ने उपर्युक्त 'फुट-पाथ' बनाने की सम्मति दी थी। शायद इस समय तक वैसा रास्ता बन भी गया होगा।

ज़मीन के नीचे कई स्टेशन थोड़े-थोड़े फ़ासले पर बने हुए हैं। यात्री वहाँ जाकर भाड़ा दे देता है, और जिस तरफ़ उसे जाना हुआ, उधर मुँह करके चलने लगता है। इसके बाद वह पहले फुट-पाथ पर, फिर दूसरे और अंत में तीसरे पर चला जाता है, जहाँ उसके बैठने के लिये स्थान बने रहते हैं। 'फुट-पाथ' पर चढ़ने या उतरने में यात्री को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

६ मीलवाले 'प्लेट-फ़ार्म' पर बैठने के बहुत-से स्थान बने हुए हैं। इसके चलाने में ख़र्च भी कम पड़ता है, और समय की भी बचत होती है। रास्ते पर चलने से ख़तरे का जो डर रहता है, वह भी इस पर यात्रा करने से जाता रहता है। अंतर्गामी रेलगाड़ियाँ इस रास्ते से अवश्य तेज़ चलती हैं, किंतु यह भी ख़याल रखना पड़ेगा कि रेलगाड़ियों के लिये यात्रियों को इंतज़ार करना पड़ता है, लेकिन चलते हुए प्लेट-फ़ार्मों पर जब पहुँचे, चढ़कर चलने लगे इंतज़ार का काम नहीं। स्टेशनों पर या प्लेट-फ़ार्मों पर यात्रियों की भीड़ नहीं रहती। यात्री आते गए, और चलते बने। रेलों को चलाने और खड़ा करने में बहुत-सी शक्ति नष्ट हो जाया करती थी; किंतु इस चलते हुए रास्ते को खड़ा करने या चलाने में शक्ति की बार-बार बर्बादी नहीं होती। ख़र्च के लिहाज़ से भी इसका प्रचलन लाभ-दायक है।



चलता हुआ रास्ता

× × ×

२. रेडियो द्वारा विवाह

शीर्षक देखकर आप घबरा तो नहीं गए? इतमीनान रखिए, मैं पागल नहीं हुआ हूँ; होश में हूँ। पाश्चात्य देश में सब कुछ संभव है। वहाँ आजकल सैकड़ों मील दूर पर बैठे हुए वर-कन्या का विवाह भी रेडियो द्वारा ही हो रहा है। ऐसे विवाहों के एक-दो उदाहरण देना ही यथेष्ट होगा। डेट्रय-नगर में रहनेवाली एक युवती के साथ अटलांटिक-महासागर के ऊपर तैरते हुए एक जहाज़ के एक नाविक का विवाह रेडियो द्वारा हुआ है। जहाज़ पर से वर और पुरोहित रेडियो द्वारा विवाह के मंत्र, उपदेश आदि तीन हज़ार मील दूर डेट्रय-नगर को प्रेरण करते थे। कन्या उस समय आत्मीय सज्जनों तथा पुरोहित के साथ चर्च में प्रतीक्षा करती थी। इधर से जो कुछ कहना था, वह भी रेडियो द्वारा ही कहा गया, और विवाह हो गया। इस प्रकार के विवाह से अमेरिका में हलचल मच गई है।

एक सामरिक कर्मचारी अपनी पसंद की हुई भावी पत्नी के साथ एक वायु-यान पर चढ़कर आकाश में उड़ा। एक और विमान पर पुरोहित भी उनके अनुवर्ती हुए। उन्होंने आकाश ही में इन दोनों प्रणयियों को दांपत्य-सूत्र में बाँध दिया। नीचे एक शक्तिशाली टेलीफ़ोन लगा हुआ था। उसकी सहायता से जमा हुए लोग विवाह के समय की सभी बातें सुन रहे थे। उस समय पुरोहित ने धर्म-ग्रंथ से जो उपदेश पढ़कर सुनाया था, नव-दंपति के भावी सुखमय जीवन के लिये जो आशीर्वाद दिया था, वर और कन्या ने आपस में जो प्रतिज्ञा के वचन कहे थे, सो सब श्रोताओं ने सुना।

भोग-विलास की लीला-भूमि पाश्चात्य देशों के ये सब विलास-लालसा-पूर्ण अनुष्ठान उसी देश के लिये ठीक या उपयोगी हो सकते हैं। प्रवृत्ति की तेज़ हवा वासना की अग्नि-ज्वाला को प्रचंड ही बनाती है। इसका अंत कहाँ होगा, कोई नहीं कह सकता।

× × ×

३. बोलनेवाला अख़बार

संपादक महाशय, 'माधुरी' के ग्राहकों तथा पाठकों का आपसे एक उलहना है। आपने 'माधुरी' को सब प्रकार से सुंदर तो बनाया, किंतु उसके पढ़ने का कोई भी सुबीता नहीं कर दिया। आप अपने कार्यालय में चुप-चाप बैठकर लेखों, कविताओं और चित्रों का चुनाव करते हैं, और पुस्तकालयों, वाचनालयों, क्लबों आदि में 'माधुरी' के लिये छीना-झपटी लगी रहती है। डाकिए ने लाकर 'माधुरी' को मंत्री महाशय के हवाले कर दिया। मेंबर

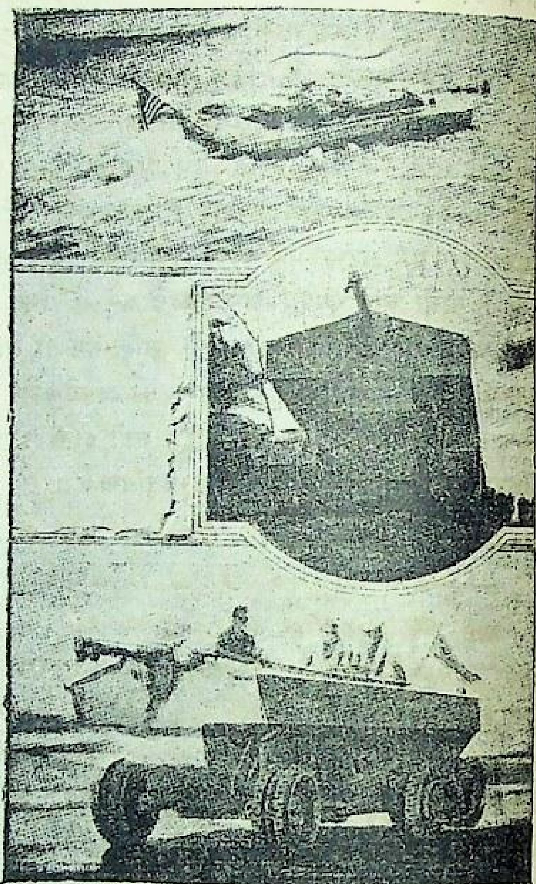
बार-बार पूछ रहे हैं—"इस मास की 'माधुरी' आई या नहीं ?" किंतु मंत्री महाशय चुप्पी साधे हुए हैं। इसके बाद जिसके सौभाग्य का सितारा चमका, उसे वह मिली। किंतु उसके हाथ में पहुँचते-न-पहुँचते दूसरे ने छीन ली। यह दृश्य प्रायः प्रत्येक पुस्तकालय में नित्य का है। और तो और, 'माधुरी' जब मेरे पास आती है, तब मेरे बंगाली मित्रगण मेरे देखने के पहले ही डाकख़ाने से उसे लेकर चंपत हो जाते हैं। पूछने पर कहते हैं—"माधुरी तो तोमारई; तुमि परे देखबे।" मैं चुप हो जाता हूँ। अस्तु।

आप अपने पाठकों के पढ़ने का कोई सुबीता करें, चाहे न करें, किंतु विज्ञान यह काम आपके लिये करने को तैयार है। आपके मैनेजर साहब बार-बार लिखा करते हैं—"माधुरी की एक प्रति के पढ़नेवाले दर्जनों मनुष्य हैं।", किंतु क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि दर्जनों मनुष्यों को एक ही विषय पढ़ने के लिये कितने समय की आवश्यकता होती होगी, विज्ञान नहीं चाहता कि एक ही काम के लिये बहुत-से मनुष्य अपना अमूल्य समय लगावें। इसलिये उसने एक ऐसे यंत्र का आविष्कार किया है, जो अख़बार पढ़कर श्रोताओं को सुनाया करे। अख़बार दीवाल में कुछ ऊँचे पर टाँग दिया जाता है, और उसके साथ यह यंत्र लगाकर सेट कर दिया जाता है। यंत्र से शब्द निकलने लगते हैं। पुस्तकालय के "हाल" में बैठे हुए सभी मनुष्य उसे साफ़-साफ़ सुन सकते हैं। जान पड़ता है, कोई मनुष्य खड़ा हुआ अख़बार पढ़कर सुना रहा है। यदि आप ऐसा एक-एक यंत्र हरएक पुस्तकालय में भेजने का बंदोबस्त करें, तो पाठकों का बड़ा उपकार हो।

× × ×

४. जल और स्थल की गाड़ी

जल और स्थल में चलनेवाली गाड़ी का चलन पहले-पहल महायुद्ध के समय हुआ था। इस गाड़ी में तोपें भी लगी हुई थीं। युद्ध के समय पक्की सड़क के लिये बैठ रहना ठीक नहीं है। उस समय ऐसी गाड़ी चाहिए जो चाहे जैसी सड़क पर चल सके—पहाड़ यदि रास्ते में आ जाय, तो उसे भी पार करने में समर्थ हो। जिस गाड़ी (Armoured Truck) का चित्र दिया गया है, उसमें ये सब गुण हैं। उसके चलने के लिये अच्छे रास्ते की आवश्यकता नहीं। वह छोटी-छोटी पहाड़ियों पर भी चढ़ सकती है। जल में २० मील प्रति घंटे के हिसाब से चलना उसके लिये कोई बड़ी बात नहीं।



जल और स्थल पर चलनेवाली गाड़ी

× × ×

५. बनावटी सोना

नीच जाति की धातुओं (लोहा, जस्ता आदि) को उच्च जाति (सोना, चाँदी आदि) में परिवर्तित करने की चेष्टा रसायन-शास्त्र के आरंभ ही से हो रही है। बहुत पुराने समय के रासायनिकों (Alchemists) के प्रयोगों के असफल होने का कारण यह था कि प्रारंभ में उन लोगों का विश्वास था कि एक धातु को दूसरी धातु में बदला जा सकता है। किंतु पीछे उनकी भूल का पता लगा और उनकी गवेषणाओं ने एक दूसरा ही मार्ग पकड़ा। पर सोने-चाँदी को बनाने की ओर से उन लोगों का मन नहीं फिरा। उसी समय से वैज्ञानिक लोग किसी एक ऐसी क्रिया की खोज में हैं, जिससे सोना

बनाया जा सके। अब तक तो वे असफल ही होते आए हैं, किंतु भावी भविष्य के गर्भ में निहित है।

पौराणिक ग्रंथों में पारस-पत्थर (Philosopher's Stone) का ज़िक्र है। उसे पढ़-पढ़कर वैज्ञानिकों की आशा बलवती होती जाती है। उन्हें पूरा विश्वास है कि एक-न-एक दिन वे कृत्रिम सोना बनाकर ही छोड़ेंगे। सोना बनाने के दो सिद्धांत आजकल संसार के समक्ष हैं। दोनों पक्षों के समर्थक धुरंधर वैज्ञानिक हैं। कोई एक सिद्धांत का पिष्ट-पेषण करता हुआ कहता है कि यदि सोना बन सकेगा, तो केवल इसी सिद्धांत का अवलंबन करने से। दूसरे लोग अपने सिद्धांत को प्रधानता देते हुए सोना बनाने की हामी भरते हैं। एक दल 'एको ब्रह्म, द्वितीयो नास्ति' का पक्षपाती है। उसका कहना है कि इस संसार में एक मूल-पदार्थ के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है। उसी एक मूल से सारे विश्व की रचना हुई है। आजकल जिन मूल-तत्त्वों (Elements) को हम लोग पाते हैं, वे और कुछ नहीं, उसी एक मूल-पदार्थ के भिन्न-भिन्न रूप हैं। यद्यपि अपनी कमज़ोरी के कारण, या इधर समुचित उन्नति न करने के कारण, हम लोग कई मूल-तत्त्वों का विश्लेषण नहीं कर सके हैं, तथापि हैं वे उसी एक पदार्थ के रूपांतर। इस प्रकार देखा जाता है कि सोना, लोहा, चाँदी, और जस्ता सब एक ही मूल-पदार्थ के केवल भिन्न-भिन्न रूप-मात्र हैं। एक को दूसरे का रूप देने के लिये, उनकी राय में, विशेष बाधा नहीं होनी चाहिए। किंतु हम लोगों को उस मूल-तत्त्व का ज्ञान अभी परिमित है, इसलिये हम लोहे को सोना नहीं बना सकते। हाँ, ऐसा समय शीघ्र ही आवेगा, जब लोहे को सोने के रूप में और जस्ते को चाँदी के रूप में हम लोग बदल और देख सकेंगे।

दूसरा पक्ष मैडम क्यूरी (Curie) आदि का है। यह पक्ष Radio activity के सिद्धांत को प्रधानता देता है। उसका कहना है कि यह सिद्धांत एक धातु के दूसरे धातु में परिवर्तित होने ही पर अवलंबित है। जब यूरानियम रेडियम हो सकता है, और रेडियम, समय पाकर, कई अवस्थाओं को पार कर, अंत को सीसा (Lead) बन सकता है, तब लोहा सोना क्यों नहीं बन सकता? इस सिद्धांत के अनुसार जस्ते को भी चाँदी हो जाना चाहिए। अदृश्य रश्मि-तरंगों की क्रिया को देखकर पता लगाया गया है कि बहुत-सी अधिक गुरुत्व (High Specific Gravity)-वाली धातुएँ कम गुरुत्व (Low Sp. Gravity)-वाली धातुओं में परिणत हो गई हैं। इससे यह संभावना देख पड़ती है कि नीच जाति की धातु उच्च जाति की हो जाया करेगी।

देखें, दोनों में किसको सफलता वरण करती है।

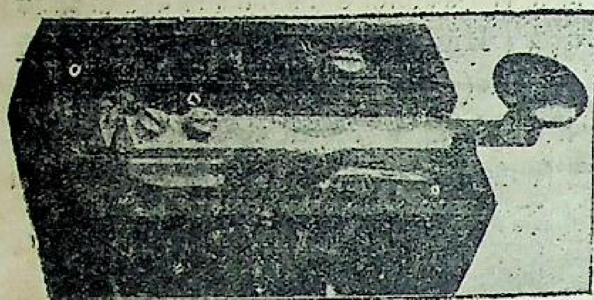
× × ×

६. बधिर का कान

शरीर के जिस हिस्से को हम लोग 'कान' कहते हैं, वह बहरे के भी होता है। किंतु, तो भी, उससे कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता। इसके दो कारण हैं। एक तो मस्तिष्क से कर्ण-पट तक विस्तृत शब्दवाही स्नायु या मस्तिष्क के शब्द-ग्राह्य कोष का विकृत हो जाना है। दूसरा स्नायु और मस्तिष्क के अविकृत रहते हुए भी कर्ण-पट अथवा कर्णेंद्रिय के बाहर किसी प्रकार की पीड़ा होना है। पूर्वोक्त बधिरता का प्रतिविधान तो विज्ञान आज तक नहीं कर सका। हाँ, दूसरे प्रकार की बधिरता को कृत्रिम कर्ण-पट (Ear Trumpet) और अनुस्रवण-यंत्र द्वारा दूर कर सकते हैं।

शब्द के चालकवायु के सिवा लकड़ी, धातु, हड्डी आदि भी हैं। इसकी परीक्षा आप आसानी से कर सकते हैं। एक घड़ी को अपने पास से इतनी दूर पर रखिए, जहाँ से आपको उसके टिक-टिक शब्द सुनाई न दें। अब आप एक लकड़ी की छड़ी या किसी धातु का तार लेकर उसका एक सिरा घड़ी से लगाकर रखिए, और दूसरा अपने दाँतों से पकड़िए। आप देखेंगे कि अब आपको टिक-टिक शब्द सुनाई देता है। छड़ी या तार के सिरे को अपने दाँतों से हटा दीजिए, या घड़ी के पास से अलग कर दीजिए। कुछ भी शब्द नहीं सुनाई देगा। इसका कारण यह है कि जो शब्द-तरंग वायु को स्पंदित कर आपके कान के पास नहीं पहुँच सकी, वही लकड़ी को स्पंदित कर, आपके दाँत द्वारा प्रवाहित और शब्दवाही स्नायु में संचरित होकर, आपके मस्तिष्क में पहुँची, और आप उस शब्द को सुन सके।

इसी सिद्धांत की सहायता लेकर मि० एस्० जी० ब्राउन नाम के एक अँगरेज़ ने Ossiphone-नामक एक यंत्र बनाया है। जिन मनुष्यों के शब्दवाही स्नायु अविकृत अवस्था में हैं, वे इस यंत्र की सहायता



आसीफ़ोन-यंत्र

से धीमी आवाज़ को भी साफ़ और स्पष्ट सुन सकेंगे। ध्वनि-तरंग इस यंत्र के अंतर्गत चौंबकीय Vibrator से स्पंदित होकर कर्ण-पट के बदले शरीर की किसी हड्डी द्वारा शब्दवाही स्नायु में पहुँचाई, और वहाँ से वह मस्तिष्क में जाती है। टेलीग्राफ़ के प्रेरक यंत्र के समान इस यंत्र में भी एक हैंडिल लगा हुआ है। उसमें लगे हुए बटन को दाँत से जाँत(?)कर उँगुली से पकड़ने या शरीर की किसी हड्डी से लगा देने से ध्वनि के साथ ही शब्दों का अनुभव होता है। किसी से बात-चीत करने के समय इस आसीफ़ोन के अलावा एक Sound Box भी व्यवहार में लाना पड़ता है। जिससे बातें की जाती हैं, वह Sound Box में बातें कहता है। प्रयोजन होने से ध्वनि को एक और यंत्र की सहायता से कई गुना बढ़ाया भी जा सकता है।

× × ×

७. विश्वकोष का बच्चा

प्रायः एक हज़ार रुपए मूल्य का विश्वकोष २९ भागों में है। ये खंड एकसाथ इतने भारी हो जाते हैं कि एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना बड़ा कठिन काम हो उठता है। साहित्यिक, जिन्हें इस कोष का सदा सहारा रहता है, इतने बड़े ग्रंथ को सब समय, अपने पास नहीं रख सकते। उनकी दुर्दशा देखकर एक अमेरिकन रियर-एडमिरल ब्रेडली एम० फ़िस्के को दया आई। उन्होंने पुस्तक छापने की एक नई पद्धति निकाली है। इस उपाय से छपी हुई 'एनसाइक्लोपीडिया' को पाकेट में रखकर आप जहाँ चाहें घूम सकते हैं। इसका मूल्य भी वर्तमान पुस्तक के दाम का $\frac{1}{10}$ होगा। पुस्तक को छापने या जिल्द लगाने की आवश्यकता नहीं होती। वर्तमान पुस्तक के अक्षर फ़ोटो-इनग्रेविंग द्वारा $\frac{3}{100}$ गुने छोटे किए जायँगे, ये छोटे-छोटे अक्षर दो इंच चौड़े और ५ इंच लंबे काग़ज़ के दोनों ओर छपेंगे। एडमिरल फ़िस्के का कहना है कि एक आने में १,००,००० शब्दवाली पुस्तकों की १०,००० प्रतियाँ छप सकती हैं।

इन छपे हुए अक्षरों को ख़ाली आँख से नहीं पढ़ा जा सकता। इन्हें पढ़ने के लिये काग़ज़ के छपे हुए टुकड़े को एल्युमिनियम के एक फ़्रेम पर लगाते हैं। इसमें एक शक्तिशाली, मगर हलका लेंस लगा रहता है। यह लेंस सुविधा-जनक तथा इच्छानुसार रक्खा जा सकता है। लेंस का वज़न केवल ५ औंस है। छः महीने पढ़ने-योग्य विषय केवल दो पैसे का टिकट लगाकर भेजा जा सकता है। ५० से १००० तक किताबें अनायास एक सिगार-केस में रक्खी जा सकती हैं।

× × ×

८. भूतपूर्व क़ैसर का महल और बग़ीचा

क़ैसर इस समय निर्वासित हैं, और उनके महल में इस समय म्यूज़ियम खोला गया है। यह बहुत बड़ी इमारत है। इँगलैंड का राज-भवन भी एक अति मनोहर बग़ीचे के बीच में बना है; किंतु क़ैसर का महल एकदम सड़क पर है। चारों ओर सड़कें हैं। जिस घर में क़ैसर सोते थे, वह बहुत बड़ा है। उसमें एक बाज़ार लग सकता है। घर शीशे का बना हुआ है। उसकी दीवारें, छत, गच, और सामान, सब कुछ शीशे ही का है। ऐसा आश्चर्य-जनक घर संसार में और कहीं है, इस में संदेह है। यह महल जर्मनी की राजधानी बर्लिन में है।

बर्लिन से १७-१८ मील के फ़ासले पर पट्सडैम-नगर है। यहाँ एक बग़ीचा है। उसी में एक महल बना हुआ है। भूतपूर्व क़ैसर का यह बग़ीचा था। वह महीने में प्रायः २० दिन यहीं रहा करते थे। महल के सामने एक फ़ौवारा है। फ़ौवारे कई तरह के होते हैं। मगर यह एक नए ही तर्ज़ का है। फ़ौवारे से जो जल-स्तंभ निकला है, उसकी परिधि प्रायः ६ फ़ीट के लगभग है। उससे पानी निकलकर २०० फ़ीट ऊँचा जाता है, और फिर एक जलाशय में जाकर गिरता है। वहीं पर एक और बग़ीचा है; वह पँचमहला है। हरएक खंड में एक घर और उसके चारों तरफ़ बग़ीचा है। पँचमहले पर बग़ीचा लगाना अवश्य ही आश्चर्य-जनक है!

रमेशप्रसाद बी० एस्-सी०



१. रूस का असली शासक एक स्त्री



नवीन रूस का असली शासक लेनिन नहीं, एक सुंदर युवती है। वास्तव में रूस के शासन की बाग-डोर उसी के हाथ में है। जगत्प्रसिद्ध लेनिन उससे सलाह लिए विना कुछ नहीं करते। उन्हें जब कभी किसी शासन-संबंधी विकट समस्या पर विचार करना होता है, तो वह पहले उस युवती से परामर्श करते हैं। उससे परामर्श करने के पश्चात् ही वह अपने विचारों को प्रकट करते हैं। लेनिन पर उसका भारी प्रभाव है। वह उसके राजनीतिक पांडित्य के क़ायल हैं। लेनिन ही नहीं, रूस के अन्य विद्वान् राजनीतिज्ञ भी उसके विचारों का लोहा मानते हैं, और उन समस्त राजनीतिक कार्यों के विषय में, जिनका प्रभाव सारे देश पर पड़ता है, उससे सलाह-मशविरा करते रहते हैं।

इस युवती का नाम 'ओल्गा गोरोकोफ़' है। ओल्गा अपने बचपन से ही विपत्तियों के पलने में पली है। उसका जन्म ही आपत्तियों की चट्टानों के बीच हुआ है। यही कारण है कि भयंकर-से-भयंकर विपत्ति आने पर भी वह ज़रा नहीं घबराती। वह बड़ी वीरता और धैर्य के साथ सारे कष्टों का मुक़ाबला कर उन पर विजय प्राप्त करती है। ओल्गा का जन्म मध्य रूस के एक किसान-परिवार में हुआ था। उसके जन्म के कुछ ही वर्ष बाद रूस में पहली क्रांति हुई, और उसे घर छोड़कर अपने माता पिता के साथ भागना पड़ा। गृह हीन होकर ओल्गा को अनेक कष्ट सहने पड़े। बेचारी भूखी-प्यासी अपने माता-पिता के साथ मारी-मारी फिरने लगी। उसके कष्टों का अंत यहीं पर नहीं हुआ। जाड़े की ऋतु में तीक्ष्ण शीत के कारण उसके माता-पिता का शरीरांत भी हो गया। माता-पिता की इस मृत्यु से ओल्गा के हृदय पर गहरी ठेस लगी। उसने उनकी मृत्यु का उत्तर-दायी 'रायलिस्ट' (राजपक्ष की) फ़ौजों को ही ठहराया, और उसी समय से उसने सरकार से बदला लेने की ठानी।

महायुद्ध के समय ओल्गा रूसी महिलाओं की फ़ौज की एक सदस्या थी। अपनी वीरता, चतुराई और साहस के कारण वह कर्नल के पद को प्राप्त हुई। सैन्य-संचालन में उसकी दक्षता देखकर बड़े-बड़े ऑफ़िसर दाँतों-तले उँगली दबाने लगे, यहाँ तक कि उसे "महिला-नेपोलियन (Woman Nepoleon)" के नाम से पुकारने लगे। इस समय उसने अपने अधीन समस्त महिलाओं और अन्य फ़ौजी अफ़सरों के हृदय में ख़ासा स्थान प्राप्त कर लिया। रूस के बहुत-से शक्ति-संपन्न मनुष्य ओल्गा के अनुचर हो गए। ओल्गा ने भी अब अपने कार्य-क्षेत्र को बढ़ाया। वह जनता में साम्य-वाद का प्रचार करने लगी। जब लेनिन के हाथ में शक्ति आई, तो वह अपनी सेना के साथ "पेट्रोग्रेड" (रूस की तत्कालीन राजधानी) के लिये रवाना हो गई। वहाँ पर उसने लेनिन से भेंट की, और हर तरह से उनकी सहायता करने का वचन दिया। उसी समय से ओल्गा लेनिन की सहकारिणी है।

वीर और धीर होने के सिवा वीर-रमणी ओल्गा सुंदरता में भी अपनी उपमा आप ही है । वह बहुत खूबसूरत है। उसकी सूरत बड़ी मनमोहिनी है । लेनिन उस पर मोहित हैं । उनकी उत्कट अभिलाषा है कि उसके साथ उनका विवाह हो जाय । कई बार वह उससे विवाह करने का प्रस्ताव भी कर चुके हैं। परंतु ओल्गा सदा ऐसे प्रस्तावों को अस्वीकृत करती रही है । उसका कहना है कि "साम्य-वाद और उत्कट प्रजा-तंत्र-वाद (Communism) का प्रचार करने के लिये मुझे स्वतंत्र रहना चाहिए। घरेलू झंझट मेरे पवित्र उद्देश्य में बाधक न होने चाहिए।" इसी कारण ओल्गा अभी तक अविवाहिता है। लेनिन से गहरा प्रेम रखते हुए भी उसने उनके साथ अपना विवाह नहीं किया। जब कभी वह उनके साथ प्रेम की बातें भी करती है, तो अपने प्यारे देश रूस को नहीं भूलती । यद्यपि ओल्गा बड़ी खूबसूरत है, बात-की-बात में दूसरों का मन मोह सकती है, तथापि उसने अपनी इस मनमोहिनी शक्ति से कभी अनुचित लाभ नहीं उठाया। उसने कभी अपने शत्रुओं को इस बल से नहीं जीता। वह सदा अपने और लेनिन के विरोधियों को आड़े-हाथों लेती है, और उनका अच्छी तरह मुक़ाबला करती है। लेनिन भी उसकी ओर आँख उठाकर देखनेवालों के जानी दुश्मन हैं। वह 'लाल फ़ौज' (Red Army) के कई अफ़सरों को 'अभक्ति' के अभियोग में प्राण-दंड दे चुके हैं । वास्तव में उन अफ़सरों का अपराध यही था कि उन्होंने ओल्गा की तरफ़ हलकी निगाह से देखा था।

ओल्गा गोरोकोफ़ में ग़ज़ब की शक्तियाँ हैं। लेनिन-जैसे शक्तिशाली और वीर उसके इशारों पर नाचते हैं। कभी-कभी तो लेनिन को अपनी इच्छा के विरुद्ध भी उसकी बात माननी पड़ती है। वह उसकी दूरदर्शिता के क़ायल हैं। उन्होंने मुक्त कंठ से इस बात को स्वीकार किया है कि भविष्यत् के विषय में ओल्गा के विचार सच्चे और पक्के होते हैं। उसके उच्च विचारों ही के कारण आज रूस के बड़े-बड़े विद्वान् उसके सामने अपना माथा नवाते हैं, और उसकी साधारण बात पर भी खूब विचार करते हैं। क्या मानसिक, क्या आत्मिक और क्या शारीरिक, सभी शक्तियाँ ओल्गा में एक-से-एक बढ़कर हैं। उसके छोटे-से हाथों में इतनी ताक़त है, उसके पास इतनी शक्ति है, जितनी कभी ज़ार के पास भी न थी। उसकी शक्ति के विषय में उसके एक सुपरिचित मित्र का कहना है कि "बहुत-से लोगों के लिये तो वह (ओल्गा) साबक़ा पड़ने पर भी 'एक कठिन समस्या' है। परंतु एक बार उससे बात-चीत करके वे उसकी अतुल शक्ति का अनुभव करने लगते हैं।"

ओल्गा गोरोकोफ़ को यदि लेनिन की ढाल कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। उसे लेनिन की रक्षा का ध्यान अपने प्राणों की रक्षा से भी अधिक रहता है। अभी हाल ही में ट्राट्सकी और लेनिन में वैमनस्य हो गया था। ट्राट्सकी लेनिन को गद्दी से उतारने को ही था कि ओल्गा को उसके षड्यंत्र का पता चल गया। उसने उसके षड्यंत्र को विफल करने की ठानी। वह मास्को पहुँचकर ट्राट्सकी के ऑफ़िस में घुस गई। ट्राट्सकी अपनी मेज़ के पास बैठा था। वहीं ओल्गा से भेंट हो गई।

ट्राट्सकी ने कहा "ओल्गा, क्या चाहती हो? मैंने तो तुम्हें एक भूत जाना था। तुम यहाँ कैसे आई?"

ओल्गा अपनी मृग के बच्चे की तरह चंचल, काली और सुंदर आँखों से—उन आँखों से, जिनसे उसने फ़ौज के उपद्रव को दबाया था—खड़ी-खड़ी देखती रही। उसने चुपके-से अपने कोट की जेब से एक रिवाल्वर निकाला, और ट्राट्सकी के सामने मेज़ पर रख दिया। फिर बोली—"मित्र! मैं तुम्हारे कार्य-क्रमों का उतनी ही आसानी से मुक़ाबला कर सकती हूँ, जितनी आसानी से तुम्हारे ऑफ़िस में घुस आई हूँ। मेरे पास तुम्हारे लिये यह तोहफ़ा है—यह, या नेकचलनी!"

बस, इतना कहकर वह बाहर निकल आई, और द्वार पर ५ मिनट तक उस हथियार की—जो उसने ट्राट्सकी को दिया था—रिपोर्ट का इंतज़ार करती रही। कोई भी रिपोर्ट न मिली। ओल्गा लेनिन के पास लौट गई, और उनसे जाकर कहा—"ट्राट्सकी अब कोई आक्रमण न करेगा।"

उसका कथन सत्य ही निकला। ट्राट्सकी इतना कमज़ोर हो गया था कि वह अपने को भी न मार सकता था। वह अपने षड्यंत्रों को भूल गया, और उसके सिर पर ओल्गा का भूत सवार हो गया।

ओल्गा गोरोकोफ़ उत्कट प्रजातंत्र-वादिनी (Communist) है। वह सर्व-साधारण की सत्ता की कट्टर हिमायती है। जब कभी वह साम्य-वाद के संबंध में अपने

अनुयायियों से बात-चीत करती है तो एक पगली की तरह अपने हाथों को उछालती हुई बड़ी चटक-मटक से बोलती है। उस समय उसके हृदय में ज्वलंत उत्साह होता है। जब वह साम्य-वाद के अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर बात-चीत करती है, तब बहुत कम बोलती है। ओल्गा सचमुच समता की मूर्ति है।

ओल्गा गोरोकोफ़ की इस अपार शक्ति का अंत कब होगा ? रूसी इतिहास के सर्वोत्तम विद्यार्थियों का विश्वास है कि उसका अंत लेनिन के प्रभुत्व के साथ-साथ होगा। हो सकता है कि ओल्गा उसे छोड़ दे; क्योंकि लेनिन से भी बढ़कर वह 'शक्ति' को प्यार करती है, और उसका 'उद्देश्य' रूस की रक्षा करना है। संसार में आजकल यही एक महिला है, जो एक राष्ट्र पर राज्य कर सकती है। ओल्गा की आयु ३० वर्ष से कुछ ही अधिक है। ओल्गा इस सिद्धांत का सजीव प्रमाण है कि स्त्री शक्ति-संचय करके कहाँ तक प्रबल, कार्य-दक्ष हो सकती है, और उसमें कितने बड़े-बड़े काम करने की योग्यता निहित है।

सत्यव्रत

× × ×

२. अमेरिकन स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र

अमेरिकन महिलाएँ सब विषयों में पुरुषों के समकक्ष होने की चेष्टा कर रही हैं। वे किसी भी विषय में पुरुषों से कम रहना नहीं चाहतीं। वकालत और डॉक्टरी-विभाग से लेकर मोटर हाँकने तक के किसी काम में वे पुरुषों से पीछे नहीं हैं। आजकल संयुक्त-राज्य में २३२४ महिलाएँ मोर आदि पालने में, ३९४६ गऊ पालने में, ९२८३ उद्यान-रक्षा के काम में, १३ काठ के व्यवसाय में, १२ बिजली के काम में, २८९ थवईगीरी में, ४९१ खुदाई के काम में, १८२९ दंत-चिकित्सा में, १७३९ आईन-विभाग में तथा १७८७ धर्म-प्रचार के काम में लगी हुई हैं।

× × ×

३. पुलिस-विभाग में नारी

कुमारी मिलीसेंट कूपर-संयुक्त-राज्य के मेंटोला-प्रदेश में शिक्षयित्री थीं। वे उस कार्य को त्यागकर पुलिस-विभाग में काम कर रही हैं। उँगली की छाप की परीक्षा कर वह स्त्री-मुजरिम को गिरफ़्तार करने में सहायता करती हैं। इसलिये उन्हें वाशिंगटन-पुलिस के नारी-विभाग में एक उच्च पद दिया गया है। यह पद इसके पहले अन्य किसी महिला को नहीं मिला था।

× × ×

४. नारी-परिचालित जेल

अमेरिका, संयुक्त-राज्य के एलबामा-प्रदेश के अंतर्गत विटुमुका-नामक स्थान में एक स्त्रियों की जेल स्थापित हुई है। इस जेल के सब कर्मचारी महिला ही हैं। केवल एक पुरुष-डॉक्टर इस जेल में नियुक्त होंगे। श्रीमती क्री कप्याटरिक परिदर्शक नियुक्त हुई हैं।

× × ×

५. महिला-प्रगति

अमेरिका

श्रीमती एलिज़बेथ केडी विसकनसिन-प्रदेश के शासक द्वारा परिचालित स्थानीय परिदर्शक-समिति की सदस्या मनोनीत हुई हैं। इस पद का वार्षिक वेतन ९००० डालर (साढ़े सत्रह हज़ार रुपए) है। उनके ऊपर अस्पताल, कारागार तथा संशोधनागार (Reformatory) के निरीक्षण का भार भी अर्पित है। श्रीमती केडी बैरिस्टर थीं।

कुमारी सारा मैकपाइक न्यू यार्क के सरकारी श्रमजीवी-विभाग में मंत्री नियुक्त हुई हैं। कुमारी सारा स्त्रियों के अधिकार बढ़ाने के कार्य में एक मुखिया की हैसियत रखती हैं।

कुमारी ग्रेस एलिस स्त्री-समाज तथा शिशु-समाज के हित की चर्चा करने के लिये संयुक्त-राज्य की ओर से प्रतिनिधि बनाकर जेनोबा के राष्ट्र-संघ (League of Nations) में भेजी गई हैं।

श्रीमती रेक्लीलियर न्यू यार्क में रहती हैं। आप समालोचना करने में और ऐतिहासिक ज्ञान में विशेष योग्यता रखती हैं, और उसके लिये प्रसिद्ध हैं। इन्हें इस साल साहित्य में American Academy of Arts द्वारा स्वर्ण-पदक मिला है।

श्रीमती एलिज़बेथ वर्नार्ड वार्षिक ८००० डालर (२८ हज़ार रुपए) के वेतन पर फ़्लोरिडा के डाक-विभाग में काम करती हैं।

टेनेसीर की महिलाओं ने पुरुषों के साथ राष्ट्रीय सभा, तथा प्राथमिक बोर्ड समूह में बैठने का समान अधिकार प्राप्त किया है।

पेनसिलवेनिया की शासन-परिषद् ने एक क़ानून पास किया है। जो महिला अपनी संपत्ति का कर न अदा करेगी, वह उस क़ानून के अनुसार जेल में भेजी जायगी। समस्त नारी-सदस्यों ने इस प्रस्ताव के पक्ष में वोट दिया था। ८२ पुरुष-सदस्य इस प्रस्ताव के विपक्ष में थे।

जापान

जापानी महिलाएँ फ़ौजदारी-क़ानून का संशोधन कराना चाहती हैं। वे स्त्री और पुरुष, दोनों के लिये एक ही तरह का क़ानून चाहती हैं। आजकल ब्याही हुई स्त्रियों को व्यभिचार के अपराध में दो वर्ष की सज़ा होती है, मगर मर्द उसी अपराध में बेदाग़ छोड़ दिए जाते हैं। जापानी महिलाएँ इस क़ानून को बदलवाने पर तुली हुई हैं। स्त्रियों ने पुरुषों के समान अधिकार पाने के लिये टोकियो में एक जलूस निकाला था। जापान के भिन्न-भिन्न स्थानों से बहुत-से लोग उसमें शामिल थे। उस बेशुमार जनता को शांत रखने के लिये दस हज़ार पुलिस साथ थी।

रशिया

सोवियट-गवर्न्मेंट ने श्रीमती केलनट्निक् को नार्वे के सोवियट-दूत-विभाग में नियुक्त किया है। श्रीमती केलनट्निक् रूस के नारी-संप्रदाय की एक नेत्री हैं।

फ़्रांस

फ़रासी महिलाएँ वोट न पाकर हतोत्साह नहीं हुई हैं। वे अपने मत की पुस्तिकाओं का प्रचार कर तथा मेलों में लेक्चर देकर अपने आंदोलन को पहले ही की तरह पूर्ण उद्यम और उत्साह के साथ चला रही हैं।

दक्षिण आफ़्रिका

रोडेशिया की महिलाएँ पुरुषों के समान अधिकार पाए हुए हैं। इसलिये वाणिज्य-व्यापार आदि किसी कार्य में स्त्रियों को कुछ बाधा नहीं है। अगले चुनाव में क़ानून-सभा का मेंबर होने के लिये वे प्राण-पण से चेष्टा कर रही हैं।

इँगलैंड

स्वामी जिन-जिन कारणों से पत्नी का त्याग कर सकता है, स्त्री भी उन-उन कारणों से स्वामी को छोड़ सकती है—इस आशय का एक बिल दूसरी दफ़े लॉर्ड-सभा में पढ़ा गया।

कुमारी लैडविक दक्षिण-वेल्स के अंतर्गत बिसा के बैपटिस्ट-गिर्जे में बिशप नियुक्त हुई हैं। वेल्स में ये ही प्रथम नारी-बिशप हैं।

इटली

इटली की महिलाओं ने अपने राष्ट्रीय अधिकार का दावा प्रधान-मंत्री के निकट पेश किया है। उन लोगों का दावा सीनियर मुसोलिनी के विचाराधीन है।

ब्रेज़िल

ब्रेज़िल की महिलाएँ पर्दानशीन हैं। पर आश्चर्य का विषय यह है कि वहाँ पर बहुत-सी महिलाएँ डॉक्टर, दंत-चिकित्सक, लेखक, कवि, शिल्पी तथा चित्रकार का काम करती हैं।

ब्रेज़िल में ६ महिलाएँ इंजीनियर और कई रसायन-विद्या की पंडिता हैं। धीरे-धीरे परदे का रिवाज भी कम होता जाता है।

चीन

चीन-देश की रमणियाँ चिकित्सा-शास्त्र में विशेष पारदर्शिता रखती हैं। वहाँ के अस्पतालों के उच्च कर्मचारी महिलाएँ ही हैं। शिक्षा-विभाग, बैंकिंग (Banking) तथा अन्य रोज़गार भी महिलाएँ करती हैं।

न्यूज़ीलैंड

न्यूज़ीलैंड की क़ानून-सभा के चुनाव में एक महिला चुनी गई है। सर्व-प्रथम तीन महिलाएँ खड़ी हुई थीं।

भारतवर्ष

राजकोट की प्रतिनिधि-सभा में दो महिलाएँ चुनी गई हैं। देशी राजा लोग महिलाओं के दावे को स्वीकार करने के लिये इस तरह आगे बढ़ेंगे, तो बहुत कुछ सुफल तथा सफलता की संभावना है।

रोम के सार्वजातिक नारी-महासभा में भारतवर्ष से श्रीमती जिनराजदास, श्रीमती मालती पात्रधन बी० ए०, श्रीमती ताता और कुमारी तारा प्रतिनिधि होकर गई हैं।

उलुड़-मठ की कुमारी जोज़ेफ़ाइन मैकलियड (अमेरिका-वासिनी) बंगाल-सरकार द्वारा परिचालित बाली-म्युनिसिपैलिटी में मेंबर चुनी गई हैं। बंगाल में यही प्रथम नारी-सदस्या हैं। आप रामकृष्ण-मिशन से संबंध रखती हैं।

श्रीउमेशप्रसादसिंह

[illegible] में विशेष दिलचस्पी लेती हैं। केवल [illegible] नहीं [illegible] हैं।

इटली

[illegible] की महिलाओं ने अपने राष्ट्रीय [illegible] एक [illegible] के विरुद्ध पेश किया है। [illegible] के विचाराधीन है।

ब्राजील

[illegible] की महिलाएं [illegible] हैं। [illegible] कि वहाँ पर [illegible] की [illegible] शिक्षक, कवि, [illegible] हैं।

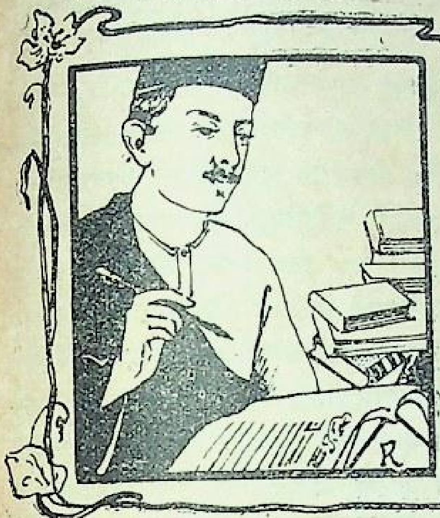
[illegible] की महिलाएं [illegible] और [illegible] हैं। [illegible] पर्दे का [illegible] है।

चीन

[illegible] की [illegible] हैं। [illegible] की [illegible] हैं।

न्यूज़ीलैंड

[illegible]



पुस्तक-परिचय

१. पुस्तकें

कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र—प्रकाशक, श्रीयुत मोतीलाल-बनारसीदास, अध्यक्ष पंजाब-संस्कृत-पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर। अनुवादक, श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालंकार। आकार १८×२२ अठपेजी। पृष्ठ-संख्या लगभग ४५०, कागज़ सुंदर, छपाई-सफ़ाई साधारण, जिल्द रेशमी। मूल्य लिखा नहीं।

संस्कृत में राजनीति के आचार्य श्रीचाणक्य-कृत 'कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र'-नामक, सामाजिक तथा राजनीतिक अर्थ-शास्त्र-विषय का एक बड़ा उपयोगी और उत्कृष्ट ग्रंथ है। संस्कृत-साहित्य-संसार में उसका बड़ा मान है; परंतु वह कठिन इतना है कि साधारण संस्कृतज्ञ उसे न समझ ही सकता है, न उससे यथेष्ट लाभ उठा सकता है। खेद की बात है कि ऐसे अच्छे और उपयोगी ग्रंथ का हिंदी में अभीतक अनुवाद नहीं हुआ था। यह ग्रंथ उसीका हिंदी-अनुवाद है। अनुवादक महाशय गुरुकुल,कांगड़ी के स्नातक हैं, और संस्कृत अच्छी जानते हैं, अतएव उनका यह प्रयत्न और परिश्रम सार्थक तथा सराहनीय हुआ है। अच्छा होता कि प्रकाशक महाशय इसे छपाते समय इसकी प्रूफ़-रीडिंग किसी ऐसे व्यक्ति से कराते, जो हिंदी-भाषा पर पर्याप्त अधिकार रखते हुए प्रूफ़-रीडिंग-कला में भी दक्ष होता। अर्थ-शास्त्र-प्रेमी हिंदी-पाठकों को इसका अवश्य अध्ययन करना चाहिए।

× × ×

श्रीगोस्वामी तुलसीदास—प्रकाशक, मैनेजर बिहार-स्टोर, आरा। लेखक, बाबू शिवनंदनसहाय। आकार २२×२९ अठपेजी। पृष्ठ-संख्या ४३४, कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, मूल्य २)

यह श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी का विस्तृत जीवन-चरित्र है। लेखक ने इसे बड़ी गवेषणा-पूर्वक लिखा है। इसमें गोस्वामीजी की जीवन-विषयक बातों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है, और उन्हें सप्रमाण सिद्ध करने के लिये आवश्यकतानुसार फ़ुट-नोट दे दिए गए हैं। गोस्वामीजी के जितने जीवन-चरित्र अभी तक प्रकाशित हुए हैं, उन सबसे यही अच्छा है। लेखक का श्रम प्रशंसनीय है। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या कम नहीं है, आकार भी २०×३० सोलह-पेजी से बड़ा है; परंतु फिर भी पुस्तक सजिल्द नहीं प्रकाशित की गई। इसके सिवा लेखक की भूमिका तथा विषय-सूची भी नहीं है। ये त्रुटियाँ खटकती हैं। पुस्तक संग्राह्य है।

× × ×

आत्म-दर्शन—प्रकाशक, राजपाल, मैनेजर आर्य-पुस्तकालय, सरस्वती-आश्रम, लाहौर। लेखक, श्रीनारायण स्वामी। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या ३८८, कागज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, और मूल्य रेशमी जिल्ददार का २)

१९वीं शताब्दी के अंत-काल और बीसवीं शताब्दी के जन्म-काल में जर्मनी के विख्यात प्राणि-शास्त्रज्ञ अर्नेस्ट हेकल की The Riddle of the Universe-नामक पुस्तक ने योरपीय क्रिश्चियन वातावरण में दुर्गा-

तर उपस्थित कर दिया था। उस समय इसकी २ लाख प्रतियाँ प्रकाशित हुई थीं, और प्रायः समस्त योरपियन भाषाओं में इसके अनेक अनुवाद निकल गए थे। कारण, वैज्ञानिक, दार्शनिक विवेचन द्वारा इसमें यह अंतिम घोषणा की गई थी कि इस विश्व की समस्त रचना प्रकृति और उसके नियमों का परिणाम-मात्र है। एतदर्थ किसी आत्मा या परमात्मा की आवश्यकता नहीं। अतएव कहना नहीं होगा कि इस पुस्तक ने योरप के अधिकांश जन-समुदाय को नास्तिक बनाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी थी। परंतु युग बदला और बीसवीं शताब्दी ने अध्यात्म-वाद की ओर पुनः योरप का ध्यान आकर्षित किया। इस पुस्तक में इन्हीं दोनों मतों, जड़-वाद तथा अध्यात्म-वाद की तुलनात्मक विवेचना की गई है, और उसमें अध्यात्म-वाद को श्रेयस्कर सिद्ध किया है। पुस्तक के आद्योपांत पाठ से यह स्वीकार करना पड़ता है कि लेखक ने वास्तव में इसमें सफलता प्राप्त की है। पुस्तक प्रत्येक हिंदी-भाषा-भाषी के मनन-योग्य है।

× × ×

फ़िजी की समस्या—प्रकाशक और लेखक, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद। आकार २०×३० सोलह-पेजी, कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ३४२, और मूल्य १)

फ़िजी-प्रवासी भारतीय अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करते हैं, उनकी वहाँ यह दुर्दशा क्यों है, और इससे छुटकारा प्राप्त करने के कौन-कौन-से साधन हैं, वे उपाय कौन हैं, जिनके द्वारा फ़िजी-प्रवासी भारतीय भारत-वर्ष की गौरव-वृद्धि के कारण बन सकते हैं, इन्हीं समस्याओं पर लेखक ने अपने विचार प्रकट किए हैं। यह तो सर्व-मान्य है कि फ़िजी की समस्या की जितनी जानकारी इस पुस्तक के लेखक चतुर्वेदीजी को है, उतनी हिंदी लेखकों में से शायद ही किसी को हो। हम तो यही समझते हैं कि नहीं है। अतएव पुस्तक कैसी है, इसका अनुमान लेखक के तद्विषयक ज्ञान से लगाया जा सकता है। लेखक महोदय इस विषय पर बहुत कुछ लिख चुके हैं। पूर्व की भाँति यह पुस्तक भी अच्छी है।

× × ×

साहित्य-विहार—प्रकाशक, साहित्य-भवन, प्रयाग। लेखक, श्रीवियोगी हरि। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या १५१, कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी और मूल्य ॥।≈)

पुस्तक का विषय उसके नाम ही से प्रकट है। इसमें साहित्य-माधुरी भावों के व्यंग्य, रँगीले भाव, आँख और हिंदी-कवि, सच्चा मनोराज्य, व्रज-मंडल, शिव-सूक्तियाँ, अध्यात्म और भक्ति, साहित्यिक चंद्रमा, मन-मौजी कवि तथा गोपनीय, इन ११ विषयों पर छोटे-छोटे निबंध साहित्यिक तथा चटपटी भाषा में दिए गए हैं। इसकी भूमिका में भूमिका-लेखक श्रीजगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है—"इस शुष्क समय में (!) व्रज-भाषा का यह वीणा-विनिंदित सरस स्वर सुनाकर, सुरसिकों के श्रवणों को सुख देने के कारण, श्रीयुत वियोगीजी साधु-वाद के भागी होंगे, इसमें संदेह नहीं है।" अस्तु। हमें भी पुस्तक की सरसता में संदेह नहीं है। कारण, इसमें साहित्य-रसिकों के लिये पर्याप्त मनोरंजन सामग्री है। पुस्तक अपने ढंग की अच्छी है।

× × ×

गल्पांजली(?)—प्रकाशक, स्त्री-दर्पण-कार्यालय, २२ जार्ज टाउन, इलाहाबाद। लेखक, श्रीयुत मोहनलाल नेहरू। आकार २०×३० सोलह-पेजी, पृष्ठ-संख्या २६०; कागज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर और मूल्य, सुंदर कपड़े की जिल्ददार प्रति का २।≈)

इसमें लेखक की १० कहानियाँ संगृहीत हैं, जो समय-समय पर 'स्त्री-दर्पण' में प्रकाशित हो चुकी हैं। ये कहानियाँ सत्य घटनाओं के आधार पर लिखी गई हैं। पहले, 'स्त्री-दर्पण' में ये कहानियाँ लेखक ने एक बनावटी नाम से इसलिये प्रकाशित कराई थीं कि जिनके विषय की ये घटनाएँ थीं, उनमें से अधिकांश लेखक से परिचित थे। फिर भी एक स्थान पर लेखक को उनके बनावटी नाम पर बुरा-भला सुनने का अवसर प्राप्त हो ही गया! इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक ने इन्हें सच्चे हृदय से लिखा है। एक तो कहानी का विषय ही साहित्य का सर्वोपरि ललित भाग है; दूसरे लेखक ने इन्हें सच्चे हृदय से, शिष्ट और सुंदर भाषा में, लिखा है। कहानियों की उत्तमता इसी से स्पष्ट है।

× × ×

कथा-कादंबिनी—प्रकाशक साहित्य-भवन, प्रयाग। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या १६६, कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, और मूल्य ॥।)

अयोध्यापुरी के दो विद्वान् साधु महात्मा श्रीबालकराम विनायक और श्रीबिंदु ब्रह्मचारी 'कथामुखी'-नामक एक मासिक पत्रिका संपादित तथा प्रकाशित करते हैं। यह पुस्तक उसी पत्रिका में प्रकाशित समस्त कहानियों में से चुनी हुई सात कहानियों का संग्रह है। कहानियाँ मनोरंजक और साथ-ही-साथ शिक्षा-प्रद हैं।

× × ×

स्वाधीनता के सिद्धांत—प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक भवन, १८१ हरिसन-रोड, कलकत्ता। अनुवादक, पं० हेमचंद्र जोशी बी० ए०। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या १७८, कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी और मूल्य १)

पुस्तक के मूल-लेखक, आयर्लैंड के गण्यमान्य देश-भक्त तथा आत्म-त्यागी वीर टेरेंस मैक्स्विनी, से प्रत्येक शिक्षित भारतीय पूर्णतया परिचित है। आपकी Principle of freedom-नामक पुस्तक का राष्ट्रीय जगत् में अच्छा सम्मान है। यह पुस्तक उसी पुस्तक का अनुवाद है। अनुवाद के साथ-ही-साथ महामना टेरेंस मैक्स्विनी का, २५ पृष्ठों में, संक्षिप्त जीवन-चरित्र तथा उनका चित्र दिया हुआ है। पुस्तक प्रत्येक राजनीति-प्रेमी हिंदी-भाषा-भाषी के अध्ययन और मनन की वस्तु है। राष्ट्रीय आंदोलन में काम करनेवालों के लिये तो ऐसी पुस्तकें पढ़ना, मनन करना तथा उनके आदेशों के अनुसार चलना परम आवश्यक और हितकर है।

× × ×

हिंदी-पद्य-रचना—प्रकाशक और लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी-मंदिर, प्रयाग। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या ५८, कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण और मूल्य ।)

आजकल हिंदी-भाषा-भाषी नागरिक नवयुवकों में कविता करने तथा कवि बनने की प्रेरणा दिन-पर-दिन, अधिकाधिक वेग से, बढ़ती जा रही है। काव्य-शास्त्र के इन विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। अपनी इस उपयोगिता की बदौलत यह प्रारंभ से ही हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा-परीक्षा के पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित है।

× × ×

हिंदी का संक्षिप्त इतिहास—प्रकाशक और लेखक, दोनों वही। आकार भी वही। पृष्ठ-संख्या १०४, कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी और मूल्य ।=)

हिंदी के इतिहास के संबंध में अभी तक पुस्तक-रूप में दो ही ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। यह तीसरी पुस्तक है। त्रिपाठीजी ही द्वारा लिखित 'कविता-कौमुदी' के प्रथम भाग में भी यह निकल चुकी है। अब यह, परिवर्द्धित रूप में, पुस्तकाकार प्रकाशित हुई है। पुस्तक अच्छी है।

× × ×

पथिक—प्रकाशक और लेखक, आकार-प्रकार, दोनों पूर्ववत्। पृष्ठ-संख्या १००, कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी और मूल्य ।।)

यह एक खंड-काव्य है। इसे प्रकाशित हुए अभी केवल ढाई वर्ष हुए हैं; फिर भी, इतने ही समय में, इस खंड-काव्य ने हिंदी-जगत् में अच्छा सम्मान प्राप्त कर लिया है। वर्णन-शैली इतनी सरस और ललित है कि पढ़ते-पढ़ते पाठक के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। हम इसे खड़ी बोली के गण्यमान्य काव्य-ग्रंथों में से एक समझते हैं। ऐसी ही उत्कृष्ट रचनाओं के बल पर साहित्य गौरवशाली बनता है। त्रिपाठीजी अपनी इस सुंदर कृति पर वास्तव में बधाई के पात्र हैं। क्या ही अच्छा होता, यदि इसके साथ ही इसका कथानक, संक्षिप्त रूप से, गद्य में भी दे दिया जाता। पुस्तक के अंत में हिंदी-लेखकों तथा कवियों की सम्मतियाँ भी दी हुई हैं, उनसे भी पुस्तक की उत्कृष्टता तथा उपादेयता का अच्छा परिचय मिलता है। मूल्य अधिक है।

× × ×

रहीम—प्रकाशक और संपादक, दोनों वही। आकार भी वही। पृष्ठ-संख्या ४८, कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण और मूल्य ≡)

यह हिंदी के सुप्रसिद्ध स्वर्गीय कवि श्री० रहीम का संक्षिप्त जीवन-परिचय तथा उनकी हिंदी-कविताओं का संग्रह है। इन रचनाओं के संबंध में क्या कहा जाय, जब कि उनकी उत्तमता से समस्त हिंदी-संसार पूर्णतया परिचित है।

× × ×

प्रेम-पुष्पांजलि—प्रकाशक, श्रीअनंत-कुमार जैन, वीर-मंदिर, आरा। संपादक, हिंदी-भूषण श्रीयुत बाबू शिवपूजनसहाय। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या ११६, कागज़ ऐंटिक, छपाई-सफ़ाई सुंदर और मूल्य १।)

नयनाभिराम पुस्तक-प्रकाशन में परम प्रसिद्ध, प्रेम-पुजारी स्वर्गीय श्रीकुमार देवेंद्रप्रसादजी ने इस पुस्तक का प्रथम संस्करण बड़ा सुंदर निकाला था। यह तीसरा संस्करण है। यद्यपि प्रथम संस्करण की सुंदरता तो अब इसमें नहीं है, तथापि अंतरंग-सौंदर्य पूर्ववत् है। संगृहीत कविताएँ बड़ी भाव-मयी और चित्ताकर्षक हैं। कविता-प्रेमियों को इसका संग्रह करना चाहिए।

× × ×

तिब्बत में तीन वर्ष—प्रकाशक, बैजनाथ केडिया, मालिक हिंदी-पुस्तक-एजंसी, १२६ हरिसन-रोड, कलकत्ता। अनुवादक, पंडित गुलज़ारीलाल चतुर्वेदी। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या ५३६, कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी और मूल्य २॥)

यह पुस्तक जापानी यात्री श्रीइकाई कावागुची की Three years in Tibleet-नामक पुस्तक का हिंदी-अनुवाद है। श्रीइकाई कावागुची महाशय ने बौद्ध-धर्म की शिक्षा-दीक्षा पूर्ण करने के निमित्त तिब्बत की यात्रा की थी। उन्होंने वहाँ, एतदर्थ, तीन वर्ष व्यतीत किए थे। इस पुस्तक में उन्होंने तिब्बत के पहाड़ी मार्गों, नदियों, झरनों और सोतों के प्राकृतिक दृश्यों का विशद वर्णन किया है; साथ ही, तिब्बत के रहन-सहन तथा प्रचलित रूढ़ियों पर भी प्रकाश डाला है। वर्णन बड़ा रोचक है—कहीं-कहीं पर तो कहानी का-सा मज़ा आता है। हिंदी-भाषा-भाषियों को इसका अवलोकन कर अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

× × ×

वज्राघात—प्रकाशक, पं० शिवनारायण मिश्र, प्रताप-पुस्तकालय, कानपुर। अनुवादक, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या ५२०, कागज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर और मूल्य २॥)

बँगला-साहित्य में जो स्थान बंकिम बाबू का है, मराठी-साहित्य में वही स्थान स्व० श्री पं० हरिनारायण आपटे का है। अतएव कहना नहीं होगा कि मराठी-साहित्य में आपकी कृतियों को बड़ा सम्मान प्राप्त है। आपने कई सामाजिक और ऐतिहासिक नाटक, प्रहसन, आख्यायिकाएँ तथा उपन्यासों की रचना की है। आपके उपन्यासों में 'वज्राघात' विशेष महत्त्व-पूर्ण कृति है। यह पुस्तक उसी 'वज्राघात'-नामक मराठी उपन्यास का हिंदी-अनुवाद है। अनुवादक महाशय श्रीयुत लक्ष्मीधरजी वाजपेयी मराठी-साहित्य का अच्छा ज्ञान रखते हैं। अतएव अनुवाद भी सुंदर हुआ है। भाषा सरल और रोचक है। आशा है, उपन्यास-प्रेमी पाठक इसे अवश्य अपनावेंगे।

× × ×

नवरस—प्रकाशक, मंत्री, आरा-नागरी-प्रचारिणी-सभा। लेखक, श्रीयुत गुलाबराय एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या ७८, कागज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर और मूल्य १।)

इसमें रसों का निर्णय, भावों की मुख्यता, रस-सामग्री, विभाव और अनुभाव, रसों की व्याख्या, इन पाँच विषयों पर, लेखक ने दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया है, और संस्कृत, ब्रज-भाषा तथा अँगरेज़ी के काव्य-साहित्य को समक्ष रखकर रसों पर प्रकाश डाला है। अपने कथन को हृदयंगम कराने के लिये यत्र-तत्र कविता के उदाहरण दिए हैं, और प्रमाण के लिये आवश्यकतानुसार फुट-नोट। खेद है, हिंदी में काव्य-विषयक ऐसे विवेचनात्मक ग्रंथों का नितांत अभाव है—जितने भी ग्रंथ हैं, उनमें विवेचक तथा जिज्ञासु पाठकों के लिये यथेष्ट सामग्री नहीं है। क्या ही अच्छा होता कि विवेचन कुछ और विस्तार-पूर्वक होता, फिर भी लेखक का प्रयत्न सराहनीय है। पुस्तक कवियों तथा कविता-प्रेमियों के विशेष काम की है। आशा है, कविता-प्रेमी पाठक इसका यथेष्ट आदर करेंगे। पुस्तक का मूल्य अधिक है। प्रूफ़-संबंधी अशुद्धियाँ खटकती हैं।

× × ×

देहरादून—प्रकाशक, श्रीगिरिधर पाठक, श्रीपद्मकोट, प्रयाग। लेखक, श्रीयुत पं० श्रीधर पाठक। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या ४०, कागज़ ऐंटिक, छपाई-सफ़ाई अच्छी और मूल्य।≈)

दस वर्ष हुए पाठकजी, डॉक्टरों की अनुमति से, स्वास्थ्य-लाभ करने देहरादून गए थे। वहाँ अपनी उसी रुग्णावस्था में पाठकजी ने जो कुछ देखा और अनुभव किया, उसी को वे पूर्वी भाषा में, बरवा-छंद में, लिखते गए। आपकी यह पुस्तक उसी समय की लिखी हुई है। एक तो बरवा-जैसा मधुर छंद, दूसरे पूर्वी-भाषा, तीसरे पाठकजी की वर्णन-शैली, तीनों के संयोग से पुस्तक सर्वतोभावेन सुंदर हो गई है। इसमें

तीन हाफ़टोन चित्र भी हैं । १ पाठकजी का है, और दो देहरादून-संबंधी । पूर्वी-भाषा के जो शब्द इतर प्रांतीय भाषा-भाषियों के लिये अप्रचलित तथा क्लिष्ट हैं, अंत में उनका एक संक्षिप्त कोष भी दे दिया गया है। पुस्तक कविता-प्रेमियों के पढ़ने और संग्रह करने-योग्य है ।

× × ×

स्वातंत्र्य-साधन या व्यापार के मूल-मंत्र—प्रकाशक, पं० यज्ञदत्त शर्मा, गोरख-टीला, काशी । लेखक, श्रीयुत डॉक्टर कृष्णदत्त एल्० सी० पी० एस्० । आकार २०×३० सोलह-पेजी । पृष्ठ-संख्या ५४, काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी और मूल्य ॥)

इसमें मनुष्य की पहचान, पूँजी, ज्ञान, साहस और धैर्य, आशा, बर्ताव और उपयोग पर छोटे-छोटे निबंध देकर व्यापार में सफलता प्राप्त कराने के उपाय बतलाए गए हैं। पुस्तक व्यावसायिक वृत्तिवालों के विशेष काम की है। मूल्य अधिक है ।

× × ×

अग्नि-परीक्षा या पन्हालगढ़ का क़िलेदार—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत कृष्णाजी-लक्ष्मण सोमण, केलकर का बाग़, केलकर का मकान, बेलगाम । अनुवादक, चित्रकार पं० गणेशराम मिश्र । आकार २०×३० सोलह-पेजी । पृष्ठ-संख्या ४८, काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण और मूल्य ।)

श्रीयुत कृष्णाजी-लक्ष्मण सोमण मराठी के नामी लेखक हैं। आपने काव्य तथा गद्य-ग्रंथों के सिवा कई ऐतिहासिक, सामाजिक तथा पौराणिक नाटकों की रचना की है। यों तो आपने कई अच्छे नाटकों का निर्माण किया है, पर आपका 'पन्हालगड़चा किल्लेदार'-नामक एक छोटा, दो अंकों का, नाटक मराठी-संसार में परम प्रशंसित हो चुका है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें कोई स्त्री-पात्र नहीं है। यह पुस्तक उसी का हिंदी-अनुवाद है। पहले यह कानपुर से प्रकाशित होनेवाले 'संसार'-नामक मासिक पत्र में क्रमशः प्रकाशित हो चुका है; अब यह उसका पुस्तकाकार तथा पद्य-परिवर्द्धित रूप है । नाटक बड़ा रोचक और रंग-मंच पर खेलने-योग्य है । अनुवाद भी अच्छा हुआ है ।

× × ×

महाकवि अकबर और उनका काव्य—प्रकाशक, श्रीयुत चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य, व्यवस्थापक ज्ञान-प्रकाश-मंदिर, पो० माछरा, मेरठ । लेखक, श्रीयुत उमराव-सिंह कारुणिक बी०ए० । आकार २२×२९ सोलह-पेजी । पृष्ठ-संख्या १००, काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण और मूल्य ।≋)

स्वर्गीय महाकवि अकबर उर्दू संसार के गण्यमान्य कवि थे। आपकी कविता बड़ी सारगर्भित तथा मनोरंजक होती थी। प्रस्तुत पुस्तक में आपकी लगभग ४०० शेरों का संग्रह किया गया है। यह संग्रह धर्म, पश्चिमीय सभ्यता, प्रेम, हास्य, सामयिक घटनाएँ तथा विभिन्न, इन ६ शीर्षकों में विभक्त है। प्रारंभ में उनका संक्षिप्त जीवन-चरित दिया हुआ है। संग्रह छोटा, परंतु अच्छा है। प्रूफ़-संबंधी अशुद्धियाँ इतनी अधिक हैं कि अलग शुद्धाशुद्ध-पत्र लगाना पड़ा है ।

× × ×

संग्राम (नाटक)—प्रकाशक, श्रीयुत बैजनाथ केडिया, अध्यक्ष हिंदी-पुस्तक-एजंसी, १२६ हरिसन रोड, कलकत्ता । लेखक, श्रीयुत प्रेमचंद । आकार २०×३० सोलह-पेजी । पृष्ठ संख्या २७०, काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर और मूल्य १॥)

बड़े संतोष और हर्ष की बात है कि हिंदी के प्रसिद्ध गल्प तथा उपन्यास-कार श्रीयुत प्रेमचंदजी नाट्य-क्षेत्र में भी अवतरित हो गए । आपकी नाटक-रूप में यह पहली ही कृति है। गल्प तथा उपन्यास लिखकर जो स्थान आपने हिंदी-संसार के सहृदय-समाज में प्राप्त किया था, आपकी यह कृति उसको और भी पुष्ट करेगी । नाटक अच्छा, शिक्षा-प्रद और रंग-मंच पर खेलने-योग्य है । प्रेमाश्रम की भाँति यह संग्राम भी २०वीं शताब्दी के आधुनिक भारत का ग्राम्य चित्र है। कई पात्रों का चरित्र बहुत अच्छा चित्रित हुआ है। राजेश्वरी को आदर्श पतिव्रता तथा सती सिद्ध करने में अतिशयोक्ति हो गई है। इसी प्रकार ज्ञानी का एक धूर्त साधु चेतनदास द्वारा, (बाल-बाल बचकर भी) एक पुत्र होने पर भी, पुत्र-प्राप्ति के लिये सतीत्व-भ्रष्ट होना अस्वाभाविक तथा अत्यंत मानसिक संताप-प्रद है। गीत-भाग नाटक के अनुरूप उच्च नहीं है। इन दो-एक बातों को छोड़कर अन्य बातों में नाटक सब प्रकार से सुंदर है। नाट्य-क्षेत्र में हम प्रेमचंदजी का स्वागत करते हैं। आशा है, इस क्षेत्र में भी आप पूर्णतया सफल होंगे ।

× × ×

२. पत्र-पत्रिकाएँ

अर्जुन—हिंदी-दैनिक। संपादक, श्रीयुत इंद्र वेदालंकार, विद्या-वाचस्पति। प्रकाशक, मास्टर वेंकटेशरमण, दिल्ली। आकार २२×२९ हाफ़-शीट, पृष्ठ-संख्या ४ और छपाई-सफ़ाई साधारण। मूल्य प्रति संख्या)॥ ; वार्षिक १५)

यह दैनिक पत्र, २ मास से, दिल्ली से प्रकाशित होने लगा है। इस समय न केवल दिल्ली का, बरन् पंजाब का भी, यही एक-मात्र राष्ट्रीय हिंदी-दैनिक है, और अच्छा कार्य कर रहा है। आर्यों की जन्म-भूमि आर्य-भूमि की पूर्ण स्वतंत्रता के लिये यत्न करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। हम हृदय से इसकी उन्नति की कामना रखते हैं।

× × ×

मातृभूमि—साप्ताहिक। संपादक और प्रकाशक, श्रीयुत विश्वंभरसहाय 'प्रेमी'। आकार १३½×१६½ हाफ़-शीट, पृष्ठ-संख्या १२, छपाई-सफ़ाई साधारण और वार्षिक मूल्य ४)

संपादन साधारणतया अच्छा होता है। सप्ताह-भर के ताज़े, देशी-विदेशी समाचारों के अतिरिक्त गंभीर, विचार-पूर्ण छोटे-छोटे लेख तथा कविताएँ भी रहती हैं।

× × ×

वंदेमातरम्—उर्दू-दैनिक। संपादक, श्रीयुत मेलाराम वफ़ा। प्रकाशक, वंदेमातरम्-स्टीम-प्रेस, लाहौर। आकार २२×२९ चार-पेजी, पृष्ठ-संख्या १२, छपाई साधारणतया अच्छी और मूल्य १८) वार्षिक।

पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय ने अमेरिका से लौट-कर लाहौर से अपने संपादकत्व में इसका प्रकाशन प्रारंभ किया था। जन्म लेते ही इसने पंजाब में वास्तविक जीवन का संचार कर दिया था। 'वंदेमातरम्' ने राष्ट्रीय आंदोलन का कितना कार्य किया है, इसके लिये यही प्रमाण है कि अब तक इसके चार भूतपूर्व संपादक जेल-प्रवासी हो चुके हैं। इसका संपादन बहुत अच्छा होता है। उर्दू-भाषा से परिचित पाठकों के लिये इसका पढ़ना बड़ा लाभ-दायक है।

× × ×

जन्मभूमि—अँगरेज़ी साप्ताहिक पत्र। संपादक, श्रीयुत बी० पत्ताभी सीतारामैया। प्रकाशक, एम्० कृष्णराव, कृष्ण-स्वदेशी-प्रेस, मछलीपट्टम। आकार १३½×१६½ हाफ़-शीट, पृष्ठ-संख्या १२, छपाई-सफ़ाई सुंदर। मूल्य ५) वार्षिक।

यह पत्र राष्ट्रीयता का पक्का समर्थक है। अग्र लेख तथा संपादकीय टिप्पणियाँ बड़ी सारगर्भित तथा तर्क पूर्ण रहती हैं। अँगरेज़ी भाषा का ज्ञान रखनेवाले पाठक इस-से लाभ उठा सकते हैं।

× × ×

शांति-निकेतन—बँगला मासिक पत्र। संपादक, श्रीविभूतिभूषण गुप्त। प्रकाशक, शांति-निकेतन-आश्रम, शांति-निकेतन, जिला बीरभूमि। आकार २०×३० अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ३२, छपाई-सफ़ाई अच्छी और वार्षिक मूल्य २)

इसके प्रवर्तक संसार-मान्य कवि-श्रेष्ठ श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर हैं। अतएव इसके प्रायः समस्त लेख रवींद्र बाबू के आध्यात्मिक, सामाजिक तथा साहित्यिक विचारों के अनुकूल रहते हैं। रवींद्र बाबू स्वतः भी कभी-कभी कोई लेख अथवा कविता लिखते रहते हैं। लेख तथा कविताएँ बड़ी उत्कृष्ट, गंभीर और सारगर्भित होती हैं। बँगला भाषा का ज्ञान रखनेवाले पाठकों को इसका अवलोकन कर अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

× × ×

आर्य-महिला—त्रैमासिक। आर्य-महिला-हितकारिणी महापरिषद् की संपादकीय समिति द्वारा संपादित होकर महा-मंडल-भवन, जगत्गंज, बनारस से प्रकाशित होती है। उक्त परिषद् के सभ्यों को मुफ़्त। अन्य ग्राहकों से वार्षिक मूल्य ६) लिया जाता है। १॥) प्रति अंक मूल्य बहुत अधिक है।

पाँच वर्ष से निकल रही यह पत्रिका क्रमशः उन्नत होती जाती है। पाँचवें भाग की तीसरी संख्या हमारे सामने है। टाइटिल पर सिंहवाहिनी भगवती का तिरंगा भव्य चित्र बहुत सुंदर है। भीतर २ सादे और १ तिरंगा बेहुला का चित्र और है। कुल बीस लेख हैं। पत्रिका विशेष-कर स्त्रियों के लिये है, इसलिये इसकी भाषा और भी सरल होनी चाहिए। हर संख्या में ९६ पृष्ठ रहते हैं। बहुल प्रचार के लिये मूल्य घटाना चाहिए। लेख सब उपयोगी देख पड़ते हैं।



साहित्य-सूचना

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "पत्रांजलि", पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी द्वारा अनुवादित। पति-पत्नी के शिक्षा-प्रद पत्रों का संग्रह। कवर पर एक बहु-रंगी सुंदर चित्र। द्वितीय संस्करण। मूल्य ॥)

(२) "सम्राट्-चंद्रगुप्त", लक्ष्मण-संपादक श्रीबाल-मुकुंद वाजपेयी-लिखित। मूल्य ।)

(३) "पतिभक्ति अर्थात् सती सुकन्या", बाबू श्यामाचरण-लिखित पौराणिक नाटक। मूल्य ।॥)

(४) "मेघदूत-विमर्श", पं० रामदहिन मिश्र-लिखित। कालिदास-कृत मेघदूत-काव्य की समालोचना और भावा-नुवाद। मूल्य २॥)

(५) "परशुराम", 'श्रीविश्व'-लिखित एक पौराणिक नाटक। मूल्य ।॥)

(६) श्री "कुल-लक्ष्मी", पं० रामेश्वरप्रसाद पांडेय द्वारा अनुवादित। मूल्य ॥)

(७) "धर्मोजय", बाबू कुंजीलाल जैन-लिखित नाटक। मूल्य ।॥)

(८) 'वैज्ञानिक जीवनी", श्रीयुत पंचानन वियोगी-कृत बँगला-पुस्तक का श्रीरामेश्वरप्रसाद पांडेय-कृत अनुवाद। मूल्य १)

(९) "राजा शिवि", श्रीयुत बलदेवप्रसाद खरे-लिखित सचित्र पौराणिक नाटक। मूल्य १)

(१०) "भारत का धार्मिक इतिहास", पं० शिव-शंकर मिश्र-लिखित। मूल्य ३), ३॥)

(११) "कंजूस की खोपड़ी", श्रीगोविंदवल्लभ पंत-लिखित प्रहसन। मूल्य ॥)

(१२) "देश की बात", पं० देवनारायण द्विवेदी-लिखित। मूल्य २॥)

(१३) "शैतानी जाल", पं० रामनाथ पांडेय-लिखित सचित्र जासूसी उपन्यास। मूल्य १॥), २)

(१४) "भारत में कृषि-सुधार", पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०-लिखित। मूल्य १॥)

(१५) "प्रेम", श्रीअश्विनीकुमार दत्त की लिखी बँगला-पुस्तक का श्रीपन्नालाल जैन-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य ॥)

(१६) "श्रीबदरी-केदार-यात्रा", पं० बलरामजी दुबे-लिखित। मूल्य ।)

(१७) "जासूस की झोली", पं० कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय द्वारा संपादित। मूल्य १)

(१८) "व्यायाम-दर्पण", पं० देवकीनंदन तिवारी-लिखित। मूल्य ॥)

(१९) "सफ़ेद घोड़ा", श्रीयुत "धवन" द्वारा अनु-वादित। मूल्य ।)

(२०) "रूप का बाज़ार", बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री-लिखित। मूल्य ।)

(२१) "भारत की देवियाँ", बाबू रामचंद्र वर्मा-लिखित। मूल्य ।)



विविध विषय

१. गंगा-पुरस्कार के नियम

हमने गत संख्या में सूचित किया था कि गंगा-पुस्तक-माला के संचालक अपने यहाँ से प्रति वर्ष प्रकाशित होने-वाली ४० नई पुस्तकों पर जो पुरस्कार दिया करेंगे, उसके नियम हम आगामी संख्या में प्रकाशित करेंगे। तदनुसार उन नियमों की पांडुलिपि नीचे दी जाती है। हिंदी-संसार के गण्यमान्य विद्वान् लेखकों तथा पत्र-संपादकों से प्रार्थना है कि वे इन नियमों के संबंध में अपनी-अपनी सम्मतियाँ अवश्य भेजने या प्रकाशित करने की कृपा करें—

(१) गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय से प्रति वर्ष प्रकाशित होनेवाली ४० नई पुस्तकों में से सर्व-श्रेष्ठ पुस्तक के लेखक को १५००) का यह पुरस्कार और एक स्वर्ण-पदक दिया जायगा।

(२) जिस पुस्तक में मौलिकता का अधिक अंश होगा, जो इस देश की जनता के लिये अधिक उपयोगी होगी, जो भाषा और विषय की दृष्टि से स्थायी गौरव रखती होगी, उसको अधिक महत्त्व दिया जायगा।

(३) निर्णय एक समिति करेगी, जिसमें गंगा-पुस्तकमाला के संपादक के अतिरिक्त चार लब्ध-प्रतिष्ठ हिंदी के विद्वान् रहेंगे; किंतु संपादक अपनी सम्मति का उपयोग उसी दशा में करेंगे, जब कि किन्हीं दो या चार पुस्तकों के लिये बराबर-बराबर सम्मतियाँ आवेंगी। तात्पर्य यह है कि निर्णय बहु-सम्मति से किया जायगा।

(४) निर्णायकों के नाम हिंदी-संपादकों की बहु-सम्मति से चुने जायँगे।

(५) यदि सर्व-श्रेष्ठ चुनी जानेवाली पुस्तक के लेखक की दैवात् मृत्यु हो जाय (ईश्वर न करे, ऐसा हो) तो यह पुरस्कार (पदक नहीं) उसके उत्तराधिकारी को दिया जायगा।

(६) पारितोषिक का प्रथम वर्ष तुलसी संवत् ३०० होगा।

(७) जो पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं, वे भी प्रथम वर्ष के निर्णय में शामिल कर ली जायँगी।

(८) निर्णायकों की सम्मति या सम्मतियाँ हिंदी-भाषा-भाषियों की जानकारी के लिये माधुरी में प्रकाशित की जायँगी।

(९) जो पुस्तकें चुनाव में १, २, ३ नंबर की समझी जायँगी, उनमें से प्रथम नंबरवाली पुस्तक को पुरस्कार दिया जायगा। द्वितीय, तृतीय नंबर की पुस्तकें आगामी चुनाव में भी रक्खी जा सकेंगी।

(१०) इन नियमों को घटाने-बढ़ाने का अधिकार गंगा-पुस्तकमाला के संचालकों को रहेगा।

× × ×

२. माधुरी की तुलसी-संख्या

श्रावण-शुक्ल सप्तमी, संवत् १९८० वि०, तदनुसार १८ अगस्त, सन् १९२३ ई० को महाकवि गोस्वामी तुलसीदास-जी का स्वर्गारोहण हुए पूरे तीन सौ वर्ष हो जायँगे। राष्ट्र-भाषा हिंदी पर गोस्वामी तुलसीदासजी का कितना

ऋण है, यह हिंदी-संसार से छिपा नहीं है। उनके रामचरित-मानस को न केवल भारतवर्ष में, वरन् भारतीय सभ्यता से परिचित प्रत्येक सभ्य और उन्नत देश में कितना सम्मान प्राप्त है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। लोक-प्रियता की दृष्टि से भारतवर्ष में रामचरित-मानस के समान सम्मान-प्राप्त कोई ग्रंथ है ही नहीं। गोस्वामीजी की कृतियों को इतना महत्त्व देते हुए भी भारतीय शिक्षित-समाज उनकी स्मृति में क्या करता है? यह अभागा भारत ही है, जहाँ ऐसी महान् आत्माओं की स्मृति में न कहीं कोई महोत्सव होता है, न उनकी स्मृति-सूचक और कोई विशेष कार्य। सभ्य और उन्नत राष्ट्रों में ऐसे महाकवियों की जयंतियाँ तथा मृत्यु-स्मृति-दिवस त्यौहार अथवा पर्व का रूप धारण कर लेते हैं। सहस्रों की संख्या में, टोलियाँ बनाकर, बड़े उल्लास के साथ लोग उनकी जन्म-भूमि के दर्शनार्थ जाते हैं, वहाँ की धूल अपने मस्तकों में लगाकर अपने को सौभाग्य-शाली समझते हैं। कहीं नाटक, सरकस और बायस्कोप के खेल होते हैं, तो कहीं सभाओं एवं संस्थाओं के वार्षिक उत्सव। कहीं ग्रंथ-मालाओं को जन्म दिया जाता है, तो कहीं पत्र-पत्रिकाओं का प्रादुर्भाव होता है। वास्तव में जो देश अपने महापुरुषों की स्मृति में, स्मारक-स्वरूप, इतना भी नहीं कर सकता, वह सभ्य-संसार के समक्ष मस्तक उन्नत कैसे रख सकता है? संतोष की बात है कि अब इन बातों की ओर भारतीय शिक्षित-समाज का यत्किंचित् ध्यान आकृष्ट होने लगा है। अस्तु।

गत वर्ष हमने तुलसी-जयंती के उपलक्ष्य में 'माधुरी' को जन्म दिया था। इस वर्ष काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा गोस्वामीजी के बारहों ग्रंथ दो जिल्दों में प्रकाशित करेगी; साथ ही एक तीसरा ग्रंथ भी निकालेगी, जिसमें हिंदी-संसार के चुने हुए विद्वान् गोस्वामीजी की गुण-गरिमा पर अपने-अपने विचार प्रकट करेंगे। हम भी इस अवसर के उपलक्ष्य में 'माधुरी' का एक विशेषांक 'तुलसी-संख्या' के नाम से प्रकाशित करने का उद्योग कर रहे हैं। उसी संख्या से 'माधुरी' नवीन वर्ष में पदार्पण करेगी। सो सब प्रकार से वह संख्या महत्त्व-पूर्ण होगी। उसमें प्रकाशनार्थ लेख भेजने के लिये हमने जिन विद्वान् लेखकों से प्रार्थना की है, आशा है, वे अपने-अपने वचन के अनुसार निश्चित तिथि आषाढ़-शुक्ल १ तक अपने लेख अवश्य भेजने की कृपा करेंगे। कारण, हमारी सफलता उनकी ही महती कृपा पर अवलंबित है।

× × ×

३. साहित्य में अनुवाद

कुछ दिनों से हिंदी-साहित्य में मौलिकता पर बड़ा ज़ोर दिया जाने लगा है, यह प्रसन्नता की बात है। बिना मौलिकता की सृष्टि हुए साहित्य गौरव-शाली नहीं बन सकता; साहित्य को सर्वांग-पूर्ण उन्नत बनाने के लिये यह परम आवश्यक है कि मौलिकता की ओर पग बढ़ाया जाय—मौलिक कृतियों द्वारा साहित्य का कलेवर पूर्ण संपन्न बना दिया जाय। यह मानते हुए भी यह मानना ही पड़ेगा कि साहित्य में अनुवाद का जो स्थान है, वह चिर-स्थायी रहेगा। कुछ लोगों की यह धारणा है कि साहित्य में अनुवाद का कोई स्थान ही नहीं है। हिंदी-संसार में तो कुछ दिनों से यह प्रथा-सी चल पड़ी है कि 'मौलिक लेखक' कहलानेवाले लेखक-गण अनुवादकों की व्याज-स्तुतियाँ करते हैं, उनका मज़ाक उड़ाते हैं, और उनका नाम लेते हुए ऐसे शब्दों का व्यवहार करते हैं, जो शिष्टता के नाते, सहृदयता के नाते, सर्वथा अनुचित हैं। कहा जाता है—"अजी, हिंदी में लेखक हैं ही कहाँ, सब-के-सब 'पेटू' अनुवादक हैं।" कोई महाशय लिखते हैं—"हिंदी में है ही क्या, निरे अनुवादित ग्रंथ भरे पड़े हैं। अनुवादित ग्रंथों को निकाल दीजिए, हिंदी में कुछ नहीं रह जायगा।" खेद है, इन बातों को चुप-चाप सुन लिया जाता है; कोई चूँ तक नहीं करता।

किसी भी भाषा—वैदिक भाषा तथा देव-वाणी संस्कृत को छोड़कर—का साहित्य इस बात का गर्व नहीं कर सकता कि वह सर्वथा मौलिक है, उसकी श्री-वृद्धि में अनुवाद का कुछ हाथ ही नहीं है। विज्ञान के इस युग ने अखिल विश्व के राष्ट्रों के वातावरण को एक ही धागे में बाँध दिया है। अतएव ऐसा कोई देश नहीं है, जो अपने निकटवर्ती राष्ट्र से, किसी-न-किसी रूप में, संबंध न रखता हो। इस युग की यही एक विशेषता है कि अपने निकटवर्ती राष्ट्रों से संबंध रखना अनिवार्य हो गया है। अतएव यह असंभव-प्राय है कि कोई राष्ट्र इतर राष्ट्रों के साहित्य की छाया के प्रभाव से अछूता रह सके। इसके सिवा साहित्य के कुछ विषय भी तो ऐसे हैं, जिनमें इतर राष्ट्रीय साहित्य का साहाय्य

अपेक्षित है। अतएव अब प्रश्न यह है कि अनुवाद-प्रणाली का आश्रय लिए बिना क्या कोई साहित्य संपन्न हो भी सकता है ?

अनुवाद-प्रणाली भी एक कला है। दूसरे व्यक्ति के भावों को यथातथ्य समझकर, उन्हें अपनी भाषा का रूप देकर प्रकट करना साधारण बात नहीं है। कुछ लोग अनुवादक को 'दुभाषिया' मानते हैं; परंतु इस शब्द से अनुवादक का भाव व्यक्त नहीं होता। 'दुभाषिया' साधारण बात-चीत को ही अपनी भाषा के शब्दों में प्रकट करता है; परंतु अनुवादक की पैठ साधारण से लेकर असाधारण तक रहती है, कठिन-से-कठिन भावों को समझना, और वह भी उसी रूप में, जिसमें उनका उपयोग हुआ है, एवं उन्हें अपनी भाषा के उचित तथा उन्हीं भावों के लिये उपयुक्त शब्दों में व्यक्त करना अनुवादक का काम है। अतएव अनुवादक का पद 'दुभाषिए' की श्रेणी में तो कभी आ ही नहीं सकता।

अच्छे अनुवादकों का पद लेखकों के पद से किसी प्रकार निम्न नहीं हो सकता। लेखक का पथ स्वतंत्र होता है और अनुवादक का शृंखलित और परिमित। लेखक का क्षेत्र विशाल है और अनुवादक का संकीर्ण। लेखक की अपेक्षा अनुवादक के आगे कठिनाइयाँ अधिक रहा करती हैं। अंतर केवल इतना है कि लेखक की बातों में विभिन्न व्यक्तियों के विचारों के संकलन के साथ कुछ अपना भी रहता है, परंतु अनुवादक की बातों और विचारों में अपने भाव नहीं रहते, अपने विचार नहीं रहते। किंतु उनमें मूल लेखक के मूल भावों के प्रकाशन की अद्भुत शक्ति रहती है। और, इस शक्ति का महत्त्व साहित्य-निर्माण में उपेक्षणीय नहीं हो सकता।

यदि अनुवादक अपने पद और उत्तरदायित्व का ठीक-ठीक अनुभव करें, तो उनका काम भी लेखकों की अपेक्षा कम आदरणीय नहीं हो सकता। अनुवादक लेखक का ऋणी नहीं होता; परंतु यह मानना पड़ेगा कि लेखक-समुदाय अनुवादक-समुदाय का थोड़ा-बहुत ऋणी अवश्य होता है। हिंदी-अनुवादकों ने अपना महत्त्व नहीं समझा है; न अपने उत्तरदायित्व का उन्होंने ठीक-ठीक अनुभव ही किया है। यदि वे अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करते हुए प्रशंसनीय काम करते होते, तो उनका भी उतना ही मान और आदर होता, जितना लेखकों का। खेद है, हिंदी-संसार में ऐसे भी अनुवादक हैं, जिन्होंने अनुवाद-कार्य को गंदा कर रक्खा है। उन्होंने जो गंदगी फैलाई है, उसी का यह परिणाम है कि अनुवादक-मात्र के प्रति साहित्य-संसार की अश्रद्धा हो गई है, और होती जाती है।

कहा जाता है कि हिंदी का उपन्यास और नाटक-साहित्य बँगला-भाषा के अनुवाद-ग्रंथों से पूर्ण है। हम इस बात को मानते हैं, परंतु साथ-ही-साथ यह भी कहेंगे कि हिंदी का साहित्य इस योग्य था ही कि उसमें उन अनुवाद-ग्रंथों को स्थान मिला। जब उसमें कुछ नहीं था, तब उसमें कुछ किया गया; यदि उसमें इतना होता कि जो कुछ किया गया है, उसका कुछ महत्त्व ही न होता, तो उसमें इस महत्त्व-हीन कहलानेवाले कार्य की आवश्यकता ही न पड़ती। लेखकगण चाहे इस कार्य को कुछ भी महत्त्व न दें, परंतु हम तो यह सहर्ष कहने के लिये प्रस्तुत हैं कि कुछ अनुवादकों ने तो वह काम किया है, जो कम-से-कम तब तक तो महत्त्व-पूर्ण ही रहेगा, जब तक हिंदी में रवींद्र और बंकिम, प्रभात और शरत्, द्विजेंद्र और गिरीश के संस्करण अवतरित नहीं होते। तब तक के लिये तो उन्होंने हिंदी-संसार के समक्ष एक पथ बना दिया है। वह पथ कहाँ तक उचित है, यह भविष्य ही बतलावेगा।

× × ×

४. पं० पद्मसिंहजी शर्मा

पंडितजी का निवास-स्थान नायकनगला, पोस्ट चाँदपुर, ज़िला बिजनौर है। अवस्था ५० के लगभग है। घर के ज़मींदार हैं। आप विद्या-व्यसन में लगे रहते हैं, इससे ज़मींदारी का काम छोटे भाई पर छोड़ रक्खा है। आपके दो पुत्र हैं। बड़े पुत्र काव्य-तीर्थ हैं। पंडितजी बड़े उदार, हँसमुख, समालोचक और काव्य-मर्मज्ञ हैं। फ़ारसी, संस्कृत, उर्दू और हिंदी के आप प्रकांड पंडित हैं। आपने ज्वालापुर के महाविद्यालय में बहुत दिन तक अवैतनिक कार्य किया है। आप ही उसके संस्थापक हैं। आपने 'भारतोदय' पत्र का संपादन भी बहुत दिन तक बड़ी योग्यता से किया है। कुछ दिन आप काशी के ज्ञान-मंडल में भी रह चुके हैं। आपके संजीवन-भाष्य ने बड़ी ख्याति पाई है। इस बार लगभग ५०-६० पुस्तकों में आपका उक्त भाष्य ही श्रेष्ठ समझा गया, और उसके लिये आपको



पं० पद्मसिंहजी शर्मा

१२००) का मंगलाप्रसाद-पारितोषिक मिला । आपके लेखों का संग्रह भी शीघ्र छपनेवाला है । वह कोई १५०० पृष्ठ का होगा । पंडितजी मुरादाबाद में होनेवाले प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति हो चुके हैं। आपका भाषण बड़े मार्के का था, और उससे आपके विस्तृत अध्ययन का परिचय प्राप्त होता है । आशा है, शीघ्र ही अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का आसन भी आप सुशोभित करेंगे। आपका विस्तृत जीवन-चरित अगले साल हम प्रकाशित करना चाहते हैं।

× × ×

५. आत्म-रक्षा के लिये संगठन

हिंदुओं और मुसलमानों में इस समय परस्पर एक दूसरे का विश्वास नहीं है। इतना ही नहीं, यह वैमनस्य, यह घातक महापातक मन-मैली, दिन-दिन दायरा बढ़ाती दूर-दूर फैलती जाती है। इसका असर मुसलमानी रियासतों तक में फैल चला है। यह स्थिति इन दोनों महा जातियों के लिये अत्यंत हानिकारक है । पंजाब के प्रतिष्ठित पत्रों में नित्य ही मुसलमानों की छेड़-छाड़ और ज़बरदस्तियाँ पढ़ने को मिलती हैं । युक्त-प्रांत में भी चँदौसी आदि स्थानों में मार-पीट हुई है । मुलतान, लाहौर, दिल्ली, अमृतसर और सीमा-प्रांत का तो कुछ कहना ही नहीं है । यह सच है कि सर्वत्र हिंदू निर्दोष ही न ठहरेंगे, उत्तेजना की दशा में उनका भी अनुचित काम कर बैठना कुछ आश्चर्य नहीं है । फिर भी, यह कहना ही पड़ता है कि अधिकांश स्थलों में मुसलमान-भाइयों ने ही लड़ाई छेड़कर डेढ़-दो सौ बरस पहले की अपनी प्रवृत्ति का परिचय दिया है । ख़ैर, दोष किसी का हो, सवाल यह है कि हिंदुओं के लिये इस समय आत्म-रक्षा सबसे पहला कर्तव्य है या नहीं ? समझा-बुझाकर मुसलमानों को—ख़ासकर जाहिलों और मौल्वियों को—शांत करना असंभव ही देख पड़ता है। उनकी यह ज़बरदस्ती तब तक दूर न होगी, जब तक उन्हें यह विश्वास न हो जायगा कि हिंदू भी अपनी जाति और धर्म के लिये प्राण दे देना जानते हैं, और उनके मन में अपनी रक्षा करने की इच्छा ही नहीं, हाथों में शक्ति भी है । इस कार्य के लिये, अपनी रक्षा और उन्नति के लिये, प्रबल हिंदू-संगठन की बड़ी आवश्यकता है । यह एक दिन का प्रश्न नहीं है, ज़िंदगी-भर का—पीढ़ी-दर पीढ़ी का—सवाल है;

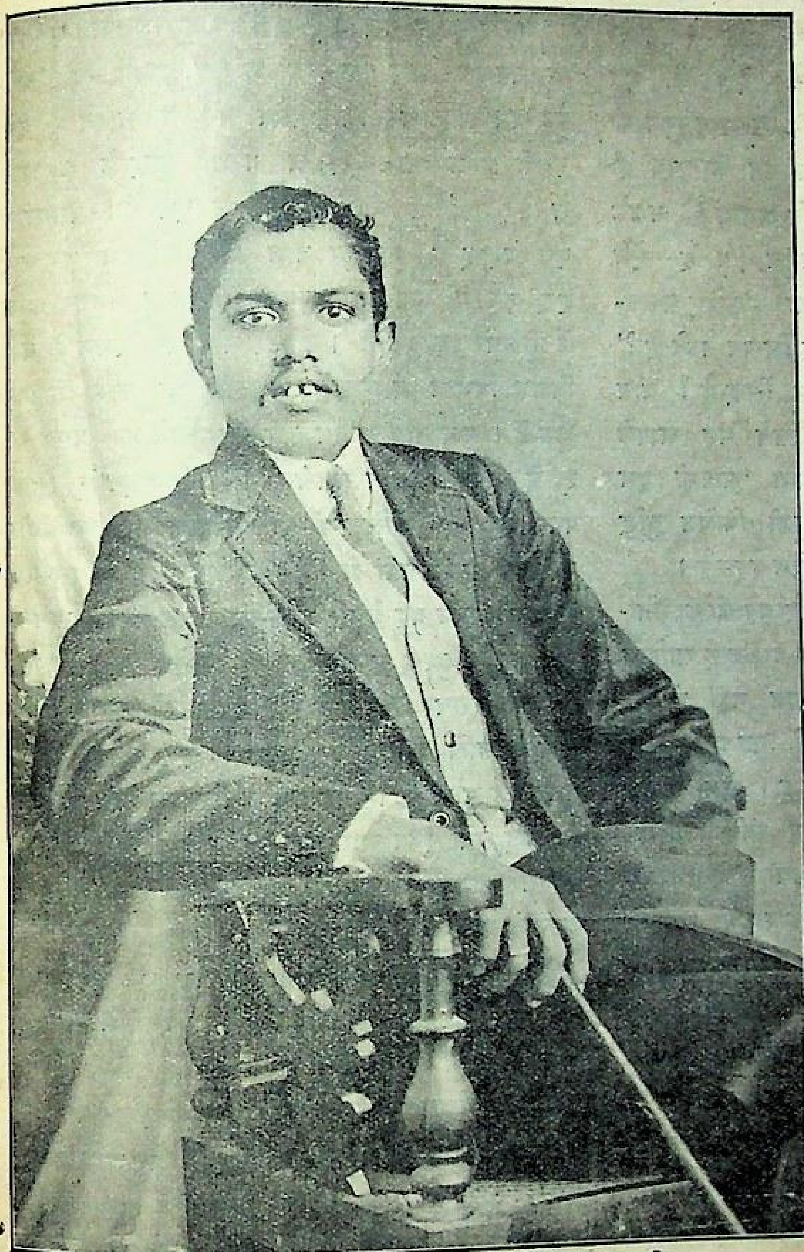


राजा रामपालसिंह



श्रीमान् विष्णुनारायण भार्गव

जीवन-मरण की समस्या है ! इस कारण बहुत शीघ्र, संबसे पहले, सौ काम छोड़कर, नेताओं को और जनता को भी यह काम अपने हाथ में ले लेना चाहिए। हम किसी पर आक्रमण करने के लिये यह उद्योग नहीं करते, केवल आत्म-रक्षा के लिये, देश-जाति-धर्म की सेवा के लिये प्रस्तुत होते हैं । साधारणतः हरएक प्रांत के ज़िलों और



राय साहब पं० त्रिलोकनाथ भार्गव, ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट

बड़े शहरों में स्थानीय प्रतिष्ठित प्रजा-प्रिय सज्जनों को मिलकर एक हिंदू-सभा स्थापित करनी चाहिए। वे सभाएँ हरएक गाँव में ऐसी ही एक सभा (क्लब के तौर पर) का संगठन करें। ये सब सभाएँ एक अखिल भारतवर्षीय हिंदू-महासभा के द्वारा संचालित हों। इन क्लबों में युवकों और बालकों को व्यायाम की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी-दिलाई जाय। धर्म के सत्य, दया, उदारता, गुरु-भक्ति, ईश्वर-विश्वास आदि सर्वमान्य सिद्धांतों पर समय-समय पर व्याख्यान दिए जायँ। एक-एक पुस्तकालय भी रहे। उसमें पत्र और पुस्तकें रहें। हर सभा के, नित्य सम्मिलन के अलावा, साप्ताहिक, मासिक और वार्षिक अधिवेशन हों। वे युवक स्वयंसेवकों की तरह विपन्न भाइयों की सहायता और रक्षा के लिये सदा प्रस्तुत रहें। इनका ख़र्चा चंदे से चल सकता है।

हर्ष का विषय है कि देश में हिंदू-सभाएँ स्थापित हो रही हैं। लखनऊ में भी हिंदू-सभा का पुनर्जन्म हो गया है, अस्थायी पदाधिकारियों में सभापति राजा रामपालसिंहजी, उपसभापति पं० विष्णुनारायणजी भार्गव और मंत्री पं० त्रिलोकनाथजी भार्गव का नाम विशेष उल्लेख-योग्य है। आशा है, ये पदाधिकारीगण स्थायी रूप से निर्वाचित होकर कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हो जायँगे, और कुछ ऐसा कार्य कर दिखावेंगे जो संयुक्त-प्रांत में अपना एक विशेष स्थान रख सके। पहले भी, कुछ दिन पूर्व, हिंदू-सभा का जन्म हुआ था, किंतु उससे कुछ विशेष कार्य नहीं हुआ। आशा है, आधुनिक कार्य-कर्तागण प्रबल तल्लीनता के साथ कार्य करेंगे।

× × ×

६. ज़हरीली समालोचना का साहित्य पर घातक प्रभाव

इस युग में समालोचना का एक ऐसा ढंग निकला है, जिसके बुरे प्रभाव का परिणाम कदापि अभिनंदनीय नहीं है। किसी लेखक की कृति पर आलो-

चना करने का अधिकार सबको होता है, पर उस पर फ़बतियाँ उड़ाने का, व्यंग्य करने का, उसे बनाने का अधिकार किसी को नहीं है। हम जब देखते हैं, एक नव्य समालोचक किसी वयोवृद्ध, ज्ञान-ज्येष्ठ, भव्य पुरुष की रचना को सामने रखकर उसकी आलोचना के साथ ही लेखक की योग्यता पर भी कटाक्ष करने लगता है, उसके दोष को—मान लिया कि वह सचमुच दोष है—ऐसे विष-बुझे शब्दों में व्यक्त करता है, यथा—'कहिए सकल-कला-कोविदजी, क्या आप भंग पीकर लिखने बैठते हैं?' या 'अमुक प्रयोग किस व्याकरण से सिद्ध है? जान पड़ता है, अपनी योग्यता दिखाने के लिये यह आपके दिमाग़ की ख़ास उपज है!' अथवा 'आपकी इस विद्वत्ता पर कालिदास कुढ़ते होंगे, आपकी विचित्र बुद्धि की बलिहारी!', तब सचमुच भारी क्षोभ होता है।

ऐसे-ऐसे फ़िक़रे कसने से कुछ तद्रूप रुचिवालों का मनो-रंजन भले ही कुछ काल के लिये हो जाता हो, कोई साहित्य का उपकार या समालोचना का सम्मान नहीं होता। ऐसी भाषा में लिखी गई आलोचनाओं का प्रचार बंद करना संपादक-मंडली के ही हाथ में है। ऐसी उद्धत समालोचना को यदि संपादक-समाज न स्वीकृत करेगा, तो उनका लिखा जाना भी बंद हो जायगा। ऐसी समा-लोचनाओं का कुछ मूल्य नहीं है—उन्हें स्थायी साहित्य में स्थान नहीं मिल सकता। समालोचक शिष्ट भाषा में त्रुटियों का उल्लेख करे; अधिक योग्यता दिखानी हो, तो उनका उद्धरण कर दिखावे। ऐसी समालोचना लेखक और समालोचक में परस्पर सौहार्द का कारण हो सकती है। किंतु बनानेवाली भाषा में यथार्थ दोष दिखलाने पर भी लेखक के मन में क्रोध और कष्ट होता है, पक्षपात और बेजा हठ आ दबाता है। बस, दोनों में मसी-युद्ध छिड़ जाता है; इधर गंदे उत्तर-प्रत्युत्तरों से पत्रों के कालम कलुषित होते हैं, और उधर दोनों के हृदय ईर्षा-द्वेष की कालिमा से काले पड़ जाते हैं। समालोचक को सदा द्वेष, पक्षपात, अशिष्टता, असहिष्णुता आदि से बचना चाहिए। उसका ध्येय यह हो—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्;
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।

× × ×

७. भारतीयों की प्रतिभा

हमारे कृपालु गोरे भाई हमें चाहे जितना अयोग्य, अनुभव-शून्य और प्रतिभा-रहित कहें, इसमें संदेह नहीं कि अनेकानेक असुविधाएँ रहने पर भी भारत में ऐसे पुरुषों का अभाव नहीं है, जो अपनी बुद्धि के चमत्कार से विदेशी पंडितों को चक्कर में डाल देते हैं। बंगाल में एक विद्वान् हैं, जिनका नाम श्रीकृष्णप्रसन्न भट्टाचार्य एम्०एन्-सी० है। आप हुगली-कॉलेज में भौतिक शास्त्र के प्रोफ़ेसर रह चुके हैं। डॉक्टर सी० वी० रमन के यहाँ बिजली-विभाग में रिसर्च असिस्टेंट का काम भी कर चुके हैं। आप वायु से बिजली निकालने का प्रयत्न कर रहे हैं। निवास-स्थान सतसंग, पोस्ट हिमाइतपुर, ज़िला पबना है। डॉ० पालित की प्रयोग-शाला में उन्हें प्रयोग करने की आज्ञा नहीं दी गई। दरिद्रता तो सबसे बड़ा विघ्न है। अब वह बेचारे ऊपर-लिखे पते पर, अपने ही गाँव में, साधारण सामग्री से ही प्रयोग कर रहे हैं। सफलता बराबर मिल रही है। योरप होता, तो बिना माँगे ही लाखों की वर्षा इस प्रयोग के ऊपर कर दी जाती। मगर यह भारत है। यहाँ अर्थ के लिये अपील करने पर भी कोई धनी पुरुष आगे बढ़ने का साहस नहीं करेगा। प्रोफ़ेसर महाशय ने धन की अपील की है। सहायता ऊपर के पते पर ही भेजी जा सकती है।

दूसरी जगह स्वाभाविक प्रतिभा या पूर्व संस्कार का चमत्कार नज़र आता है। मदरास के मदनपोल-स्थान में एक तेरह वर्ष का बालक कृष्णमूर्ति है, जिसे गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र सब कंठाग्र है। वह वेदांत-विषय पर बड़े-बड़े विद्वानों के आगे व्याख्यान देता है। लोग उसकी धारणा-शक्ति और बुद्धि देखकर चकराते हैं। बालक की तर्क-शक्ति भी अपूर्व है। मधुर-भाषी, नम्र और सुशील भी है। इसके चार भाई हैं। पिता का नाम गोविंदराजू है, और वह एक प्रसिद्ध पंडित हैं।

लाहौर के उर्दू प्रताप में छपा है कि डेरा इस्माइलख़ाँ के लाला कृष्णचंद्रजी वर्मा के पुत्र बलदेवदत्त ने, जो अभी केवल १७½ वर्ष के हैं, दो साल हुए, एक तीन तकुए के चर्ख़े का नमूना तैयार किया था। अब वह कई महीने से बेतार के तार का यंत्र तैयार करने में लगे हैं।

× × ×

८. विद्यासागर का मकान

स्वनामधन्य स्वर्गीय ईश्वरचंद्र विद्यासागर का नाम जगद्विख्यात है। कलकत्ते में उनका घर है। २६ मई को वह नीलाम होनेवाला था। उनके पुत्र इतने ऋणी थे कि पौत्र पर यह आपत्ति आई है। सर्वेंट-पत्र से मालूम हुआ कि पौत्र ने बंगालियों से अपील की थी कि चंदा करके मकान की रक्षा करें। मकान की ज़मीन १७ बिस्वा है। उसका मूल्य एक लाख रुपए के लगभग है। बंग-साहित्य के उन्नायक और अनेकों विपन्नों के सहायक विद्यासागरजी का यह स्मारक नष्ट न होना चाहिए। हमें निश्चय है कि धनी-मानी बंगालियों ने अवश्य ही भवन की रक्षा की होगी।

× × ×

९. जर्मनी की दस आज्ञाएँ और ईरान, काबुल आदि का स्वदेश-प्रेम

गत शताब्दी के अंतिम भाग में जर्मनी उन्नति की जिस चरम सीमा पर पहुँच गया था, उसे देखकर संसार चकित हो उठा था। जर्मनी की उस उन्नति के साधारण कारण उद्योग, विज्ञान, विद्या, शिल्प, रण-निपुणता आदि कई हो सकते हैं, पर मूल-मंत्र एक ही था; और वह था स्वदेश-प्रेम। जर्मनी की जनता के लिये प्रचारित निम्न-लिखित दस आज्ञाएँ यही बतलाती हैं कि उसका वह देश-प्रेम अब और भी प्रबल होता जा रहा है। हमारे देशवासियों को भी जर्मनी की इन आज्ञाओं से लाभ उठाना चाहिए—

(१) ख़र्च करते समय अपने परिवार के हित का भी ख़याल रक्खो।

(२) विदेशी चीज़ मोल लेने के समय एक बार यह सोच लो कि तुम अपने देश को कंगाल और अन्य देशों को मालामाल बना रहे हो।

(३) तुम्हारे धन से जर्मनों के सिवा और किसी को लाभ न हो।

(४) विदेशी कल-पुर्ज़ों का व्यवहार करके स्वदेशी कारख़ानों की उपेक्षा न करने का प्रण करो।

(५) अपनी थाली में विदेशी सामान को जगह न दो।

(६) अगर लिखो, तो जर्मन-काग़ज़ पर, जर्मन-लेखनी से, और जर्मन-ब्लॉटिंग-पेपर पर ही उसे सुखाओ।

(७) जर्मनी का आटा, जर्मनी के फल और जर्मन-शराब से ही तुम्हारे शरीरों में सच्चे जर्मन का ख़ून और शक्ति पैदा होगी।

(८) अगर तुमको जर्मनी का क़हवा नापसंद हो, तो जर्मन-उपनिवेशों का क़हवा पियो।

(९) तुम्हारी पोशाक जर्मन-कपड़ों की हो। सिर पर भी जर्मन-टोपी देख पड़े।

(१०) विदेशियों की ख़ुशामद या चापलूसी में फँसकर इन आज्ञाओं का उल्लंघन कभी न करो।

लोग कुछ कहें, तुम विश्वास रक्खो कि जर्मन-नागरिकों को जर्मनी का सामान ही शोभा देता है।

क़ाबुल के अमीर ने भी अपने यहाँ देसी कपड़े का इस्तेमाल लाज़िमी कर दिया है। वह ख़ुद भी देसी खद्दर की ही पोशाक पहनते हैं। ईरान की भी पार्लियामेंट ने आज्ञा दी है कि सेना, पुलिस, न्याय-विभाग तथा शासन-विभाग के कर्मचारियों को अब से ईरान के बने हुए वस्त्र ही पहनने पड़ेंगे। सरकार से वर्दियाँ भी ईरानी कपड़े की दी जायँगी। क्या भारतवासी खद्दर और स्वदेशी वस्त्रों के व्यवहार की उपयोगिता अब भी न समझेंगे? फ़ैंसी फ़ैशन की फाँसी लगाकर अब भी आत्म-हत्या करते ही रहेंगे?

× × ×

१०. कुछ जानने-योग्य बातें

१—भारत में १० लाख कोढ़ी हैं। हर ३०० में १ आदमी का औसत पड़ता है। मुंगेर के श्रीरघुनंदन-प्रसादजी ने भागलपुर के कुष्ठाश्रम को २० हज़ार रुपए दिए हैं। ६००) वार्षिक की सहायता भी देते रहेंगे। ऐसों ही का दानी होना धन्य है!

२—ग्रेट ब्रिटन में हर साल २२ लाख टन मांस खा डाला जाता है।

३—अमेरिका में सेंशियागो से न्यूयार्क तक २७०० मील का मार्ग एक उड़ाके ने २६ घंटे ५० मिनट में वायु-यान से तय कर डाला।

४—इँगलैंड में एक बुढ़िया के ९३ साल की अवस्था में तिबारा दाँत निकल रहे हैं।

५—एक ग़रीब मदरासी जवान एक साँस में ४० मील की दौड़ लगाता है। १५ से २० मील फ़ी घंटे के हिसाब से दौड़ता है। अभ्यास की महिमा है।

६—कोचिन-राज्य छोटा ही है। पर वहाँ शिक्षा का

विस्तार बहुत है। गत मनुष्य-गणना के अनुसार उसका क्षेत्रफल १४७६ वर्गमील है। ६,७६,०८० मनुष्यों की आबादी है। ४,८२,६५६ मर्द और ४,६६,१२१ औरतें हैं। ६,४६,१३२ हिंदू और २,६२,५६५ ईसाई हैं। फ़ी सदी १८ पढ़े-लिखे आदमियों का औसत पड़ता है। हिंदू फ़ी सदी १६ और ईसाई फ़ी सदी २६ पढ़े-लिखे हैं।

७—१३ एप्रिल को बर्मा से ११ लाख टन चावल बाहर गया, और १५ लाख टन बच रहा। परसाल इसी समय १२$\frac{3}{4}$ लाख टन चावल बाहर गया था, और १३$\frac{3}{4}$ लाख टन बच रहा था। १५ मई को ८४००० टन चावल रंगून से बाहर गया। परसाल इसी समय १०,४७,००० टन चावल का चालान हुआ था।

८—एलायंस बैंक फ़ेल हो गया। लोगों के अपना रुपया निकाल लेने से अमृतसर-नैशनल-बैंक और स्टैंडर्ड बैंक आफ़ इंडिया लिमिटेड ने भी अपना कारोबार बंद कर दिया है। बंबई की ब्रिटिश इंडियन बैंकिंग ऐंड इंडस्ट्रियल कार्पोरेशन नाम की संस्थाएँ भी दीवाला निकाल बैठी हैं।

६—अमेरिका में काफ़ी रुई हुई है। १ करोड़ ५ लाख गाँठ रुई तैयार होने का अनुमान किया जाता है। मिसर में भी ५० लाख कंटर रुई होने की संभावना है। भारत में सन् १६२२-२३ में, २,११,५४,००० एकड़ के क्षेत्र-फल में कपास बोई गई थी, और रुई की ५१,६६,००० गाँठें तैयार हुईं। गत वर्ष से १५-१६ फ़ी सदी की वृद्धि हुई है। विलायत के ऑबज़र्वर-पत्र से मालूम हुआ है कि एक वैज्ञानिक कोर्ट एलाड ने एक बनावटी रुई तैयार की है। पर वह इतनी महँगी पड़ती है कि असल रुई का मुक़ाबिला नहीं कर सकती।

१०—सन् १६११ में भारत में क़रीब २३ करोड़ आदमी खेती करते थे। ५$\frac{1}{2}$ करोड़ के लगभग दस्तकारी या कल-कारख़ानों में काम करते थे। ५० लाख आदमी सरकारी नौकरी करते थे।

११—अमेरिका में सबसे बड़ा धनी राकफ़ेलर-परिवार है। वहाँ की स्टैंडर्ड ऑयल कंपनी में इनके १३ अरब ५० करोड़ रुपए लगे हैं, और उससे सालाना ३,४३,८०,०००) रु० का नफ़ा होता है।

१२—आगामी साम्राज्य-प्रदर्शिनी में जो विलायत में इंडिया-कोर्ट बनेगा, उसमें भारत के २५ लाख ५ हज़ार रुपए ख़र्च होना तय पाया है।

१३—तीसरी बार की जाँच से मालूम हुआ कि गत वर्ष भारत में ३,०५,५०,००० एकड़ क्षेत्र-फल में गेहूँ की खेती हुई थी। उसकी उपज १,१३,६६,००० टन अंदाज़ी जाती है।

१४—लखनऊ, अमीनाबाद में एक स्टारमैच-फ़ैक्टरी है, जो स्वदेशी दियासलाइयाँ बनाती है। माल अच्छा और सस्ता है। एक दर्जन डिबियों का मूल्य ~)। है।

१५—गत वर्ष भारत में बाहर से आनेवाले माल के मूल्य में, उसके पहले साल की अपेक्षा, ३४ करोड़ की कमी रही। यहाँ से बाहर, पहले साल की अपेक्षा, ६६ करोड़ के मूल्य का माल अधिक गया। यानी आयात में १३ फ़ी सदी मूल्य की कमी रही और निर्यात में २५ फ़ी सदी मूल्य की वृद्धि हुई।

१६—गत महायुद्ध के कारण इस समय प्रायः सभी बड़े राष्ट्र अमेरिका के ऋणी हैं। किस देश पर कितना ऋण है, यह नीचे नक़्शे में देखिए—

इँगलैंड	४७,४६,६८,३७,०४३	डालर	रुमानिया	३,८६,२८,४६५	डालर
फ़्रांस	३,६३,४७,६२,६३८	,,	यूनान	१,५०,००,०००	,,
इटली	१,८०,६०,३४,०५१	,,	आइसलैंड	१,३६,१६,१४६	,,
बेलजियम	४०,६२,८०,१४७	,,	अर्मीनिया	१,१६,५६,६१७	,,
रूस	२१,१६,०१,२६७	,,	फ़िनलैंड	८२,८१,६२६	,,
पोलैंड	१३,५६,६१,६६१	,,	लेटलैंड	५१,३२,२८७	,,
जुगोस्लाविया	६,७१,७६,५२६	,,	लिथुनिया	४६,८१,६२८	,,
सर्विया	५,४६,५३,१६०	,,	हंगरी	१६,८२,८३६	,,

१७—एक सेकिंड में डाकगाड़ी ३० गज़, मोटर ६० गज़ और व्योमयान ६० गज़ रास्ता तय करता है। एक सेकिंड में आदमी ३० फ़ीट तक, साइकिल-सवार ८५ फ़ीट तक, घुड़सवार ६० फ़ीट तक और कोई-कोई चिड़िया २० फ़ीट तक जाती है। नए ढंग की छापने की मशीनें १ सेकिंड में १२ काग़ज़ छापकर मोड़ती हैं, तेज़ टाइपिस्ट ५ शब्द टाइप करता है। आवाज़ १ सेकिंड में, हवा में, ११०० फ़ीट और पानी में ४७०० फ़ीट जाती है। मगर रोशनी उतने ही समय में १,८६,४०० मील और बिजली की लहर ३०,००० मील चलती है। इतने थोड़े-से समय में कितना काम हो सकता है!

१८—ब्रिटिश-साम्राज्य में १,३६,०६,७८२ वर्ग-मील भूमि और ४३,६७,५२,००० मनुष्यों की आबादी है। भूमि की दृष्टि से आस्ट्रेलिया, अमेरिका और आफ़्रिका का महत्त्व क्रमशः अधिक है; लेकिन जन-संख्या की दृष्टि से एशिया या भारत का महत्त्व अधिक है।

१९—लंदन और न्यूयार्क के बीच में ऐसे तार लगाए गए हैं कि वे समुद्री तारों से दूना काम करेंगे। इनके द्वारा १ मिनट में ६०० शब्द भेजे जा सकते हैं।

२०—केजन के एक हबशी ने ११२ वर्ष की अवस्था में ८७ वर्ष की दुलहिन से ८वीं शादी की है!

२१—गत ५ मई को समाप्त होनेवाले सप्ताह में, भारत में, हैज़ा, चेचक और ताऊन से ४,८२८ मौतें हुईं। गत वर्ष इसी समय में ३,७३७ ही मरे थे। हैज़े से बंगाल में, चेचक से मदरास में और ताऊन से पंजाब, यू० पी०, सी० पी० और बंबई में सबसे अधिक मरे हैं।

२२—अमेरिका में ४० करोड़ डालर (एक अरब से अधिक रुपए) केवल इनकम-टैक्स से हर साल सरकार को मिलते हैं। ५०० पौंड सालाना आमदनीवालों से यह टैक्स नहीं लिया जाता। इसी से जान पड़ता है, वहाँ की आमदनी कुल मिलाकर कई अरब तक पहुँच जाती है।

२३—अंदाज़न् संसार की सब भाषाओं में कुल मिलाकर केवल विज्ञान के १० हज़ार सामयिक पत्र प्रकाशित होते हैं। इँगलैंड के ब्रिटिश म्यूज़ियम में इन सबकी एक विस्तृत सूची बनाई जा रही है, जो बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

२४—योरप के लक्समबर्ग-देश की सेना केवल २५० है। वहाँ की रानी के अभी एक बालक हुआ था। उसकी ख़ुशी में फ़्रांस से मँगनी माँगकर तोपें छुड़ाई गई थीं!

२५—पायोनियर में एक विवरण निकला है, जिससे जान पड़ता है, अब तक जर्मनी की, सब तरह की, कुल ५६,४४४ तोपें छीनी और नष्ट की जा चुकी हैं। अभी संधि के अनुसार १५,४०२ ट्रेंचमार्टर तोपें, १,२५,२३० मशीनगनें, ४४,११,२०६ छोटे शस्त्र, ३,८१,०७,४४६ गोले और ४५,६६,०३,८०० गोलियाँ नष्ट करने को बाक़ी हैं।

× × ×

११. इँगलैंड का मदिरा-प्रेम

समाचार-पत्र पढ़नेवालों को यह मालूम है कि अमेरिका में शराबख़ोरी बंद करने का बड़ा यत्न किया गया है, क़ानून बनाया गया है और इस उद्योग में अच्छी सफलता भी मिली है। वहाँ शराबख़ोरी बंद होने से होनेवाले लाभों का ब्योरा भी छप चुका है। अभी हाल में वहाँ यह नियम बना है कि अमेरिका के समुद्र में तीन कोस की हद तक जो जहाज़ अन्य देशों के आवें, उन पर शराब न रहे। इस पर इँगलैंड के मदिरा-प्रेमी बहुत बिगड़े हैं, और वे कहते हैं, इँगलैंड के हरएक जहाज़ में शराब ख़ास तौर पर रहा करे। इँगलैंड के लोगों में शराब की अच्छी खपत होती है। सन् १९१३ में, विलायत में १६,६०,००,००० पौंड अर्थात् २४९ करोड़ रुपए की शराब बिकी थी। सन् १९२२में३५,११,३१,०००पौंड अर्थात्५,२६,६६,६५,००० रुपए की बिकी। विलायत में इस समय बेकारी और व्यापार की शिथिलता होने पर भी दस वर्ष के भीतर शराब की खपत दूनी हो गई है। औसतन् विलायत के २१ वर्ष से अधिक अवस्थावाले हर आदमी ने एक वर्ष में १८६) की शराब पी डाली। विलायत की सरकार को सन् १९२२ में केवल शराब के टैक्स में १६,८९,१६,००० पौंड (अर्थात् २,५३,३७,४०,०००) रुपए) मिले हैं। स्पष्ट है कि शराब से वहाँ की सरकार को अच्छी आमदनी होती है। यहाँ भी आबकारी की आमदनी कम नहीं है, और इसी से भारत-सरकार उसका प्रचार रोकने में यथेष्ट तत्परता नहीं दिखाती। अमेरिका की देखा-देखी अन्य देशों में शराब का प्रचार रोकने का आंदोलन चल रहा है। मिस्र की ६,००० स्त्रियों के हस्ताक्षर-सहित एक

आवेदन-पत्र अमेरिका-राजदूत ने मिस्र के प्रधान मंत्री के पास भेजा है। उसमें लिखा है, शराब का क्रय-विक्रय बंद कर दिया जाय। यह आवेदन-पत्र वहाँ की पार्लिया-मेंट में पेश होगा। यहाँ भी बिहार और उड़ीसा की सरकार ने मादक पदार्थों का व्यापार रोकने के लिये एक कमेटी नियुक्त की थी। उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। सब मेंबरों की राय है कि एकदम नशे का प्रचार रोकना ठीक नहीं। भिन्न-भिन्न स्थानों में लाइसेंसिंग बोर्ड क़ायम किए जायँ, जिन्हें नशे की दूकानें बंद करने का अधिकार रहे। नशे की दूकानें खुलने का समय भी क्रमशः कम कर दिया जाय। हमारी राय में अफ़ीम के सिवा हरएक नशे का प्रचार एकदम बंद कर दिया जाय, तो कुछ हानि न होगी। देखें, यहाँ कब शराब आदि हानिकारक नशीले पदार्थों का प्रचार बंद होता है।

× × ×

१२. एक अँगरेज़-रमणी का सत्साहस

समाचार-पत्रों के पाठक जानते हैं कि अभी हाल में सीमांत-प्रदेश में भारी दुर्घटना हो गई है। कोहाट-ज़िले में जो अँगरेज़ी फ़ौज है, उसमें मेजर एलिस जेनरल स्टाफ़ ऑफ़िसर थे। गत १३ एप्रिल को पिछली रात को कुछ सरहदी डाकुओं ने उनके बँगले पर हमला करके उनकी पत्नी की हत्या कर डाली, और उनकी १५ वर्ष की लड़की को उठाकर ले गए। इस ख़बर से चारों ओर हलचल मच गई। शिमला-शैल से लेकर विलायत की पार्लियामेंट तक हिल उठी। यद्यपि सरहदी पठान अनेकों हिंदुओं को आज तक लूट चुके हैं, सैकड़ों ख़ून कर चुके हैं, और उससे किसी पार्लियामेंट के मेंबर की सुख-निद्रा नहीं टूटी, परंतु यह तो काले आदमी का मामला नहीं था! यह तो एक गौरांग पर अत्याचार हुआ था! ख़ैर, इस मामले की जाँच होने लगी। अंत को एक अस्पताल की नर्स श्रीमती स्टार ने असीम साहस के साथ दस्युओं की बस्ती में जाकर बालिका का उद्धार किया। इस संबंध में श्रीमती स्टार लिखती हैं—१६ एप्रिल को गवर्न्मेंट-हाउस से बुलावा आया। सर जान ने मेरे पहुँचने पर मुझसे मिस एलिस का पता लगाने के लिये कहा। मैं दूसरे दिन ८ बजे चल दी। किधर जाऊँ, क्या करूँ, यह अज्ञात अनिश्चित रहने पर भी मैं आशा और साहस के सहारे चली। मोटर पर पाँच घंटे में ६० मील जाकर



मिस एलिस

शिनवरी स्थान में पहुँची। वहाँ मर्दानी, पठानों की पोशाक पहनी। अँगरेज़ी पोशाक में रहने से मुझ पर भी हमला होने की आशंका थी। मैं इस तरह की दो पोशाकें लाई थी। मिलने पर एक पोशाक कुमारी एलिस के लिये थी। वहाँ से खाँकी-स्थान में मैं एक मुल्ला के घर पहुँची। पहले तो वे मुझे भीतर ले जाने को राज़ी नहीं हुए। मगर फिर न-जाने क्या सोचकर भीतर ले गए। मुल्ला ने कहा—अँगरेज़ों ने उसके चार आदमियों को पकड़ रक्खा है, और ५००००) ज़ब्त कर लिए हैं। अगर वे आदमी छोड़ दिए जायँ और रुपए वापस कर दिए जायँ, तो मिस एलिस को वे लोग छोड़ देंगे। मालूम हुआ, मिस एलिस अजबख़ाँ के घर क़ैद हैं। मैंने उसके आदमी और रुपए वापस कराने का वादा किया। रात को तीन बजे मिस एलिस मेरे सामने लाई गई। वह बहुत कम-ज़ोर हो गई थी। मैंने उसे आश्वासन दिया। मुल्ला के भाई के गठिया-रोग था। मैंने उसे देखकर अपने पास से एक दवा दी। उसे फ़ायदा हुआ। मेरी ख़ातिर भी बढ़ गई। मुल्ला ने तुर्की रुपयों का एक हार उपहार देकर एलिस को बिदा किया। मैं मिस एलिस के साथ मोटर पर बैठकर ईश्वर को धन्यवाद देती हुई चल दी।

ख़ाँबहादुर कुलीख़ाँ और मुग़लबाज़ख़ाँ नाम के दो पठानों ने इस काम में मिसेज़ स्टार को बड़ी सहायता दी थी। उनकी सहायता के बिना मिस एलिस का उद्धार असंभव था। मिसेज़ स्टार के साहस से संतुष्ट होकर



मिसेज़ स्टार अफ़रीदियों के साथ

सम्राट् ने उन्हें एक स्वर्ण-पदक और क़ैसरेहिंद की उपाधि दी है। इसमें संदेह नहीं कि मिसेज़ स्टार ने बड़े साहस का काम किया। अनेक मर्द भी शायद इस काम के लिये आगे बढ़ने का साहस न कर सकते।

× × ×

१३. चुंगी की आमदनी

भारत की चुंगी की आमदनी का जो लेखा प्रकाशित हुआ है, उससे विदित होता है कि ३० फ़ी सदी की चुंगीवाले पदार्थों में मोटरों के अलावा और सबकी बहुत आमद हुई है। रेशम की चीज़ों से ८१ लाख रुपए प्राप्त हुए। गत वर्ष इस मद में ५२ लाख रु० की आमदनी हुई थी। दूसरे पदार्थों से, जिनमें चूड़ियाँ भी शामिल हैं, ६७ लाख रुपए प्राप्त हुए। गत वर्ष ५८ लाख ही आए थे। साइकिल के टायरों से ३२ लाख की आमदनी हुई। यह गत वर्ष से ५ फ़ी सदी अधिक है। मशीनरी से जो आमदनी हुई, वह गत वर्ष से कम है। गत वर्ष १ करोड़ १६ लाख चुंगी में आए थे; पर इस वर्ष सिर्फ़ ६३ लाख ही वसूल हुए हैं। शक्कर में भी कमी रही। गत वर्ष ६ करोड़ ५० लाख आए थे; पर इस वर्ष ४ करोड़ ४१ लाख ही आए। शराब की चुंगी में भी दो लाख का घाटा रहा। गत वर्ष १३ लाख आए थे, इस साल ११ लाख ही आए। कोयला, कोक तथा और दाह्य पदार्थों से .५ लाख, रुई के सामान से (नई ड्यूटी के अनुसार) ४६ लाख, तेल से (नए महसूल के अनुसार) ६१ लाख की आमदनी हुई। अन्य वस्तुओं से ६ करोड़ ३७ लाख की आमदनी हुई, जो गत वर्ष ४ करोड़ ६६ लाख ही हुई थी। इस वर्ष शराब, शक्कर और मशीनरी भारत में कम आई हैं।

× × ×

१४. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का विशेष अधिवेशन

अब की बार बड़े दिन की छुट्टियों में कांग्रेस का अधिवेशन मदरास के कोकोनाडा-स्थान में होगा। यह स्थान गोदावरी के मुहाने के उत्तर पार्श्व में है। श्रीयुत टी० प्रकाशम्‌जी ने कांग्रेस के अवसर पर हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को आमंत्रित किया है कि वह अपना एक विशेष अधिवेशन करे। सम्मेलन ने यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। आशा है, सम्मेलन पहले ही से अपने प्रचार-विभाग के कुछ आदमी भेजकर विशेष रूप से वहाँ हिंदी के महत्त्व का प्रचार और वहाँ के लोगों में हिंदी-प्रेम की वृद्धि करेगा, जिसमें यह अधिवेशन सफलता प्राप्त कर सके। हिंदी-भाषा-भाषी प्रांतों के अतिरिक्त उन प्रांतों में, जहाँ के लोग हिंदी से अपरिचित हैं, सम्मेलन को कांग्रेस के अधिवेशन के साथ अपना अधिवेशन करना चाहिए। अधिवेशन से पहले अपने प्रचारक भेजकर वहाँ के लोगों में हिंदी-प्रेम उत्पन्न करना चाहिए। उन्हें हिंदी के राष्ट्र-भाषा-गौरव को बताकर उनके हृदय में हिंदी सीखने की उमंग पैदा करनी चाहिए। इस प्रकार उन स्थानों के लोग अगर पहले ही से कुछ हिंदी सीख जायँगे, तो सम्मेलन को आशातीत सफलता और सहायता प्राप्त होगी।

× × ×

१५. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का आगामी वार्षिक अधिवेशन

सम्मेलन की स्थायी समिति ने लखनऊ का निमंत्रण न स्वीकार करके, कई कारणों से, आगामी अधिवेशन के लिये, दिल्ली का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। दिल्ली के उत्साही कार्य-कर्ताओं ने १६ मई को मारवाड़ी-पुस्तकालय में स्वागत-कारिणी का संगठन भी कर डाला। इस तत्परता से यह स्पष्ट है कि सम्मेलन को दिल्ली में भी यथेष्ट सफलता प्राप्त होगी! उस दिन सभा में प्रायः सभी दिल्ली

के हिंदी-प्रेमी उपस्थित थे। स्वामी श्रद्धानंदजी सभापति बनाए गए थे। स्वागत-कारिणी के सभासदों से १२) चंदा लेना निश्चित हुआ। २८ सभासद् तत्काल बन गए। स्वागत-कारिणी के पदाधिकारी ये चुने गए। सभापति स्वामी श्रद्धानंदजी। उप-सभापति डॉ० केशवदेव शास्त्री, पं०लक्ष्मीनारायण शास्त्री, सेठ लक्ष्मीनारायण गोडोदिया। प्रधान मंत्री सेठ केदारनाथ गोयनका। मंत्री पं० इंद्रजी, पं० ब्रह्मदत्त शर्मा, पं० देवेंद्र शास्त्री और पं० उदितजी मिश्र। सम्मेलन के लिये समय ८, ९, १० फ़रवरी, १९२४ निश्चित हुआ। मालूम होता है, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की स्थायी समिति ने ज्यों ही आगामी अधिवेशन के दिल्ली में किए जाने का निश्चय किया, त्यों ही, तुरंत स्वागत-कारिणी समिति का संगठन कर डाला गया है। क्योंकि दिल्ली में अधिवेशन होने का निर्णय तथा स्वागत-कारिणी समिति के संगठित होने की बात के, दोनों ही, संवाद हिंदी-जगत् में कुछ ही दिनों के अंतर से फैले हैं। इस उचित शीघ्रता के लिये दिल्ली-निवासियों को बधाई! हम बहुधा यह देखते आ रहे हैं कि अधिवेशन के स्थान-निर्णय के पश्चात् स्वागत-कारिणी समिति का संगठन होने में कहीं-कहीं अनावश्यक विलंब हो जाता है, और इससे सम्मेलन के कार्य में बड़ा विघ्न पड़ता है। कारण, तिथि-निर्णय द्वारा कभी-कभी स्वागत-समिति को १२ मास की अपेक्षा १० मास अथवा इससे भी कम मिलते हैं। उदाहरणवत्, इसी बार। सम्मेलन का अधिवेशन एप्रिल के प्रारंभ में हुआ था, और आगामी सम्मेलन फ़रवरी के द्वितीय सप्ताह में होना निश्चित हुआ है। इस प्रकार स्वागत-समिति को १२ मास की अपेक्षा सवा दस मास ही मिले। अब यदि स्वागत-समिति अपना संगठन करने में २ मास भी लगा दे, तो काम करने के लिये, उसके समक्ष, केवल ८ मास रह जाते हैं। अस्तु। दिल्ली-निवासियों ने स्वागत-समिति का संगठन करने में जैसे औचित्य से काम लिया है, आशा है, वह अपने अन्य समस्त कार्यों में भी उसी प्रकार सतर्कता तथा कर्तव्य-निष्ठा से काम लेगी; जिसमें सम्मेलन का आगामी अधिवेशन विशेष रूप से सफल हो। पंजाब-प्रांत में हिंदी का काम करने के लिये पर्याप्त क्षेत्र है, और ऐसे अच्छे क्षेत्र में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का निमंत्रित होकर सफल होना दिल्ली-निवासियों की ही कार्य-कुशलता पर निर्भर है। आशा है, राजधानी में राष्ट्रभाषा के सम्मेलन को सर्वांगीण सफलता प्राप्त होगी। पंजाब में प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की भी स्थापना हो गई है, और स्थायी समिति के पदाधिकारी चुन लिए गए हैं।

× × ×

१६. सम्मेलन के ध्यान देने-योग्य बातें

भोपाल-रियासत मुसलमानी है। जन-संख्या ६-७ लाख है। अधिकांश हिंदू हैं। सन् १९११ की मर्दुम-शुमारी में वहाँ के हिंदुओं की भाषा हिंदी लिखी गई थी, पर १९२१ की मर्दुम-शुमारी में सबकी भाषा उर्दू लिखी गई है। एतराज़ करने पर उत्तर मिला, अधिकारियों की यही आज्ञा है। इसके सिवा वहाँ जगह-जगह हिंदी का पठन-पाठन जो होता था, उसे बंद करके उर्दू की सरकारी पाठशालाएँ खोल दी गई हैं। अभी दिहातों के सब मदरसों से हिंदी नहीं हटाई गई है; किंतु यही सिलसिला जारी रहा, तो थोड़े ही दिनों में वहाँ भी उर्दू की तूती बोलेगी। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर साहब के पास इसके प्रतिवाद के लिये एक डेप्युटेशन भी भेजा गया था, पर फल कुछ नहीं हुआ। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को शीघ्र इधर ध्यान देकर उचित चेष्टा करनी चाहिए। इसी तरह बाराबंकी की म्युनिसिपलिटी ने यह प्रस्ताव पास किया है कि वहाँ हिंदी में लिखी हुई कोई दर्ख़्वास्त तब तक न ली जायगी, जब तक उर्दू में उसका अनुवाद भी साथ न होगा। बाराबंकी की जनता ने एक भारी सभा करके बोर्ड के इस अनुचित प्रस्ताव का घोर विरोध किया है। सम्मेलन को इसका भी कुछ उचित उपाय करना चाहिए।

× × ×

१७. नमक-कर

हमारे वायसराय महोदय ने बहुविरोध की उपेक्षा और अपने विशेष अधिकार का प्रयोग करके नमक का कर दूना कर दिया। कौंसिल के कई मेंबरों ने इसके विरोध में इस्तीफ़ा भी दे डाला। मि० वेब इस कर को रद कराने के लिये विलायत डेप्युटेशन भी ले जानेवाले थे। इधर पार्लियामेंट की कामंस सभा में मि० ट्रेविलेन ने पूछा था कि क्या वाल्डविन महोदय भारत के नवीन नमक-कर को अस्वीकार करने का प्रस्ताव उपस्थित करने की अनुमति देंगे, क्योंकि अवधि बीती जा रही है। वाल्डविनजी ने प्रस्ताव करने की आज्ञा नहीं दी। कहा—अब केवल यही किया जा

सकता है कि यह सभा सपरिपद् सम्राट् से यह कर अस्वीकार करने की प्रार्थना करे। इस पर यहाँ बहस करने की अनुमति देना प्रथा के विरुद्ध है। बेजवुड महाशय ने इस संबंध में और भी कई प्रश्न किए, पर कुछ फल नहीं हुआ। हमारी समझ में इस विषय में अब कहीं कुछ न होगा। भारतवासी जब तक खुद कुछ करने की शक्ति न प्राप्त कर लेंगे, तब तक दूसरा कोई उनकी सहायता नहीं करेगा। इधर नमक-कर के बढ़ने से प्रजा में जो असंतोष बढ़ रहा है, उसकी सूचना मिलने लगी है। बरीसाल, बंगाल के एक गाँव के कुछ लोगों ने क़ानून के ख़िलाफ़ नमक बनाना शुरू किया था। यह ख़बर पाते ही एक्साइज़ इंस्पेक्टर ने वहाँ जाकर उन लोगों को गिरफ़्तार किया। झगड़ा यहाँ तक बढ़ा कि गोली चलानी पड़ी। तीन आदमी जान से मारे गए। इंस्पेक्टर और उसके साथी बुरी तरह घायल हुए। भारत-सरकार इस घटना से शिक्षा प्राप्त कर अब भी नमक का कर घटाने की चेष्टा करे, तो अच्छा हो।

× × ×

१८. हिंदी-रचना पर पुरस्कार

हर्ष की बात है कि अब हिंदी के लेखकों को उत्साहित करने के लिये पुरस्कारों की प्रचुरता देख पड़ने लगी है। हमारे पास ऐसे कई पुरस्कारों की घोषणाएँ प्रकाशित करने को आई हैं।

अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी-अग्रवाल जातीय कोष ने अर्थ-शास्त्र, व्यापार, शिल्प-कला आदि पर पुरस्कार देकर पुस्तकें लिखाने का विचार किया है। इस वर्ष इस मद में १२००) तक वह ख़र्च करेगी। जो विद्वान् इन विषयों पर अच्छी पुस्तकें लिख सकते हों, वे मंत्री अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी-अग्रवाल-जातीय कोष, ३२२ कालबादेवी-रोड, बंबई से पत्र-व्यवहार करें।

आरे की नागरी-प्रचारिणी सभा से एक सूचना हमें १००) के पुरस्कार की मिली है। उसके एक इँगलैंड-निवासी सदस्य ने हर साल हिंदी-कवियों के जीवन और काव्यों के संबंध में सर्वोत्तम निबंध लिखनेवाले को यह पुरस्कार देना स्वीकार किया है। इस वर्ष का विषय है—गोस्वामी तुलसीदास और उनके काव्य। यह निबंध ३० जून, १६२३ तक सभा में पहुँच जाना चाहिए। लेख भेजने का अधिकार सभा के सदस्य या किसी सदस्य के मित्र अथवा परिवारवाले को ही होगा। एक कमेटी लेखों की जाँच करेगी। विषय-प्रतिपादन की योग्यता के लिये ५० नंबर, व्याकरण और वाग्धारा के शुद्ध प्रयोग पर ३० नंबर, लिखावट की सफ़ाई और सुघराई पर १० नंबर और भिन्न भाषाओं के शब्दों और मुहाविरों के अभाव पर १० नंबर रक्खे गए हैं।

कलकत्ते में १६।१, हरिसन-रोड में एक लोकमान्य नाटक-समाज है। उसने राष्ट्रीय भावों से पूर्ण, रंग-मंच पर खेलने-योग्य सर्वश्रेष्ठ मौलिक सामाजिक नाटक के लेखक को २५०) का पुरस्कार देने की घोषणा की है। जाँच एक संपादक-समिति करेगी। पसंद नाटक पर और उसके अन्य भाषाओं में अनुवाद के स्वत्व पर उक्त समिति का ही अधिकार रहेगा। नाटक ४ घंटे में खेला जा सके, और छपने पर ८ फ़ार्म से अधिक न हो। हमारी राय में पुरस्कार बहुत कम है। ऐसा नाटक लिखनेवाला १०००-१५०० रुपए अनायास प्राप्त कर सकता है।

× × ×

१९. कुछ नवीन आविष्कार

लंदन की एक कंपनी ने एक नवीन आविष्कार पेटेंट कराया है। उसमें कहा गया है कि बेतार के तार में आवाज़ के साथ शकल भी दिखाई जा सकती है, अर्थात् रेडियो टेलीफ़ोन द्वारा किसी वस्तु का वर्णन करते समय उसकी आकृति भी दिखाई जा सकेगी।

योरप के कुछ कारीगरों ने एक ऐसा यंत्र बनाया है, जिसकी सहायता से चोरी से घर में घुसनेवाला मनुष्य तत्काल देखा जा सकता है। घर की चहारदीवारी में भीतरी तरफ़ चारों ओर यह यंत्र लगा दिया जाता है। कोई किसी ओर से भी जब भीतर घुसेगा, तब बड़े ज़ोर का शब्द होगा, और यह यंत्र उस आदमी का फ़ोटो ले लेगा।

इँगलैंड में आग बुझाने के लिये एक ऐसी सीढ़ी बनाई गई है, जो मोटर के ऊपर खड़ी की जाती है। इसके तीन भाग होते हैं। जब पूरी खड़ी की जाती है, तब ६० फ़ीट तक पहुँचती है। यह ऊपर अधर रहती है, किसी सहारे की ज़रूरत नहीं।

बर्लिन (जर्मनी) के एक कारीगर ने एक बहुत ही छोटे आकार का फ़ोनोग्राफ़ बनाया है। यह जेबी घड़ी के बराबर है, और घड़ी की तरह ही इसमें चाभी भरी जाती है। इसका नाम मिकोफ़ोन रक्खा गया है। इसके रिकार्ड भी बहुत छोटे हैं। १० रिकार्ड रखने की जगह तो इसके भीतर ही है। अधिक रिकार्ड भी जेब में रख लिए

जा सकते हैं। शीशे के ग्लास पर रखकर बजाने से इसकी आवाज़ एक बड़े कमरे में अच्छी तरह सुन पड़ती है।

× × ×

२०. योरप और अमेरिका के अख़बार

हमारे देश में जहाँ एक पत्र को चलाना कठिन होता है, वहाँ योरप और अमेरिका में एक-एक आदमी दर्जनों पत्रों का प्रकाशक होता है। इँगलैंड के लार्ड नार्थक्लिफ़, जो अभी मरे हैं, ३०-४० पत्रों के स्वामी थे। अमेरिका के विलियम रैंडोल्फ़ हर्स्ट का नंबर इनसे भी बढ़ा-चढ़ा है। वह अकेले १८ दैनिक, १३ साप्ताहिक और ९ मासिक पत्रों के मालिक हैं। इनके पत्रों का बड़ा प्रचार है। अमेरिका के हर ४ घर में से १ घर में इनका कोई-न-कोई पत्र अवश्य पढ़ा जाता है। इनके कुछ पत्रों की ग्राहक-संख्या लाखों है। कुछ का विवरण यह है— न्यूयार्क-ईवनिंग (दैनिक) के ६,२२,१४६, शिकागो-ईवनिंग (दैनिक) के ३,८७,५७३, शिकागो-हेरल्ड (दैनिक) के ३,५५,४१७, न्यूयार्क-अमेरिकन (दैनिक) के ३,२६,८३६, बोस्टन-अमेरिकन (दैनिक) के २,५१,०५३, न्यूयार्क-अमेरिकन (साप्ताहिक) के १०,२८,२७८, शिकागो-हेरल्ड (साप्ताहिक) के ६,६८,४५०, बोस्टन-संडे-एडवर्टाइज़र (साप्ताहिक) के ४,०४,७५१, कास्मोपोलिटन (मासिक) के ११,०२,३६५, गुडहाउस-कीपिंग (मासिक) के ७,८०,५६०, हर्स्ट-इंटरनेशनल (मासिक) के ३,५६,६७६ ग्राहक हैं। इन सब पत्रों का ख़र्च सालाना ४० करोड़ रुपए के लगभग है। फिर भी सन् १९२२ में मि० हर्स्ट को इन पत्रों से ५० करोड़ का नफ़ा हुआ था। परंतु हर्स्ट की नीति का आदर्श ऊँचा नहीं है, इसी से उनको अमेरिका के शिक्षित-समाज में वैसा गौरव नहीं प्राप्त है। उनके पत्र केवल व्यापार की दृष्टि से निकलते हैं। उनमें लोगों को प्रसन्न करने के लिये अक्सर ऐसी बातें छपती हैं, जिनका अनुमोदन सभ्य-समाज कभी और कहीं नहीं कर सकता। अपने विपक्ष को गिराने के लिये ये पत्र नीचता-पूर्ण निंदा और गंदे आक्षेप भी करते हैं। इस नमूने के कुछ पत्र हिंदी में भी हैं। पर सौभाग्य यही है कि ऐसे पत्र इने-गिने ही हैं। योरप और अमेरिका में ऊँचे आदर्श के सुसंपादित पत्र भी अधिक संख्या में निकलते हैं। उनमें इतनी शक्ति होती है कि वे आसानी से संधि या युद्ध के अनुकूल लोक-मत तैयार कर सकते हैं। उनके लेख, उनकी शैली, उनके विषय, उनका चुनाव आदर्श होता है। सच तो यह है कि पाश्चात्य भू-खंड में पत्र-पत्रिकाएँ मन की ख़ुराक हैं— उनके बिना वहाँ की जनता का काम ही नहीं चल सकता, और इसी से वहाँ पत्रों की इतनी खपत है।

× × ×

२१. केनिया की स्थिति

ब्रिटिश-साम्राज्य के उपनिवेश केनिया में बसनेवाले भारतीय गोरों के अत्याचार से तंग आ गए हैं। इस समय वहाँ के गोरे और काले, दोनों अपना-अपना डेप्युटेशन लेकर इँगलैंड पहुँचे हैं। ब्रिटिश औपनिवेशिक विभाग दोनों पक्षों की बातें सुनकर शीघ्र अपना निर्णय प्रकाशित करेगा। काले लोगों के डेप्युटेशन का कहना है कि केनिया-प्रवासी भारतीय वहाँ के हबशियों की दशा सुधार रहे हैं। जब सब छोटे-मोटे काम हबशी करने लगेंगे, तब भारतीयों को जीविका के लिये और काम करने पड़ेंगे। कारण, हबशी कम मज़दूरी पर काम करेंगे। भारतीयों का उतने में गुज़र न होगा। इसलिये भारतीयों को वहाँ व्यापार की सुविधा मिलनी चाहिए। गोरों को प्रधानता देकर वहाँ के भारतीयों के अधिकारों को मिटाना ठीक नहीं। वहाँ जाति-भेद का अड़ंगा लगाकर वोट देने का अधिकार देने में बाधा डालना ब्रिटिश कामन वेल्थ के सच्चे भावों के विपरीत है। इसलिये हरएक सभ्य शिक्षित को वोट का अधिकार मिलना चाहिए। शासन-सभा में भारतीयों के प्रवेश में जो बाधा है, वह दूर होनी चाहिए। भारतीयों की माँगें न्यायोचित हैं। गोरे लोग स्वार्थ-साधन के लिये भारतीयों के अधिकार नष्ट करने की चिल्लाहट मचाकर अन्याय कर रहे हैं। दक्षिण आफ़्रिका के गोरों के भड़काने से केनिया के गोरे यह चाल चल रहे हैं। विलायत की सरकार को निष्पक्ष होकर न्याय करना चाहिए। केनिया में इस समय २५,००० हिंदोस्तानी, १०,००० योरपियन और ३०,००,००० वहाँ के आदिम निवासी हबशी हैं। योरपियनों में ज़मींदारों का विशेष प्रभाव है, जिन्हें केनिया की सरकार ने भूमि के विशेष अधिकार दे रक्खे हैं। ऐसे १,१०० ज़मींदार हैं, और ७० लाख एकड़ भूमि पर उनका अधिकार है। अधिकांश को भूमि ९९९ वर्ष की लीज़ पर मिली है। ये ही भारतीयों के स्वार्थों का अधिक विरोध करते हैं। केनिया की भूमि

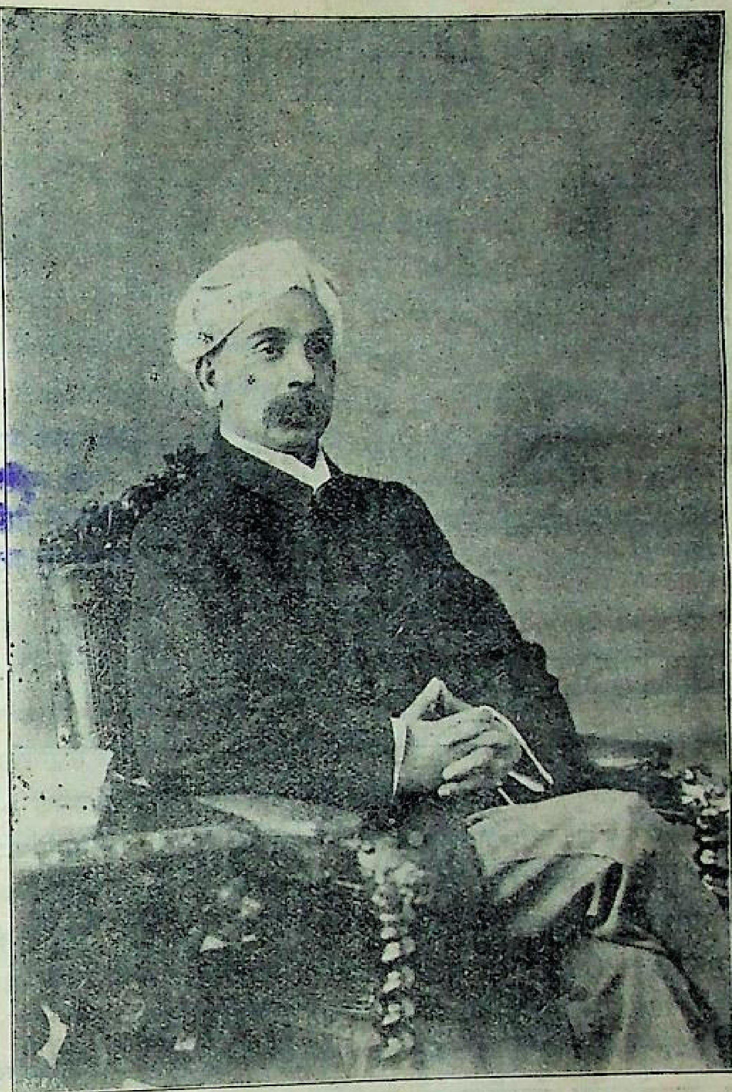
दो तरह की है—ऊँची और नीची। योरपियन ज़मींदार कहते हैं—लार्ड एलगिन ने एक खरीते में हमें इस स्वास्थ्यकर ऊँची ज़मीन का ठेका देने का वादा किया था। लार्ड एलगिन के वाक्यों का आशय यह है कि सरकार क़ानून या शासन में कोई जाति-भेद-गत अंतर नहीं रक्खेगी। केवल ऊँची भूमि प्रत्यक्ष रूप से योरपियनों को ही दी जायगी। केनिया की सरकार ने ११,३७५ वर्गमील ज़मीन योरपियनों को दी है। हिंदोस्तानियों को केवल २२ वर्गमील ज़मीन मिली है। हिंदोस्तानियों की तीन माँगें हैं—(१) बस्ती के बाहर स्वास्थ्यकर भूमि पाने का अधिकार, (२) हिंदुस्तानियों की जितनी संख्या है, उसमें फ़ी सदी १० को वोट देने का अधिकार (योरपियनों को ५० फ़ी सदी के हिसाब से यह अधिकार प्राप्त है), (३) भारतीयों को भी केनिया में आकर बसने की स्वतंत्रता रहे। पर योरपियनों को, जिनके आगे केनिया का गवर्नर भी झुकता है, यह कुछ नहीं स्वीकार है। क्षमताशाली भारतवासियों को लखनऊ के सुकवि चकबस्तजी की निम्नलिखित लाइनों पर ध्यान देकर यथाशक्ति केनिया-प्रवासी भाइयों की सहायता सब तरह करनी चाहिए; भारत-सरकार पर ज़ोर डालना चाहिए कि वह प्रवासी भारतीयों के स्वत्वों की रक्षा का सच्चा उद्योग करे—

वतन से दूर तबाही में है वतन का जहाज़ ;
हुआ है ज़ुल्म के पर्दे में हश्र का आग़ाज़।
सुनें तो मुल्क के हमदर्द, क़ौम के दमसाज़ ;
हवा के साथ य' आती है दुख-भरी आवाज़।
"वतन से दूर हैं, हम पर निगाह कर लेना ;
इधर भी आग लगी है, ज़रा ख़बर लेना।"

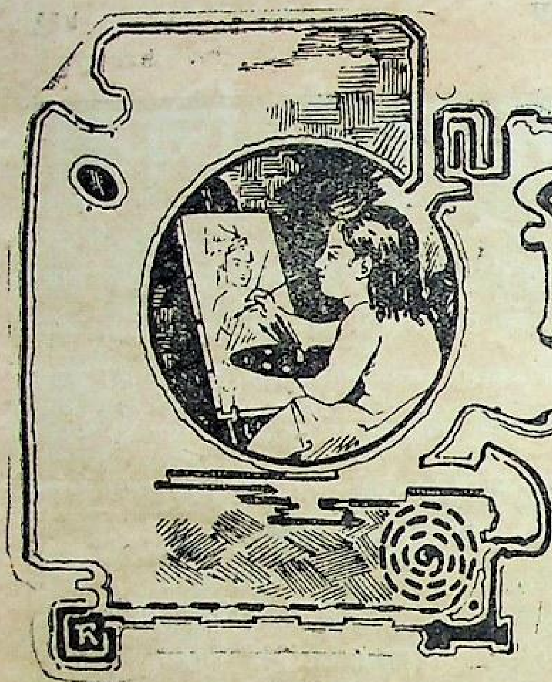
× × ×

२२. सर नारायण-गणेश चंदावरकर का स्वर्गवास

बड़े शोक की बात है कि भारत का और एक प्रतिभाशाली महापुरुष चल बसा। सर नारायण-गणेश चंदावरकरजी का देहांत बँगलोर में हो गया। आप सच्चे सुधारक, संयम-निरत, शिक्षा-प्रेमी थे। क़ानून के ज्ञान में आपकी योग्यता अगाध थी। आप प्रार्थना-समाजी थे। आपको राज-द्वार में अच्छा सम्मान प्राप्त था। शुरू में आप ही ने प्रसिद्ध "इंदुप्रकाश" पत्र का कुछ दिन संपादन किया था। फिर बंबई हाईकोर्ट के जज, चीफ़ जस्टिस और बंबई-युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर आदि के पदों पर बड़ी योग्यता से काम किया। पेंशन लेकर इंदौर राज्य के चीफ़ मिनिस्टर हुए। इस समय आप बंबई-कौंसिल के प्रेसीडेंट थे। इसमें संदेह नहीं कि आपकी मृत्यु से भारत का एक रत्न खो गया, और देश की बड़ी हानि हुई। ईश्वर आपको शांति दें।



सर नारायण गणेश चंदावरकर



चित्र-चर्चा

१. रंगीन चित्र

प्रथम रंगीन चित्र "गायत्री" का है। हिंदू-धर्म-शास्त्र में गायत्री-मंत्र का बड़ा उच्च स्थान है, सर्वत्र उसकी महिमा गाई गई है। ब्राह्मण-मात्र के लिये तो संध्योपासनादि में गायत्री-मंत्र का उपयोग अनिवार्यतः आवश्यक माना गया है। इसी गायत्री-मंत्र को 'माधुरी' के सुनिपुण चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा ने चित्र-रूप में चित्रित किया है। मानव-तन सर-रूप है, और उसका हृदय कमल-रूप। ईश्वरोपासना ही से हृदय-कमल विकसित होता है, और ईश्वराराधन में गायत्री-मंत्र का उपयोग मुख्य है। हृदय-कमल की प्रत्येक कलिका इस मंत्र के द्वारा विकसित हो जाती है। बस, यही इस चित्र का भाव है। वर्माजी ने इस भाव को चित्रित करने में अपनी कल्पना-चातुरी का अच्छा परिचय दिया है।

दूसरा चित्र "वाराह" का है। भगवान् के अवतारों में एक अवतार वाराहावतार भी है। यह चित्र तिब्बत-निवासियों के वाराह भगवान् के ध्यान का सुंदर चित्र है। वहाँ इसी प्रकार की चित्र-कला अधिक आदरणीय समझी जाती है। यह चित्र वहाँ के चित्रांकण का एक उत्कृष्ट नमूना है। बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा को ऐसा सुंदर चित्र भेजने के लिये धन्यवाद।

तीसरा रंगीन चित्र "उद्योगिनी"-नामक है। यह चित्र माधुरी-पाठकों के सुपरिचित चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू की सुंदर रचना है। उद्योगिनी-रूप गृहिणी गृह-कार्य से अवकाश पाकर चरखा कात रही है। गृहिणी का रूप-लावण्य, चरखा कातने में उसकी तन्मयता, रुई की पोनी तथा सूत की ओर उसका मनोहर तथा स्वाभाविक नयनाकर्षण वास्तव में दर्शनीय चित्रित हुआ है। भारतीय गृह-देवियाँ यदि अपने बचे हुए समय का, व्यर्थ की गप-शप में अपव्यय न कर, इस प्रकार सदुपयोग किया करें, तो स्वदेशी की समस्या अनायास हल हो जाय, यह चित्र मानो स्त्रियों को इसी बात का उपदेश दे रहा है।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला व्यंग्य-चित्र उन मनचले यारों पर है, जो किसी नवयौवना सुंदरी को देखकर ऐसे मचल जाते हैं कि भलमंसाहत तथा शिष्टता की मर्यादा का उल्लंघन कर जाते हैं। ऐसी दशा में आकृति ही उनकी कलुषित प्रवृत्ति का यथेष्ट परिचय देने लगती है।

दूसरा व्यंग्य-चित्र क्लर्क-जीवन बितानेवाले पुरुषों पर है। घड़ी की बड़ी सुई ज्यों ही १० बजाने को प्रस्तुत होती है, त्यों ही वे ऐसे घबरा जाते हैं कि जान सूख जाती है, पैर टेढ़े पड़ने लगते हैं। मन-ही-मन सोचते हैं, आज कड़ी डाँट पड़ेगी। हाय! कहीं नौकरी न चली जाय, इत्यादि।

ये दोनों ही शिक्षा-प्रद और मनोरंजक व्यंग्य-चित्र श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा की चित्र-कला-कुशलता के नमूने हैं।

शौक़ीनों के नाम खुली चिट्ठी

प्रायः शौक़ीन लोग स्वदेशी कपड़े को यह कहकर नहीं ख़रीदते हैं कि स्वदेशी कपड़ा अच्छा नहीं मिलता और दाम भी ज़्यादा लगते हैं। उन्हीं महाशयों के लिये ख़र्च व कोशिश से विलायती कपड़े को मज़बूती व सुंदरता में मात करनेवाला तिस पर भी क़ीमत सस्ता शुद्ध स्वदेशी कपड़ा तैयार कराया है और ज़ोर के साथ शौक़ीनों से अपील करते हैं कि एक बार हमारे रेशमी व सूती कपड़े को देश-कल्याण व रुपए की बचत के लिये मँगा देखिए। फिर तो आप सदा के लिये विदेशी कपड़ा छोड़कर स्वदेशी ही पहिनेंगे। हम सचाई के लिये गारंटी देते हैं कि जो माल आपको न पसंद हो उसे वापस भेजकर रुपया मँगा लीजिए।

प्योर रेशमी सिल्क

(सूट व कोट का सर्वोत्तम कपड़ा)

यह सिल्क विलायती भागलपुरी बनारसी रेशम से मज़बूत मुलायम चमकीला टिकाऊ देखने में मनोहर जिसको राजा रईस ताल्लुक़ेदार आफ़िसर वकील प्रोफ़ेसर मास्टर तथा स्टुडेंट इत्यादि से लेकर मामूली मनुष्य तक पहिन सके इसलिये इसकी क़ीमत भी मज़बूती के लिहाज से बहुत ही कम रक्खी है। एक कपड़ा मुद्दत तक काम देता है। मू० सिर्फ़ सात गज़ के थान का २८), बढ़िया का ३२) रु०।

अंडी सिल्क (रेशमी खद्दर)

[illegible] प्रसिद्ध आसाम के चर्ख़े से कते रेशम से तैयार करा[illegible] सुंदर अत्यंत सस्ती मुलायम जिस[illegible] वाला दुनिया में [illegible] कपड़ा [illegible] कोई रेशम बना हो [illegible] १० वर्ष तक तो ख़राब ही नहीं होता [illegible] गज़ के थान का दाम १२) से १५)

स्वदेशी ढाका

(रेशमी धारी के डोरिया)

नई-नई फ़ैशन सुंदर धारी कपड़े में महीन व चिकना विलायती को शर्मिंदा करनेवाला फ़ैंसी डोरिया ढाका की पुरानी कारीगरी की याद दिलाता है फिर भी मूल्य में सस्ता टिकाऊ होने से हरएक आदमी ख़रीद सकता है। मूल्य १२ गज़ के थान का ११) रु० से १५) रु० तक।

स्वदेशी मलमल

हमारी मलमल सुंदर महीन चिकनी होते हुए भी विलायती से दूनी मज़बूत और मूल्य में सस्ती है। गरमियों में कुरता चादरा दुपट्टा आदि के बड़े काम की है। मूल्य १२ गज़ के थान का ५) से ७) रु०।

ज़नानी साड़ियाँ व दुपट्टे

स्वदेशी संसार में श्रीमतियों के लिये साड़ी दुपट्टों का अभाव देखकर व खद्दर पहिनना असंभव समझकर हमने सुंदर रंगीन धूप छाँह अलपाका की तर्ज़ पर सादा व पाँचापाड़ धारीदार व प्लेन आदि कई डिज़ाइन की साड़ियाँ तैयार की हैं। मूल्य १० गज़वाली साड़ी के जोड़े का ६) रु० से ८) रुपए तक। दुपट्टे ३ गज़ के १॥ गज़ अर्ज़ के २) रु० से ३॥) रुपए तक।

मिलने का पता—

मैनेजर, दि स्व[illegible] क्लाथ सप्लाई स्टोर, नं० ५, इटावा

Registered No. A. 1127.

Printed and Published by K. D. Seth, at the Nawal Kishore Press, Lucknow.

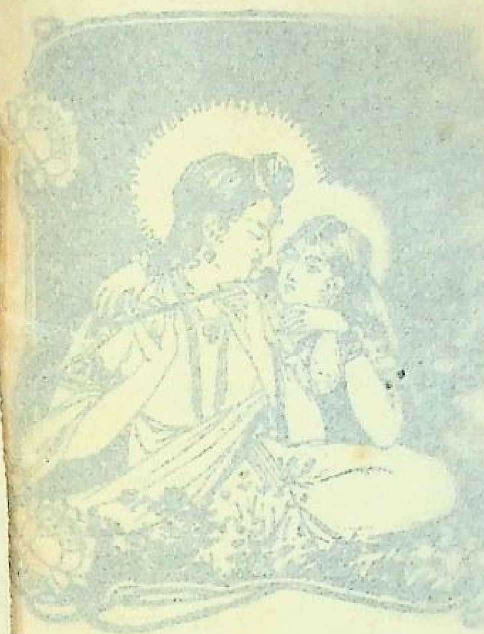
लेख-सूची

चित्र-सूची

(क) रंगीन

(ख) व्यंग्य

(ग) सादे





[विविध विषय-विभूषित, [illegible]]

सिता, मधुर मधु, [illegible]

पै यह साहित-माधुरी [illegible]

वर्ष १ खंड २ { आषाढ़-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् [illegible]
२० जुलाई, [illegible] } संख्या ६ पूर्ण संख्या १२

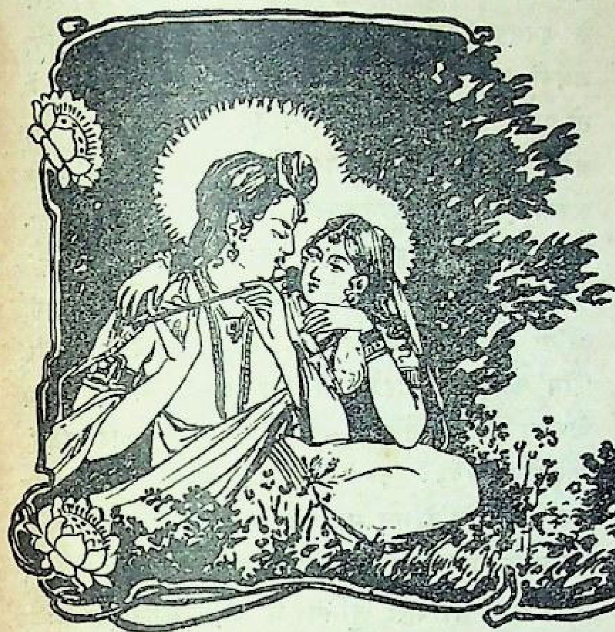
क्या से क्या !

चौपदे

सिर रही है न खाट टूटी भी,
[illegible] वैभव धन, न [illegible] [illegible] ।
[illegible] है फूट-फूट रोते वे,
जो रहे फूल-सेज पर सोते ॥ १ ॥
आज [illegible] बन गए हैं वे,
[illegible] जिनमें भरे हुए [illegible] थे ।
[illegible] [illegible] नहीं [illegible] भी थे
[illegible] और [illegible] पर [illegible] थे ॥ २ ॥
जो रहे [illegible] पर [illegible]
आज उनको [illegible] [illegible] हैं पग ।
[illegible] उठाना उन्हें पहाड़ हुआ,
जो उठाते पहाड़ [illegible] पर ॥ ३ ॥

[illegible]

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



माधुरी

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र, मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रस-मयी अनन्य !

वर्ष १ खंड २ | आषाढ़-शुक्ल ७, २९९ तुलसी-संवत् (१९८० वि०)— २० जुलाई, १९२३ ई० | संख्या ६ पूर्ण संख्या १२

क्या से क्या !

चौपदे

मिल रही है न खाट टूटी भी,
चैन, बेचैन बन, न क्यों खोते ।
आज हैं फूट-फूट रोते वे,
जो रहे फूल-सेज पर सोते ॥ १ ॥

आज बेढंग बन गए हैं वे,
ढंग जिनमें भरे हुए कुल थे ।
बाँध सकते नहीं कमर भी वे,
बाँधते जो समुद्र पर पुल थे ॥ २ ॥

जो रहे आसमान पर उड़ते,
आज उनके कतर गए हैं पर ।
सिर उठाना उन्हें पहाड़ हुआ,
जो उठाते पहाड़ उँगली पर ॥ ३ ॥

हैं रहे डूब वे गड़हियों में,
बेतरह बार-बार खा धोखा,
सूखता था समुद्र देख जिन्हें,
था जिन्होंने समुद्र को सोखा ॥ ४ ॥

जो सदा मारते रहे पाला,
वे पड़े टाल-टूल के पाले ।
आज हैं गाल मारते बैठे
जंगलों के खँगालनेवाले ॥ ५ ॥

तप-सहारे न क्या सके कर जो,
मन उन्हीं का मरा, बहुत हारा ।
हैं लहू-घूँट आज वे पीते,
पी गए थे समुद्र जो सारा ॥ ६ ॥

सब तरह हार आज वे बैठे,
जो कभी थे न हारनेवाले ।

आप हैं अब उबर नहीं पाते,
स्वर्ग के भी उबारनेवाले ॥ ७ ॥
पेड़ को जो उखाड़ लेते थे,
हैं न सकते उखाड़ वे मोथे।
वे न हैं कूद-फाँद कर पाते,
फाँद जाते समुद्र को जो थे ॥ ८ ॥
जो जगत जाल तोड़ देते थे,
तोड़ सकते वही नहीं जाला।
वे मथे मथ दही नहीं पाते,
था जिन्होंने समुद्र मथ डाला ॥ ९ ॥
हैं कलेजा पकड़-पकड़ लेते;
औ' सके आँख के न आँसू थम।
क्या कहें, कुछ कहा नहीं जाता,
क्या रहे, और हो गए क्या हम ॥ १० ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

हिंदी-पुस्तकालयों का संगठन



पुस्तकालयों की उपयोगिता समझाने की ज़रूरत नहीं है। पुस्तकालय वास्तव में सरस्वती के मंदिर, ज्ञान के भांडार, साहित्य के यश-स्तंभ, विद्या के कल्पद्रुम आनंद के उद्यान और शांति के आधार हैं। किसी देश की सभ्यता देखने की इच्छा हो, तो उस देश के पुस्तकालयों को देख जाइए। किसी देश की उन्नति और अवनति की जाँच करना अभीष्ट हो, तो भी उस देश के पुस्तकालयों को ही देखना पड़ेगा। पुस्तकालय ही उर्बर मस्तिष्कवालों के लिये विशुद्ध भोजनालय, देश के नवयुवकों के लिये आदर्श शिक्षालय, जिज्ञासुओं के लिये पारदर्शी आचार्य, ज्ञान-पिपासुओं के लिये निर्मल नैसर्गिक निर्झर, सांसारिक चिंताओं से व्याकुल मनुष्यों के लिये विश्राम-स्थल और व्यस्त-मस्तिष्कों के लिये मनोरंजन के सर्वोत्तम साधन तथा साहित्यिक पुरुषों की पवित्र जीवन-यात्रा के श्रेष्ठ संबल हैं।

भारतवर्ष में पुस्तकालयों की संख्या यथेष्ट नहीं है। पाश्चात्य देशों के रेलवे-स्टेशनों पर, होटलों में, गिरजा-घरों में, सैरगाहों में, सरायों में, बाज़ारों में और शहरों के हरएक मुहल्ले में पुस्तकालय हैं। इँगलैंड, फ़्रांस, जर्मनी, जापान और अमेरिका आदि समुन्नत देशों में तो प्रायः घर-घर पुस्तकालय मौजूद हैं। यहाँ तक कि बड़े आदमियों के घरों में परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अपना एक ख़ास पुस्तकालय रखता है। इन सभ्यताभिमानी देशों में एक-से-एक आदर्श पुस्तकालय हैं; जिनका पूर्ण वर्णन यहाँ असंभव है। शक्तिशाली देशों की तो बात ही निराली है, अस्तंगत-प्रताप प्राचीन 'रोम' की एक लाइब्रेरी में इस समय भी दो लाख चौरासी हज़ार पुस्तकें हैं—दो लाख पचास हज़ार मुद्रित, और शेष ३४००० हस्त-लिखित! पाठकों को स्मरण होगा कि योरप के गत महायुद्ध के समय बेलजियम का एक प्रसिद्ध पुस्तकालय जर्मनों ने जला दिया था! उस समय सारी अख़बारी दुनिया में बड़ा कोलाहल मचा था। सुना गया था, उस पुस्तकालय में दो लाख से भी अधिक प्राचीन हस्त-लिखित ग्रंथों का संग्रह था। बेलजियम-जैसे छोटे देश की जब यह दशा है, तब औरों की बात कौन कहे। कहते हैं, किसी विदेशी संग्रहालय में संसार की सबसे बड़ी और सबसे छोटी पुस्तक रक्खी हुई है। बड़ी का नाम "वर्दी बाइबिल" है, और छोटी का "हैम्लेट"। बड़ी पुस्तक की लंबाई दस फ़ीट, मुटाई दो फ़ीट, और पृष्ठ-संख्या ३० हज़ार है। छोटी की लंबाई सिर्फ़ ¼ इंच है। उसमें सिर्फ़ ८० पन्ने हैं। छपाई साफ़-सुथरी है। सजावट सुंदर है। किंतु उसे पढ़ने के लिये सूक्ष्म-दर्शक यंत्र का प्रयोग करना पड़ता है। इस देश के पुस्तकालयों में ऐसी पुस्तकों का संग्रह नहीं किया जाता। बंबई के निर्णय-सागर-प्रेस से श्रीमद्भगवद्गीता और दुर्गा-सप्तशती आदि के बहुत ही छोटे संस्करण (ताबीज़नुमा आकार के) प्रकाशित हुए हैं। आपको शायद ही किसी हिंदी-पुस्तकालय में उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो। यदि आप पूछेंगे, तो यही उत्तर मिलेगा कि "यंत्र में मढ़ाने और सफ़र में नित्य पाठ करने योग्य पुस्तिकाओं के संग्रह से क्या लाभ?"

विदेशों की बात जाने दीजिए। वहाँ की परिस्थिति से यहाँ की परिस्थिति सर्वथा भिन्न है। अपने ही देश के अन्यान्य पुस्तकालयों को देखिए। हिंदी-पुस्तकालयों से

उनकी दशा कहीं अच्छी है । अँगरेज़ी-पुस्तकालयों की स्थिति तो सर्वत्र संतोष-जनक है । इसका कारण स्पष्ट है । सरकारी विश्व-विद्यालयों, महाविद्यालयों, अन्य सार्वजनिक संस्थाओं, राजों महाराजों और वकील-बैरिस्टरों तथा विद्या-व्यसनी धनाढ्यों के ख़ास पुस्त-कालयों को छोड़कर यहाँ कुछ प्रसिद्ध सार्वजनिक अँगरेज़ी-पुस्तकालयों की थोड़ी-सी चर्चा सुन लीजिए। सन् १९१८ ई० की Indian Literary Year Book के अनुसार कलकत्ते की 'इंपीरियल लाइब्रेरी' (मेटकाफ़-हाल) में उस समय लगभग २० हज़ार पुस्तकें थीं । पटने की 'ओरियंटल पबलिक (खुदाबख़्श ख़ाँ) लाइब्रेरी' में भी अरबी-फ़ारसी की ५००० हस्त-लिखित और लगभग एक लाख रुपए की अँगरेज़ी की पुस्तकें तथा चीन फ़ारस, मध्य-एशिया और हिंदुस्तान की बनी हुई बेश-क़ीमत पुरानी तसवीरें बहुत थीं । इसी प्रकार लखनऊ की 'पबलिक लाइब्रेरी' में १४ हज़ार अँगरेज़ी की पुस्तकें और ४००० सरकारी रिपोर्टें आदि थीं । 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' के शाखा-पुस्तकालय (बंबई) में भी उस समय लगभग एक लाख और इलाहा-बाद की 'पबलिक लाइब्रेरी' में ३१२५० पुस्तकें थीं। आप समझ सकते हैं कि इधर के छः वर्षों में इन अँगरेज़ी-पुस्तकालयों की दशा कहाँ तक उन्नत हुई होगी। कलकत्ता-निवासी बाबू पूर्णचंद्र नाहर जैन एम्० ए०, बी० एल्० (४८, मिरर-स्ट्रीट) के घर पर एक बहुत बड़ा संग्रहालय है। उसमें प्राचीन अमूल्य चित्रों, मूर्तियों, पुस्तकों तथा सिक्कों का दर्शनीय संग्रह है । नाहरजी के पास अनेक अप्राप्य हस्त-लिखित ग्रंथ भी संगृहीत हैं । आपने ही इँगलैंड-निवासी प्रसिद्ध इतिहास-लेखक स्वर्गीय विंसेंट स्मिथ साहब और गोलोक-वासी बाबू हरिनाथ दे (१३ भाषाओं के एम्० ए० और इंपीरियल लाइब्रेरी के योग्य लाइब्रेरियन) के निजी पुस्तकालयों को नीलाम में ख़रीद लिया था। भारतीय लिंग्विस्टिक सर्वे की रिपोर्ट की केवल नव प्रतियाँ ही छपी थीं । उनमें से भी एक आपके पुस्तकालय में है । समस्त संसार के सुविख्यात पुस्तकालयों के सूचीपत्र आपके संग्रहालय में सुरक्षित हैं। कोई ऐसा प्रसिद्ध विद्वान् कलकत्ते में नहीं आता, जो नाहरजी का संग्रहालय देखकर मुग्ध न हो जाता हो । कहते हैं, पूने की 'भांडारकर ओरियंटल रिसर्च लाइब्रेरी', प्रयाग के पाणिनि-कार्यालय की 'भुवनेश्वरी-लाइब्रेरी', काशी के क्वींस कॉलेज के 'सरस्वती-भवन' तथा अदयार (मदरास) की 'थियासोफ़िकल लाइब्रेरी' में संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों का अच्छा संग्रह है । पूने की 'भांडारकर-लाइब्रेरी' में लगभग २० हज़ार हस्त-लिखित संस्कृत और प्राकृत आदि के ग्रंथ हैं। आरे के 'जैन-सिद्धांत-भवन' में भी प्राचीन जैन-साहित्य के दुर्लभ ग्रंथों का बहुत ही बढ़िया संग्रह है । इसी प्रकार संस्कृत-भाषा के और भी कितने ही दर्शनीय संग्रहालय हैं।

अँगरेज़ी-पुस्तकालयों की अच्छी दशा का कारण है अँगरेज़ी-राज्य और संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के संग्रहालयों का आदर केवल वे ही करते हैं, जो प्रत्न-तत्त्व-विशारद हैं, और लार्ड कर्ज़न के समय से पुरातत्त्व-शोधन-विभाग की स्थापना हो जाने के कारण उनका महत्त्व विशेष बढ़ गया है । कितने पुरातत्त्वानुसंधान के प्रेमी विदेशी विद्वान् केवल प्राचीन हस्त-लिखित संस्कृत-ग्रंथों की खोज करने के लिये ही भारतवर्ष आते हैं । किंतु अँगरेज़ी-भाषा इस समय भारत की राष्ट्र-भाषा कहलाती है, और संस्कृत-भाषा संसार की सबसे प्राचीन, समुन्नत तथा सभ्य भाषा मानी जाती है, इसी-लिये इन दोनों भाषाओं के पुस्तकालयों का विशेष महत्त्व है। मैसूर, बड़ौदा, जयपुर, जोधपुर और अलवर आदि देशी रियासतों के राजकीय पुस्तकालयों में भी संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों का ही अधिकतर संग्रह है, और वह वास्तव में बहु-मूल्य है।

यदि अँगरेज़ी और संस्कृत-भाषाओं के ग्रंथालयों की बात छोड़ दी जाय, तो भी भारत की अन्य प्रांतीय भाषाओं के पुस्तकालयों की दशा हिंदी-पुस्तकालयों से कहीं अच्छी है । बंबई के 'मराठी-ग्रंथ-संग्रहालय (शारदा-मंदिर)' का सचित्र परिचय आज से कुछ दिन पहले प्रयाग की सरस्वती में निकला था । उस 'शारदा-मंदिर' के संरक्षक बड़ौदा-नरेश हैं, और उसमें मराठी-भाषा के लगभग चौदह-पंद्रह हज़ार ग्रंथ संगृहीत हैं। पूना, बंबई और नागपुर आदि नगरों में भी मराठी-भाषा के अच्छे-अच्छे पुस्तकालय हैं । गुजराती-भाषा के पुस्तकालयों में अहमदाबाद की 'सस्तुं-साहित्य-संवर्द्धिनी समिति' और 'गुजरात-साहित्य-सभा' के पुस्तकालय

विशेष उल्लेखनीय हैं । अहमदाबाद में एक 'गुजरात-वर्नाक्युलर-सोसाइटी' है ; जो सन् १८४८ में स्थापित हुई थी । आज से ५-६ वर्ष पहले, उससे संबद्ध रजिस्टर्ड लाइब्रेरियों की संख्या सवा तीन सौ के लगभग थी, और उसके लगभग ६०० आजीवन-सदस्य थे ! सन् १८८३ में स्थापित बंगलोर-सिटी (मैसूर) की 'ओरियंटल लाइब्रेरी' के सदस्यों और नवागंतुक सज्जनों की संख्या, १९१८ ई० में, लगभग ३२ हज़ार तक पहुँच गई थी ; जिसमें लगभग ८ हज़ार तो स्त्रियाँ ही थीं ! बेजवाड़े में भी एक 'आंध्रदेशीय साहित्य-सभा' है ; जिससे तेलगू-भाषा के दो-ढाई सौ पुस्तकालय संबद्ध हैं । न-जाने हिंदी को कब ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा !

वंग-भाषा की तो बात ही न पूछिए । समस्त भारत-वर्ष में वंग-भाषा के पुस्तकालय वर्तमान हैं । सम्मेलन के हेड क्वार्टर (प्रयाग) में 'वंग-साहित्योत्साहिनी सभा' या 'बांधव-समिति' नाम की संस्था, सन् १८७७ में, स्थापित हुई थी । उसमें आज भी हज़ारों पुस्तकें हैं । पटना, भागलपुर, आगरा, जबलपुर, दिल्ली, काशी, मथुरा, बंबई, शिमला, दार्जिलिंग, जगन्नाथ-पुरी, कटक और नैनीताल आदि अनेक स्थानों में भी वंग-भाषा के पुस्तकालय हैं । ख़ास बंगाल-प्रांत में तो लगभग एक हज़ार बँगला-पुस्तकालय हैं । तारीफ़ यह कि सबकी दशा अच्छी है । कलकत्ते की 'चैतन्य-लाइब्रेरी' आज से ३४ वर्ष पूर्व स्थापित हुई थी । इसमें आजकल लगभग १५ हज़ार पुस्तकें हैं, और १२५ से अधिक सामयिक पत्र आते हैं । श्रीमान् वर्द्धमान-नरेश इसके संरक्षक हैं । कलकत्ते में बँगला की ऐसी-ऐसी बीसों लाइब्रेरियाँ हैं । किंतु कवींद्र रवींद्र, आचार्य प्रफुल्लचंद्र, जगदीशचंद्र वसु और 'विश्वकोष'-संपादक, प्राच्य-विद्या-महार्णव नगेंद्रनाथ वसु तथा 'पृथिवीर इतिहास' के लेखक दुर्गादास लाहिड़ी के निजी पुस्तकालयों को यदि छोड़ दिया जाय, तो कलकत्ते में बँगला का सबसे बड़ा * सार्वजनिक संग्रहालय 'वंगीय साहित्य-परिषद्' ही है । इस परिषद् की स्थापना १८९३ ई० में हुई थी । २४३-१, अपर सरकुलर रोड पर इसका स्वतंत्र भवन है ; जो दुमंज़िला है । इसके पास ही कलकत्ते का जगत्प्रसिद्ध जैन-मंदिर है । परिषद् की इमारत से सटा हुआ 'रमेश-भवन' बन रहा है । ख़ास-ख़ास लोगों ने 'रमेशचंद्र दत्त' का स्मारक भवन बनाने के लिये रुपए दिए हैं । परिषद्-भवन के मुख्य द्वार पर उसके संस्थापकों (पंडित रामेंद्रसुंदर त्रिवेदी और व्योमकेश मुस्तफ़ी) की मूर्तियाँ स्थापित हैं । प्रवेश-द्वार के सामने ही संरक्षक राजों-महाराजों और वंग-साहित्य-सेवी विद्वानों के विशाल तैल-चित्र टँगे हुए हैं । नीचे पुस्तकालय और वाचनालय है । ऊपर व्याख्यान-शाला और अप्राप्य वस्तुओं का संग्रहालय है । व्याख्यान-शाला के उच्च मंच की दीवारों पर वंग-साहित्य-सम्राट् वंकिमचंद्र और माइकेल मधुसूदन दत्त आदि के बड़े-बड़े चित्र टँगे हुए हैं । इन्हीं चित्रों के सामने विद्यासागर महोदय का चित्र है । सभी स्वर्गीय लेखकों के चित्र चारों ओर लगे हुए हैं । राजा राममोहन राय की पगड़ी, विद्यासागर का टेबिल, वंकिमचंद्र की दावात और रमेशचंद्र दत्त की चिट्ठियाँ आदि अलभ्य वस्तुएँ, व्याख्यान-मंच से दक्षिण के कमरे में सजाकर, रक्खी हुई हैं । उत्तर के कमरे में हस्त-लिखित प्राचीन ग्रंथों का सुसज्जित संग्रहालय है । उसमें इस समय ५००० ग्रंथ हैं । हाल ही में देश-बंधु चितरंजन दास ने ४०० से भी अधिक

* कलकत्ते का सबसे बड़ा और बढ़िया हिंदी-पुस्तकालय सलकिया (हबड़ा) में है । इसके संस्थापक और संचालक हैं, सेठ सूरजमल नागरमल । यह संवत् १९७८ की जन्माष्टमी को स्थापित हुआ था । इस समय इसमें छः हज़ार से भी अधिक पुस्तकें हैं । प्रायः सभी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाएँ इसके सुसज्जित वाचनालय की शोभा बढ़ाती हैं । इसे मैंने स्वयं देखा है । इसका भवन बड़ा भव्य और सुंदर है । चमकीली आलमारियों में जिल्द-मढ़ी सजीली पुस्तकें, विषयानुक्रम और संख्यानुक्रम से, श्रेणी-बद्ध रक्खी हुई हैं । पुराने प्रसिद्ध मासिक पत्रों तथा वर्तमान प्रसिद्ध साप्ताहिकों और दैनिकों की पूरी फ़ाइलें बड़े सुरक्षित ढँग से यहाँ रक्खी गई हैं । इसमें पाठकों की कुल संख्या आज तक १० हज़ार से अधिक है, और मूल्य जमा करके पुस्तकें ले जानेवाले बाहरी सज्जनों की संख्या आज तक लगभग ७०० है । सेठजी ही इसका सारा ख़र्च देते हैं, और उन्होंने इसे सर्वांग-पूर्ण बनाने के लिये बीसों हज़ार रुपए ख़र्च करने का मंसूबा बाँधा है । सभी पुस्तक-प्रकाशकों को अपना नया सूचीपत्र इस पुस्तकालय में भेजना चाहिए ।

हस्त-लिखित ग्रंथ समर्पित किए हैं। हस्त-लिपियों में सब-से पुरानी दो हैं—एक चंडीदास-कृत 'कृष्ण-कीर्तन' की, लगभग ६०० वर्ष की, और दूसरी चैतन्य महाप्रभु के पार्श्ववर्ती सनातन गोस्वामी-रचित 'आदि-पर्व—महाभारत' की, शकाब्द १४२२, संवत् १५४३ की। इस परिषद् की ओर से एक पत्रिका भी निकलती है। अनेक महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ भी प्रकाशित हुए हैं। उनमें एक नागराक्षरों में है। उसका नाम है, 'संगीत-राग-कल्पद्रुम', और उसका संपादन किया है, प्राच्य-विद्या-महार्णव नगेंद्रनाथ वसु ने। उसके रचयिता हैं, कृष्णानंद व्यासदेव राग-सागर। उस-की पृष्ठ-संख्या १७०० और गीत-संख्या १३८९२ है। वह तीन खंडों में छपा है। प्रथम और द्वितीय खंड में नागराक्षरों का प्रयोग किया गया है; पर तृतीय खंड बँगला में है। शुरू में इस बृहदाकार ग्रंथ का मूल्य ३०) था; पर अब परिषद् के सदस्यों के लिये १०) और सर्व-साधारण के लिये ११) कर दिया गया है। भारत में प्रचलित सभी भाषाओं के गान इसमें हैं। कहाँ तक लिखूँ, 'परिषद्' देखने ही योग्य है। बंगाल के मैमन-सिंह-नगर में बाबू केदारनाथ मजूमदार-नामक एक सज्जन के घर पर जो 'रिसर्च हाउस लाइब्रेरी' है, वह प्राचीन ग्रंथों के संग्रह में परिषद् से भी बढ़ी-चढ़ी है। वहाँ पुरानी हस्त-लिखित पुस्तकों और बँगला की पुरानी पत्र-पत्रिकाओं की फ़ाइलों का खूब संग्रह है। दो-तीन हज़ार सामयिक पुस्तकें भी हैं। पर वह ख़ासकर पुरानी पुस्तकों के लिये ही प्रसिद्ध है। किंतु ऐसे-ऐसे प्रसिद्ध घरेलू पुस्तकालय बंगाल में कई हैं।

बंगाल में पुस्तकालयों की संख्या अधिक और दशा संतोष-जनक होने का प्रधान कारण है यथेष्ट शिक्षा-प्रचार। जहाँ वसंत-पंचमी के दिन घर-घर आबाल-वृद्ध नर-नारी के मुख से भक्ति-पूर्वक निकल पड़ता है—"वीणा-पुस्तक-रंजित-हस्ते, भगवति भारति देवि नमस्ते", वहाँ अ-विद्या का अंधकार कैसे रह सकता है? बंगाल की तरह बड़ौदा-राज्य में भी शिक्षा का अच्छा प्रचार है। मैंने अपनी पुरानी डायरी में कहीं से यह नोट किया है कि "बड़ौदा के सार्वजनिक पुस्तकालय में एक लाख पुस्तकें हैं। अकेले बड़ौदा-नगर के पुस्तकालयों में सब मिलाकर डेढ़ लाख पुस्तकें हैं। नगर से बाहर, राज्य में, ४० बड़े पुस्तकालय हैं; जिनमें ४० हज़ार पुस्तकें हैं। गाँवों में १९१ पुस्तकालय हैं; जिनमें २५ हज़ार पुस्तकें हैं।" भगवन्! हिंदी-प्रधान प्रांतों ने क्या अपराध किया है?

मेरी नोट-बुक में किसी अख़बार की कतरन का एक टुकड़ा पड़ा हुआ है। उसमें लिखा है—"अनुमान है कि १५वीं शताब्दी में, सारे संसार में, केवल ४० हज़ार पुस्तकें थीं। १६वीं शताब्दी में उनकी संख्या १७ हज़ार और बढ़ गई। १७वीं शताब्दी में वह संख्या बढ़कर १,२२,००,००७ तक पहुँची। १८वीं सदी में * २० लाख और १९वीं में ८२ लाख ५० हज़ार पुस्तकें संसार-भर में थीं। किंतु बीसवीं सदी में समस्त संसार की पुस्तकों की संख्या १,२१,१०,००० तक पहुँच चुकी है! इसके अतिरिक्त १ करोड़ ५० लाख मासिक पत्र भी हैं!" इस आनुमानिक विवरण से भी यही प्रकट होता है कि पंद्रहवीं शताब्दी में—भारतवर्ष तो दासता की जंज़ीर में †

* १८वीं और १९वीं सदी में पुस्तकों की संख्या क्यों कम हो गई, और १७वीं सदी की पुस्तक-संख्या २०वीं सदी की पुस्तक-संख्या से क्यों अधिक थी, इस पर मैं अपने दूसरे लेख में विचार करूँगा। उस लेख में समस्त संसार के पुस्त-कालयों का वर्णन रहेगा। उसमें पुस्तकालय का प्रामाणिक इतिहास, काल-क्रमानुसार उसका विकास और ह्रास, तथा अति प्राचीन काल से आज तक के पुस्तकालयों के रूप में समया-नुकूल परिवर्तन आदि विषयों की विवेचना भी रहेगी। मैं अभी खोज कर रहा हूँ। इस विषय पर एक बड़ी-सी पुस्तक ही लिखना अभीष्ट है। संतोष-जनक सामग्री संग्रह कर लेने पर मैं शीघ्र पुस्तक पूरी कर दूँगा।

† यद्यपि १५वीं सदी में भारत पराधीन हो चुका था, तथापि उस समय यहाँ विद्यानुराग की न्यूनता नहीं थी। दर-बारों में कवि और ग्रंथकार रहा करते थे। जनता को भी पेट की कुछ चिंता नहीं थी। हिंदुओं में धर्म-प्राणता, आज की तरह, नष्ट नहीं हो गई थी। मुसलमान-शासकों की शनैश्चर-दृष्टि से धर्म-ग्रंथों की रक्षा करनी पड़ती थी। उस समय के सुर-क्षित अधिकांश ग्रंथ औरंगज़ेबी और नवाबी ज़माने में नष्ट हो गए। यदि मुसलमान-बादशाह हिंदुओं के मठों, मंदिरों और विद्यालयों के ग्रंथ-भांडारों पर भी हाथ साफ़ न करते, तो आज भारतीय साहित्य के ग्रंथों की संख्या एतद्देश-निवासियों की संख्या से भी कहीं अधिक होती। मेरा अनुमान है कि १५वीं सदी की ४० हज़ार पुस्तकों में आधी से अधिक भारत में ही रही होंगी।

जकड़ा ही हुआ था—पाश्चात्य संसार भी विशेष विद्या-विभूति-संपन्न नहीं था। पाश्चात्य सभ्यता आज उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई मानी जाती है ; पर जिस समय भारतवर्ष के विराट् ग्रंथ-संग्रहालयों को जला-जलाकर हम्माम के हौज़ का पानी गरम किया जाता था, चाय बनाई जाती थी, उस समय वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता पालने में झूल रही थी। किसी दिन इस भारतवर्ष में भी नालंद, कुलगंग और तक्षशिला-जैसे विश्व-विश्रुत विश्व-विद्यालय तथा काशी, नदिया और पूना जैसे विद्यापीठ मौजूद थे । उनके ग्रंथ-संग्रहालय संसार में अपना सानी नहीं रखते थे । धाराधीश भोजराज की कृपा से कभी इसी भारतवर्ष के घर-घर में पुस्तकालय रह चुके हैं, और किसानों तथा मज़दूरों तक में विद्या की चर्चा चल चुकी है । अस्तु ।

जहाँ तक मेरी जानकारी है, मैं कह सकता हूँ कि भारतेंदु-काल से पहले हिंदी के सार्वजनिक पुस्तकालयों का बहुलांश में अभाव था । यह भी कहा जा सकता है कि हिंदी-पुस्तकें भी बहुत कम थीं । सुना जाता है, स्वर्गीय श्रीशिवसिंहजी सेंगर के घर पर एक अच्छा-सा पुस्तकालय था । किंतु उसमें फ़ारसी और संस्कृत की पुस्तकें भी शामिल थीं । संभव है, अयोध्या-नरेश महाराजा मानसिंह (कविवर द्विजदेव), रीवाँ-नरेश महाराजा रघुराजसिंह, राजा लक्ष्मणसिंह और राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिंद' आदि कविता-विलासी साहित्य-सेवियों के पास हिंदी-पुस्तकों का ख़ासा संग्रह हो । किंतु उनके पुस्तकालयों को हिंदी-संसार नहीं देख सका । कौन कह सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र, अंबिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, लल्लूलाल, शालिग्राम, श्रीनिवासदास, राधाकृष्णदास, बालकृष्ण भट्ट, केशवराम भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, देवीप्रसाद (पूर्ण) और सत्यनारायण कविरत्न आदि हिंदी-साहित्याराधकों के पास हिंदी-ग्रंथों का संग्रह न होगा ? किंतु उन साहित्य-शिल्पियों के मंजु कर-कंजों के निरंतर स्पर्श से पवित्रीकृत पुस्तकें अब किस सार्वजनिक पुस्तकालय में सुरक्षित हैं, जहाँ पहुँचकर हिंदी-प्रेमी उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करें ? बंगाल के साहित्य-सेवी तो मरने से पहले ही अपनी ग्रंथ-संपत्ति सार्वजनिक पुस्तकालयों को सौंप जाते हैं। जहाँ तक मुझे ख़बर है, श्रद्धास्पद द्विवेदी-जी के सिवा, हिंदी-संसार में किसी ने ऐसा सुकार्य नहीं किया है । हाँ, कलकत्ता-निवासी मारवाड़ी-कुलालंकार स्वर्गीय बाबू रूड़मलजी गोयनका ने जो लाखों रुपए ख़र्च करके बड़े शौक़ से अलभ्य ग्रंथों का संग्रह किया था, वह उन्होंने हिंदू-विश्व-विद्यालय के ग्रंथालय के निमित्त माननीय मालवीयजी को समर्पित कर दिया था । उपर्युक्त स्वर्गीय हिंदी-भक्तों में जिनके वंशधर वर्तमान हैं, उनकी पुस्तकें संभवतः सुरक्षित (?) होंगी; पर अधिक दिन तक के लिये नहीं । किंतु जो केवल अपना 'जरा मरण-रहित यशःकाय' ही इस संसार में छोड़ गए हैं, उनके 'प्यारे खिलौने' न-जाने आज कहाँ, किस दशा में, पड़े होंगे !

जो हो, इतने बड़े आडंबर-पूर्ण निवेदन के बाद मैं अब मूल-विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करता हूँ । उपर्युक्त निवेदन आगे की बातों को स्पष्ट रीति से समझने में सहायक होगा । 'माधुरी' के विज्ञ वाचक अवश्य जानते होंगे कि बुलंदशहर की नागरी-प्रचारिणी सभा के मंत्री (पंडित बाबूराम शर्मा) ने, सन् १९१८ ई० में, हिंदी-डाइरेक्टरी प्रकाशित की थी । उसकी भूमिका में शर्माजी लिखते हैं—"पत्र-पत्रिकाओं में संस्थाओं की जानकारी के लिये विज्ञापन प्रकाशित कराए गए, जिन संस्थाओं का ज्ञान था, उन्हें पत्र लिखे गए किसी-किसी संस्था को तीन-तीन, चार-चार पत्र लिखे गए, परंतु खेद है कि मंत्री महोदयों ने उत्तर तक देने की दयालुता नहीं की । × × × हर्ष की बात है कि आफ़्रिका-जैसे दूरस्थ महाद्वीप में आवश्यक सूचना और पत्रादि × × × ठीक समय पर पहुँचे, जिनके उत्तर यथासमय प्राप्त हुए ; इसके लिये हम कृतज्ञ हैं । परंतु आश्चर्य की बात तो यह है कि आफ़्रिका से तो हमें उत्साह-ध्वनि सुनाई दे, और भारत की सभा-संस्थाओं के मंत्री महोदयों के कानों पर 'जूँ' भी न रेंगे । अस्तु !"

ये शर्माजी के अविकल वाक्य क्या कहते हैं ? क्या इनसे यह ध्वनि नहीं निकलती कि 'हिंदी-पुस्तकालयों के संगठन' की बड़ी आवश्यकता है ? जब तक उनका संगठन न होगा, तब तक उनसे हिंदी का हित-साधन नहीं हो सकता । दो-चार को छोड़कर अन्य सभी हिंदी-पुस्तकालयों का कार्य श्रृंखला-शून्य है । उनकी व्यवस्था इतनी सदोष है कि उनकी उद्देश्य-सिद्धि में भी बाधा

पहुँचती है। अधिकांश पुस्तकालय ऐसे हैं, जहाँ बैठकर पाठक बहस भी किया करते हैं, जहाँ वाचनालय की मेज पर पत्र-पत्रिकाएँ अस्त-व्यस्त पड़ी रहती हैं, और जहाँ की पुस्तकें दो-चार पाठकों के हाथों में जाते-जाते रद्दी हो जाती हैं। पुस्तकाध्यक्ष और पाठक, दोनों की असावधानता से पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों की दुर्दशा होती है। पुस्तकालयों से पुस्तकें ले जाकर पढ़नेवाले सज्जनों के बारे में एक अँगरेज़ी के कवि ने कैसा अच्छा कहा है—

"Read slowly, pause frequently,
Think Seriously.
Keep cleanly, Return only
With the corners of the leaves
Not turned down."

अर्थात्, "पुस्तक पढ़ना हो, तो धीरे-धीरे ध्यान-पूर्वक पढ़ो, ठौर-ठौर ठहर-ठहरकर गंभीरता-पूर्वक विचार करते जाओ, पुस्तक साफ़-सुथरी रक्खो, और उसे पुस्तकालय में लौटाने जाओ, तो ऐसी अच्छी दशा में वापस करो कि कहीं उसके एक पन्ने का भी कोई कोना न मुड़ा हो।"

कवि और उपदेशक भले ही यह कहते रहें, पर हिंदी-पाठक उनकी क्यों सुनने लगे! जो अपने कमरे की चीज़ें सँभालकर रखने में आलस्य करते हैं, उन्हें कहाँ फ़ुर्सत है कि भाड़े पर लाई हुई पुस्तक को सुरक्षित रक्खें? हिंदी-पुस्तकालयों की पुस्तकें ख़ूब सफ़र (Suffer?) किया करती हैं—एक ही प्रस्थान में कई घर घूम आती हैं। जो किसी पुस्तकालय का सदस्य होता है, उससे, मुफ़्त पुस्तक पढ़ने के लोभ से कई दर्जन सज्जन दोस्ती पैदा कर लेते हैं! फल यह होता है कि कहीं जिल्द ग़ायब, कहीं चित्र ग़ायब, कहीं दो-चार पन्ने ग़ायब, और कहीं पुस्तक ही ग़ायब! जहाँ पुस्तकों की ऐसी दुर्दशा है, वहाँ पुस्तकालयों की रक्षा चक्रपाणि ही कर सकते हैं।

यदि सच पूछिए, तो जो ग्रंथों का वास्तविक आदर करना नहीं जानता, उसे ग्रंथ-पाठ का अधिकार ही नहीं है। किंतु पुस्तकाध्यक्ष यदि पुस्तक की दुर्दशा पर झुँझलाकर पाठक से जवाब तलब करे, तो महाशयजी चंदा देना ही बंद कर दें, और फिर किसी दूसरे पुस्तकालय का संहार करने के लिये चवन्नी ख़र्च कर डालें! इस प्रकार आर्थिक संकट उपस्थित होने के भय से विवश होकर अधिकांश हिंदी-पुस्तकालयों को अपनी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का श्राद्ध कराना पड़ता है।

पाठकों के साथ-साथ पुस्तकाध्यक्ष का भी कुछ दोष होने पर भी उसके लिये उसे कोसना अनुचित है। हिंदी-पुस्तकाध्यक्षों को यहाँ पुस्तक-रक्षा-विषयक शिक्षा नहीं दी जाती। वे साधारण वेतन-भोगी नौकर कहे जा सकते हैं, पर लाइब्रेरियन नहीं। अँगरेज़ी-पुस्तकालयों के लाइब्रेरियनों का एक एसोसिएशन (संघ) है। उसके वार्षिक अधिवेशन नियमित रूप से हुआ करते हैं। उसकी रिपोर्टें देखने से मालूम होता है कि अँगरेज़ी-पुस्तकालयों के लाइब्रेरियन सुयोग्य और मोटी तनख़्वाह-वाले होते हैं। पाठक उनका सम्मान भी करते हैं। पुस्तकालय-संबंधी प्रत्येक बात की वे पूरी जानकारी रखते हैं। पुस्तकालय में किस विषय की कितनी पुस्तकें हैं, किस कवि या लेखक की कौन-कौन पुस्तकें हैं, और कौन-कौन नहीं हैं, किस विषय की कौन-सी सर्वोत्तम पुस्तक है, किसी ख़ास विषय का ग्रंथ लिखने के लिये कौन-कौन पुस्तकें काम में लाए जाने के योग्य हैं, किस विषय पर लेख लिखने के लिये कहाँ क्या मसाला मिलेगा, और इस समय किस विषय की कौन-सी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक कहाँ से निकली है, इत्यादि बातों का ज्ञान अधिकांश अँगरेज़ी-लाइब्रेरियनों को हुआ करता है। सुना है, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के पुस्तकालयाध्यक्ष पंडित केदारनाथ पाठक को भी हिंदी संसार की अनेक ज्ञेय बातों का पूरा ज्ञान है।

सच पूछिए, तो काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ही हिंदी की पहली संस्था है, और उसका 'आर्यभाषा-पुस्तकालय' ही हिंदी का पहला पुस्तकालय है। सन् १८७६ में, कलकत्ते में, एक "हिंदू-साहित्य-समिति (Hindu Literary Society)" नाम की संस्था स्थापित हुई थी; पर उसका हिंदी से कोई संबंध न था। ता० १६ जुलाई, सन् १८९३ ई० को काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। इससे पहले का कोई हिंदी-पुस्तकालय सुना नहीं गया। पहले भी हिंदी-पुस्तकालय थे ज़रूर, मगर वे अधिकतर किसी एक विद्वान् की संपत्ति-मात्र थे। और, यदि कोई सार्वजनिक भी था, तो वह प्रसिद्ध अथवा सर्वप्रिय नहीं। ख़ैर, काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के बाद आरे की नागरी-प्रचारिणी सभा का नंबर है। यह संवत् १९४८ में स्थापित हुई थी, और इसके पुस्तका-

लय में इस समय छः हज़ार पुस्तकें, पुराने और नए मासिक पत्रों की फ़ाइलें, हिंदी की पुरानी और नई सभाओं की रिपोर्टें, और हस्त-लिखित तथा मुद्रित पुरानी पुस्तकें विशेष रूप से सुरक्षित हैं। कलकत्ते की 'बड़ा बाज़ार-लाइब्रेरी' भी सन् १९०१ में ही स्थापित हो गई थी। यह अब तक * चल रही है। इसकी अवस्था अच्छी है; पर व्यवस्था नहीं। हाँ, एक बात भूलता हूँ। सन् १८९८ ई० के सितंबर-महीने में मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार) की हिंदी-भाषा-प्रचारिणी सभा खोली गई थी। उसके साथ एक पुस्तकालय भी था, और उस समय की स्थिति के अनुसार अच्छा पुस्तकालय था। पर हिंदी-प्रेमी होने का दम भरनेवाले यारों ने बहुत-सी पुस्तकें बिना डकारे ही पचा डालीं। जो कुछ बच गईं, वे वहीं के कई पुस्तकालयों में बट गईं। जो हो, उस पुस्तकालय से तिरहुत (मिथिला)-प्रांत के प्रधान नगर मुज़फ़्फ़रपुर में हिंदी-प्रचार का काम बड़ी सफलता से हुआ था, इसमें संदेह नहीं। 'हिंदी-डाइरेक्टरी' के अनुसार जबलपुर की नागरी-साहित्य-प्रचारिणी सभा का 'विद्या-विनोद-पुस्तकालय' सन् १८९७ की जुलाई में खुला था और लश्कर (ग्वालियर) की हिंदी-साहित्य-सभा संवत् १९६० में खुली थी। इन पुस्तकालयों से भी पुराने पुस्तकालय हिंदी-संसार में हैं या नहीं, यह मैं नहीं जानता। सम्मेलन को चाहिए कि वह भारतवर्ष तथा विदेशों के हिंदी-पुस्तकालयों की विवरणात्मक सूची प्रकाशित करे उन्हें संबद्ध करे, उनके निरीक्षण के लिये अनुभवी निरीक्षकों को नियुक्त करे, उनके संगठन और संचालन की व्यवस्था करे, गमाश्तगरी और आरायज़-नवीसी की तरह पुस्तकालयाध्यक्षों के लिये भी कोई उपयुक्त परीक्षा नियत करे, और उनकी एक समिति भी संगठित कर दे। इस काम में सम्मेलन को अपनी प्रांतीय शाखाओं से बड़ी सहायता मिलेगी, और प्रत्येक हिंदी-हितैषी तथा पत्र-संपादक उसे करावलंब देगा।

महासम्मेलन से अथवा प्रांतीय सम्मेलनों से संबद्ध हो जाने पर हिंदी-पुस्तकालयों का संगठन सुचारु रूप से संपादित हो सकता है। किंतु प्रांतीय सम्मेलनों पर महासम्मेलन को सदा सावधान दृष्टि रखनी पड़ेगी। पुस्तकालयों का संगठन हो जाने पर हिंदी-प्रचार के सिवा हिंदी-साहित्य-संवर्द्धन में कितनी सुगमता होगी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। उन्हें संगठित करके उनका सुधार करना पड़ेगा। सुधार करने के समय इन बातों पर विचार करना होगा—

(१) उनकी आर्थिक अवस्था कैसी है?

(२) उनके कार्यकर्ता कैसे हैं? वे कार्य-तत्पर और सुयोग्य हैं या नहीं?

(३) उनके भवन कैसे हैं, और कैसे स्थान * में हैं?

* ख़ास कलकत्ता-शहर में बड़ा बाज़ार-लाइब्रेरी, महावीर-पुस्तकालय, माहेश्वरी-पुस्तकालय और ब्रह्मसेवक-पुस्तकालय आदि उल्लेख-योग्य हिंदी-पुस्तकालय हैं। १९१० ई० में हिंदी-साहित्य-परिषद् भी कलकत्ते में खुली थी, और एक नागरी-प्रचारिणी सभा भी। किंतु इस समय उन दोनों के अस्तित्व का पता नहीं है। उपर्युक्त पुस्तकालयों में दूसरे और चौथे को स्थान-संकोच के कारण कुछ असुविधा है; पर पहले और तीसरे को प्रशस्त व्याख्यान-शालाएँ भी मिली हैं, और मुफ़्त में मिली हैं। मैंने बंबई में तीन हिंदी-पुस्तकालयों को देखा था; जिनमें मारवाड़ी-हिंदी-पुस्तकालय की अवस्था अच्छी जान पड़ी। किंतु बंबई के हिंदी-पुस्तकालयों से कलकत्ते के हिंदी-पुस्तकालय अच्छी दशा में हैं। हाँ, ख़ास कलकत्ते के उक्त चारों पुस्तकालयों से दिल्ली (चाँदनी चौक) के मारवाड़ी-पुस्तकालय (१९१५ ई० में स्थापित) की अवस्था विशेष संतोष-जनक है। मैंने स्वयं उस पुस्तकालय में कई दिन लगातार जाकर इस बात की परीक्षा की है। उसकी व्यवस्था भी अच्छी है, जिसका श्रेय उसके संस्थापक सेठ केदारनाथ गोयनका को है। खेद है कि धनी-मानी मारवाड़ियों की अज्ञता के कारण उस पर ऋण-भार लद गया है। रंगून के मारवाड़ी-हिंदी-पुस्तकालय की भी आर्थिक अवस्था शोचनीय सुन रहा हूँ। व्यापार-प्रधान मारवाड़ी-जाति 'दान-वीर' कही जाती है, पर पुस्तकालयों के लिये वह दान-वीरता थोड़ी है!

* हिंदी-पुस्तकालयों में प्रयाग के 'भारती-भवन' का मंदिर सुंदर है। स्वर्गीय लाला ब्रजमोहन दास ने लगभग ४७ हज़ार की संपत्ति इसे दी थी; जिसमें से २५ हज़ार रुपए इलाहाबाद-बैंक में जमा हैं। १९१८ ई० में, इसमें, ४४३० पुस्तकें थीं। काशी-नागरी-प्रचारिणी के आर्य-भाषा-पुस्तकालय, भागलपुर के भगवान्-पुस्तकालय, गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय,

(४) उनकी पुस्तकें किस दशा * में हैं ?

(५) उनकी पुस्तक-सूची अक्षरानुक्रम, विषयानुक्रम, ग्रंथकारानुक्रम और प्रकाशकानुक्रम से अलग-अलग तैयार हुई है या नहीं ?

(६) उनके वाचनालय † और कार्यालय के बही-खाते कैसे हैं ?

(७) उनमें पुरानी और नई पत्र-पत्रिकाओं की फ़ाइलें किस तरह रक्खी गई हैं ?

(८) उनके आय-व्यय का हिसाब ठीक है या नहीं ?

(९) उनकी नियमावली और प्रबंध-शैली में क्या दोष है ?

ऐसी सब बातों पर विचार करके उनकी उन्नति के लिये प्रयत्न करना चाहिए। किंतु जब तक सम्मेलन को संबद्ध पुस्तकालयों से प्रति वर्ष नियमित आय न होगी, तब तक उनके लिये वह विशेष कुछ कर भी नहीं सकता। इसलिये प्रत्येक पुस्तकालय को अब शीघ्र ही सम्मेलन से संबद्ध हो जाना चाहिए, और सम्मेलन को भी, पुस्तकालयों के संगठन तथा संचालन के लिये, निर्णय-पूर्वक नियमोपनियमादि का निर्माण कराना चाहिए। संगठन से लाभ यह होगा कि—

(१) जब सम्मेलन का प्रस्तावित महापुस्तकालय (अथवा 'राष्ट्र-भाषा का विराट् संग्रहालय') तैयार होगा, तब वह समस्त संबद्ध पुस्तकालयों के प्रपितामह-पद पर

आदि के भवन भी बहुत अच्छे हैं। सुना है, फर्रुख़ाबाद, फ़ीरोज़पुर, कानपुर और भरतपुर आदि नगरों के पुस्तकालय बड़े सुंदर और स्वतंत्र भवनों में हैं। मैंने कानपुर के कई पुस्तकालयों को देखा है। उनके भवन तो उतने अच्छे नहीं हैं, और संभवतः किराए के हैं। हाँ, उनके कार्यकर्ता उत्साही जान पड़े। पुस्तकालय के लिये ऐसे स्थान में भवन रहना चाहिए, जो एकांत, शांत और स्वच्छ हो तथा भवन में हवा और रोशनी अधिक पहुँचती हो।

* पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की दशा, गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय में, सबसे अच्छी है। हनुमान्-पुस्तकालय (हवड़ा), भारती-भवन (प्रयाग) और आर्य-भाषा-पुस्तकालय (काशी) तथा मारवाड़ी-पुस्तकालय (दिल्ली) में भी पुस्तकों की दशा अच्छी ही है। मन्नूलाल-पुस्तकालय को मैंने कई बार देखा है। मुझे भारत के प्रायः सभी प्रांतों के प्रधान नगरों में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, और मैंने बड़े शौक़ से ढूँढ़-ढूँढ़कर पुस्तकालयों को देखा है; पर तो भी, मन्नूलाल-पुस्तकालय किसी से कम नहीं जँचा, बल्कि बहुतों से अच्छा ही जान पड़ा। २७-४-१७ के पाटलिपुत्र में मैंने उक्त पुस्तकालय का पूर्ण परिचय लिखा था। सन् १९११ में माननीय मालवीयजी ने उसे खोला था। उस साल उसमें हज़ारों मुद्रित पुस्तकों के सिवा प्राचीन हस्त-लिपियाँ १,००० थीं ; जिनमें २०० केवल हिंदी-काव्य-ग्रंथ थे। उनमें सबसे सुंदर पुस्तक थी, संवत् १९३७ की लिखी श्रीरामचंद्रिका की रुद्रजीत-कृत टीका। उस पुस्तकालय की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है। गया के सेठ सूर्यप्रसाद महाजन ने, अपने पिता की स्मृति में, लोकोपकारार्थ, उसकी सृष्टि और वृद्धि की है। इस पथ में वह धन-कुबेरों के आदर्श हैं।

† वाचनालय का हवादार और प्रकाशमय होना तो आवश्यक है ही, उसे शांति-पूर्ण भी होना चाहिए। वहाँ, ज़रूरत पड़ने पर, पाठकों को काग़ज़-पेंसिल आदि लेखन-सामग्री देने की भी व्यवस्था रहनी चाहिए। अँगरेज़ी-पुस्तकालयों के पाठक अपने साथ नोट-बुक और पेंसिल वग़ैरह हमेशा रखते हैं। किंतु हिंदी-पुस्तकालयों में उपन्यासों के प्रेमी तथा अख़बारों को उलट-पलटकर इधर-उधर रख देनेवाले पाठक ही प्रायः आते हैं। वाचनालयों को केवल मनोरंजन-गृह अथवा विनोद-शाला समझनेवाले ऐसे सज्जनों को लार्ड बायरन का यह उपदेश सदा स्मरण रखना चाहिए—

"In reading authors when you find
Bright passages, that strike your mind,
And which, perhaps, you may have reason,
To think on, at another season,
Be not contented with the sight,
But take them down in black and white.
Such a respect is wisely shown,
As makes another's sense one's own."

अर्थात् "जब तुम पुस्तकें पढ़ो, तब जो सुंदर रचनाएँ तुम्हें बहुत अच्छी जँचें, और जिन पर तुम अपने किसी अवकाश के समय अच्छी तरह विचार कर सको, उन्हें सिर्फ़ देखकर ही संतोष मत कर लो, बल्कि लिख लो। ऐसा करना बुद्धिमानी का काम और दूसरे के विचारों को अपना बना लेने का बड़ा अच्छा तरीका है।"

प्रतिष्ठित होकर, व्यास-नंदन शुकदेव की तरह, बालक होने पर भी, सम्मेलन के नाते, गौरवास्पद समझा जायगा; और इसलिये सम्मेलन, अपने संग्रहालय-विभाग द्वारा, सब पुस्तकालयों पर प्रभाव रख सकेगा।

(२) अपने परीक्षा-केंद्रों की संख्या-वृद्धि करने में सम्मेलन को सफलता होगी।

(३) सम्मेलन के प्रस्तावों और उद्देश्यों के प्रचार तथा साफल्य में सुगमता होगी।

(४) जिन प्राचीन ग्रंथों या अप्राप्य मुद्रित पुस्तकों का संग्रह किसी प्रकार सम्मेलन के संग्रहालय में न हो सकेगा, उनका पता लगाने में सम्मेलन विशेष सफल होगा। एतदर्थ सम्मेलन के लिये यह परमावश्यक होगा कि वह समस्त संबद्ध पुस्तकालयों के सूचीपत्रों, वार्षिक कार्य-विवरणों और नियमावलियों आदि का संग्रह कर रक्खे।

(५) किसी अनिष्टकारक पुस्तक का प्रचार रोकने में सम्मेलन बहुलांश में कृतकार्य हो सकेगा। अश्लील एवं भ्रष्ट साहित्य का प्रचार रुकने से गंदी पुस्तकों के प्रकाशक सँभल जायँगे।

(६) सम्मेलन-पत्रिका का प्रचार बढ़ेगा, और सम्मेलन की लेख-मालाओं, सालाना रिपोर्टों तथा पुस्तकों की ख़ासी खपत होगी।

(७) सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों में प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ेगी।

(८) हिंदी की सुविस्तृत डाइरेक्टरी तैयार करने में बड़ी सहायता मिलेगी।

(९) अन्यान्य अनेक लाभ होंगे * ; जिनसे हिंदी का पथ परिष्कृत, अधिकार दृढ़, क्षेत्र विस्तृत और भविष्य उज्ज्वल होगा।

पाठकप्रवरो, मैंने जो कुछ ऊपर लिखा है, सब संक्षिप्त रीति से, सूत्र-रूप में। यदि आप विचार करेंगे, तो सभी बातें स्पष्ट समझ में आ जायँगी। किंतु केवल समझ लेने से ही काम न चलेगा। आप तो जानते ही हैं कि सम्मेलन ने एक विशाल ग्रंथ-संग्रहालय बनवाने का इरादा किया है, और उसके लिये दो लाख रुपए की अपील प्रकाशित हुई है। यदि आपके पास द्रव्य और सात्त्विक दान की श्रद्धा हो, तो शीघ्र अपना कर्तव्य पूरा कीजिए। यदि आपके पास, या आपके किसी परिचित व्यक्ति के पास, हस्त-लिखित पोथियाँ हों, तो, अपने अभिप्राय के साथ, सम्मेलन को सूचना दीजिए। यदि आपके पास अलभ्य मुद्रित ग्रंथ हों, तो भी सम्मेलन से पत्र-व्यवहार कीजिए। यदि आप प्रकाशक हैं, तो अपनी सारी पुस्तकों के प्रत्येक संस्करण की एक-एक प्रति, अथवा जो सुलभ एवं समुपस्थित हो, सम्मेलन की सेवा में सादर समर्पित कीजिए। यदि आप लेखक और संपादक हैं, तो अपनी पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाओं को सम्मेलन-कार्यालय में भेजिए; साथ ही लेख और टिप्पणियाँ लिखकर, विविध सूचनाएँ प्रकाशित करके, सम्मेलन की सहायता भी कीजिए। और, यह भी याद रखिए कि यदि आप सम्मेलन के पृष्ठ-पोषक न बनेंगे, तो राष्ट्रभाषा-पद-वाच्य हिंदी का उन्नयन एवं गौरव-वर्द्धन करनेवाली सारी शक्तियाँ बिखरी हुई पड़ी रह जायँगी, और फिर हाथ मलने के सिवा कुछ हाथ न आवेगा।

सम्मेलन का संग्रहालय अब विना बने नहीं रहेगा; क्योंकि हिंदी-संसार के कर्मवीर टंडनजी उसके लिये किए जानेवाले उद्योग के मूल में हैं। इस वर्ष न सही, कुछ वर्षों के बाद ही सही, पर उसका बनना ध्रुव हो गया। उसकी आवश्यकता सबकी समझ में आ गई। आवश्य-

* उदाहरणार्थ, मान लीजिए, यदि सम्मेलन को अपने संग्रहालय में दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की फ़ाइलों का संग्रह करना हो, तो क्या वह इस कष्ट-साध्य कार्य में अपने संबद्ध पुस्तकालयों से सहायता नहीं ले सकता? प्रत्येक पुस्तकालय ख़ास-ख़ास दैनिकों और साप्ताहिकों की पूरी फ़ाइलें तैयार करके उसे प्रति वर्ष दे सकता है। सब पुस्तकालयों को सम्मेलन से पत्र-व्यवहार करके यह पहले ही निश्चित कर लेना होगा कि किसे किस पत्र की फ़ाइल देने का भार सौंपा गया है। हाँ, मासिक पत्रों की फ़ाइलों का संग्रह सम्मेलन-संग्रहालय को स्वयं करना पड़ेगा। किंतु जिन साप्ताहिकों और दैनिकों का संग्रह करना उसके लिये झंझट का काम होगा, उन्हीं पत्रों का संग्रह करने के लिये वह पुस्तकालय-विशेष से अनुरोध कर सकेगा। दैनिकों और साप्ताहिकों का संग्रह करना इसलिये आवश्यक होगा कि वे भारत-माता के रोज़नामचे हैं। किसी दिन ऐतिहासिक अनुसंधान करनेवाले विद्वानों के लिये इन देश की डायरियों का मूल्य आज से कहीं अधिक होगा।

कता ही आविष्कार की जननी है। अतएव यहाँ कई बातें विचारणीय हैं। क्या सम्मेलन को समस्त प्राचीन एवं नवीन ग्रंथों का संग्रह करने में असुविधा—कठिनाई—न होगी? क्या उसे सभी पुस्तक प्रकाशकों और पुस्तकालयों के सूचीपत्रों का पारायण न करना पड़ेगा? क्या उसे लेखकों से उनकी अपनी बनाई पुस्तकों की सविवरण सूची न माँगनी पड़ेगी? इत्यादि। कुछ सज्जन मेरी इन बातों को पढ़कर यही कहेंगे कि "राजा होंगे तो खायँगे क्या?"—यह तो वही मसल हुई। परंतु विचारशील पाठक इन बातों को पढ़कर स्वभावतः गंभीर और चिंताशील बन जायँगे। मेरा निवेदन यह है कि यदि आप उन असुविधाओं और झंझट-झमेलों से सम्मेलन का पिंड छुड़ाना चाहते हैं, तो कृपा करके "हिंदी-पुस्तक-कोष" की रचना करने में, उसे सर्वांग-सुंदर और सर्वथा संपन्न बनाने में, हाथ बटाइए। 'माधुरी'* के सिवा अन्यान्य पत्रों में भी आप उक्त कोष की चर्चा पढ़ चुके होंगे। वह कोष तैयार हो चला है। वह कोष श्रीमान् पंडित रामगोविंद त्रिवेदी (वेदांत-शास्त्री) के घोर परिश्रम का अनुपम फल होगा। उसमें आज तक की समस्त हिंदी-पुस्तकों का विवरणात्मक परिचय रहेगा, चाहे वे प्राचीन हों या नवीन, मुद्रित हों या अप्रकाशित, प्राप्य हों या अप्राप्य। उस कोष की सहायता, सम्मेलन के प्रस्तावित संग्रहालय की पूर्णता के लिये, अनिवार्य और पर्याप्त होगी। उसके अनुसार जिस पुस्तकालय को संपन्न बना दिया जायगा, वही हिंदी का आदर्श पुस्तकालय बन जायगा। वह प्रत्येक पुस्तकालय का अलंकार-स्वरूप होगा। उसे सर्वांग-पूर्ण बनाने के लिये उक्त शास्त्रीजी द्रव्य, श्रम और समय का समुचित सदुपयोग कर रहे हैं। अब तक उन्होंने सामग्री संग्रह करने में आशातीत सफलता पाई है, तो भी उन्हें जिन प्रकाशकों, लेखकों, पुस्तकालयों और हिंदी-हितैषियों से अभी सहायता नहीं मिली है, उनका परम कर्तव्य है कि वे शास्त्रीजी का अत्यधिक परिश्रम सार्थक करें। कुछ सज्जनों की धारणा है कि 'वह कभी पूर्ण होगा ही नहीं'। मैं कहता हूँ कि संवत् १९८० तक तो वह सर्वांग-पूर्ण होगा, अथवा हो जायगा; क्योंकि प्रथम संस्करण की सारी त्रुटियाँ द्वितीय संस्करण में दूर हो जायँगी। फिर संवत् १९८१ से उसके वार्षिक संस्करण निकाले जायँगे। पुराने, अप्रकाशित और दुर्लभ ग्रंथों की विवरणात्मक सूची प्रस्तुत करना जितना श्रम-साध्य और समयापेक्ष है, उतना वर्तमान ग्रंथों की तालिका तैयार करना कठिन नहीं है। इसका कारण समझाने की ज़रूरत नहीं है। आशा है, उक्त पुस्तक-कोष हिंदी की उन्नति की आलीशान इमारत का सबसे सुदृढ़ स्तंभ होगा। कारण, पुस्तकालयों की सजावट करने में, हिंदी साहित्य के अभावों की पूर्ति करने में, ग्रंथ-विशेष की रचना के लिये उपयुक्त साधन-संग्रह करने में, हिंदी के युग-परिवर्तन और क्रम-विकास पर विचार करने में, उससे यथेष्ट साहाय्य प्राप्त होगा। अतएव पुस्तकालयों की महत्ता और उपयोगिता को समझनेवाले प्रत्येक हिंदी-हितैषी को, उक्त शास्त्रीजी से, नं० २२ सरकार-लेन (भारती-प्रेस) कलकत्ते के पते से, पत्र लिखकर, कोष-संबंधी प्रश्नों के वितरणार्थ छपे हुए पर्चे मँगाने चाहिए और उनके संतोष-जनक उत्तर देकर हिंदी के हित-साधन के इतने बड़े काम में योग देना चाहिए।

शिवपूजनसहाय

* देखिए 'माधुरी' की गत दसवीं संख्या का 'विविध विषय'।

काव्य में प्राकृतिक दृश्य

उत्तरार्द्ध



खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिंदी की कविता का उत्थान उस समय हुआ, जब संस्कृत-काव्य लक्ष्य-च्युत हो चुका था। इसीसे हिंदी की कविताओं में प्राकृतिक दृश्यों का वह सूक्ष्म वर्णन नहीं मिलता, जो संस्कृत की प्राचीन कविताओं में पाया जाता है। केशव के पीछे तो प्रबंध-काव्यों का बनना एक प्रकार से बंद ही हो गया। आचार्य बनने का ही हौसला रह गया, कवि बनने का नहीं। अलंकार और नायिका-भेद के लक्षण-ग्रंथ लिखकर अपने रचे उदाहरण देने में ही कवियों ने अपने कार्य की समाप्ति मान ली। ऐसे फुटकर पद्य-रचयिताओं की परिमित कृति में प्राकृतिक

दृश्य ढूँढ़ना ही व्यर्थ है। श्रृंगार के उद्दीपन के रूप में 'षट्ऋतु' का वर्णन अवश्य कुछ मिलता है; पर उसमें बाह्य प्रकृति के रूपों का प्रत्यक्षीकरण मुख्य नहीं होता, नायक-नायिका का प्रमोद या संताप ही मुख्य होता है। अब रहे दो-चार आख्यान-काव्य। उनमें दृश्य-वर्णन को स्थान ही बहुत कम दिया गया है। अगर कुछ वर्णन परंपरा-पालन की दृष्टि से है भी, तो वह अलंकार-प्रधान है। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि की भरमार इस बात की स्पष्ट सूचना दे रही है कि कवि का मन दृश्यों के प्रत्यक्षीकरण में लगा नहीं है, उचट-उचटकर दूसरी ओर जा पड़ा है।

कोई एक वस्तु सामने आई कि उपमा के पीछे परेशान। श्याम के 'छबीले मुख' का प्रसंग आया। बस, अंधे सूरदास चारों ओर उपमा टटोल रहे हैं—

बलि-बलि जाउँ छबीले मुख की, या पटतर को को है?
या बानक उपमा दीवे को सुकबि कहा टकटोहै?

उपमाएँ यदि मिलती गईं, तब तो सब ठीक ही ठीक, एक वस्तु के ऊपर उपमा पर उपमा, उत्प्रेक्षा पर उत्प्रेक्षा लादते चले जा रहे हैं। "हरि-कर राजत माखन, रोटी", बस, इतनी ही-सी तो बात है, उस पर—

मनो बारिज ससि बैर जानि जिय गह्यो सुधांशुहि धोटी;
मनो बराह भूधर-सह पृथिवी धरी दसनन की कोटी।

एक छोटी-सी रोटी की हक़ीक़त ही कितनी, उस पर पहाड़ के सहित ज़मीन का बोझ लाकर रख दिया! उपमाएँ यदि न मिलीं, तो बस, 'शेष, शारदा' पर फिरे, उनकी इज़्ज़त लेने पर उतारू!

मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' यद्यपि एक आख्यान-काव्य है, पर उसमें भी स्थल-वर्णन सूक्ष्म नहीं है। सिंहल-द्वीप के गढ़, राज-द्वार, बग़ीचे आदि का वर्णन है। बग़ीचे के वर्णन में पेड़ों और चिड़ियों की फ़ेहरिस्त है; जो बहेलियों और मालियों से भी मिल सकती है। प्राप्त प्रथा के अनुसार पद्मावती के संयोग-सुख के संबंध में 'षट्ऋतु' और नागमती की विरह-वेदना के प्रसंग में 'बारहमासा' अलबत है। दोनों का ढंग वही है, जो ऊपर कहा गया है। दो उदाहरण यथेष्ट होंगे—

ऋतु पावस बरसे पिउ पावा; सावन-भादौं अधिक सुहावा।
पदमावति चाहति ऋतु पाई; गगन सुहावन, भूमि सुहाई।
कोकिल बैन, पाँति -बग छूटी; धन निसरीं जनु बीरबहूटी।
चमक बीजु, बरसै जल सोना; दादुर-मोर-सबद सुठि लोना।
रँग-राती पिय-सँग निसि जागी; गरजे गगन, चौंकि गर लागी।
सीतल बूँद, ऊँच चौपारा; हरियर सब दीखै संसारा।
हरियर भूमि, कुसुंभी चोला; औ धन पिय-सँग रचा हिंडोला।

संयोग श्रृंगार की दृष्टि से यह वर्णन बड़ा मनोहर है। पर इसमें कवि का अपना सूक्ष्म निरीक्षण 'बरसै जल सोना" में ही दिखाई पड़ता है। और सब वर्णन परंपरा-नुसारी ही है। अब विप्रलंभ-श्रृंगार के अंतर्गत असाढ़ का वर्णन लीजिए—

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा; साजा विरह दुंद दल बाजा।
धूम श्याम धौरी घन धाए; सेत धुजा बग-पाँति दिखाए।
खरग-बीजु चमकै चहुँ ओरा; बुंद-बान बरसहिं घन घोरा।
उनई घटा आइ चहुँ फेरी; कंत! उबार, मदन हौं घेरी।
दादुर, मोर, कोकिला पीऊ; गिरहि बीज, घट रहै न जीऊ।
पुष्य-नखत सिर ऊपर आवा; हौं बिनु नाह, मँदिर को छावा?

पाठक देख सकते हैं कि फुटकर कहने या गाने के लिये ये पद्य कितने सुंदर हैं। पर एक प्रबंध-काव्य के भीतर दृश्य चित्रण की दृष्टि से यदि इन्हें देखते हैं, तो संतोष नहीं होता। अन्य के संबंध में स्थित किसी भाव के 'उद्दीपन'-मात्र के लिये जितना वस्तु-विन्यास अपेक्षित था, उतना जायसी ने किया, इसमें कोई संदेह नहीं। 'उद्दीपन'-रूप में दृश्य जो प्रभाव उत्पन्न करता है, वह दूसरे के—अर्थात् 'आलंबन' के—संबंध से, स्वतंत्र-रूप में नहीं। पर, जैसा कि सिद्ध किया जा चुका है, प्राकृतिक दृश्य मनुष्य के भावों के स्वतंत्र आलंबन भी होते हैं। प्राचीन कवियों ने इन्हें पात्र के आलंबन के रूप में और श्रोता के आलंबन के रूप में, दोनों रूपों में संनिविष्ट किया है। 'कुमारसंभव' का हिमालय-वर्णन श्रोता या पाठक के आलंबन के रूप में है। वाल्मीकि-रामायण में लक्ष्मण का हेमंत के अंतर्गत पंचवटी दृश्य-वर्णन पात्र और श्रोता, दोनों के भाव का आलंबन है; वर्षा और शरत् का वर्णन पात्र (राम) के पक्ष में तो 'उद्दीपन' है, किंतु रूप के सूक्ष्म विश्लेषण के बल से श्रोता के लिये आलंबन हो गया है।

एक बड़े प्रबंध-काव्य में प्राकृतिक दृश्यों का श्रोता के भाव के आलंबन-रूप में वर्णन भी आवश्यक है, और यह स्वरूप उन्हें तभी प्राप्त हो सकता है, जब उनका चित्रण ऐसे ब्योरे के साथ हो कि उनका बिंब-ग्रहण हो, उनका पूर्ण स्वरूप पाठक या श्रोता की कल्पना में उपस्थित

हो जाय। कारण, रति या तल्लीनता उत्पन्न करने के लिये प्रत्यक्ष स्वरूप का परिचय आवश्यक है। सारांश यह कि 'उद्दीपन' होने के लिये रूप का थोड़ा-थोड़ा प्रकाश क्या, संकेत-मात्र यथेष्ट है; पर 'आलंबन' होने के लिये पूर्ण और स्पष्ट स्फुरण होना चाहिए।

गोस्वामी तुलसीदासजी के भक्ति-पूर्ण हृदय में भगवान् रामचंद्र के संबंध से चित्रकूट के प्रति जो प्रेम-भाव प्रतिष्ठित था, उसके कारण उन्होंने उसके रम्य स्वरूप पर अधिक दृष्टि जमाई है। नीचे दिए हुए वर्णन में यद्यपि प्रचलित रीति के अनुसार प्रत्येक वस्तु और व्यापार के साथ दृष्टांत और उत्प्रेक्षा लगी हुई है, पर निरीक्षण बहुत अच्छा है—

सब दिन चित्रकूट नीको लागत ;
बरषा-ऋतु-प्रवेस बिसेष गिरि देखत मन अनुरागत।
चहुँ दिसि बन संपन्न, विहग-मृग बोलत सोभा पावत ;
जनु सुनरेस-देस-पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत।
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु-रँगमगे सृंगनि ;
मनहुँ आदि अंभोज विराजत सेवित सुर-मुनि-भृंगनि।
सिखर परसि घन-घटहि मिलति बग पाँति सो छवि कवि बरनी ;
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी।
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ-बन-प्रतिबिंब तरंग ;
मानहुँ जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट-अँग-अंग।
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि-झरि, भरि-भरि जल आछे ;
'तुलसी' सकल सुकृत-सुख लागे मनौ राम-भक्ति के पाछे।

बाह्य प्रकृति के संबंध में सूरदासजी की दृष्टि बहुत परिमित है। एक तो व्रज की गोचारण-भूमि के बाहर उन्होंने पैर ही नहीं निकाला, दूसरे उस भूमि का भी पूर्ण चित्र उन्होंने कहीं नहीं खींचा। उद्दीपन के रूप में केवल द्रुम, बल्ली और यमुना के किनारेवाले कदंब का उल्लेख-भर बार-बार मिलता है। गोपियों के विरह के प्रसंग में रीति के अनुसार पावस आदि का वर्णन अवश्य है; पर कहने की आवश्यकता नहीं कि उसमें पावस स्वरूप-स्थित नहीं है, वियोगिनी गोपियों के मानस-प्रदत्त रूप में है—कहीं वह कृष्ण रूप में है, कहीं चढ़ाई करते हुए राजा के रूप में, इत्यादि। जैसे—

आजु घनस्याम की अनुहारि ;
उनइ आए साँवरे-से, सजनी ! देखु रूप की आरि।
इंद्रधनुष मानो पीत बसन-छवि, दामिनि दसन बिचारि,
जनु बग-पाँति माल मोतिन की, चितवत हितहि निहारि।

अथवा—

तुम्हारो गोकुल हो, व्रजनाथ !
घेरयो है अरि चतुरंगिनि लै मनमथ सेना साथ।
गरजत अति गंभीर गिरा, मनु मैगल मत्त अपार ;
घुरवा धूरि उड़त रथ पायक घोरन की खुरतार।

केवल कहीं-कहीं नियत वस्तुओं का कुछ अधिक गिनती-भर मिलती है। जैसे—

बरन-बरन अनेक जलधर अति मनोहर बेष ;
तिहि समय, सखि ! गगन-सोभा सबहि ते सुबिसेष।
उड़त खग, बग-बृंद राजत, रटत चातक, मोर ;
बहुल बिधि-बिधि रुचि बढ़ावत दामिनी घन घोर।
धरनि तृन तनु रोम पुलकित पिय-समागम जानि ;
द्रुमनि बर बल्ली बियोगिनि मिलति है पहिचानि।
हंस, सुक, पिक, सारिका, अलि गुंज नाना नाद ;
मुदित मंडल भेक-भेकी, विहग बिगत बिषाद।
कुटज, कुमुद, कदंब, कोबिद कनक आरि, सुकंज,
केतकी, करवीर, बेलउ बिमल बहु बिध मंजु।

यह नामावली निरीक्षण का फल नहीं है। इसकी सूचना 'कुमुद' और 'कोविद' (कोविदार) पद दे रहे हैं। कचनार की शोभा वसंत-ऋतु में ही होती है, जब कि वह फूलता है; और कुमुद की तो पत्तियाँ भी वर्षा-काल में अच्छी तरह नहीं बढ़ी रहतीं।

यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि वस्तुओं की गिनती गिनाना ही वस्तु-विन्यास नहीं है। आस-पास की और वस्तुओं के बीच उनकी प्रकृत स्थापना से दृश्य के एक पूर्ण सुसंगत रूप की योजना होती है। "मौर लगे हैं, समीर चलता है, कोयल बोलती है," इस प्रकार कहना केवल वस्तुओं और व्यापारों की गिनती गिनाना है। रीति-ग्रंथों में प्रत्येक ऋतु में वर्ण्य वस्तुओं की सूची देख-कर यह तो हरएक कर सकता है। यह चित्रण नहीं है। इन्हीं वस्तुओं और व्यापारों को लेकर यदि हम इस प्रकार योजना करें—"वह देखो, मौरों से गुछी, मंद-मंद झूमती हुई आम की डाली पर, हरी-हरी पत्तियों के बीच अपने कृष्ण कलेवर को पूर्ण रूप से न छिपा सकती हुई कोयल बोल रही है!", तो यह दृश्य अंकित करने का प्रयत्न कहा जायगा। किसी वस्तु का वर्णन जितनी ही अधिक वस्तुओं के संबंध को लिए हुए होगा, उतना ही

वह पेचीला होगा, और कवि के निरीक्षण की सूक्ष्मता प्रकट करेगा। इस दृष्टि से प्राचीन कवियों के वर्णनों का विचार करने पर इस बात का पता लग जायगा। देखिए, वाल्मीकि के 'मुक्तासकाशं' वाले श्लोक में पानी की बूँदों का आकाश से गिरना, गिरकर पत्तों की नोकों पर लगना और चिड़ियों के पंखों को बिगाड़ना, चिड़ियों का पत्तों की नोक पर लगी बूँदों को पीना, इतने अधिक व्यापार एक संबंध-सूत्र में एकत्र पिरोए हुए हैं। इसी प्रकार कालिदास ने हिमालय के पवन के साथ भागीरथी के जल-कण का फैलना, देवदारु के पेड़ों का काँपना, मोर की पूँछों का छितराना, किरातों का मृगों की खोज में निकलना और वायु-सेवन करना, इतने व्यापारों को परस्पर संबद्ध दिखाया है। पर इतनी अधिक संश्लिष्ट योजना के प्रत्यक्षीकरण के लिये विस्तृत और गूढ़ निरीक्षण अपेक्षित है। ऊपर गोस्वामी तुलसीदासजी का जो चित्रकूट-वर्णन दिया गया है, उसमें यह बात कुछ-कुछ है। "सोहत श्याम जलद मृदु घोरत धातु-रँगमगे शृंगनि" में यों ही काले बादल का नाम नहीं ले लिया है; वह ऊपर उठे हुए शृंग पर दिखाया गया है, और वह शृंग भी गेरू के रंग में रँगा हुआ है। इसी प्रकार "जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ बन-प्रतिबिंब तरंग" में शिलाओं का धुलकर स्वच्छ होना, उन पर बरसाती पानी का लगना, स्वच्छता के कारण उनमें आकाश और वन का प्रतिबिंब दिखाई पड़ना, इतनी बातों की एक वाक्य में संबंध-योजना पाई जाती है।

जायसी-से कवियों के एक और झुकाव का पता लगता है। 'कवि' और 'सयाने' जब एक ही समझे जाने लगे, तब मनुष्य के व्यवसाय विशेष की जानकारी का ख़ज़ाना भी काव्यों में खुलने लगा। घोड़ों का वर्णन है, तो घोड़ों के पचासों भेदों के नाम सुन लीजिए; जिन्हें शायद घोड़ों के व्यवसायी ही जानते होंगे। भोजन का वर्णन है, तो पूरी, कचौरी, कढ़ी, रायता, चटनी, मुरब्बा, पेड़ा, बरफ़ी, जलेबी, फेनी, गुलाबजामुन आदि जितनी चीज़ों के नाम कविजी जानते हैं, सब मौजूद! इन व्यंजनों को सामने रखने से पाठकों को ललचाने के सिवा और क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? पर काव्य भूख जगाने के लिये तो है नहीं। जिसे रोग आदि के कारण भोजन से अरुचि हो गई होगी, वह किसी अच्छे वैद्य के नुस्ख़े का सेवन करेगा भोजन की पत्तल का वर्णन करना प्राचीन कवि भद्दापन और काव्य-शिष्टता के विरुद्ध समझते थे। इसी से उन्होंने दृश्य-काव्य में भोजन के दृश्य का निषेध किया है। नामावली की इस प्रथा का अनुसरण जायसी, सूरदास, सूदन और महाराज रघुराजसिंह ने अधिक किया है। अस्त्र-शस्त्रों और पहरावों के नामों की फ़ेहरिस्त देखनी हो, तो सूदन का 'सुजान-चरित्र' पढ़िए। हाथी-घोड़ों, सवारियों और राजसी ठाट-बाट की वस्तुओं के नाम याद करने हों, तो महाराज रघुराजसिंह का 'राम-स्वयंवर' उठा लीजिए।

केशवदासजी को अपने श्लेष, यमक और उत्प्रेक्षा इत्यादि से फ़ुरसत कहाँ कि विस्तृत संबंध-योजना के साथ प्रकृति का निरीक्षण करने जायँ। सीधी तरह से कुछ वस्तुओं का नाम ले जायँ, यही ग़नीमत है—

फल-फूलन-पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल-कुल कलरव बोलैं;
अति मत्त मयूरी, पियरस-पूरी, बन-बन प्रति नाचति डोलैं।

देखिए, दंडक वन के वर्णन में श्लेष का यह चमत्कार दिखाकर आप चलते हुए—

सोभत दंडक की रुचि बनी, भाँतिन-भाँतिन सुंदर घनी।
सेव बड़े नृप की जनु लसै, श्रीफल भूरिभाव जहँ बसै।
बेर भयानक-सी अति लगै, अर्क-समूह जहाँ जगमगै।

'बेर', 'बनी', 'श्री-फल' और 'अर्क' शब्दों में श्लेष की कारीगरी दिखा दी, बस, हो गया। वन-स्थली के प्रति उनका अनुराग तो था नहीं कि उसके रूप की छटा ब्योरे के साथ दिखाते। 'भयानक' शब्द जो रक्खा हुआ है, वह 'भाव' का सूचक नहीं है; क्योंकि न तो 'बेर' ही कोई भयंकर वस्तु है, न आक (मदार) ही। श्लेष से 'अर्क' का अर्थ सूर्य लेने से 'समूह' के कारण प्रलय-काल का अर्थ निकलता है, जो प्रस्तुत नहीं है। दंडक-वन क्या दे देता—'आनंद' दे सकता था, वह भी नहीं देता था—जो उसके रूप का विश्लेषण केशवदासजी करने जाते? राजा की सेवा से 'श्री-फल' प्राप्त होता था, उसका ज़िक्र मौजूद है।

जब केशवदासजी का यह हाल है, तब फुटकर पद्य कहनेवाले उनके अनुयायी 'कविंदों' में प्रकृति का रूप-विश्लेषण ढूँढ़ना ही व्यर्थ है। ऋतु-वर्णन की पुरानी रीति उन्होंने निबाही है। उनके वर्णन में उद्दीपन-भर के

लिये फुटकर वस्तुएँ आई हैं; सो वे भी उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि की भीड़ में छिपी हुई हैं। वसंत कहीं राजा होकर आया है, कहीं फ़ौजदार, कहीं फ़क़ीर, कहीं कुछ, कहीं कुछ। किसी ने कुछ बढ़कर हाथ मारा, तो शिशिर और ग्रीष्म-ऋतु में जो अपने शरीर की दशा देखी, उसका वर्णन कर दिया, और उपचार का नुस्ख़ा कह गए—

ग्रीषम की गजब धुकी है धूप धाम-धाम,
गरमी झुकी है जाम-जाम अति तापिनी;
भीजि खस-बीजन डुलाए ना सुखात स्वेद,
गात ना सुहात, बात दावा-सी डरापिनी।
"ग्वाल" कवि कहैं कोरे कुंभन में कूपन तें
लै-लै जलधार बार-बार मुख थापिनी;
जब पियो, तब पियो, अब पियो, फेरि अब,
पीवत-हू-पीवत बुझै न प्यास पापिनी।

गरमी के मौसम के लिये एक कविजी राय देते हैं—

× × ×

सीतल गुलाब-जल भरि चहबच्चन में
डारि के कमल-दल न्हाइबे को धँसिए।
"कालिदास" अंग-अंग अगर-अतर-संग
केसर, उसीर-नीर, घनसार बँसिए;
जेठ में गोबिंदलाल चंदन के चहलन
भरि-भरि गोकुल के महलन बसिए।

मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं कि इन कवियों में कहीं प्रकृति का निरीक्षण मिलेगा ही नहीं। मिलेगा, पर थोड़ा, और वह भी बहुत ढूँढ़ने पर कहीं एकाध जगह। जैसे—

वृष को तरनि-तेज सहसौ किरन तपै,
ज्वालनि के जाल बिकराल बरसत है;
तचति धरनि, जग झुरत झुरनि, सीरी
छाँह को पकरि पंथी, पंछी बिरमत है।
'सेनापति' नेक दुपहरी ढरकत होत
धमका * विषम, जो न पात खरकत है;
मेरे जान, पौन सीरे ठौर को पकरि कोऊ,
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है।

नंददासजी एक प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त और कवि थे। पर ब्रजभूमि की महिमा का बखान करते समय दृश्य अंकित करने के बखेड़े में वह भी नहीं पड़े। वहाँ चिर वसंत रहता है, इतने ही में अपना मतलब सबको समझा दिया—

श्रीवृंदावन चिदवन, कछु छबि बरनि न जाई;
कृष्ण ललित लीला के काज गहि रह्यो जड़ताई।
जहँ नग, खग, मृग, लता, कुंज, बीरुध, तृन जेते;
नहिंन काल-गुन, प्रभा सदा सोभित रहैं तेते।
सकल जंतु अविरुद्ध जहाँ; हरि, मृग सँग चरहीं;
काम-क्रोध-मद-लोभ-रहित लीला अनुसरहीं।
सब दिन रहत बसंत कृष्ण-अवलोकनि लोभा;
त्रिभुवन कानन जा बिभूति करि सोभित सोभा।
या बन की बर बानिक या बन ही बनि आवै;
सेस, महेस, सुरेस, गनेस न पारहिं पावै।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से हमारी भाषा नए मार्ग पर आ खड़ी हुई; पर दृश्य-वर्णन में कोई संस्कार नहीं हुआ। वाल्मीकि, कालिदास आदि प्राचीन कवियों की प्रणाली का अध्ययन करके सुधार का यत्न नहीं किया गया। भारतेंदुजी का जीवन एकदम नागरिक था। मानवी प्रकृति में ही उनकी तल्लीनता अधिक पाई जाती है; बाह्य प्रकृति के साथ उनके हृदय का वैसा सामंजस्य नहीं पाया जाता। 'सत्य हरिश्चंद्र' में गंगा का और 'चंद्रावली' में यमुना का वर्णन अच्छा कहा जाता है। पर ये दोनों वर्णन भी पिछले खेवे के कवियों की परंपरा के अनुसार ही हैं। इनमें भी एक-एक-साथ कई वस्तुओं और व्यापारों की सूक्ष्म संबंध-योजना नहीं है, केवल वस्तुओं और व्यापारों के पृथक्-पृथक् कथन के साथ उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का प्राचुर्य है। दोनों के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं—

(क)

नव उज्जल जल-धार हार हीरक-सी सोहति;
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता-मनि पोहति।
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत;
जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत, मिटावत।
कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर-सम सोहत;
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत।
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा-पताका;
घहरति घंटा-धुनि, धमकत धौंसा करि साका।
कहुँ सुंदरी नहाति, नीर कर जुगल उछारत;
जुग अंबुज मिलि मुक्त-गुच्छ मनु सुच्छ निकारत।
धोवति सुंदरि बदन करन अति ही छबि पावत;
बारिधि नाते ससि-कलंक मनु कमल मिटावत।

* धमका=हवा का गिरना या ठहर जाना।

(ख)

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाए ;
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहुँ सुहाए ।
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा;
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल-लोभा ।
मनु आतप वारन तीर को सिमिटि सबै छाए रहत ;
कै हरि-सेवा-हित नै रहे, निरखि नैन-मन सुख लहत ।
कहूँ तीर पर अमल कमल सोभित बहु भाँतिन ;
कहुँ सैवालन-मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन ।
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखति व्रज-सोभा ;
कै उमँगे प्रिय-प्रिया-प्रेम के अनगिन गोभा ।
कै करिकै कर बहु पीय को टेरत निज ढिग सोहई ;
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ।
कै पिय-पद-उपमान जानि यहि निज उर धारत ;
कै मुख करि बहु भृंगन-मिस अस्तुति उच्चारत ।
कै व्रज-तियगन-बदन-कमल की झलकति झाँई ;
कै व्रज हरि-पद-परस हेतु कमला बहु आई ।

देखिए, यमुना के वर्णन में "सैवालन-मध्य कुमुदिनी" में दो वस्तुओं की संबंध-योजना थी ; पर आगे चलकर जो 'उत्प्रेक्षा' और 'संदेह' की भरमार हुई, तो उसमें अलग-अलग कुमुद और कमल ही रह गए, और वे भी अलंकारों के बोझ के नीचे दबे हुए ।

मैं समझता हूँ, अब यह दिखाने के लिये और अधिक प्रयास की आवश्यकता नहीं है कि वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि प्राकृतिक दृश्य हमारे राग या रति-भाव के स्वतंत्र आलंबन हैं, उनमें सहृदयों के लिये सहज आकर्षण वर्तमान है । इन दृश्यों के अंतर्गत जो वस्तुएँ और व्यापार होंगे, उनमें जीवन के मूल-स्वरूप और मूल-परिस्थिति का आभास पाकर हमारी वृत्तियाँ तल्लीन होती हैं । जो व्यापार केवल मनुष्य की अधिक समुन्नत बुद्धि के परिणाम होंगे, जो उसके आदिम जीवन से बहुत इधर के होंगे, उनमें प्राकृतिक या पुरातन व्यापारों की-सी तल्लीन करने की शक्ति न होगी । जैसे, "सीतल गुलाब-जल भरि चहबच्चन में" बैठे हुए कविजी की अपेक्षा तलैया के कीचड़ में बैठकर जीभ निकाल-निकाल हाँफते हुए कुत्ते का अधिक प्राकृतिक व्यापार कहा जायगा । इसी प्रकार शिशिर में दुशाला ओढ़े "गुलगुली गिलमें, गलीचा" बिछाकर बैठे हुए स्वाँग से धूप में खपरैल पर बैठी बदन चाटती हुई बिल्ली में अधिक प्राकृतिक भाव है । पुतलीघर में एंजिन चलाते हुए देसी साहब की अपेक्षा खेत में हल चलाते हुए किसान में अधिक स्वाभाविक आकर्षण है । विश्वास न हो, तो भवभूति और कालिदास से पूछ लीजिए ।

जब कि प्राकृतिक दृश्य हमारे भावों के आलंबन हैं, तब इस शंका के लिये कोई स्थान ही नहीं रहा कि प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में कौन-सा रस है ? जो-जो पदार्थ हमारे किसी-न-किसी भाव के विषय हो सकते हैं, उन सबका वर्णन रस के अंतर्गत है ; क्योंकि 'भाव' का ग्रहण भी रस के समान ही होता है । यदि रति-भाव के रस-दशा तक पहुँचने की योग्यता 'दांपत्य रति' में ही मानिए, तो पूर्ण भाव के रूप में भी दृश्यों का वर्णन कवियों की रचनाओं में बराबर मिलता है । जैसे काव्य के किसी पात्र का यह कहना कि "जब मैं इस पुराने आम के पेड़ को देखता हूँ, तब इस बात का स्मरण हो आता है कि यह वही है, जिसके नीचे मैं लड़कपन में बैठा करता था, और सारा शरीर पुलकित हो जाता है, मन एक अपूर्व भाव में मग्न हो जाता है ।", विभाव, अनुभाव और संचारी से पुष्ट भाव-व्यंजना का उदाहरण होगा ।

पहले कहा जा चुका है कि जो वस्तु मनुष्य के भावों का विषय या आलंबन होती है, उसका शब्द-चित्र यदि किसी कवि ने खींच दिया, तो वह एक प्रकार से अपना काम कर चुका । उसके लिये यह अनिवार्य नहीं कि वह 'आश्रय' की भी कल्पना करके उसे उस भाव का अनुभव करता हुआ, हर्ष से नाचता हुआ, या विषाद से रोता हुआ, दिखावे । मैं आलंबन-मात्र के विशद वर्णन को श्रोता में रसानुभव (भावानुभव सही) उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ मानता हूँ । यह बात नहीं है कि जब तक कोई दूसरा किसी भाव का अनुभव करता हुआ और उसे शब्द और चेष्टा द्वारा प्रकाशित करता हुआ न दिखाया जाय, तब तक रसानुभव हो ही नहीं । यदि ऐसा होता, तो हिंदी में 'नायिका-भेद' और 'नख-सिख' के जो सैकड़ों ग्रंथ बने हैं, उन्हें कोई पढ़ता ही नहीं । नायिका-भेद में केवल शृंगार-रस के आलंबन का वर्णन होता है, और 'नख-सिख' के किसी पद्य में उस आलंबन के भी किसी एक अंग-मात्र का । पर ऐसे वर्णनों से रसिक लोग बराबर

आनंद प्राप्त करते देखे जाते हैं । इसी प्रकार प्राकृतिक दृश्य-वर्णन-मात्र को, चाहे कवि उसमें अपने हर्ष आदि का कुछ भी वर्णन न करे, हम काव्य कह सकते हैं । हिमालय-वर्णन को यदि हम कुमारसंभव से निकालकर अलग कर लें, तो भी वह एक उत्तम काव्य कहला सकता है । मेघदूत में—विशेषकर पूर्व मेघ में—प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन ही प्रधान है । यक्ष की कथा निकाल देने पर भी उसका काव्यत्व नष्ट नहीं हो सकता ।

ऊपर 'नख-सिख' की बात आ गई है, इसलिये मनुष्य के रूप-वर्णन के संबंध में भी दो-चार बातें कह देना अप्रासंगिक न होगा । कारण, दृश्य-चित्रण के अंतर्गत वह भी आता है । 'नख-सिख' में केवल नायिका के रूप का वर्णन होता है । पर उसमें भी रूप-चित्रण का कोई प्रयास हम नहीं पाते, केवल विलक्षण उत्प्रेक्षाओं और उपमानों की भरमार पाते हैं । इन उपमानों के योग द्वारा अंगों की सौंदर्य-भावना से उत्पन्न सुखानुभूति में अवश्य वृद्धि होती है; पर रूप नहीं निर्दिष्ट होता । काव्य में मुख, नेत्र और अधर आदि के साथ चंद्र, कमल और विद्रुम आदि के लाने का मुख्य उद्देश्य वर्ण, आकृति आदि का ज्ञान कराना नहीं, बल्कि कल्पना में साथ-साथ इन्हें भी रखकर सौंदर्य-गत आनंद के अनुभव को तीव्र करना है । काव्य की उपमा का उद्देश्य भावानुभूति को तीव्र करना है, नैयायिकों के "गोसदृशो गवयः" के समान ज्ञान उत्पन्न कराना नहीं । इस दृष्टि से विचार करने पर कई एक प्रचलित उपमान बहुत खटकते हैं—जैसे, नायिका की कटि की सूक्ष्मता दिखाने के लिये सिंहिनी को सामने लाना, जाँघों की उपमा के लिये हाथी की सूँड़ की ओर इशारा करना । ख़ैर, इसका विवेचन उपमा आदि अलंकारों पर विचार करते समय कभी किया जायगा । अब प्रस्तुत विषय की ओर आता हूँ ।

मनुष्य की आकृति और मुद्रा के चित्रण के लिये भी काव्य-क्षेत्र में पूरा मैदान पड़ा है । आकृति-चित्रण का अत्यंत उत्कर्ष वहाँ समझना चाहिए, जहाँ दो व्यक्तियों के अलग-अलग चित्रों में हम भेद कर सकें । जैसे, दो सुंदरियों की आँख, कान, नाक, भौं, कपोल, अधर, चिबुक इत्यादि सब अंगों को लेकर हमने वर्णन द्वारा दो अलग-अलग चित्र खींचे । फिर दोनों वर्णनों को किसी और के हाथ में देकर हमने उन दोनों स्त्रियों को उसके सामने बुलाया । यदि वह बतला दे कि 'यह इसका वर्णन है, और यह उसका', तो समझिए कि पूर्ण सफलता हुई । योरप के उपन्यासों में इस ओर बहुत कुछ प्रयत्न दिखाई पड़ता है ; पर हमारे यहाँ अभी इधर विशेष ध्यान नहीं दिया गया । मुद्रा चित्रित करने में गोस्वामी तुलसीदासजी अत्यंत कुशल दिखाई पड़ते हैं । मृग पर चलाने के लिये तीर खींचे हुए रामचंद्रजी को देखिए—

"जटा-मुकुट सिर, सारस-नयननि गौंहैं तकत सुभौंह सिकोरे ।"

इसी प्रकार राम के आगमन की प्रतीक्षा में शवरी—

"छन भवन, छन बाहर बिलोकति पंथ भ्रू पर पानि कै।"

पूर्वजों की दीर्घ परंपरा द्वारा चली आती हुई जन्म-गत वासना के अतिरिक्त जीवन में भी बहुत-से संस्कार प्राप्त किए जाते हैं ; जिनके कारण कुछ वस्तुओं के प्रति विशेष भाव अंतःकरण में प्रतिष्ठित हो जाते हैं । बचपन से अपने घर में या बाहर हम जिन दृश्यों को बराबर देखते आए, जिनकी चर्चा बराबर सुनते आए, उनके प्रति एक प्रकार का सुहृद्-भाव मन में घर कर लेता है । हिंदुओं के बालक अपने घर में राम, कृष्ण की कथाएँ और भजन सुनते आते हैं, इससे राम, कृष्ण के चरित्रों से संबंध रखनेवाले स्थानों को देखने की उत्कंठा उनमें बनी रहती है । गोस्वामीजी के इन शब्दों में यही उत्कंठा भरी है—

अब चित चेत चित्रकूटहि चलु ;
भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, वन बिलोकु रघुबर-बिहार-थलु ।

ऐसे स्थानों के प्रति संबंध की योजना के कारण हृदय में विशेष रूप से भावों का उदय होता है । कोई राम-भक्त जब चित्रकूट पहुँचता है, तब वह वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य पर ही मुग्ध नहीं होता, अपने इष्ट-देव की मधुर भावना के योग से एक विशेष प्रकार के अनिर्वचनीय माधुर्य का भी अनुभव करता है । ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्तों में जब झाड़ियों के काँटे उसके शरीर में चुभते हैं, तब उसके मन में सान्निध्य का यह मधुर भाव बिना उठे नहीं रह सकता कि ये झाड़ उन्हीं प्राचीन झाड़ों के वंशज हैं, जो राम, लक्ष्मण और सीता के कभी चुभे होंगे । इस भाव-योजना के कारण उन झाड़ों को वह और ही दृष्टि से देखने लगता है । यह दृष्टि औरों को नहीं प्राप्त हो सकती ।

ऐसे संस्कार जीवन में हम बराबर प्राप्त करते जाते हैं। जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे भी आल्हा आदि सुनकर क़न्नौज, कालिंजर, महोबा, नयनागढ़ (चुनारगढ़) इत्यादि के प्रति एक विशेष 'भाव' संचित करते हैं। पढ़े-लिखे लोग अनेक प्रकार के इतिहास, पुराण, जीवन-चरित आदि पढ़कर उनमें वर्णित घटनाओं से संबंध रखनेवाले स्थानों के दर्शन की उत्कंठा प्राप्त करते हैं। इतिहास-प्रसिद्ध स्थान उनके लिये तीर्थ-से हो जाते हैं। प्राचीन इतिहास पढ़ते समय कल्पना का योग पूरा-पूरा रहता है। जिन छोटे-छोटे ब्योरों का वर्णन इतिहास नहीं भी करता, उनका आरोप अज्ञात रूप से कल्पना करती चलती है। यदि इस प्रकार का थोड़ा-बहुत चित्रण कल्पना अपनी ओर से न करती चले, तो इतिहास आदि पढ़ने में जी ही न लगे। सिकंदर और पौरव का युद्ध पढ़ते समय पढ़नेवाले के मन में सिकंदर और उसके साथियों का यवन-वेश तथा पौरव के उष्णीष और किरिट-कुंडल मन में आवेंगे। मतलब यह कि परिस्थिति आदि का कोई चित्र कल्पना में थोड़ा-बहुत अवश्य रहेगा—जो भावुक होंगे, उनमें अधिक रहेगा। प्राचीन समय का समाज-चित्र हम 'मेघदूत', 'मालविकाग्निमित्र' आदि में ढूँढ़ते हैं, और उसकी थोड़ी-बहुत झलक पाकर अपने को और अपने समय को भूलकर तल्लीन हो जाते हैं। एक दिन रात को मैं सारनाथ से लौटता हुआ काशी की कुंज-गली में जा निकला। प्राचीन काल में पहुँची हुई कल्पना को लिए हुए उस सँकरी गली में जाकर मैं क्या देखता हूँ कि पीतल की सुंदर दीवटों पर दीपक जल रहे हैं, दूकानों पर केवल धोती पहने और उत्तरीय डाले (गरमी के दिन थे) व्यापारी बैठे हुए हैं, दीवारों पर सिंदूर से कुछ देवतों के नाम लिखे हुए हैं, पुरानी चाल के चौखूँटे द्वार और खिड़कियाँ हैं। मुझे ऐसा भान हुआ कि मैं प्राचीन उज्जयिनी की किसी वीथिका में आ निकला हूँ। इतने ही में थोड़ी दूर चलकर म्युनिसिपैलिटी की लालटेन दिखाई दी। बस, सारी भावना हवा हो गई।

इतिहास के अध्ययन से, प्राचीन आख्यानों के श्रवण से, भूत-काल का जो दृश्य इस प्रकार कल्पना में बस जाता है, वह वर्तमान दृश्यों को खंडित प्रतीत होने से बचाता है, वह उन्हें दीर्घ काल-क्षेत्र के बीच चले आए हुए अतीत दृश्यों के मेल में दिखाता है, और हमारे 'भावों' को काल-बद्ध न रखकर अधिक व्यापकत्व प्रदान करता है। हम केवल उन्हीं से राग-द्वेष नहीं रखते, जिनसे हम घिरे हुए हैं, बल्कि उनसे भी, जो अब इस संसार में नहीं हैं, पहले कभी हो चुके हैं। पशुत्व और मनुष्यत्व में यही एक बड़ा भारी भेद है। मनुष्य उस कोटि की पहुँची हुई सत्ता है, जो उस अल्प क्षण में ही आत्म-प्रसार को बद्ध रखकर संतुष्ट नहीं हो सकती, जिसे वर्तमान कहते हैं। वह अतीत के दीर्घ पटल को भेद कर अपनी अन्वीक्षण-बुद्धि को ही नहीं, रागात्मिका वृत्ति को भी ले जाती है। हमारे 'भावों' के लिये भूत-काल का क्षेत्र अत्यंत पवित्र क्षेत्र है। वहाँ वे शरीर-यात्रा के स्थूल स्वार्थ से संश्लिष्ट होकर कलुषित नहीं होते—अपने विशुद्ध रूप में दिखाई पड़ते हैं। उक्त क्षेत्र में जिनके 'भावों' का व्यायाम के लिये संचरण होता रहता है, उनके 'भावों' का वर्तमान विषयों के साथ उचित और उपयुक्त संबंध स्थापित हो जाता है। उनके घृणा, क्रोध आदि भाव भी बहुत कम अवसरों पर ऐसे होंगे कि कोई उन्हें बुरा कह सके।

मनुष्य अपने रति, क्रोध आदि भावों को या तो सर्वथा मार डाले, अथवा साधना के लिये उन्हें कभी-कभी ऐसे क्षेत्र में ले जाया करे, जहाँ स्वार्थ की पहुँच न हो, तब जाकर सच्ची आत्माभिव्यक्ति होगी। नए अर्थवादी 'पुराने गीतों' को छोड़ने को लाख कहा करें, पर जो विशाल-हृदय हैं वे भूत को बिना आत्मभूत किए नहीं रह सकते। अतीत-काल की वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति जो हमारा रागात्मक भाव होता है, वह प्राप्त-काल की वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति हमारे भावों को तीव्र भी करता है, और उनका ठीक-ठीक अवस्थान भी करता है। वर्षा के आरंभ में जब हम बाहर मैदान में निकल पड़ते हैं, जहाँ जुते हुए खेतों की सोंधी महक आती है, और किसानों की स्त्रियाँ टोकरी लिए इधर-उधर दिखाई देती हैं, उस समय कालिदास की लेखनी से अंकित इस दृश्य के प्रभाव से—

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रमारुह्य मालं
किंचित्पश्चादव्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण॥

हमारा भाव और भी तीव्र हो जाता है—हमें वह दृश्य और भी मनोहर लगने लगता है।

जिन वस्तुओं और व्यापारों के प्रति हमारे प्राचीन पूर्वज अपने 'भाव' अंकित कर गए हैं, उनके सामने अपने को पाकर मानों हम उन पूर्व पुरुषों के निकट जा पहुँचते हैं, और उसी प्रकार के भावों का अनुभव कर उनके हृदय से अपना हृदय मिलाते हुए उनके सगे बन जाते हैं। वर्तमान सभ्यता ने जहाँ अपना दख़ल नहीं जमाया है, उन जंगलों, पहाड़ों, गाँवों और मैदानों में हम अपने को वाल्मीकि, कालिदास, या भवभूति के समय में खड़ा कल्पित कर सकते हैं; कोई बाधक दृश्य सामने नहीं आता। पर्वतों की दरी-कंदराओं में, प्रभात के प्रफुल्ल पद्म-जाल में, छिटकी चाँदनी में, खिली कुमुदिनी में हमारी आँखें कालिदास, भवभूति आदि की आँखों से जा मिलती हैं। पलाश, इंगुदी, अंकोट वनों में अब भी खड़े हैं, सरोवरों में कमल अब भी खिलते हैं, तालाबों में कुमुदिनी अब भी चाँदनी के साथ हँसती है, वानीर-शाखाएँ अब भी झुक-झुककर तीर का नीर चूमती हैं; पर हमारी आँखें उनकी ओर भूलकर भी नहीं जातीं, हमारे हृदय से मानों उनका कोई लगाव ही नहीं रह गया। अग्निमित्र, विक्रमादित्य आदि को अब हम नहीं देख सकते। उनकी आकृति वहन करनेवाला आलोक अब न-जाने किस लोक में पहुँचा होगा; पर ऐसी वस्तुएँ अब भी हम देख सकते हैं, जिन्हें उन्होंने भी देखा होगा। सिप्रा के किनारे दूर तक फैले हुए प्राचीन उज्जयिनी के दूहों पर सूर्यास्त के समय खड़े हो जाइए। इधर-उधर उठी हुई पहाड़ियाँ कह रही हैं कि महाकाल के दर्शन को जाते हुए कालिदासजी हमें देर तक देखा करते थे; उस समय 'सिप्रा-वात' उनके उत्तरीय को फहराता था। काली शिलाओं पर से बहती हुई वेत्रवती की स्वच्छ धारा के तट पर विदिशा के खँडहरों में वे ईंट-पत्थर अब भी पड़े हुए हैं, जिन पर अंगराग-लिप्त शरीर और सुगंध-धूम से बसे केश-कलापवाली रमणियों के हाथ पड़े होंगे।

बिजली से जगमगाते हुए नए अँगरेज़ी ढंग के शहरों में, धुआँ उगलती हुई मिलों और ह्वाइट वे लेडला की दूकान के सामने, हम कालिदास आदि से अपने को बहुत दूर पाते हैं। पर प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में हमारा उनका भेद-भाव मिट जाता है, हम सामान्य परिस्थिति के साक्षात्कार द्वारा चिर-काल-व्यापी शुद्ध "मनुष्यत्व" का अनुभव करते हैं, किसी विशेष-काल-बद्ध मनुष्यत्व का नहीं।

यहाँ पर कहा जा सकता है कि विशेष-काल-बद्ध मनुष्यत्व न सही, पर देश-बद्ध मनुष्यत्व तो यह अवश्य है। हाँ, है। इसी देश-बद्ध मनुष्यत्व के अनुभव से सच्ची देश-भक्ति या देश-प्रेम की स्थापना होती है। जो हृदय संसार की जातियों के बीच अपनी जाति की स्वतंत्र सत्ता का अनुभव नहीं कर सकता, वह देश-प्रेम का दावा नहीं कर सकता। इस स्वतंत्र सत्ता से अभिप्राय स्वरूप की स्वतंत्र सत्ता से है; केवल अन्न-धन संचित करने और अधिकार भोगने की स्वतंत्रता से नहीं। अपने स्वरूप को भूलकर यदि भारत-वासियों ने संसार में सुख-समृद्धि प्राप्त की, तो क्या? क्योंकि उन्होंने उदात्त वृत्तियों को उत्तेजित करने-वाली बँधी-बँधाई परंपरा से अपना संबंध तोड़ लिया, नई उभरी हुई इतिहास-शून्य जंगली जातियों में अपना नाम लिखाया। फ़िलीपाइन द्वीप-वासियों से उनकी मर्यादा कुछ अधिक नहीं रह गई।

देश-प्रेम है क्या? प्रेम ही तो है। इस प्रेम का आलंबन क्या है? सारा देश, अर्थात् मनुष्य, पशु-पक्षी, नदी, नाले, वन, पर्वत-सहित सारी भूमि। यह प्रेम किस प्रकार का है? यह साहचर्य-गत प्रेम है। जिनके बीच हम रहते हैं, जिन्हें बराबर आँखों से देखते हैं, जिनकी बातें बराबर सुनते रहते हैं, जिनका हमारा हर घड़ी का साथ रहता है, सारांश यह कि जिनके सान्निध्य का हमें अभ्यास पड़ जाता है, उनके प्रति लोभ या राग हो जाता है। देश-प्रेम यदि वास्तव में अंतःकरण का कोई भाव हैं, तो यही हो सकता है। यदि यह नहीं है, तो वह कोरी बकवाद या किसी और भाव के संकेत के लिये गढ़ा हुआ शब्द है। यदि किसी को अपने देश से सचमुच प्रेम है, तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि सब से प्रेम होगा, वह सब को चाह-भरी दृष्टि से देखेगा, वह सब की सुध करके विदेश में आँसू बहावेगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी नहीं सुनते कि चातक कहाँ चिल्लाता है, जो यह भी आँख-भर नहीं देखते कि आम प्रणय-सौरभ-पूर्ण मंजरियों से कैसे लदे हुए हैं, जो यह भी नहीं झाँकते कि किसानों के झोपड़ों के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि दस बने-ठने मित्रों के बीच

प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बताकर देश-प्रेम का दावा करें, तो उनसे पूछना चाहिए कि 'भाइयो ! बिना रूप-परिचय का यह प्रेम कैसा ?' जिनके दुःख-सुख के तुम कभी साथी नहीं हुए, उन्हें तुम सुखी देखा चाहते हो, यह कैसे समझें ? उनसे कोसों दूर बैठे-बैठे, पड़े-पड़े, या खड़े-खड़े तुम विलायती बोली में 'अर्थ-शास्त्र' की दुहाई दिया करो; पर प्रेम का नाम उसके साथ न घसीटो । प्रेम हिसाब-किताब की बात नहीं है । हिसाब-किताब करनेवाले भाड़े पर भी मिल सकते हैं, पर प्रेम करनेवाले नहीं । एक अमेरिकन फ़ारसवालों को उनके देश का सारा हिसाब-किताब समझाकर चला गया ।

हिसाब-किताब से देश की दशा का ज्ञान-मात्र हो सकता है । हित-चिंतन और हित-साधन की प्रवृत्ति कोरे ज्ञान से भिन्न है । वह मन के वेग या 'भाव' पर अवलंबित है, उसका संबंध लोभ या प्रेम से है; जिसके बिना अन्य पक्ष में आवश्यक त्याग का उत्साह हो नहीं सकता । जिसे ब्रज की भूमि से प्रेम होगा, वह इस प्रकार कहेगा—

नैनन सों "रसखान" जबै ब्रजके बन, बाग, तड़ाग निहारौं,
केतिक वे कलधौत के धाम करील के कुंजन-ऊपर वारौं ।

रसखान तो किसी की 'लकुटी अरु कामरिया' पर तीनों पुरों का राज-सिंहासन तक त्यागने को तैयार थे; पर देश-प्रेम की दुहाई देनेवालों में से कितने अपने किसी थके-माँदे भाई के फटे-पुराने कपड़ों पर रीझकर—या कम-से-कम न खीझकर—बिना मन मैला किए कमरे का फ़र्श भी मैला होने देंगे ? मोटे आदमियो ! तुम ज़रा-सा दुबले हो जाते – अपने अंदेशे ही सही – तो न-जाने कितनी ठटरियों पर मांस चढ़ जाता !

पशु और बालक भी जिनके साथ अधिक रहते हैं, उनसे परच जाते हैं । यह परचना परिचय ही है । परिचय प्रेम का प्रवर्तक है । बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता । यदि देश-प्रेम के लिये हृदय में जगह करनी है, तो देश के स्वरूप से परिचित और अभ्यस्त हो जाइए । बाहर निकलिए, तो आँख खोलकर देखिए कि खेत कैसे लहलहा रहे हैं, नाले झाड़ियों के बीच कैसे बह रहे हैं, टेसू के फूलों से वनस्थली कैसी लाल हो रही है, कछारों में चौपायों के झुंड इधर-उधर चरते हैं, चरवाहे तान लड़ा रहे हैं, अमराइयों के बीच गाँव झाँक रहे हैं; उनमें घुसिए, देखिए तो, क्या हो रहा है । जो मिलें, उनसे दो-दो बातें कीजिए, उनके साथ किसी पेड़ की छाया के नीचे घड़ी-आध घड़ी बैठ जाइए, और समझिए कि ये सब हमारे देश के हैं । इस प्रकार जब देश का रूप आपकी आँखों में समा जायगा, आप उसके अंग-प्रत्यंग से परिचित हो जायँगे, तब आपके अंतःकरण में इस इच्छा का सचमुच उदय होगा कि वह हमसे कभी न छूटे, वह सदा हरा-भरा और फला-फूला रहे, उसके धन-धान्य की वृद्धि हो, उसके सब प्राणी सुखी रहें ।

पर आजकल इस प्रकार का परिचय बाबुओं की लज्जा का एक विषय हो रहा है । वे देश के स्वरूप से अनजान रहने या बनने में अपनी बड़ी शान समझते हैं । मैं अपने एक लखनवी दोस्त के साथ साँची का स्तूप देखने गया । यह स्तूप एक बहुत सुंदर छोटी-सी पहाड़ी के ऊपर है । नीचे छोटा-मोटा जंगल है; जिसमें महुए के पेड़ भी बहुत-से हैं । संयोग से उन दिनों वहाँ पुरातत्त्व-विभाग का कैंप पड़ा हुआ था । रात हो जाने से उस दिन हम लोग स्तूप नहीं देख सके; सवेरे देखने का विचार करके नीचे उतर रहे थे । वसंत का समय था । महुए चारों ओर टपक रहे थे । मेरे मुँह से निकला—"महुओं की कैसी महक आ रही है !" इस पर लखनवी महाशय ने चट मुझे रोककर कहा—"यहाँ महुए-सहुए का नाम न लीजिए, लोग देहाती समझेंगे ।" मैं चुप हो रहा; समझ गया कि महुए का नाम जानने से बाबूपन में बड़ा भारी बट्टा लगता है । पीछे ध्यान आया कि यह वही लखनऊ है, जहाँ कभी यह पूछनेवाले भी थे कि गेहूँ का पेड़ आम के पेड़ से छोटा होता है या बड़ा !

हिंदूपन की अंतिम झलक दिखानेवाले थानेश्वर, क़न्नौज, दिल्ली, पानीपत आदि स्थान उनके गंभीर भावों के आलंबन हैं, जिनमें ऐतिहासिक भावुकता है, जो देश के पुराने स्वरूप से परिचित हैं । उनके लिये इन स्थानों के नाम ही उद्दीपन-स्वरूप हैं । इन्हें सुनते ही उनके हृदय में कैसे-कैसे भाव जाग्रत् होते हैं, वे नहीं कह सकते । भारतेंदु का इतना ही कहना उनके लिये बहुत है कि—

हाय पंचनद ! हा पानीपत !
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत ?

हाय चितौर ! निलज तू भारी ;
अजहुँ खरो भारतहि मँझारी !

पानीपत, चित्तौर, क़न्नौज आदि नाम सुनते ही भारत का प्राचीन हिंदू-दृश्य आँखों के सामने फिर जाता है। उनके साथ गंभीर भावों का संबंध लगा हुआ है । ऐसे एक-एक नाम हमारे लिये काव्य के टुकड़े हैं । ये रसात्मक वाक्य नहीं, तो रसात्मक शब्द अवश्य हैं।

अब तक जो कुछ कहा गया, उससे यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि काव्य में 'आलंबन' ही मुख्य है । यदि कवि ने ऐसी वस्तुओं और व्यापारों को अपने शब्द-चित्र द्वारा सामने उपस्थित कर दिया, जिनसे श्रोता या पाठक के भाव जाग्रत् होते हैं, तो वह एक प्रकार से अपना काम कर चुका। संसार की प्रत्येक भाषा में इस प्रकार के काव्य वर्तमान हैं, जिनमें भावों को प्रदर्शित करनेवाले पात्र, अर्थात् 'आश्रय', की योजना नहीं की गई है— केवल ऐसी वस्तुएँ और व्यापार सामने रख दिए गए हैं, जिनसे श्रोता या पाठक ही भाव का अनुभव करते हैं। यदि किसी कवि ने किसी दृश्य का पूर्ण चित्रण करके रख दिया, तो क्या वह इसीलिये काव्य न कहलावेगा कि उसके वर्णन के भीतर कोई पात्र उस दृश्य से प्राप्त आनंद या शोक को अपने शब्द और चेष्टा द्वारा प्रकट करनेवाला नहीं है ? कुमारसंभव के आरंभ के उतने श्लोकों को, जिनमें हिमालय का वर्णन है, क्या काव्य से ख़ारिज समझें ? मेघदूत में जो आम्रकूट, विंध्य, रेवा आदि के वर्णन हैं, उन सबमें क्या यक्ष की विरह-व्यथा ही व्यंग्य है ?

विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी की गिनती गिनाकर किसी प्रकार 'रस' की शर्त पूरी करना ही जब से कविजन अपना परम पुरुषार्थ मानने लगे, तब से यह बात कुछ भूल-सी चली कि कवियों का मुख्य कार्य ऐसे विषयों को सामने रखना है, जो श्रोता के विविध भावों के आलंबन हो सकें। सच पूछिए, तो काव्य में अंकित सारे दृश्य श्रोता के भिन्न-भिन्न भावों के आलंबन-स्वरूप होते हैं । किसी पात्र को रति, हास, शोक, क्रोध आदि प्रकट करता हुआ दिखाने में ही रस-परिपाक मानना और यह समझना कि श्रोता को पूरी रसानुभूति हो गई, बुरा हुआ। श्रोता या पाठक के भी हृदय होता है । वह जो किसी काव्य को पढ़ता या सुनता है, सो केवल दूसरों का हँसना, रोना, क्रोध करना आदि देखने के लिये ही नहीं, बल्कि ऐसे विषयों को सामने पाने के लिये, जो स्वयं उसे हँसाने, रुलाने, क्रुद्ध करने, आकृष्ट करने, लीन करने का गुण रखते हों । राजा हरिश्चंद्र को श्मशान में रानी शैव्या से क़फ़न माँगते हुए, राम-जानकी को वन-गमन के लिये निकलते हुए, पढ़कर ही लोग क्या करुणार्द्र नहीं हो जाते ? उनकी करुणा क्या इस बात की अपेक्षा करती है कि कोई पात्र उन दृश्यों पर शोक या दुःख, शब्दों और चेष्टा द्वारा, प्रकट करे ? तुलसीदासजी के इस सवैए में—

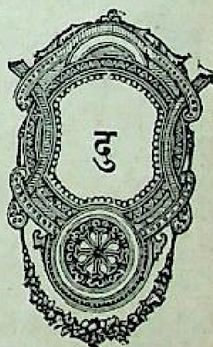
कागर कीर ज्यों भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई ;
मातु, पिता, प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई ।
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई ;
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ।

पाठक को करुण-रस में मग्न करने की पूरी सामग्री मौजूद है । परिस्थिति के सहित राम हमारी करुणा के आलंबन हैं, चाहे किसी पात्र की करुणा के आलंबन हों या न हों ।

रामचंद्र शुक्ल

वृंदावन का प्रेम-महाविद्यालय

विषय-प्रवेश



र्भाग्य से भारतवर्ष में ऐसे शिक्षणालयों का एकदम अभाव है, जिनकी शिक्षा कोरी शिक्षा न होकर मनुष्य के भावी जीवन-पथ को सुगम बनानेवाली हो—उन्हें परमुखापेक्षी न बनाकर स्वावलंबी तथा इच्छानुकूल स्वतंत्र व्यवसायी बनानेवाली हो। हम प्रायः देखते आ रहे हैं कि एक भारतीय ग्रेजुएट जब अपने शिक्षणालय की शिक्षा समाप्त कर, शिक्षा-संसार की परिधि नाँघकर, जीवन-संग्राम में प्रवेश करता है, तब उसके सामने विभिन्न प्रश्न-समूह आ खड़े होते हैं । जीवन का प्रश्न एक विवाद-ग्रस्त समस्या मालूम पड़ती है । बहुत सोचने पर भी वह यह निश्चित नहीं कर पाता कि

आख़िर किस पथ का पथिक बनना उसके लिये अधिक उपयुक्त होगा। बात यह है कि व्यवहारोपयोगी शिक्षा न प्राप्त होने के कारण उसका भविष्य अनिश्चित, उसकी कामनाएँ विशृंखलित एवं उसका जीवन-पथ विविध प्रश्न-पूर्ण होता है। ऐसी अवस्था में या तो वह किसी ऑफ़िस की क्लर्की करके अपने बहु-मूल्य जीवन को ५०-६० रुपयों के मासिक वेतन पर बेच देता है, या पुनः किसी जीविका-प्रद शिक्षणालय की शरण लेता है, और प्रचुर धन-व्यय तथा काल-व्यय के पश्चात् कहीं (आयु के लगभग आधे दिनों का बलिदान कर) उसे जीविकोपार्जन-पथ का आश्रय मिलता है। परंतु ऐसी स्थिति सर्व-साधारण जन-समुदाय के अत्यंत उच्चतम अंश की होती है। इस प्रकार यह शिक्षा भारत के लिये दिन-पर-दिन अनुपयोगी सिद्ध हो रही है। पर यदि यह शिक्षा उपयोगी हो भी, तो भी इतनी महँगी है कि भारत-जैसा दरिद्र देश इसे अपने निर्बल कंधों पर रखने में सर्वथा असमर्थ है। जो शिक्षा जीवन और संपत्ति का इतना अपव्यय करावे, और फिर भी जिससे जीवन का पथ पूर्णतया सुगम न हो, वह शिक्षा वास्तविक शिक्षा कैसे हो सकती है? संतोष की बात है कि देश के कुछ गण्य-मान्य, देव-तुल्य महापुरुषों का ध्यान इस प्रश्न की ओर आकर्षित होने लगा है।

राजा महेंद्रप्रताप का त्याग

लगभग १४ वर्ष हुए होंगे, प्रसिद्ध देश-भक्त राजा महेंद्रप्रताप का ध्यान इस कमी की ओर आकृष्ट हुआ था। अतएव आपने १४ मई, सन् १९०९ ई० को एक ऐसे निश्शुल्क शिक्षा देनेवाले महा-



सुप्रसिद्ध देश-भक्त राजा महेंद्रप्रताप

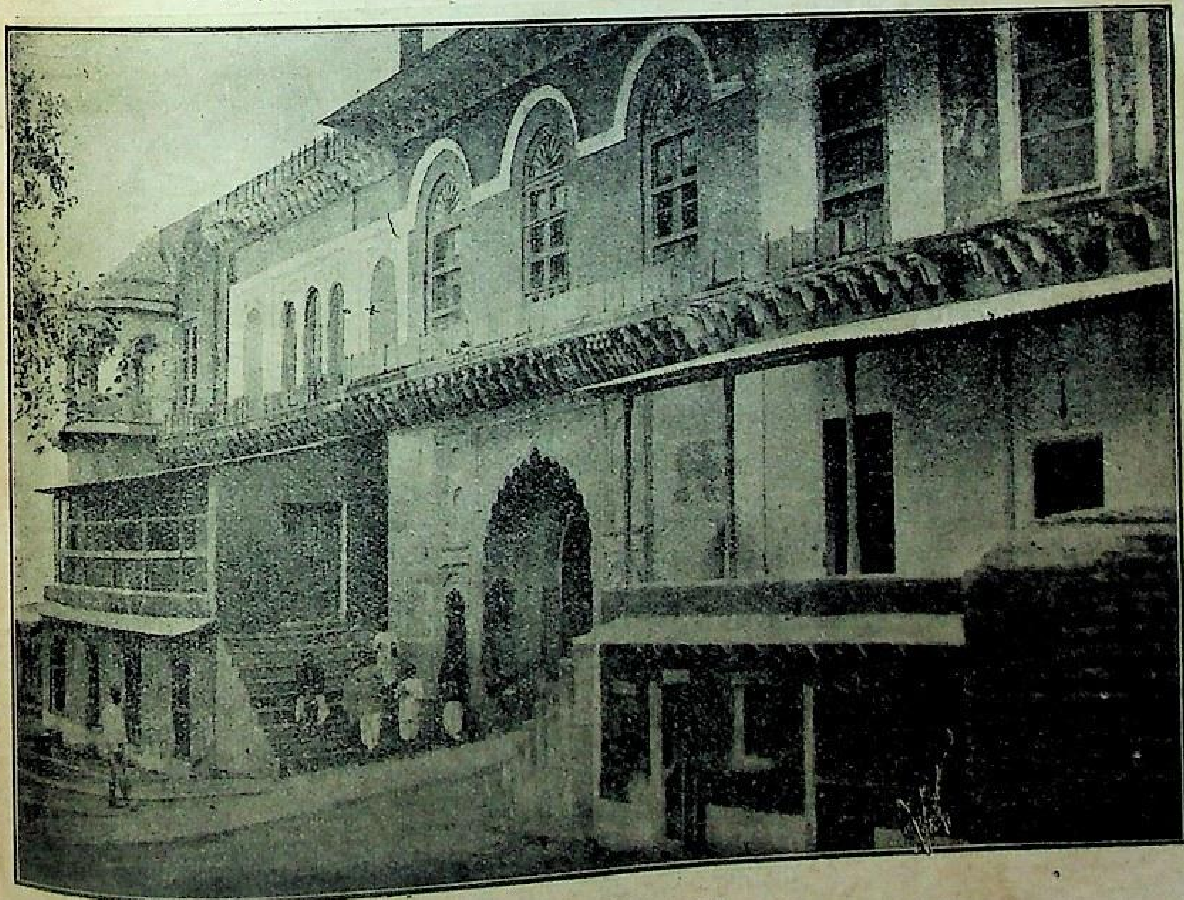
विद्यालय की स्थापना की, जिसका यही मुख्य ध्येय है कि उस(विद्यालय)की शिक्षा समाप्त करने के उपरांत युवक को परमुखापेक्षी न होना पड़े; वह इच्छानुकूल स्वतंत्र व्यवसाय करके सर्वथा स्वतंत्र जीवन-लाभ कर सके। यह विद्यालय प्रेम-महाविद्यालय के नाम से प्रख्यात है। इस विद्यालय का संचालन करने के लिये आपने अपने पाँच गाँव तथा भवन के लिये अपना विशाल राज-भवन समर्पण कर दिया है। वास्तव में राजा साहब का यह त्याग सर्वथा स्तुत्य है। इस लेख में इसी प्रेम-महाविद्यालय का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

प्रेम-महाविद्यालय

यह विद्यालय वृंदावन में, नगर के जन-रव से दूर, कालिंदी-कूल पर, राजा साहब के विशाल राजभवन में स्थित है। नगर के बाहर होने के कारण स्थान स्वच्छ है। विशुद्ध वायु प्राप्त होने का भी अच्छा सुबीता है। इसके सिवा विद्यालय के सामने उसका अपना उद्यान है; जो विद्यार्थियों को अपनी भीनी-भीनी सुगंधित वायु से सदैव प्रसन्न-चित्त तथा स्वस्थ रखता है। यों तो यमुना का प्रवाह वृंदावन के घाटों से प्रायः दूर ही रहता है, परंतु वर्षा-ऋतु में वह प्रायः विद्यालय के सामने आ जाया करता है, और उन दिनों यहाँ का दृश्य अत्यंत मनोहर एवं चित्ताकर्षक हो जाता है।

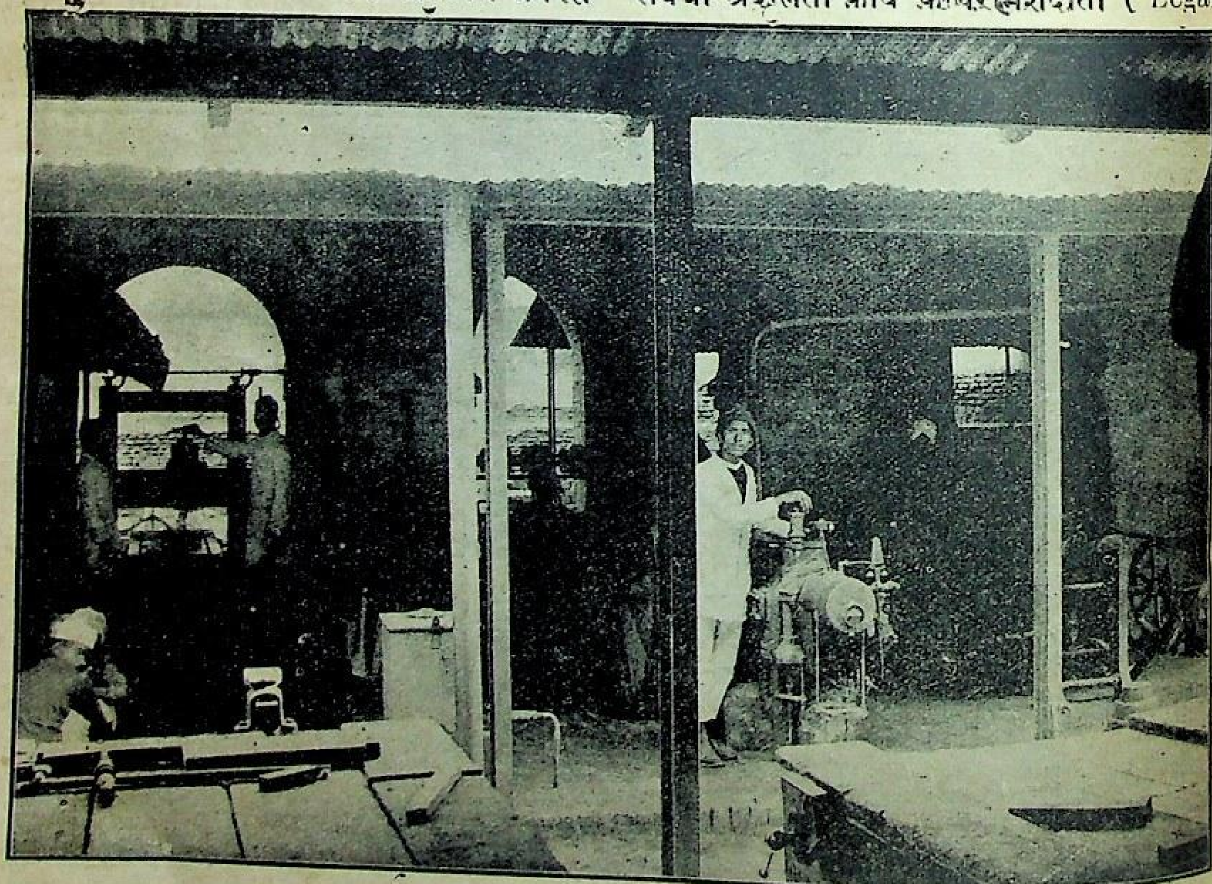
संगठन

यह संस्था सन् १८६० ई० के ऐक्ट के अनुसार रजिस्टर्ड है। इसका प्रबंध करने के लिये एक जेनरल कौंसिल तथा कार्य-कारिणी सभा नियुक्त है; जिसमें बड़े-बड़े



प्रेम-महाविद्यालय-भवन

सुप्रसिद्ध विचारशील तथा देश-भक्त महानुभाव सम्मिलित हैं। जेनरल कौंसिल का अधिवेशन साल-भर में कम-से-कम एक वार तथा कार्य-कारिणी सभा की बैठक प्रति मास में कम-से-कम एक वार होती है। इसी के विचारानुरूप कार्य होता है। जेनरल मैनेजर, जो इस सभा के संयुक्त मंत्री हैं, मंत्री महोदय की अनुमति के अनुसार अवैतनिक रूप से व्यवस्था-कार्य करते रहते हैं। वर्कशॉप के सुपरिंटेंडेंट, विद्यालय के मुख्याध्यापक तथा प्रेम-संपादक के अतिरिक्त प्रेस, छात्रालय, वाचनालय तथा स्टोर, सब के लिये अलग-अलग सुपरिंटेंडेंट हैं। ये सब जेनरल मैनेजर के अधीन रहकर अपने-अपने कार्य का संपादन करते रहते हैं। पाँचों गाँवों की रियासत का प्रबंध जेनरल मैनेजर महाशय स्वयं, एक सहायक की सहायता से, करते हैं। रियासत तथा विद्यालय के, कुल मिलाकर, लगभग सौ-सवा सौ कार्यकर्ता हैं। यदा-कदा कोई-कोई कार्यकर्ता अवैतनिक रूप से भी कार्य करके अपनी उदारता का परिचय देते रहते हैं। श्रीनारायणदास बी० ए० तथा पं० गंगाप्रसाद भार्गव बी० ए०, एल्-एल्० बी० विद्यालय के औद्योगिक विभाग का और पं० द्वारकानाथ भार्गव एम्० ए०, एल्-एल्० बी० तथा श्रीविश्वंभरनाथ बी० ए०, एल्-एल्० बी० विद्यालय और कॉमर्स-विभाग का निरीक्षण-कार्य करने के लिये इंस्पेक्टर रूप से नियत हैं। बुलंदशहर के श्रीविश्वंभरनाथ बी० ए०, एल्-एल्० बी०, तथा श्रीजगनलालजी गुप्त रियासत-संबंधी अदालती कार्य के परामर्शदाता (Legal



मेकेनिकल और इंजीनियरिंग क्लास

(विद्यार्थी एंजिन तथा रंदा आदि मशीनों पर कार्य कर रहे हैं)

adviser) हैं । स्वामी सच्चिदानंदजी पेंशनर एकाउंटेंट विद्यालय के ऑडीटर हैं ।

शिक्षा-क्रम

शिक्षा इन तीन प्रकार की श्रेणियों द्वारा दी जाती है—

(१) विद्यालय-श्रेणियों द्वारा शिक्षा के साथ दस्तकारी

(२) शिल्प-श्रेणियों द्वारा शिल्प-शिक्षा के साथ साहित्य-शिक्षा

(३) वाणिज्य-शिक्षा

प्रथम रीति से शिक्षा देने के लिये बाल-श्रेणी तथा प्रारंभिक श्रेणी के सिवा ७ श्रेणियाँ और हैं। इनमें हिंदी, अँगरेज़ी, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, ड्राइंग, अर्थ-शास्त्र तथा नागरिक धर्म की शिक्षा दी जाती है । बढ़ई का काम, वस्त्र बुनना तथा चीनी-मिट्टी के खिलौने बनाना, इन तीन कामों में से एक काम लेना प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अनिवार्य है ।

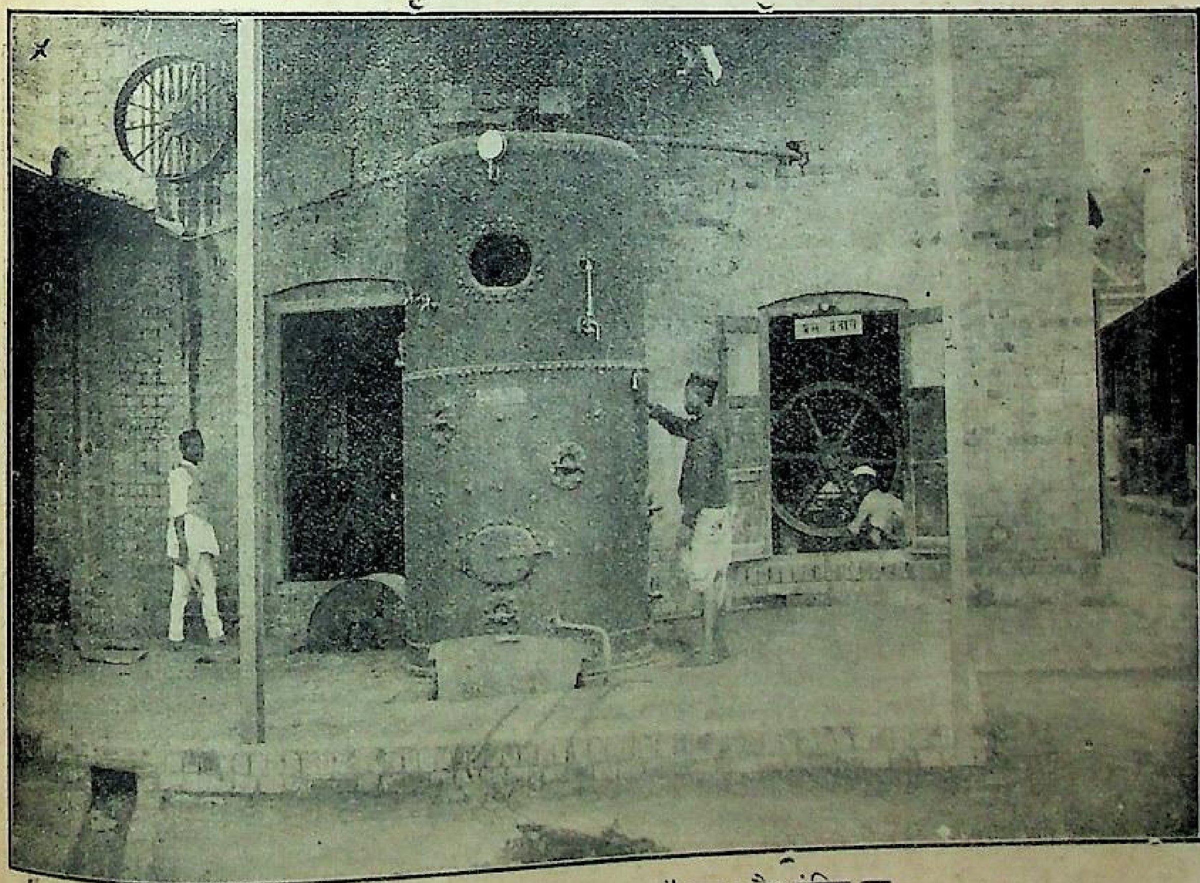
बाल और आरंभिक श्रेणियों को छोड़कर उक्त सभी श्रेणियों का पाठ्य-क्रम एक-एक वर्ष का है। सातवीं श्रेणी मैट्रिक्युलेशन के समान है। औद्योगिक विषय विशेष रूप से पढ़ाए जाते हैं ।

दूसरी रीति की शिल्प-श्रेणियाँ इन ६ भागों में विभक्त हैं—

(१) मेकेनिकल इंजीनियरिंग

(२) लकड़ी का काम

(३) गलीचा बुनना



मेकेनिकल इंजीनियरिंग-क्लास—बॉयलर और एंजिन-घर
(मोटर, बॉयलर और एंजिन पर काम हो रहा है)

(४) कपड़े बुनना

(५) चीनी के खिलौने तथा बर्तन बनाना

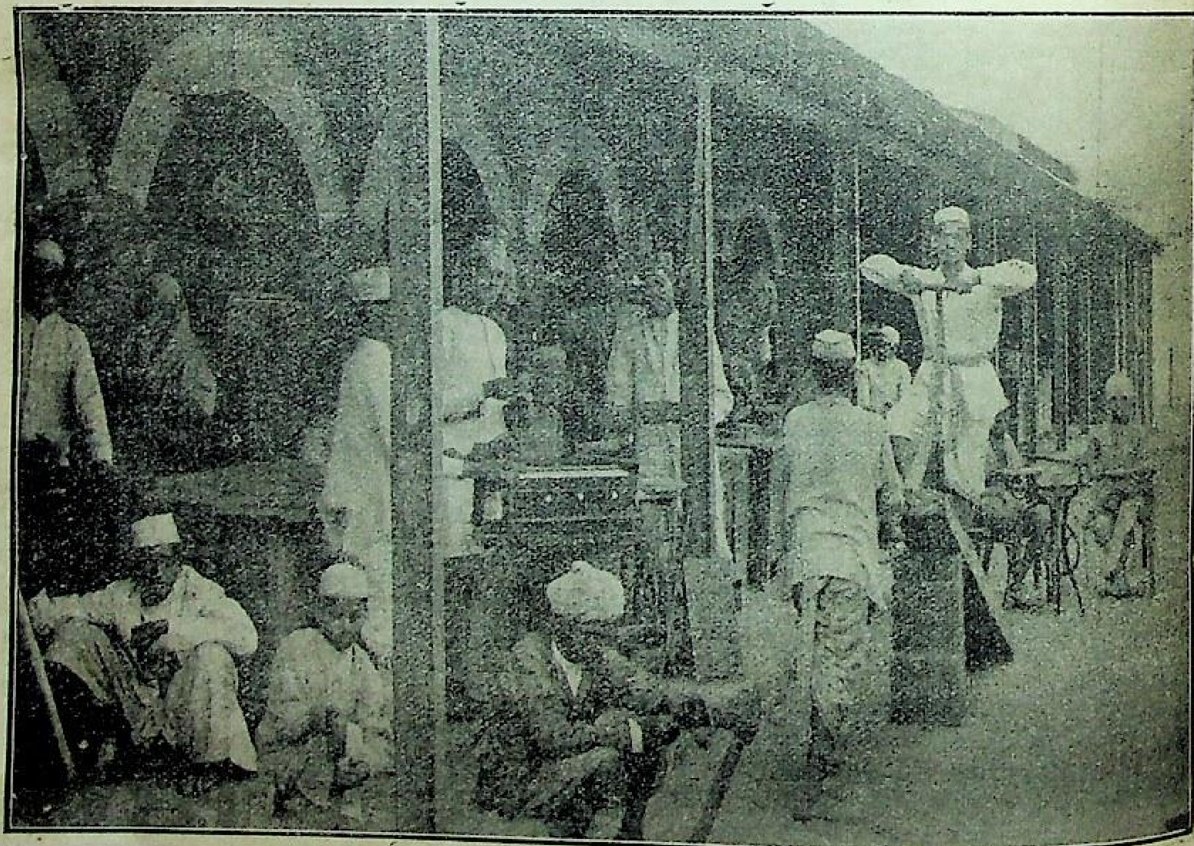
(६) लोहा ढालना तथा खराद और फ़िटिंग

इनमें उक्त विषयों के सिवा आवश्यकतानुसार गणित तथा हिंदी की शिक्षा भी दी जाती है। प्रेस तथा चीनी और मिट्टी के काम में उम्मेदवार भी रक्खे जाते हैं।

तीसरे प्रकार की श्रेणी वाणिज्य-शिक्षा की है। यह अपना द्वार उन विद्यार्थियों के लिये भी खुला रखती है, जो प्रेम महाविद्यालय के विद्यार्थी नहीं हैं। ऐसे विद्यार्थी साधारणतः मैट्रिक्युलेशन-पास (अथवा जो इसी परिमाण की योग्यता रखते हों) लिए जाते हैं। इसमें टाइप-राइटिंग, संक्षिप्त लेखन-कला तथा अँगरेज़ी ढंग का बहीखाता रखने (Book-keeping) की प्रारंभिक, माध्यमिक तथा उच्च तीनों प्रकार की, शिक्षा दी जाती है। नागरिक धर्म तथा अर्थ-शास्त्र, ये दो विषय प्रेम-महाविद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अनिवार्य हैं, बाहरवाले विद्यार्थियों के लिये नहीं। ड्राइंग सब कक्षाओं के लिये अनिवार्य है।

महिला-वस्त्र-कला-श्रेणी

इन श्रेणियों के अतिरिक्त महिलाओं के लिये एक महिला-वस्त्र-कला-श्रेणी है। इसमें सूत कातना, कपड़ा, क़ालीन तथा निवार आदि बुनना सिखलाया जाता है। हारमोनियम बजाने की शिक्षा का भी प्रबंध है।



लकड़ी के काम की श्रेणी

(विद्यार्थी लकड़ी का काम कर रहे हैं, और हारमोनियम बना रहे हैं)

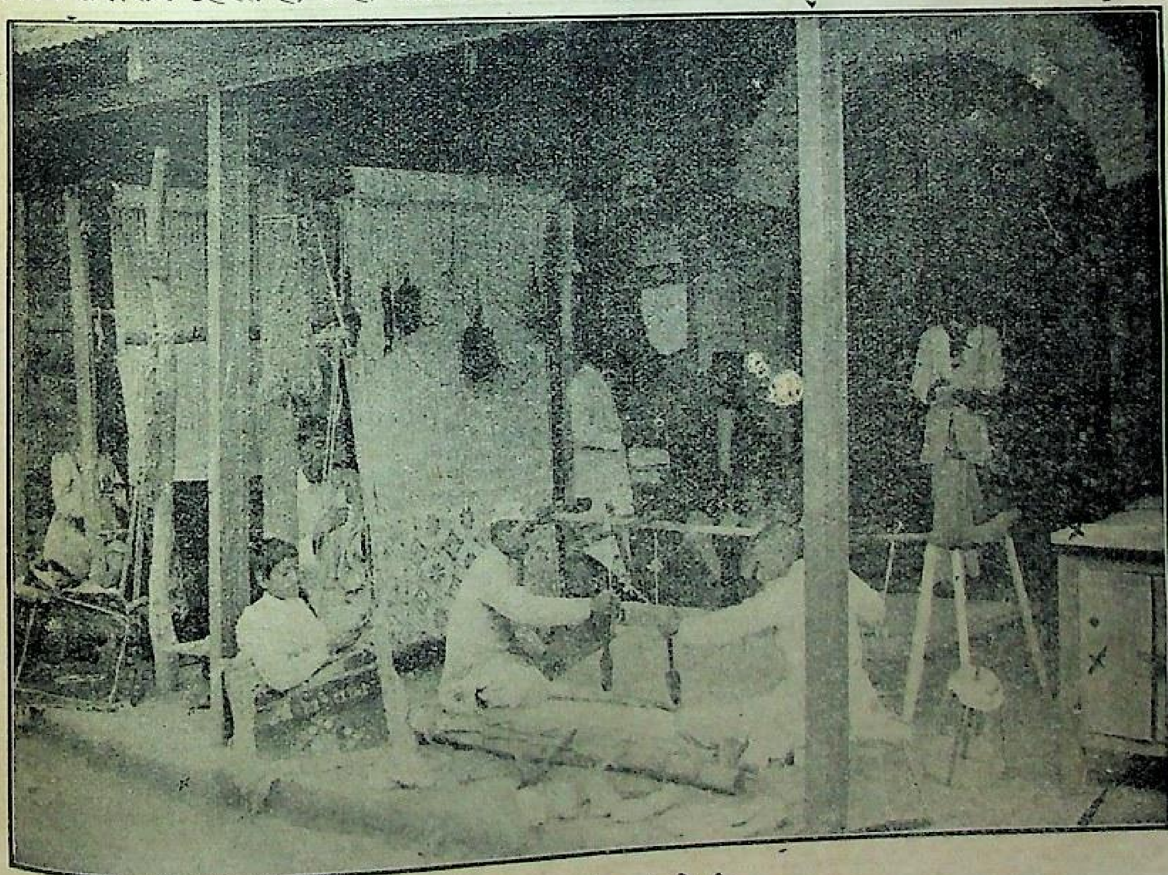
विद्यार्थियों को सामयिक तथा अन्य उपयोगी विषयों पर भाषण देने और निबंध लिखने का अभ्यास कराने तथा उनमें परस्पर प्रेम और सुहृद्भाव जाग्रत् करने के लिये 'प्रेम-बाल-सभा', 'प्रेम-युवक-सभा' तथा 'प्रेम-महिला-सभा' स्थापित हैं। प्रति सप्ताह सोमवार को इनकी बैठकें होती हैं।

प्रेम-सभाएँ

समय-समय पर जो विद्वान् पधारते हैं, उनके भाषण हुआ करते हैं, और यदा-कदा उपयोगी विषयों पर वादानुवाद भी, जिनसे विद्यार्थियों की मानसिक शक्तियों के विकास में अच्छी सहायता मिलती है। वर्ष-भर के साप्ताहिक अधिवेशनों में जिन विद्यार्थियों के व्याख्यान तथा निबंध सर्वोत्तम ठहरते हैं, उन्हें, अंतरंग सभा की सिफ़ारिश पर, वार्षिकोत्सव के अवसर पर, विद्यालय की ओर से, पुरस्कार भी दिया जाता है।

समस्त शिक्षा निश्शुल्क दी जाती है। औद्योगिक कार्य करने के लिये विभिन्न औज़ारों की आवश्यकता पड़ती है। यदि ये औज़ार विद्यार्थियों को ख़रीदने पड़ें, तो विद्यालय के ख़र्च की यह एक मद कम हो सकती है; परंतु साथ-ही-साथ विद्यार्थियों पर इन औज़ारों के ख़रीदने का बोझ पड़ने पर उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ जायँ। अतएव विद्यालय ने विद्यार्थियों की सुविधा का ध्यान रखकर ऐसा प्रबंध किया है कि विद्यार्थियों को औज़ार नहीं ख़रीदने पड़ते, विद्यालय उन्हें अपनी ओर से मुफ़्त देता है। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को औद्योगिक विषयों

निश्शुल्क शिक्षा तथा अन्य सुविधाएँ

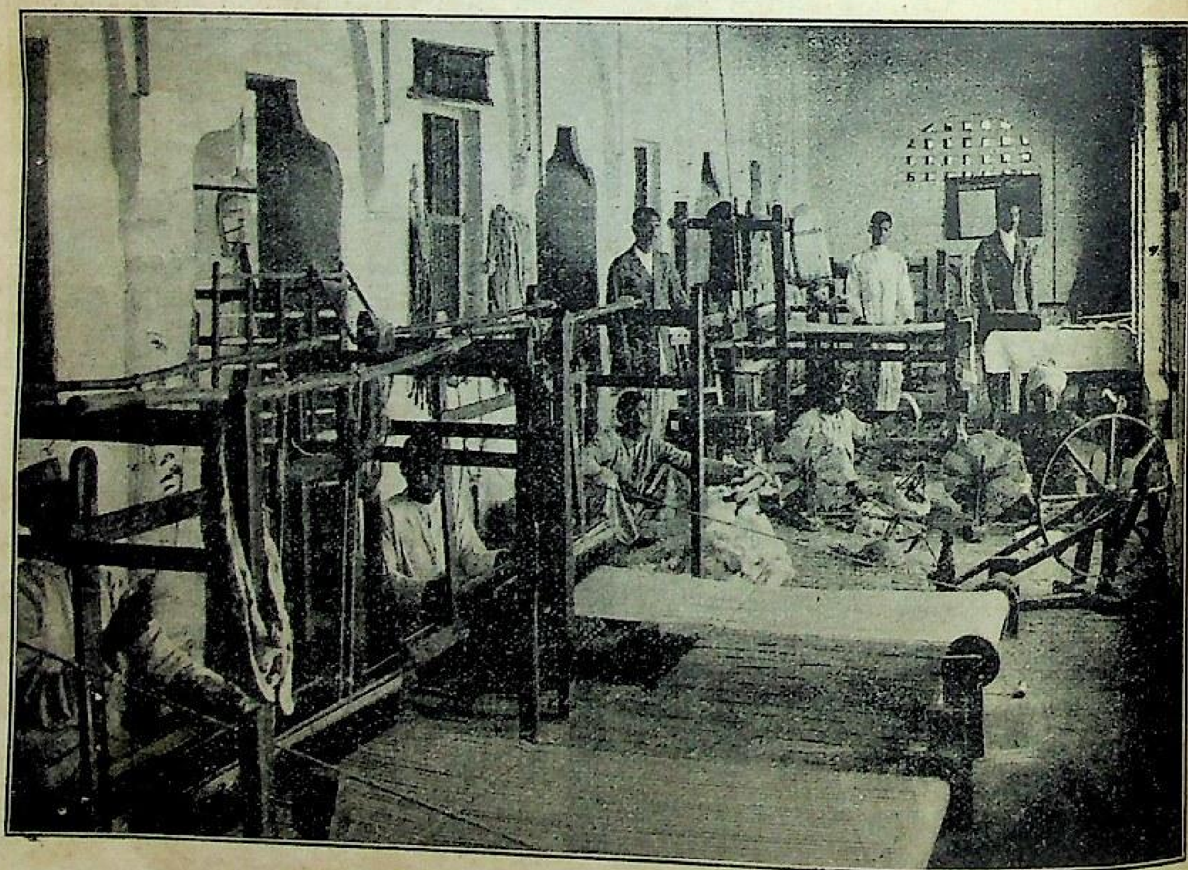


दरी और क़ालीन की श्रेणी
(विद्यार्थी क़ालीन और दरी बुन रहे हैं)

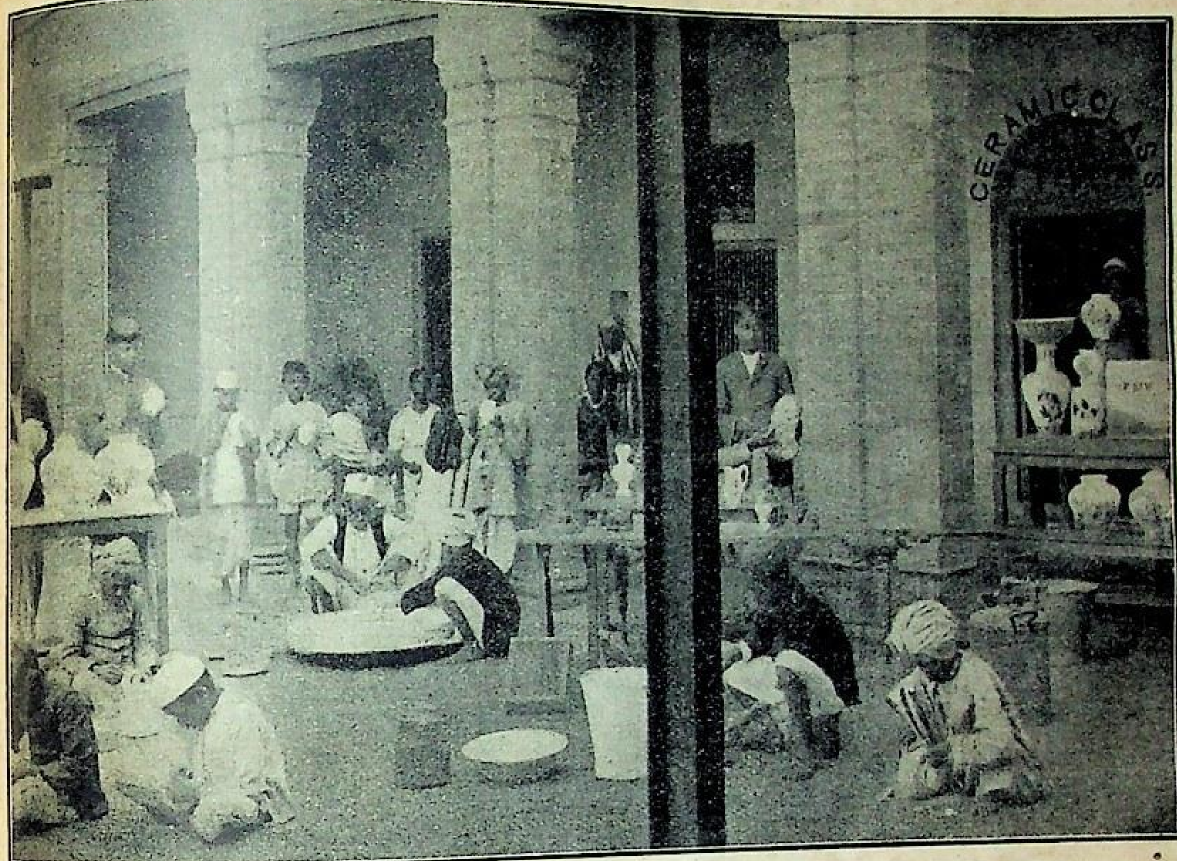
में उत्साहित करने तथा निर्धन, असमर्थ और योग्य विद्यार्थियों को अधिक प्रयत्नशील बनाने के लिये कुछ छात्र-वृत्तियाँ भी नियत हैं। एतदर्थ उन्हें यह प्रतिज्ञा-पत्र लिखना पड़ता है कि वे अपनी पढ़ाई समाप्त करने के पूर्व इस संस्था से पृथक् न होंगे। छात्र-वृत्ति १) से ७) तक दी जाती है। छात्र-वृत्ति नक़द रुपए के रूप में उसी समय दी जाती है, जब विद्यार्थी अपनी समस्त पाठ्य-पुस्तकों को प्राप्त कर चुका होता है। यदि छात्र-वृत्ति के अधिकारी विद्यार्थी के पास पाठ्य-विषय की पूरी पुस्तकें नहीं होतीं, तो उसे छात्र-वृत्ति की रक़म तक की पुस्तकें, छात्र-वृत्ति के रूप में, दी जाती हैं। इस मद में विद्यालय प्रति वर्ष २४००) के लगभग व्यय करता है—८००) विद्यालय-विभाग में तथा १६००) वर्क-शॉप-विभाग में।

शिक्षा का माध्यम हिंदी

समस्त शिक्षा का माध्यम हिंदी है। हिंदी में ही समस्त शिक्षा दी जाती है। कुछ विषय ऐसे हैं, जिन पर अभी हिंदी में पर्याप्त पुस्तकों का अभाव है; जैसे औद्योगिक, वैज्ञानिक। इनकी शिक्षा के लिये एक विशेष प्रबंध है। अध्यापक महोदय अँगरेज़ी आदि भाषाओं में इन विषयों पर, अध्ययन करके, नोट लिखकर ले आते हैं, और उन्हीं की सहायता से हिंदी में ही इन विषयों की भी शिक्षा देते हैं। केवल मेकेनिकल इंजीनियरिंग, विज्ञान तथा चीनी के कार्य को सिखाने के लिये आवश्यकतानुसार अँगरेज़ी



वस्त्र-कला-श्रेणी
(विद्यार्थी रुई धुन रहे हैं, सूत कात रहे हैं और कपड़ा बुन रहे हैं)

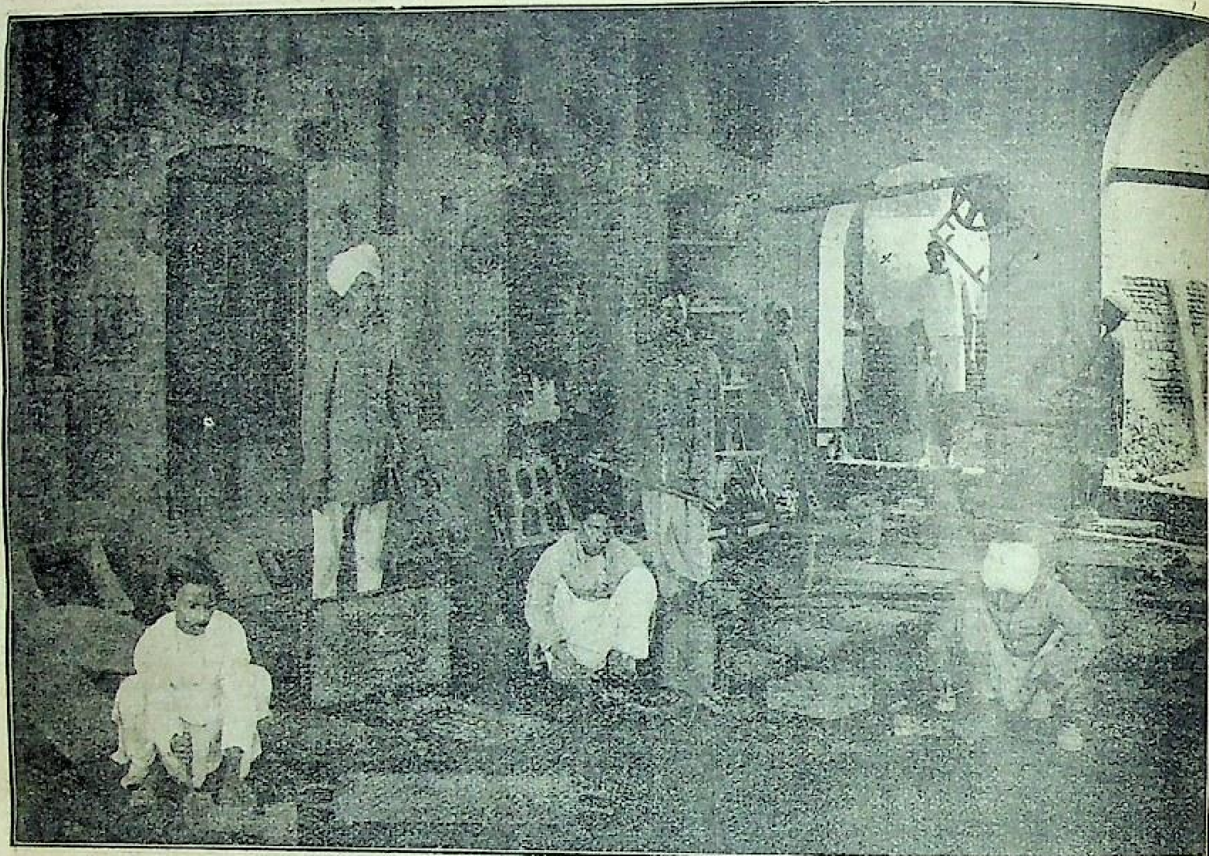


चीनी और मिट्टी के काम की श्रेणी
(विद्यार्थी चीनी और मिट्टी के बर्तन बना रहे हैं)

का आश्रय लिया जाता है। परंतु विद्यालय के अध्यापक इन विषयों की शिक्षा हिंदी में ही देने के लिये पूर्ण रूप से तल्लीन रहते हैं। आशा है, निकट भविष्य में यह पूर्ण रूप से हिंदी में ही दी जायगी।

धार्मिक स्वतन्त्रता तथा सदाचरण

विद्यालय किसी विशेष मत-मतांतर का पक्षपाती नहीं है। सभी धर्मों के विद्यार्थियों के लिये इसका द्वार खुला है। सभी विद्यार्थी अपने-अपने धार्मिक कृत्य करने में स्वतंत्र हैं। शुरू से ही विद्यालय इस विषय में सतर्क रहा है कि विद्यालय के विद्यार्थियों में सभी प्रकार के धार्मिक साहित्य का अध्ययन, अनुशीलन करने के लिये उत्साह रहे, उनमें सब प्रकार के धार्मिक विश्वासों के प्रति सहानुभूति तथा सहनशीलता और विभिन्न धार्मिक विश्वास रखनेवाले विद्यार्थियों के साथ प्रेम, समता और सौहार्द रहे। विद्यालय तथा वर्क-शॉप में पढ़ाई प्रारंभ होने से पूर्व ईश्वर-प्रार्थना करने का भी नियम है। सदाचार की ओर अध्यापकों का निरंतर ध्यान रहता है। वे मौखिक उपदेश तथा अपने सद्व्यवहारों द्वारा सदैव प्रयत्नशील रहते हैं कि विद्यालय के विद्यार्थी आदर्श सदाचारी बनें। इसीलिये विशेष रूप से ऐसा नियम रक्खा गया है कि महाविद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी को या तो प्रेम-छात्रालय में रहना पड़ता है, अथवा किसी ऐसे संरक्षक या प्रेम-महाविद्यालय के अध्यापक के निरीक्षण में, जिसे प्रेम-महाविद्यालय के जेनरल मैनेजर या मंत्री उचित समझें।



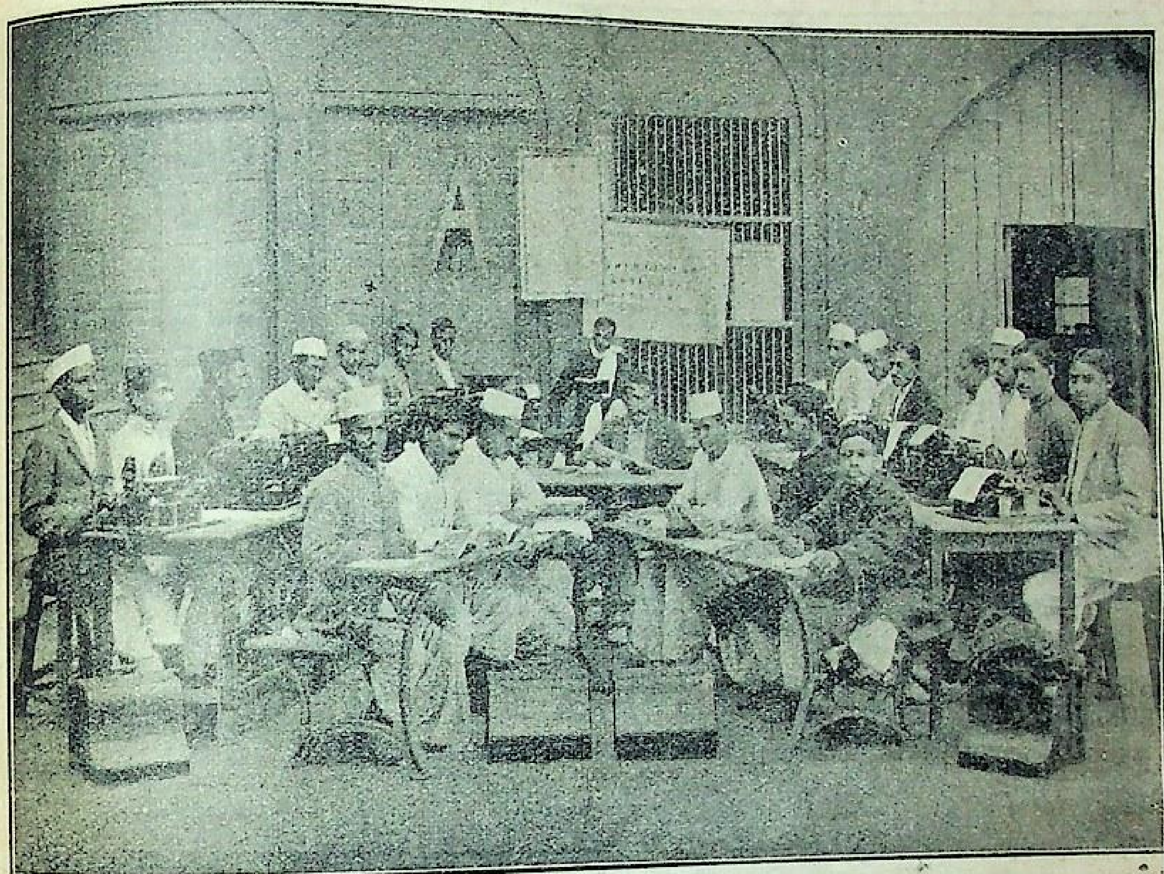
ढलाई-घर
(विद्यार्थी साँचे बना रहे हैं, और लोहे आदि के पुर्ज़े ढाल रहे हैं)

स्वास्थ्य-रक्षा

विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये विद्यालय का खेल-कूद की ओर समुचित ध्यान रहता है। प्रति शुक्रवार को केवल इसीलिये आधे दिन की छुट्टी रहती है। बाहर से जो टीमें आती हैं, उनके साथ भी विद्यालय के विद्यार्थियों के प्रायः हाकी, क्रिकेट तथा फ़ुटबाल के मैच होते रहते हैं। विद्यालय के विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने के लिये इन खेलों पर यदा-कदा पारितोषिक भी दिया जाता है। इन खेलों का सारा सामान भी विद्यार्थियों को मुफ़्त मिलता है। खेलों का प्रबंध तथा निरीक्षण करने के लिये विशेष-विशेष अध्यापक नियुक्त रहते हैं। अँगरेज़ी खेलों के अतिरिक्त देशी खेलों में विद्यालय के विद्यार्थी बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। प्रति दिन किसी-न-किसी प्रकार के खेल तथा व्यायाम में भाग लेना प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अनिवार्य है।

प्रवेश-नियम

स्थान ख़ाली होने पर प्रवेश के लिये आए हुए शिक्षार्थियों की परीक्षा होती है, और फिर उनकी योग्यता के अनुसार उन्हें उचित श्रेणी में भरती कर लिया जाता है। आयु की साधारणतः कोई क़ैद नहीं है। हाँ, औद्योगिक विभाग के विद्यार्थियों के प्रवेश के लिये कम-से-कम १२ वर्ष की अवस्था होने का नियम है। विद्यार्थी का स्वस्थ—विशेषतया किसी प्रकार के मानसिक और संक्रामक रोग से रहित—



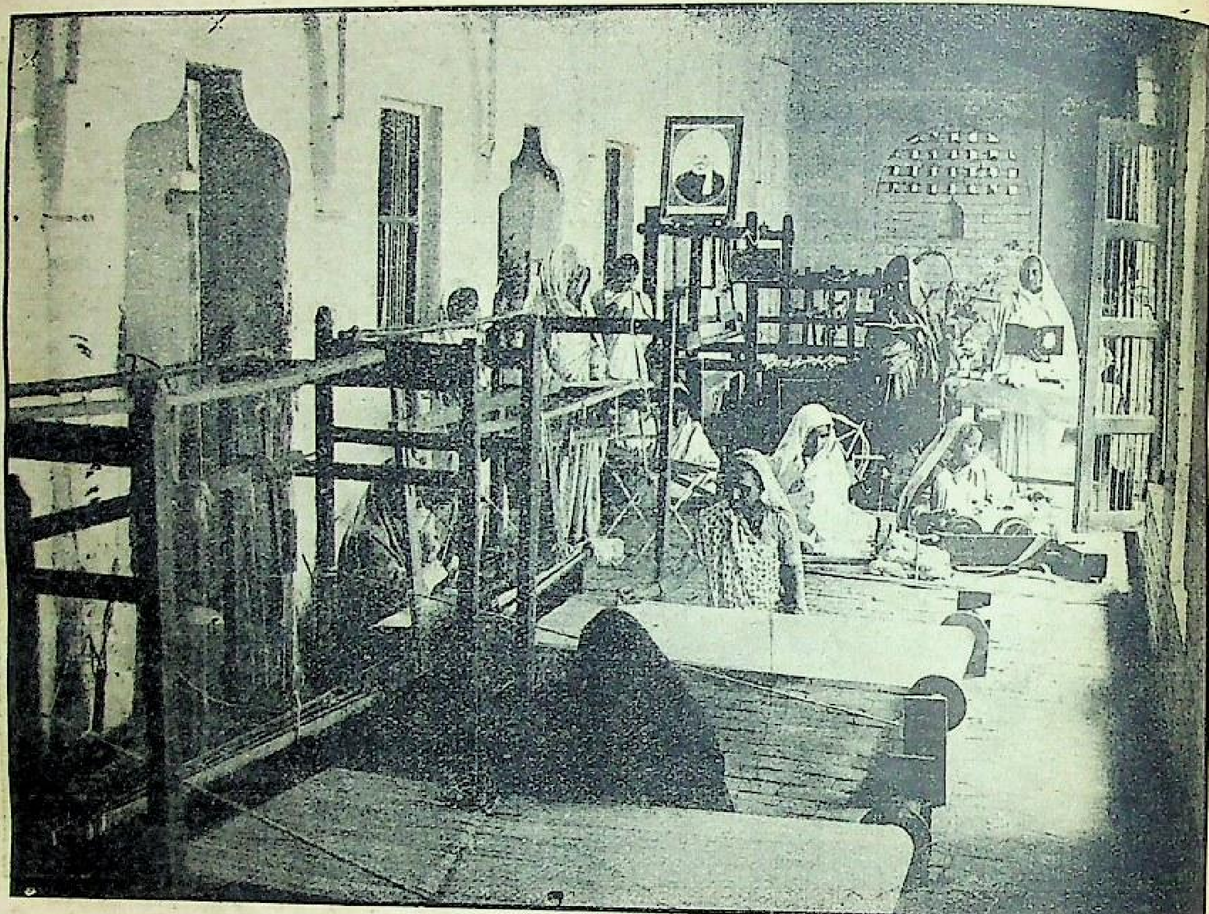
कॉमर्स-क्लास

(पीछे की पंक्ति टाइप कर रही है, और सामने के विद्यार्थी बुक-कीपिंग और शॉर्ट-हैंड-राइटिंग सीख रहे हैं)

होना आवश्यक है। भर्ती कर लिए जाने पर किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता। हाँ, शिल्प तथा वाणिज्य-श्रेणियों में प्रवेश के समय १०) ज़मानत के रूप में लिए जाते हैं। शिक्षा-कार्य समाप्त करके जब विद्यार्थी विद्यालय से पृथक् होता है, तब ये रुपए वापस कर दिए जाते हैं। परंतु यदि विद्यार्थी शिक्षा-कार्य समाप्त किए बिना ही विद्यालय से पृथक् होता है, तो उस दशा में ये ज़मानत के तौर पर जमा किए गए रुपए नहीं लौटाए जाते। नए वर्ष की शिक्षा का प्रारंभ साधारणतः जून-मास के अंत में होता है। परंतु बाल-श्रेणी तथा शिल्प-श्रेणी में यथेष्ट योग्यता रखनेवाले विद्यार्थी वर्ष के बीच में भी प्रविष्ट हो सकते हैं। वाणिज्य-श्रेणी में प्रत्येक त्रैमासिक परीक्षा के पश्चात् १५ दिन तक प्रवेश हो सकता है। प्रवेश के लिये विद्यार्थी के पिता अथवा संरक्षक को एक फ़ार्म भरना पड़ता है, और उसके साथ-ही-साथ विद्यार्थी के सदाचारी होने के प्रमाण-स्वरूप दो प्रतिष्ठित सज्जनों के प्रमाण-पत्र, अपने प्रार्थना-पत्र के साथ, देने होते हैं। बालिकाओं को पढ़ाने के लिये विद्यालय में कोई अलग व्यवस्था नहीं है। वे विद्यार्थियों के साथ ही शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं।

छुट्टियाँ

छुट्टियाँ वर्ष-भर में त्योहार तथा विशेष पर्व आदि की सब मिलाकर १ मास की, वार्षिक परीक्षा के पश्चात् १५ दिन की तथा सितंबर-ऑक्टोबर के दिनों में १ मास

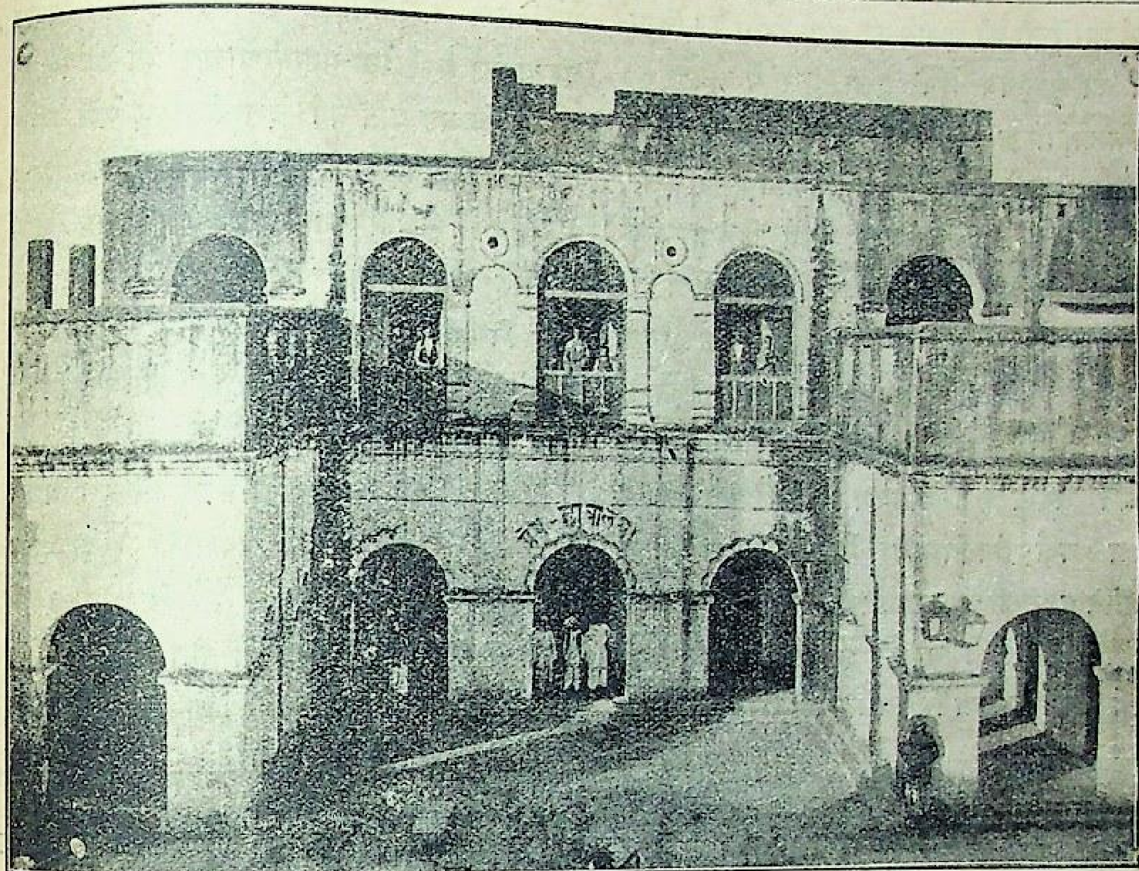


महिला-वस्त्र-कला-श्रेणी
(महिलाएँ कपड़ा बुन और सूत कात रही हैं)

की रहती हैं, और प्रति सप्ताह मंगलवार को अनध्याय रहता है।

विद्यालय का अपना एक स्वतंत्र छात्रालय है। यह बहुत विशाल है। इसमें ६० विद्यार्थी, स्वास्थ्य-रक्षा के नियम और सिद्धांत के अनुसार, सुख-पूर्वक और स्वतंत्र रूप से रह सकते हैं। इसमें रहने के लिये किसी प्रकार की फ़ीस (या किराया) नहीं ली जाती। केवल १०) अमानत के रूप में लिए जाते हैं; जो, नियमानुसार छात्रालय छोड़ने और अमानत जमा करने की पूर्व प्राप्त रसीद देने पर, वापस दे दिए जाते हैं। इसमें १२ वर्ष के, या इससे अधिक आयु के, नीरोग और सदाचारी विद्यार्थी, स्थान खाली होने पर, भरती किए जाते हैं। उन्हें १ चारपाई, १ मेज़, १ स्टूल, व्यायाम और खेलने का सामान, दवा और भोजनादि के बर्तन मुफ़्त मिलते हैं। परंतु लोटा, कटोरी, लैंप, बिस्तरा, संदूक़ और ताला अपने पास से लेकर रखना होता है। अस्वस्थ होने पर दवाएँ बिना मूल्य दी जाती हैं। देख-भाल के लिये एक अनुभवी वैद्यराज रहते हैं। मांस-भोजन, मादक द्रव्योपयोग और अश्लील गान तथा दिल्लगी का सर्वथा निषेध है। सब विद्यार्थी निश्चित समय पर व्यायाम तथा ईश्वरोपासना करते हैं। भोजन-व्यय, जो घी-दूध छोड़कर अनुमान से ८-९ रुपए के लगभग होता है, प्रत्येक मास की ५ तारीख़ तक चुका देना पड़ता है।

छात्रालय



प्रेम-छात्रालय
(भीतर का दृश्य)

अतिथि-शाला

विद्यार्थियों के संरक्षकों के लिये अतिथि-शाला का प्रबंध पृथक् है। इसमें संरक्षक अधिक-से-अधिक तीन दिन तक ठहर सकते हैं। उनका भोजन-व्यय विद्यार्थी के भोजन-व्यय में सम्मिलित कर लिया जाता है। विद्यार्थियों के संरक्षकों के सिवा जो व्यक्ति दर्शक रूप से पधारते हैं, वे भी जनरल मैनेजर की अनुमति से अधिक-से-अधिक तीन दिन तक ही ठहर सकते हैं। उन्हें भोजन बनाने के लिये बर्तन आदि दिए जाते हैं; जिन्हें स्वच्छ और सुरक्षित रखकर, जाने के पूर्व, जनरल मैनेजर को सँभलवा देना, उनके लिये, आवश्यक होता है।

संबद्ध संस्थाएँ

विद्यालय से संबंध रखनेवाली ये चार संस्थाएँ और हैं—

(१) पुस्तकालय, (२) वाचनालय, (३) प्रेस तथा (४) प्रेम-पत्र।

पुस्तकालय में साहित्य, शिल्प, उद्योग, विज्ञान तथा गणित आदि विद्यालयोपयोगी विषयों की, हिंदी, अँगरेज़ी तथा उर्दू की, लगभग ३००० पुस्तकें हैं। ये लगभग ५०००) की होंगी। पुस्तकालय के साथ ही एक वाचनालय है; जिसमें हिंदी तथा अँगरेज़ी के दैनिक, अर्ध-साप्ताहिक, साप्ताहिक तथा मासिक, सब मिलाकर कोई ८० पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। यह वाचनालय प्रायः ६½ बजे से ४ बजे तक खुला रहता है। विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के अतिरिक्त सर्व-साधारण जनता भी इस वाचनालय से लाभ उठाती है। विद्यालय का अपना एक प्रेस है। उसमें विद्यालय-संबंधी हिंदी

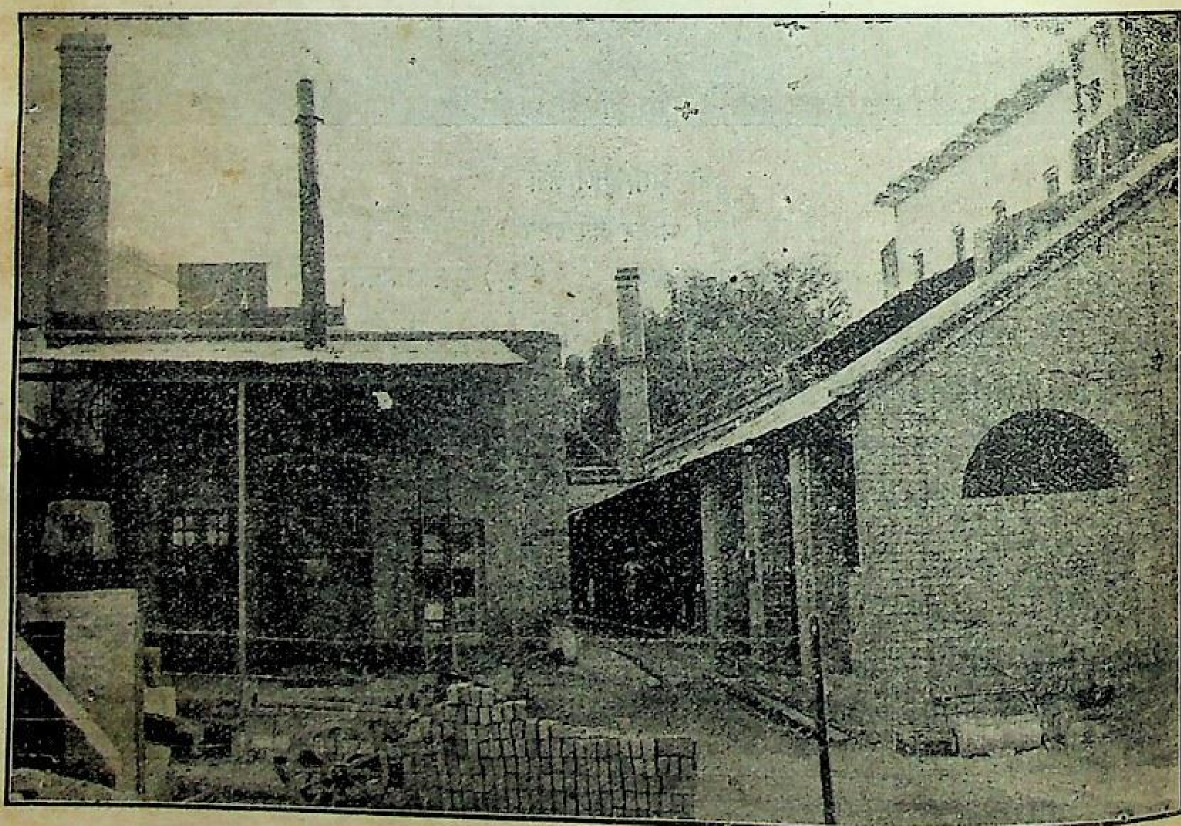
तथा अँगरेज़ी की छपाई का कार्य होता है। विद्यालय का मुख-पत्र 'प्रेम' इसी प्रेस में छपता है। इसके अतिरिक्त, सुविधानुसार, बाहर का कार्य भी प्रेस छापता है। 'प्रेम' साप्ताहिक पत्र है। इसमें विज्ञान तथा कला-कौशल के लेखों के अतिरिक्त सामयिक विषयों पर भी विवेचन किया जाता है।

वर्क-शॉप का महत्त्व

विद्यालय का प्रधान लक्ष्य औद्योगिक शिक्षा का प्रचार तथा शिक्षित कारीगर तैयार करके कला-कौशल की उन्नति करना है। अतएव विद्यालय विभाग के सिवा वर्क-शॉप-विभाग में औद्योगिक शिक्षा सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक, दोनों प्रणालियों से दी जाती है। यों तो इस विभाग का सभी कार्य अपना-अपना विशेष महत्त्व रखता है, परंतु मेकेनिकल इंजीनियरिंग का शिक्षण-कार्य विशेष महत्त्व-पूर्ण है। प्रेम-महाविद्यालय का उद्देश्य ही यह है कि वह प्रति वर्ष देश को कुछ ऐसे व्यक्ति दे सके, जो अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के योग से एंजिनों तथा मशीनों से यथेष्ट काम ले सकें उनमें आवश्यकतानुसार सुधार कर सकें, बिगड़ने पर उनकी मरम्मत कर सकें, और उनसे संबंध रखनेवाले छोटे-छोटे आविष्कार भी स्वतः कर सकें।

प्रदर्शिनी

विद्यालय में एक प्रदर्शिनी-भवन भी है। विद्यालय के जो विद्यार्थी सुंदर-सुंदर वस्तुएँ बनाते हैं, वे सब इसमें एकत्रित रहती हैं। साल में तीन बार प्रदर्शिनी होती है। जिन दिनों प्रदर्शिनी होती है, उन दिनों



वर्क-शॉप

(सामने का दृश्य)

विद्यार्थी नई-नई तथा उत्तमोत्तम वस्तुएँ बनाने के लिये विशेष प्रयत्न-शील रहते हैं। उनकी कार्य-कुशलता पर पुरस्कार भी दिया जाता है।

विद्यालय का संक्षिप्त परिचय इन्हीं शब्दों में समाप्त किया जाता है। यह संस्था औद्यो-

विशेष वक्तव्य

गिक शिक्षा के प्रचार द्वारा देश की कितनी सेवा कर रही है, यह इस लेख से स्पष्ट है। कार्य-विवरण देखने पर स्पष्ट झलकने लगता है कि इस संस्था का क्षेत्र वास्तव में बहुत विशाल है। इसका काम बड़ी योग्यता से चलाया जा रहा है। युक्त प्रांत के लिये यह संस्था गौरव-स्वरूप है। किंतु इतने बड़े कार्य के लिये, इसे और भी विस्तृत करने के लिये, देशवासियों की सहायता भी परम आवश्यक है। यदि इसे कुछ और आर्थिक सहायता प्राप्त हो, तो वास्तव में यह संस्था देश के लिये और भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। आशा है, देशवासी इसे अवश्य अपनावेंगे। भगवान् करें, राजा महेंद्र-प्रताप का यह अतुल त्याग देश के लिये अतुलनीय लाभ-प्रद सिद्ध हो।

आप-बीती ❋



यः अधिकांश साहित्य-सेवियों के जीवन में एक ऐसा समय आता है, जब पाठकगण उनके पास श्रद्धा-पूर्ण पत्र भेजने लगते हैं। कोई उनकी रचना-शैली की प्रशंसा करता है, कोई उनके सद्विचारों पर मुग्ध हो जाता है। लेखक को भी कुछ दिनों से यह सौभाग्य प्राप्त है। ऐसे पत्रों को पढ़कर उसका हृदय कितना गद्गद हो जाता है, इसे किसी साहित्य-सेवी ही से पूछना चाहिए। अपने फटे कंबल पर बैठा हुआ वह गर्व और आत्म-गौरव की लहरों में डूब जाता है। भूल जाता है कि रात को गीली लकड़ी से भोजन पकाने के कारण सिर में कितना दर्द हो रहा था, खटमलों और मच्छड़ों ने रात-भर कैसे नींद हराम कर दी थी। 'मैं भी कुछ हूँ' यह अहंकार उसे एक क्षण के लिये उन्मत्त बना देता है। पिछले साल, सावन के महीने में, मुझे एक ऐसा ही पत्र मिला। उसमें मेरी क्षुद्र रचनाओं की दिल खोलकर दाद दी गई थी।

पत्र-प्रेषक महोदय स्वयं एक अच्छे कवि थे। मैं उनकी कविताएँ पत्रिकाओं में अक्सर देखा करता था। यह पत्र पढ़कर फूला न समाया। उसी वक्त जवाब लिखने बैठा। उस तरंग में जो कुछ लिख गया, इस समय याद नहीं। इतना ज़रूर याद है कि पत्र आदि से अंत तक प्रेम के उद्गारों से भरा हुआ था। मैंने कभी कविता नहीं की, और न कोई गद्य-काव्य ही लिखा; पर भाषा को जितना सँवार सकता था, उतना सँवारा। यहाँ तक कि जब पत्र समाप्त करके दुबारा पढ़ा, तो कविता का आनंद आया। सारा पत्र भाव-लालित्य से परिपूर्ण था। पाँचवें दिन कवि महोदय का दूसरा पत्र आ पहुँचा। वह पहले पत्र से भी कहीं अधिक मर्मस्पर्शी था। 'प्यारे भैया!' कहकर मुझे संबोधित किया गया था; मेरी रचनाओं की सूची और प्रकाशकों के नाम, ठिकाने, पूछे गए थे। अंत में यह शुभ समाचार था कि "मेरी पत्नीजी को आपके ऊपर बड़ी श्रद्धा है; वह बड़े प्रेम से आपकी रचनाओं को पढ़ती हैं। वही पूछ रही हैं कि आपका विवाह कहाँ हुआ है, आपकी संतानें कितनी हैं, तथा आपका कोई फ़ोटो भी है? हो, तो कृपया भेज दीजिए।" मेरी जन्म-भूमि और वंशावली का पता भी पूछा गया था। इस पत्र, विशेषतः उसके अंतिम समाचार, ने मुझे पुलकित कर दिया।

यह पहला ही अवसर था कि मुझे किसी महिला के मुख से, चाहे वह प्रतिनिधि द्वारा ही क्यों न हो, अपनी प्रशंसा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ग़रूर का नशा छा गया। धन्य है भगवन्! अब रमणियाँ भी मेरे कृत्य की सराहना करने लगीं। मैंने तुरंत उत्तर लिखा। जितने कर्ण-प्रिय शब्द मेरी स्मृति के कोष में थे, सब ख़र्च कर दिए। मैत्री और बंधुत्व से सारा पत्र भरा हुआ था।

❋ आज जिस घटना का वर्णन कर रहा हूँ, उसमें कोई असाधारणता नहीं है। ऐसी घटनाएँ हमारे जीवन में प्रायः नित्य ही होती रहती हैं। हाँ, असाधारणता उसके सुपरिणाम में है। कहीं ऐसे परिणाम इतने दुर्लभ न होते, तो संसार कितना सुखमय हो जाता।

अपनी वंशावली का विस्तृत वर्णन किया । कदाचित् मेरे पूर्वजों का ऐसा कीर्ति-गान किसी भाट ने भी न किया होगा । मेरे दादा एक ज़मींदार के कारिंदे थे ; मैंने उन्हें एक बड़ी रियासत का मैनेजर बतलाया । अपने पिता को, जो एक दफ़्तर में क्लर्क थे, उस दफ़्तर का प्रधानाध्यक्ष बना दिया । और, काश्तकारी को ज़मींदारी बना देना तो साधारण बात थी । अपनी रचनाओं की संख्या तो न बढ़ा सका, पर उनके महत्त्व, आदर और प्रचार का उल्लेख ऐसे शब्दों में किया, जो नम्रता की ओट में अपने गर्व को छिपाते हैं । कौन नहीं जानता कि बहुधा 'तुच्छ' का अर्थ उसके विपरीत होता है, और 'दीन' के माने कुछ और ही समझे जाते हैं । स्पष्ट रूप से अपनी बड़ाई करना उच्छृंखलता है ; मगर सांकेतिक शब्दों से आप इसी काम को बड़ी आसानी से पूरा कर सकते हैं । ख़ैर, मेरा पत्र समाप्त हो गया, और तत्क्षण लेटरबक्स के पेट में पहुँच गया ।

इसके बाद दो सप्ताह तक कोई पत्र न आया । मैंने उस पत्र में अपनी गृहिणी की ओर से भी दो-चार समयोचित बातें लिख दी थीं । आशा थी, घनिष्ठता और भी घनिष्ठ होगी । कहीं कविता में मेरी प्रशंसा हो जाय, तो क्या पूछना ! फिर तो साहित्य-संसार में मैं-ही-मैं नज़र आऊँ ! इस चुप्पी से कुछ निराशा होने लगी ; लेकिन, इस डर से कि कहीं कविजी मुझे मतलबी अथवा Sentimental न समझ लें, कोई पत्र न लिख सका ।

आश्विन का महीना का, और तीसरा पहर । राम-लीला की धूम मची हुई थी । मैं अपने एक मित्र के घर चला गया था । ताश की बाज़ी हो रही थी । सहसा एक महाशय मेरा नाम पूछते हुए आए, और मेरे पास की कुरसी पर बैठ गए । मेरा उनसे कभी का परिचय न था । सोच रहा था, यह कौन आदमी है, और यहाँ कैसे आया । यार लोग उन महाशय की ओर देखकर आपस में इशारेबाज़ियाँ कर रहे थे । उनके आकार-प्रकार में कुछ नवीनता अवश्य थी । श्याम वर्ण, नाटा डील, मुख पर चेचक के दाग़, नंगा सिर, बाल सँवारे हुए, सिर्फ़ सादी क़मीज़, गले में फूलों की एक माला, पैरों में एक फुलबूट, और हाथ में एक मोटी-सी पुस्तक !

मैंने विस्मित होकर नाम पूछा ।

उत्तर मिला—मुझे उमापतिनारायण कहते हैं ।

मैं उठकर उनके गले से लिपट गया । यह वही कवि महोदय थे, जिनके कई प्रेम-पत्र मुझे मिल चुके थे । कुशल-समाचार पूछा । पान-इलायची से ख़ातिर की । फिर पूछा—"आपका आना कैसे हुआ ?"

उन्होंने कहा—"मकान पर चलिए, तो सब वृत्तांत कहूँगा । मैं आपके घर गया था । वहाँ मालूम हुआ, आप यहाँ हैं । पूछता हुआ चला आया ।"

मैं उमापतिजी के साथ घर चलने को उठ खड़ा हुआ । जब वह कमरे के बाहर निकल गए, तो मेरे मित्र ने पूछा—"यह कौन साहब हैं ?"

मैं—"मेरे एक नए दोस्त हैं !"

मित्र—"ज़रा इनसे होशियार रहिएगा । मुझे तो उचक्के-से मालूम होते हैं ।"

मैं—"आपका गुमान ग़लत है । आप हमेशा आदमी को उसकी सज-धज से परखा करते हैं । पर मनुष्य कपड़ों में नहीं, हृदय में रहता है ।"

मित्र—"ख़ैर, ये रहस्य की बातें तो आप जानें; मैं आपको आगाह किए देता हूँ ।"

मैंने इसका कुछ जवाब नहीं दिया । उमापतिजी के साथ घर पर आया । बाज़ार से भोजन मँगवाया । फिर बातें होने लगीं । उन्होंने मुझे अपनी कई कविताएँ सुनाईं । स्वर बहुत सरस और मधुर था ।

कविताएँ तो मेरी समझ में ख़ाक न आईं, पर मैंने तारीफ़ों के पुल बाँध दिए । झूम-झूमकर 'वाह, वाह !' करने लगा; जैसे मुझसे बढ़कर कोई काव्य-रसिक संसार में न होगा । संध्या को हम राम-लीला देखने गए । लौटकर उन्हें फिर भोजन कराया । अब उन्होंने अपना वृत्तांत सुनाना शुरू किया । इस समय वह अपनी पत्नी को लेने के लिये कानपुर जा रहे हैं । उनका मकान कानपुर ही में है । उनका विचार है कि एक मासिक पत्रिका निकालें । उनकी कविताओं के लिये एक प्रकाशक १०००) देता है ; पर उनकी इच्छा तो यह है कि उन्हें पहले पत्रिका में क्रमशः निकालकर फिर अपनी ही लागत से पुस्तकाकार छपवावें । कानपुर में उनकी ज़मींदारी भी है ; पर वह साहित्यिक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं । ज़मींदारी से उन्हें घृणा है । उनकी स्त्री एक कन्या-विद्यालय में प्रधानाध्यापिका हैं । आधी रात तक बातें होती रहीं । अब उनमें से अधिकांश याद नहीं हैं । हाँ, इतना याद है कि हम

दोनों ने मिलकर अपने भावी जीवन का एक कार्य-क्रम तैयार कर लिया था। मैं अपने भाग्य को सराहता था कि भगवान् ने बैठे-बिठाए ऐसा सच्चा मित्र भेज दिया। आधी रात बीत गई, तो सोए। उन्हें दूसरे दिन ८ बजे की गाड़ी से जाना था। मैं जब सोकर उठा, तब ७ बज चुके थे। उमापतिजी मुँह-हाथ धोए तैयार बैठे थे। बोले—"अब आज्ञा दीजिए—लौटते समय इधर ही से जाऊँगा। इस समय आपको कुछ कष्ट दे रहा हूँ। क्षमा कीजिएगा। मैं कल चला, तो प्रातःकाल के ४ बजे थे। दो बजे रात से पड़ा जाग रहा था कि कहीं नींद न आ जाय। बल्कि यों समझिए कि सारी रात जागना पड़ा; क्योंकि चलने की चिंता लगी हुई थी। गाड़ी में बैठा, तो झपकियाँ आने लगीं। कोट उतारकर रख दिया, और लेट गया। तुरंत नींद आ गई। मुग़लसराय में नींद खुली। कोट ग़ायब! नीचे, ऊपर, चारों तरफ़ देखा, कहीं पता नहीं। समझ गया, किसी महाशय ने उड़ा दिया। सोने की सज़ा मिल गई। कोट में ५०) ख़र्च के लिये रक्खे थे; वे भी उसके साथ उड़ गए। आप मुझे ५०) दे दें। पत्नी को मैके से लाना है; कुछ कपड़े वग़ैरह ले जाने पड़ेंगे। फिर सुसराल में सैकड़ों तरह के नेग-जोग लगते हैं। क़दम-क़दम पर रुपए ख़र्च होते हैं! न ख़र्च कीजिए, तो हँसी हो। मैं इधर से लौटूँगा, तो देता जाऊँगा।"

मैं बड़े संकोच में पड़ गया। एक बार पहले भी धोखा खा चुका था। तुरंत भ्रम हुआ, कहीं अब की फिर वही दशा न हो। लेकिन शीघ्र ही मन के इस अविश्वास पर लज्जित हुआ। संसार में सभी मनुष्य एक-से नहीं होते। यह बेचारे इतने सज्जन हैं। इस समय संकट में पड़ गए हैं। और, मैं मिथ्या संदेह में पड़ा हुआ हूँ। घर में आकर पत्नी से कहा—"तुम्हारे पास कुछ रुपए तो नहीं हैं?"

स्त्री—"क्या करोगे?"

मैं—"मेरे मित्र जो कल आए हैं, उनके रुपए किसी ने गाड़ी में चुरा लिए। उन्हें बीबी को बिदा कराने सुसराल जाना है। लौटती बार देते जायँगे।"

पत्नी ने व्यंग्य करके कहा—"तुम्हारे यहाँ जितने मित्र आते हैं, सब तुम्हें ठगने ही आते हैं। सभी संकट में पड़े रहते हैं। मेरे पास रुपए नहीं हैं।"

मैंने ख़ुशामद करते हुए कहा—"लाओ दे दो। बेचारे तैयार खड़े हैं। गाड़ी छूट जायगी।"

स्त्री—"कह दो, इस समय घर में रुपए नहीं हैं।"

मैं—"यह कह देना आसान नहीं है। इसका अर्थ तो यह है कि मैं दरिद्र ही नहीं, मित्र-हीन भी हूँ; नहीं तो क्या मेरे लिए ५०) का भी इंतिज़ाम न हो सकता। उमापति को कभी विश्वास न आवेगा कि मेरे पास रुपए नहीं हैं। इससे तो कहीं अच्छा हो कि साफ़-साफ़ यह कह दिया जाय कि 'हमको आप पर भरोसा नहीं है, हम आपको रुपए नहीं दे सकते।' कम-से-कम अपना पर्दा तो ढका रह जायगा।"

श्रीमती ने झुँझलाकर संदूक़ की कुंजी मेरे आगे फेंक दी, और कहा—"तुम्हें जितना बहस करना आता है, उतना कहीं आदमियों को परखना आता, तो अब तक आदमी हो गए होते! ले जाओ, दे दो। किसी तरह तुम्हारी मरजाद तो बनी रहे। लेकिन उधार समझकर मत दो, यह समझ लो कि पानी में फेंके देते हैं।"

मैंने—मुझे आम खाने से काम था, पेड़ गिनने से नहीं—चुपके-से रुपए निकाले, और लाकर उमापति को दे दिए। फिर लौटती बार आकर रुपए दे जाने का आश्वासन देकर वह चल दिए।

सातवें दिन शाम को वह घर से लौट आए। उनकी पत्नी और पुत्री भी साथ थीं। मेरी पत्नी ने शक्कर और दही खिलाकर उनका स्वागत किया। मुँह-दिखाई के २) दिए। उनकी पुत्री को भी मिठाई खाने को २) दिए। मैंने समझा था, उमापति आते-ही-आते मेरे रुपए गिनने लगेंगे; लेकिन उन्होंने पहर रात गए तक रुपयों का नाम भी नहीं लिया। जब मैं घर में सोने गया, तो बीबी से कहा—"इन्होंने तो रुपए नहीं दिए जी!"

पत्नी ने व्यंग्य से हँसकर कहा—"तो क्या सचमुच तुम्हें आशा थी कि वह आते-ही-आते तुम्हारे हाथ में रुपए रख देंगे। मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि फिर पाने की आशा से रुपए मत दो; यही समझ लो कि किसी मित्र को सहायतार्थ दे दिए। लेकिन तुम भी विचित्र आदमी हो।"

मैं लज्जित और चुप हो रहा। उमापतिजी दो दिन रहे। मेरी पत्नी उनका यथोचित आदर-सत्कार करती रही। लेकिन मुझे उतना संतोष न था। मैं समझता था, इन्होंने मुझे धोखा दिया।

तीसरे दिन प्रातःकाल वह चलने को तैयार हुए।

मुझे अब भी आशा थी कि वह रुपए देकर जायँगे। लेकिन जब उनकी नई रामकहानी सुनी, तो सन्नाटे में आ गया। वह अपना बिस्तर बाँधते हुए बोले—"बड़ा ही खेद है कि मैं अब की बार आपके रुपए न दे सका। बात यह है कि मकान पर पिताजी से भेंट ही नहीं हुई। वह तहसील-वसूल करने गाँव चले गए थे, और मुझे इतना अवकाश न था कि गाँव तक जाता। रेल का रास्ता नहीं है। बैल-गाड़ियों पर जाना पड़ता है। इसलिये मैं एक दिन मकान पर रहकर सुसराल चला गया। वहाँ सब रुपए ख़र्च हो गए। बिदाई के रुपए न मिल जाते, तो यहाँ तक आना कठिन था। अब मेरे पास रेल का किराया तक नहीं है। आप मुझे २५) और दे दें। मैं वहाँ जाते-ही-जाते भेज दूँगा। मेरे पास इक्के तक का किराया नहीं है।"

जी में तो आया कि टका-सा जवाब दे दूँ; पर इतनी अशिष्टता न हो सकी। फिर पत्नी के पास गया, और रुपए माँगे। अब की उन्होंने बिना कुछ कहे-सुने रुपए निकालकर मेरे हवाले कर दिए। मैंने उदासीन भाव से रुपए उमापतिजी को दे दिए। जब उनकी पुत्री और अर्धांगिनी ज़ीने से उतर गईं, तो उन्होंने बिस्तर उठाया, और मुझे प्रणाम किया। मैंने बैठे-बैठे सिर हिलाकर जवाब दिया। उन्हें सड़क तक पहुँचाने भी न गया।

एक सप्ताह के बाद उमापतिजी ने लिखा—"मैं कार्यवश बरार जा रहा हूँ। लौटकर रुपए दूँगा।"

१५ दिन के बाद मैंने एक पत्र लिखकर कुशल-समाचार पूछे। कोई उत्तर न आया। १५ दिन के बाद फिर रुपयों का तक़ाज़ा किया। उसका भी कुछ जवाब न मिला। एक महीने के बाद फिर तक़ाज़ा किया। उसका भी यही हाल! एक रजिस्टरी-पत्र भेजा। वह पहुँच गया, इसमें संदेह नहीं; लेकिन जवाब उसका भी न आया। समझ गया, समझदार जोरू ने जो कुछ कहा था, वह अक्षरशः सत्य था। निराश होकर चुप हो रहा।

इन पत्रों की मैंने पत्नी से चर्चा भी नहीं की, और न उसी ने कुछ इस बारे में पूछा।

(२)

इस कपट-व्यवहार का मुझ पर वही असर पड़ा, जो साधारणतः स्वाभाविक रूप से पड़ना चाहिए था। कोई ऊँची और पवित्र आत्मा इस छल पर भी अटल रह सकती थी। उसे यह समझकर संतोष हो सकता था कि मैंने अपने कर्तव्य को पूरा कर दिया। यदि ऋणी ने ऋण नहीं चुकाया, तो मेरा क्या अपराध! पर मैं इतना उदार नहीं हूँ। यहाँ तो महीनों सिर खपाता हूँ, क़लम घिसता हूँ, तब जाकर नगद-नारायण के दर्शन होते हैं।

इसी महीने की बात है, मेरे यंत्रालय में एक नया कंपोज़िटर बिहार-प्रांत से आया। काम में चतुर जान पड़ता था। मैंने उसे १५) मासिक पर नौकर रख लिया। पहले किसी अँगरेज़ी स्कूल में पढ़ता था। असहयोग के कारण पढ़ना छोड़ बैठा था। घरवालों ने किसी प्रकार की सहायता देने से इनकार किया। विवश होकर उसने जीविका के लिये यह पेशा अख़्तियार कर लिया। कोई १७-१८ वर्ष की उम्र थी। स्वभाव में गंभीरता थी। बात-चीत बहुत सलीक़े से करता था। यहाँ आने के तीसरे ही दिन उसको बुख़ार आने लगा। दो-चार दिन तो ज्यों-त्यों करके काटे, लेकिन जब बुख़ार न छूटा, तो घबरा गया। घर की याद आई। और कुछ न सही, घरवाले क्या दवा-दर्पन भी न करेंगे! मेरे पास आकर बोला—"महाशय मैं बीमार हो गया हूँ। आप कुछ रुपए दे दें, तो घर चला जाऊँ। वहाँ जाते ही रुपयों का प्रबंध करके भेज दूँगा।" वह वास्तव में बीमार था। मैं उससे भली भाँति परिचित भी था। यह भी जानता था कि यहाँ रहकर वह कभी स्वास्थ्य-लाभ नहीं कर सकता। उसे सचमुच सहायता की ज़रूरत थी। पर मुझे शंका हुई कि कहीं यह भी रुपए हज़म कर जाय, तो? जब एक विचार-शील, सुयोग्य, विद्वान् पुरुष धोखा दे सकता है, तो ऐसे अर्द्ध-शिक्षित नवयुवक से कैसे यह आशा की जाय कि वह अपने वचन का पालन करेगा?

मैं कई मिनट तक घोर संकट में पड़ा रहा। अंत में बोला—"भई, मुझे तुम्हारी दशा पर बहुत दुःख है। मगर मैं इस समय कुछ न कर सकूँगा। बिलकुल ख़ाली हाथ हूँ। खेद है।"

यह कोरा जवाब सुनकर उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। वह बोला—"आप चाहें, तो कुछ-न-कुछ प्रबंध अवश्य कर सकते हैं। मैं जाते ही आपके रुपए भेज दूँगा।"

मैंने दिल में कहा—यहाँ तो तुम्हारी नियत साफ़ है, लेकिन घर पहुँचकर भी यही नियत रहेगी, इसका क्या प्रमाण है। नियत साफ़ रहने पर भी मेरे रुपए दे सकोगे या नहीं, यही कौन जाने? कम-से-कम तुमसे वसूल करने का मेरे पास कोई साधन नहीं है। प्रकट में कहा—"इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है, लेकिन खेद है कि मेरे पास रुपए नहीं हैं। हाँ, तुम्हारी जितनी तनख़्वाह निकलती हो, वह ले सकते हो।"

उसने कुछ जवाब नहीं दिया। किं-कर्तव्य-विमूढ़ की तरह एक बार आकाश की ओर देखा, और चला गया। मेरे हृदय में कठिन वेदना हुई। अपनी स्वार्थपरता पर ग्लानि हुई। पर अंत को मैंने जो निश्चय किया था, उसी पर स्थिर रहा। इस विचार से मन को संतोष हो गया कि मैं ऐसा कहाँ का धनी हूँ, जो यों रुपए पानी में फेंकता फिरूँ।

यह है उस कपट का परिणाम, जो मेरे कवि मित्र ने मेरे साथ किया।

मालूम नहीं, आगे चलकर इस निर्दयता का क्या कुफल निकलता; पर सौभाग्य से उसकी नौबत न आई। ईश्वर को मुझे इस अपयश से बचाना मंजूर था। जब वह आँखों में आँसू भरे मेरे पास से चला, तो कार्यालय के एक क्लर्क, पं० पृथ्वीनाथ, से उसकी भेंट हो गई। पंडितजी ने उससे हाल पूछा। पूरा वृत्तांत सुन लेने पर विना किसी आगे-पीछे के उन्होंने १५) निकालकर उसे दे दिए। ये रुपए उन्हें कार्यालय के मुनीम से उधार लेने पड़े। मुझे यह हाल मालूम हुआ, तो हृदय के ऊपर से एक बोझ-सा उतर गया। अब वह बेचारा मज़े से अपने घर पहुँच जायगा। यह संतोष मुफ़्त ही में प्राप्त हो गया। कुछ अपनी नीचता पर लज्जा भी आई। मैं लंबे-लंबे लेखों में दया, मनुष्यता और सद्व्यवहार का उपदेश किया करता था; पर अवसर पड़ने पर साफ़ जान बचाकर निकल गया! और, यह बेचारा क्लर्क, जो मेरे लेखों का भक्त था, इतना उदार और दया-शील निकला! गुरु गुड़ ही रहे, चेला शक्कर हो गए। ख़ैर, इसमें भी एक व्यंग्य-पूर्ण संतोष था कि मेरे उपदेशों का असर मुझ पर न हुआ, न सही, दूसरों पर तो हुआ। चिराग़ के तले अँधेरा रहा, तो क्या हुआ, उसका प्रकाश तो फैल रहा है। पर, कहीं बचा को रुपए न मिले (और शायद ही मिलें, इसकी बहुत कम आशा है), तो ख़ूब छकेंगे। तब हज़रत को आड़े हाथों लूँगा।

किंतु मेरी यह अभिलाषा न पूरी हुई। पाँचवें दिन रुपए आ गए। ऐसी और आँखें खोल देनेवाली यातना मुझे और कभी नहीं मिली थी। ख़ैरियत यही थी कि मैंने इस घटना की चर्चा स्त्री से नहीं की थी; नहीं तो मुझे घर में रहना भी मुशकिल हो जाता।

(३)

उपर्युक्त वृत्तांत लिखकर मैंने एक पत्रिका में भेज दिया। मेरा उद्देश्य केवल यह था कि जनता के सामने कपट-व्यवहार के कुपरिणाम का एक दृश्य रक्खूँ। मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि इसका कोई प्रत्यक्ष फल निकलेगा। इसी से, जब चौथे दिन अनायास मेरे पास ४०) का मनीआर्डर पहुँचा, तो मेरे आनंद की सीमा न रही। प्रेषक वही महाशय थे—उमापति। कूपन पर केवल "क्षमा" लिखा हुआ था। मैंने रुपए ले जाकर पत्नी के हाथों में रख दिए, और कूपन दिखाया।

उसने अनमने भाव से कहा—"इन्हें ले जाकर यत्न से अपने संदूक़ में रक्खो। तुम ऐसे लोभी प्रकृति के मनुष्य हो, यह मुझे आज ज्ञात हुआ। थोड़े-से रुपयों के लिये किसी के पीछे पंजे झाड़कर पड़ जाना सज्जनता नहीं है। जब कोई शिक्षित और विचारशील मनुष्य अपने वचन का पालन न करे, तो यही समझना चाहिए कि वह विवश है। विवश मनुष्य को बार-बार तक़ाज़ों से लज्जित करना भलमंसी नहीं है। कोई मनुष्य, जिसका सर्वथा नैतिक पतन नहीं हो गया है, यथाशक्ति किसी को धोखा नहीं देता। इन रुपयों को मैं तब तक अपने पास नहीं रक्खूँगी, जब तक उमापति का कोई पत्र न आ जायगा कि क्यों रुपए भेजने में इतना विलंब हुआ।"

पर इस समय मैं ऐसी उदार बातें सुनने को तैयार न था। डूबा हुआ धन मिल गया, इसकी ख़ुशी से फूला नहीं समाता था।

प्रेमचंद

बोतलानंद

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महतो गयावाल]



भाल तिलक, कर गोमुखी, उदर भर्यो छल-छंद ।
बोतल दाबे बगल मैं चले बोतलानंद !

मयंक-महिमा

(गत संख्या से आगे)

बँधा सनाका सुर का था, सँग मिला ताल का प्यारा था ;
भरे राग, अनुराग, रागिनी, लय-अलाप ढँग न्यारा था ।
सातों सुर सँग, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाएँ जो हैं,
सहज सरसता उनकी सुनकर गंधर्वों के मन मोहें ।
सुहावनी सारंगी मानो स्यामा सरस बजाती थी ;
दामा अति आनंद बढ़ाती हुई 'सरोद' सुनाती थी ।
सुर 'सिंगार' सिंगार सुरों का करके मंजु बजाता था ;
हरित 'हरेवा' हरता-सा मन मानों मोद मचाता था ।
तेवर, कोमल, आरोही, इमरोही, सुर दिखलाता था ;
गिन-गिन 'अगिन' मोहता मन मानो इसराज बजाता था ।
जल-तरंग था 'बया' बजाता, दहियर रहा सितार बजा ;
मानो द्रुत गति बोल बिलंपत मीड़ ज़मज़मों-सहित सजा ।
'पवई' हारमोनियम 'बुलबुल' रबाब का रस लाता था ;
सब का गुरु बन 'भृंगराज' बैठा बाँसुरी बजाता था ।
'पिपरोला' मृदंग की परन सुनाता, रस बरसाता था ;
संग-संग मुहँचंग बजाता 'फिद्दा' रंग जमाता था ।
मुदित 'भुजंगी' मंजु मजीरे की टुनकार सुनाती थी ;
सब का मेल मिलाती सब को एक रंग में लाती थी ।
टप्पा 'मैना' गाती, क्या रस-भरी गिटगिरी लेती थी ;
शोरी का दम भरती सब को मनो मुग्ध कर देती थी ।
तोड़े नाच-नाचकर 'मुनियाँ' गति की गति दिखलाती थी ;
हाव-भाव जिसके लखकर मन में मेनका लजाती थी ।
'शुक' था साधु-वाद करता 'मनहरा' हुआ-सा हरा हुआ ;
कराहता था 'कपोत' प्रेमी राग-राग से भरा हुआ ।
हो उन्मत्त घूमता 'लक्का' था वक्षस्थल ऊँचा कर ;
तान-तीर से बिंधकर 'लोटन' लोट रहा था धरती पर ।
उत्सव समारोह संगीत सहित सब साजों से सोहा ;
सभी थलों पर जिसे देखते ही जाता था मन मोहा ।
कहीं कलावत 'कोकिल' ख़याल पंचम सुर में गाता था ;
तानें तरह-तरह की लेता सदा रंग बन जाता था ।

(अपूर्ण)

(स्वर्गीय) उपाध्याय श्रीबदरीनारायण
चौधरी "प्रेमघन"

'संजीवन-भाष्य' के कुछ अंश की संक्षिप्त आलोचना

(छठी संख्या से सम्मिलित)



जीवन-भाष्य के कुछ अंश की संक्षिप्त आलोचना'-शीर्षक लेख के प्रथम प्रकाशित अंश में हमने समालोचक के लिये तीन बातों की आवश्यकता बतलाई थी । उन तीनों बातों में से प्रथम बात पर विचार करते हुए, शर्माजी की कतिपय भूलों का उल्लेख किया था । आज हम दूसरी बात पर यथामति विचार करते हुए संजीवन-भाष्य के कुछ अंश की आलोचना करते हैं । दूसरी बात है समालोचना में—

'पक्षपात का अभाव'

समालोचक को उचित है कि किसी ग्रंथ की समालोचना करने में कभी पक्षपात न करे । विशेषकर तुलनात्मक समालोचना करनेवाले समालोचक को तो भूलकर भी किसी तरह का पक्षपात न करना चाहिए । साधारण समालोचक जिस ग्रंथ की समालोचना करने में पक्षपात करता है, उससे सिर्फ़ उसी ग्रंथ की क्षति होती है ; पर तुलनात्मक समालोचना के समालोचक के पक्षपात करने से अनेक ग्रंथों की जो क्षति होती है, उसके बतलाने की आवश्यकता नहीं । तुलनात्मक समालोचना का समालोचक जिस ग्रंथकार का पक्ष लेता है, उसके दोषों को भी गुण बनाने की कोशिश करता है । और, उसके साथ जिस ग्रंथकार की तुलना करता है, उसके गुणों को भी दोष सिद्ध करने में कुछ कोर-क़सर बाक़ी नहीं रखता । ऐसा करने से सत्य की हत्या होने के साथ ही समालोचना का महत्त्व भी सर्वथा नष्ट हो जाता है । हमें इस बात का अत्यंत खेद है कि बिहारी-सतसई के संजीवन-भाष्यकार श्रीशर्माजी ने, कविवर श्रीबिहारीलालजी का, ऐसा ही अनुचित पक्षपात किया है । आपने प्रायः सर्वत्र ही बिहारीलाल को संपूर्ण कवियों से श्रेष्ठ सिद्ध करने में कोई क़सर नहीं उठा रक्खी । कहें तो कह सकते हैं कि जितना परीश्रम शर्माजी ने संजीवन-भाष्य लिखने में किया है,

उससे कहीं अधिक परिश्रम विहारीलाल के पक्षपात में किया है। विहारीलाल के साथ तुलना करने में आपने प्राकृत, संस्कृत, भाषा, फ़ारसी और उर्दू के समस्त सुप्रसिद्ध महाकवियों को प्रायः अत्यंत हीन बतलाया है। यदि संजीवन-भाष्य से पक्षपात के सब उदाहरण उद्धृत किए जायँ, तो एक बहुत बड़ा पोथा तैयार हो जाय। हम यहाँ पर कुछ उदाहरण देकर ही अपना लेख समाप्त करेंगे। मर्मज्ञ पाठक स्थाली-पुलाक-न्याय से शर्माजी के अनुचित पक्षपात को, इतने ही उदाहरणों का निरीक्षण करके, समझ जायँगे।

(१)

तीज-परब सौतिन सजे भूषन-बसन सरीर ;
सबै मरगजे-मुँह करी वहै मरगजे चीर ॥३३३॥

विहारीलालजी के इस दोहे के साथ शर्माजी महाराज—

हल्लफलहृणाणपसाहिआणँ छणवासरे सवत्तीणम्।
अजाएँ मज्जणाणाअरेण कहिअं व सोहग्गम् ॥ १ । ७९ ॥
(उत्साहतरलत्वस्नान-प्रसाधितानां चणवासरे सपत्नीनाम्।
आर्यया मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥)

इस गाथा की तुलना करके इस तरह समालोचना करते हैं—

"उत्सव के अवसर पर जब उसकी दूसरी सपत्नियाँ न्हा-धोकर और सज-धजकर, अपने रूप को निखारकर और सौंदर्य को चमकाकर, अपनी मनोहरता का सिक्का बैठाने के लिये पूरे प्रयत्न से तत्पर थीं, गाथा की नायिका ने स्नान के अनादर से अपने सौभाग्य की (सिर्फ़) सूचना दी।

"पर सपत्नियों पर उसके इस सौभाग्य-गर्व की सूचना का क्या प्रभाव पड़ा, सो किसी को मालूम नहीं हुआ। संभव है, उन्होंने स्नान के अनादर का कारण उसकी शारीरिक अस्वस्थता, आलस्य, फूहड़पन या मान-कोप को समझकर इस पर ध्यान भी न दिया हो। अथवा और उलटी प्रसन्न हुई हों। या नायिका ने इसलिये ही स्नान की उपेक्षा की हो कि उसे इस मुक़ाबिले की परीक्षा में सफलता की आशा ही न हो, इत्यादि अनेक कारण इस स्नानानादर के समझे जा सकते हैं।

" चाहे कुछ भी हो, पर यह स्नान न करने की बात कुछ अच्छी नहीं हुई, ऐसा भी क्या सौभाग्य-गर्व, जो इस दशा-विशेष में अवश्य कर्तव्य-कर्म (स्नान) का भी अनादर करा दे, यह स्पष्ट ही अनौचित्य है। परंतु विहारी के 'सबै मरगजे-मुँह करी वहै मरगजे चीर' में कुछ और चमत्कार आ गया है। बात वही है, वर्णन एक ही प्रसंग का है, "क्षणवासरे"='तीज-परब", "स्नानप्रसाधितानाम्"=" सजे भूषन-बसन सरीर", "सपत्नीनाम्"= "सौतिन" ये सब एक हैं। भाषा-मात्र का भेद है। पर मरगजे चीर ने दोहे को चमका दिया है। मरगजे चीर ने सचमुच ही कमाल किया है।" इत्यादि।

यहाँ श्रीशर्माजी ने गाथा को दोहे से अत्यंत हीन प्रमाणित किया है; किंतु गाथा दोहे से ज़रा भी हीन नहीं। गाथा में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि स्नान के अनादर से आर्या ने सपत्नियों से अपने सौभाग्य को कह दिया, स्पष्ट बतला दिया कि तुम चाहे जितना बनो-ठनो, किंतु प्रियतम के प्रेम का सौभाग्य मुझे ही सुलभ है, तुम लोगों को नहीं। इस तरह, डंके की चोट, अपने सौभाग्य को स्पष्ट बतलानेवाली नायिका का सपत्नियों पर क्या प्रभाव पड़ा, सो सब को स्पष्ट मालूम है, चाहे शर्माजी को न मालूम हुआ हो। सपत्नी की सौभाग्य-सूचना का प्रभाव सपत्नियों पर जो कुछ पड़ता है, वह उन पर भी पड़ा होगा। जैसे यदि कोई कहे कि अमुक मनुष्य पर वज्रपात हुआ, किंतु उस पर उसका क्या प्रभाव पड़ा, यह किसी को नहीं मालूम हुआ, तो हम कहेंगे कि जिन लोगों के परोक्ष में उस मनुष्य पर वज्रपात हुआ है, वे यह तो स्पष्ट रूप से नहीं जान सकते कि वह मनुष्य सर्वथा विनष्ट हो गया या उसके प्राण बच गए, किंतु इतना तो उन्हें अवश्य ही मालूम हो जायगा कि वज्रपात होने से वह मनुष्य यदि बच गया होगा, तो भी उसे अत्यंत कष्ट अवश्य हुआ होगा—थोड़ी-बहुत चोट तो ज़रूर ही लगी होगी। और, जिस मनुष्य पर वज्रपात हुआ है, वह मनुष्य प्राणों के बच जाने पर भी यह कभी नहीं समझ सकता कि यह वज्रपात नहीं, पुष्प-वृष्टि हो रही है। यदि गाथा की नायिका की सपत्नियाँ अंधी नहीं हैं, तो उन्हें स्पष्ट ही दिखाई दिया होगा कि स्नानानादर से नायिका अपने सौभाग्य की सूचना दे रही है। स्नानानादर का कारण शारीरिक अस्वास्थ्य, आलस्य या फूहड़पन उन्होंने कभी नहीं समझा होगा। 'कथितमिव सौभाग्यम्'-वाक्य स्पष्ट बतला रहा है कि नायिका में आलस्य, अस्वास्थ्य या फूहड़पन का समारोपण नहीं

हो सकता। 'कथितमिव सौभाग्यम्'-वाक्य ही शर्माजी के इस मनमाने अर्थ का खंडन करता है। और, 'आर्यया'-शब्द तो शर्माजी की समस्त दोषोद्भावनाओं को समूल ही विनष्ट कर देता है।

शर्माजी गाथा की नायिका में स्नानानादर का अनौचित्य बतलाते हैं; किंतु हमारी समझ में दोहे की नायिका ने भी स्नान नहीं किया है। यदि उसने स्नान किया होता, तो वह मरगजे चीर को कभी न पहनती। हमें यह कहने का साहस नहीं होता कि इस नायिका के पास केवल एक ही वस्त्र है, जिसे यह रति के समय तथा अन्य समय में भी धारण करती है। और, यदि यह बात मान भी ली जाय, तो यह नायिका महा कँगली, अत्यंत निर्लज्ज और मैली साबित होती है। इससे अधिक कँगलापन और क्या होगा कि इस नायिका के पास एक चीर के सिवा दूसरा चीर नहीं है? फिर सर्वथा नंगे होकर स्नान करने से अधिक और निर्लज्जता क्या होगी? स्नानानंतर उसी (रति-मर्दित) वस्त्र को पहनना उसके मैली होने का स्पष्ट प्रमाण है। यदि शर्माजी कहें कि नायिका ने कपड़ा पहने ही स्नान * करके उस कपड़े को, थोड़ा-थोड़ा निचोड़कर, अपने शरीर पर ही सुखा लिया है, अतः यह निर्लज्ज और मैली नहीं है, तो हम इस बात को मान लेंगे। किंतु ऐसा होने से चीर के मरगजेपन में बाधा पहुँच जायगी, और चीर के मरगजेपन में बाधा पहुँचने से विहारीलाल के इस कवित्व में भी बाधा पहुँच जाने का बहुत कुछ भय है। यदि शर्माजी कहें कि रति-मर्दित वस्त्र को एहतियात के साथ उतारकर अलग रखने के बाद अन्य वस्त्र को धारण करके नायिका ने स्नान किया है, और स्नानानंतर, अपने सौभाग्य-गर्व को सूचित करने के लिये, उसी रति-मर्दित वस्त्र को फिर धारण कर लिया है, तो इसमें भी स्पष्ट अनौचित्य है; क्योंकि पवित्र होने के लिये स्नान करके उसने उसी अपवित्र (भ्रष्ट) वस्त्र को फिर धारण कर लिया। इस तरह स्नान के बाद फिर ज्यों-की-त्यों भ्रष्ट हो जाने से इसका स्नान करना सर्वथा निरर्थक है। इसके साथ ही इस तरह की स्नान-विधि से इसकी मूर्खता परिलक्षित होती है। कारण, इसने स्नान करके अपने अन्य सब सौभाग्य-चिह्न तो धो डाले, केवल मरगजे चीर से अपना ज़रा-सा सौभाग्य सूचित किया। गाथा की नायिका का स्नानानादर बहुत ही बुद्धिमत्ता का द्योतक है। स्नानानादर द्वारा रति-मर्दित वस्त्र के अलावा अन्य बातों से भी उसका सौभाग्य सूचित है। दोहे की नायिका की सौभाग्य-सूचना के लिये केवल रति-मर्दित वस्त्र ही है; किंतु गाथा की नायिका के पास रति-मर्दित वस्त्र तो है ही, और भी प्रचुर सामग्री है। केवल मरगजे चीर से ही जब सपत्नियाँ मरगजे-मुँह हो गईं, तो मरगजे चीर तथा सौभाग्य-सूचक अन्य वस्तुओं को देखकर उनका जो हाल हुआ होगा, उसके कहने की आवश्यकता नहीं। शर्माजी को गाथा की नायिका के स्नानानादर में अनौचित्य दिखाई देता है; किंतु दोहे की नायिका में स्नान करने के बाद भी—क्योंकि शर्माजी के मत में दोहे की नायिका ने अवश्य ही स्नान किया है—उसी रति-मर्दित घिनौने वस्त्र के धारण का कुछ भी अनौचित्य नहीं दिखाई देता। दोहे की नायिका में रति-मर्दित वस्त्र का कमाल तो शर्माजी को बहुत अधिक समझ पड़ता है, मगर गाथा की नायिका में स्नानानादर से जो सौभाग्य-सूचक सामग्री प्रचुर परिमाण में प्रदर्शित हो रही है, वह और उसका कमाल कुछ भी मालूम नहीं होता। हमारी समझ में 'मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम्' यह वाक्य अपनी ध्वनि द्वारा उसी बात की स्पष्ट सूचना दे रहा है, जिस बात का उल्लेख दोहे में प्रकट रूप से हुआ है।

ऊपर दिखाए हुए कारणों से यह स्पष्ट है कि गाथा को दोहे से हीन प्रमाणित करके श्रीशर्माजी ने विहारी का पूर्ण पक्षपात किया है।

(२)

अजौं न आए सहज रँग बिरह-दूबरे गात;
अबही कहा चलाइयत ललन चलन की बात ॥१२०॥

शर्माजी ने विहारीलालजी के इस दोहे के साथ—

'अव्वो दुक्करआरअ पुणो वि तंतिं करेसि गमणस्स।
अज्ज वि ण होंति सरला वेणीअ तरंगिणो चिउरा ॥३।७३॥
(अव्वो दुष्करकारक पुनरपि चिंतां करोषि गमनस्य।
अद्यापि न भवंति सरला वेण्यास्तरंगिणश्चिकुराः ॥)

इस गाथा को, तुलना करने के लिये, उद्धृत किया है। गाथा का भावार्थ लिखने के बाद आप लिखते हैं—

"विहारीलाल भी तो एक ही काइयाँ ठहरे। वह कब

* दिहात के ग़रीब लोग, जिनके पास एक ही धोती होती है, प्रायः इसी तरह स्नान करते हैं।

चूकनेवाले हैं । पहलू बदलकर मज़मून को साफ़ ले ही तो उड़े ! 'अजौं न आए सहज रँग बिरह-दूबरे गात ।'

वाह उस्ताद, क्या कहने हैं ! क्या सफ़ाई खेली है, काया ही पलट दी ! कोई पहचान सकता है ! वहाँ (गाथा में) केवल गुलझट-पड़े केश ही थे, यहाँ 'बिरह-दूबरे गात' हैं। केशों में सरलता आने की अपेक्षा 'दूबरे गात' में सहज रंग का वापस आना कहीं अधिक वांछनीय और महत्त्व-पूर्ण कार्य समझा जा सकता है ।''

यहाँ श्रीशर्माजी ने विहारी की बहुत-कुछ प्रशंसा करने के बाद दोहे को गाथा से उत्कृष्ट सिद्ध किया है । हमारी समझ में गाथा का भाव दोहे से कहीं उत्कृष्ट है । दोहे और गाथा, दोनों में कवि को यह दिखलाना अभीष्ट है कि नायक को परदेश से घर में आए अभी अत्यल्प समय व्यतीत हुआ है, अतः उसे अभी परदेश न जाना चाहिए। इसी बात को सूचित करने के लिये दोहे में 'बिरह-दूबरे गात' और गाथा में 'तरंगिणिश्चिकुराः' का उल्लेख है । यदि विचार किया जाय, तो यह साफ़ साबित होता है कि गुलझट-पड़े केशों के सरल होने में जितने अल्प समय की सूचना है, 'बिरह-दूबरे गात' में सहज रंग के आ जाने की बात उतने अल्प समय की सूचना नहीं देती। गुलझट-पड़े केश थोड़े ही समय में सीधे हो सकते हैं; किंतु दुबले शरीर में सहज रंग —पहले की ऐसी पुष्टता— का आ जाना अधिक समय की अपेक्षा करता है । गाथा में 'दुष्कर-कारक' यह वाक्य भी नायक के फिर अति शीघ्र विदेश जाने को सूचित कर रहा है । 'पुनरपि चिंतां करोषि गमनस्य' में 'अबही कहा चलाइयत ललन चलन की बात' से महाविरे का ज़ोर ज़्यादा है ।

शायद शर्माजी कहें कि 'दोहे की नायिका की यह इच्छा है कि विरह से दुबला शरीर बहुत दिन में मोटा-ताज़ा होगा, तब तक नायक के घर में रहने से अधिक समय तक वियोग होने का भय नहीं है । इसलिये उसकी इच्छा के अनुसार ही उसकी सखी, नायक से, नायिका के विरह से दुबले शरीर में ज्यों-के-त्यों रंग आ जाने तक विदेश न जाने की प्रार्थना करती है । यद्यपि वह इस बात को साफ़-साफ़ नहीं कहती, तथापि उसके ऐसा कहने का अभिप्राय यही है ।'

इसके उत्तर में निवेदन है कि अगर दोहे का यही अभिप्राय समझा जाय, ऐसे अलौकिक और अनुपम अर्थ की उद्भावना की जाय, तो गाथा में भी ऐसे ही अर्थ की कल्पना क्या नहीं हो सकती ? इसी प्रकार का अद्भुत अर्थ उससे भी निकल सकता है । देखिए—

गाथा की नायिका की सखी यह अच्छी तरह जानती है कि नायिका के केश सहज कुटिल हैं, वे कभी सीधे हो ही नहीं सकते । यही समझकर वह (नायिका की सखी) नायक से नायिका के बालों का ज़िक्र करके अपना यह भाव प्रदर्शित करती है कि कम-से-कम नायिका के केशों के सरल होने तक तो आप अवश्य ही विदेश न जाइए । सखी समझती है कि इस बात को नायक सहज में ही मान लेगा, और फिर कभी विदेश न जा सकेगा । ऐसे अर्थ से भी गाथा दोहे से अत्यंत उत्कृष्ट है । यहाँ भी शर्माजी का पक्षपात स्पष्ट सिद्ध है ।

और एक बात है । विहारी का यह दोहा, जिसकी यहाँ आलोचना हुई है, विहारी ही के इस दोहे का, जिसे हम नीचे लिखते हैं, प्रबल विरोधी है—

जौ वाके तन की दसा देख्यौ चाहत आप ;
तौ बलि, नैकु बिलोकिए चलि औचक, चुप-चाप ॥३०८॥

प्रिय पाठक ! देखिए, इस ऊपर के दोहे में नायिका का अपने प्यारे नायक में कितना प्रबल अनुराग प्रदर्शित है। नायिका की सखी कहती है कि यदि आप उस वियोगिनी के शरीर की दशा देखना चाहते हैं, तो मैं बलिहारी, ज़रा अचानक और चुप-चाप चलकर देखिए । यदि आपके पहुँचने की उसे ख़बर हो गई, तो उसकी कृशता-दुर्बलता दूर होकर उसे स्वस्थता प्राप्त हो जायगी, और उसकी वियोग-दशा का आपको अनुभव न हो सकेगा ।

अब देखिए, इधर, एक दोहे में, अनुरागाधिक्य का ऐसा वर्णन है कि अपने देखने के लिये नायक के चल पड़ने की भी ख़बर पाकर नायिका की कृशता और दुर्बलता दूर हो जाती है । उधर, दूसरे दोहे में, नायिका का इतना अल्प अनुराग प्रदर्शित है कि नायक के महीनों घर में रहने पर भी नायिका के विरह-दूबरे गात में सहज रंग नहीं आते ।

दोनों में कितना प्रबल विरोध है ! इस तरह एक ही विषय की परस्पर-विरोधिनी रचनाएँ कवि की बहु-दर्शिता और उसके कवित्व के महत्त्व तथा रमणीयता की हत्या करनेवाली होती हैं । अस्तु ।

(३)

बाम बाहु फरकत मिलै जो हरि जीवन-मूरि,
तौ तोही सौं भेटिहौं राखि दाहिनी दूरि ॥ १४२ ॥

इस दोहे के साथ तुलना करने के लिये शर्माजी ने निम्न-लिखित गाथा, आर्या और पद्य को उद्धृत किया है--

गाथा

"फुरिए वामच्छि तुए जइ एहिइ सो पिओ ज्ज ता सुइरम्।
सम्मीलिअ दाहिणअं तुइ अवि एहं पलोइस्सम् ॥ २१३७ ॥
(स्फुरिते वामाक्षि त्वयि यद्येष्यति स प्रियोऽद्य तत्सुचिरम्।
सम्मील्य दक्षिणं त्वय्यैवैतं प्रेक्षिष्ये ॥)

आर्या

प्रणमति पश्यति चुंबति संश्लिष्यति पुलकमुकुलितैरंगैः।
प्रियसंगमाय स्फुरितां वियोगिनी वामबाहुलताम् ॥ ३४७ ॥

पद्यावली का पद्य

येनैव सूचितनवाभ्युदयप्रसंगा मीनाहतिस्फुटितातामरसोपमेन।
अन्यं निमील्य नयनं मुदितैव राधा वामेन तेन नयनेन ददर्श कृष्णम्॥

पहले श्रीशर्माजी ने गाथा और पद्यावली के पद्य का भावार्थ लिखकर अपनी आलोचना इस तरह शुरू की है—

"विहारी ने वैसे ही पुरस्कार-प्रदान की घोषणा 'वाम बाहु' के लिये कराई है; क्योंकि यहाँ शुभ सूचना उसी ने दी है। यहाँ भी पुरस्कार बहुत उचित है। जैसा जिसका काम, उसे वैसा ही इनाम। आँख ने प्रिय-दर्शन-प्राप्ति की सूचना दी थी, उसे वैसा ही इनाम देने को कहा गया। वाम बाहु प्रिय-समागम की शुभ सूचना दे रही है, सो इसके लिये इनाम् भी वैसा ही बढ़िया तजवीज़ा गया है—'तौ तोही सौं भेटिहौं राखि दाहिनी दूरि।'

"कितनी मनोहर रचना है, कितना मधुर परिपाक है! इन शब्दों में जितना जादू भरा है, उतना और कहीं है? और, "जो हरि जीवन-मूरि" ने तो, बस, जान ही डाल दी है, इस एक पद पर ही प्राकृत गाथा और पद्यावली का पद्य, दोनों एक साथ कुर्बान कर देने लायक़ हैं।"

यहाँ श्रीशर्माजी ने गाथा और पद्यावली के पद्य को दोहे से निकृष्ट बतलाया है। हमारी समझ में पद्यावली का पद्य तो दरअसल पद-माधुर्य-विशिष्ट होने पर भी दोहे को नहीं पहुँचता। किंतु गाथा दोहे से हीन नहीं है। गाथा में जो बात बाईं आँख के लिये कही गई है, दोहे में वही बात वाम बाहु के लिये। दोहे में 'हरि जीवन-मूरि' है, और गाथा में 'प्रिय' है।

'हरि जीवन-मूरि' पर शर्माजी को बड़ा नाज़ है। आप इसी एक पद पर गाथा और पद्यावली के पद्य, दोनों को एक साथ कुर्बान कर देने के लायक़ कहते हैं। हम भी कहते हैं कि 'हरि जीवन-मूरि' दोहे में बहुत ही मौक़े से आया है; इसने अपने शुभागमन से इस दोहे को अत्यंत चमत्कृत कर दिया है। किंतु गाथा का 'प्रिय' भी कम प्रभावशाली नहीं है। 'प्रिय'-शब्द यद्यपि साधारणतः प्यारे के लिये व्यवहृत होता है, किंतु प्रधानतः 'प्रिय' * पति का ही पर्याय है। 'प्रिय'-शब्द 'प्रीञ्'-धातु से बनता है; जिसका अर्थ तृप्त करना है। जिसके दर्शनादि से हृदय, इंद्रिय और प्राण, सब तृप्त हो जायँ, वही प्रिय है। गाथाकार ने इसीलिये धव, भर्ता, पति प्रभृति शब्दों को छोड़कर यहाँ प्रिय का प्रयोग कि । है। हमारी समझ में 'प्रिय' का प्रभाव 'जीवन-मूरि' से कम नहीं है। गाथा में एक बात दोहे से विशेष है। दोहे की नायिका वाम बाहु से यह कहती है कि 'मैं दाहिनी को दूर रखकर तुझसे ही भेंट करूँगी', और गाथा की नायिका बाईं आँख से यह कहती है कि 'मैं दाहिनी आँख को मूँदकर तुझसे ही बहुत देर तक देखूँगी।' यहाँ 'सुचिरं प्रेक्षिष्ये' में जो बात है, वह केवल 'भेटिहौं' में नहीं है। प्रिय पाठक, दोहे में गाथा से विशेषता नहीं है, विशेषता है श्रीशर्माजी महाराज के पक्षपात में।

गोवर्धनाचार्य की आर्या के लिये शर्माजी अपनी राय यह ज़ाहिर करते हैं—

"हाँ, इस झमेले में गोवर्धनाचार्य तो रह ही गए। उनकी भी ज़रा सुन लीजिए। वह कुछ और ढंग से इस बात को कहते हैं। उन्होंने इस भाव को "कारक-दीपक" के प्रकाश से चमकाया है, और पेशगी इनाम दिला देने की उदारता दिखलाई है। कहते हैं—'प्रिय-संगम के लिये फड़कती हुई वाम बाहु को वियोगिनी प्रणाम करती है, आदर की दृष्टि से देखती है, चूमती है और हर्ष-पुलकित अंगों से उसे आलिंगन करती है। इस वियोगिनी को अपनी वाम बाहु के फड़कने की सत्यता पर इतना विश्वास है कि प्रिय के आगमन से पूर्व ही—शुभ सूचना की प्राप्ति पर ही—प्रिय-निवेदक बाहु को अनेक प्रकार

* धवः प्रियः पतिर्भर्ता। (अमरकोष)

के पुरस्कार देने लगी। आर्याकार गोवर्धनाचार्य ने इतनी विशेषता पैदा करके गाथा के मज़मून को अपनाया है।"

यदि दोहे में इतनी विशेषता होती, तो शर्माजी न-जाने कितनी प्रशंसा कर डालते। किंतु आर्या की इस विशेषता के लिये दबी ज़बान से इतना ही कहते हैं कि 'गोवर्धनाचार्य ने इतनी विशेषता पैदा करके गाथा के मज़मून को अपनाया है।' दोहे में आर्या की बनिस्बत न्यून-विशेषता होने पर भी शर्माजी तन-मन से उस पर रीझ जाते; किंतु आर्या की इतनी अधिक विशेषता भी आपको पसंद नहीं आई। देखिए न, इस विशेषता के लिये आप क्या कहते हैं—

विहारीलाल ने आर्याकार के इस विशेषता-युक्त भाव की अपने दूसरे दोहे में मानो 'इसलाह' कर दी है, पर्याय से इस बात को प्रकट कर दिया है कि नवीनता ही लानी है, तो फिर इस प्रकार ला सकते हैं।

मृग-नैनी दृग की फरक, उर-उछाह, तन फूल;
बिनही पिय-आगम उमँगि पलटन लगी दुकूल।

"आर्या की वियोगिनी को अपनी वाम बाहु के फरकने की फल-दायकता पर इतनी आस्था थी कि वह प्रिय के आने से पहले ही पुरस्कार देने लगी। और यहाँ दशा ही दूसरी है।

"मृगनयनी प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में तन्मय बनी बैठी है। बाईं आँख का ज़रा इशारा होते ही उसने ध्यान की आँख से देखा कि वह सामने आ ही तो रहे हैं। हृदय की इस उमंग में, संभ्रम की इस हड़बड़ी में, आँख को इनाम देना क्या, देने का वादा करना तक भूल गई। भूल क्या गई, हृदय की बढ़ी हुई उमंग ने उसे इतना अवकाश ही नहीं दिया। वह झटपट प्रिय से मिलने की तैयारी करने लगी। दुकूल बदलने लगी। कितनी तन्मयता है, कितनी उमंग है, कितना उर-उछाह है।"

यहाँ श्रीशर्माजी ने आर्याकार के विशेषता-युक्त भाव की इसलाह विहारीलाल से करवाई है। किंतु, वास्तव में, यह इसलाह विहारीलाल की नहीं, शर्माजी की है। इसीलिये ठीक कैंड़े पर नहीं उतरी। आर्या के आशय पर शर्माजी ने ध्यान ही नहीं दिया। इसीलिये आप आर्या की नायिका से दोहे की नायिका में तन्मयता, उमंग और उर-उछाह अधिक समझते हैं। किंतु, वास्तव में, यह बात नहीं है। आर्या का भाव विहारीलाल के इन दोनों दोहों से बहुत उत्कृष्ट है। पहले दोहे से तो आर्या को शर्माजी भी विशेष समझते हैं। दूसरे दोहे से भी आर्या में बहुत विशेषता है।

दोहे की नायिका, बाईं आँख का ज़रा-सा इशारा पाते ही, ध्यान की आँख से प्रिय को सामने आते देखती है; किंतु आर्या की नायिका वाम बाहु के ज़रा-से इशारे से तन्मय होकर प्रत्यक्ष देखती है कि वह आ ही तो गए। तन्मयता, उमंग और उर-उछाह के कारण प्रिय पति के शुभागमन पर प्रिय के साथ उसे जो कुछ करना उचित था, सो सब वह वाम बाहु के साथ करने लगी।

वह वाम बाहु को प्रणाम करती है, स्नेह-दृष्टि से देखती है, चूमती है और हर्ष-पुलकित अंगों से आलिंगन करती है। परदेश से आए हुए प्रिय को पहले प्रणाम करना, फिर आदर की दृष्टि से देखना, तदनंतर प्रेमाधिक्य-वश चूम लेना, तत्पश्चात् हर्ष-पुलकित अंगों से आलिंगन करना कितना सौहार्द-सूचक, उचित और स्वाभाविक है, इसे सहृदयों के हृदय ही समझ सकते हैं।

मर्मज्ञ पाठक देखें कि बाईं आँख के इशारे से प्रिय को, ध्यान-दृष्टि से, आते हुए देखकर शृंगारादि करने में विशेषता है, या वाम बाहु के इशारे से पति को प्रत्यक्ष आया हुआ समझकर प्रणामादि करने में? दोहे की नायिका में तल्लीनता है सही, पर आर्या की नायिका की इतनी कहाँ? दोहे की नायिका बहुत कुछ तल्लीन होकर भी इतनी तल्लीन नहीं हुई है कि उसे अपने शरीर की भी सुध न रहे। किंतु आर्या की नायिका इतनी तल्लीन हो गई है कि प्रिय के आगमन की भावना से उसको वाम बाहु ही प्राण-प्यारे के रूप में दिखाई पड़ रही है। ऐसी तल्लीनता भला और कहीं दिखाई देती है? इस तल्लीनता के सामने दोहे की नायिका की तल्लीनता की क्या बिसात है?

श्रीशर्माजी आर्या की इतनी उत्कृष्टता समझकर भी नहीं समझे, देखकर भी नहीं देख सके, इससे अधिक और पक्षपात क्या होगा!

(४)

छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत अति दीनता दिखाय;
बलि बामन को ब्यौंत सुनि को बलि तुम्हैं पत्याय ॥२२५॥

विहारीलालजी के इस दोहे की श्रीशर्माजी ने—

निहितार्धलोचनायास्त्वं तस्याहरसि हृदयपर्यंतम्।
न सुभग समुचितमीदृशमंगुलिदाने भुजं गिलसि ॥३२०॥

इस गोवर्धनाचार्य की आर्या से तुलना की है। आर्या का भावार्थ लिखकर आप इस तरह आलोचना करते हैं—

"यही भाव दोहे में भी है; पर बहुत जँचा-तुला और इससे कहीं बढ़ा-चढ़ा। 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' और 'छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत' बराबर की महाविरेबंदी है। पर दोहे में महाविरा ख़ूब चुस्त बँधा है।"

हमें बारंबार पढ़ने पर भी दोहे का भाव आर्या से जँचा-तुला और बढ़ा-चढ़ा नहीं समझ पड़ता। हमें तो दोहे का भाव आर्या से बहुत घटिया जँचता है। आर्या में जिस ख़ूबसूरती से 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' का रूप दिखलाया गया है, दोहे में उसका आभास भी नहीं। 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' से 'छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत' में महाविरे की चुस्ती हमें नहीं समझ पड़ती। अस्तु।

दोहे को उत्कृष्ट सिद्ध करने के लिये शर्माजी आर्या की अपकृष्टता को इस तरह प्रदर्शित करते हैं—

"आर्या में सिर्फ़ यही 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि'-पद चमत्कृत है, और ऐसा मालूम होता है, इसे बाँधने को ही ऊपर की चहारदीवारी कवि ने खींची है।"

मालूम क्या होता है, इसीलिये तो आचार्य ने यह चहारदीवारी खींची ही है। इस चहारदीवारी को खींचकर गोवर्धनाचार्यजी ने अपने अपूर्व एवं अनुपम 'भाव-धन' को इतना सुरक्षित बना दिया है कि विहारीलाल के सदृश चतुर कविराज भी उसका अपहरण नहीं कर सके।

'निहितार्धलोचनायास्त्वं तस्याहरसि हृदयपर्यंतम्' की समता के लिये 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' बहुत ही उपयुक्त, उत्तम और हृदयहारी कथन है। विहारीलालजी 'छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत' की तुलना के लिये कुछ भी नहीं लिख सके। यदि इतनी ही बात है, नायक सच-मुच ही उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ रहा है, और इतनी ही बात के लिये विहारीलालजी ने यह दोहा बनाया है, तो इसमें ज़रा भी चमत्कार नहीं, कुछ भी कवित्व नहीं।

इसके आगे शर्माजी फिर कहते हैं—

"वामनजी की कृपा से दोहा आकाश में जा पहुँचा है, और 'आर्या' बेचारी 'बलि' बनकर पाताल में पहुँच गई है। दोहे में 'अति दीनता दिखाय'-पद भी बड़ा ही चमत्कारक है। इसने वामनजी की करतूत को और अच्छी तरह चमका दिया है। आर्या के नायक-नायिका कोई साधारण व्यक्ति हैं, इसलिये वहाँ 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' में कोई असाधारण चमत्कार नहीं आने पाया। पर विहारी ने साक्षात् वामनावतार श्रीकृष्ण के संबंध में 'बलि-बामन को ब्यौंत सुनि को बलि तुम्हैं पत्याय' कहकर कितना अनुरूप दृष्टांत दिया है, कितने पते की बात कही है! इसमें कितना असाधारण चमत्कार आ गया है!"

प्रिय पाठक, देखिए और ग़ौर करके देखिए कि यहाँ शर्माजी के पक्षपात-वामन ने दोहे को किस तरह आकाश में पहुँचा दिया है, और आर्या को पाताल में ढकेला है। क्या यह भी कोई आलोचना है? इसमें भी कोई युक्ति है? इस तरह तो सब कोई सब कुछ कह सकता है।

हम दोहे से आर्या की उत्कृष्टता पहले ही दिखला चुके हैं। उस उत्कृष्टता के अलावा आर्या में और भी कई विशेषताएँ हैं। 'निहितार्धलोचनायास्त्वं तस्याहरसि हृदयपर्यंतम्' कहकर नायिका की सखी नायक पर नायिका की आसक्ति बतलाती और 'न सुभग समुचितमीदृशमंगुलिदाने भुजं गिलसि' कहकर अपना पूर्ण चातुर्य, चमत्कार के साथ, व्यक्त करती है। उसका आशय यह है कि नायिका आपको देखते ही अपना हृदय आपको सौंप चुकी है, अतः अब आपको भी उस पर अवश्य ही कृपा करनी चाहिए। आधी नज़र से देखते ही हृदय का अपहरण हो जाना नायक के सौंदर्यातिशयत्व को स्पष्ट सूचित करता है। इतना अधिक सौंदर्य, जिस पर ज़रा-सी निगाह पड़ते ही मन बेक़ाबू हो जाय, सिवा वृंदावन-विहारी, मोर-मुकुट-धारी आनंद-कंद, नंद-नंदन के अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट है कि आर्या में भी श्रीकृष्ण-रूपी नायक का वर्णन है। इसलिये शर्माजी का यह कहना कि 'आर्या के नायक-नायिका कोई साधारण व्यक्ति हैं', सर्वथा अयुक्त है।

शर्माजी विहारी का अनुचित पक्षपात करते हुए फिर लिखते हैं—

"यदि आज कहीं जयदेव महाराज मिलते, तो उन्हें यह कविता सुनाकर पूछते कि कहिए, कैसी रही! आप अपने इस दावे को अब वापस लीजिए कि—

शृंगारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-स्पर्धी कोपि न विश्रुतः।

और, अधिक नहीं, तो इतना ही कह दीजिए—

शृंगारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्धी कोपि विराजतेऽत्र भुवने हिंद्यां विहारी कविः ।

प्रिय पाठकगण, हमारी समझ में जयदेव महाराज का दावा बहुत ही ठीक है । शृंगारोत्तर-सत्प्रमेय रचनाओं में श्रीगोवर्धनाचार्य की बराबरी, विहारी क्या, कोई कवि नहीं कर सका, और न कर सकता है । अतः इस बात के लिये हम तो यही कहते हैं कि—

शृंगारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्धी कोपि न विश्रुतस्त्रिभुवने कासौ विहारी कविः ।

(५)

श्रीशर्माजी ने—

स्वारथ-सुकृत न, श्रम वृथा, देख विहंग विचार ;
बाज, पराए पानि पर तू पंछीहि न मार ॥ ६३६ ॥

इस दोहे से तुलना करने के लिये—

आयासः परहिंसा वैतंसिकसारमेय ! तव सारः ।
त्वामपसार्य विभाज्यः कुरंग एषोऽधुनैवान्यैः ॥ १०० ॥

इस आर्या को उद्धृत किया है । आर्या का भावार्थ बतलाकर आप इस तरह अपनी आलोचना करते हैं—

"अब इसके मुक़ाबले में अपने विहारी का भी रंग देखिए । यहाँ भी यह साफ़ मज़मून ले उड़े हैं ।

"कुत्ता आख़िर पर-मुखापेक्षी कुत्ता ही है । टुकड़े के लालच से उससे चाहे जो कुछ करा लो—शिकार पकड़वा लो, या भेड़ों की रखवाली करा लो—वह स्वामी का द्वार छोड़कर कहाँ जाय । इसलिये उसका यह अनर्थ कार्य इतना आश्चर्य-जनक नहीं, प्रत्युत क्षंतव्य हो सकता है ।

"परंतु व्योमैकांतविहारी, स्वच्छंदचारी 'बाज़' विहंग का पराए 'पाणि' (हाथ) पर बैठकर 'पंछी' मारना अत्यंत अविवेक-पूर्ण, आश्चर्य-जनक और नितांत निंदनीय कर्म है । इसलिये बाज़ को इससे ज़रूर ही बाज़ रहना चाहिए ।

"सारमेय-शब्द के समान यहाँ भी "विहंग" पद साभिप्राय है (विहायसा गच्छतीति विहंगः)—जिसकी गति अनंत आकाश में है, जो सब जगह घूम-फिरकर पेट भर सकता है, वह इस प्रकार दूसरे का वशवर्ती बनकर अनर्थ करे, इससे बुरी बात और क्या होगी ।

"आर्या की अन्योक्ति का लक्ष्य कुलीन सेवक है, तो दोहे की अन्योक्ति का लक्ष्य कोई सर्वत्र-गति, पर अनर्थ-कारी गुणवान् मुसाहब है । फिर उपदेश भी कितने मधुर शब्दों में, कितने अच्छे ढंग से, दिया है—

स्वारथ-सुकृत न, श्रम वृथा, देख विहंग विचार ।

"सो अब सहृदय विद्वान् विचार देखें, दोहा आर्या से बढ़ गया है या नहीं ? कुत्ते और बाज़ में भूमि और आकाश का अंतर है कि नहीं ।"

शर्माजी महाराज येन-केन प्रकारेण विहारीलालजी को श्रेष्ठ सिद्ध करने में सदा कटि-बद्ध रहते हैं । यहाँ जब और कोई बात विहारी के दोहे में आर्या से उत्कृष्ट न मिली, तो आप कुत्ते की हीनता और बाज़ की उत्कृष्टता दिखाकर विहारी की कविता को श्रेष्ठ बतलाने लगे ।

हमारी समझ में इस तरह की कोई उत्कृष्टता या अपकृष्टता कविता को उत्कृष्ट या अपकृष्ट बनाने में समर्थ नहीं होती । कविता में व्यंग्य, ध्वनि आदि की विशेषता ही वास्तविक विशेषता है । इस विशेषता में जो श्रेष्ठ ठहरे, वही श्रेष्ठ है । यहाँ विहारीलालजी इस विशेषता में गोवर्धनाचार्यजी से अणु-मात्र भी आधिक्य प्रदर्शित नहीं कर सके हैं ।

जैसे कुत्ता पर-मुखापेक्षी होता है, वैसे ही पालतू बाज़ भी पर-मुखापेक्षी होता है । मांस के टुकड़े के लालच से उससे भी चाहे जिस तरह का शिकार करवा लो ; चाहे चिड़ियों को मरवा लो, चाहे ख़रगोश पकड़वा लो । दुवाल (एक तरह की चमड़े की रस्सी, जो शिकार के समय में भी शिकारी चिड़ियों के लगी रहती है) में बँधा और मज़बूत रस्सी से जकड़ा हुआ बेचारा बाज़ स्वामी का आश्रय छोड़कर कहाँ जाय । इसलिये इस (बाज़) का भी यह अनर्थ कार्य इतना आश्चर्य-जनक नहीं । इसमें बाज़ और कुत्ता, दोनों समान हैं ।

गोवर्धनाचार्य की आर्या के भाव का स्पष्ट अपहरण करके कुत्ते के स्थान में बाज़ के कथन-मात्र से विहारी-लाल गोवर्धनाचार्य से श्रेष्ठ सिद्ध नहीं हो सकते । आर्या में एक बात दोहे से अत्यंत उत्कृष्ट है । सब कुछ अनुकरण करने पर भी विहारीलालजी इस बात को नहीं दिखा सके ।

[illegible] को उसके पाप-कार्य से निवृत्त करते हुए [illegible] के अधिकार में परिश्रम और पर-हिंसा ही [illegible] है कि इस हरिण को, जिस तू [illegible] तुझको दूर भगाकर और [illegible] क्यों पापभागी बनता है ? ऐसा [illegible] चाहिए।

[illegible] से 'स्वारथ-सुकृत न, श्रम वृथा' [illegible] नहीं बतला सके कि इस काम में क्यों [illegible] नहीं है, और परिश्रम किसलिये व्यर्थ [illegible] बाज़ को विचार करने की [illegible] यदि इतना विचारवान् होता, [illegible] कार्य में प्रवृत्ति ही क्यों होती ? [illegible] विचारशील भी अत्यंत अनु- [illegible] हो जाते हैं, किंतु उन्हें भी [illegible] करने के लिये उस (कार्य) के [illegible] की रीति है। अनुचित कार्य [illegible] पहले ही विचार-शक्ति का लोप [illegible] उसको स्पष्ट नहीं बतलाया जाता, [illegible] की सहायता नहीं मिलती। [illegible] कार्य से निवृत्त करने के पहले उस- [illegible] बहुत ही समुचित है।

[illegible] स्वार्थ, सुकृत नहीं है ; श्रम [illegible] ही बतलाने से [illegible], [illegible] निंदनीय काम से बाज़ नहीं [illegible] किसी मार्ग से कहीं जा रहा है, [illegible] उसे अंधकूप या कुएँ में गिरकर [illegible] यदि उससे कहा जाय कि उधर [illegible] तो इतने ही से वह चाहे न [illegible] यह साफ़ बतला दिया जाय कि [illegible] अंधकूप में गिरकर मर जाओगे', [illegible] वह इस बात को अवश्य मान [illegible]।

[illegible] और आर्या में है। दोहे में [illegible] [illegible] स्पष्ट नहीं है। [illegible] [illegible] बतलाया गया। किंतु आर्या में [illegible] नहीं है', यह स्पष्ट बतलाकर [illegible] गया है। किसी काम के [illegible] के लिये कह देने में और

उसके गुण-दोषों की स्पष्ट विवेचना करके हानि-लाभ को पूरी रीति से बतला देने में बहुत बड़ा अंतर है।

अब सहृदय मर्मज्ञ पाठक देखें कि आर्या का उपदेश कितना उत्कृष्ट है, और यह भी देखें कि यहाँ शर्माजी ने पूर्ण पक्षपात किया है या नहीं—बिहारी के उपदेश और आचार्य के उपदेश में आकाश-पाताल का अंतर है या नहीं ?

(५)

नेक उतै उठि बैठिए, कहा रहे गहि गेहु;
छुटी जात नहँ दी छनक महँदी सूकन देहु ॥ ५२५ ॥
सुभग स्वजनतत्त्वाकलनविभिन्नस्तुतिं नवं [illegible] ।
उद्वर्तने न [illegible] किंचिदपगच्छ ॥ ६९० ॥

शर्माजी ने ऊपर लिखे हुए दोहे और आर्या की तुलना की है। आर्या और दोहे का भावार्थ बतलाकर आप इस तरह आलोचना करते हैं—

"'किंचिदपगच्छ' और 'नेक उतै उठि बैठिए' का भावार्थ एक है ; पर दोहे में सदाचार का ओर ज़्यादा है। इसके अतिरिक्त आर्या का भाव कुछ उद्वेग-जनक है। सखी-समूह में एक तो यह कह रही है, एक पंखा झल रही है, [illegible] उद्वर्तन में लगी होंगी। फिर उद्वर्तन के समय में [illegible] का वहाँ ठई मारकर डटे रहना अत्यंत अनुचित और परम [illegible] का द्योतक है। इस पर भी 'किंचिदपगच्छ' ही कहा जा रहा है। इस गुस्ताख़ी पर मकान छोड़कर एकदम बाहर जाने का टिकट ऑर्डर नहीं दिया जाता !

"इधर दोहे में 'महँदी' ने 'उद्वर्तन' का अनौचित्य दूर कर दिया। दोनों में बहुत अंतर हो गया। इस भाव में सखी-समाज की सत्ता का पता भी नहीं चलता। 'नेक उतै उठि बैठिए, कहा रहे गहि गेहु', इस उक्ति में कितना माधुर्य है। विब्बोक-हाव-युक्त प्रेम की मधुर भर्त्सना का कैसा सजीव चित्र है !"

शर्माजी की राय में आर्या का भाव कुछ उद्वेग-जनक है। सखी-समाज में, उद्वर्तन के समय में भी, नायक का वहीं बैठना आपको पसंद नहीं। नायक की इस चेष्टा [illegible] से आप उसके सिर पर परम [illegible] का दोष मढ़ते हैं। इतना ही नहीं, ऐसा काम करने के कारण आप नायिका को गुस्ताख़ भी समझते हैं, और इसके लिये [illegible] मकान से एकदम बाहर जाने का [illegible] दिखाना चाहते हैं।

[illegible]

और, अधिक नहीं, तो इतना तो मान लीजिए—

[illegible]

[illegible] बिहारी [illegible]

प्रिय पाठकगण, हमारी समझ में [illegible] का [illegible] बहुत ही ठीक है। [illegible] में श्रीगोवर्धनाचार्य की बराबरी, बिहारी क्या, कोई कवि नहीं कर सका, और न कर सकता है। अतः इस बात के लिये हम तो यही कहते हैं कि—

[illegible]

[illegible] न विदुषविदुषो [illegible] बिहारी कविः।

(२)

[illegible] से—

स्वारथ-सुकृत न, श्रम वृथा, देख बिहंग बिचार।
बाज, पराए पानि पर तू पच्छीहि न मार॥ ६३६॥

इस दोहे से तुलना करने के लिये—

[illegible] तव मांसः।
[illegible] ॥ १००॥

इस आर्या को [illegible] किया है। आर्या का भावार्थ बतलाकर [illegible] इस तरह अपनी आलोचना करते हैं—

"[illegible] बिहारी का भी रंग देखिए। यहाँ भी [illegible] है।

"कुत्ता [illegible] कुत्ता ही है। [illegible] लालच से [illegible]—[illegible] लो, या [illegible] करा लो—[illegible] का [illegible]। इसलिये [illegible] कार्य इतना [illegible] नहीं [illegible] सकता है।

"परंतु [illegible], [illegible] का पराए 'पानि' (हाथ) पर [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है। इसलिये [illegible] कीजिए।

[illegible] नहीं [illegible] है ([illegible])—जिसकी [illegible] [illegible] पेट [illegible] बनकर अनर्थ करे, इससे बुरी बात और क्या होगी।

"आर्या की अन्योक्ति का लक्ष्य कुलीन सेवक है, तो दोहे की अन्योक्ति का लक्ष्य कोई सर्वत्र-गति, पर [illegible] गुणवान् मुसाहब है। फिर उपदेश भी कितने मधुर शब्दों में, कितने अच्छे ढंग से, दिया है—

स्वारथ-सुकृत न, श्रम वृथा, देख बिहंग बिचार।

"सो अब सहृदय विद्वान् विचार देखें, दोहा आर्या से बढ़ गया है या नहीं? कुत्ते और बाज़ में भूमि और आकाश का अंतर है कि नहीं।"

शर्माजी महाराज येन-केन प्रकारेण बिहारीलालजी को श्रेष्ठ सिद्ध करने में सदा कटि-बद्ध रहते हैं। यहाँ जब और कोई बात बिहारी के दोहे में आर्या से उत्कृष्ट न मिली, तो आप कुत्ते की हीनता और बाज़ की उत्कृष्टता दिखाकर बिहारी की कविता को श्रेष्ठ बतलाने लगे।

हमारी समझ में इस तरह की कोई उत्कृष्टता या अपकृष्टता कविता को उत्कृष्ट या अपकृष्ट बनाने में समर्थ नहीं होती। कविता में व्यंग्य, ध्वनि आदि की विशेषता ही वास्तविक विशेषता है। इस विशेषता में जो श्रेष्ठ ठहरे, वही श्रेष्ठ है। यहाँ बिहारीलालजी इस विशेषता में गोवर्धनाचार्यजी से अणु-मात्र भी आधिक्य प्रदर्शित नहीं कर सके हैं।

जैसे कुत्ता पर-मुखापेक्षी होता है, वैसे ही [illegible] बाज़ भी पर-मुखापेक्षी होता है। मांस के टुकड़े के लालच में उससे भी चाहे जिस तरह का शिकार करवा लो; चाहे चिड़ियों को मरवा लो, चाहे ख़रगोश पकड़वा लो। दुवाल (एक तरह की चमड़े की रस्सी, जो शिकार के समय में भी शिकारी चिड़ियों के लगी रहती है) में [illegible] और मज़बूत रस्सी से जकड़ा हुआ बेचारा बाज़ [illegible] का आश्रय छोड़कर कहाँ जाय। इसलिये इस ([illegible]) का भी यह अनर्थ कार्य इतना आश्चर्य-जनक नहीं। इसमें बाज़ और कुत्ता, दोनों समान हैं।

गोवर्धनाचार्य की आर्या के भाव का स्पष्ट [illegible] उसमें कुत्ते के स्थान में बाज़ के कथन-मात्र से बिहारी [illegible] गोवर्धनाचार्य से श्रेष्ठ सिद्ध नहीं हो सकते। [illegible] में एक बात दोहे में अत्यंत उत्कृष्ट है। [illegible] करने पर भी बिहारीलालजी इस बात को [illegible] सके।

आर्याकार कुत्ते को उसके पाप-कार्य से निवृत्त करते हुए स्पष्ट बतलाते हैं कि शिकार में परिश्रम और पर-हिंसा ही तेरे हिस्से में इसलिये है कि इस हरिण को, जिसे तू मार रहा है, अभी तुझको दूर भगाकर और लोग बाँट लेंगे। तू व्यर्थ ही क्यों पापभागी बनता है ? ऐसा काम तुझे न करना चाहिए।

बिहारीलाल बाज़ से 'स्वारथ-सुकृत न, श्रम वृथा' कहकर भी यह नहीं बतला सके कि इस काम में क्यों स्वारथ और सुकृत नहीं है, और परिश्रम किसलिये व्यर्थ है। इस बात के लिये आपने बाज़ को विचार करने की सलाह-मात्र दी है। बाज़ यदि इतना विचारवान् होता, तो उसकी ऐसे पाप-कार्य में प्रवृत्ति ही क्यों होती ? यद्यपि कभी-कभी बड़े-बड़े विचारशील भी अत्यंत अनुचित कार्य करने को उतारू हो जाते हैं, किंतु उन्हें भी उस कार्य से निवृत्त करने के लिये उस (कार्य) के दोषों को स्पष्ट बतला देने की रीति है। अनुचित कार्य करने को उद्यत होने के पहले ही विचार-शक्ति का लोप हो जाता है। जब तक उसको स्पष्ट नहीं बतलाया जाता, तब तक उसकी विचार-शक्ति को सहायता नहीं मिलती। अतः किसी को अनर्थ कार्य से निवृत्त करने के पहले उसके दोषों का स्पष्ट दिग्दर्शन बहुत ही समुचित है।

'इस काम में तेरा कुछ स्वार्थ, सुकृत नहीं है ; श्रम भी व्यर्थ है।' सिर्फ़ इतना ही बतलाने से हिंसाशील, अविवेकी, मूर्ख बाज़ इस निंदनीय काम से बाज़ नहीं आ सकता। जैसे कोई किसी मार्ग से कहीं जा रहा है, और उस मार्ग से जाने में उसे ख़ंदक या कुएँ में गिरकर मर जाने का भय है, तो यदि उससे कहा जाय कि उधर न जाना, वहाँ ख़तरा है, तो इतने ही से वह चाहे न लौटे, किंतु यदि उससे यह साफ़ बतला दिया जाय कि 'इस मार्ग से जाने से तुम ख़ंदक में गिरकर मर जाओगे', तो महामूर्ख होने पर भी वह इस बात को अवश्य मान लेगा, उधर नहीं जायगा।

यही बात यहाँ दोहे और आर्या में है। दोहे में सिर्फ़ यही कहा गया है कि यह काम अच्छा नहीं है। क्यों अच्छा नहीं है, यह नहीं बतलाया गया। किंतु आर्या में 'यह काम इसलिये अच्छा नहीं है', यह स्पष्ट बतलाकर उस काम के करने से रोका गया है। किसी काम के करने में केवल विचार करने के लिये कह देने में और उसके गुण-दोषों की स्पष्ट विवेचना करके हानि-लाभ को पूर्ण रीति से बतला देने में बहुत बड़ा अंतर है।

अब सहृदय मर्मज्ञ पाठक देखें कि आर्या का उपदेश कितना उत्कृष्ट है, और यह भी देखें कि यहाँ शर्माजी ने पूर्ण पक्षपात किया है या नहीं—विहारी के उपदेश और आचार्य के उपदेश में आकाश-पाताल का अंतर है या नहीं ?

(६)

नेक उतै उठि बैठिए, कहा रहे गहि गेहु;
छुटी जात नहँ दी छनक महँदी सूखन देहु ॥३५७॥
सुभग व्यजनविचालनशिथिलभुजामूदियं वयस्यापि।
उद्वर्तनं न सह्याः समाप्यते किंचिदपगच्छ ॥ ६६० ॥

शर्माजी ने ऊपर लिखे हुए दोहे और आर्या की तुलना की है। आर्या और दोहे का भावार्थ बतलाकर आप इस तरह आलोचना करते हैं—

"किंचिदपगच्छ और 'नेक उतै उठि बैठिए' का मतलब एक है ; पर दोहे में महाविरे का ज़ोर ज़्यादा है। इसके अतिरिक्त आर्या का भाव कुछ उद्वेग-जनक है। सखी-समूह में एक तो यह कह रही है, एक पंखा झल रही है, दो-एक उद्वर्तन में लगी होंगी। फिर उद्वर्तन के समय में भी नायक का वहीं ढई मारकर डटे रहना अत्यंत अनुचित और परम स्त्रैणता का द्योतक है। इस पर भी 'किंचिदपगच्छ' ही कहा जा रहा है। इस गुस्ताख़ी पर मकान छोड़कर एकदम बाहर जाने का स्ट्रिक्ट ऑर्डर नहीं दिया जाता !

"इधर दोहे में 'महँदी' ने 'उद्वर्तन' का अनौचित्य दूर कर दिया। दोनों में बहुत अंतर हो गया। इस प्रसंग में सखी-समाज की सत्ता का पता भी नहीं चलता। 'नेक उतै उठि बैठिए, कहा रहे गहि गेहु', इस उक्ति में कितन माधुर्य है। बिब्बोक-हाव-युक्त प्रेम की मधुर भर्त्सना का कैसा सजीव चित्र है !"

शर्माजी की राय में आर्या का भाव कुछ उद्वेग-जनक है। सखी-समाज में, उद्वर्तन के समय में भी, नायक का वहीं बैठना आपको पसंद नहीं। नायक की इस बेजा हरकत से आप उसके सिर पर परम स्त्रैणता का दोष मढ़ते हैं। इतना ही नहीं, ऐसा काम करने के कारण आप नायक को गुस्ताख़ भी समझते हैं, और इसके लिये देश-निर्वासन-सदृश मकान से एकदम बाहर जाने का उग्र दंड दिलाना चाहते हैं।

हमने अपनी अल्प मति के अनुसार बहुत विचार किया : किंतु हमें आर्या में कोई बात उद्वेग जनक नहीं दिखाई दी। यदि सखी-समाज में नायिका के पास नायक की उपस्थिति से ही उद्वेग की उत्पत्ति है, तो नायक-नायिकाओं के चरित्र में यह उद्वेग प्रायः सर्वत्र ही उपस्थित होगा ; क्योंकि नायक-नायिकाओं की एकत्र स्थिति के समय में अनेक सखियों का उपस्थित होना प्रायः सभी साहित्य-ग्रंथों में स्पष्ट वर्णित है। स्वयं विहारीलाल ने सखियों के सामने नायक के नायिका के पास बैठने का ही नहीं, रति की बातें तक करने का उल्लेख किया है। 'पति रति की बतियाँ कहीं, सखी लखी मुसकाय' इत्यादि।

और, नायिका के उद्वर्तन के समय में भी नायक के वहीं बैठने में स्त्रैणता या गुस्ताख़ी कुछ भी नहीं है। उद्वर्तन के समय में नायक के नायिका के पास बैठने में जो रहस्य है, वह सहृदय-हृदयैक-संवेद्य है। साधारण-जन इसका अनुभव नहीं कर सकते।

अंतरंग सखियाँ नायक-नायिकाओं के सब भेदों की जाननेवाली होती हैं। उनके सामने विशेष रति-कार्य को छोड़कर नायक और नायिका सभी कुछ कहते-सुनते और करते हैं। अतः नायक पर स्त्रैणता और गुस्ताख़ी का इल्ज़ाम नहीं लग सकता। यदि ऐसी दशा में नायक के ऊपर इस तरह के दूषण लगाए जायँगे, तो सभी स्वाधीन-भर्तृकाओं के नायक गुस्ताख़ और स्त्रैण सिद्ध होंगे।

'नेक उतै उठि बैठिए, कहा रहे गहि गेहु', इसमें हमें माधुर्य का आभास भी नहीं देख पड़ता। विब्बोक-हाव चाहे किसी अंश में मान भी लिया जाय, किंतु प्रेम की मधुर भर्त्सना नहीं मानी जा सकती। हमारी समझ में तो इस उक्ति में प्रेम का सर्वथा अभाव है।

'किंचिदपगच्छ' में जितनी सभ्यता, सुशीलता और नम्रता है, 'नेक उतै उठि बैठिए, कहा रहे गहि गेहु' में उतनी ही असभ्यता, दुश्शीलता और उद्दंडता है। नायिका के प्राण-प्रिय नायक को उसकी अंतरंग (नायिका का हार्दिक हाल जाननेवाली) सखियाँ एकदम बाहर जाने को कैसे कह सकती हैं?

आर्या में सात्त्विक-भावाविर्भाव का निरूपण बहुत ही उत्कृष्ट है। ज़ोर-ज़ोर और जल्दी-जल्दी पंखा झलने पर भी न सूखनी सात्त्विक प्रस्वेद की अधिकता का स्पष्ट द्योतक है, और इससे नायिका का अनुरागाधिक्य भी स्पष्ट परिलक्षित है। दोहे में नाखूनों की महँदी छुड़ानेवाला अत्यल्प सात्त्विक पसीना नायिका के अल्पानुराग की स्पष्ट सूचना दे रहा है। इसीलिये तो वह नायक से उद्दंडता और अवज्ञा-सूचक शब्दों में 'नेक उतै उठि बैठिए, कहा रहे गहि गेहु' कह रही है।

प्रिय पाठकगण, अब आप बखूबी समझ गए होंगे कि आर्या के भाव में उद्वेग-जनकत्व या अनौचित्य कुछ भी नहीं है। आर्या का भाव दोहे से उत्कृष्ट है। इसकी उत्कृष्टता को अपकृष्टता का रूप देने से शर्माजी का पक्षपात प्रत्यक्ष प्रदर्शित हो रहा है।

(७)

मोर-चंद्रिका स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमान?
लखबी पायनि पर लुठति सुनियत राधा मान ॥६२८॥

इस दोहे से तुलना करने के लिये श्रीशर्माजी ने—

मधुमथनमौलिमाले सखि तुलयसि तुलसि किं मुधा राधाम्।
यत्तव पदमदसीयं सुरभयितुं सौरभोद्भेदः ॥ ४३१ ॥
शंकरशिरसि निवेशितपदेति मा गर्वमुद्वहेंदुकले !
फलमेतस्य भविष्यति चंडीचरणाब्जरेणुमृजा ॥ ५७८ ॥

ये दोनों आर्याएँ उद्धृत की हैं। दोनों आर्याओं का भावार्थ लिखकर आपने निम्न-लिखित आलोचना लिखी है—

"विहारीलाल ने इन्हीं दोनों आर्याओं की छाया पर अपने दोहे की रचना की है। गोप-वेश विष्णु (श्रीकृष्ण) के संबंध में "मोर-चंद्रिका" ही कुछ सुहावनी लगती है। राधा कृष्ण के समय तुलसी की पुरानी कथा में इतना स्वारस्य और औचित्य नहीं है, जितना इस मोर-चंद्रिका में चमत्कार है। इसके प्रताप से विहारीलाल अपहरण के अपराध से साफ़ बच गए। बात ही कुछ और हो गई, नक़्शा ही बदल गया।

"आर्याएँ बेचारी सप्तशती की गुफा से बाहर न निकलीं, और विहारी का यह दोहा सब जगह लोगों की ज़बान पर चढ़ा चक्कर लगा रहा है! यशः पुण्यैरवाप्यते।"

शर्माजी को श्रीकृष्णजी के संबंध में तुलसी की कथा सरस और उचित नहीं समझ पड़ती। यद्यपि आर्या में तुलसी की पुरानी कथा का कुछ भी हाल नहीं कहा गया, तथापि तुलसी के 'मधुमथनमौलिमाले' इस संबोधन के कथन-मात्र से तुलसी की पुरानी कथा पाठकों को सुना देना श्रीशर्माजी के सदृश पंडित-प्रवर का ही काम है—

अन्ये त्वंशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।

× × ×

××× दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ।

× × ×

वनजौ वनजौ खर्वस्त्रिरामः सकृपोऽकृपः ।

अवतारा दशैवैते कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।

इत्यादि शतशः वाक्य स्पष्ट विघोषित कर रहे हैं कि श्रीकृष्णचंद्रजी स्वयं भगवान् विष्णु हैं। अतः श्रीकृष्ण-चंद्र के संबंध में तुलसी की पुरानी कथा में नितांत स्वारस्य और अत्यंत औचित्य है। और, इसी औचित्य के कारण श्रीकृष्ण-भगवान् के संबंध में तुलसी का कथन अनेक स्थलों पर स्पष्ट किया गया है। देखिए—

कच्चित् तुलसि कल्याणि गोविंदचरणप्रिये ।
सहत्वालिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७॥

(श्रीमद्भागवत, १० स्कंध पूर्वार्ध, ३० अ०)

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो
रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदांधैः ॥

(श्रीमद्भागवत, १० स्कंध पू०, ३० अ०)

दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगंधतुलसीमधुमत्तैः ।

× × ×

मालया दयितगंधतुलस्याः ।

(श्रीमद्भा०, १० स्कं० पू०, ३५ अ०)

इत्यादि प्रमाण-वाक्य स्पष्ट बतला रहे हैं कि श्रीकृष्ण के संबंध में तुलसी की कथा में अस्वारस्य और अनौचित्य समझने में ही अस्वारस्य और अनौचित्य है।

'मोर-चंद्रिका' में सब कुछ चमत्कार होने पर भी वह चमत्कार नहीं है, जो 'तुलसी' में है। तुलसी में राधा के सपत्नीत्व का आरोप, और 'मधुमथनमौलि-माला' होने के कारण गर्व की संभावना, दोनों ही अत्यंत युक्ति-संगत हैं। मोर-चंद्रिका में यह बात इस उत्तमता से नहीं सन्निवेशित हो सकती। इसी बात के लिये सुरति मिश्र ने निम्न-लिखित प्रश्नोत्तर किया है—

[प्रश्न]

गर्व सु क्यों करि जानिए कहौ चंद्रिका माहिं ?

[उत्तर]

यही गर्व निज उच्चता मानति मो-सम नाहिं।

इस प्रश्नोत्तर से यह प्रमाणित है कि 'मोर-चंद्रिका' को त्रिभुवन-वंदनीय श्रीकृष्णचंद्रजी के सिर पर बैठने के कारण अपनी उच्चता का ही गर्व है; किंतु तुलसी को श्रीराधाजी की सपत्नी होने के कारण श्रीकृष्णजी के सिर पर बैठने का अतुलनीय गर्व है। मोर-चंद्रिका के गर्व में उतनी सरसता और औचित्य नहीं है। मोर-चंद्रिका के गर्व और तुलसी के गर्व में बहुत बड़ा अंतर है।

शर्माजी का यह कथन नितांत हास्यास्पद है कि 'आर्याएँ सप्तशती की गुफा से बाहर नहीं निकलीं।' विहारीलालजी के दोहे के समान आर्याएँ भी प्रचुर पंडितों की वाणी का विभूषण बन रही हैं। हमारी समझ में आर्याएँ दोहे से बहुत उत्कृष्ट हैं; विशेषकर प्रथम आर्या साहित्य-संसार में अपना सानी नहीं रखती। इसकी पद-पद्धति, अनुप्रास की अधिकता, भाव-गांभीर्य और लोकोत्तर चमत्कार-पूर्ण हृदयहारी कथन इतना उत्तम है कि इसकी प्रत्येक उत्तमता पर ऐसे सैकड़ों दोहे निछावर कर देने लायक़ हैं।

शर्माजी महाराज का यह क़ायदा है कि दोहे की साधारण बात को भी बड़े आडंबर के साथ बहुत उत्कृष्ट बतलाने लगते हैं; किंतु दोहे के साथ तुलना की हुई दोहे से सौगुनी उत्कृष्ट कविता को भी उत्कृष्ट बतलाने में मूक हो जाते हैं। आर्याओं में दोहे से एक बात अत्यंत उत्कृष्ट है; जिसके मानने में किसी को आना-कानी नहीं हो सकती। दोहे में मान करने का खुलासा कथन होने से काव्योत्कर्षता की कमी है। किंतु आर्याओं में यह बात ध्वनि द्वारा प्रदर्शित होने से काव्योत्कृष्टता चरम सीमा को पहुँच गई है। इन आर्याओं के साथ इस दोहे की तुलना से, तुलना ही नहीं, तुलना के बाद दोहे को उत्कृष्ट सिद्ध करने से, शर्माजी का पक्षपात स्पष्ट सिद्ध है।

(असमाप्त)

श्रीलक्ष्मणसिंह क्षत्रिय

तिल

मुख सुखमा-सागर अगम, नाविक नयन नवीन;
बूड़त बार बचाव बिधि, तिल सुदीप रचि दीन।
तिल भिक्षुक बालक बसत, मुख मिष्ठान दुकान;
मालिक ही सों प्रेम करि, करिय मधुर रस-पान।
तिल-युत युवती-मुख लहत, सुखमा सहस ससंक;
अंक-बिंदु बाढ़ छबि बढ़े, इत-उत होत कलंक।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

जनमेजय या नाग-यज्ञ

नाटक

(गत संख्या से आगे)

चौथा दृश्य

(स्थान—महल का बाहरी भाग)

(सरमा)

सरमा—पति-सुख-वंचिता हूँ। पुत्र अपमानित होकर रूठकर चला गया है। जाति के लोगों का निरादर और कुटुंबियों का तिरस्कार सहकर पेट पालने के लिये अधम दासत्व तक तो दुर्दैव करा रहा है। तब भी कौन कह रहा है कि "मैं तुम्हारे साथ हूँ।" जब किसी की सहानुभूति नहीं, जब किसी से सहायता की आशा नहीं, तब भी विश्वास! अंधहृदय! तुझे क्या हो गया है? क्या करने के लिये मैं इस राज-कुल में आई हूँ, यह भी मैं नहीं जानती। होगा, मेरा कोई काम होगा। मैं उस अदृष्ट शक्ति का यंत्र हूँ; वह, जो मेरे साथ है, कोई काम मुझसे कराना चाहता है।

(प्रमदा का प्रवेश)

प्रमदा—कलिका! तू यहाँ क्या कर रही है? अभी, क्या पत्नी-शाला में नहीं गई? महारानी तुझे खोज रही होंगी।

कलिका (सरमा)—प्रमदा! आज इस समय तो तू ही काम चला दे। मैं रात को रहूँगी। आज अश्व-पूजन होगा। रात-भर जागना होगा। नृत्य-गीत देखूँ-सुनूँगी। मेरी प्यारी बहन, आज मेरा जी बेचैन है।

प्रमदा—अरी वाह! मैं क्यों तेरा काम करने लगी।

कलिका—मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ। रानी! इस समय तो मैं किसी काम की नहीं हूँ।

प्रमदा—क्या तूने कुछ माध्वी पी ली है? कल तो अच्छी भली थी।

कलिका—नहीं बहन, मैं गौड़ी या माध्वी कुछ नहीं पीती। अच्छा, तू न करेगी, तो मैं ही आती हूँ।

(रोनी सूरत बनाती है)

प्रमदा—नहीं, मैं तो हँसी करती थी। जा, जब तेरा जी चाहे, आना। मैं जाती हूँ। (जाती है)

(सरमा गाती है)

कहा था 'हम हैं तेरे साथ', कभी कानों में तुमने नाथ।
कूद पड़े भव-कूप में, यही रहा विश्वास;
आज अकेलापन मुझे करता बड़ा निरास।
पकड़ लो आकर मेरा हाथ, कहा था 'हम हैं तेरे साथ।'

(जाती है)

(इधर-उधर देखता हुआ काश्यप आता है)

काश्यप—संध्या हो चली है। आकाश ने धूसर अंधकार का कंबल तान दिया है। यह गोधूलि आँखों में धूल झोंककर काम करने का अभय-दान दे रही है। आंगिरस काश्यप की प्रतिहिंसा का फल, उसे अपमानित करके पुरोहिती छीनकर शौनक को आचार्य बनाने की मूर्खता का दंड, आज मिलेगा। ब्राह्मण! आज यह शक्ति दिखला दे कि उसे 'शापादपि शरादपि', दोनों प्रकार दंड देने का अधिकार है। ओह, ऐसी पुष्कल दक्षिणा! ऐसा महत्त्व का पद! मुझसे सब छीन लिया गया। रोवेगा, जनमेजय, तू आठ-आठ आँसू रोवेगा। तेरे हृदय को क्षत-विक्षत करके, तेरी आत्मा को ठोकर लगाकर, मैं दिखला दूँगा कि ब्राह्मण के अपमान का क्या फल है!—अभी नहीं आया?

(तक्षक का छिपते हुए प्रवेश)

तक्षक—कौन है?

काश्यप—आंगिरस। तुम कौन?

तक्षक—नाग।

काश्यप—प्रस्तुत होकर आए हो?

तक्षक—तुम अपनी कहो।

काश्यप—मैंने सब ठीक कर दिया है। अश्व-पूजन में जानेवाले सब ब्राह्मण हमारे क्रीत हैं। वहाँ थोड़ी स्त्रियाँ ही रहेंगी। उनसे तो तुम नहीं डरते?

तक्षक—मेरे २५ ही साथी आ सके हैं।

काश्यप—इतने से काम हो जायगा। यज्ञ का अश्व तुम ले भागना, और यदि हो सके, तो महिषी को भी—

तक्षक—(चौंककर) क्यों, उसका क्या काम है?

काश्यप—बताऊँगा! इस समय जाओ, सावधानी से काम करना। रक्षक थोड़े-से रहेंगे; वे भी सोम-पान करके झूमते मिलेंगे। तुम्हें कोई डर नहीं। जाओ, अब समय हो गया है। चूकने से फिर स्थान न मिलेगा। घात में लग जाओ।

तक्षक—अच्छा, जाता हूँ। किंतु काश्यप, अब की अंतिम दाँव है। यदि न हो सका, तो फिर तुम्हारी कोई बात नहीं मानूँगा।

काश्यप—जाओ। विलंब न करो। (तक्षक जाता है) मरो-कटो, मुझे क्या ? घात चल गई, तो हँसूँगा, नहीं तो कोई चिंता नहीं। (जाता है)

(सरमा का पुनः प्रवेश)

सरमा—नीच ने आज फिर माया-जाल रचा है। अच्छा, आज तो सरमा जान पर खेलकर इस आर्य-बाला की मर्यादा बचावेगी। उस तिरस्कार का, जो सिंहासन पर बैठकर वपुष्टमा ने किया है, प्रतिफल देने का अच्छा अवसर मिला। मैं भी किसी से न कहकर इसको अपने ही सिर पर लूँगी ! देखूँ, क्या होता है।

(आस्तीक का प्रवेश)

आस्तीक—आर्ये, मैं आस्तिक प्रणाम करता हूँ।

सरमा—कल्याण हो वत्स ! तुम यहाँ कैसे ?

आस्तीक—मा ने मुझे त्याज्य पुत्र कहकर निकाल दिया है।

सरमा—(उसके सिर पर हाथ फेरती हुई) आज से मैं तेरी मा हूँ, वत्स, दुखी न होना। तू मेरे पास रह। माणवक और आस्तीक मेरे दो बेटे थे। एक खो गया, दूसरा मिल गया।

आस्तीक—मा, मुझे आज्ञा दो, मैं क्या करूँ ?

सरमा—आज तुम्हें बहुत बड़ा काम करना होगा। तुम पत्नी-शाला के पीछे की खिड़की के पास चलो। जब तक मेरा कंठ-स्वर न सुनना, कहीं न जाना।

आस्तीक—जैसी आज्ञा। (दोनों जाते हैं)

(शीला और दामिनी का प्रवेश)

शीला—अहा, बहन दामिनी, अच्छे समय पर आ गई। क्या यज्ञ-शाला में चलती हो ?

दामिनी—किंतु तुमने तो अभी तक वेश-भूषा भी नहीं की—

शीला—वेश-भूषा ! क्यों, इसकी भी कोई पद्धति है ?

दामिनी—क्यों, जब वहाँ बहुत-सी कुल-ललनाएँ और राज-कुल की स्त्रियाँ अच्छे-अच्छे गहने-कपड़ों से सजकर आवेंगी, तब क्या तुम इसी ढंग से उनमें जा बैठोगी ?

शीला—क्यों, क्या इसमें कुछ लज्जा है ?

दामिनी—अवश्य ! जहाँ जैसा समाज हो, वहाँ उसी रूप में जाना चाहिए।

शीला—यह विडंबना है। पवित्र हृदय को इसकी क्या आवश्यकता है ? बनावटी बातें क्षणिक होती हैं ; किंतु जो सत्य है, वह स्थायी होता है। बहन दामिनी, मेरी समझ में तो स्त्रियाँ विशेष शृंगार का ढोंग करके अपनी स्वाभाविक स्वतंत्रता भी खो बैठती हैं। वस्त्र और आभूषणों की रक्षा और उनके सँभालने में जो कार्य उनको करने पड़ते हैं, वे ही पुरुषों के लिये विभ्रम हो जाते हैं ; और, लज्जा तथा भाव-भंगी का विकास नहीं होने पाता। चलने में आभूषणों के कारण सँभालकर पैर रखना, कपड़ों को बचाने के लिये उन्हें समेटकर उठाते, हटाते, खींचते हुए चलना—यह सब पुरुषों की दृष्टि को तो कलुषित करता ही है, हमारे लिये भी और बंधन हो जाता है। खुले हृदय से, स्वच्छंदता से, उठना-बैठना-बोलना भी दुष्कर हो जाता है। वेश-भूषा के नियमों में उलझकर अस्त-व्यस्त हो जाना पड़ता है।

दामिनी—बहन, तुमने यह बड़ी भारी वक्तृता दे डाली। फिर क्या संसार में इनका व्यर्थ प्रयोग है ?

शीला—यह भी कला का अंग है ; किंतु इसमें वास्तविकता नहीं। मेरी सम्मति तो यह है कि सादगी—हृदय की पवित्रता—स्वच्छता और अपनी प्रसन्नता के लिये, जो स्वतंत्रता में बाधा न डालता हो, जो दूसरे को मनोरम करने के लिये न हो, उतना ही स्त्रीजन-सुलभ सहज शृंगार पर्याप्त है। कुटिलों का लक्ष्य बनने के लिये कठपुतली की तरह सजना व्यर्थ ही नहीं, किंतु पाप भी है।

दामिनी—लो, यह व्यवस्था भी हो गई ; किंतु मैं इसे नहीं माननेवाली—

शीला—देखो, इसी कारण, मणि-कुंडलों के लिये, अपने पति के सामने तुम्हें कितना लज्जित होना पड़ा, और कितना बड़ा अनर्थ तुमने उपस्थित कर दिया ?

दामिनी—(सिर नीचा करके) हाँ, बहन ! यहाँ तो मुझे हार माननी ही पड़ी !—अच्छा, लो चलो।

(दोनों जाती हैं)

(पट-परिवर्तन)

× × ×

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—पत्नी-शाला की पिछली खिड़की)

(आस्तीक टहल रहा है)

(योद्धा के वेश में मणिमाला का प्रवेश)

आस्तीक तुम कौन हो ?

मणि०—भाई आस्तीक ! तुम यहाँ कैसे ?

आस्तीक—अरे ! मणिमाला, तुम इस वेश में क्यों ?

मणि०—भाई ! आज विषम कांड है । पिताजी ने फिर कुछ आयोजन किया है । मैं भी आई हूँ कि देखूँ, यदि उन्हें बचा सकूँ ।

आस्तीक—मुझे भी सरमा माता ने भेजा है । किंतु तुम्हारा यहाँ रहना तो ठीक नहीं । जब कोई उपद्रव संघटित होगा, तब तुम यहाँ रहकर क्या करोगी ?

मणि०—नहीं, मैं तो आज उपद्रव में फाँद पड़ूँगी । क्यों भाई, क्या रमणी की दुर्बलता ही विदित है ; उनका साहस नहीं सुना ?

आस्तीक—किंतु –

मणि०—आज किंतु-परंतु नहीं भाई ! आज मुझे विश्वास है कि पिताजी पर कोई आपत्ति आवेगी ।

आस्तीक—क्यों ?

मणि०—कुकर्म का भी कभी अच्छा परिणाम हुआ है ? (कान लगाकर सुनती है) भीतर कुछ हल्ला-सा सुनाई दे रहा है । मैं जाती हूँ ।

(जाना चाहती है । आस्तीक हाथ पकड़कर रोकता है)

आस्तीक—ठहरो मणि ! तुम न जाओ ।

मणि०—छोड़ दो भाई । मैं अवश्य जाऊँगी । वेश बदलकर इसीलिये आई हूँ ।

(हाथ छुड़ाकर चली जाती है)

(खिड़की खुलती है । एक नाग वपुष्टमा और सरमा को पकड़े हुए निकलता है । माणवक उन्हें छुड़ाता है । आस्तीक की सहायता । नाग घायल होकर गिरता है)

आस्तीक—कौन ? माणवक ?

माणवक—भाई आस्तीक ?

सरमा—यहाँ बात मत करो । शीघ्र चलो ।

आस्तीक—किंतु मणिमाला भी यहीं है ।

सरमा—आर्य स्त्रियों की हत्या नहीं करते । चलो ।

(चारों जाते हैं)

(रक्षकों का तक्षक से युद्ध । और भी आर्य-सेना आ जाती है । तक्षक और मणिमाला बंदी होते हैं)

× × ×

छठा दृश्य

(स्थान—व्यास का आश्रम)

(वेदव्यास बैठे हैं । माणवक, आस्तीक, सरमा और वपुष्टमा भी हैं)

व्यास—ब्रह्म-चक्र के प्रवर्तन में कैसी कठोर कमनीयता है ? वत्स आस्तीक, मैंने तुमसे जो कहा था, उसको मत भूलना; परोपकार में, भलाई में, कभी पश्चात्पद न होना ।

आस्तीक—भगवन् ! मैं मातृ-द्रोही हो गया हूँ । मैंने उनकी आज्ञा नहीं मानी । यह अपराध मेरे सिर पर है ।

व्यास—वत्स, सत्य महान् धर्म है ; इतर धर्म क्षुद्र हैं, उसी के अंग हैं । सत्य के पालन से सर्वत्र पुण्य है । वह तप से भी उच्च है ; क्योंकि वह दंभ-विहीन है । आस्तीक, वह सत्य क्या है ? शुद्ध बुद्धि की आकाश-वाणी उसी का अनाहत गान करती है । वह अंतरात्मा की सत्ता है । उसको दृढ़ कर लेने पर सब अन्य धर्म आचरित होते हैं । यदि तुम्हारा उससे पद-स्खलन नहीं हुआ, तो तुम देखोगे कि तुम्हारी माता स्वयं तुम्हारा अपराध क्षमा और अपना अपराध स्वीकार करेंगी । असत्य की आज्ञा, चाहे वह किसी की हो, नहीं माननी चाहिए ; क्योंकि अंत में वही विजयी होता है, जो सत्य को परम ध्येय समझता है ।

माणवक—भगवन्, यही बात तो सर्वत्र नहीं घटित होती ! क्या इसमें अपवाद नहीं होता । यदि सत्य का फल श्रेय ही होता, यदि पाप करने से प्रत्यक्ष नरक की ज्वाला में लोग जलते, यदि पुण्य करते-करते जीवन को सुखी बना सकते, तो संसार में क्या इतना अत्याचार हो सकता ?

व्यास—वत्स माणवक, विजय एक ही तरह की नहीं है, और उसका एक ही लक्षण नहीं है । परिणाम में देखोगे, तुम श्रेयस्कर मार्ग पर थे । यदि प्रतिहिंसा-वश तुमने नागों का साथ दिया था, तो उस अलौकिक प्रभुता ने उसका भी दूसरा ही तात्पर्य रक्खा था । आज यदि तुम वहाँ न होते, कोई दूसरा नाग होता, तो इस पौरव-कुल-वधू की क्या अवस्था होती ? क्या उस सम्राट् पर यह तुम्हारी विजय नहीं है, जिसके भाइयों ने तुम्हें पीटा था ? तुम्हारे सत्य ने तुम्हें विजय दिलाई ही ।

सरमा—आर्य, श्री-चरणों की कृपा से मेरी सारी भ्रांति दूर हो गई है; किंतु एक अवशिष्ट है।

व्यास—वह क्या ?

सरमा—महारानी वपुष्टमा का परिणाम चिंता का विषय है।

व्यास—है अवश्य, किंतु कोई चिंता नहीं। विश्वात्मा उन सब का कल्याण करता है, जो सत्य पर आरूढ़ हैं।

आस्तीक—तब क्या आज्ञा है ?

व्यास—ठहरो। इस आश्रम में प्राकृतिक साधन सब पर्याप्त हैं। तुम लोग यहीं रहो। जब तुम लोगों के जाने की आवश्यकता होगी, मैं स्वयं भेज दूँगा। अच्छा, तुम लोग विश्राम करो। (जाते हैं)

वपुष्टमा—बहन सरमा, मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हारा बड़ा अनादर किया था। आज मुझे तुम्हारे सामने आँख उठाते लज्जा आती है। तुमने जैसी विजय मेरे ऊपर पाई है, वह अकथनीय है।

सरमा—नहीं महारानी, वह तुम्हारा सिंहासन पर का आवेश था। वास्तविक स्थिति कुछ दूसरी थी; जो सब मनुष्यों के लिये बराबर है। वह स्त्री-जाति के सम्मान का प्रश्न था, नाग और आर्य-जाति की समस्या नहीं थी, जैसा आप कहने लगी थीं ! नाग-परिणय से तो मैं न्याय पाने की भी अधिकारिणी न थी; किंतु क्या आपको विदित है कि कितने शुद्ध आर्यों का भी अधिकारियों के निष्पेषण से प्रतिदिन कितना अनादर होता है, जो राज-सिंहासन तक पहुँच नहीं पाते। अस्तु। अब उन बातों की चिंता क्या ?

वपुष्टमा—किंतु बहन, मैं तो किसी ओर की नहीं रही। सम्राट् की इच्छा क्या होगी, कौन जाने। आर्यावर्त-भर में यह बात फैल गई होगी कि सम्राज्ञी—

सरमा—भगवान् की दया से सब अच्छा होगा, आप चिंतित न हों। चलिए स्नान कर आवें।

(दोनों जाती हैं)

आस्तीक—क्यों माणवक, आज तो अवस्था ने तुम्हारे समस्त अपमान का बदला चुका दिया। क्या अब भी तुम इस दुखिया रानी को अपने हृदय से क्षमा न करोगे ?

माणवक—भाई ! मैं तो कभी का क्षमा कर चुका। नहीं तो अब तक वपुष्टमा को पकड़कर नागों के हवाले किया होता। मा की आज्ञा मैं टाल न सका। आस्तीक, सच पूछो, तो मैंने इस प्रतिहिंसा को आज से त्याग दिया। देखो, यह इस तपोवन में शस्य-श्यामल धरा और सुनील नभ का कैसा सम्मिलन है, जोकि एक दूसरे से कितनी दूर हैं।

आस्तीक—भाई, यह आश्रम भगवान् बादरायण का है। देखो, यहाँ की प्रत्येक लता-वल्लरियों में, पशु-पक्षियों में, तापस-बालकों में कितना स्नेह है। ये सब हिलते-डुलते, चलते-फिरते भी मानों गले से लगे हुए हैं। एक शांति का आश्वासन यहाँ के तृण को भी पुचकार रहा है। स्नेह का दुलार, स्वार्थ-त्याग का प्यार, सर्वत्र बिखर रहा है।

माणवक—भाई आस्तीक, बहुत दिन हुए, हमने और तुमने एक दूसरे को गले नहीं लगाया। आओ आज—

आस्तीक (गले लगकर) भाई ! शैशव-सहचर, वह विशुद्ध क्रीड़ा, वह बाल्य-काल का सुख, जीवन-भर का पाथेय है। क्या वह कभी भूलने का है ? आज से हम तुम फिर वही प्राचीन मित्र और भाई हैं। जी चाहता है, एक बार फिर हाथ मिलाकर उसी तरह खेल करें।

माणवक—भाई, क्या वह समय फिर आने का है ? यदि मिल सके, तो मैं ज़ोर देकर कहता हूँ कि उस १० वर्ष के लिये ६० वर्ष का जीवन भी बेच देना उपयुक्त है। आह, क्या ही रमणीय स्मृति है !

आस्तीक—किंतु भाई, हम लोगों का कुछ कर्तव्य है। दो भयंकर जातियाँ क्रोध से फुफकार रही हैं। उनमें शांति स्थापित करने का हमने बीड़ा उठाया है।

माणवक—भगवान् की कृपा से तुम सफल होगे। भाई, चिंता न करो। प्रभु की बड़ी प्रभुता है।

(दोनों प्रार्थना करते हैं)

नाथ, स्नेह की लता सींच दो, शांति-जलद-वर्षा कर दो;
हिंसा-धूल उड़ रही मोहन, सूखी क्यारी को भर दो।
समता की घोषणा विश्व में, मंद्र मेघ-गर्जन कर दो;
हरी-भरी हो सृष्टि तुम्हारी, करुणा का कटाक्ष कर दो।

(पट-परिवर्तन)

× × ×

सातवाँ दृश्य

(स्थान—कानन)

(मनसा और वासुकि)

वासुकि—बहन, अब क्या करना होगा ? तक्षक बंदी है। उसके साथ मणिमाला भी है। पहले के भयंकर यज्ञ

में जो बात न होने पाई थी, वही अब अनायास हो गई। अपनी मूर्खता से नागराज आज स्वयं पूर्णाहुति बनने गए।

मनसा—भाई, मुझसे क्या कहते हो? मैं क्या उस उत्तेजना की एक सामग्री नहीं हूँ? हाय-हाय! मैंने ही तो इस नाग-जाति को भड़काया। आज देख रहे हो, इसमें कितने घायल पड़े हैं। जाति के अवशिष्ट थोड़े-से लोगों में भी कितने ही बेकाम हो गए, कितने तो जलाए गए। विदित होता है, इस जाति के लिये प्रलय समीप है। इस परिणाम का उत्तरदायित्व मुझ पर है। हा, मैंने क्या किया!

(कुछ नागों का प्रवेश)

नाग—नाग-माता! आपकी सेवा और शुश्रूषा से हम लोग अब इस योग्य हो गए हैं कि फिर युद्ध कर सकें। आज्ञा दीजिए, अब हम लोग क्या करें? सुना है, नागराज बंदी हुए हैं। उनका उद्धार करना चाहिए।

मनसा—वत्सगण, अब और जन-क्षय कराने का काम नहीं है। बंदी तक्षक को जनमेजय कभी का जला देता; किंतु सुना है, उसकी रानी का पता नहीं है; इसलिये अभी कुछ नहीं हुआ।

नागगण—तो क्या नाग-राज जलाए जायँ, और हम लोग यहाँ पड़े-पड़े आराम करें! धिक्कार है इस जाति पर!

मनसा—उत्तेजित न हो वत्स।

वासुकि—नहीं मनसा, सो अब न होगा। अब इस भग्न गृह को बचा रखने से क्या होगा? इसे गिर जाने दो। दो-चार ठूठ वृक्षों पर इतनी ममता क्यों? इन्हें सूख जाने दो। जब हरा-भरा कानन जल गया, तो इन्हें भी जल जाने दो। चलो वीरो, जो युद्ध के योग्य हैं, वे सब एक बार निर्वाणोन्मुख दीप की तरह बल उठें। यदि और को न जला सकेंगे, तो स्वयं जल जायँगे। कथा समाप्त हो जायगी।

नाग—हम प्रस्तुत हैं।

वासुकि—तो फिर चलो।

मनसा—क्यों भाई, क्या तुम मेरी न सुनोगे?

वासुकि—तुम्हारी बात ही सुनकर, बहन, आज तक यह सब हुआ। अब तुम्हारे हृदय में स्त्री-सुलभ करुणा का उद्रेक हुआ है, इसीलिये तुम मुझे फिराना चाहती हो। यही तो स्त्रियों की बात है। एक भयानक क्रूरता को, ठोकर मारकर, जगाकर, फिर उसे थपकी देकर, सुला देना चाहती हो। यह अब नहीं होने का। मरण के डर से कलंकी जीवन बचाने का दुस्साहस न करूँगा।

मनसा—भाई, तुम्हारी मनसा तुमसे क्षमा चाहती है। जाति-नाश कराने का कलंक उसके सिर पर मत होने दो।

वासुकि—उपाय नहीं है।

मनसा—(कुछ सोचकर) अच्छा, सब अवशिष्ट सैनिकों को साथ लेकर तुम चलो। मैं भी चलती हूँ। यदि संधि करा सकी, तब तो ठीक है, नहीं तो सब जल मरेंगे।

वासुकि—(हँसकर) अभी इतनी आशा है?

मनसा—एक बार आर्यों के महर्षि बादरायण को देखूँगी। सुना है, उनकी अपूर्व महिमा है। यदि कुछ कर सकूँ।

सब नाग—अच्छी बात है। एक बार और चेष्टा कर लीजिए। हम लोग पूर्णाहुति के लिये प्रस्तुत होकर चलते हैं। किंतु स्मरण रहे, जिस स्वतंत्रता के लिये इतना रक्त बहाया है, वह न जाने पावे।

मनसा—विश्वास करो। अपमान-जनक संधि का प्रस्ताव मनसा न करेगी। नाग-बाला को भी मरना आता है। मुझे एक बार व्यास के आश्रम तक पहुँचना होगा। जब तक हम न आ जायँ, तुम लोग कोई साहस का कार्य न कर बैठना।

सब नाग—जय नाग-माता की जय!

× × ×

आठवाँ दृश्य

(स्थान—यज्ञ-शाला)

(बंदी तक्षक, मणिमाला, जनमेजय, शौनक, उतंक, सोमश्रवा, शीला, चंड भार्गव इत्यादि)

जनमेजय—इतनी नम्रता और आज्ञा-पालन का यह परिणाम! इतनी प्रतिहिंसा! प्रभुत्व का इतना लोभ! धन्य है भूसुरो, तुमने प्रतिशोध अच्छा लिया।

ब्राह्मण—राजन्, जो धर्म लोभ और हठ से प्रतिपादित होता है, उसका यही परिणाम है। इंद्र ने इसमें बाधा डाली है।

जनमेजय—चुप रहो! लज्जा नहीं आती? ब्राह्मण होकर ऐसा गर्हित कार्य! महिषी को मिलकर दूषित

बनाना ! उसे छिपा देना ! यह सब मुझे लज्जित करने का उपाय है । मैं अवश्य इसका प्रतिशोध लूँगा । मेरा हृदय क्रोध से जल रहा है । इस यज्ञ में, इस अनल-कुंड में, तुम सब की आहुति होगी ।

सोमश्रवा—राजन् , सुबुद्धि से सहायता लो । प्रमत्त न बनो । हो सकता है कि पद-च्युत काश्यप का इसमें कुछ हाथ हो ; किंतु समस्त ब्राह्मणों को क्यों इसमें मिलाते हो ?

जनमेजय—प्रतिफल भोगना होगा । यह क्षात्र रक्त उबल रहा है । उपयुक्त दंड तो यही है कि तुम सब को इसी यज्ञ-कुंड में जला दूँ । किंतु नहीं, मैं तुम लोगों को दूसरा दंड देता हूँ । जाओ, मेरा देश छोड़कर तुम लोग चले जाओ । आज से कोई क्षत्रिय अश्वमेध इत्यादि यज्ञ नहीं करेगा । तुम-सरीखे पुरोहितों की इस देश में आवश्यकता नहीं । जाओ, तुम सब निर्वासित हो । और, तू तक्षक, तूने आज तक इस राज-कुल के साथ जो-जो दुर्व्यवहार किए हैं, उनका यही उपयुक्त दंड है कि तू इस भ्रष्ट यज्ञ की पूर्णाहुति हो । सोमश्रवा, इसको अवशिष्ट यज्ञ-सामग्रियों के साथ इसी यज्ञ-कुंड में डाल दो ।

सोमश्रवा—जब सब ब्राह्मण निर्वासित हैं, तब मैं ही क्यों रहूँ ? और, अश्वमेध में नर-बलि की विधि नहीं । यह घातक कार्य मुझसे न होगा ।

शीला—बहन मणिमाला, मैं तुम्हारे साथ हूँ । यदि तुम्हें जलावेंगे, तो मैं भी जलूँगी ।

मणिमाला—मैं भी पिता के साथ जलूँगी बहन !

सोमश्रवा—यह अच्छा है ! यज्ञ का अवभृथ-स्नान अच्छा होगा ! ब्राह्मण निर्वासित और तक्षक, मणिमाला तथा ब्राह्मणी की यज्ञ में आहुति ! बलिहारी !

उतंक—सम्राट्, विचार से कार्य कीजिए । ऐसा न हो कि जिन्हें दंड मिलना चाहिए, उनके साथ निरपराध भी पीसे जायँ । एक ही अकारण हत्या का फल ऐसा भयानक कांड है । अब इसे न बढ़ाइए ।

जनमेजय—जाओ, तुम सब निकलो ! कोई नहीं सुनता ? इस अधम तक्षक को अभी इस यज्ञ-कुंड में डाल दो !

(व्यास के साथ मनसा, सरमा, आस्तीक और माणवक का प्रवेश । लोग तक्षक को कुंड में डालना चाहते हैं)

व्यास—ठहरो ! ठहरो !

जनमेजय—भगवन् , प्रणाम ! यह क्या ?

आस्तीक—मेरा प्रतिफल ! मेरा न्याय !

जनमेजय—तुम कौन हो ?

आस्तीक—जिस ब्रह्म-हत्या के लिये तुमने अश्वमेध किया है, मैं उसी ब्रह्म-हत्या की क्षति-पूर्ति चाहता हूँ । मैं जरत्कारु का पुत्र हूँ ।

जनमेजय—आश्चर्य ! तुम कुमार ! तुम्हारा मुखमंडल तो बड़ा सरल है, फिर भी वह क्या कह रहा है ! मैं किस लोक में हूँ !

व्यास—न्याय करना होगा सम्राट् ! यह बालक अपने पिता की हत्या की क्षति-पूर्ति चाहता है । आर्य-पट्ट के समक्ष यह बालक तुम पर अभियोग न लगाकर केवल क्षति-पूर्ति चाहता है । क्या तुम इसको भी अस्वीकार करोगे ? तब तुम दूसरों से कैसे क्षति-पूर्ति दिला सकोगे ? क्या न्याय करोगे ?

जनमेजय—मुझे स्वीकार है भगवन् ! क्या चाहते हो तुम आस्तीक ? मैं अपना रक्त तुम्हें दूँ ?

आस्तीक—नहीं, मुझे दो जातियों में शांति चाहिए । सम्राट्, शांति की घोषणा करके बंदी नाग-राज को छोड़ दीजिए । यही मेरा यथेष्ट पुरस्कार है ।

जनमेजय—(सिर झुकाकर) वही हो । छोड़ दो तक्षक को ।

व्यास—धन्य है क्षमाशील ब्रह्म-वीर्य ! ऋषिकुमार, तुम्हारे पिता को धन्य है ।

(लोग तक्षक को छोड़ देते हैं । वासुकि से सरमा का मिलन)

सरमा—और, मेरा भी कुछ विचार है । न्याय कीजिए ।

जनमेजय—कौन ? यादवी सरमा !

सरमा—हाँ, मैं ही हूँ सम्राट् !

जनमेजय—तुम्हारे लड़के को मेरे भाइयों ने पीटा था ? तुम क्या चाहती हो ?

सरमा—जब आप स्वीकार करते हैं, तब मुझे कुछ न चाहिए आर्य-राज ! केवल एक वस्तु दीजिए, और हमसे कुछ लीजिए भी ।

जनमेजय—क्या प्रतिदान !

सरमा—हाँ, लेना होगा सम्राट् !

जनमेजय—वह क्या ?

सरमा—नाग-बाला मणिमाला को अपनी वधू बनाइए ।

(जनमेजय सिर नीचा कर लेता है)

व्यास—किंतु सरमा, यह तुम अनधिकार की बात करती हो। पहले वपुष्टमा को बुलाओ। वह स्वीकृति दें।

सरमा—वही हो।

(जाकर वपुष्टमा को ले आती है)

वपुष्टमा—आर्य-पुत्र की जय हो।

जनमेजय—षड्यंत्र ! यह कभी न होगा ! धर्षिता स्त्री को कौन स्वीकार करेगा ?

व्यास—तुम करोगे सम्राट् ! जब स्त्रियों की रक्षा का भार पुरुषों ने लिया है, और उनको केवल अपनी सीमा में स्वतंत्रता मिली है, तब उनकी अरक्षित अवस्था में उन पर अत्याचार होने का अपराध उनके रक्षकों पर लगेगा। क्या अबला होने के कारण यही सब ओर से अपराधिनी है ? नहीं, यह पवित्र है। प्रभात के कमल-वन से निकले हुए मलय-पवन की तरह शुद्ध है। इसे स्वीकार करना होगा। वपुष्टमा, आगे बढ़ो।

वपुष्टमा—नाथ ! दासी चरण की शपथ करके कहती है कि वह पवित्र है।

(पैर पकड़ती है)

जनमेजय—(व्यास की ओर देखकर) उठो महिषी, उठो। (उठाता है)

वपुष्टमा—आर्य-पुत्र ! सरमा-देवी की बात माननी ही होगी। आओ बहन मणिमाला।

सरमा—मणिमाला, तुम सौभाग्यवती हो—प्रेम-शृंखला बनकर इन दोनों क्रुद्ध जातियों को बाँध दो।

शीला—बहन ! मणि ! आज मेरी भविष्य-वाणी सफल हुई। कौन जानता था कि तपोवन का केवल एक दृष्टि में वर्धित क्षुद्र प्रेमांकुर इतना महान् फल देगा !

जनमेजय—सचमुच मनुष्य नियति का अनुचर है।

(रानी मणिमाला के हाथ बंधन-मुक्त करके जनमेजय को पकड़ा देती हैं, और कहती हैं—"यह निर्मल कुसुम तुम्हारे समस्त संताप को हरण करके मस्तक को शीतल करे।" मणिमाला लज्जित होती है)

मनसा—आर्य-राज ! इस जाति की महत्ता देखकर मैं मुग्ध हूँ। मेरा समस्त विद्वेष तिरोहित हो गया। मैं चाहती हूँ, आज से नाग-जाति विद्वेष भूलकर आर्यों से मित्र-भाव का व्यवहार करे, और आर्यगण भी अनार्य कहकर उन्हें अपने से बहुत दूर न मानें। आज से मैं आस्तीक के नाम पर प्रतिज्ञा करती हूँ कि कोई नाग आर्यों से विद्रोह का आचरण न करेगा।

व्यास—जब संबंध-सूत्र में राज-कुल भी बँध गया, तब भिन्नता कैसी ? इस प्रचंड वीर जाति के क्षत्रिय होने में क्या संदेह है।

जनमेजय—ऐसा ही होगा।

सब—जय, नाग-माता की जय !

व्यास—ब्रह्म-मंडली, इन अपने सम्राट् को क्षमा करो !

जनमेजय—मेरा अपराध क्या है भगवन् ?

व्यास—इस षड्यंत्र का मूल काश्यप अपने दंड को पा गया। यज्ञ-शाला के विप्लव में से भागते समय किसी नाग ने उसकी हत्या कर डाली है। सम्राट्, इन ब्राह्मणों ने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया। इनकी क्षमा को देखो कि तुमने अकारण इन्हें निर्वासन की आज्ञा दी, पर इन्होंने शाप भी न दिया। धन्य है ! क्षमाधन, त्यागी और तपस्वी ब्राह्मणो, तुम धन्य हो ! ब्राह्मणत्व का सुंदर ज्वलंत उदाहरण तुमने दिखला दिया।

जनमेजय—भगवान् की जैसी आज्ञा। (सब से) क्षमा कीजिए।

शौनकादि—सम्राट्, तुम सदैव क्षम्य हो; क्योंकि तुम्हारे सुशासन से हम आरण्यक लोग अपना स्वाध्याय शांति से करते हैं। क्या तुम्हारा एक भी अपराध हम नहीं सहन कर सकते। सहनशील होना ही तो तपोधन, उत्तम ब्राह्मणों का लक्षण है। किंतु मानूँगा, व्यासदेव, तुम्हारी ज्ञान-गरिमा को, तुम्हारी वृत्ति को, तुम्हारी शांति को मानूँगा। आज तक अवश्य कुछ ब्राह्मण तुम्हें दूसरी दृष्टि से देखते थे, किंतु, नहीं, तुम सर्वथा स्तुत्य हो। तुम्हारा अगाध पांडित्य ब्राह्मणत्व के योग्य ही है। धन्य हो !

व्यास—सम्राट्, तुमने मुझसे एक दिन पूछा था कि क्या भविष्य है ? देखा नियति का चक्र ! यह ब्रह्म-चक्र आप ही अपना कार्य करता है। मैंने तुम्हें मना किया था, कहा था कि यज्ञ में विघ्न होगा। फिर भी तुमने उसे किया ही। किंतु जानते हो, यह क्या है ? यह मानवता के साथ ही धर्म का क्रम-विकास है। यज्ञों का कार्य हो चुका। बालक सृष्टि खेल कर चुकी। उसी परिवर्तन के लिये यह कांड उपस्थित हुआ है। अब उसे धर्म-कार्यों में विडंबना

की आवश्यकता नहीं । शुद्ध और समीप ले जानेवाले उपनिषद् और आरण्यक-संवाद सरस्वती और यमुना के तट पर हो रहे हैं । इन्हीं महात्मा ब्राह्मणों की विशुद्ध ज्ञान-धारा से यह पृथ्वी अनंत काल तक सिंचेगी, परमात्मा की उपलब्धि होगी, कल्याण और शांति का प्रचार होगा ।

सब—भगवान् की वाणी सत्य हो ।

व्यास—विश्वात्मा का उत्थान हो । प्रत्येक हृत्तंत्रियों में पवित्र पुण्य का साम-गान हो ।

(नेपथ्य में गान)

जय हो उसकी, जिसने अपना विश्व-रूप-विस्तार किया ;
आकर्षण का प्रेम-नाम से सब में सरल प्रचार किया ।
जल, थल, नभ का कुहक बन गया जो अपनी ही लीला से,
प्रेमानंद-पूर्ण गोलक को निराधार आधार दिया ।
हम सब में जो खेल कर रहा अति सुंदर परछाईं-सा ;
आप छिप गया आकर हममें, फिर हमको आकार दिया ।
पूर्णानुभव कराता है जो 'अहमिति' से निज सत्ता का,
'तू मैं ही हूँ' इस चेतन का प्रणव-बीच गुंजार किया ।

(यवनिका-पतन)

समाप्त

जयशंकर 'प्रसाद'

तुम और मैं

तुम तुंग हिमालय-शृंग, और मैं चंचल-गति सुर-सरिता ;
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास, और मैं कांत कामिनी-कविता ।

तुम प्रेम, और मैं शांति ;
तुम सुरा-पान-घन अंधकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रांति ।

तुम दिनकर के खर किरण-जाल, मैं सरसिज की मुसकान ;
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूँ पिछली पहचान ।

तुम योग, और मैं सिद्धि ;
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि ।

(२)

तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरंजिनी भाषा ;
तुम नंदन-वन-घन-विटप, और मैं सुख-शीतल-तल शाखा ।

तुम प्राण, और मैं काया ;
तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म,
मैं मनोमोहिनी माया ।

तुम प्रेममयी के कंठ-हार, मैं वेणी काल-नागिनी
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार, मैं व्याकुल विरह-रागिनी ।

तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु ;
तुम हो राधा के मन-मोहन,
मैं उन अधरों की वेणु ।

(३)

तुम पथिक दूर के श्रांत, और मैं बाट-जोहती आशा ;
तुम भव-सागर दुस्तार, पार जाने की मैं अभिलाषा ।

तुम नभ हो, मैं नीलिमा ;
तुम शरत्-सुधाकर-कला-हास,
मैं हूँ निशीथ-मधुरिमा ।

तुम गंध कुसुम-कोमल-पराग, मैं मृदु-गति मलय-समीर ।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति प्रेम-जंजीर ।

तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति ;
तुम रघुकुल-गौरव रामचंद्र,
मैं सीता अचला भक्ति ।

(४)

तुम हो प्रियतम मधु-मास, और मैं पिक-कल-कूजन-तान ।
तुम मदन पंच-शर-हस्त, और मैं हूँ मुग्धा अनजान ;

तुम अंबर, मैं दिग्वसना ;
तुम चित्रकार घन-पटल श्याम,
मैं तड़ित्तूलिका-रचना ।

तुम रण-तांडव-उन्माद-नृत्य, मैं युवति-मधुर-नूपुर-ध्वनि ।
तुम नाद-वेद-ओंकार-सार, मैं कवि-शृंगार-शिरोमणि ।

तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति ;
तुम कुंद-इंदु-अरविंद शुभ्र,
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति ।

सूर्यकांत त्रिपाठी

ग्रीक राजनीतिक सिद्धांत

(४)

अरस्तू के उत्तराधिकारी



तत्कालीन परिस्थिति

अरस्तू के बाद ग्रीस के नगर-राज्यों की स्वतंत्रता बिलकुल नष्ट होने लगी। कुछ दिन पीछे नगर-राज्य मिट ही गए, और उनके स्थान पर विशाल देश-राज्य स्थापित हुए। सिकंदर की मृत्यु के पश्चात् मक़दूनिया का साम्राज्य कई भागों में बँट गया। तथापि प्रत्येक भाग समस्त प्राचीन नगर-राज्यों से अधिक विस्तृत था। ईसवी संवत् के पूर्व, दूसरी सदी में, रोम ने ग्रीस पर अधिकार कर लिया। ग्रीस भी उस विशाल साम्राज्य का भाग हो गया, जो उस समय योरप-निवासियों को सार्वभौमिक मालूम होता था। मक़दूनिया के राज्य में, अर्थात् रोमन-साम्राज्य में, न जन-सत्ता थी, न स्थानिक स्वराज्य था, और न सच्चा राजनीतिक जीवन था। वे कारण और वह परिस्थिति नष्ट हो गई, जिसने तीन शताब्दियों तक ग्रीस में राजनीतिक विचारों की गंगा बहाई थी। राजनीतिक पंथ से बहुत कुछ दूर हटकर ग्रीक मस्तिष्क विशुद्ध दर्शन और अंशतः सामाजिक आलोचना में लग गया। अब जो कुछ राजनीतिक विचार दिखाई पड़ते थे, वे मात्रा और महत्त्व में भूतपूर्व विचारावली से बहुत कम थे, और अन्य प्रकार के विचारों से बहुत मिश्रित थे। इस काल में जो कोई राजनीतिक परिस्थिति पर विचार करता था, उसकी दृष्टि सब से पहले विशाल मक़दूनिया-राज्य या रोमन-साम्राज्य की ओर जाती थी। नगर-राज्यों के विषय में कहने-सुनने की कोई बात न थी। कुछ ऐसा मालूम होता था, मानो सारा भूमंडल एक छत्र के नीचे आ रहा है। सार्वभौमिक राज्य ही आदर्श राज्य है, ऐसी धारणा होती थी। अस्तु। अरस्तू के उत्तराधिकारियों में सार्वभौमिकता की कल्पना विशेष रूप से दिखाई पड़ती है।

एपीक्युरस

एपीक्युरस ने जो पंथ चलाया, उसमें ये लक्षण स्पष्ट ही मिलते हैं। एक और सिद्धांत उसके मत में पाया जाता है, जो डेढ़ हज़ार वर्ष पीछे अत्यंत महत्त्व पूर्ण हो गया। राज्य की उत्पत्ति कैसे हुई, इस प्रश्न का उत्तर एपीक्युरियन मत में यह दिया गया है—"बहुत दिन हुए, सब लोगों ने मिलकर यह इक़रारनामा लिखा था कि हम राज्य की स्थापना करते हैं। उस राज्य में न कोई अत्याचार करेगा, और न किसी पर अत्याचार किया जायगा। इस इक़रारनामे से राज्य की स्थापना हुई है, और यह इक़रारनामा राज्य का सर्व-प्रधान क़ानून है।" एपीक्युरस द्वारा प्रघोषित सामाजिक पट्टे का यह सिद्धांत महाभारत के सामाजिक समय से और सोलहवीं-सत्रहवीं सदी के पट्टावादियों के मत से बहुत मिलता-जुलता है।

स्टोयिक

उन दिनों स्टोयिक मत था एपीक्युरियन मत से अधिक प्रबल। स्टोयिक लोग सारे विश्व के तत्त्व की आलोचना करते थे। उन्हें सारी प्रकृति में एक महान् शक्ति की करामात दिखाई देती थी, एक महान् नियम का प्रचार दिखाई पड़ता था। प्राकृतिक सर्व-व्यापी नियम के आधार पर ही यह नक्षत्र-मंडल और भू-मंडल स्थिर है। वही नियम सारी मनुष्य-जाति को भी लागू है। वास्तव में सब मनुष्य एक ही प्रकार के हैं। सब मनुष्यों को मिलकर एक सार्वभौमिक राज्य बनाना चाहिए, और उसी की छत्र-छाया में शांति-पूर्वक रहना चाहिए। इस सार्वभौमिक राज्य में एक ही तरह का क़ानून और एक ही तरह की व्यवस्था रहे। यानी संसार एक विशाल नगर है, और साधारण नगर उसके कुटुंब हैं। राज्य-प्रणाली में एक-सत्ता, कुलीन-सत्ता और जन-सत्ता, इन तीनों के तत्त्वों का समावेश रहना चाहिए। इस सम्मिश्रण से बहुत-सी बुराइयाँ, जो एक-सत्ता या कुलीन-सत्ता या जन-सत्ता में होती हैं, रुक जायँगी।

सिनिक

सिनिक लोग भी "वसुधैव कुटुंबकम्" के पक्षपाती थे। सार्वभौमिक राज्य उनको भी इष्ट था। परंतु उनका विशेष महत्त्व राजनीति-शास्त्र में नहीं, अन्यत्र है।

कह चुके हैं कि जब रोम ने ग्रीस को राजनीति में पराजित किया, तभी ग्रीस ने रोम पर मानसिक विजय प्राप्त कर ली।

रोमन राजनीतिक सिद्धांत

रोमन विद्वान् ग्रीस के शिष्य होने में अपना गौरव समझने लगे। प्रधानतः रोमन प्रतिभा व्यावहारिक प्रतिभा थी। देशों की विजय, व्यवस्था तथा क़ानून बनाने में उन्होंने अपनी लगभग सारी शक्ति ख़र्च कर दी। दार्शनिक अथवा राजनीतिक विचार जो कुछ उन लोगों में थे, वे सब ग्रीस से लिए गए थे। अतएव उन विचारों की मीमांसा यहीं कर सकते हैं।

सिसरो

रोमन साहित्य में सिसरो का नाम अत्यंत प्रसिद्ध है। वक्तृत्व-शक्ति में सिसरो का दर्जा ग्रीक-वक्ता डिमास्थनीज़ से ही कम है। पद-लालित्य, शब्द-विन्यास और ओजस्विता में वह, लैटिन साहित्य में, अद्वितीय है। परंतु उसके सारे ग्रंथों और व्याख्यानों में एक भी मौलिक विचार नहीं है। जो कुछ है, सब ग्रीस का प्रतिबिंब। राजनीति में सिसरो पर स्टोयिक मत का प्रभाव बहुत पड़ा था। विश्व में नियम की व्यापकता, सार्वभौमिक राज्य की आवश्यकता, क़ानून और व्यवस्था की एकता, ये सब बातें सिसरो ने स्टोयिक मत से ली हैं। एक स्थान पर उसने आदर्श राज-पद्धति की विवेचना की है। वहाँ भी वह स्टोयिक मत पर ही पहुँचा है; अर्थात् आदर्श राज-पद्धति में एक-सत्ता, कुलीन-सत्ता और जन-सत्ता, इन तीनों के तत्त्व मिलाने चाहे हैं।

पालीवायस

सिसरो के पहले सर्वोत्तम रोमन इतिहासकार पालीवायस ने भी यही मत प्रकट किया था। जन्म से पालीवायस ग्रीक था; परंतु रोम में रहने लगा था, और एक प्रकार से रोमन ही हो गया था। ग्रीस की अधोगति और रोम की उन्नति की तुलना करके वह इसी नतीजे पर पहुँचा कि रोमन राज-पद्धति की तरह आदर्श राज-पद्धति में भी तीनों प्रकार की सत्ताओं का समावेश रहना चाहिए; अर्थात् वंश-क्रमागत अथवा निर्वाचित राजा होना चाहिए। राजा को कुलीन अथवा वृद्ध पुरुषों की सहायता से शासन करना चाहिए। महत्त्व-पूर्ण मामलों का निर्णय जन-सभा के द्वारा होना चाहिए।

रोमन लेखकों में इसी प्रकार के अन्य राजनीतिक विचार भी पाए जाते हैं; परंतु उनमें न कोई मौलिकता है, और न कोई महिमा।

ईसाई राजनीतिक विचार

जिस समय रोमन साम्राज्य उन्नति की पराकाष्ठा पर था, उसी समय रोमन साम्राज्य के अंतर्गत पेलस्टाइन में ईसामसीह ने ईसाई-मत चलाया। थोड़े दिनों में ईसाई लोग योरप और इटली में भी अपने धर्म का प्रचार करने लगे। पुराने धर्मों के अनुयायी स्वभावतः नए ईसाई-मत के विरोधी थे, और सम्राटों को उसका नाश करने के लिये उत्तेजित करते थे। ईसाई लोग अभी संख्या और बल में कम थे। वे सम्राट् के कोप से डरते थे। अतएव उन्होंने इस मत का प्रतिपादन किया कि सब लोगों को सम्राट् के प्रति भक्ति रखनी चाहिए। राज-भक्ति का सिद्धांत इस समय से शुरू होकर किसी-न-किसी रूप में उन्नीसवीं सदी तक प्रचलित रहा। ईसाई लोग धर्म-प्रचार और आत्म-रक्षा के लिये इतने उत्सुक थे कि उन्होंने विधर्मी सम्राट् की भक्ति पर ज़ोर ही नहीं दिया, तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों का भी खंडन भी नहीं किया। उन्होंने दासता के विरोध में आवाज़ नहीं उठाई। ईसाई राजत्व-प्रथा और व्यापक साम्राज्य से ही परिचित थे। अतएव उनके तत्कालीन लेखों में कुलीन-सत्ता अथवा जन-सत्ता, नगर-राज्य अथवा राष्ट्र, का कोई उल्लेख नहीं है। आगे चलकर अवश्य संत अगस्टाइन ने कहा कि राजा को क़ानून का पालन करना चाहिए। और, रीम्ज़ के हिंकमार ने उपदेश दिया कि राजा की सत्ता परिमित होनी चाहिए, क़ानून बहुत सोच-समझकर बनाने चाहिए; परंतु जब वे एक बार बन गए, तब उनका पालन, राजा और प्रजा, सभी को करना चाहिए। इस समय के पश्चात्

व्यक्ति-वाद

ईसाइयों ने जिन राजनीतिक विचारों का प्रचार किया, उनका संबंध मध्य-कालीन योरप के इतिहास से है। परंतु उनका एक सिद्धांत था, जो उस समय तथा आगे चलकर अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुआ, और जिसका उल्लेख आवश्यक है। ईसाई-धर्म के अनुसार ईश्वर के सामने प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के लिये उत्तरदाता है। पाप या पुण्य का परिणाम प्रत्येक आत्मा को स्वयं ही भोगना पड़ता है; या तो सदा के लिये स्वर्ग में आनंद करना होता है, या

सदा के लिये नरक-यंत्रणा भोगनी पड़ती है। इस परलोक पर ज़ोर देकर ईसाई-धर्म ने व्यक्ति-वाद का प्रचार किया।

वेणीप्रसाद

अमेरिका की वर्तमान अवस्था

(५)

Honest and independent Journalism is the mightiest force evolvedby modern civilization. With all its faults—and what human institution is faultless ?—it is indispensible to the life of a free people.

Hon. Alton B. Parker

समाचार-पत्र



संसार-भर में कहीं के निवासियों को समाचार-पत्र पढ़ने का उतना शौक़ नहीं है, जितना अमेरिका-निवासियों को। वहाँ पर समाचार-पत्रों का पढ़ना भोजन करने से भी अधिक ज़रूरी समझा जाता है। वहाँ के निवासियों को चाहे एक वक़्त भोजन न मिले, मगर अख़बार पढ़ने को ज़रूर चाहिए। जहाँ राज्य शासन अच्छा न हो, परंतु समाचार-पत्र निकलते हों, और, जहाँ का राज्य-शासन तो अच्छा हो, परंतु समाचार-पत्र न प्रकाशित होते हों, ऐसे दो देशों में से पहले प्रकार के देश में, जहाँ से समाचार-पत्र निकलते हैं, रहना ही अमेरिकन लोग पसंद करेंगे। वहाँ के लोगों का विश्वास है कि देश के शासन का अच्छा या बुरा होना जनता की राय पर बहुत-कुछ निर्भर है, और जनता की राय का प्रकट होना समाचार-पत्रों के ही द्वारा संभव है। अमेरिकन लोग प्रातःकाल जगकर हाज़िरी खाने के भी पहले अपनी मेज़ पर अख़बारों को देखना चाहते हैं। सुबह उठकर हाज़िरी खाने को भले ही न मिले, परंतु अख़बार पढ़ने को ज़रूर मिलना चाहिए। परमात्मा ने जिनको धन दिया है, वे तो एक नहीं, अनेक समाचार-पत्र मँगवाते हैं; परंतु जो निर्धन और ग़रीब हैं, वे भी रोज़ कम-से-कम एक अख़बार ज़रूर ख़रीदते हैं। यहाँ तक कि वहाँ के मज़दूर भी बिना अख़बार पढ़े नहीं रह सकते। वहाँ जिसको पढ़ने के लिये अख़बार नहीं मिलता, वह अपने को निकम्मा, गूँगा, बहरा और अंधा समझता है।

अमेरिकन समाचार-पत्रों के संपादक अपने को बहुधा प्रकट नहीं करते। वे चुप-चाप काम करने के आदी हैं। नाम प्रकट करना वे संपादकीय सभ्यता के प्रतिकूल समझते हैं। कर्नल हेनरी वाटरसन और मि० आर्थर ब्रिसबेन के समान बहुत ही कम संपादक हैं, जिनके नाम का परिचय जनता को है। मि० ब्रिसबेन अमेरिका में उसी तरह प्रसिद्ध हैं, जिस तरह इँगलैंड में "टाइम्स"-पत्र के स्वामी लॉर्ड नार्थक्लिफ़ थे। परंतु वहाँ के संपादकों के चुप-चाप काम करने पर अपने को गुप्त रखने से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वे अयोग्य हैं, अथवा उनका वेतन कम है। हमारे देश के लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि वहाँ पर कई-एक समाचार-पत्रों के संपादकों का वेतन संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के प्रेसिडेंट के वेतन से कहीं अधिक है! वहाँ पत्रों के प्रचार का यह हाल है कि कई-एक समाचार-पत्रों के ८० लाख से भी अधिक ग्राहक हैं।

अमेरिकन लोगों को इस बात का दृढ़ विश्वास है कि संपादकों के हाथ में ही संसार के राज्य-शासन की बाग़-डोर है; क्योंकि संपादक अपनी लेखनी के प्रभाव से जनता के विचारों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। असल में बात भी यह ठीक है। वहाँ की गवर्नमेंट पर समाचार-पत्रों का अच्छा प्रभाव है। गवर्नमेंट समाचार-पत्रों का रुख़ देखकर बहुत-कुछ काम करती है। गवर्नमेंट को जनता के विचारों का पता समाचार-पत्रों द्वारा ही लगता है। यदि वहाँ समाचार-पत्र न हों, तो वहाँ की गवर्नमेंट को, हमारे देश की गवर्नमेंट के समान, जनता के भावों को, अँधेरे में, ख़ुफ़िया पुलिस की निगाह से ही टटोलना पड़े।

एक समाचार-पत्र में एक से अधिक संपादक काम करते हैं। कुछ अख़बारों को छः-सात संपादकों तक की ज़रूरत पड़ती है। इन संपादकों को विषय बाँट दिए जाते हैं। वे अपने-अपने विषय के लिये लेखों और समाचारों का संग्रह करते हैं। कुछ समय पहले, संपादकगण अपने पत्रों में अपने विचार

प्रकट करते थे, और लोग उनको ध्यान से पढ़ते भी थे। परंतु अब संपादकीय विचारों की क़दर घट गई है। कुछ प्रभावशाली संपादकों के विचारों के सिवा साधारण पत्रों के विचारों पर ध्यान देना तो दूर रहा, उन बेचारों के विचारों को लोग पढ़ते तक नहीं हैं। इसलिये संपादकीय विचारों को प्रकाशित करने की जगह समाचारों को, संग्रह करके, प्रकाशित करने का प्रयत्न दिन-दिन वहाँ बढ़ता जाता है। वहाँ संपादक लोग जब कभी यह चाहते हैं कि हमारे विचार भी लोग पढ़ें, तब वे ख़ास तौर पर एक सूचना प्रकाशित करके अपने ग्राहकों से यह प्रार्थना करते हैं—"इस अंक में जो विचार मैंने प्रकट किए हैं, उनको कृपा कर अवश्य पढ़िएगा।" तब कहीं लोग इस ओर ध्यान देते हैं।

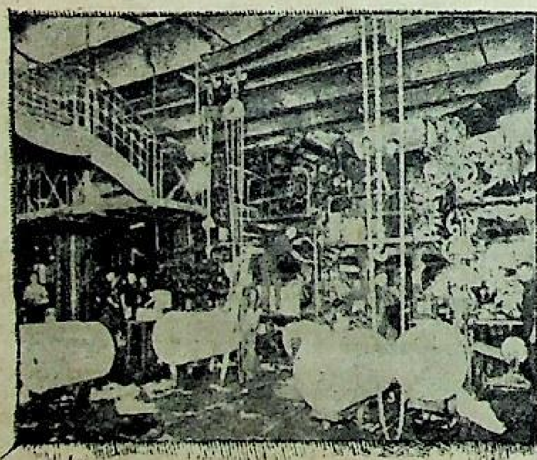
समाचारों का संग्रह करने में समाचार-पत्रों के संचालक बड़ी रक़म ख़र्च करते हैं। प्रत्येक समाचार-पत्र के संचालक की यह प्रबल इच्छा और प्रयत्न होता है कि ग़ैरमामूली और ताज़ी-से-ताज़ी ख़बर समाचार-पत्र में सब से पहले प्रकाशित हो। वहाँ पर यह विचार दिन-दिन प्रचार पाता जा रहा है कि किसी विषय पर अपने निजी विचार प्रकट करने की अपेक्षा उस विषय की सच्ची बातें ही प्रकाशित की जायँ; क्योंकि सच्ची बातों के प्रकट हो जाने से जो प्रभाव पबलिक पर पड़ता है, वह प्रभाव उस विषय की आलोचना करने से, या उस पर किसी व्यक्ति-विशेष का मत प्रकट होने से, नहीं पड़ता। कुछ दिन हुए, एक अमेरिकन पत्र ने मज़दूर-संघ के संबंध में अपने विचारों को न प्रकट करते हुए केवल तत्संबंधी सच्चे समाचारों को प्रकाशित करके लोक-मत को अपने अनुकूल बना लिया था। वह इस प्रकार की कामियाबी हासिल करके मज़दूरों का जितना उपकार कर सका, उतना उपकार अपने विचारों को प्रकट करके कभी नहीं कर सकता था।

नेपोलियन का कथन है कि किसी बात को बार-बार दुहराना अवश्य लाभ-दायक प्रमाणित होता है। इस बात को अमेरिकन समाचार-पत्रों के संपादक ख़ूब अच्छी तरह समझते हैं। किसी बात का बार-बार कहना यद्यपि बहुधा बुरा प्रतीत होता है, तथापि यदि कोई बात बार-बार कही जाय, तो फल अवश्य कुछ-न-कुछ होता है। अतएव वहाँ के समाचार-पत्र जब किसी बात के पीछे पड़ जाते हैं, तब उस बात को बार-बार दुहराते हैं; उसके संबंध के जो समाचार उन्हें मिलते हैं, उनको तुरंत प्रकाशित करते हैं; और, यह क्रम वे तब तक जारी रखते हैं, जब तक उन्हें सफलता प्राप्त न हो जाय, या उसका कुछ-न-कुछ परिणाम न निकल आवे। योरप के गत महायुद्ध के अवसर पर अमेरिकन पत्रों में समर की उपयोगिता अथवा सैनिकता पर प्रतिदिन समाचार और संपादकीय विचार प्रकाशित होते रहे, और उनका प्रभाव जनता पर इतना अधिक पड़ा कि सेना के लिये मनुष्य-संग्रह करने में बड़ी आसानी हुई।

अमेरिकन लोग कहा करते हैं कि दैनिक पत्र तो समाचारों के लिये हैं। यदि विचार और लेख पढ़ना हो, तो मासिक पत्र और पुस्तकें पढ़िए। दैनिक पत्रों में लेखों की ज़रूरत नहीं। और, इसी कारण अमेरिकन पत्रों के लिये समाचार पहुँचाने का वहाँ सब से अच्छा प्रबंध है। जिन दैनिक पत्रों में ताज़ी-से-ताज़ी, महत्त्व-पूर्ण ख़बरें सब से पहले छपती हैं, उन्हीं पत्रों की वहाँ ख़ूब बिक्री होती है। 'न्यूयार्क-ट्रिब्यून' के संपादक होरस ग्रीलीलो का कथन है कि समाचार-पत्रों में वे कुल समाचार छापे जाने चाहिए जो छापे जाने के योग्य हों। एक अमेरिकन का कथन है कि "अगर किसी समाचार-पत्र के संपादक के पास यह समाचार भेजा जाय कि अमुक पुरुष को कुत्ते ने काट खाया, तो संपादक तुरंत उत्तर देगा कि यह कोई समाचार नहीं है। कुत्ते तो हमेशा मनुष्य को काटा ही करते हैं। हाँ, अगर कोई आदमी कुत्ते को काटे, तो तुरंत इस समाचार की सूचना दीजिए। मैं उसे अवश्य छापूँगा।' एक समय एक अमेरिकन पत्र में यह समाचार छपा कि अमुक मनुष्य ने अमुक प्रकार की १७ बड़ी-बड़ी मछलियाँ खा लीं। बस, इस समाचार के छपते ही बहुत-से समाचार-पत्र-संपादकों ने उसे अपने-अपने पत्र में उद्धृत कर दिया। आश्चर्य-जनक घटनाओं को बड़े लंबे-लंबे मोटे अक्षरों के हेडिंग देकर छापना वहाँ बहुत पसंद किया जाता है। समाचार-पत्र पढ़नेवाले लोग बहुधा हेडिंग पढ़कर ही अख़बार का मतलब समझ लेते हैं, और केवल हेडिंग पढ़ने को ही अख़बार ख़रीदते हैं।

वहाँ पर अच्छे और बुरे समाचार-पत्र की परख समाचारों के शीघ्र प्रकाशित होने से की जाती है। वहाँ

कहावत है कि "यदि कभी नरक का द्वार खुलनेवाला हो, तो जिस समाचार-पत्र में वहाँ के समाचार सब से पहले प्रकाशित होंगे, वही पत्र सर्वोत्तम समझा जायगा।" वहाँ रिपोर्टरों (संवाद-दाताओं) की योग्यता संपादकों से भी बढ़कर समझी जाती है। संवाद-दाता ही वहाँ के पत्रों की जान हैं। जिस पत्र के संवाद-दाता योग्य हों, वही पत्र श्रेष्ठ गिना जायगा, और उसी की खपत भी ख़ूब होगी। वहाँ पर लाखों रुपए संवाद-दाताओं के वेतन और यात्रा में ख़र्च किए जाते हैं। समाचार-पत्रों के दफ़्तर में तारों का ताँता बँधा रहता है। खेल-तमाशों की ख़बरें बड़ी तेज़ी के साथ छापी जाती हैं, और उन्हें लोग बड़े शौक़ से पढ़ते भी हैं। किसी खेल के ख़तम होते ही, दस मिनट बाद, अख़बार में ख़बरें छपकर बाज़ार तक पहुँच जाती हैं! खेल के मैदानों में टेलीफ़ोन या तार लगा रहता है, और वहाँ से संवाद-दाता समाचार-पत्र के दफ़्तर को बराबर समाचार पहुँचाता है। ये समाचार लगातार कंपोज़ होते रहते हैं। उधर खेल की समाप्ति, इधर कंपोज़ ख़तम! दस मिनट में ही पत्र ने छपकर समाचार घर-घर पहुँचा दिया। जिस तेज़ी से समाचार अख़बार के दफ़्तरों में पहुँचते हैं, और



'न्यूयार्क-वर्ल्ड' का प्रेस

जिस तेज़ी से प्रेस में काम होता है, उसका अनुमान करना कठिन है। जिस प्रकार जादूगर अपना खेल करता है, वही दशा वहाँ के पत्रों की है।

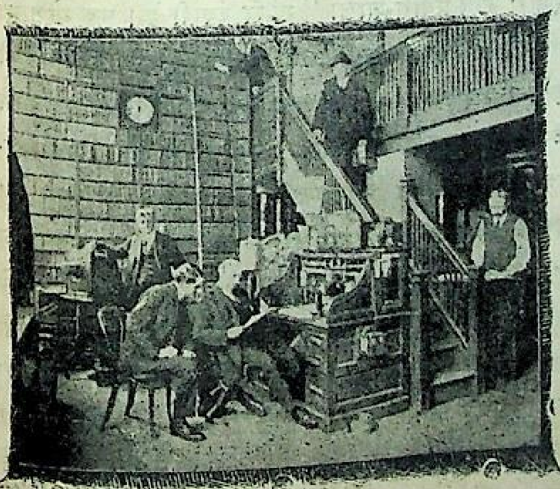
अमेरिकन समाचार-पत्रों में भाषा की ओर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। भाषा सरल, सुगम, सब के समझने योग्य काम में लाई जाती है। समाचार-पत्रों में ऐसी कठिन भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता, जिसको समझने के लिये कोष देखने की ज़रूरत पड़े। वहाँ इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि साधारण पढ़े-लिखे लोग भी समाचार-पत्रों को पढ़कर उन्हें समझ सकें। वहाँ के पत्र-संपादक कठिन-से-कठिन विषयों को सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न करते हैं, और इसी कारण कम-पढ़े मज़दूर लोग भी वहाँ समाचार-पत्रों से बहुत लाभ उठाते हैं।

संवाद-दाताओं का काम समाचार-संग्रह करना है। पत्र का संपादन करना उनका काम नहीं। न वे समाचारों का संग्रह करने में अपनी कोई राय देते हैं, और न समाचार-संबंधी आलोचना करते हैं। वे केवल ऐसे समाचारों का संग्रह करते हैं, जो स्वयं अपनी महत्ता पबलिक पर प्रकट करते हैं। संसार में कहाँ पर क्या हो रहा है, बस, इसी बात की खोज में संवाद-दाता रात-दिन लगे रहते हैं। ख़बरों का संग्रह करना-भर संवाद-दाता का काम है। उन्हें काट-छाँटकर उचित स्थान पर संपादक प्रकाशित करते हैं। महत्त्व की ख़बरें आम तौर पर पत्र के पहले पृष्ठ पर दी जाती हैं। जिस प्रकार दूकानदार अपनी दूकान की अच्छी-अच्छी चीज़ें दूकान के आगे के हिस्से में रखता है, उसी प्रकार वहाँ के समाचार-पत्र महत्त्व की ख़बरें पहले पृष्ठ पर प्रकाशित करते हैं।

अमेरिकन लोगों को अपने नाम का बहुत बड़ा ख़याल है। वे समाचार-पत्रों में अपने नाम को छपा हुआ देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं, ख़ासकर जब वह समाचार पहले ही पृष्ठ पर छपा होता है। अमेरिकन लोगों की इस नाम प्रकाशित होने की आतुरता की हँसी उड़ाने के तौर पर कहा जाता है कि "अमेरिकन लोग शुक्रवार को इसलिये मरना पसंद करते हैं कि शनैश्चर की सुबह को मौत की ख़ास ख़बरों में उनका नाम छपे।" बड़े-बड़े समाचार-पत्रों के दफ़्तरों में बड़े-बड़े नगरों से तार लगे हुए हैं। वहाँ से बराबर, बिना किसी रोक-टोक के, समाचार पहुँचते रहते हैं। प्रत्येक नगर और गाँव तक में वेतन-भोगी संवाद-दाता रहते हैं। वे नियमानुसार नित्य स्थानीय समाचार पहुँचाया करते हैं। संसार का ऐसा कोई भी बड़ा नगर न होगा, जहाँ अमेरिका के

किसी-न-किसी बड़े समाचार-पत्र का संवाद-दाता न हो। गत योरप के महायुद्ध के समय अमेरिकन समाचार-पत्रों ने बहुत भारी-भारी वेतन देकर प्रत्येक युद्ध-क्षेत्र में अपने संवाद-दाता भेजे थे। वे लोग वहाँ से युद्ध के केवल समाचार ही न भेजते थे, उन्होंने युद्ध-संबंधी चित्रों और नक़्शों के पाने का भी प्रबंध किया था।

अमेरिकन समाचार-पत्रों के दफ़्तरों में एक पुस्तकालय अवश्य होता है। इस पुस्तकालय में संपादन-कला-संबंधी सामग्री के अलावा समाचार-पत्रों और मासिक पुस्तकों से कटे हुए उपयोगी लेखों की विषयानुसार फ़ाइलें भी मौजूद रहती हैं; जिनमें से आवश्यकता पड़ने पर तुरंत आवश्यक लेख देखे जा सकते हैं। संसार के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुरुषों, इमारतों और रमणीय स्थानों के फ़ोटो भी मौजूद रहते हैं। जिस समय जिसकी ज़रूरत होती है, उसी समय उसे तुरंत, विना किसी विशेष परिश्रम अथवा खोज-तलाश के, काम में ले आते हैं। इस विभाग का काम यह रहता है कि जो वस्तु जब माँगी जाय, वह तभी तुरंत दी जाय। यदि योरप में कोई राजा मर जाय, अथवा कोई जापानी राजनीतिज्ञ संसार में न रहे, अथवा कोई बड़ा प्रसिद्ध शिल्पी या विद्वान् इस असार संसार को त्यागकर परलोक सिधार जाय, तो उसकी मृत्यु के कुछ घंटे बाद ही



एक मेट्रोपोलीटन दैनिक का फ़ोटो-विभाग
(देखिए, निगेटिव फ़ाइलों से ऊँची अलमारियाँ खचाखच भरी हुई हैं)

उसका चित्र और चरित्र समाचार-पत्रों में प्रकाशित होकर घर-घर पहुँच जायगा।

चित्रों का प्रकाशित करना अमेरिकन पत्र बहुत आवश्यक समझते हैं। कोई ऐसा अमेरिकन पत्र आप न देखेंगे, जिसमें दो-चार चित्र न हों। चित्रों का संग्रह करने के लिये वहाँ के समाचार-पत्र-संचालकों को बड़ा परिश्रम और ख़र्च करना पड़ता है। जगह-जगह फ़ोटो-ग्राफ़रों को भेजकर चित्र मँगाए जाते हैं। एक-दो फ़ोटो-ग्राफ़र तो संपादकीय स्टाफ़ में नौकर ही रहते हैं; जो वहाँ ज़रूरत होते ही तुरंत फ़ोटो ले आते हैं। यों तो अमेरिकन पत्रों में हर प्रकार के चित्र छपते हैं, परंतु स्त्रियों के—ख़ासकर उनके 'फ़ैशन' के—चित्र बहुतायत से छापे जाते हैं। नित्य-प्रति के व्यवहार, खेल-कूद, तमाशे, जलसे और क्लब आदि से संबंध रखनेवाले चित्र छापने का बहुत ख़याल रहता है। बहुत-से समाचार-पत्र ख़बरें भी चित्रों ही द्वारा देते हैं। समाचारों और लेखों के प्राप्त करने में जितनी कठिनता नहीं होती, उतनी कठिनता चित्रों की तलाश और संग्रह करने में होती है। परंतु हर तरह का कष्ट उठाकर और प्रचुर धन ख़र्च करके वहाँ के समाचार-पत्र-संचालक पत्र को सर्वोत्तम बनाने का प्रयत्न और परिश्रम करते हैं।

अमेरिका के सारे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध समाचार-पत्र एसोसिएटेड-प्रेस के मेंबर हैं। इस एसोसिएशन का यह काम है कि वह संसार के कोने-कोने तक की ख़बरें, जहाँ मानव शक्तियाँ कुछ भी कार्य करती हैं, संग्रह करके, अपने मेंबरों के पास भेजने का प्रबंध करे। समाचार-पत्रों के मालिकों ने समाचार-संग्रह की इस विशाल दैवी शक्ति का संगठन सहयोगी समितियों के सिद्धांत पर किया है। एसोसिएशन का प्रत्येक मेंबर उसका हिस्सेदार है; परंतु जो कुछ लाभ होता है, उसे कोई भी हिस्सेदार नहीं लेता। एसोसिएशन में जो कुछ ख़र्च पड़ता है, उसे सब मेंबर आपस में बाँट लेते हैं। अमेरिकन-प्रेस-एसोसिएशन के इस समय ९५० मेंबर हैं। प्रत्येक मेंबर को बोर्ड ऑफ़ डाइरेक्टर्स में मत देने का अधिकार है, और इसी बोर्ड ऑफ़ डाइरेक्टर्स के बहु-मत से जेनरल मैनेजर चुना जाता है। उसे समाचारों का संग्रह करने और भेजने का अधिकार रहता है।

समाचार-संग्रह करने के लिये इस संस्था ने संसार को चार भागों में बाँट दिया है। ये चारों विभाग एक दूसरे से संबंध रखते हैं। इन विभागों के नाम हाउस-एजेंसी,

वाफ़-एजेंसी और रूटर-एजेंसी हैं, और ये तीनों विभाग अमेरिकन एसोसिएटेड-प्रेस से संबंध रखते हैं। हाउस-एजेंसी, जिसका हेड क्वार्टर पेरिस में है, फ्रांस, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, बेलजियम, उत्तरी आफ्रिका और दक्षिणी अमेरिका के समाचार पहुँचाती है। वाफ़-एजेंसी, जिसका हेड कार्टर बर्लिन में है, जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, स्लैव और स्कंडिनेवियन राष्ट्र के समाचार भेजती है। रूटर-एजेंसी ब्रिटिश-साम्राज्य, जापान, चीन और पूर्वी देशों में जो अमेरिकन टापू हैं, उनके समाचार देती है। और, ख़ास संयुक्त-राज्य अमेरिका, अलस्का, फ़िलिपाइन्स, हवाइन टापू, मेक्सिको और मध्य-अमेरिका की रियासतों के समाचारों का प्रबंध एसोसिएटेड-प्रेस स्वयं करता है। एसोसिएटेड-प्रेस ने टेलीग्राफ़ और टेलीफ़ोन का भी बहुत कुछ स्वयं प्रबंध किया है। क़रीब ४० हज़ार मील तार इस संस्था ने अपना लगा रक्खा है।

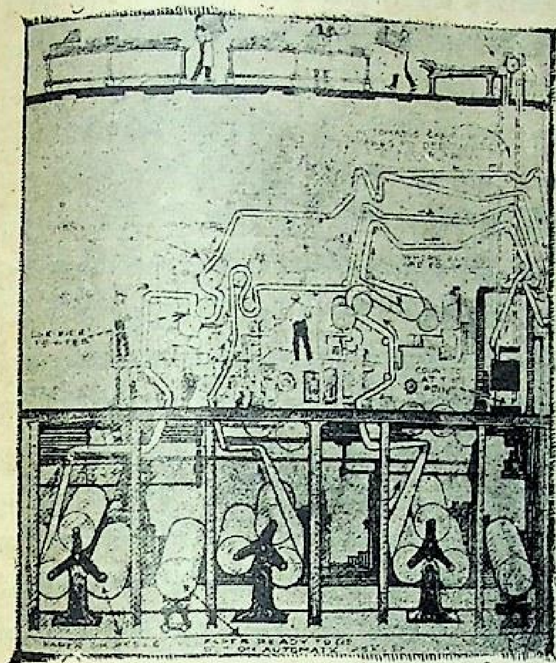


समाचार-पत्र बेचनेवाला लड़का

अमेरिका के दैनिक पत्रों में इतवार के दिन का पत्र ख़ास तौर पर दिलचस्प होता है। यह नित्य के पत्रों के मुक़ाबले में तिगुना होता है। इतवार के दिन के पत्र में सात-आठ विभाग होते हैं। पहले विभाग में आम समाचार, दूसरे में खेल-तमाशों का हाल, तीसरे में घर की ज़रूरी बातें, चौथे में सोसाइटी और फ़ैशन, पाँचवें में साहित्य, छठे में नाटक, सातवें में हास्यमय विनोदात्मक चित्र और आठवें में विज्ञापन रहते हैं। बहुधा इनमें रंगीन चित्र भी प्रकाशित होते हैं। ये पत्र आठ पृष्ठ से लेकर दो सौ पृष्ठ तक के होते हैं। ये इतवार के पत्र बहुधा मासिक पत्रों से भी, लेखों और चित्रों के ख़याल से, बढ़े-चढ़े रहते हैं। इन पत्रों में बहुधा ऐसे सुंदर चित्र प्रकाशित होते हैं, जिनको लोग बड़े शौक़ से ख़रीदते हैं।

अमेरिकन समाचार-पत्र केवल समाचार और लेख प्रकाशित करके ही संतोष नहीं करते। वे देश-हित के और भी अनेक काम करते हैं। वे समाज की सेवा के लिये एक प्रकार की संस्थाएँ हैं। वे ग़रीबों को मुफ़्त बर्फ़ और दूध देते हैं; गरमी के दिनों में शहरों से बाहर हवा खिलाने का प्रबंध करते हैं; पढ़नेवालों को उन्नत स्कूलों और कॉलेजों का पता बताते हैं। यह विभाग प्रत्येक अच्छे समाचार-पत्र के दफ़्तर में रहता है; जहाँ से विना कुछ लिए या एहसान जताए हुए ख़ुशी के साथ, जो हाल दरियाफ़्त किया जाय, वह बताया जाता है। वहाँ पर कुछ समाचार-पत्रों ने यहाँ तक प्रबंध कर रक्खा है कि यदि उस नगर में, जहाँ से समाचार-पत्र प्रकाशित होता है, कोई यात्री सैर को आवे, तो वहाँ से शहर की मशहूर-मशहूर जगहों और उत्तम-उत्तम इमारतों आदि को दिखाने का प्रबंध कर दिया जाता है, और जो बात वह जानना चाहे, उसे बता दिया जाता है। और, इस सेवा के बदले में कहा जाता है कि "आप फिर आइए, और हमारे योग्य जो सेवा हो, कहिए।" वहाँ पर 'स्टेट' नाम का एक पत्र है। उसने किसानों के लाभ के लिये एक "कृषि-प्रयोग-शाला" खोल रक्खी है। एक गोशाला भी खोली गई है। वहाँ विना कुछ लिए ही किसानों को कृषि-संबंधी अनुभव तथा दूध और मक्खन तैयार करने के तरीक़े मुफ़्त बताए और सिखाए जाते हैं। समाचार-पत्र के दफ़्तरों में हर बात के जानकार नौकर रहते हैं। उनके ग्राहक जो बात दरियाफ़्त करते हैं, उसी का उत्तर समाचार-पत्र के ऑफ़िस से दिया जाता है। हमारे यहाँ, भारत में, तो समाचार-पत्रों के संपादक पत्रों का उत्तर तक देना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं। अगर छपने के लिये कोई लेख भेजा जाय, तो पुरस्कार मिलना तो दूर रहा, लेख वापस करने के लिये डाक के टिकट माँगे जाते हैं। और, अगर भूल से किसी ने टिकट न भेजे, तो लेख भी ग़ायब! फिर चाहे आप दस पत्र लिखिए, जवाब भी नदारत!

लोगों को सलाह-मशविरे देने का काम भी वहाँ के समाचार-पत्र ख़ास तौर पर करते हैं। बहुधा नवयुवती



न्यूयार्क-टाइम्स का प्रेस आदि
(काग़ज़ के तीन रोल अनेक मशीनों में होकर, १ मिनट में १ टन से भी अधिक की गति से, छप और मुड़मुड़ाकर अपने आप तैयार हो रहे हैं)

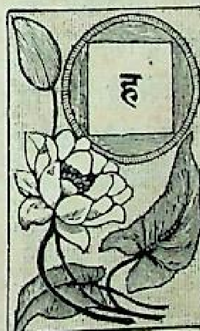
स्त्रियाँ और युवा पुरुष संसार-प्रवेश अथवा विवाह के संबंध में बहुत-सी बातें, समाचार-पत्रों द्वारा अपने विचारों और शंकाओं को प्रकट करके, जान लेते हैं। नौकरी, व्यापार, व्यवसाय, यात्रा या शिक्षा, कोई भी ऐसा काम नहीं है, जिसकी जानकारी वहाँ समाचार-पत्रों द्वारा न प्राप्त कर ली जाती हो।

वहाँ पर बहुत-से ऐसे पत्र हैं, जिनके दिन में दस-बारह संस्करण तक निकलते हैं; अर्थात् घंटे-घंटे-भर पर वहाँ समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं। इन पत्रों में व्यवसाय-संबंधी समाचार बहुतायत से छपते हैं। इस प्रकार के सर्व-व्यापी पत्रों को चलाने के लिये बीस-तीस लाख रुपयों की ज़रूरत पड़ती है। 'न्यूयार्क-टाइम्स'-पत्र का दैनिक ख़र्च ३० हज़ार रुपए से कम नहीं है। इस पत्र का कार्यालय आकाश से बातें करता है। बड़े-बड़े समाचार-पत्रों के दफ़्तरों में दो हज़ार मनुष्यों से कम काम नहीं करते। प्रत्येक विभाग के कार्यकर्ता विशेषज्ञ होते हैं। उच्च कोटि के एक पत्र (संपादकीय विभाग) में कम-से-कम चीफ़ एडीटर, मैनेजिंग एडीटर, न्यूज़-एडीटर, मेकअप-एडीटर, टेलीग्राफ़-एडीटर, स्पोर्टिंग-एडीटर, एक्सचेंज-एडीटर, ड्रामेटिक एडीटर, एडीटोरियल राइटर्स, सोसाइटी-एडीटर, रेल-रोड-एडीटर, संडे-एडीटर, सिटी-एडीटर, इतने आदमी काम करते हैं।

पचास वर्ष पहले अमेरिकन पत्रों के संचालक अपने ग्राहकों से पत्र के मूल्य के बदले में लकड़ियों के गट्ठे, अंडों की टोकरियाँ अथवा आलू आदि पदार्थ ले लिया करते थे। पर वह समय अब निकल गया। अब तो केवल विज्ञापनों से इतनी आमदनी हो जाती है कि एक पत्र उसी से मज़े में चलाया जा सकता है। जिस समाचार पत्र के जितने अधिक ग्राहक होते हैं, उसे उतने ही अधिक विज्ञापन छापने को मिलते हैं। इसी कारण समाचार-पत्र-संचालक, जहाँ तक हो सकता है, अपने पत्रों का मूल्य कम रखते हैं। कोई-कोई पत्र-संचालक तो लागत से भी कम मूल्य पर पत्र बेचते हैं, और इस कमी को विज्ञापनों की आमदनी से पूरा करके बहुत लाभ उठाते हैं।

ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा

श्रीपुरस्थ शिला-लेख
(२)



हमने अपने पूर्व लेख* में यह बतलाया है कि श्रीपुर में कई एक शिला-लेख मिले हैं। गंधेश्वर-मंदिर में जो शिला-लेख पाया गया है, उसमें महाशिवगुप्त के पाँच पूर्वजों के नाम आए हैं। हमारे वर्णित शिला-लेख में महाशिवगुप्त के वंश के विषय में और कोई नई बात नहीं मालूम होती; क्योंकि इसमें केवल उसके पितामह तक के ही समय का हाल दिया गया है। पर छठे श्लोक † से केवल इतना जाना जाता है कि

* देखो फाल्गुन संख्या, पृष्ठ २८६

† दुर्धर्षवैरिवरवारणदारणेषु
सीरायुधः स इव कंसनिषूदनस्य।
राजाधिकारधवलः सबलो बभूव
यस्याग्रजोऽप्यनुचरश्चरतो रणेषु ॥ ६ ॥

Even his elder brother shining with regal power became his follower in battles and (through him)

महाशिवगुप्त के पितामह चंद्रगुप्त का एक बड़ा भाई था। चंद्रगुप्त स्वयं अपने बड़े भाई का प्रधान सेनापति था। चंद्रगुप्त का यह अग्रज, राजिम तथा बलोदा के ताम्र-पत्रों में वर्णित, तिवरदेव के सिवा अन्य व्यक्ति नहीं है। तिवरदेव और चंद्रगुप्त के पिता का नाम नन्नदेव था। तिवरदेव के शिला-लेखों के प्रकट किए जाने का स्थान 'श्रीपुर' लिखा हुआ मिलता है, और उन लेखों में वह 'कोशलाधिपति' कहे गए हैं।

अनुमान से जाना जाता है कि तिवरदेव के कोई संतान न थी, और इसी से उसका छोटा भाई चंद्रगुप्त उसका उत्तराधिकारी हुआ।

दूसरी ऐतिहासिक नई बात जो इस लेख से जानी जाती है, वह मगध के वर्मा-वंश के एक नवीन व्यक्ति का नाम है। उस व्यक्ति का नाम सूर्यवर्मा था। वह संभवतः आठवीं शताब्दी में था। उसका जन्म पश्चिमीय मगध-राजवंश में हुआ था। वह छत्तीसगढ़ी चंद्रगुप्त (पांडु-वंशीय) का समकालीन राजा था, और उसने अपनी कन्या, 'वासटा', चंद्रगुप्त के पुत्र हर्षगुप्त को ब्याह दी थी।

शिला-लेख के १२वें * श्लोक का 'रणकेसरी' नाम ध्यान देने योग्य है। यह 'रणकेसरी', महाशिवगुप्त का छोटा भाई था। यह नाम यहाँ पर दो अर्थों का द्योतक है। डॉक्टर कीलहार्न का कहना है कि 'केसरी' नाम इस वंश के राजों के लिये नया नहीं है; क्योंकि महाकोशलस्थ श्रीपुर के सोम-वंशीय राजों तथा उड़ीसे के केसरी-वंश के राजों में एक प्रकार की विचित्र समता है।

डॉक्टर कीलहार्न कहते हैं कि नन्नदेव के एक भतीजे, भवदेव, का भी दूसरा नाम 'रणकेसरी' था। जेनरल कनिंघम साहब के विचार में छत्तीसगढ़ के श्रीपुरस्थ तथा उड़ीसा के केसरी-वंशीय राजों में घनिष्ठ संबंध था। बात यह है कि श्रीपुर के सोम-वंशीय राजों को, दैव-दुर्विपाक-वश राज्य त्यागकर, उड़ीसा की ओर किसी निरापद तथा सुदूर स्थान में, आत्मगोपन-पूर्वक, कुछ समय व्यतीत करने के लिये विवश होना पड़ा था। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ श्रीयुत रायबहादुर हीरालाल साहब के मत के अनुसार श्रीपुर के 'कोशलाधिपतियों' पर 'शरभपुर' के राजों ने चढ़ाई की, और उन्हें उड़ीसा के जंगलों की ओर खदेड़ दिया। 'शरभपुर' कहाँ पर था, इसका पता अब तक नहीं लगा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जेता ने श्रीपुर का नाम बदलकर 'शरभपुर' रख दिया, और इस नामकरण में केसरी-वंश के पराभव का प्रमाण भी दिखाया गया। कहते हैं, 'शरभ'-नामक एक दैवी शक्ति-संपन्न भीषण वन-जंतु है; जो सिंह (केसरी) का शत्रु है। सिंह को उसके भय के मारे गुफा-कंदराओं में छिपना पड़ता है। आरंग, रायपुर, खरियार और सारंगढ़ में शरभपुर के राजों के शिला-लेख और ताम्र-पत्र पाए गए हैं। ये स्थान उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम, चारों ओर से 'श्रीपुर' को घेरे हुए हैं। रायबहादुर हीरालालजी ने शरभपुरीय राजों के शिला-लेखों और दान-पत्रों में उल्लिखित अनेकों ग्रामों के स्थान का निरूपण किया है। उन स्थानों को नक़्शे में देखने पर जान पड़ता है, वर्तमान छत्तीसगढ़ का एक बड़ा भारी भाग उन लोगों के आधिपत्य में था। संभवतः वे लोग समस्त महाकोशल देश को जीत नहीं सके थे; क्योंकि उस समय (आठवीं-नवीं शताब्दी में) महाकोशल का विस्तार बरार की सीमा से लेकर कटक-ज़िले की सीमा तक था।

श्रीपुर से राजश्री-रहित होकर सोम-वंशीय नरेश पूर्व की ओर चल दिए, और वहाँ अपनी चिर-परिचिता महानदी के कूल-प्रदेश में 'विनीतपुर' नाम का नूतन नगर स्थापित कर, सुविस्तृत महाकोशल के नितांत पूर्वीय भाग के अधिपति के रूप में, उसका शासन करते रहे। यह विनीतपुर स्थान, श्रीपुर से कोई १२० मील पूर्व दिशा में, महानदी के तट पर है, और आज-

---

mighty, like him whose weapon is the plough (Balram), who likewise followed the killer of Kamsa (Krishna) in tearing up the mighty elephants of his unassailable enemy. (Epigraphia Indica.)

* तस्मादजायत महाशिवगुप्तराजो
धर्मावतार इति निर्वितथं प्रतीतः ।
भीमेन यः सुत इव प्रथमः पृथायाः
पृथ्वीं जिगाय रणकेसरिणानुजेन ॥ १२ ॥

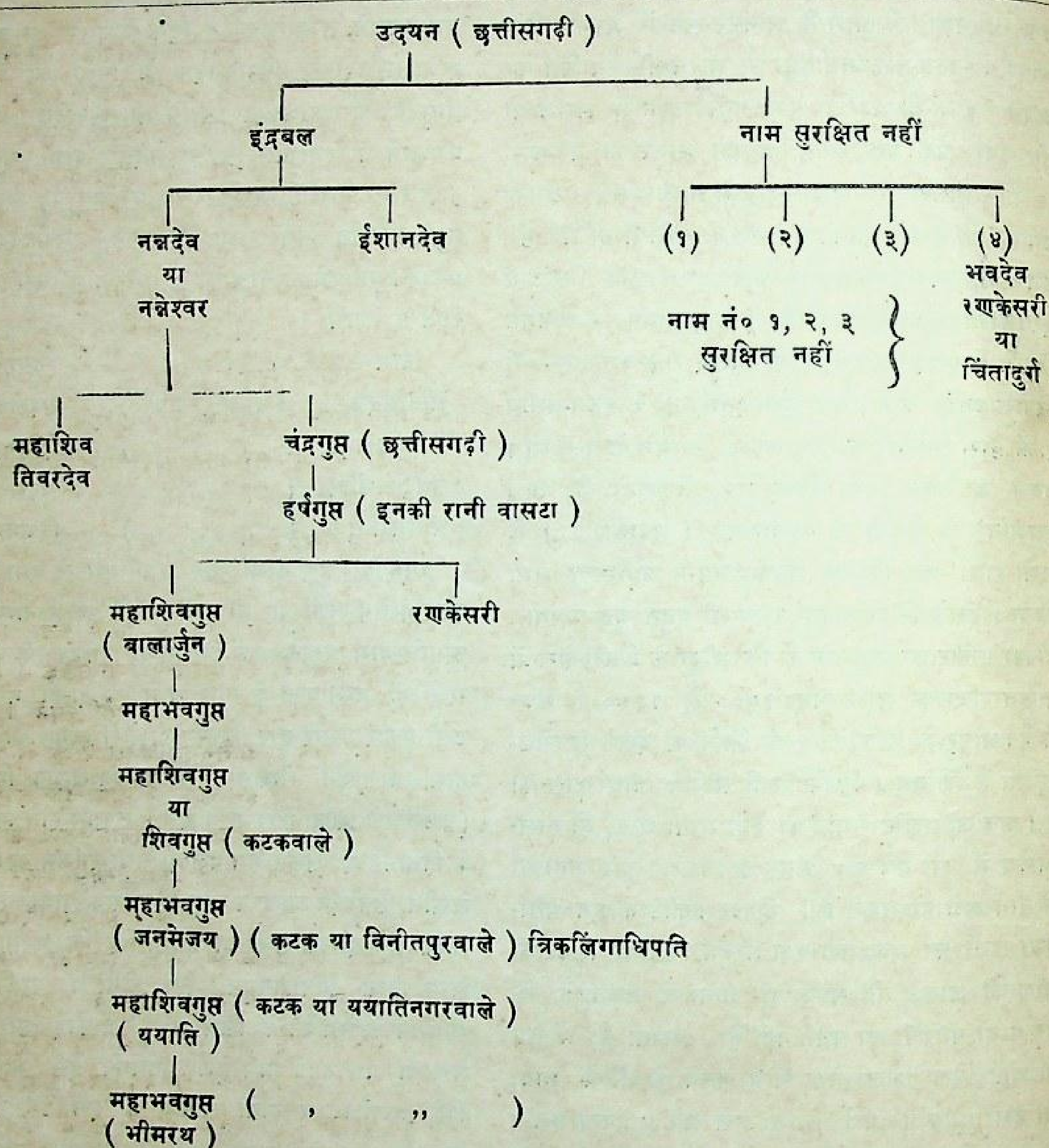
From him was born King Mahashiva Gupta truly renowned as an incarnation of Virtue (धर्म), who conquered the earth with his younger brother *Ranakesari*, as did Pritha's first son (युधिष्ठिर) with the aid of his younger brother Bhima who was like a lion in battle (Epi. Indica.)

कल "विनका" के नाम से सोनपुर-स्टेट में प्रख्यात है। श्रीपुर का राज-वंश विनीतपुर में राजधानी स्थापित कर अपने विगत वैभव को पुनः प्राप्त करने में समर्थ तो हो गया, पर वह अपने अपहृत राज्य का वह अंश —पश्चिमीय महाकोशल—शत्रु से न छीन सका। इसका प्रमाण यह है कि 'विनीतपुर' से जो वृत्तियाँ दी गई थीं, उनके वे सब ग्राम संबलपुर-ज़िला तथा उसके निकटस्थ देशी राज्य पाटना (बोलाँगीर) तथा सोनपुर के अंतर्गत मिलते हैं। इधर शरभपुर के नूतन राज-वंश पर भी विपत्ति आई, और उसके पुरुष 'तुम्मान' के हैहय-वंशीय राजों द्वारा पद-दलित किए जाकर, उत्थान के साथ-साथ पतन का भी दृश्य देखते हुए, तीन-तेरह हो गए। 'तुम्मान' के हैहयों ने छत्तीसगढ़ (महाकोशल) के सभी राजों को निष्प्रभ करके अपना आधिपत्य जमा लिया। इसके सिवा अपना राज्य भी बहुत कुछ बढ़ाया। डॉक्टर फ़्लीट का अनुमान है कि श्रीपुर के शिला-लेख में वर्णित राजों का समय सन् १००० से ११०० के मध्य में है। श्रीपुर के शिला-लेख की लिपि को देखने से सोम-लगता है कि वह (लिपि) ६वीं सदी के आस-पास की है। अब जो फ़्लीट साहब की बात मानी जाय, तो काल-निर्णय में सौ वर्ष का अंतर पड़ता है। इस शताब्दी में तीन राजे हो सकते हैं। डॉक्टर फ़्लीट ने इन पता-वंशी राजों का एक वंश-वृक्ष प्रस्तुत किया है। उसकी जाँच की जाय, तो सहज ही जाना जा सकता है कि उसमें दो पीढ़ियों का पता नहीं है। संभव है, भविष्य में कोई ऐसा शिला-लेख खोज करने से मिल जाय, जो इस विषय पर पूर्ण प्रकाश डाल सके। डॉक्टर फ़्लीट के वंश-वृक्ष में चार राजों का उल्लेख है; पर उनके नाम दिए गए हैं दो ही—शिवगुप्त और भवगुप्त। ये नाम संभवतः राजकीय उपाधि (official titles) रहे हों; जैसा कि उड़ीसे की ओर कई राजघरानों में अब भी उपाधि-नाम रखने की चाल देखी जाती है। उड़ीसे के सुप्रसिद्ध बामंडा-राज्य के वर्तमान राजा का प्रकृत नाम श्रीसच्चिदानंद है; पर उनकी राजकीय उपाधि त्रिभुवनदेव है। राजा सच्चिदानंद के पितामह की राजकीय उपाधि त्रिभुवनदेव ही थी, और यही उपाधि उनके पौत्र भी राजा होने पर ग्रहण करेंगे। युवराजावस्था में कोई भी युवराज राजकीय उपाधि धारण नहीं कर सकता। वह उपाधि राज्याभिषेक के दिन से धारण की जाती है। राजा सच्चिदानंद त्रिभुवनदेव के पिता का नाम था वासुदेव, और राजकीय उपाधि थी सुढ़लदेव। अतः वह कहलाते थे राजा वासुदेव सुढ़लदेव। राजा सच्चिदानंद के पुत्र का नाम दिव्यशंकर था; पर जब वह राजा हुए, तब कहलाने लगे राजा दिव्यशंकर सुढ़लदेव। इस प्रकार पिता-पुत्र के बीच दो उपाधि-नाम बराबर चलते रहते हैं। यथा—

नाम		उपाधि
श्रीवासुदेव *	(राजा होने पर)	सुढ़लदेव
श्रीसच्चिदानंद	(,, ,, ,,)	त्रिभुवनदेव
श्रीदिव्यशंकर	(,, ,, ,,	सुढ़लदेव
श्रीगंगभानु	(,, ,, ,,)	त्रिभुवनदेव

ऊपर दिए हुए नामों और उपाधियों से स्पष्ट है कि सोम-वंशीय राजों में भी इसी भाँति जन्म नाम और उपाधि-नाम रखने का नियम था। कटक के केसरी-राजों की नामावली में तीन राजों के दो-दो नाम हैं। उसी प्रकार हमारे इस शिला-लेख के शिवगुप्त का दूसरा नाम 'बालार्जुन' मिलता है। यह बालार्जुन शिवगुप्त (कटकवाले शिला-लेख में वर्णित) उपाधि-हीन शिवगुप्त के पितामह हो सकते हैं। बलोदा तथा राजिम के शिला-लेखों में तिवरदेव का अन्य नाम 'महाशिव' पाया जाता है। रायबहादुर हीरालालजी का अनुमान है कि 'हर्षगुप्त' का अन्य नाम 'महाभवगुप्त' रहा होगा। यद्यपि इस अनुमान के समर्थन के लिये अभी तक कोई प्रामाणिक लेख या पत्र नहीं प्राप्त हुआ, तथापि इसे मानने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए। इस ढंग से हमें तिवरदेव तक सोम-वंशीय राजों की राजकीय उपाधि का पता लग सकता है। यह तिवरदेव कटकवाले शिवगुप्त के वृद्ध प्रपितामह के भाई थे। नीचे के वंश-वृक्ष में श्रीपुर तथा कटक के सोम-वंशीय राजों की सम्मिलित नामावली दी गई है—

* राजा सर वासुदेव सुढ़लदेव के० सी० आई० ई० संस्कृत-भाषा के उच्च कोटि के विद्वान् और दार्शनिक थे। इनके पुत्र राजा सच्चिदानंद त्रिभुवनदेव कवि, चित्रकार और वैज्ञानिक थे। इनके राज्य का नाम "बामंडा" है। आगे ताम्र-पत्र के उद्धृतांश में "बामंडा-पाटी"-नामक स्थान का उल्लेख है; जो इन्हीं के राज्य में है।



हमारे इस श्रीपुर के शिला-लेख से स्पष्ट है कि बालार्जुन 'महाशिवगुप्त' यथेष्ट श्री-शक्ति-संपन्न रहा, और उसने सत्कीर्ति तथा सफलता के साथ 'श्रीपुर' में राज्य किया। संभवतः उसके पुत्र के राजत्व-काल में विजय-लक्ष्मी रूठ गई, और उसे पैतृक राजधानी श्रीपुर त्यागने की विपत्ति से ग्रस्त होना पड़ा। बालार्जुन महाशिवगुप्त के इस पुत्र का नाम कदाचित् महाभवगुप्त रहा होगा। इस महाभवगुप्त का कोई लेख या दान-पत्र अब तक नहीं मिला। जिसको पैतृक राजधानी त्यागनी पड़ी हो, जो वैरिवृंद-कृत दारुण पराभव के अपमानाग्नि से विदग्ध हो, जो विपत्ति की चरम सीमा में पहुँचकर भाग्य-परीक्षार्थ आत्मगोपन-पूर्वक बल-संचय करता हो, उसे शिला-लेख या दान-पत्र में अपनी 'करुण कहानी' अंकित करने-कराने का विचार ही असह्य बोध होता। अवश्य ही वह वैसा करता, यदि उसने अपनी उस विताड़ित अवस्था में भी छोटे-मोटे शत्रु पर जय-लाभ किया होता। परंतु उसके पुत्र शिवगुप्त ने अपने पिता के स्थापित नवीन दुर्ग में अपने को सबल और सुरक्षित पाकर स्वपूर्वजों के विगत वैभव को प्राप्त करने की चेष्टा आरंभ की। यद्यपि वह स्वयं

'त्रिकलिंगाधिपति' का गौरव-वर्द्धक पद धारण न कर सका, तथापि उसके पुत्र तथा पौत्र के उस आख्या से अलंकृत होने का मूल-कारण उसी की रण-कुशलता और नीति-निपुणता थी। राजा जनमेजय ने 'त्रिकलिंग' पर जय प्राप्त करके 'त्रिकलिंगाधिपति' कहलाने का गौरव प्राप्त किया, और अपने पूर्वजों के नाम को फिर से जगाया।

कलचुरी-वंशीय कर्णदेव (त्रिपुरीवाले) के सन् १०४२ ई० के दान-पत्र में, जो बनारस में मिला है, उसके दानकर्ता कर्णदेव के नाम के साथ 'त्रिकलिंगाधिपति' का विशेषण भी लिखित है। सन् १०४२ से सन् ११७४ ई० तक कर्णदेव के उत्तराधिकारी अपने नाम के साथ 'त्रिकलिंगाधिपति' जोड़ते रहे हैं। परंतु * पाटना (ज़िला संबलपुर) में पाए गए एक दान-पत्र में सोम-वंशीय राजा की चेदि-वंशीय राजों पर विजय-प्राप्ति की बात लिखी है। ज्ञात होता है, कर्णदेव की संतानों से जनमेजय के उत्तराधिकारियों का परस्पर युद्ध होता रहा है।

जनमेजय के वंशधर अपने पूर्वजों की प्रिय राजधानी 'श्रीपुर' को हैहयों या चेदियों से पुनः प्राप्त करने के उद्योग में अवश्य रहे होंगे।

इन सोम-वंशिय राजों के दान-पत्रों और लेखों से प्रकट होता है कि उनकी प्रधान और प्रथम राजधानी श्रीपुर में थी। पुनः जब वे उड़ीसा की ओर चले गए, तब ययातिनगर या विनीतपुर में राजधानी स्थापित की गई। कई दान-पत्रों में 'श्रीमतो विजयकटकात्' लिखा है। इसका अर्थ किया गया है—From the victorious Katak, the Capital इस अर्थ के अनुसार कई विद्वान् प्रसिद्ध नगर 'कटक' को सोम-वंशियों की राजधानी मानते हैं, और 'ययातिनगर' तथा 'विनीतपुर' को भी वे 'कटक' के ही अन्य नाम समझते हैं। रायबहादुर हीरालाल 'विजयकटकात्' का अर्थ From the victorious Camp लगाते हैं; क्योंकि जनमेजय के शासन के तीसरे वर्ष के दान-पत्र में 'कटकात्' नहीं, बल्कि उसके स्थान पर "स्कंधावारात्" लिखित है। उन्होंने अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि महानदी-तट का वर्तमान विनका (जो सोनपुर के राज्य में है) सोम-वंशियों का "विनीतपुर" और 'ययातिनगर' है। राजा ययाति ने अपने राजत्व के ८-९ वर्ष के पश्चात् 'विनीतपुर' का नूतन नामकरण करके, उसे अपने नाम के स्मारक में, 'ययातिनगर' की नवीन आख्या प्रदान की।

उड़ीसे के सोम-वंशीय राजों के कुल १३ दान-पत्र मिले हैं। उनमें—

५ राजधानी से दिए गए थे।
३ प्रमोदोद्यान (Pleasure garden) से,
३ मुरसिंगा-ग्राम से (बिनका से ११ मील पर यह स्थान है),
१ सोनपुर से, और
१ बामंडा-पाटी से।

१३

बामंडा-पाटी से जो दान-पत्र दिया गया था, उसे सोम-वंशीय राजा के अधीनस्थ एक मांडलिक (Feudatory) ने दिया था। पर उसने अपने राजा की राजधानी का नाम 'ययातिनगर' बतलाया है *।

एक बात जो और इस लेख में ध्यान देने योग्य है, वह है उन वृत्तिधारी ब्राह्मणों के निवास-स्थान की दूरी। वे ब्राह्मण मध्य-देश और श्रावस्ती-जैसे सुदूर प्रदेश से आए हुए थे। मध्य-देश, हिमालय तथा विंध्य, और विनशन तथा प्रयाग के मध्यवर्ती देश का नाम था। श्रावस्ती-मंडल अवध-प्रदेश के वर्तमान "सेहत-मेहत" के आस-पास का भूमि-खंड था। ये ब्राह्मण ख़ास सरवार से इस सुदूर उत्कल-प्रदेश में क्योंकर आए, यह एक प्रश्न हो सकता है। इसका उत्तर यह है कि श्रीजगदीशपुरी को जाने का प्रधान मार्ग रत्नपुर, बिनका तथा

---

*Journal Bengal Asiatic Society, 1905, Vol. I page6.

* ओं स्वस्ति। श्रीययातिनगरे परममाहेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरसोमकुलतिलकत्रिकलिंगाधिपतिश्रीमहाशिवगुप्तराजदेवपादानुध्यातपरममाहेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरसोमकुलतिलकत्रिकलिंगाधिपतिश्रीमहाभवगुप्तराजदेवमहीप्रवर्द्धमानकल्याणविजयराज्ये त्रयोदशसंवत्सरे अत्रांके १३ वामांडापाट्टीसमावासकात्परममाहेश्वरमठरवंशोद्भवकुलतिलककालेश्वरीवरलब्धप्रसादपंचदशपल्लिकाधिपति समधिगतपंचमहाशब्दमांडलिकराणकश्रीपुंजवोड़सुतः कुशली इत्यादि इत्यादि।

सोनपुर और संबलपुर होकर था । और, इसी कारण सुवंश-जात तथा साक्षर द्विज पंडित इन-इन स्थानों के राजों के अतिथि रहा करते थे। वे समय और सुयोग पाकर, मार्ग की दूरी तथा चोर, डाकू, बदमाशों के भय से, जन्म-भूमि की माया-ममता को शिथिल कर यहीं 'उपनिवेश' स्थापित कर लेते थे । अब भी इन स्थानों में उन ब्राह्मणों के वंशज यत्र-तत्र पाए जाते हैं ।

लोचनप्रसाद पांडेय

बलिदान

(१)

लोक-परलोक को न सोक उर-ओक बीच,
काढ़ि मन-मंदिर ते मोह-मद-द्वेस-लेस ;
संपति सुरेस की असेस सुख-साज वारि
कीजै पुनि प्रेम-कुंज मंजु मधि त्यों प्रवेस ।
गेह तजि ताकी देहरी पै देह दीजै डारि,
एते बलिदान सों करौ जो बलिदान देस ;
तो पै सुर-धाम छाँड़ि धावै रस-धाम आपु
बैठे बनि द्वारपाल तेरे द्वार द्वारिकेस ।

(२)

नेह निज देह को विदेह बनि दीजै तजि,
अंग त्याग तीरथ की भसम रमाओ जू ;
सेवा के सितार पै अपार अनुराग-राग
अंतर कुटीर पै निरंतर बजाओ जू ।
देस-हित लीजै पुनि पावन बिराग बेस,
त्यों ही हृदयेस द्वेष दूषन दुराओ जू ;
जीवन अनित्य जानि, मृत्यु-पद भृत्य मानि,
नित्य सत्य सुंदर समाधि में समाओ जू ।

(३)

एक ओर पुन्य की अनी पै जननी है, पुनि
एक ओर ठाढ़्यो पाप प्रेत निज सेन साज ;
त्यों ही बल बाँकुरे अखंड मही-मंडल के,
जूझिहैं, प्रचंड रन-दुंदुभी रही है बाज ।
बेर की न बेर, बढ़ि बेगि चलि दीजै तहाँ,
बंधन बिछोरि छोरि लोक के अनेक काज ;
भीति तजि मीच की सनेह कुरु-खेत बीच
देस-हित कीजै बंधु प्रान-बलिदान आज ।

(४)

मोह, मद, मार मारि, जारि मन-मंदिर ते
तामें नित नेह-नेम पावन बढ़ाए ते ;
आस अभिलाष के न हास पै हिरावै हिय,
त्यों ही पुनि पूरन प्रतीति के दिढ़ाए ते ।
पाप की पराजय को प्रकट्यो परोपकार,
सोई हृदयेश पुन्य पाठ के पढ़ाए ते ;
बीसौ बिसे बंधु बिसवास करि लीजै आपु,
होत जगदीस बस सीस के चढ़ाए ते ।

(५)

आसन न चाहौं पाकसासन को मेरी अंब,
संपति कुबेर की न नेकु ललचाऊँ मैं ;
त्यों ही ऋद्धि-सिद्धि के विलास-परिहासन में
भूलिकै न वैसो हिय आपनो हिराऊँ मैं ।
भागि जग चंचल ते अंचल तिहारे बैठि
एती अभिलाष आस पूरी करि पाऊँ मैं ;
प्रानन की मूरि पद-पंकज की तेरे धूरि
भूरि-भूरि आँखिन में पूरि-पूरि लाऊँ मैं ।

श्रीचंडीप्रसाद (हृदयेश)

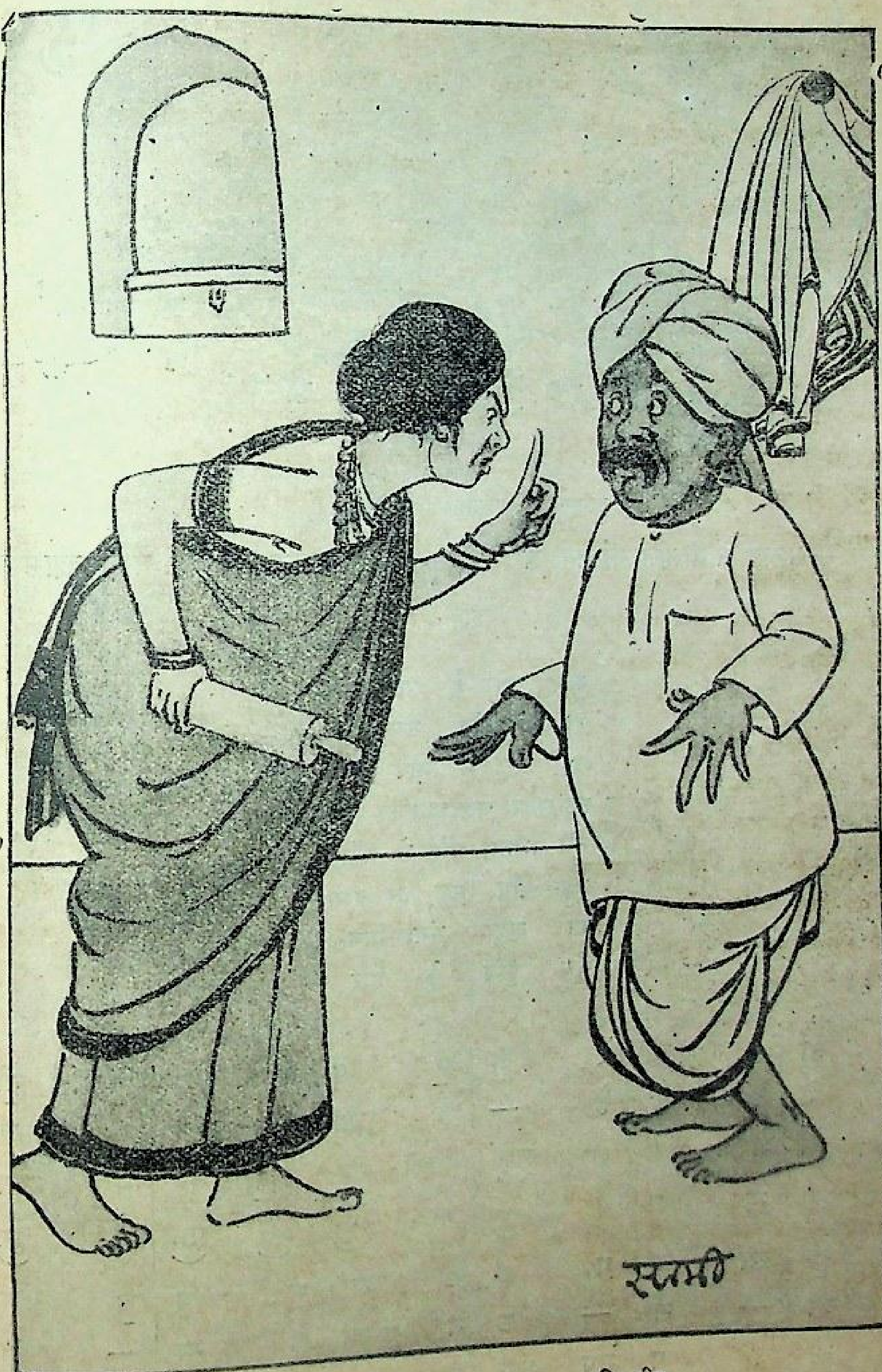
विलंब-भय

बैठ अकेली शांत कुंज में करने दो मुझको शृंगार ;
नलिनी नाथ, कृपा कर मेरे ऊपर करो न अत्याचार ।
घबराहट में मुझे न डालो जल्दी-जल्दी होकर अस्त ;
बिगड़ेगा शृंगार कहीं, तो विपद्-ग्रस्त होऊँगी व्यस्त ।
सोचूँगी, विलंब कर डालो, बीत रहा है सारा काल ;
तो जल्दी की तैयारी में हो न सकेगी छटा रसाल ।
लौट जायगा नायक मेरा देख नितांत मुझे छवि-हीन ;
रह जाऊँगी मैं अबला फिर, अस्वीकृता कुमारी दीन ।
भ्रमण किया है गगन-प्रांत में होगे अब नितांत ही श्रांत ;
कहीं गमन का नाम न लो फिर, अपने को यों करो न क्लांत ।
हो जिस जगह, वहीं पर ठहरो अब तो करो तनिक विश्राम;
मेरी भी घबराहट हर लो एक संग कर दो-दो काम ।
फिर ऐसा शृंगार करूँ मैं, मम यौवन-वसंत-रस-स्वाद—
चखकर वरण करें व्रज-वल्लभ निज श्रीचरणों में साह्लाद ।

गिरीश

विकटा

[चित्रकार—श्रीयुत गुरु स्वामी]



तमकि तर्जनी तानिकै, डारि डरावनि डीठ,
विकटा बेलन लै चली पूजन को पिय-पीठ !

अजमेरी



[आसावरी—एकताल (विलंबित)]

स्वरकार—मास्टर भोगीलाल नरोत्तमदास शब्दकार—पं० गोविंदवल्लभ पंत

गीत

आने को है प्राणाधार,
वह सुन वंशी उस पार।
कहीं लौट न जावे नाथ,
उठ सखि, चल, द्रुत कर सोलह शृंगार।
तज चिंता, पोंछ ले आँसू,
जूड़ा बाँध, मुक्त कर द्वार।
गा मृदु मंगल-गान,
गूँथ पुष्प के हार।

४		×		०		२		०		३	
म	सां	—	सां	रें	नी	ध	प	म	प	ध	नी
आ	ने	—	को	है	—	प्रा	णा	—	धा	—	र
ध	प	म	प	सांनी	सांरें	सांनी	धप	सांनी	धप	मग	रेसा
व	ह	सु	न	वं·	--	शी·	--	उस	पा·	--	·र
रे	नी	सा	म	प	ग	रे	सा	म	प	ध	म
क	हीं	—	लौ	—	ट	न	जा	वे	ना	—	थ
प	नी	ध	प	मप	धप	मप	धप	नीध	पम	गरे	-सा
उ	ठ	स	खि	चल	द्रुत	कर	सो·	लह	शृं·	गा-	-र

अंतरा

४		×		०		२		०		३	
प	प	ग	म	प	नी	ध	प	सां	—	सां	—
त	ज	चिं	ता	पौं	—	छ	ले	आँ	—	सू	—
रें	नी	ध	प	सांरें	गंरें	सांनी	धप	धप	मप	मग	रेसा
जू	—	ड़ा	—	बाँ-	-ध	मु-	-क्त	कर	द्वा-	--	-र
गं	गं	गंरेंसांनी	ध	रें	रें	रेंसांनीध	प	सां	मं	गं	रें
गा	—	मृ...	दु	मं	—	ग...	ल	गा	—	—	न
सां	नी	ध	प	धम	पनी	धप	मप	धसां	-सां	सांनी	धप
गूँ	—	—	थ	पु-	-ष्प	के-	--	हा-	--	--	-र

———



१. शिव-महिम्नःस्तोत्र का रचना-काल



र्शनिक भावों की दृष्टि से, अथवा भाषा के लालित्य के अभिप्राय से, शिव-महिम्नःस्तोत्र समग्र शिव-स्तोत्रों की अपेक्षा अधिक लोक-प्रिय है । वास्तव में, इस स्तोत्र में ईश्वर की सत्ता आदि अनेक विषयों पर दार्शनिक विचार प्रकट किए गए हैं, तथा उनकी सिद्धि के प्रकार का भी उपपादन किया है । छंद 'शिखरिणी' होने से इस स्तोत्र में अद्भुत मनोहरता तथा सुंदरता का समावेश पाया जाता है । इन्हीं कारणों से स्तोत्र के अंत में भक्तों का यह उद्गार * कि शिव से बढ़कर कोई देवता नहीं, और न महिम्नःस्तोत्र से बढ़कर कोई स्तुति है, इस स्तोत्र के विषय में साधारण जनता के अंतस्तल के भावों को प्रदर्शित करने में पर्याप्त है। इसी स्तोत्र के रचना-काल का निर्णय नीचे किया जाता है ।

इस स्तोत्र में आजकल ४० श्लोक मिलते हैं । परंतु मधुसूदन सरस्वती ने केवल ३२ पद्यों पर ही टीका लिखी† है ; जिससे जान पड़ता है कि उस समय इस स्तुति के इतने ही पद्य बनाए गए थे। उससे भी प्राचीन शिला-लेख के आधार पर शुरू के केवल ३१ ही पद्य प्राचीन ठहरते हैं । इंदौर-राज्य के अंतर्गत मालवा-देश में, श्रीनर्मदा के तट पर, श्रीअमरेश्वरनाथ महादेव का मंदिर है । उसी मंदिर की दीवार पर महिम्नःस्तोत्र के ३१ पद्य खुदे मिले हैं । यह लेख विक्रम-संवत् ११२० का है । इससे जान पड़ता है कि आज से आठ सौ वर्ष पहले महिम्नः-स्तोत्र के केवल ३१ ही पद्य मूल-भूत थे ; शेष पद्य पाठकों ने अपनी इच्छानुसार बढ़ा दिए हैं। अंतिम ६ श्लोकों में तो केवल ग्रंथ-कर्ता का नाम तथा स्तोत्र-पाठ के फल का उल्लेख है । निश्चय ही यह अंश मूल स्तोत्र की रचना के अनंतर जोड़ दिया गया होगा ।

महिम्नःस्तोत्र के टीकाकारों ने 'पुष्पदंत'-नामक किसी गंधर्व को इसका रचयिता बतलाया है। परंतु मदरास की कितनी ही हस्त-लिखित प्रतियों में कुमारिल भट्टाचार्य ही इसके कर्ता लिखे गए हैं * । एक टीकाकार ने कुमारिल को शिव के पुत्र सुब्रह्मण्य का अवतार मानकर इस स्तोत्र का लेखक माना है । ये बातें इस स्तोत्र की प्राचीनता तथा अतिशय आदर को सूचित करती हैं। डी० सी० भट्टाचार्य ने प्रबंधचिंतामणि के आधार पर 'ग्रहिल' को इसका रचयिता माना † है । परंतु अन्य किसी ग्रंथ से इसकी पुष्टि न किए जाने के कारण यह मत भी उतना उपयुक्त नहीं जान पड़ता ।

प्रबंधचिंतामणि में इस स्तोत्र का एक पद्य मिलता है । इससे इसका समय १२वीं शताब्दी के इधर

* महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः । (श्लो० ३७)
† निर्णयसागर-प्रेस का संस्करण ।

* कैटेलाग ऑफ़ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स (मदरास), जि० १९ ; नं० ११९०३ । † इंडियन एंटिक्वेरी (वर्ष १९१७)

कभी नहीं हो सकता। परंतु एक और प्रमाण की उपलब्धि से इसकी प्राचीनता स्थिर की जा सकती है। राजशेखर (दशम शताब्दी के आरंभ में) ने अपनी काव्य-मीमांसा * के आठवें अध्याय में 'काव्यार्थयोनि' का विचार किया है। इसमें उसने 'न्याय-वैशेषिक' के सिद्धांत को दिखलानेवाले महिम्नःस्तोत्र के निम्न-लिखित पद्य को, उदाहरण के रूप में, उद्धृत किया है †।

"न्यायवैशेषिकीयः—स किं सामग्रीक ईश्वरः कर्ता इति पूर्वपक्षः। निरतिशयैश्वर्यस्य तस्य कर्तृत्वमिति सिद्धांतः। अत्र—

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः।"

यह श्लोक आजकल के पाठ के अनुसार पाँचवाँ है। इसके मूल-स्तोत्र का सत्य अंश होने में किसी प्रकार का संदेह उपस्थित नहीं किया जा सकता। दसवीं शताब्दी के आरंभ में यह स्तोत्र इतना प्रसिद्ध था कि राजशेखर ने पूर्वोक्त पद्य उद्धृत करते समय इसका नाम लेने की आवश्यकता नहीं समझी। अतएव यह स्तोत्र दसवीं शताब्दी से भी अधिक प्राचीन है।

स्तोत्र का एक पद्य सुबंधु (छठी शताब्दी में) की वासवदत्ता के गद्य के सर्वथा अनुकूल है। मुद्रित पुस्तकों का ३२वाँ श्लोक ‡ सर्व साधारण में अत्यंत प्रसिद्ध है। श्लोक का भाव यथार्थ में रमणीय है। वासवदत्ता में भी ठीक ऐसे ही भाव की अवतारणा पाई जाती है ×। अतएव यदि स्तोत्र के उस पद्य को वासवदत्ता के गद्य की छाया पर रचा गया मानें, तो स्तोत्र छठी शताब्दी के पहले का कभी सिद्ध नहीं हो सकता। वासवदत्ता महाकवि सुबंधु की मौलिक कल्पना का भांडार है। स्तोत्र में प्रायः अन्य अच्छे भावों को अपनाना कोई असंभव नहीं जान पड़ता। तथापि इससे स्तोत्र के समय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। ऊपर कहा गया है कि ११वीं शताब्दी में केवल प्रारंभ के ३१ ही पद्य थे; अतएव ३२वाँ श्लोक—वासवदत्ता की छाया मानते हुए भी—पीछे का ही सिद्ध होता है। अतएव इस भाव-साम्य से रचना के प्रश्न को कुछ भी सहायता नहीं मिलती। केवल इतना ही ज्ञात होता है कि स्तोत्र आठवीं या नवीं शताब्दी में बना होगा—दसवीं के अनंतर का कभी नहीं हो सकता।

बलदेव उपाध्याय

× × ×

२. कृषि-उद्धार

(१)

सधन, विज्ञ, भारत के वासी,
भारत-कृषि-उद्धार करो;
वही हमारी सुखदात्री है,
इसमें कुछ संदेह नहीं।

(२)

अन्न, वस्त्र, सुख की सामग्री,
जो कुछ जग में मिलती है;
धरती है उन सब का दात्री,
खेती उसका साधन है।

(३)

हैं किसान भारत-सुखदाता,
उनका कृषि-अज्ञान हरो;
हो यथेष्ट उत्पन्न अन्न, बस,
सुंदर यत्न करो ऐसा।

(४)

कृषि-विज्ञान-ज्ञान फैलाओ,
उसका पूर्ण प्रचार करो;

---

* काव्य-मीमांसा—गायकवाड़-ओरियंटल-सीरीज़ के प्रथम ग्रंथ—की भूमिका, पृष्ठ १५।

† काव्य-मीमांसा, पृ० ३७।

‡ असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिंधुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी;
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।

× वासवदत्ता (वाणी-विलास का संस्करण), पृ० ३०८। आवश्यक गद्यांश यह है—त्वत्कृते याऽनया यातनानुभूता, सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानंदायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजगपतिर्वा कथकायते, तदा कथमप्यनेकैर्युगसहस्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा। (मेलानंद=दावात)।

अर्थ—तुम्हारे लिये इस बालिका ने जितनी यातना भोगी, वह यदि आकाश काग़ज़ हो जाय, सागर दावात बने, तथा ब्रह्मा लिखनेवाला या शेष-नाग कहनेवाला हो, तो किसी तरह अनेक युग-सहस्र में उसका वर्णन हो सकता है।

कृषि-विज्ञान भूमि को करता
　　कामधेनु, यह निश्चित है।
(५)
शस्य-युक्त धरती कृत-युग में
　　हरी-भरी ही रहती थी ;
तब के ऋषि-मुनि सेवा उसकी
　　करते थे निज हाथों से।
(६)
वर्तमान में भी वह वैसी
　　कामधेनु बन सकती है ;
यदि वैसी सेवा हम उसकी
　　करें ; यही आवश्यक है।
(७)
धनी लोग धन-दान करें, तो
　　ज्ञानी, ज्ञान-प्रदान करें ;
कामधेनु हो भारत की भू,
　　भारतवासी सुख पावें।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

× × ×

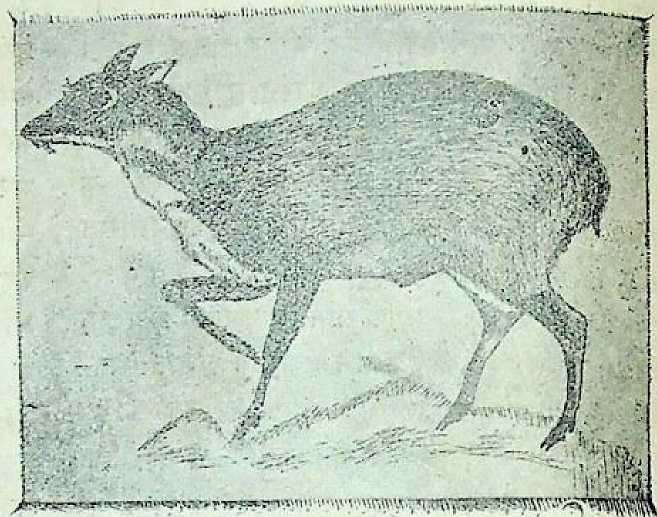
३. कस्तूरा

जितनी भी प्रकृति-निर्मित सुंदर और अद्भुत वस्तुएँ हैं, चाहे वे सजीव हों या निर्जीव, उनका ज्ञान हम स्वयं देखकर बृहत् रूप में प्राप्त कर सकते हैं। परंतु संसार में बहुत-सी वस्तुएँ ऐसी भी हैं, जिनका देखना सभी को अति दुर्लभ भी है। जैसे रूस के उत्तरी भाग में जो बर्फ़ के जानवर निवास करते हैं, उनको सभी देशों के लोग नहीं देख सकते। तथापि मनुष्य ने उनके ज्ञान के लिये लेखन-पठन-कला का बहुत ही अच्छा तरीक़ा निकाला है।

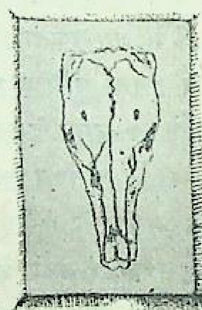
आज हम भी अपने पाठकों को इसी कला द्वारा एक ऐसे ही पशु का हाल सुनाते हैं, जो रूस के रेनडियरों की भाँति ख़ास-ख़ास शीत-प्रदेशों में ही पाया जाता है। इस पशु का नाम है कस्तूरा।

कस्तूरी तो बहुत-से लोगों ने देखी और चखी होगी, पर इसके जन्म-दाता — कस्तूरे — के विषय में कम ही जानते होंगे।

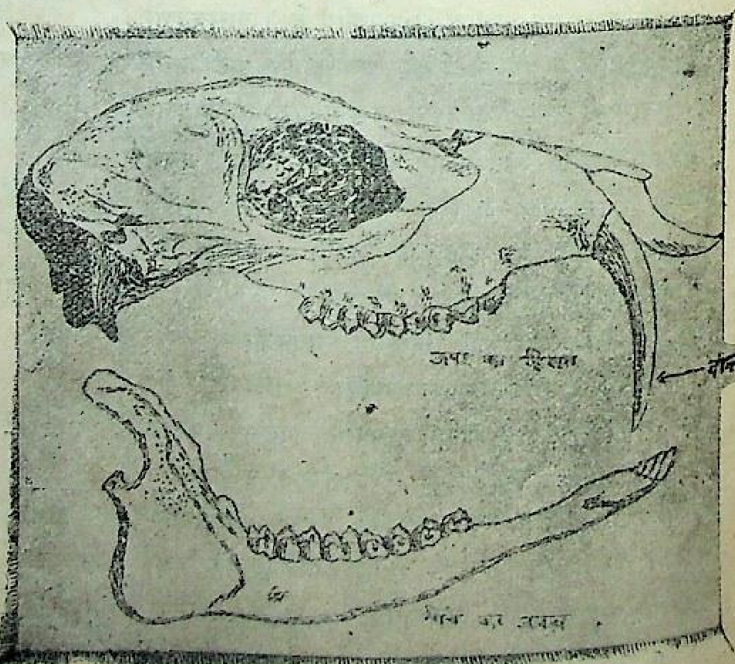
चित्र देखने से पाठकों को ज्ञात होगा कि कस्तूरा एक प्रकार का हिरन है ; जिसकी



कस्तूरा
(पहाड़ी क़िस्म)



सिर के सम्मुख की हड्डियों का पंजर



सिर की हड्डियाँ

ऊँचाई २० इंच के लगभग होती है, और लंबाई नाक से पूँछ तक लगभग ४० इंच। इसकी पूँछ उल्लेखनीय है। उसका आकार एक लंबे अंडे की तरह होता है। सिरे पर भूरे बालों का एक गुच्छा-सा लगा रहता है। कान बहुत लंबे होते हैं; जिनका आकार भेड़ के कानों का-सा होता है। इसके बदन की बनावट ऐसी सुंदर होती है कि देखते ही बनती है। बदन काले-भूरे रंग का होता है; जिस पर पीले रजत के-से धब्बे लगे रहते हैं। सफ़ेद बर्फ़ में जब कस्तूरा दिन के समय खड़ा रहता है, तो उसका यह कबरैला शरीर ऐसा चमकीला दिखलाई देता है, मानों अग्नि की लपट निकल रही हो। बाल इसके एक प्रकार के गूदे के-से बने होते हैं; जिसके कारण उनमें चिकनाई और एक प्रकार की उलझाहट-सी बनी रहती है।

काश्मीर में कस्तूरे का रंग बहुधा पीला-सा होता है; जिसके ऊपर सफ़ेद-भूरे रंग के ठप्पे-से होते हैं।

यह तो हम पहले ही कह आए हैं कि कस्तूरा अधिक-से-अधिक शीत-प्रदेशों में निवास करता है। यह बर्फ़ से पूर्ण आच्छादित हिमालय में अधिकतर पाया जाता है। वहाँ यह अपने रहने के लिये कंदराओं को ऐसी ढालू और भयानक हिमाच्छादित चट्टानों पर ढूँढ़ता है, जहाँ कदाचित् पक्षियों के सिवा और कोई जानवर तक नहीं जा सकता। यह अपनी खोह के आस-पास एक छोटा-सा स्थान भी खोदकर बना लेता है, जहाँ दिन में पड़ा रह सके।

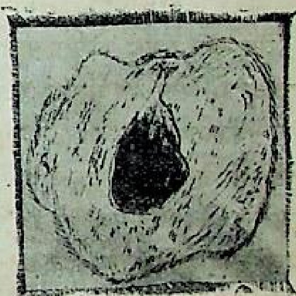
इन शीत-प्रदेशों में जब, सरदी के दिनों में, बहुत बर्फ़ गिरने लगती है, तो यह ऊपर चट्टानों से, चारे के लिये, निचले भागों में उतर आता है। परंतु तो भी समुद्र की सतह से लगभग ८००० फ़ीट की ऊँचाई से कभी नीचे नहीं उतरता। गरमी के दिनों में तो १२००० फ़ीट ऊँचे पर्वतों में ही निवास करता है।

कस्तूरे के दाँत और खुर अद्भुत और पैने होते हैं। उन्हीं से यह बर्फ़ को खोद-खोदकर नीचे दबी हुई घास को निकाल लेता है। इसका चारा यही हिम से ढकी कोमल घास या दूसरे कोमल फूल हैं। यह दिन-भर में केवल दो बार, प्रातःकाल और सूर्यास्त के समय, अपने चारे की खोज में बाहर निकलता है। इसके अगले पैर छोटे, परंतु इस प्रकार की बनावट के होते हैं कि जहाँ चाहे, वहीं छलाँग मारकर अटक जाता है। इसीलिये इसको अँगरेज़ी में श्योर-फुटेड (Sure-footed) कहते हैं।

कस्तूरा तपस्वी प्रकृति का पशु है। यह पशु कभी रेनडियरों की भाँति दल-बद्ध नहीं दिखाई देता। सदा अकेला ही रहता है। केवल वर्ष में मार्च और एप्रिल के महीनों में कभी-कभी इसका जोड़ा एकसाथ दिखलाई देता है। बच्चे एक वर्ष के पश्चात् अपनी मा से अलग हो जाते हैं।

कस्तूरे का शिकार करना कोई दिल्लगी की बात नहीं है। शिकारी बहुधा मार्च-एप्रिल में ही, चरने के समय, इसको मार सकते हैं। नैपाल के कुछ पहाड़ी लोग इसको पकड़कर पालते भी हैं; परंतु बहुत कम। हौगसन साहब ने एक ऐसे ही पालतू जोड़े का बयान, बहुत ही सुंदर शब्दों में, लिखा है।

कस्तूरी की थैली कस्तूरे के पेट के निचले भाग में होती है। यह थैली प्रायः प्रत्येक चतुष्पद पशु के पाई जाती है। इसको तीती भी कहते हैं। परंतु हमने आज तक केवल दो ही पशुओं की तीती को मनुष्य के लिये लाभ-दायक सुना है— (१) रीछ की और (२) इसी कस्तूरे की। भालू की तीती उतनी मूल्यवान् नहीं होती; परंतु कस्तूरे के विषय में हमें कुछ नहीं कहना है।


कस्तूरी की थैली

कस्तूरे के मारने के पश्चात् यदि बहुत देर तक यह तीती न निकाल ली जाय, तो कस्तूरी उसके समस्त शरीर में फैल जाती है; जिससे न तो कस्तूरी ही हाथ आती है, और न मांस ही खाने के योग्य रह जाता है।

कस्तूरी का व्यापार बहुत ही मूल्यवान् है। पर कुछ लोग अब छल-कपट भी करने लगे हैं। वे कस्तूरे के रक्त को कुछ कस्तूरी मिलाकर सुखा देते हैं। वह सूखने के बाद कस्तूरी-सा जान पड़ता है। यह नक़ली कस्तूरी बहुत ही हानिकारक वस्तु है।

मकरंद डौंड्याल

× × ×

४. व्याधा-शब्द

हमने एक लेख में इस शब्द के प्रयोग के विषय में कुछ लिखा है। उस दिन संध्या के समय लड़के 'कादंबरी' का हिंदी-अनुवाद पढ़ रहे थे। उसमें एक स्थल पर 'व्याधा'-शब्द के प्रयोग पर हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ। लड़कों से लेकर हम स्वयं पुस्तक को देखने लगे। इसके अनुवादक हैं बाबू गदाधरसिंहजी, सरिश्तेदार कलेक्टरी, मिर्ज़ापुर; जो 'हिंदी-कोविद-रत्नमाला' के एक प्रधान रत्न हैं। पुस्तक का प्रकाशन इंडियन-प्रेस, प्रयाग ने किया है। उस ग्रंथ के ६वें पृष्ठ में 'व्याधा'-शब्द का प्रयोग दो बार किया गया है। यथा—

"मैं उस कोलाहल को सुनकर बहुत डरा, और काँपने लगा, और अपने पिता के डैने के नीचे जा छिपा और वहीं से व्याधा लोगों की बातें सुन रहा था।

* * *

जब मृगया का कोलाहल बंद हुआ और जंगल में सन्नाटा हो गया तब मैं धीरे-धीरे पिता के डैने के नीचे से निकलकर खोते के बाहर सिर निकालकर, जिधर शब्द होता था उसी ओर देखने लगा, तो क्या देखता हूँ कि यमराज के भाई-ऐसे, पाप के सारथी-ऐसे, नरक के द्वारपाल-ऐसे विकट रूप, एक सेनापति के संग, यमदूत की तरह, बहुत-से व्याधा चले आते हैं।"

उसी पुस्तक के पृष्ठ १३२ में देखिए—

"जब नींद उचटी तो देखा कि सामने एक व्याधा खड़ा है।

* * *

व्याधा ने उत्तर दिया कि मैं चांडाल हूँ।'

युक्तप्रांत-निवासी एक प्रसिद्ध हिंदी-लेखक की रचना में 'व्याधा'-शब्द का प्रयोग कई स्थलों में किया गया है, यह स्पष्ट है। 'कादंबरी' का यह अनुवाद एफ़० ए० में पाठ्य-पुस्तक है।

मध्य-प्रदेशीय हिंदी की पुरानी तीसरी पुस्तक में भी 'व्याधा'-शब्द व्यवहृत है—

"इसके उपरांत उस व्याधा ने चावल के कणों को छीटकर जाल फैलाया।" (पृष्ठ १५३)

"इसको सोच-विचारकर सब पक्षी जाल को लेकर उड़े। इसके बाद वह व्याधा बहुत दूर से उन जाल के अपहारकों को देखकर यह मन में सोचता था कि ये पक्षी जब गिरेंगे, तब मेरे वश में पड़ेंगे। कबूतरों ने जब देखा कि व्याधा लौट गया, तो कहा कि महाराज, अब क्या करना चाहिए।" (पृष्ठ १५६)

व्याधा-शब्द का प्रयोग मुरादाबाद-निवासी श्रीयुत पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र 'विद्या-वारिधि'-कृत रामायण की टीका में भी किया गया है। यथा—

इक दिन एक बधिक चलि आवा;
अद्भुत पक्षी नृपहिं दिखावा।

एक दिन एक व्याधा आया और एक अद्भुत पक्षी राजा को दिखाया।

(तुलसीकृत सटीक रामायणम् (तृतीयावृत्ति), पृष्ठ १७२, २३८ नंबर के दोहे की छठी चौपाई। वेंकटेश्वर-प्रेस, बंबई की छपी प्रति)

उसी टीका के "रामायण-कोष", पृष्ठ २० में लिखा है—

बधिक—व्याधा

इससे अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

लोचनप्रसाद पांडेय

× × ×

५. महाकवि ग़ालिब

"पूछते हैं वो कि ग़ालिब कौन है ?
कोई बतलाओ कि हम बतलाएँ क्या ?"

संस्कृत के विद्वान् जिस आदर से कालिदास और भवभूति के काव्यों और नाटकों को पढ़ते हैं, अँगरेज़ी-भाषा-भाषी जिस उत्साह से शेक्सपियर और मिल्टन के नाम लेते हैं, हिंदी में सूर तथा तुलसी के ग्रंथ जिस आनंद से देखे जाते हैं, उसी आदर, उसी उत्साह, उसी आनंद से उर्दू के ज्ञाता लोग ग़ालिब और आतिश की कविता पढ़ते हैं। चाहे देहलवी हों चाहे लखनवी, ग़ालिब की शायरी को सभी उच्च कोटि की मानते हैं। यद्यपि आज़ाद, हाली, हसरत मोहानी और इल्यासबरनी के लेखों के बाद मेरा कुछ लिखना धृष्टता है, तथापि नसीम के इस शेर को याद कर माधुरी के पाठकों के विनोदार्थ कुछ निवेदन करता हूँ—

"पर बहरे-सख़ुन सदा है बाक़ी;
दरया नहीं कारबंद साक़ी।"

कविता अगाध है, कहनेवाले अनेक हैं। फिर भी विषय का अंत नहीं।

उर्दू में कवि अपने तख़ल्लुस से ही प्रसिद्ध हैं। अनेकों को ज्ञात है कि आतिश का नाम ख़्वाजा हैदरअली था। आज़ाद का नाम सय्यद मुहम्मदहुसैन और अनीस का मीर बबरअली था। दाग़ मिरज़ाख़ाँ थे, और ज़ौक़ शेख़ मुहम्मद इब्राहीम। मीर का नाम मीर तक़ी था। इसी तरह ग़ालिब का असल नाम असदुल्लाख़ाँ था। उनके दादा समरक़ंद से हिंदुस्तान आए थे। उनके पिता मिर्ज़ा अबदुल्लाबेग का आगरे के रईस ख़्वाजा गुलामहुसेनख़ाँ की लड़की से ब्याह हुआ। ग़ालिब का जन्म १२१२ हि० (सन् १७९६ ई०) में हुआ। बचपन में वह आगरे ही में रहे। अभी वह बच्चे ही थे कि उनके पिता मर गए, और जब वह नौ बरस के हुए, तब उनके चाचा भी क़ज़ा कर गए। ग़ालिब की आरंभिक शिक्षा का भार शेख़ मोअज़्ज़म के ऊपर था। फिर अब्दुस्समद नाम के एक पराशिया-निवासी विद्वान् से उन्होंने फ़ारसी सीखी, और उन्हीं से कविता-प्रेम पाया। ग़ालिब फ़ारसी के आजन्म प्रेमी रहे। यहाँ तक कहा जाता है कि वह स्वयं उर्दू-दीवान की अपेक्षा फ़ारसी-दीवान को उत्तम समझते थे। वह एक अपने ख़त में कहते हैं—"मेरे फ़ारसी के वे क़सीदे, जिन पर मुझको नाज़ है, कोई उनका लुत्फ़ नहीं उठाता।" और फिर—

"फ़ारसी बीँन ता बि बीनी नक़्श हाये रंग-रंग ;
बुगज़र अज़ मजमूआ-ए-उर्दू कि ब रंगे-मनस्त"

तुम अनेक प्रकार के रंगों का अनुभव करना चाहते हो, तो मेरी फ़ारसी-कविता पढ़ो ; अर्थात् फीकी उर्दू-कविता को मत देखो। आरंभ में फ़ारसी-ग़ज़लों पर उनकी इतनी प्रीति थी कि उर्दू का नाम भी न लेते थे। लेकिन ख्याति की गति न्यारी ही है। उनकी फ़ारसी की ग़ज़लें अब बहुत कम पढ़ी जाती हैं। उर्दू-दीवान के कारण ही उनका नाम भारतवर्ष के कवियों में चिर-स्मरणीय रहेगा।

क्या कारण है कि ग़ालिब की कविता इतनी जन-प्रिय है, और इतने दिन बीतने पर भी उसकी माँग बढ़ती ही जाती है ? कविता उस लोकोत्तर-शक्ति का नाम है, जिसके प्रभाव से साधारण-से-साधारण और नए-से-नए भाव हृदय-ग्राहिणी भाषा में वर्णन किए जाते हैं। यह शक्ति सभी बड़े आदमियों में रहती है। कोई अपने भावों को शब्दों के द्वारा प्रकट करते हैं, कोई गीतों में, कोई चित्रों में, और कोई मूर्तियों में। ग़ालिब उन इने-गिने महाकवियों में हैं, जो शब्द-विन्यास के फंदे में न पड़कर बोल-चाल की, चुभती हुई, हृदय पर असर डालनेवाली भाषा में हृद्गत भावों को बताते हैं। नीचे के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी। एक बात और है। अँगरेज़ी के रोमैंटिक कवियों का एक विशेष लक्षण यह कहा गया है कि वे सभी बातें स्पष्ट नहीं कहते, कुछ शब्दों के सहारे केवल एक इशारा दे देते हैं।

स्थानाभाव-वश हम ग़ालिब की कविता के कुछ ही उदाहरण देते हैं। यह तो सभी जानते हैं कि उर्दू में कविता प्रधानतया प्रेम के विषय पर ही होती है। कभी-कभी 'अकबर'-जैसे गूढ़ तत्त्व और हास्य-जनक विषयों पर कहनेवाले भी पैदा हो गए हैं। ग़ालिब ने भी प्रेम पर अनेक ग़ज़लें कही हैं।

या रब, वह न समझे हैं, न समझेंगे मेरी बात ;
दे और दिल उनको, जो न दे मुझको ज़बाँ और।

(मुझमें वर्णन करने की शक्ति अगर नहीं है, तो हे ईश्वर, उनको ऐसा दिल दे कि बिना कहे हुए वह मेरी दशा समझ लें। मैं तो लाचार हूँ, बोलना मुझे आता नहीं, उनको तो समझने की शक्ति दे।)

मुहब्बत थी चमन से, लेकिन अब यह बेदिमाग़ी है
कि मौजे-बूए-गुल से नाक में आता है दम मेरा।

(फूलों को मैं एक दिन प्यार करता था। पर इस विरक्ति की, विरह की, अवस्था में फूल की सुगंधि से मैं घबड़ाता हूँ। भूली हुई बात याद आ जाती है, पुराने सुख और भोग की स्मृति आ जाती है।)

दोस्त ग़मख़्वारी में मेरी सई फ़रमाएँगे क्या ?
ज़ख़्म के बढ़ने तलक नाख़ुन न बढ़ आएँगे क्या ?

(मेरे दोस्त मेरा उपकार करना चाहते हैं। मैं अपने हृदय के घाव को न बढ़ाऊँ, इसलिये वे मेरे नाख़ून काट रहे हैं। तो क्या घाव के बढ़ने तक मेरे नाख़ून भी बढ़ न जायँगे, और मैं ज़ख़्म को बढ़ा न सकूँगा क्या ? अर्थात् मेरे मित्रों का श्रम वृथा है।)

बेनयाज़ी हद से गुज़री, बंदापरवर, कब तलक
हम कहेंगे हाले-दिल, और आप फ़रमाएँगे 'क्या' ?

(इस क्रूरता की भी कोई सीमा है कि मैं तो अपने हृदय की बात आपको सुनाऊँ, और आप अनसुनी कर पूछते हैं—"हाँ, क्या कहते हो ?")

बाग़ में मुझको न लेजा, वरना मेरे हाल पर
हर गुलेतर एक चश्मे-ख़ूँ-फ़िशाँ हो जायगा।

तू मुझे भूल गया हो तो पता बतला दूँ;
कभी फ़ितराक़ में तेरे कोई नख़्चीर भी था।

(तेरे प्रेमी बहुत हैं, मुझे यदि भूल गया है, तो मैं याद दिला दूँ कि एक समय में भी तेरा शिकार रह चुका हूँ।)

मय वो क्यों बहुत पीते बज़्मे-ग़ैर में यारब,
आज ही हुआ मंज़ूर उनको इम्तहाँ अपना।

(वह दूसरे के प्रेम में इतने आसक्त हो गए हैं कि उनको किसी बात की सुधि-बुधि नहीं रही है। इसी भाव को रूपकालंकार के सहारे कवि कहता है—उनको क्या पड़ी थी कि दूसरे प्रेमी की सभा में जाकर इतनी शराब पी रहे हैं? क्या उनको अपने जीवन की परीक्षा आज ही लेनी है?)

घर जब बना लिया तेरे दर पर कहे बग़ैर;
जानेगा अब भी तू न मेरा घर कहे बग़ैर?

(कब तक तुम बहाने करोगे कि "तुम्हारे घर का हमें पता नहीं है"? अब तो तुम्हारे दरवाज़े पर हमने घर बना लिया है।)

आता है मेरे क़त्ल को, पर जोशे-रश्क से
मरता हूँ उसके हाथ में तलवार देखकर।

(वह मुझे मारने आ रहे हैं। उनके हाथ में तलवार है। तलवार ही को देखकर उसके इस भाग्य को देखकर कि नायिका के हाथ में है, मैं मारे द्वेष से मर रहा हूँ।)

नज़र लगे न कहीं उसके दस्तोबाज़ू को;
ये लोग क्यों मेरे ज़ख़्मे-जिगर को देखते हैं?

(नायिका के तीर के लगने से मेरे हृदय पर जो चोट लगी है, उसे और लोग क्यों देखते हैं? कहीं ऐसा न हो कि औरों को इस तीर का पता लग जाय, और वे नायिका के हाथ और बाहों पर नज़र लगावें। अर्थात् चोट इतनी गहरी है कि उसके देखने ही से तीर लगानेवाले के हाथ और बाहु की शक्ति का अंदाज़ हो जाता है। मुझे चोट लगी तो लगी, नायिका को इसका दंड न मिलने पावे।)

दिल ही तो है, न संगो ख़िश्त, दर्द से भर न आए क्यों?
रोएँगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताए क्यों?

(मेरे दिल में दर्द होना स्वाभाविक ही तो है। कोई पत्थर या धूल तो नहीं, दिल ही तो है। किसी को क्या पड़ी है कि मुझे सताए? एक बार नहीं, हम हज़ार बार रोएँगे।)

उनके देखे से जो आ जाती है मुँह पै रौनक़,
वह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।

(मैं उनके प्रेम के न मिलने से बीमार हूँ। कहीं उनको दूर से अगर देख लिया, तो इसी दर्शन से मेरे मुख पर प्रसन्नता झलकने लगती है। इस आनंद और प्रसन्नता को देखकर वह यह समझते हैं कि मुझे कोई दुःख नहीं है, मेरी चिकित्सा करने की आवश्यकता नहीं है। उनकी इस नादानी और कठोरता को देखिए!)

गो हाथ को जुंबिश नहीं, आँखों में तो दम है;
रहने दो अभी साग़रो, मीना मेरे आगे।

(शरीर में शक्ति नहीं रही; पर अभी मरा नहीं हूँ। देखने की शक्ति अब भी है। अभी से संसार के दर्शन से रहित न कर दो।)

कहता है कौन नालए-बुलबुल को बेअसर?
परदे में गुल के लाख जिगर चाक हो गए।

(कौन कहता है कि बुलबुल के रोने का असर नहीं होता? छिपे हुए फूल को देखिए कि उस रोने को सुनकर कलेजा लाख टुकड़े हो गया। बाहर से नायिका क्रूर और तटस्थ मालूम हो, यह संभव है; पर यथार्थ में प्रेमी के शोक से वह भी संतप्त अवश्य होती है।)

ग़ालिब का विवाह बहुत छोटी उम्र में हुआ। वह अपने घर में अपनी पत्नी से प्रसन्न रहते थे कि नहीं, यह निश्चय नहीं है। फिर दुःख इसका था कि उनके सात बच्चे पैदा हुए, सातों मर गए। एक बच्चे को गोद लिया, वह भी मर गया। इससे उनका समय दुःख में कटता था। फिर बुढ़ापे में कुछ शारीरिक बीमारियों से भी कष्ट सहना पड़ा। यह स्मरण करने पर आश्चर्य नहीं होता कि उन्होंने लिखा—

मय से ग़रज़ निशात है किस रू-सियाह को;
इक गूना-बेख़ुदी मुझे दिन-रात चाहिए।

अपनी फ़ारसी-मसनवी में वह कहते हैं—"मैं दुःख में था, शराब ने मेरा दुःख हटा दिया। सारा संसार गुलोलाला और गुलाब की ख़ुशबू में मस्त था। केवल मैं अँधेरी कोठरी में अकेला सोच में पड़ा था। मेरी मन की अभिलाषा मन ही में रह जाती थी। यदि मैं मोतियों की माला के लिये डोरा ठीक करता था, तो मोती टूट जाते थे। शराब तैयार होती थी, तो प्याला टूट जाता था।"

ग़ालिब में जाति-गत अथवा धर्म-गत द्वेष बिलकुल नहीं

था। उनके सब से प्रिय शिष्य मुंशी हरगोपाल तफ़्ता थे। एक पत्र में उनको ग़ालिब ने लिखा था—"तुम जानते हो, मैं तुम्हें पुत्रवत् मानता हूँ, और तुम्हारी कविता को अपना मानसिक पोता।"

जब दिल्ली का कॉलेज खुला, तो ग़ालिब की इच्छा हुई कि फ़ारसी की प्रोफ़ेसरी करें। इस उद्देश्य से एक अँगरेज़ ऑफ़िसर से मिलने गए। ऑफ़िसर से भेंट हुई; पर ग़ालिब को वह सम्मान नहीं प्राप्त हुआ, जो साधारणतः प्राप्त हुआ करता था। बस, कवि ने ऑफ़िसर से कहा—"मैं चला। मैंने सोचा था इस नौकरी से मेरा सम्मान और होगा; पर जिस नौकरी की दर्ख़्वास्त से ही अपमान होता है, वह नौकरी मुझे नहीं चाहिए।" लेकिन वह अँगरेज़ी-राज्य के आजन्म ख़ैरख़्वाह रहे।

ग़ालिब केवल महाकवि ही न थे। उनके गद्य के लेख भी बड़े मार्के के हैं। उनके पत्र, जो कि उर्दूए-मुअल्ला के नाम से छपे हैं, उर्दू-गद्य के उत्तम आदर्श हैं। हाली, मीर मेंहदी, मजरूह और आज़ाद इत्यादि ने इसी गद्य को आदर्श मानकर स्वयं लिखा है। मुंशी हरगोपाल तफ़्ता को ग़ालिब लिखते हैं—"जब किसी मित्र का पत्र मुझे मिलता है, तो मैं यही समझता हूँ कि वह मित्र स्वयं आया है। शायद कोई दिन ऐसा गुज़रता हो कि मुझे चिट्ठियाँ न मिलें। इस तरह, चिट्ठी पढ़ने और उत्तर लिखने में मेरे दिन आनंद से कटते हैं।"

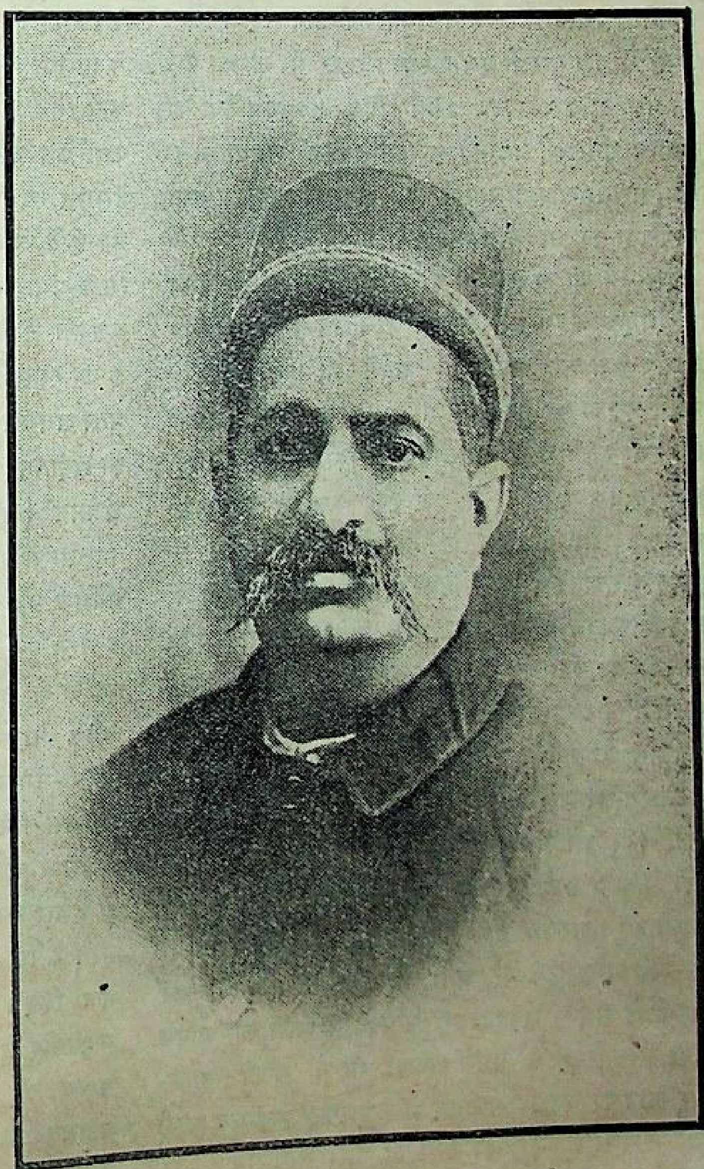
ग़ालिब १५ फ़रवरी सन् १८६९ में, देहली में, मरे, और अमीर ख़ुसरू के साथ शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के मक़बरे के पास उनकी क़ब्र है। कवि का जीवन सुखमय नहीं होता। मृत्यु होने पर वह सुख का अनुभव करता है। यही आशा लोगों को रहती है। पर सच क्या है, कौन कह सकता है?

है ग़ैब ग़ैब जिसको समझते हैं हम शहूद;
हैं ख़्वाब में हनोज़, जो जागे हैं ख़्वाब में।

अमरनाथ झा

६. स्वर्गीय सेठ जे० एफ़० मदन

पारसी-समाज बड़ा उन्नत है। उसमें बड़े-बड़े धनाढ्य और विद्वान् पड़े हुए हैं। बृटिश-भारत के भीष्माचार्य दादाभाई नौरोज़ी और अद्वितीय शिल्प-व्यापारी जमशेदजी नसरवानजी ताता आदि पारसी-समाज के ही अमूल्य रत्न थे। इन पंक्तियों में हम उसी समाज के एक पुरुष-रत्न स्वर्गीय सेठ जे०एफ़०मदन का परिचय देना चाहते हैं। आपका पूरा नाम था—जमशेदजी फ़रामजी मदन। आप एकमात्र हिंदुस्तानी बायस्कोप-व्यवसायी और अनेक पारसी



स्वर्गीय सेठ जे० एफ़० मदन

थिएटरों के संचालक थे। आपका जन्म बंबई में ७ एप्रिल सन् १८४६ ई० को हुआ था। वहीं के सर जमशेदजी जीजी-भाई के निश्शुल्क विद्यालय में आपने प्रारंभिक शिक्षा पाई थी। संभवतः इसीलिये आपको फ़्री स्कूलों और ग़रीब छात्रों की सहायता करते रहने का आजीवन स्वाभाविक व्यसन रहा। आप निश्शुल्क शिक्षा के बड़े भारी हिमायती थे।

आप एक निर्धन पिता के परम पुरुषार्थी, अध्यवसायी, उद्यमशील और स्वावलंबी पुत्र थे। अपने पौरुष के बल से ही आप चार रुपए के एक अत्यंत साधारण नौकर से जगत्प्रसिद्ध व्यापारी और धन-कुबेर सेठ बन गए। कौन जानता था कि पारसी एलफ़िंस्टन थिएटर में स्त्री का पार्ट करनेवाला छोकरा मदन किसी दिन ४७ कंपनियों का एक-मात्र मालिक, बड़े-बड़े करोड़पतियों की समता करनेवाला, ग़रीबों और असहायों का उदार आश्रय-दाता तथा दानवीरता का आदर्श बन जायगा?

दस वर्ष की अवस्था में ही आपने, ४) मासिक वेतन पर, थिएटर की नौकरी कर ली थी। जब सन् १८७४ ई० में आप कलकत्ते आए, तो अपने अभिनय-कौशल से आपने दर्शकों को मुग्ध कर दिया। धीरे-धीरे आपकी तरक़्क़ी भी होती गई। जब आपके पास थोड़ी पूँजी हो गई, तो, सन् १८८४ ई० में, आपने, कलकत्ते के धरमतल्ला-स्ट्रीट में, अँगरेज़ी शराब और खाद्य पदार्थों की दूकान कर ली। थोड़े ही दिनों में, अँगरेज़ों के समाज में, आपकी दूकान बहुत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित समझी जाने लगी। फिर क्या था, धड़ल्ले से काम चल निकला। दिल्ली, लखनऊ और दार्जिलिंग आदि स्थानों में आपकी दूकान की सात शाखाएँ बड़ी धूम-धाम से खुल गईं।

भारत-सरकार ने, सन् १९०३ में, तिब्बत-मिशन भेजा था। उस अभियान में, सिपाहियों के लिये, सिलीगुड़ी से चंपी तक, खाद्य पदार्थों की कई दूकानें आपने खोली थीं। सरकार ने संतुष्ट होकर आपको कमसरियट-विभाग का ठेकेदार बना दिया। सीमांत-प्रदेश की चढ़ाई के समय, सरहद पर, सैनिकों के खाद्य का आपने बड़ा संतोष-जनक प्रबंध किया था। फ़ौजी ऑफ़िसर आप पर बहुत प्रसन्न हुए थे। योरप के महायुद्ध में भी आपने साम्राज्य की बड़ी सेवा की थी। अतः सन् १९१८ ई० में आपको ओ० बी० ई०-नामक फ़ौजी ख़िताब मिला। युवराज-स्वागत-फ़ंड में भी आपने पचास हज़ार का दान दिया था। गत सम्राट्-जन्म-महोत्सव के अवसर पर आप सी० बी० ई० की उपाधि से सम्मानित किए गए थे।

आप पर लक्ष्मी की विशेष कृपा थी। आपकी लक्ष्मी-पात्रता के संबंध में लोग यहाँ तक कहा करते हैं कि 'आपके छूने से मिट्टी भी सोना हो जाती थी।' वास्तव में आप आदर्श धनी थे। आजकल के धनिकों की तरह आलसी, धन-मदांध, स्वार्थी और अहंकारी नहीं थे। एक बार जब आप घोर परिश्रम के कारण अस्वस्थ हो गए, तब आपके मित्रों ने विश्राम करने की सलाह दी। आपने उनसे छूटते ही कहा कि "मैं आराम करूँगा, तो मेरे आश्रित ग़रीबों का काम कैसे चलेगा?" आप बड़े दीन-वत्सल, मिलनसार, हँसमुख, और मधुर-भाषी थे। बाढ़ और अकाल में आप मुक्त-हस्त होकर देश-भाइयों की सहायता करते थे। शिक्षा-प्रचार के लिये आप प्रायः दान देते ही रहते थे। कलकत्ते के निकट बेलगछिया और बहेला में बंगालियों के जो स्कूल हैं, वे आप ही की उदारता से खुले हैं। प्रति-मास लगभग पाँच हज़ार रुपए आप असहाय विद्यार्थियों की सहायता में ख़र्च करते थे। कलकत्ते के 'ज़रथोस्ती अंजुमन' (पारसी सामाजिक सभा) के लिये आपने एक बड़ा-सा मकान बनवा दिया था, और डेढ़ लाख रुपए की आर्थिक सहायता भी प्रदान की थी। अपनी एक लड़की के मरने पर, उसकी यादगार में, परोपकारार्थ, आपने एक लाख रुपया दान-स्वरूप निकाल दिया था। अन्य अनेक पारसी-संस्थाओं के भी आप पृष्ठ-पोषक थे। पारसी-समाज में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

जिस समय आपने थिएटर की नौकरी छोड़कर स्वतंत्र व्यवसाय आरंभ किया था, उस समय आपके पास सिर्फ़ दो हज़ार रुपए थे। आपके पिता ने, लड़की की शादी करने के लिये, कुछ सहायता माँगी। आपने सब रुपए भेज दिए। आप कहा करते थे कि "माता-पिता के आशीर्वाद से ही मेरा काम बेरोक-टोक चलता रहेगा।" आपने कई बार प्रकारांतर से बँगला-थिएटरों की भी सहायता की थी। आप हरएक मज़हब के देवालय के सामने पहुँचते ही सिर झुका लेते थे। इससे आपकी व्यावसायिक और धार्मिक उदारता स्पष्ट प्रकट होती है।

आप अधिकतर गुप्त दान ही किया करते थे। पूछनेवालों से कहा करते थे कि "मेरे मर जाने पर ही मेरे दानों के विषय में जानने का उपयुक्त समय आवेगा"। आप हर महीने के पहले रविवार को, ग़रीबों को बाँटने के लिये, ५००) संकल्प करके रख देते थे। आप नियम-पूर्वक प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही गो-माता के दर्शन किया करते थे।

आप ता० ३० दिसंबर सन् १९२२ ई० शनिवार को कलकत्ते के Palace of Varieties-नामक अपने Cinema House में गए थे। उस दिन की कुल आमदनी २००००) आपने लेडी रीडिंग द्वारा स्थापित भारतीय महिला-फ़ंड में दे दी थी। दर्शक की हैसियत से आपका वही अंतिम दिन था। उसी दिन से आप अस्वस्थ हुए। फिर कभी किसी तमाशे में नहीं गए। गत ता० २८ जून सन् १९२३ ई० की रात को, आठ बजे, ६८ वर्ष की अवस्था में, ६ पुत्रों और ५ कन्याओं को छोड़कर तथा असंख्य दीन-दुखियों को अनाथ कर आप इस संसार से विदा हो गए। आपके उठ जाने से इस देश की बड़ी हानि हुई। सिनेमा, थिएटर और बायस्कोप का व्यवसाय आप विदेशियों के हाथ से बहुत कुछ बचाए हुए थे। यहाँ तक कि सीलोन और बर्मा तक में आपकी कंपनियाँ मौजूद हैं। कलकत्ते का 'शांति-स्तंभ' तो आपकी दान-शीलता का स्मारक ही है, पारसी-समाज की ओर से पचास हज़ार रुपए और आपकी स्मृति-रक्षा में व्यय करने के लिये निकाले गए हैं। इन स्मारकों के अतिरिक्त आपने ग़रीबों के रहने के लिये कलकत्ते में एक विशाल भवन बनवाने को लाखों रुपए दिए हैं—यह भी आपका दर्शनीय स्मारक होगा। आपकी रथी के साथ कलकत्ते के प्रत्येक समाज के प्रतिष्ठित रईस और बड़े-बड़े अँगरेज़ी ऑफ़िसर समाधि-स्थल तक गए थे। भगवान् आपकी आत्मा को शांति दें, और अपने परिश्रम तथा पराक्रम से स्वभाग्य-विधाता बननेवाले आप-जैसे अनेक पुरुषों को भारत में उत्पन्न करें।

कनकाप्रसाद चौधरी

× × ×

७. 'सौदामिनी' का अर्थ

संस्कृत से जिन्हें कुछ भी परिचय होगा, वे अवश्य जानते होंगे कि 'सौदामिनी'-शब्द बिजली के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अमर-कोष में भी विद्युत् के पर्यायवाची शब्दों में 'सौदामिनी' पाया जाता है; यथा—'तडित् सौदामिनी विद्युत्।' यह सब ठीक है, परंतु इस शब्द पर कुछ नया प्रकाश डाला जायगा। अमर-कोष के पूर्वोक्त पद्यांश पर टीका लिखते समय 'भानुजि' ने 'सौदामिनी' का विवरण यह लिखा है—सुदामा मेघः तत्र भवः, अर्थात् मेघ में पैदा होने के कारण विद्युत् को सौदामिनी के नाम से पुकारते हैं। दूसरा विवरण मेघदूत के पूर्वार्ध में, ३७वें श्लोक की टीका में, मल्लिनाथ ने दिया है—सुदामा पर्वतः तेन एकदिक्, अर्थात् सुदामा-नामक पर्वत के एक ओर चमकनेवाली बिजली को 'सौदामिनी' कहते हैं। पाणिनि के 'तेनैकदिक्' (४। ३। ११२) के अनुसार यह विवरण बिलकुल ही उचित है। परंतु इन दोनों विवरणों में दूसरा ही उचित तथा प्रामाणिक सिद्ध होता है।

भागवत, रामायण तथा महाभारत में 'तडित् सौदामिनी यथा', 'विद्युत् सौदामिनी यथा' आदि वाक्य मिलते हैं; जिससे स्पष्ट सूचित होता है कि 'सौदामिनी'-शब्द संज्ञावाचक नहीं, बल्कि विशेषण-मात्र है। यदि ऐसा न होता, तो एक ही पद्य में विद्युत् तथा सौदामिनी का प्रयोग 'पुनरुक्ति'-दोष से ख़ाली नहीं होता। अतएव यह विशेषण ही है। श्रीधर स्वामी ने जो विवरण इस शब्द का लिखा है, वही सब से प्रामाणिक है*। सुदामानाम कश्चित् स्फटिकपर्वतः ××× स्फटिकमयपर्वतप्रांतभवा हि विद्युत् अतिस्फुटा भवति तद्वत्। अर्थात् सुदामा-नामक कोई स्फटिक-पर्वत है; वह बिजली अत्यंत चमकीली जान पड़ती है, जो स्फटिक-पर्वत के प्रांत से होकर चमकी हो। श्रीधर स्वामी के पूर्वोक्त विवरण से स्पष्ट जान पड़ता है कि सौदामिनी-शब्द संज्ञा-शब्द नहीं है। जिस प्रकार अँगरेज़ी में 'bold bornn' तथा 'red gold' कहने का फ़ैशन है, उसी भाँति हमारे यहाँ बिजली को 'सौदामिनी' कहने की चाल थी।

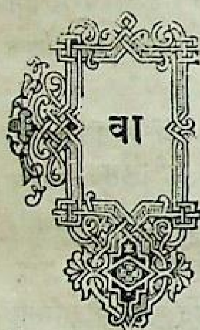
बलदेव उपाध्याय

---

* इंडियन एंटिक्वेरी, साल १९१२, पृ० २८४



१. वायु-यान की उड़ान



यु-यान की उन्नति आजकल दिन-दिन अधिक होती जा रही है। इसका कारण यह है कि भविष्य में वायु-यान पर बहुत-से दायित्व-पूर्ण कार्य निर्भर हैं। गत दो-तीन वर्षों में लोगों का ध्यान इस बात की ओर अधिक आकृष्ट हुआ है कि क्या करने से वायु-यान की यात्रा निरापद हो सकती है। वायु-यान को अधिक तेज़ चाल से ले जाने की ओर भी लोगों का ध्यान बराबर रहा है। आजकल गैसोलीन-मोटर द्वारा चालित कोई भी वायु-यान घंटे में १५० मील से अधिक नहीं जाता। घंटे में २०० मील चलनेवाले वायु-यान कई जगह बन रहे हैं। संभवतः अब गैसोलीन का व्यवहार उठ जायगा, और उसकी जगह पर दबी हुई हवा (Compressed Air) का व्यवहार होगा। दबी हुई हवा उतनी जगह भी नहीं घेरेगी, जितनी गैसोलिन-वाला मोटर घेरता है। किंतु वह वायु-यान को अधिक वेग से ले जाने में समर्थ होगी।

कुछ लोग वायु-यान पर चढ़कर आकाश में ऊँचे-से-ऊँचे स्थान तक जाना चाहते हैं। सन् १९२० में प्रसिद्ध उड़ाके स्रोएडर ३३,१३३ फ़ीट ऊँचे तक उड़े थे। २९ सितंबर, १९२१ को लेफ़्टिनेंट जे० ए० मैक्रेडी ४०,८०० फ़ीट की ऊँचाई तक पहुँचे थे। इनके मत में आकाश ही यातायात का सुविधा-जनक पथ है। इसमें समय तथा ख़र्च, दोनों की बचत के साथ ही आराम और आनंद अधिक है। महाशय स्यारीवजेंस, दो यात्रियों के साथ, २१,९०९ फ़ीट की ऊँचाई से सैर करके अभी-अभी लौटे हैं।

निरापद यात्रा के लिये भी बहुत कुछ किया जा रहा है। अब तक लोग यात्रा करने के पहले वायु-मंडल की अवस्था का पता लगा लेते थे। यदि आँधी आदि का भय होता था, तो अपनी यात्रा स्थगित कर देते थे। किंतु इधर इस विषय के भी आविष्कार हो रहे हैं कि वायु-यान आँधी के झोंकों को सह सके। वायु-यान के सामने उन्नति का अभी विस्तृत मैदान पड़ा है।

× × ×

२. आश्चर्य-जनक लकड़ी

हज़ारीबाग़ के निकट रहनेवाले एक कृषक के लड़के को एक अद्भुत लकड़ी मिली है। इस आश्चर्य-जनक लकड़ी में यह गुण है कि यदि वह अँधेरे में रख दी जाय, तो चमकने लगती है। हज़ारीबाग़ की रसायन-शाला में इस लकड़ी की परीक्षा हो रही है। अब तक जो मालूम हुआ है, वह यह है कि प्राकृतिक उपाय से उस पर Calcium Sulphate जम गया है, और इसी के कारण वह लकड़ी अँधेरे में चमकती है। इसकी पुष्टि इससे और होती है कि जब लकड़ी का एक टुकड़ा काटकर देखा, तो अंदर का हिस्सा चमकता हुआ नहीं पाया गया। जो कुछ हो, यह एक आश्चर्य का विषय है।

× × ×

३. पक्षियों की सफ़ाई

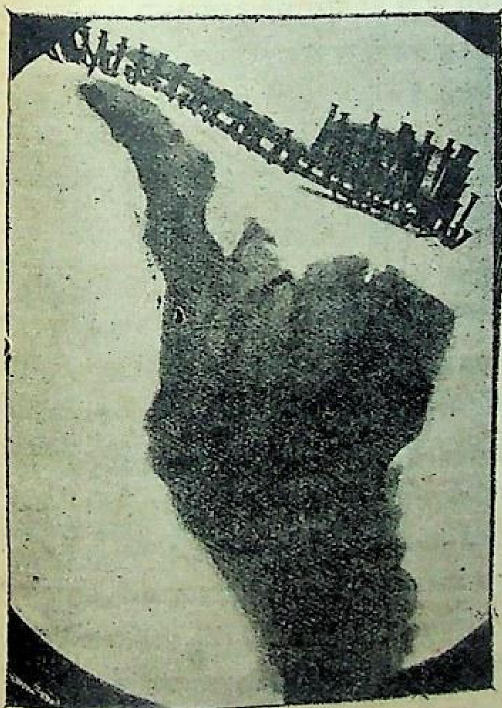
पक्षी अपनी सफ़ाई में प्रकृति की सहायता लेते हैं। हंस के शरीर में एक प्रकार का तैलमय पदार्थ होता है। उसी से वे अपनी सफ़ाई का काम करते हैं। यह तैलाक्त पदार्थ

उनकी पूँछ के पास के पंखों की जड़ में जमा रहता है। प्रसाधन के पहले वे अपने मुँह को साफ़ कर लेने के लिये पूँछ के पास के पंखों की जड़ में अपना मुँह रगड़ने लगते हैं। मैना आदि कई पक्षियों के पंखों में कीड़े लगने से वे मर जाते हैं। किंतु उल्लू के पंखों में कीड़े लगने से वह अपने पैर के तेज़ नखों द्वारा कीड़े-लगे स्थान को नोचकर साफ़ कर लेता है। कबूतर और बाज़ अपने शरीर के एक प्रकार के नरम पंख से सफ़ाई का काम करते हैं। ये पंख इतने नरम और ख़स्ता होते हैं कि खींचने से चूर-चूर हो जाते हैं। इसके बाद वे चोंच से शरीर के पंखों के ऊपर और जड़ में इस चूर्ण को लगा लेते हैं। काक, कबूतर, गौरैया आदि पक्षी पोखरों के पास जाकर अपने डैनों से शरीर पर पानी छिड़कते हैं। मुर्ग़ी कूड़े पर लोट-पोटकर अपनी सफ़ाई करती है। पक्षियों की सफ़ाई में कुछ भी ख़र्च नहीं होता।

× × ×

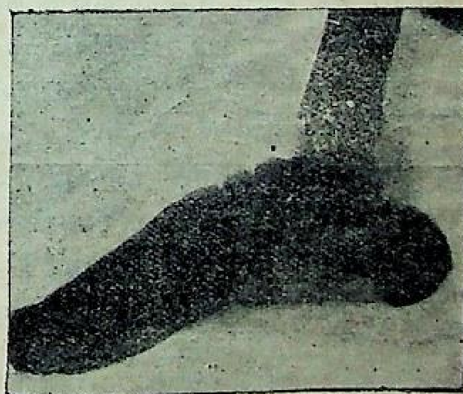
४. चीन-देश की स्त्रियों के पैर

हमारे यहाँ के कवियों ने स्त्रियों के मुख ही को सब अंगों से सुंदर माना है। किंतु चीन-देश के कवि स्त्रियों के पैरों की सुंदरता की ओर अधिक आकृष्ट जान पड़ते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ पैर छोटे करने के लिये बचपन ही से लोहे के जूतों का इस्तेमाल करने लगती हैं। इससे उनके पैर बहुत छोटे हो जाते हैं। जिस स्त्री के पैर जितने छोटे होते हैं, वह उतनी ही सुंदर समझी जाती है। लोहे के जूतों के व्यवहार से पैर कैसे विकृत हो जाते हैं, यह चित्र देखकर (जो एक्स-किरण से लिया गया है) पाठक सहज ही जान सकते हैं। एक्स-किरण के द्वारा लिए गए चित्रों में केवल हड्डियों का ही चित्र आता है। मांस उसके चारों ओर छाया की तरह दिखाई पड़ता है। चित्र लेते समय स्त्री को लोहे के जूतों के बदले चमड़े ही के जूते पहनाए गए थे। पाठक देख सकते हैं कि पैर की एँड़ी तथा कनिष्ठ उँगली का अग्र-भाग परस्पर छू रहा है। अँगूठे को छोड़कर सभी उँगलियाँ झुक गई हैं, और तलवा केवल पाँच इंच का रह गया है। तुलना करने के लिये पैर की स्वाभाविक अवस्था का भी एक चित्र दिया गया है। दोनों की तुलना करने से पाठक देखेंगे कि स्वाभाविक पैर का तलवा १० इंच लंबा, अर्थात् चीनी स्त्री के तलवे से दुगना, है। चीनी स्त्रियों को अपने पाँच इंच लंबे पैर पर सारा भार देकर चलना-फिरना पड़ता है। समूचा शरीर केवल कुछ उँगलियों के अग्र-भाग पर खड़ा रहता है। इसलिये, प्राणितत्त्वज्ञों की सम्मति के अनुसार, घोड़े की-जैसी तेज़ दौड़ने की शक्ति इनके भी होनी चाहिए। किंतु वास्तव में वे ऐसा नहीं कर सकतीं। नहीं कहा जा सकता कि पैर की इस विकृतावस्था



चीनी स्त्री का पैर

(एक्स-किरण से लिया हुआ फ़ोटो। केवल हड्डियाँ ही आई हैं। नीचे लंबी-लंबी लोहे की कीलें दिखलाई देती हैं। मांस या चमड़ा नहीं देख पड़ता)



स्वाभाविक पैर

(एक्स-किरण से लिया हुआ चित्र)

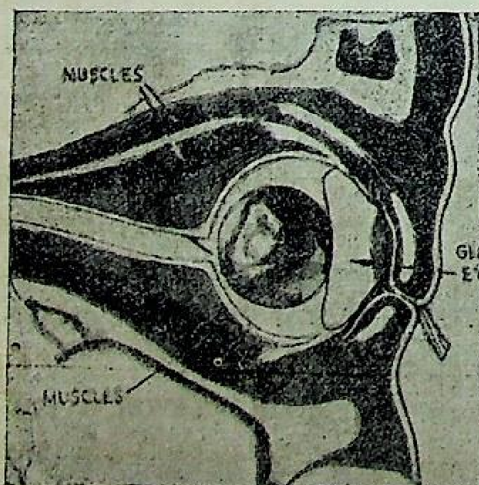
से शरीर की सुंदरता कितनी बढ़ती है; किंतु इससे शरीर को जो तकलीफ़ पहुँचती है, उसका सहज ही में अनुमान किया जा सकता है।

× × ×

५. कृत्रिम आँख

अमेरिका में, हज़ार में चार मनुष्यों की एक आँख नक़ली होती है। किंतु असली और नक़ली आँखों में भेद समझना आसान काम नहीं है। नक़ली आँखें असली-जैसी ही जान पड़ती हैं। वहाँ ऐसी निपुणता के साथ मनुष्य की आँखों का जाल होने लगा है कि केवल दृष्टि-शक्ति को छोड़कर असली और नक़ली आँख में और किसी प्रकार का भेद नहीं रहता। पहले-पहल जब नक़ली आँखों का प्रचार हुआ था, तब उनका तिल स्थिर रहता था। उस समय किसी ने ऐसी कल्पना नहीं की थी कि यह तिल इच्छानुसार हिलाया-डुलाया भी जा सकता है। कृत्रिम आँख की उन्नति के साथ-साथ सुदक्ष मनुष्यों ने आँख की इस प्रधान असुविधा को भी दूर कर दिया है। अब नक़ली आँख का तिल भी असली आँख के तिल के साथ, समान भाव से, घूमता-फिरता है।

अब तक जो असंभव जान पड़ता था, उसी को संभव होते हुए देखकर किसे आश्चर्य न होगा? चार हज़ार वर्ष पहले मिसर के लोग कृत्रिम आँख का व्यवहार करते थे, इसका प्रमाण मिला है। वे शीशे के बदले सोने की आँखों का व्यवहार करते थे। पतले सोने के पोले ख़ोल की सहायता से आँख बनाकर उस पर मीनाकारी



कृत्रिम आँख

करके आँख का तिल बना लेते थे। इसका भी प्रमाण मिला है कि ढाई हज़ार वर्ष पहले रोमन लोग कृत्रिम आँख का व्यवहार करते थे। उनकी नक़ली आँख मिट्टी की बनती थी। हलकी मिट्टी की आँख बनाकर, उस पर रंग लगाकर, वे आँख का तिल बनाते थे।

आजकल की कृत्रिम आँख शीशे की बनती है। उजले शीशे के साथ रंगीन शीशा मिलाकर, सुदक्ष नेत्र-शिल्पी, अति चतुरता के साथ सजीव आँख की अविकल नक़ल बना रहे हैं। जो सचल तिल-युक्त कृत्रिम आँख का व्यवहार करना चाहते हैं, उनके लिये विशेष प्रकार की आँख बनती है। ऐसी कृत्रिम आँख एक सोने के गोलक के ऊपर लगी रहती है। जिनकी एक आँख नष्ट हो गई है, किंतु आँख की पेशी तथा दर्शनेंद्रिय का प्रधान स्नायु ठीक है, वे ही चलती हुई तिल-युक्त आँख का व्यवहार कर सकते हैं। कारण, ऐसी आँख लगाने के समय सोने के गोलक को उक्त प्रधान स्नायु के सिरे के साथ मिलाकर इस प्रकार लगा देना पड़ता है, जिसमें कृत्रिम आँख का तारा भी इच्छानुरूप घूम सके। इस प्रकार की कृत्रिम आँख की सफलता आँख बनाने की अपेक्षा आँख बैठाने के कौशल पर ही निर्भर रहती है। कुछ दिनों में असली आँखें भी बनने लगें, तो आश्चर्य क्या है?

× × ×

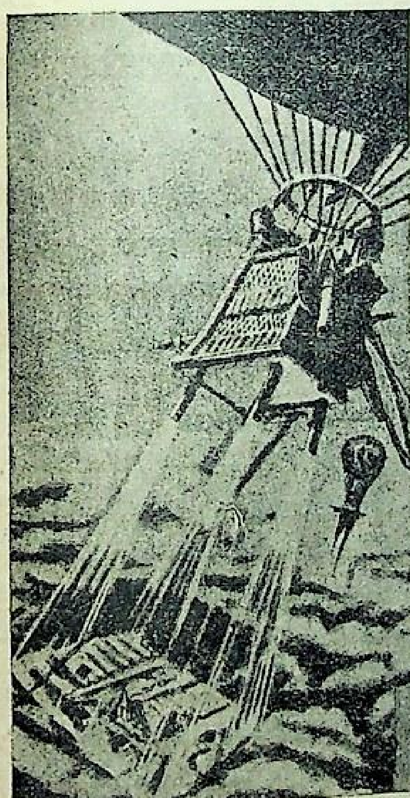
६. कृत्रिम वर्षा

संपादक महाशय, आधा जुलाई समाप्त हो गया; किंतु अभी तक यथेष्ट वर्षा नहीं हुई। चारों ओर वर्षा के लिये हाहाकार मचा हुआ है। आप तो पंखे के नीचे आराम से बैठकर 'माधुरी' का संपादन करते हैं। किंतु हम लोगों पर जैसी बीतती है, वह हमीं जानते हैं। लोहे और इसपात की भट्ठियों के पास इस दारुण ग्रीष्म-काल के दिन के छः से आठ घंटे बिताना कोई खेल नहीं है। किंतु करें क्या?

हम भारतवासी ठहरे; हमें ईश्वर पर इतना अधिक भरोसा रहता है कि हरएक बात में उन्हीं की दुहाई देने लगते हैं। वृष्टि नहीं होती, आकाश की ओर देखते हैं, और ईश्वर को पुकारते हैं। किंतु प्रबल रजोगुण-शाली, विज्ञान में अग्रगण्य अमेरिका को वृष्टि के लिये ईश्वर-मुखापेक्षी होकर निश्चेष्ट बैठे रहना अच्छा नहीं लगता। कार्नेल-विश्वविद्यालय के रसायनाचार्य डॉक्टर वाइल्डर बैनक्रष्ट और मिस्टर फ्रैंसिस बैरन

इच्छानुसार जल बरसाने में कृतकार्य हुए हैं। इन दो वैज्ञानिकों की अक्लांत चेष्टा से कृषि की एक भारी असुविधा दूर हो चली है। समय पर वर्षा न होने के कारण, पानी के अभाव से, साल-भर का परिश्रम अब नष्ट नहीं होगा। केवल यही नहीं, इनके उद्भावित उपाय के अनुसार यदि विस्तृत रूप से काम किया जाय, तो कुछ दिनों में संसार की आब-हवा बदल दी जा सकती है। मरु-भूमि को शस्य-श्यामल क्षेत्र में परिणत करना, निदाघ-तप्त दिन को शांत, शीतल करना, और मेघ से घिरे हुए आकाश को स्वच्छ बनाना भी इस आविष्कार से संभव हो गया है।

दो वायु-यानों की सहायता से बैनक्रष्ट और बैरन ने इस अद्भुत व्यापार को कार्य-रूप में परिणत किया है। एक वायु-यान के नीचे असंख्य वैद्युतिक तार लगे हुए हैं। यह जहाज़ बादल में प्रवेश करता है, और ऋण (Negative)-विद्युत् के वर्षण द्वारा हलके जल-कणों को जमा कर भारी मेघ के रूप में परिणत करता है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि प्रत्येक मेघ-खंड बहुत छोटे-छोटे जल-कणों की समष्टि-मात्र हैं। ये इतने हलके होते हैं कि माध्याकर्षण-शक्ति के जल-कण खिंचाव के कारण ज़मीन पर नहीं गिर सकते। दूसरा वायु यान ऋण-विद्युत् द्वारा बने हुए जल-कणों पर घन-विद्युत् (Positive) से संचरित बालू बरसाता है। इस प्रकार जल-कण इतने भारी हो जाते हैं कि ज़मीन पर गिरने लगते हैं, अर्थात् वर्षा होने लगती है।

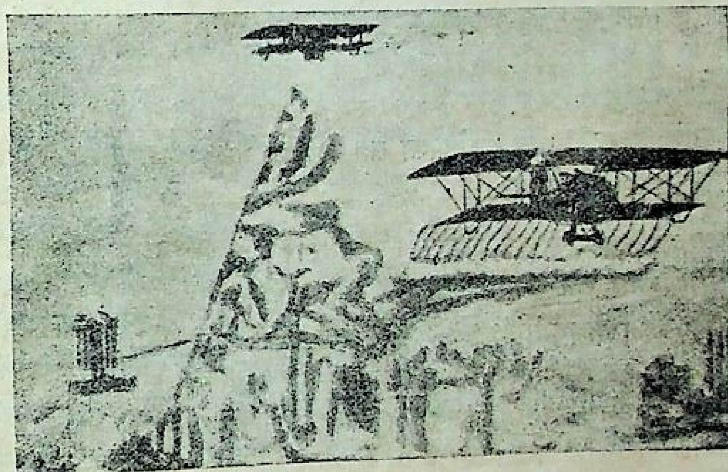


जल बरसानेवाले वायु यान

× × ×

७. कुहरा दूर करने का बेलून

अमेरिका में निर्मल आकाश बहुत दुर्लभ है। जिस दिन वहाँ के रहनेवाले सूर्य का दर्शन पाते हैं, उस दिन आनंद में आपे से बाहर हो जाते हैं। बहुत दिनों से वहाँ के वैज्ञानिक बहुत समय तक साफ़ आकाश पाने की चेष्टा कर रहे हैं। इतने दिनों के बाद उनकी चेष्टा सफल हुई है। कुहरे को साफ़ करने के लिये आजकल आकाश में बेलून छोड़ा जाता है। इस बेलून से बड़े ज़ोरों के साथ विद्युत्-संचरित पानी बरसता रहता है। साथ ही कुहरा फटकर आकाश स्वच्छ हो जाता है।

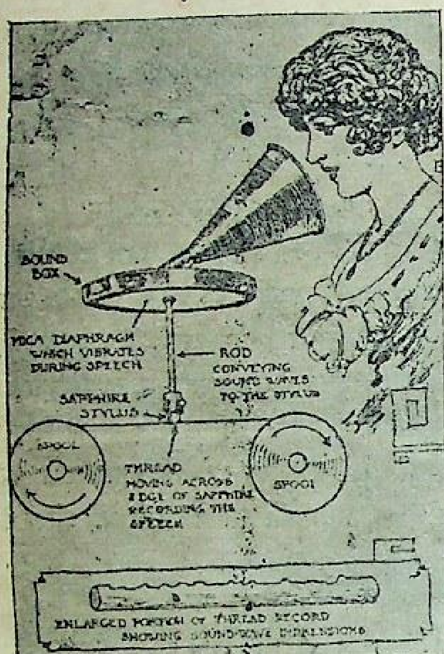


कुहरा दूर करने का बेलून

× × ×

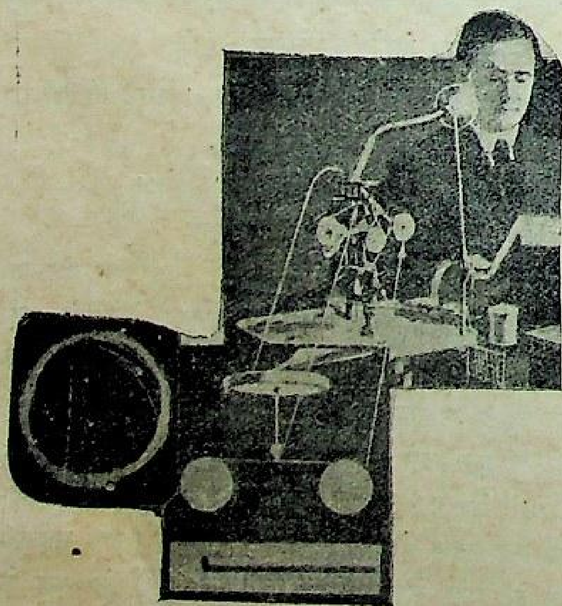
८. बात करनेवाला सूत्र

स्वीज़लैंड के एक महाशय ने एक वैद्युतिक यंत्र का आविष्कार किया है। इस यंत्र में मनुष्य से कही हुई बातें सूत्र पर लिपि-बद्ध हो जाती हैं। उस यंत्र के मुँह में बातें कहने से शब्द-तरंग एक अबरख की झिल्ली को आघात कर उसे स्पंदित करती है। यह स्पंदन एक Sapphire की सुई को परिचालित करता है। सुई की नोक एक पतले छोटे उस्तरे-जैसी होती है। उक्त सुई की नोक के द्वारा सेलूलायेड (Celluloid) के सूत्र के ऊपर निशान बनता है। मनुष्य बोलता जाता है, और सूत्र पर निशान बनता जाता है।



बातें करनेवाला सूत्र

यदि फिर किसी को उन बातों के सुनने की आवश्यकता हुई, तो उन्हें सुन सकता है। शब्द तरंगों से निशान किया हुआ सूत्र फिर वैद्युतिक यंत्र की सहायता से घूमते-घूमते Sapphire की सुई के नीचे आता है, तो सुई स्पंदित होती है, और वह स्पंदन अबरख़ की झिल्ली को फिर परिचालित करता है। तब यंत्र के मुँह से फ़ोनोग्राफ़



बातें करनेवाला सूत्र पारलोग्राफ़

की-सी आवाज़ निकलती है। उसे आप सुन सकते हैं। इस यंत्र के आविष्कार से अब लोग कहने लगे हैं कि पत्र के बदले इस प्रकार का सूत्र ही भेज दिया जायगा। संपादकों के पास, लंबे-लंबे लेखों के बदले, जो बातें कहनी हुईं, उन्हें इस प्रकार के सूत्र में भरकर लेखक भेजा करेंगे। वे यंत्र की सहायता से सूत्र को उलटी ओर घुमाकर लेखकों के वक्तव्य सुन लेंगे। ऐसा होना असंभव नहीं है; क्योंकि इसी बीच में अनेक ऑफ़िसों में साहबों के पास ऐसा यंत्र रहने लगा है। वे चिट्ठियों के उत्तरों को इसी यंत्र में छोड़ जाते हैं। टाइपिस्ट समय पाकर उन्हें 'टाइप' कर देता है।

इस यंत्र का नाम पारलोग्राफ़ (parlograph) है। इससे जो शब्द सुनाई देते हैं, वे घर में साफ़-साफ़ सुन पड़ते और समझे जाते हैं। देखें, भारतवर्ष में ऐसी मशीन कब तक आती है ?

× × ×

९. नीम से लाभ

नीम का वृक्ष दूषित वायु को संशोधित करता है। उसके पास के घरों में रहना लाभदायक है। वसंत में नीम बहुत फ़ायदे की चीज़ साबित हुई है। प्लेग की भी वह उत्कट औषधि है। नीम की हरी पत्तियों को नमक के साथ पीसकर, उसकी छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर खाने से प्लेग का आक्रमण नहीं होता। वरदा-राज्य (?) में बहुत-से नीम के वृक्ष हैं। प्लेग के प्रकोप के समय जिन मनुष्यों ने भागकर उनके नीचे आश्रय लिया था, उनमें से अधिकांश को प्लेग नहीं हुआ। कुष्ठ-रोग में भी नीम से लाभ होता है। कुछ लोग फाल्गुन-चैत्र में नीम की कोमल पत्तियाँ घी में भूनकर खाते हैं। इससे ख़ून साफ़ हो जाता है। जिनका ख़ून ख़राब हो गया हो, वे यदि नीम का व्यवहार करें, तो अवश्य फ़ायदा होगा।

× × ×

१०. तार के विना विद्युत्-शक्ति का स्थानांतर

अब तक एक स्थान से दूसरे स्थान को विद्युत्-शक्ति (Electrical Power) भेजने के लिये तार व्यवहृत होते थे। किंतु अब ऐसी परीक्षा चल रही है, जिससे विना तार के ही विद्युत्-शक्ति स्थानांतरित की जा सके।

रमेशप्रसाद



१. स्त्री-कर्तव्य



यों का प्रधान कर्तव्य है अपने बालकों का पोषण तथा गृहस्थी का काम। स्त्रियों को अपने बच्चों को दाई-नौकरों के ऊपर नहीं छोड़ना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे बिगड़ जाते हैं। मूर्ख दाई बच्चों को पढ़ी माता के समान उच्च शिक्षा तथा अच्छे उपदेश नहीं देगी। इस तरह लड़का बुरे आदर्श का हो जायगा। एक बात बच्चों के लिये यह भी आवश्यक है कि उन्हें बुरे संग में न पड़ने दिया जाय; क्योंकि बच्चा जैसे संग में रहेगा, वैसा ही उसका आदर्श होगा। उनको अपनी ही देख-भाल में रखना चाहिए। अगर मा न हो, या कोई और पढ़ी-लिखी स्त्री घर में देख-भाल करनेवाली न हो, तो किसी दूसरी स्त्री को रक्षिका बनाकर उसी की देख-भाल में बच्चों को रखना चाहिए। जब तक स्त्री पाँच वर्ष तक बच्चों को नहीं पालेगी, बच्चों का सुधरना कठिन है। यद्यपि पुरानी पुस्तकों में लिखा है कि धाय ही बच्चों को पाँच वर्ष तक पालती थी, परंतु तब धाय भी पढ़ी-लिखी तथा अच्छे आदर्श की होती थी। इसलिये यदि बच्चे को धाय की रक्षा में रक्खे, तो पढ़ी तथा अच्छी धाय की रक्षा में। तब बच्चा कभी मूर्ख न होगा।

स्त्रियों का दूसरा कर्तव्य है गृहस्थी का काम करना। स्वामिनी का प्रधान कर्तव्य घर का प्रबंध करना है। घर का प्रबंध ठीक न रखने से हानि होती है। स्वामिनी का धर्म है कि सब से पहले गर्भवती स्त्री को खिलावे, फिर बीमारों को, तब बच्चों को। उसके बाद अतिथियों तथा घर के पुरुषों को खिलावे। फिर बहुओं तथा दाई-नौकरों को खिलाकर अंत में स्वयं खाय। रात को सब के अंत में आप सोना चाहिए। सोने के पहले सारे घर में रोशनी लेकर घूम लेना चाहिए। देख ले कि कहीं कोई किंवाड़ तो नहीं खुला है, या कोई वस्तु तो बाहर नहीं पड़ी है। इन कामों को स्वयं करना चाहिए। किसी के विश्वास पर न छोड़ना चाहिए। इन कामों को स्वयं न करने से हानि होती है। स्वामिनी को, सवेरे, सब से पहले उठकर नित्य-कर्म करने के बाद घर के दाई-नौकरों को जगाना चाहिए। फिर बहू-बेटियों को जगाकर कुछ थोड़ा-सा पढ़े। उसके बाद सब को जल-पान कराकर रसोई का प्रबंध करे। फिर सब को खिलाकर आराम करे। अगर प्रत्येक गृह-देवियाँ इस प्रकार नियम से काम करें, तो कभी किसी को कष्ट न हो।

भारत में बहुत-से मनुष्य ऐसे हैं, जो भूखों मरते हैं। ऐसे भी बहुत-से घर हैं, जहाँ दो-चार सेर अन्न रोज़ फेंक दिया जाता है। ऐसे गृहों की स्वामिनियों से सविनय प्रार्थना है कि वे उस अन्न को भूखों के लिये, अपना प्रधान कर्तव्य समझकर, भिजवा दिया करें, तो उन भूखों का उपकार हो, और पुण्य भी हो। अगर इस तरह प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे का उपकार करे, तो भारत का शीघ्र ही उद्धार हो जाय। स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य है पातिव्रत-धर्म का पालन। जो स्त्रियाँ इस कर्तव्य का पालन नहीं कर सकतीं, वे किसी कर्तव्य का पालन नहीं कर सकतीं;

और न उनके बच्चों का पालन ही ठीक तरह से हो सकता है। न उनके बच्चे ही सुधर सकते हैं। पहले स्त्रियाँ जब पतिव्रता होती थीं, उनके लड़के राम-कृष्ण के समान वीर तथा स्वनाम-धन्य होते थे। अगर फिर भी स्त्रियाँ वैसी ही मन-वाणी-काया से पूर्ण पतिव्रता हों, तो कोई आश्चर्य नहीं कि उनकी संतान थोड़े ही दिनों में भारत का उद्धार कर ले। मेरी सब स्त्रियों से सविनय प्रार्थना है कि वे सर्वथा अपने पातिव्रत-धर्म और कर्तव्य का पालन करें।

श्रीइंदुमती शर्मा

× × ×

२. स्त्री-शिक्षा

गृहस्थी वास्तव में एक गाड़ी है; जिसके स्त्री और पुरुष दोनों दो पहिए हैं। जब तक ये दोनों पहिए दुरुस्त न होंगे, तब तक इस गाड़ी का अच्छी तरह चलना कदापि संभव नहीं। अगर पुरुष सच्चे धर्मात्मा, पढ़े-लिखे, ज्ञानवान्, गृहस्थी के कामों को अच्छी तरह जाननेवाले हैं, और स्त्रियाँ लड़ाका, बात-बात में गाल फुलानेवाली, फूहर तथा निर्लज्ज हैं, तो गाड़ी ठीक नहीं चल सकती। अगर स्त्री ऐसी होगी, तो गृहस्थी शीघ्र मिट जायगी। इसी तरह अगर स्त्री लायक़, अच्छी, पढ़ी-लिखी और समझदार है, और पुरुष मूर्ख, बदमिजाज़, बदमाश या शैतान है, तो भी गृहस्थी अच्छी तरह नहीं चल सकती। हाँ, यह ज़रूर होगा कि स्त्रियों के सुघड़ होने से गृहस्थी का जल्दी नाश न होने पावेगा; क्योंकि गृहस्थी का बहुत बड़ा भाग स्त्रियों ही पर अवलंबित है।

गृहिणी से ही गृहस्थी है। अगर गृहिणी नहीं, तो गृहस्थी कैसी? स्त्री-पुरुष, दोनों से गृहस्थी है। इसलिये दोनों को पक्की शिक्षा मिलनी चाहिए। फिर पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी क्यों नहीं शिक्षा दी जाती? मैं देखती हूँ, आज भी अधिकांश स्त्रियाँ एक तरह से मूर्ख और अबला हैं। परंतु पुरुष तो इन लोगों से भी गए-बीते हैं, बिलकुल अक़्ल के पीछे लट्ठ लेकर पड़े हैं। आशा है, पुरुष मुझे क्षमा करेंगे कि मैं स्त्री होकर अपने मुख से ये कटु वचन निकालती हूँ।

मैं समझती हूँ, कोई भी जाति कितनी ही अच्छी क्यों न हो, जब तक उसकी स्त्रियों को अच्छी शिक्षा न मिलेगी, तब तक उस जाति की उन्नति होना असंभव है। एक छोटा-सा बच्चा अपनी मा के गोद ही से शिक्षा ग्रहण करने लग जाता है। कैसा अच्छा होता, जो स्त्रियों को भी पूरी शिक्षा मिलती, और उनकी संतानें भी उनसे अच्छी शिक्षा ग्रहण करके लायक़ निकलतीं। निस्संदेह स्त्री और पुरुष के समान अधिकार हैं। दोनों को शिक्षा पाने का बराबर हक़ है।

हमारे देश-भाइयों को उचित है कि वे अपनी योग्यता दिखलाकर स्त्रियों को शिक्षित और उन्नत बनावें। स्त्री-शिक्षा ही के अभाव से इस समय भारत की पूर्ण उन्नति में रोड़े अटक रहे हैं। अब भारत-संतानों को अपनी माता के शोक के आँसू पोंछकर ऐसा करना चाहिए कि वह आनंद के आँसू बहावे।

आशा है, मेरी यह प्रार्थना निष्फल न होगी, स्त्रियों को और भी अधिक शिक्षित बनाने का व्यापक प्रयत्न किया जायगा, और उन्हें उनके अधिकार देने में आनाकानी न होगी।

धर्मशीला जायसवाल

× × ×

३. स्वर्गीया मा साहब पाँचीबाई



स्वर्गीया मा साहब पाँचीबाई

यह चित्र मा साहब पाँचीबाई का है। राजपूताने में प्रायः माजी साहबा के नाम से राज्य की राज-माता का बोध होता है । पर आप अपनी धार्मिकता, उदारता और कौशल के कारण इधर मा साहब के नाम से प्रसिद्ध थीं । जो कोई दीन-दुखी शरण में आता था, वह इन माता के निकट आश्रय पाता था। आपका जन्म जयपुर में, खंडेलवाल श्रावक धर्मदासजी के घर, सं० १६२६ में, हुआ था, और विवाह, सं० १६३८ में, झालरापाटन के सुप्रसिद्ध व्यापारी सेठ बालचंदजी सेठी के साथ । आप सेठजी की चतुर्थ पत्नी थीं। जिस समय आप ब्याह कर आईं, उस समय सेठजी की प्रथम पत्नी की संतान सेठ दीपचंदजी—जिनके पुत्र भँवरलालजी और पौत्र कैलाशचंद (बड़े बाबू और छोटे बाबू) आज विद्यमान हैं— मौजूद थे। सेठजी के यहाँ आपकी कोख से मानिकचंदजी, लालचंदजी और नेमीचंदजी ने जन्म लिया। एक कन्या भी हुई। उसका नाम अनूपकुमारी था (इस समय विद्यमान नहीं है)। संवत् १९५६ में सेठजी का स्वर्ग-वास हो गया।

सेठजी का स्वर्ग-वास होने के बाद आपने अपना वैधव्य-जीवन व्यतीत किया। सारे कारबार को आपने, बड़ी होशियारी से, प्रधान मुनीम लूनकरनजी और गंगारामजी की सहायता से, चलाया; अपने पति के नाम और संपत्ति में खूब वृद्धि की; कई जगह नई-नई दूकानें खुलवाईं; कपड़े की मिल चलाई; और अन्य अनेक व्यापारों से घराने की प्रतिष्ठा बढ़ाई । आपके सब पुत्रों के पैर में सोना पड़ा हुआ है। यहाँ तक कि आपके मुनीम लूनकरनजी को भी पैर में सोना धारण करने की प्रतिष्ठा प्राप्त है। यह सब कुछ होने पर भी आपने वैधव्य-जीवन एक धार्मिक स्त्री की भाँति बिताया । सोने-जवाहिर की कौन कहे, पति के स्वर्ग-वासी होने के बाद आपने कभी चाँदी का छल्ला तक नहीं पहना । सादे वस्त्र पहने रहती थीं । प्रतिदिन श्रीशांतिनाथजी के मंदिर में प्रातःकाल २-३ घंटे व्यतीत करती थीं। नित्य स्वाध्याय का नियम था। सेठजी के संग्रह किए हुए शास्त्र इनके जीवन के अवलंब थे। आप जैन-धर्म की अनुयायिनी होकर भी किसी धर्म का अपमान नहीं करती थीं। अपमान करना दूर रहा, प्रत्येक धर्म के सच्चे और शांत अनुयायी का आपने सम्मान किया। यह बात आपको अपने पति से प्राप्त हुई थी। आपने पति के बाद छोटे-छोटे बालकों को पाला-पोसा, बड़ा किया, और व्यवहार-निपुण बनाने की भर-सक कोशिश की। सब के विवाह अपने घर की प्रतिष्ठा के अनुसार किए। इस तरह सांसारिक कर्तव्यों को निबाहते हुए घर की बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ाई । आपका व्यवहार सब पर प्रभाव डालनेवाला था । योग्य कार्य-कर्ताओं को आप पूर्ण पुरस्कार देती थीं। आपने एक-एक समय में ३०-३०, ४०-४० हज़ार का पुरस्कार दिया, और अपने मुनीम तथा गुमाश्तों की क़दर की । आप ग़रीब, अनाथ और बेवाओं की भी ख़बर लेती थीं। गुप्त रीति से भी अनेकों की सहायता करती थीं । आपने पाँच बार भारत में तीर्थ-यात्रा की । जगह-जगह धर्मशालाएँ भी बनवाईं। आप आहार, वस्त्र, औषधि आदि का दान किया ही करती थीं । इस तरह आपका जीवन एक उपयोगी और आवश्यक जीवन था।

आपके पुत्र सेठ मानिकचंदजी रायबहादुर, ताज़िरुलमुल्क और वाणिज्य-भूषण हैं। सेठ लालचंदजी वाणिज्य-भूषण बड़े सुयोग्य व्यक्ति हैं। नेमीचंदजी बड़े भारी सज्जन और विचक्षण हैं । पौत्र भँवरलालजी बड़े विचार-शील और सत्पुरुष हैं। ये चारों सज्जन व्यापार में खूब दिलचस्पी लेते हैं। आप केवल कमाने की मशीन नहीं हैं, बल्कि उदार और साहित्य-प्रेमी सज्जन हैं। राजपूताना-साहित्य-सभा के स्थापित होने में आपका बड़ा भारी हिस्सा है। पौत्र विमलचंद और कैलाशचंद पढ़ते-लिखते हैं। दो छोटे-छोटे प्रपौत्र और दो छोटी-छोटी पौत्रियाँ हैं। सब पुत्र-वधू और पौत्र-वधू पढ़ी-लिखी और चतुर हैं । इस प्रकार आपने अपने कुटुंब को सुख-समृद्धि और एकता के सूत्र में बँधा हुआ छोड़कर, एक लाख का दान करके, वैशाख-कृ० ८ रविवार को प्रातःकाल, श्रीशांतिनाथ भगवान् के चरणों की अर्चना में केसर चढ़वाकर, इस नश्वर शरीर को त्याग दिया! इन देवी (मा साहब) के उठ जाने से श्रीयुत मानिकचंदजी, लालचंदजी, नेमीचंदजी और भँवरलालजी के सिर पर से अनन्य छत्र जाता रहा। प्रभु इन्हें धैर्य दें, और स्वर्गीय आत्मा को शांति। पाटन की एक दयालु देवी गईं । प्रभु इस परिवार को उनके चरणों का अनुसरण करने की शक्ति दें।

गिरिधर शर्मा

× × ×

४. स्त्रियों का देश

दक्षिणी अमेरिका में 'पेरेगुए' नाम का एक देश है। उसमें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या इतनी अधिक है कि वह स्त्रियों का देश कहलाता है। एक अमेरिकन यात्री ने उसकी राजधानी के बड़े बाज़ार का हाल इस प्रकार लिखा है—"एक बड़ी-सी चौकोर जगह पर नगर का सब से बड़ा बाज़ार है। सौदा बेचनेवाले पुरुष नहीं, स्त्रियाँ ही हैं। बाज़ार में मछलियाँ, अनेक प्रकार की तरकारियाँ और मांस बहुतायत से था। औरतें रोटियों के ढेर सामने लगाए हुए बेच रही थीं। रोटी के अतिरिक्त मक्खन की थालियाँ, पनीर की तश्तरियाँ और पत्थर के बरतनों में रक्खी हुई बालाई भी बिक रही थी। गन्ने के रस से बनी हुई एक प्रकार की मदिरा भी बिक्री के लिये तैयार थी। स्त्री-सौदागरों और स्त्री-दूकानदारों से बाज़ार भरी हुई थी। ख़रीदने का काम भी औरतें ही कर रही थीं। बाज़ार में इतना शोर-गुल मचा हुआ था कि कानों के परदे फटे जाते थे। वहाँ बाज़ार से ख़रीदने-वालों के यहाँ सामान ले जाने के लिये गाड़ियों या कुलियों का प्रबंध नहीं है। ख़रीदार-स्त्रियाँ अपना सामान रखने के लिये स्वयं टोकरियाँ या बरतन लाती हैं। मालूम होता है, वहाँ इस काम के लिये बड़े-बड़े तसले बहुत पसंद किए जाते हैं। प्रायः प्रत्येक स्त्री एक-एक तसला लिए हुए थी; जिसे वह सिर पर रखकर चलती थी। हाँ, सिर और तसले के बीच में वे एक छोटा-सा रूमाल भी रख लेती हैं, और फिर उसे सँभालने के लिये हाथ लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मध्य और निम्न श्रेणी की स्त्रियाँ नंगे पैर रहती हैं।"

वहाँ की स्त्रियाँ सफ़ेद या किसी हलके रंग का घाँघरा और कामदार कुर्ती पहनती हैं। गरम देश होने के कारण स्त्रियाँ घर में इन दो वस्त्रों के अतिरिक्त और कुछ नहीं पहनतीं। बाहर जाते समय एक सूती ओढ़नी, जो प्रायः सफ़ेद रंग की होती है, इनके ऊपर पहन लेती हैं। इससे उनका सिर और कंधे ढक जाते हैं। वे माँग नहीं काढ़तीं, बालों में कंघी करके और खींचकर पीछे की ओर बाँध लेती हैं। फूल उन्हें बहुत प्रिय हैं—जूड़े और कानों में बहुधा फूल खोंसे रहती हैं। साधारण तौर से स्त्रियाँ बहुत सुंदर होती हैं; पर नंगे पैर चलने से उनके पैरों की उँगलियाँ बहुधा ख़राब हो जाती हैं।

बर्मा की तरह वहाँ भी स्त्री और पुरुष, सभी तंबाकू पीते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रायः कम दिखाई पड़ते हैं, जिनके मुख में सिगरेट या सिगार न लगा हुआ हो।

पुरुषों के संबंध में वही अमेरिकन यात्री लिखता है—"पेरेगुए में इतने कम मनुष्य दिखाई देते हैं कि उनके संबंध में लिखना मैं भूल ही गया था। याद आने पर भी उनके संबंध में मुझे बहुत थोड़ा कहना है। क़द में यद्यपि वे छोटे होते हैं, पर प्रायः ख़ूब हृष्ट-पुष्ट हैं। वे काहिल तो हैं, पर घोड़े की सवारी में बड़े दक्ष हैं। वे सफ़ेद क़मीज़ और ढीले पाजामे पहने हुए नंगे पैर घूमा करते हैं। पर जो अमीर तथा सुशिक्षित हैं, वे योरपियन पोशाक पहनते हैं।"

स्त्रियाँ ही मज़दूरी भी करती हैं। बग़ीचों और खेतों में भी वे ही काम करती हैं। सुबह आठ बजे से लेकर दो बजे तक, जब कि थर्मामीटर का पारा १०० डिग्री से भी ऊपर पहुँच जाता है, प्रायः सभी आराम करते हैं। उस समय भी ये स्त्रियाँ नंगे-पैर और नंगे-सिर धूप में बोझा ढोती हैं, और दूसरे प्रकार के काम करती रहती हैं।

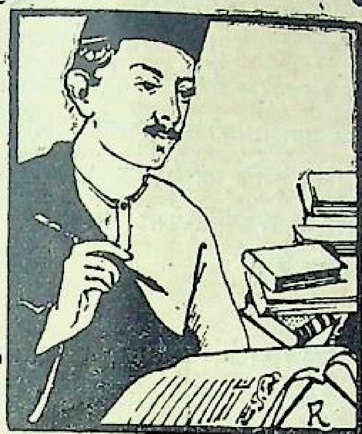
पेरेगुए के स्त्री-प्रधान देश होने का क्या कारण है? युद्ध। सन् १८७० के लगभग इस छोटे-से देश को दक्षिणी अमेरिका के तीन बड़े बड़े देशों के साथ लोहा बजाना पड़ा। उरूगुए, ब्रेज़िल और आरजेंटाइन, इन तीनों देशों ने मिलकर पेरेगुए के साथ पाँच वर्ष तक ऐसा घोर युद्ध किया कि बेचारा तबाह हो गया। आदमियों की कौन कहे, लड़के तक उस युद्ध में बड़ी वीरता से लड़े, और काम आए। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों तथा वृद्ध पुरुषों के अतिरिक्त देश-भर में कोई न रहा। तब से अब तक मनुष्यों की यह कमी बहुत कुछ पूरी हो चुकी है; पर अभी संतोष-जनक नहीं है।

भूपनारायण दीक्षित

× × ×

५. लंदन की अध्यापिकाएँ

लंदन में ४००० महिलाएँ अध्यापन-कार्य से पृथक् की गई हैं। उनमें से जो महिला यह प्रमाणित कर देगी कि वह अपने पति से पृथक् है, उसके साथ रियायत की जायगी; अर्थात् उसे अध्यापन-कार्य देने के लिये पुनर्विचार किया जायगा, और जहाँ तक संभव होगा, उसे वह कार्य पुनः दिया जायगा।



पुस्तक-परिचय

१. पुस्तकें

लाला हरदयाल के स्वाधीन विचार—अनुवादक, संग्रहकर्ता तथा प्रकाशक, श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा बी० ए०, पटकापुर, कानपुर। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या २१२, काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारणतया अच्छी, जिल्द सादी, और मूल्य १)

इस पुस्तक में प्रसिद्ध देश-भक्त लाला हरदयाल के स्वाधीन विचारों तथा तद्विषयक उनके अँगरेज़ी लेखों का अनुवाद है। भारतीय शिक्षित-समाज में लालाजी के इन अँगरेज़ी लेखों का बड़ा आदर है। जिन दिनों ये लेख अँगरेज़ी के 'मॉडर्न रिव्यू' आदि पत्रों में प्रकाशित होते थे, उन दिनों बड़े चाव से पढ़े जाते थे—अँगरेज़ी के पाठकों में सर्वत्र इनकी बड़ी चर्चा रहती थी। हैं भी ये प्रभावोत्पादक। इन्हें पढ़कर ही बहुत-से युवकों में देश-भक्ति का भाव उत्पन्न हुआ है। यह पुस्तक लालाजी के इन्हीं लेखों का संग्रह है। संग्रह अच्छा हुआ है। राष्ट्रीय साहित्य-निर्माण के लिये ऐसे उत्तमोत्तम संग्रह-ग्रंथों की आवश्यकता है। अनुवाद की भाषा सरल और रोचक है। पुस्तक मनन करने और उसके आदेश अमल करने योग्य हैं।

× × ×

स्वामी रामतीर्थ का राष्ट्रीय संदेश—अनुवादक और प्रकाशक दोनों वही। आकार-प्रकार भी वही। पृष्ठ-संख्या १२०, जिल्द सादी, और मूल्य ।।।)

यह पुस्तक परमहंस स्वामी रामतीर्थ के अँगरेज़ी निबंधों का अनुवाद है। ये निबंध स्वामीजी ने उस समय लिखे थे, जब वह अमेरिका में थे, और जब उन्हें अपने वतन—भारत—की याद आती थी, तो उसकी स्मृति में घंटों रोया करते थे। कुछ निबंध तो उन्होंने उसी अवस्था में (रोते हुए) लिखे हैं। ऐसा कौन सहृदय व्यक्ति होगा, जो विदेश जाने पर देश की याद करके अपने हृदय में एक अभूतपूर्व वेदना का अनुभव न करेगा? परंतु जो सच्चे देश-भक्त होते हैं, उनकी आत्माएँ तो ऐसी अवस्था में रो उठती हैं। स्वामी रामतीर्थ परमहंस होकर भी अपूर्व देश-भक्त थे। अँगरेज़ी में तो आपके उपदेशों के संग्रह-स्वरूप कई ग्रंथ हैं। अब हिंदी में भी लखनऊ की रामतीर्थ-पब्लिकेशन-लीग उन्हें प्रकाशित कर रही है। परंतु यह पुस्तक उस समय प्रकाशित हुई थी, जब स्वामीजी के इन लेखों का अनुवाद कहीं प्रकाशित नहीं हुआ था। यह तीसरा संस्करण है। इसकी भाषा सरल और रोचक है। अँगरेज़ी-कविताओं का अनुवाद स्वर्गीय 'पूर्ण' कवि का किया हुआ है। अतएव उनमें मौलिकता का आनंद आता है। पुस्तक संग्रहणीय है।

× × ×

देश-भक्त मेज़िनी—प्रकाशक, श्रीसतीदास मूदड़ा, 'प्रणवीर'-पुस्तक-माला, नागपुर; लेखक, श्रीयुत राधामोहन-गोकुलजी। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, पृष्ठ-संख्या २१६, और मूल्य १।)

यह पुस्तक दृढ़ देश-भक्त, इटली के उद्धारकर्ता महात्मा

मेज़िनी का जीवन-चरित है । इटली को स्वतंत्र करने में जितना त्याग, कष्ट और बलिदान महात्मा मेज़िनी ने किया, उतना इटली के देश-भक्तों में से और किसी ने नहीं किया । इसीलिये महात्मा मेज़िनी को 'इटली का उद्धार-कर्ता' कहा जाता है । महामना मेज़िनी केवल दृढ़ देश-भक्त ही न थे, एक दार्शनिक महात्मा भी थे । उनका सिद्धांत था—'कोई भी मनुष्य तब तक देश-भक्त नहीं हो सकता, जब तक कि वह मनुष्य-भक्त न हो ।' उन्हीं महात्मा मेज़िनी का यह जीवन-चरित है । ऐसे जीवन-चरित्र युवकों के चरित्र-निर्माण में बड़े सहायक होते हैं। लेखक का श्रम प्रशंसनीय है । हिंदी-भाषा-भाषी युवकों को तो यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए ।

× × ×

भारत-भक्त एंड्यूज़—प्रकाशक, सुब्बय्या शास्त्री न्याय-तीर्थ, गांधी-हिंदी-पुस्तक-भंडार, कालबादेवी-रोड, बंबई ; लेखक, श्रीयुत 'एक भारतीय हृदय' । आकार २०×३० सोलह-पेजी । पृष्ठ-संख्या ३३२, काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, और मूल्य विना जिल्द का २)

ऐसा कौन शिक्षित भारतीय होगा, जो भारत-भक्त महामना एंड्रयूज़ के नाम से परिचित न हो ? कारण, महात्मा एंड्रयूज़ ने भारत की अतुलनीय सेवा की है । आपके विषय में महात्मा गांधी का विश्वास है कि 'सी० एफ़० एंड्रयूज़ से अधिक सच्चा, उनसे बढ़कर विनीत और उनसे अधिक भारत-भक्त इस भूमि में दूसरा देश-सेवक विद्यमान नहीं ।' आपकी भारत-भक्ति का इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है ? यह पुस्तक आप ही का जीवन-चरित्र है । लेखक महाशय हिंदी के सुलेखक हैं, और अपने चरित-नायक के विषय में बहुत कुछ जानकारी भी रखते हैं । अतएव आप महामना एंड्रयूज़ का जीवन-चरित्र लिखने के उपयुक्त अधिकारी भी थे । आपका लिखा यह जीवन-चरित वास्तव में पढ़ने योग्य हुआ है । पुस्तक संग्रहणीय है ।

× × ×

राजनीति-विज्ञान—प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, १२६ हरिसन-रोड, कलकत्ता ; लेखक, सुखसंपत्तिराय भंडारी । आकार २०×३० सोलह-पेजी । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी । पृष्ठ-संख्या २२४, और मूल्य १।०)

हिंदी में राजनीति-शास्त्र-विषयक ग्रंथों का अभाव है, यद्यपि युग राजनीतिक है । अँगरेज़ी के विभिन्न ग्रंथों के आधार पर इस पुस्तक की रचना की गई है । राजनीतिक साहित्य-निर्माण के लिये ऐसे ग्रंथों की बड़ी आवश्यकता है । अब तक लेखक महाशय की कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, फिर भी, खेद है कि यह पुस्तक भाषा-दोष से ख़ाली नहीं । पुस्तक राजनीति-प्रेमी पाठकों के पढ़ने और मनन करने योग्य है ।

× × ×

सुहागिनी (उपन्यास)—प्रकाशक, हरिदास ऐंड कंपनी, कलकत्ता ; लेखक, पं० चंडिकाप्रसाद मिश्र । आकार २०×३० सोलह-पेजी । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, पृष्ठ-संख्या ३३६, और मूल्य सादी का ३।)

यह एक सामाजिक मौलिक उपन्यास है । इसमें हिंदू-समाज की जटिल रूढ़ियों पर स्वतंत्रता-पूर्वक प्रकाश डाला गया है । घटनाओं के वर्णन के साथ-साथ लेखक ने उनके संबंध में अपने व्यक्ति-गत विचार मर्मस्पर्शिनी भाषा में प्रकट किए हैं । लेखक के उद्‌गारों पर पाठक का हृदय सचमुच द्रवीभूत हो जाता है । भाषा बड़ी उच्च और हृदय-ग्राही है । अतुल, सावित्री तथा कुमुदिनी का चरित्र अच्छा चित्रित हुआ है । हिंदू-समाज-सुधार के लिये ऐसे उपन्यासों की बड़ी आवश्यकता है । इसमें विभिन्न घटनाओं के १८ सादे तथा २ रंगीन चित्र भी हैं, जो साधारणतः अच्छे हैं । इसकी भूमिका लेखक के परम मित्र 'वर्तमान'-संपादक पं० रमाशंकर अवस्थी ने लिखी है । उन्हीं को यह उपन्यास समर्पित भी हुआ है । उनका एक चित्र भी है । इसके नाम और शैली बँगला-उपन्यासों के ढंग की है । कारण यह है कि इसके पूर्व मिश्रजी के कई बँगला से अनुवादित उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं । यह आपकी मौलिक कृति है, तथापि इसका बँगला-शैली पर प्रवाहित होना एक प्रकार से स्वाभाविक था । हमारा ख़याल है, यदि मिश्रजी ने इसे हिंदी की शैली पर लिखा होता, तो इसका हिंदी-संसार में कहीं अधिक आदर होता । आशा है, मिश्रजी अब से जो उपन्यास लिखेंगे, उनमें इस बात का ध्यान रक्खेंगे । हम इस क्षेत्र में मिश्रजी का स्वागत करते हैं ।

× × ×

मिलन—प्रकाशक और लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी,

हिंदी-मंदिर, प्रयाग । आकार २०×३० सोलह-पेजी । कागज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, पृष्ठ-संख्या ४०, और मूल्य ।)

यह एक देश-भक्ति-पूर्ण, कवितामय प्रेम-कहानी है । पथिक की भाँति इसकी भी वर्णन-शैली बड़ी रोचक और हृदयग्राही है । हिंदी-संसार में त्रिपाठीजी की इस पुस्तक का भी बड़ा आदर है । ४ वर्ष के अंदर इसके चार संस्करण हो चुके हैं । कविता-प्रेमियों को इसका अवश्य अवलोकन करना चाहिए ।

× × ×

भीष्म-पितामह—प्रकाशक, श्रीयुत दीनानाथ सिगतिया, हिंदी-साहित्य-प्रचार-कार्यालय, १६२-१६४, हरिसन-रोड, कलकत्ता । लेखक, श्रीशिवपूजनसहाय हिंदी-भूषण । आकार २०×३० सोलह-पेजी । कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १००, और मूल्य ।।=)

यह नीति-शास्त्र-निष्णात बाल-ब्रह्मचारी भीष्म-पितामह का संक्षिप्त जीवन-चरित है । लेखक ने इसे कहानी के रूप में लिखा है, अतएव वर्णन-शैली बड़ी रोचक हो गई है । भाषा भी सुंदर है । अंदर ५ सादे चित्र हैं । चौथे चित्र में कृष्ण का अपना प्रण छोड़कर, रथ का पहिया लेकर, भीष्म पर आक्रमण करना तथा पाँचवें चित्र में अर्जुन को भीष्म की शर-शय्या के सिरे को बाणों द्वारा उचकाते हुए देखकर उनकी ओर कृष्ण की विभिन्न भाव-पूर्ण मुख-मुद्रा का चित्रण बड़ा हृदयग्राही है । पुस्तक संग्राह्य है ।

× × ×

प्रेम—प्रकाशक और अनुवादक, श्रीयुत सिंघई पन्नालाल जैन, हिंदी-पुस्तक-भंडार, ९३, लोअर चीतपुर-रोड, कलकत्ता । आकार २०×३० सोलह-पेजी । कागज, छपाई-सफ़ाई सुंदर, पृष्ठ-संख्या ५६, और मूल्य ।।)

यह पुस्तक श्रीयुत अश्विनीकुमार दत्त की बँगला-पुस्तक का हिंदी-अनुवाद है । सज-धज तथा शैली में प्रेम-मंदिर, आरा की प्रेमकली की नक़ल की गई है । टाइटिल पेज पर रामेश्वरप्रसाद वर्मा द्वारा अंकित एक चित्र है । पुस्तक अच्छी है ।

× × ×

गीता की भूमिका—प्रकाशक, श्रीकृष्ण पांडेय, भारत-पुस्तक-एजेंसी, ११, नारायणप्रसाद बाबू-लेन, कलकत्ता । अनुवादक, पं० देवनारायण द्विवेदी । आकार २०×३० सोलह-पेजी । कागज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, पृष्ठ-संख्या ११०, और मूल्य १)

योगी अरविंद ने अलीपुर के कारा-गृह से मुक्त होकर अपने अँगरेज़ी 'कर्मयोगिन्' तथा बँगला 'धर्म' में गीता की नवीन व्याख्या, धारावाहिक रूप में, प्रकाशित की थी । यह पुस्तक उसी व्याख्या का अनुवाद है । अरविंद के विचार और उनकी भाषा इतनी उच्च होती है कि साधारण पाठक उसे समझने में प्रायः अक्षम रहते हैं । इस अनुवाद के भी इस दोष से रिक्त होने में संदेह है । क्या ही अच्छा होता कि अनुवादक महाशय बँगला-भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त करके इस महत् कार्य को हाथ में लेते !

× × ×

भगवान् की लीला—प्रकाशक, श्रीबजरंगलाल लोहिया, हिंदी-साहित्य-कार्यालय, ५१-५२, बड़तल्ला-स्ट्रीट, कलकत्ता । अनुवादक, श्री 'आधार-यंत्र' । आकार १७×२७ सोलह-पेजी । कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १३४, और मूल्य ।।)

यह पुस्तक भी योगी अरविंद के आध्यात्मिक निबंधों का अनुवाद है । अनुवाद साधारणतः अच्छा हुआ है । भाषा कहीं-कहीं हिंदी-महाविरों से दूर हट गई है । पुस्तक अच्छी है । अध्यात्म-प्रेमी पाठकों के पढ़ने योग्य है । प्रकाशक महोदय ने आठ आना पुस्तक-माला प्रकाशित करना आरंभ किया है । यह उस माला का प्रथम पुष्प है । प्रयास अच्छा है ।

× × ×

प्रजा के अधिकार—प्रकाशक वही । आकार-प्रकार भी वही । अनुवादक, श्रीप्रजावादी । पृष्ठ-संख्या १४२, कागज, छपाई-सफ़ाई पूर्ववत्, और मूल्य ।।)

यह उक्त माला का द्वितीय पुष्प है । इसमें व्यक्ति-गत स्वतंत्रता, अदालतों में जाँच की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता, सभा करने का अधिकार, शस्त्र और सेना में भरती होने की स्वतंत्रता तथा पबलिक सर्विस में स्वतंत्रता आदि विषयों पर कुल ६ निबंध हैं ।

इन निबंधों के मूल-लेखक श्रीयुत एस्० सत्यमूर्ति हैं । सत्यमूर्ति महाशय कांग्रेस के अच्छे व्याख्याता तथा राजनीति के अच्छे पंडित हैं । अतएव आपके विचार मनन करने के योग्य हैं ।

× × ×

वंदी-जीवन—प्रकाशक, श्रीजितेंद्रनाथ सान्याल बी० ए०, १७३, चक, इलाहाबाद। अनुवादक, पं० लक्ष्मीप्रसाद पांडेय। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, पृष्ठ-संख्या १०८, और मूल्य ॥।)

इस पुस्तक का दूसरा नाम है, उत्तर-भारत में क्रांति का उद्योग। इसमें यह दिखलाया गया है कि योरपियन महायुद्ध के समय भारत में क्रांति की कैसी तैयारी की गई थी। इसके मूल-लेखक श्रीयुत शचींद्रनाथ सान्याल हैं। सान्याल महाशय को इस विषय में बड़ी जानकारी प्राप्त है। कारण, वह भी इसी कारण वंदी-जीवन भोग चुके हैं। यह प्रथम भाग है। इसी विषय में अभी इस पुस्तक के दो भाग और प्रकाशित होंगे। उनमें न केवल उत्तर-भारत के, बल्कि समस्त ब्रिटिश-शासित भारत के अन्यान्य प्रदेशों की तद्विषयक अवस्था पर प्रकाश डाला जायगा। वंदी-जीवन का यह प्रथम भाग रोचक, देश-भक्ति-पूर्ण तथा रोमांचकारी है। असल में यह भाग मूल-वृत्तांत की भूमिका-मात्र है।

× × ×

देश-भक्त पार्नेल—प्रकाशक, पं० विश्वंभरनाथ वाजपेयी। लेखक, पं० चंद्रवलिमणि त्रिपाठी बी० ए०। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारणतः अच्छी, पृष्ठ-संख्या १३६, और मूल्य ।≈)

कोई ग्यारह वर्ष हुए होंगे, प्रयाग के स्वर्गीय पं० ओंकारनाथ वाजपेयी ने ओंकार-आदर्श-चरितमाला नाम से एक पुस्तक-माला प्रकाशित करना आरंभ किया था। वाजपेयीजी ने अपने उद्योग के बल पर इसकी अच्छी उन्नति की थी। आपने इस माला में संसार के ४०० महात्माओं के जीवन-चरित प्रकाशित करने का संकल्प किया था। खेद है, बीच ही में आपने स्वर्ग-यात्रा कर दी। अब तक इस माला में ३२ चरित प्रकाशित हो चुके हैं। यह ३०वाँ पुष्प आयर्लैंड के प्रसिद्ध देश-भक्त पार्नेल का जीवन-चरित्र है। आयर्लैंड में मिस्टर चार्ल्स स्टुअर्ट ने बड़ा काम किया है। लेखक ने आपका यह जीवन-चरित मिस्टर आइलारी ओकामन-लिखित पार्नेल महाशय के विस्तृत जीवन-चरित्र के आधार पर लिखा है। नवयुवकों को इसका अध्ययन करके अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

× × ×

संसार का सर्व-श्रेष्ठ महापुरुष—प्रकाशक, श्री-बैजनाथ केडिया, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, १२६, हरिसन-रोड, कलकत्ता। संग्रहकर्ता तथा अनुवादक, पं० छविनाथ पांडेय बी०ए०, एल्-एल्०बी०। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या १४८, और मूल्य ॥)

महात्मा गाँधी के विषय में प्रसिद्ध विदेशी समाचार-पत्रों तथा गण्य-मान्य पुरुषों की क्या सम्मति है, इसी का दिग्दर्शन कराना इस पुस्तक का मुख्य विषय है। सम्मतियाँ विदेशीय होने के कारण अँगरेज़ी में थीं। इसमें उन सब का अनुवाद है। इसके आद्योपांत अवलोकन से वास्तव में महात्माजी को संसार का सर्व-श्रेष्ठ महा-पुरुष स्वीकार करना पड़ता है। अधिकांश भारतीय जनता तो यों ही महात्माजी पर इतनी भक्ति रखती है, जितनी ईश्वर के अतिरिक्त वह और कदाचित् किसी पर नहीं रखती। उनका त्याग, उनकी तपश्चर्या, उनकी देवोपम प्रकृति और निस्स्वार्थ स्वदेश-सेवा ने भारतवासियों के हृदयों में इतना विशाल स्थान प्राप्त कर लिया है कि वे उन्हें ऋषिवर् मानते हैं। हाँ, भारत में कुछ पुरुष ऐसे भी मिलेंगे, जिन्हें महात्माजी की महती तपश्चर्या पर विश्वास नहीं, जिनका हृदय उनके बलि-दान पर अभी तक नहीं पसीजा। सो ऐसे अंध नरों के लिये अकेली इस पुस्तक का क्या, ऐसी सहस्रों पुस्तकों का अवलोकन व्यर्थ है। कारण, स्वार्थ के नाम पर उन्होंने अपनी आत्मा को बेच दिया है। जब तक उनके व्यक्ति-गत स्वार्थों का नाश नहीं होगा, तब तक उनका हृदय महात्माजी की महत्ता को कभी स्वीकार नहीं कर सकता। पुस्तक अच्छे ढंग से लिखी गई है। अनुवाद की भाषा अच्छी है, हालाँकि कहीं-कहीं उसमें प्रांतिकता का दोष पाया जाता है। उदाहरण—१००वें पेज की ७वीं पंक्ति का "और बदन पतली है" वाक्य। पुस्तक अध्ययन करने योग्य है। हिंदी-पुस्तक-एजेंसी की सस्ती ग्रंथ-माला का यह तृतीय पुष्प है। ऐसी सस्ती पुस्तकें प्रकाशित करने के लिये एजेंसी के संचालक केडिया महाशय धन्यवाद के पात्र हैं।

× × ×

श्रीकृष्ण-विज्ञान—प्रकाशक, श्रीपारीक-हितकारिणी-सभा, जयपुर। लेखक, पुरोहित श्रीयुत रामप्रताप। आकार १७×२७ सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या लगभग २००, और मूल्य १॥)

यह श्रीमद्भगवद्गीता का हिंदी-पद्यानुवाद है। पद्यों की

भाषा बोल-चाल की, खड़ी बोली, है। अनुवाद अच्छा हुआ है। एक श्लोक का अनुवाद यथासंभव एक ही छंद में किया गया है, और उसके पढ़ने से श्लोक का संपूर्ण भाव हृदयंगत हो जाता है। संस्कृत से अनभिज्ञ होने पर भी जो गीता का पाठ नित्य करते हैं उन्हें इसका अवश्य अवलोकन करना चाहिए। अच्छा होता कि पुस्तक के प्रारंभ में पुस्तक-विषयक गण्य-मान्य सज्जनों तथा विद्वानों की जो सम्मतियाँ दी गई हैं, वे अंत में, पाठ्य-विषय से अलग, दी जातीं।

× × ×

मायावी (नाटक)—प्रकाशक और लेखक, श्रीयुत ज्ञानदत्त सिद्ध, श्रीसिद्ध-हिंदी-प्रचारक-कार्यालय, जयपुर (राजपूताना)। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, पृष्ठ-संख्या ७६, और मूल्य ।।)

लेखक के कथनानुसार यह एक सामाजिक नाटक है। भाषा में प्रायः सर्वत्र सिद्ध महाशय के प्रांत—जयपुर (राजपूताना)—की भाषा की पुट है। नाटक के परिचय में लिखा है—अतुल शिक्षा-प्रद। सो इस नाटक के खेले जाने पर यह अतुल शिक्षा-प्रद सिद्ध होगा, इसमें संदेह है। नाट्य-शास्त्र तथा नाट्य-साहित्य का अध्ययन और अनुभव प्राप्त किए विना इस प्रकार मौलिक नाटक लिखने का प्रयास करना अनधिकार-चेष्टा है।

× × ×

स्वास्थ्य-कुंजी—लेखक तथा प्रकाशक, डॉक्टर बाबूराम गर्ग एल्०एम्० एस्०, मुजफ़्फ़रनगर। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या १७४, और मूल्य १।)

इसमें स्वास्थ्य-रक्षण के सिद्धांतों के अनुसार भोजन, वायु, जल, व्यायाम, मकान, स्त्रियाँ और स्वास्थ्य, व्यक्ति-गत स्वास्थ्य, लगनेवाले रोग और उनसे बचने के उपाय तथा मादक-वस्तु-निषेध पर लेखक ने अपने अनुभव-पूर्ण विचार प्रकट किए हैं। पुस्तक अच्छी है। विचार उत्तम हैं। गृहस्थों को इसके अवलोकन से अवश्य लाभ उठाना चाहिए। भाषा साधारण है; परंतु विराम तथा अर्ध-विराम की अशुद्धियाँ सर्वत्र—प्रायः प्रत्येक वाक्य में—भरी पड़ी हैं।

× × ×

भारत में कृषि-सुधार—प्रकाशक, श्रीयुत बैजनाथ केडिया, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, १२६, हरिसन-रोड, कलकत्ता। लेखक, प्रोफ़ेसर दयाशंकरजी दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २७६, और मूल्य १।।)

भारतीय किसानों की दशा कितनी शोचनीय है, यह किसी से छिपा नहीं। किसी भी सभ्य देश के किसान इतने दरिद्र नहीं हैं, जितने कि भारतीय किसान। परंतु ऐसे कितने हृदय हैं, जो भारतीय किसानों की इस दुरवस्था पर तरस खाकर अपना समय उनके सुधार के उपायों तथा उन्हें संपन्न बनाने के साधनों के अन्वेषण में लगाते हैं? कितने विद्वानों का ध्यान भारत की इस ७२ फ़ीसदी जन-संख्या के दुख-दर्दों की ओर आकृष्ट हुआ है? भारतीय किसानों की दरिद्रता का रोना तो वर्षों से रोया जा रहा है, परंतु उनकी इस दरिद्रता को दूर करने के साधनों के अन्वेषण में कितने विद्वानों ने अपनी निद्रा भंग की है? खेद है, उत्तर नितांत असंतोष-प्रद मिलता है। समय के प्रवाह ने—और किसान-समुदाय की इस नितांत अधोगति ने भी—कुछ विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है। हमें हर्ष है कि उन विद्वानों में इस पुस्तक के लेखक श्रीयुत पं० दयाशंकरजी दुबे का एक विशेष स्थान है। आपने कृषक-समस्या का अनुभव, और अध्ययन न केवल ग्रंथों द्वारा प्राप्त किया है, बल्कि गाँवों में जा-जाकर उनकी दुर्दशा स्वयं अपनी आँखों देखी है, और उनकी दुरवस्था का सच्चा अनुभव प्राप्त किया है। महीनों तक, स्वतंत्र रूप से, आप केवल यही सोचते रहे हैं कि किस प्रकार—किन साधनों के द्वारा—भारतीय किसानों की आर्थिक दशा शीघ्र सुधारी जा सकती है। इसके अतिरिक्त, आपने तद्विषयक लगभग ४३ हिंदी तथा अँगरेज़ी के ग्रंथों, ११ कमीशन-रिपोर्टों, १९ भारत-सरकार तथा प्रांतीय सरकार की घोषणाओं तथा १९ हिंदी-अँगरेज़ी के पत्रों का अध्ययन करके, उनकी सहायता से, भारतीय किसानों की आर्थिक दशा को शीघ्र सुधारने की यह व्यावहारिक योजना तैयार की है। इसमें संदेह नहीं कि आपने इसके तैयार करने में जो श्रम किया है, वह सर्वथा आदरणीय है। हम भारत के घर-घर में—विशेषकर किसानों में—इसका अध्ययन तथा मनन किए जाने की कामना रखते हैं।

× × ×

जातियों को संदेश—प्रकाशक, नाथूराम प्रेमी, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग़, बंबई ; अनुवादक, श्रीयुत ठाकुर कल्याणसिंहजी शेखावत बी० ए० । आकार २०×३० सोलह-पेजी । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ११८, और मूल्य ॥-)

फ़्रांस-देशवासी महात्मा पाल रिचर्ड ने अँगरेज़ी में "To the Nations"-नामक एक बहुत सुंदर ग्रंथ लिखा है । रिचर्ड महाशय ने इस ग्रंथ में समस्त जातियों को—विशेषकर योरपियन जातियों को—धर्म-नीति-सार विश्व-बंधुत्व के सिद्धांत का संदेश देकर विश्व-व्यापी शांति की आकांक्षा प्रकट की है । कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर ने रिचर्ड महाशय के विश्व-व्यापी शांति के उदार और उच्च भावों पर अपनी सार-गर्भित भूमिका लिखी है । पुस्तक दो खंडों में विभक्त है । पहले खंड के विषय गत कल का झूठ, आज का भ्रम, आगामी कल (भविष्य) की वास्तविकताएँ, क़ैदी जातियों का दिन, विशाल संध्या, भावी उषःकाल हैं, और दूसरे खंड के—जातियों का क़ानून, जातियों का आदर्श, जातियों की उन्नति, जातियों के अधिकार, संसार की शांति तथा मनुष्य-ज्ञान । इसमें इन्हीं विषयों पर छोटे-छोटे सार-गर्भित तथा दार्शनिक निबंध हैं । इनमें वर्णित रिचर्ड महाशय के उदार विचारों की जितनी सराहना की जाय, थोड़ी है । परंतु, हमें तो विश्व-व्यापी शांति का सुखद भविष्य अभी स्वप्नवत् प्रतीत होता है । कारण, हम देखते हैं कि अभी तक Might is right (जिसकी लाठी उसकी भैंस) के सिद्धांत का पूर्ववत् बोल-बाला बना हुआ है । जब तक संसार का कोई भी राष्ट्र पराधीन रहेगा, जब तक सत्ता के नाम पर मनुष्यता के अधिकारों की हत्या होती रहेगी, तब तक विश्व-व्यापी शांति स्वप्न है—मृग-तृष्णा है । भगवान् करे कि निकट भविष्य आशा-पूर्ण हो, भारत और भारतेतर राष्ट्र स्वाधीन हों, तभी हम इस विश्व-व्यापी शांति की आकांक्षा के फलवती होने की आशा कर सकने में समर्थ होंगे, इससे प्रथम नहीं । पुस्तक का अनुवाद अच्छा हुआ है । उच्च-शिक्षा-प्राप्त नवयुवकों को इसके अध्ययन से अवश्य लाभ उठाना चाहिए ।

× × ×

महावीर गेरीबाल्डी—प्रकाशक, साहित्य-परिषद्, गुरुकुल-विश्व-विद्यालय, काँगड़ी । लेखक, श्रीइंद्र विद्या-वाचस्पति । आकार २०×३० सोलह-पेजी । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारणतया अच्छी, पृष्ठ-संख्या १९६, और मूल्य १।)

कदाचित् ऐसा कोई भी शिक्षित भारतीय न होगा, जो स्वाधीनता के परम पुजारी, वीर योद्धा, इटली के महामना गेरीबाल्डी के नाम से परिचित न हो । इटली को स्वतंत्र करने में जितना त्याग और बलिदान महात्मा मेज़िनी का है, गेरीबाल्डी की वीरता भी उससे कम आदरणीय नहीं । बस, ये दो ही मुख्य योद्धा थे, जिन्होंने इटली को स्वतंत्र करने के प्रयत्नों में ही अपने जीवन की वास्तविक सार्थकता का अनुभव किया । प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं वीर गेरीबाल्डी का जीवन-चरित्र है । ऐसे महापुरुषों के जीवन-चरित्र नवयुवकों के लिये विशेष शिक्षा-प्रद होते हैं । यह जीवन-चरित्र भी अच्छे ढंग से लिखा गया है । भाषा रोचक और मर्म-स्पर्शिनी है । पुस्तक के अंदर वीर गेरीबाल्डी के चित्र के अतिरिक्त महापुरुष महात्मा मेज़िनी, महाकवि अलक्रायरी, धुरंधर लेखक मनज़ोनी, प्रजापति मैनिन, तत्त्व-दर्शी गयोबर्टी, नीति-धुरंधर कावूर तथा राजा विक्टर इमैनुअल के ८ चित्र हैं । नवयुवकों को इसका अध्ययन कर अवश्य लाभ उठाना चाहिए ।

× × ×

उत्तरी ध्रुव की भयानक यात्रा – प्रकाशक, बेलवेडियर-स्टीम-प्रिंटिंग-वर्क्स, इलाहाबाद । लेखक, पं० रामनरेशजी त्रिपाठी । आकार २०×३० सोलह-पेजी । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ संख्या १२०, और मूल्य ।।)

अँगरेज़-जाति अनुसंधान से कितना प्रेम रखती है, यह उत्तरी ध्रुव की भयानक यात्रा से भली भाँति स्पष्ट है । इस यात्रा में अँगरेज़ यात्रियों ने नाना प्रकार के कष्ट उठाए । इस पुस्तक में इसी यात्रा की कष्ट-कहानियों का वर्णन किया गया है । त्रिपाठीजी ने इसे एक अँगरेज़ी पुस्तक के आधार पर लिखा है । उस पुस्तक का नाम भी प्रकट कर दिया जाता, तो अच्छा होता । पुस्तक अच्छे ढंग से लिखी गई है । भाषा रोचक है । आपत्ति आने पर मनुष्य को धैर्य और साहस के साथ उसका किस प्रकार सामना करना चाहिए, पाठकों को इसके अध्ययन से यह पाठ अवश्य लेना चाहिए ।

× × ×

टॉलस्टॉय की आत्मकहानी – प्रकाशक, चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य, ज्ञान-प्रकाश-मंदिर, पो० माछरा,

जिला मेरठ। अनुवादक, श्रीयुत उमरावसिंहजी कारुणिक बी० ए०। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ९४, और मूल्य ॥=)

यह पुस्तक टॉलस्टॉय की संसार-प्रसिद्ध पुस्तक My Confession-नामक अँगरेज़ी पुस्तक का हिंदी-अनुवाद है। प्रारंभ के १६ पृष्ठों में उनका संक्षिप्त जीवन-परिचय भी दे दिया गया है। महात्मा टॉलस्टॉय के इस पुस्तक में वर्णित विचार सर्वथा आदरणीय हैं। अनुवाद की भाषा कहीं-कहीं खटकती है। भूमिका की १२वीं पंक्ति का "जिस दशा का चित्र टॉलस्टॉय ने इस पुस्तक में खैंचा है" वाक्य यदि इस प्रकार होता 'टॉलस्टॉय ने इस पुस्तक में जिस दशा का चित्र खींचा है", तो अच्छा था। फिर भी पुस्तक महत्त्व-पूर्ण है। टॉलस्टॉय के विचारों से परिचय प्राप्त करने के उत्सुक पाठक इसका अवलोकन कर लाभ उठा सकते हैं।

× × ×

रणधीर और प्रेम-मोहिनी—लेखक, स्वर्गीय लाला श्रीनिवासदासजी। प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, १२६, हरिसन-रोड, कलकत्ता। मूल्य ॥=); आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या १४८, काग़ज़ ऐंटिक और छपाई-सफ़ाई सुंदर।

लाला श्रीनिवासदास भारतेंदु-काल के लेखक थे। इन्हें कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। यह नाटक वियोगांत है। लालाजी ने इसमें बेईमान ख़ुशामदी नौकरों का अच्छा ख़ाका खींचा है। सच्चे मित्र का चरित्र भी अच्छा अंकित किया है। प्लॉट पुराने ढर्रे का होने पर भी मनोरंजक है। नाटक का यह दूसरा संस्करण है, और अर्से के बाद हुआ है। एक प्राचीन सुलेखक की कीर्ति को पुनरुज्जीवित करके हिंदी-पुस्तक-एजेंसी ने प्रशंसनीय कार्य किया है। अनेक नवीन लेखक लालाजी का नाम भी शायद न जानते होंगे। उन्हें यह नाटक अवश्य देखना चाहिए।

× × ×

अत्याचार का परिणाम—लेखक, पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक। प्रकाशक, भीष्म ऐंड ब्रदर्स, पटकापुर, कानपुर। मूल्य ॥।-); आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या १२८। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी।

यह एक सामाजिक नाटक है। लेखक ने एक बँगला-नाटक के आधार पर इसकी रचना की है। प्लॉट, भाषा, कल्पना आदि सब सामग्री प्रभावोत्पादक है। गान कुछ और अच्छे होते, तो अच्छा होता। कहीं-कहीं कुछ अस्वाभाविक हो गया है। जैसे मामा का लोभवश अपनी बहन, बहनोई और भांजों से अत्यधिक निष्ठुरता का व्यवहार करना। तथापि नाटक अच्छा है। स्टेज पर सफलता के साथ खेला भी जा चुका है।

× × ×

ओड़छे की रानी—लेखक, शिवनारायण श्रीवास्तव (नयन), और प्रकाशक, श्रीकैलास-साहित्य-मंदिर, चिरगाँव, झाँसी। पृष्ठ १२०, और आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़ ऐंटिक; छपाई-सफ़ाई अच्छी। मूल्य ।।)

यह बुंदेलखंड-ग्रंथमाला का पहला ग्रंथ है। सत्य-घटना-मूलक धार्मिक नाटक है। नाटक-रूप में लिखा जाने पर भी नाटक नहीं कहा जा सकता। कृष्ण-भक्त ओड़छे के राजा मधुकरशाह और राम-भक्त उनकी रानी की भक्ति को लेकर इसकी रचना की गई है। हमारी राय में नयनजी कविता के मैदान में ही अधिक अग्रसर हों, तो अच्छा हो। नाटक लिखना सब का काम नहीं है। नाटक का एक उद्देश्य मनोरंजन भी है—कोरी वैराग्य और भक्ति की बातें लिख देने से काम नहीं चलता। पढ़ने के लिये नाटक बुरा नहीं है। खेलने के लायक़ होने में संदेह है।

× × ×

२. पत्र-पत्रिकाएँ

कवि—मासिक। संपादक, कविवर 'त्रिशूल'; प्रकाशक, श्रीयुत रामनारायण रावत, सरहरी, पो० पीपीगंज, गोरखपुर। आकार २०×३० अठ-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ४०, और वार्षिक मूल्य ३)

इसको प्रकाशित होते यद्यपि लगभग ढाई वर्ष हो गए, तथापि अनियमित रूप से प्रकाशित होने के कारण यह कुछ विशेष उन्नति नहीं कर सका। अब छपने का प्रबंध संतोष-जनक हो गया है। आशा है, साहित्य-मर्मज्ञ, सुप्रसिद्ध सुकवि त्रिशूलजी की संपादकता में 'कवि' उत्तरोत्तर उन्नति करता रहेगा। छपने के स्थान-परिवर्तन के साथ-साथ अब इसका रूप, रंग-ढंग तथा संपादन भी पहले की अपेक्षा अधिक रोचक हो गया है। वैशाख का अंक इस समय हमारे सामने है। इस अंक में साहित्य और युगधर्म-नामक लेख छोटा, किंतु सुंदर और सुपाठ्य

है। कविताएँ भी अच्छी हैं। विनोद की भी अच्छी सामग्री है। हम इसकी हृदय से उन्नति चाहते हैं। कविता-प्रेमियों को इसे अवश्य अपनाना चाहिए।

× × ×

निगमागम-चंद्रिका—मासिक। प्रकाशक, श्रीयुत एच्० एन्० बागची, भारतधर्म-प्रेस, बनारस। संपादक का नाम लिखा नहीं। आकार २२×२९ अठ-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या २८, और वार्षिक मूल्य २॥)

यह श्रीभारतधर्म-महामंडल की सचित्र त्रैमासिक मुख-पत्रिका है। इसके लेख धार्मिक तथा कविताएँ धार्मिक और साहित्यिक रहती हैं। स्वामी दयानंदजी के लेख प्रत्येक अंक में रहते हैं। धार्मिक साहित्य के प्रेमी इसका अवलोकन कर लाभ उठा सकते हैं।

× × ×

एज्युकेशन—अँगरेज़ी मासिक। संपादक, श्रीयुत देवी-प्रसाद खत्री। प्रकाशक, श्रीयुत विश्वेश्वरप्रसाद, जेनरल सेक्रेटरी यू० पी० सेकंडरी एज्युकेशन एसोसिएशन, प्रयाग। आकार २०×२६ अठ-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारणतः अच्छी। पृष्ठ-संख्या ४८, और मूल्य ३) वार्षिक। ५०) या इससे कम वेतन पानेवाले शिक्षकों से २)

× × ×

यह यू० पी० सेकंडरी एज्युकेशन एसोसिएशन का मासिक मुख-पत्र है। इसमें शिक्षा-संबंधी उपयोगी और गंभीर लेख रहते हैं। अँगरेज़ी हाई स्कूलों के शिक्षकों को इसे अवश्य अपनाना चाहिए।

× × ×

कॉलिजियन—अँगरेज़ी पाक्षिक। संपादक और प्रकाशक, श्रीयुत एन्० एन्० दे, ३३, डिक्सन-लेन, कलकत्ता। आकार २०×३० अठ-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ४०, और मूल्य ६) वार्षिक।

इसमें उच्च शिक्षा-संबंधी, स्वतंत्र विचारों से पूर्ण, सार-गर्भित लेख रहते हैं। संपादन अच्छा होता है। कॉलिजिएट विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को इसका अवश्य अवलोकन करना चाहिए।

लेबर—अँगरेज़ी मासिक। संपादक और प्रकाशक, श्रीयुत निर्मलचंद्र सेन गुप्त बी० ए०, १२, छक्कू खानसामा-लेन, कलकत्ता। आकार २०×३० अठ-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या २८, और मूल्य ४) वार्षिक।

यह बंगाल तथा आसाम प्रांत के डाक तथा रेलवे मेल सरविस एसोसिएशन का मासिक मुख-पत्र है। इसमें डाक-विभाग तथा रेलवे मेल सरविस विभाग से संबंध रखनेवाले लेखों के अतिरिक्त संघ-शक्ति पर पठनीय लेख रहते हैं।

× × ×

आमार देश—बँगला मासिक। संपादक और प्रकाशक, श्रीशिशिरकुमार मित्र बी० ए०, आमार देश-कार्यालय, शिशिर पब्लिशिंग हाउस, कॉलेज-स्ट्रीट-मार्केट, कलकत्ता। आकार १७×२७ अठ-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, पृष्ठ-संख्या ४८ और मूल्य ३) वार्षिक।

यह बालकोपयोगी सचित्र बँगला मासिक पत्र है। प्रति मास कम-से-कम एक रंगीन चित्र, ७-८ सादे चित्र तथा २-३ व्यंग्य-चित्र रहते हैं। पाठ्य-विषय में ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, मनोविनोद, शिक्षा, प्रश्नोत्तर, चुटकिले कहानियाँ तथा कविताएँ, सभी कुछ रहता है। संपादन अच्छा होता है। बालोपयोगी देशी भाषाओं के पत्रों में इसका ख़ास स्थान है।

× × ×

सरणी—बँगला द्वैमासिक। संपादक और प्रकाशक, श्री-सुधाकांत राय चौधरी, इंडियन पब्लिशिंग हाउस, २२, कार्नवालिस-स्ट्रीट, कलकत्ता। आकार २०×३० अठ-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारणतः अच्छी, पृष्ठ-संख्या २४, और वार्षिक मूल्य २॥)

इसमें साहित्यिक, सामाजिक लेख अधिक रहते हैं। सभी सार-गर्भित और सुपाठ्य होते हैं। गल्प, प्रहसन, नाटक, गद्य-काव्य तथा कविता आदि सभी सामग्री उच्च कोटि की रहती है।

× × ×

शारदा—मराठी मासिक। संपादक और प्रकाशक, श्रीयुत केशवरघुनाथ काशीकर, शुक्रवार पेठ, घर नंबर १५९, पूना। आकार २०×३० अठ-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ६४, और वार्षिक मूल्य ४)

यह पूने के भारतीय साहित्य-मंदिर की सचित्र मासिक मुख-पत्रिका है। इसमें साहित्य, शिक्षा, समाज, कला, नीति, धर्म आदि विषयों के सुपाठ्य लेख प्रकाशित होते हैं। इसका जन्म अभी हाल ही में हुआ है। आशा है, आगे चलकर अच्छी उन्नति करेगी।



साहित्य-सूचना

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "बहता हुआ फूल", बँगला के 'स्रोतेर फूल'-नामक उपन्यास का पं० रूपनारायण पांडेय-कृत अनुवाद। मूल्य २)

(२) "लिमिटेड कंपनियाँ", श्रीईश्वरदास जालान-लिखित व्यापारिक पुस्तक। मूल्य १।)

(३) "आज़ादी या मौत", मुं० अब्दुलसमी साहब-लिखित नाटक। मूल्य ।॥)

(४) "बनवीर", बँगला के 'राज-भक्ति'-नामक उपन्यास का पं० नरोत्तम व्यास-कृत अनुवाद। मूल्य १॥)

(५) "ज्ञानयोग (दूसरा भाग)", श्रीजगन्मोहन वर्मा द्वारा अनुवादित विवेकानंद का प्रसिद्ध ग्रंथ। मूल्य २॥)

(६) "कलियुग की सती", मुं० अब्दुलसमी साहब-लिखित नाटक। मूल्य ।॥)

(७) "सरस्वतीचंद्र (पहला खंड)", गुजराती के प्रसिद्ध उपन्यास का पं० नरोत्तम व्यास-कृत अनुवाद। मूल्य २)

(८) "यंग इंडिया (तीन भाग)", महात्मा गाँधी के अँगरेज़ी लेखों का पं० छविनाथ पांडेय-कृत अनुवाद। मूल्य ४॥)

(९) "मेरी काश्मीर-यात्रा", पं० मथुराप्रसाद पांडेय-लिखित। मूल्य ॥=)

(१०) "कृषक-दुर्दशा", पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा का लिखा नाटक। मूल्य ॥=)

(११) "प्रेम-पुष्पांजलि"। मूल्य ।-)

(१२) "प्रेत-तर्पण", बँगला के एक उपन्यास का बाबू श्रीकृष्ण हसरत-कृत अनुवाद। मूल्य २)

(१३) "भक्त सुदामा", श्रीआनंदप्रसाद कपूर-लिखित नाटक। मूल्य १)

(१४) "गोधन", श्रीगिरीशचंद्र चक्रवर्ती-लिखित। मूल्य ४)

(१५) "रामचरित-मानस", पं० महावीरप्रसाद मालवीय-कृत टीका-सहित रामायण। मूल्य ८)

(१६) "दुःख का मीठा फल", पं० रामेश्वरप्रसाद शर्मा का लिखा उपन्यास। मूल्य ॥=)

(१७) "प्रेमाश्रम", श्रीप्रेमचंद-लिखित उपन्यास का दूसरा संस्करण। मूल्य ३॥)

(१८) "कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र", श्रीप्राणनाथ विद्यालंकार द्वारा अनुवादित चाणक्य का प्रसिद्ध ग्रंथ। मूल्य ४)

(१९) "जीवन-मरण-रहस्य", ठाकुर प्रसिद्ध-नारायणसिंह-लिखित। मूल्य ।=)

(२०) "सीधे पंडित", ठा० प्रसिद्धनारायणसिंह का लिखा उपन्यास। मूल्य १॥)



विविध विषय

१. निवेदन

हर्ष की बात है कि इस संख्या से माधुरी का प्रथम वर्ष निर्विघ्न समाप्त होता है। हम सहायता के लिये अपने लेखकों, कवियों, ग्राहकों और सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हमारी सारी सफलता उन्हीं की कृपा-दृष्टि का सुफल है।

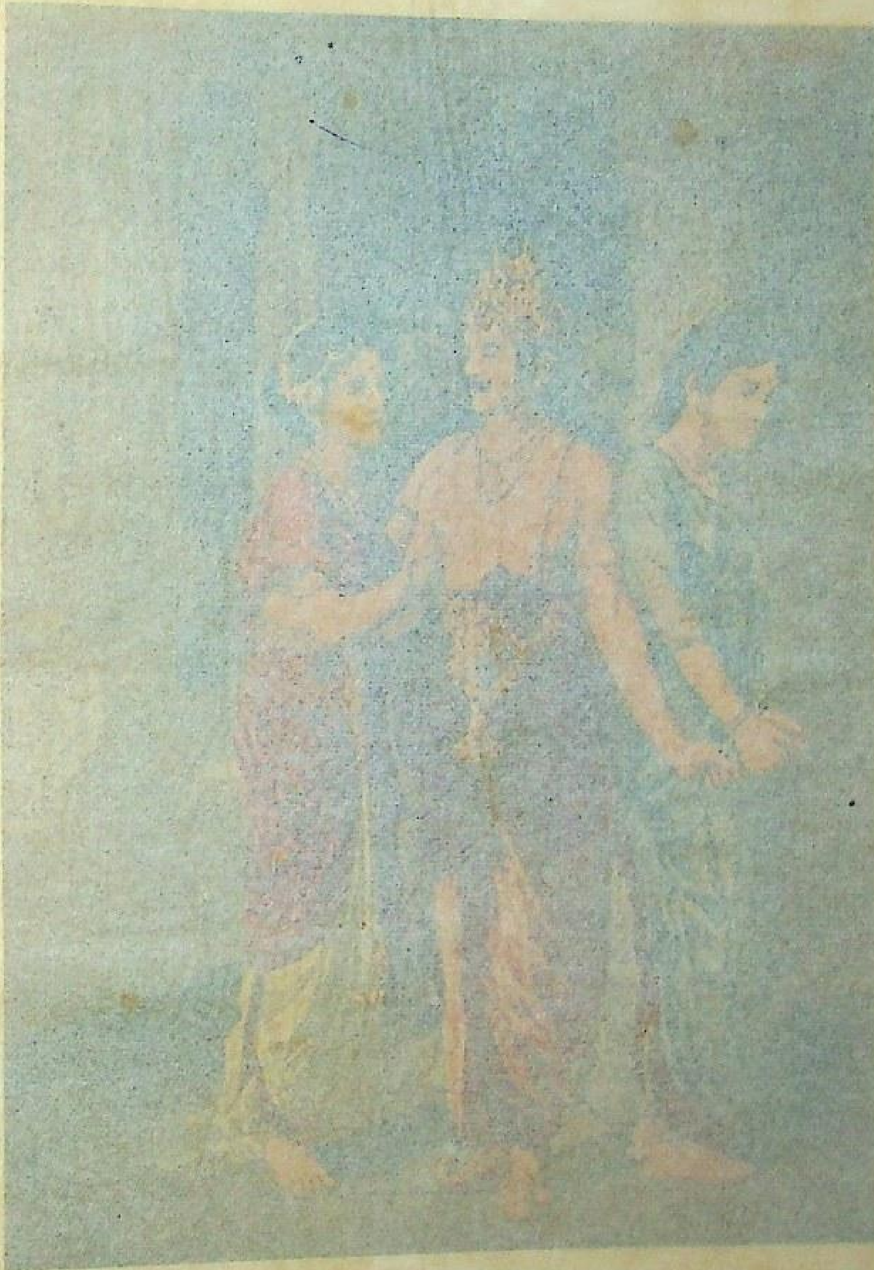
माधुरी की आगामी संख्या नव वर्ष की प्रथम संख्या होगी। उसे हम विशेष संख्या—तुलसी-संख्या—के रूप में निकालेंगे। अस्तु।

इसमें संदेह नहीं कि यहाँ पर हम अपने कृपालु लेखकों से कुछ निवेदन करना चाहते हैं। हिंदी-संसार के लब्ध-प्रतिष्ठ, प्रतिभाशाली लेखकगण माधुरी के जन्म से ही हम पर कृपालु रहे हैं। माधुरी की सर्व-प्रियता ने भी उनके हृदय में अपना एक विशेष स्थान कर लिया है। इसलिये वे निरंतर अपनी कृपाओं द्वारा हमको उपकृत करते रहते हैं। परंतु, जिस गति से वे हम पर कृपा कर रहे हैं, उससे अब हमें कुछ असुविधा होने लगी है। हमारे पास लेखों का इतना अधिक संग्रह हो गया है कि क्रमशः उसका कम होना दूर रहा, वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। इसके अतिरिक्त हमारे पास बड़े-बड़े लेख या लेख-मालाएँ अधिक आई हैं। इन बातों का परिणाम यह हुआ है कि बहुतेरे लेख महीनों से पड़े हुए हैं, और उन्हें प्रकाशित करने की पूर्ण इच्छा रहने पर भी हम उन्हें शीघ्र ही प्रकाशित करने में असमर्थ हो रहे हैं। उधर हमारी इस असमर्थता का उन लेखकों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा है। वे हमारी स्थिति से अपरिचित होने के कारण कुछ-का-कुछ समझ बैठे हैं; जिससे हमें भी आत्म-क्लेश पहुँचा है। इसलिये अपने लेखक-समुदाय से हम यह निवेदन करते हैं।

एक तो, जब तक कोई असाधारण तथा विशेष महत्त्व-पूर्ण विषय समक्ष उपस्थित न हो, तब तक वे माधुरी के लिये लेख न लिखें। कोई बहुत महत्त्व-पूर्ण विषय सामने आ जाय, जिस पर लिखे बिना वे आत्म-संवरण न कर सकते हों, तभी उस विषय पर लिखें।

दूसरे, जहाँ तक संभव हो, लेख बड़ा न होने दें। बड़ा होने के कारण हम उसे समय पर, शीघ्र, प्रकाशित न कर सकेंगे। इसके सिवा उसके कारण अन्यान्य लेखों के शीघ्र प्रकाशित होने के अधिकार को क्षति पहुँचेगी। अगर विषय ऐसा हो कि उसे संक्षेप में—छोटे लेख के रूप में—देने से उसके महत्त्व को धक्का लगता हो, या वह समझाया न जा सकता हो, तो उसका विषय-विभाग करके उसे लेख-माला का रूप दे दें। लेकिन तो भी इसका अवश्य ध्यान रक्खें कि वह (लेख-माला) भी इतनी विशाल-काय न हो जाय कि हम उसे पूरे एक खंड में भी समाप्त न कर सकें!

इधर कई मास से हमें अनेक कंपोज़ किए हुए लेख भी, स्थानाभाव के कारण, रोक देने पड़े हैं। उदाहरणार्थ पं० कृष्णबिहारी मिश्र का 'प्रत्यालोचना का उत्तर'-शीर्षक लेख हमें ज्येष्ठ की संख्या के लिये ही प्राप्त हो गया था; लेकिन बड़ा होने और स्थान की कमी के



सागरिका का छुटकारा

N. K. Press, Lucknow.

विविध विषय

१. निवेदन

[illegible]

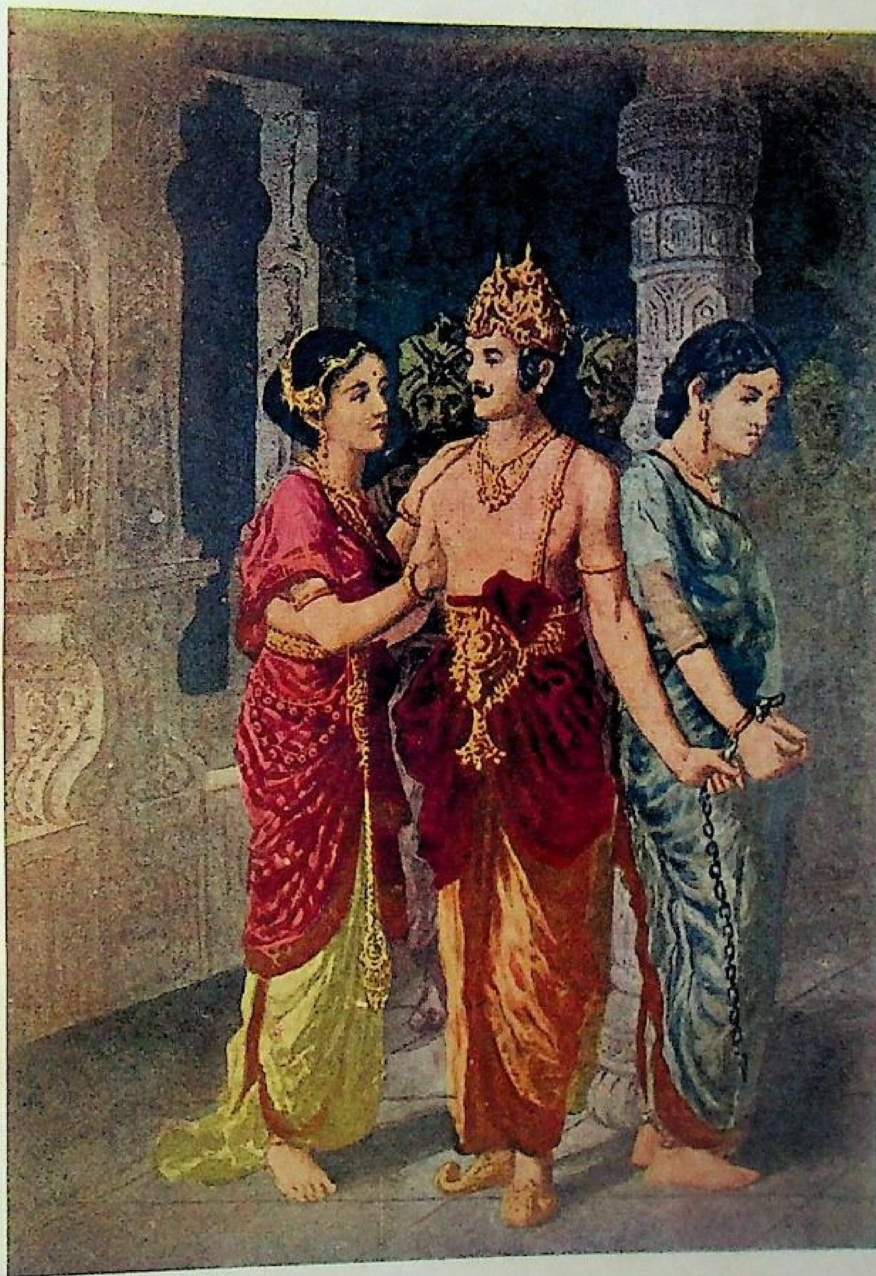
हो [illegible]
उत्तर [illegible]
पास [illegible]
इन बात [illegible]
महीनों से [illegible]
इच्छा रहने [illegible]
असमर्थ हो र[illegible]

लेखकों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा है। वे हमारी स्थिति से अपरिचित होने के कारण कुछ-का-कुछ समझ बैठे हैं; जिससे हमें भी आत्म-क्लेश पहुँचा है। इसलिये अपने लेखक-समुदाय से हम यह निवेदन करते हैं।

एक तो, जब तक कोई असाधारण तथा विशेष महत्त्व-पूर्ण विषय समक्ष उपस्थित न हो, तब तक वे माधुरी के लिये लेख न लिखें। कोई बहुत महत्त्व-पूर्ण विषय सामने आ जाय, जिस पर लिखे बिना वे आत्म-संवरण न कर सकते हों, तभी उस विषय पर लिखें।

दूसरे, जहाँ तक संभव हो, लेख बड़ा न होने दें। बड़ा होने के कारण हम उसे समय पर, शीघ्र, प्रकाशित न कर सकेंगे। इसके सिवा उसके कारण अन्यान्य लेखों के शीघ्र प्रकाशित होने के अधिकार को क्षति पहुँचेगी। अगर विषय ऐसा हो कि उसे संक्षेप में—छोटे लेख के रूप में—देने से उसके महत्त्व को धक्का लगता हो, या वह समझाया न जा सकता हो, तो उसका विषय-विभाग करके उसे लेख-माला का रूप दे दें। लेकिन तो भी इसका अवश्य ध्यान रक्खें कि वह (लेख-माला) भी इतनी [illegible] न हो जाय कि हम उसे पूरे एक खंड में भी समाप्त न कर सकें!

इधर कई मास से हमें अनेक कंपोज़ किए हुए लेख भी, स्थानाभाव के कारण, रोक देने पड़े हैं। उदाहरणार्थ पं० कृष्णबिहारी मिश्र का 'अत्यालोचना का उत्तर' [illegible] उसे ज्येष्ठ की संख्या के लिये ही [illegible] लेकिन बड़ा होने और स्थान की कमी से



सागरिका का छुटकारा

N. K. Press, Lucknow.

कारण अब भाद्रपद की संख्या में दिया जा सकेगा। अस्तु। कृपालु लेखक धैर्य रक्खें। हम उनके स्वीकृत लेख क्रमानुसार अवश्य प्रकाशित करेंगे। स्थानाभाव के कारण जिन लेखकों के लेख निश्चित संख्या में न प्रकाशित हों, वे हमारी विवशता का ध्यान रखकर हमें क्षमा करें।

× × ×

२. क्लर्क का कार्टून

हमें मालूम हुआ है कि गत संख्या में प्रकाशित 'क्लर्क-गधा'-नामक व्यंग्य-चित्र का अवलोकन कर क्लर्क-समुदाय के कुछ व्यक्तियों को मानसिक क्लेश पहुँचा है। मगर वास्तव में उसे प्रकाशित करने का यह अभिप्राय नहीं था कि उसे देखकर वे यह समझें कि उनके प्रति हमारी कोई बुरी धारणा है। इस व्यंग्य-चित्र का असल अभिप्राय तो क्लर्क-समुदाय की दुर्दशा दिखलाकर परोक्ष रूप से उन पर सहानुभूति प्रकट करना था। उसमें तो क्लर्क-जीवन की एक झलक का दिग्दर्शन कराया गया है। क्लर्क-जीवन कितना आत्म-सम्मान-रहित और दुःखद हो गया है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। सब पर प्रकट है। समाज के अन्य अंगों की भाँति उसका यह अंग भी संशोधनीय है। क्लर्क-जीवन की इस स्थिति में व्यक्ति की क्या अवस्था होती है, यही चित्रांकण का मूल-भाव है। अतएव उसके अवलोकन से क्लर्कों को चाहिए यह कि वे अपनी ऐसी पोज़ीशन बनाएँ, जिससे उनकी स्थिति ऐसी कष्टकर न हो। संभव है, आपत्ति करने का कारण गधे की उपमा हो। परंतु यह कारण भी भ्रम-पूर्ण है। पाश्चात्य देशों के पत्रों में तो लॉर्ड-परिवार के व्यक्तियों पर भी व्यंग्य चित्रों द्वारा भद्दे-से-भद्दा मज़ाक़ किया जाता है। इस दृष्टि से यह व्यंग्य बहुत ही साधारण है। फिर भी, यदि क्लर्क-समुदाय को उसके कारण कुछ मानसिक क्लेश पहुँचा हो, तो उसके निकट हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

× × ×

३. पुश्तैनी व्यवसाय

कई मास हुए, अँगरेज़ी के 'डेली मेल' ने मिस्टर सिडनी बी० इवांस का उदाहरण देते हुए गर्व प्रकाशित किया था कि संसार में इँगलैंड ही एक ऐसा देश है, जहाँ चार-चार पुश्त तक लोग एक ही व्यवसाय में लगे रह सकते हैं, और बड़ी योग्यता के साथ पुश्तैनी व्यवसाय के कार्य का संपादन करते हैं। परंतु यदि गंभीरता-पूर्वक 'डेली मेल' की इस गर्वोक्ति पर विचार किया जाय, तो वह भ्रम-मूलक ठहरती है। मिस्टर सिडनी बी० इवांस का उदाहरण केवल चार पुश्त का है। वह इटन-विद्यालय में ड्राइंग-मास्टर के पद पर नियुक्त थे। बुढ़ापे के कारण उन्हें विद्यालय छोड़ना पड़ा। उनके प्रपितामह इसी पद पर २७ वर्ष, पितामह ३१ वर्ष, पिता ४६ वर्ष और वह स्वयं १६ वर्ष रहे। मिस्टर सिडनी का यह उदाहरण केवल इँगलैंड के लिये अभिमान-जनक हो सकता है। समस्त संसार के आगे, तुलनात्मक दृष्टि से, इस उदाहरण को सर्वोच्च ठहराना 'डेली मेल' की अक्षम्य अज्ञता है। भारतवासियों के लिये तो यह उदाहरण कोई विशेष मूल्य नहीं रखता। हिंदू-धर्म का मूल-भाग वर्णाश्रम-धर्म ही एक ऐसा उदाहरण है, जिससे यह स्पष्ट है कि पुश्तैनी व्यवसाय भारत के लिये कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं, अनिवार्यतः आवश्यक किंवा एक अत्यंत साधारण बात रही है। यद्यपि युग-परिवर्तन के कारण अब यहाँ सर्वत्र वर्णाश्रम-धर्म का यथाविधि पालन नहीं होता, तथापि अब भी एक-दो नहीं, सहस्रों कुटुंब तो ऐसे मिलेंगे ही, जो अब तक पूर्व-वत् पुश्तैनी व्यवसाय करते आ रहे हैं। ब्राह्मण-वर्ण का ही उदाहरण लीजिए। यद्यपि देश की सर्वतोमुखी दुर्दशा ने इस वर्ण को अछूता नहीं छोड़ा है, इस वर्ण का अपढ़ एवं अशिक्षित-समुदाय वास्तव में कर्तव्य-च्युत हो गया है, तथापि, अब भी, इस वर्ण का शिक्षित-समुदाय पुश्तैनी व्यवसाय करने का जीता-जागता उदाहरण रखता है। आज भी इस वर्ण के द्वारा देश का शिक्षण-कार्य अधिकांश रूप से होता है। अध्यापक, उपदेशक, वक्ता, लेखक, कवि तथा इतर वर्णों के वैवाहादिक संस्कारों के कर्ता-धर्ता कर्म-निष्ठ ब्राह्मण ही विशेष रूप से हैं। रही यज्ञादिक कर्मों की बात। सो देश की अवस्था के अनुसार यह व्यवस्था भी अव्यवहार्य सी हो गई है। यदि देश स्वाधीन होता, तो इस अंश में भी त्रुटि न रहती। परंतु दूसरे रूप से यह अंग भी सर्वांश में हीन नहीं है। प्राचीन काल में राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञादि होते थे; अब राष्ट्रीय यज्ञ होते हैं, और उनमें यह वर्ण यथेष्ट कर्तव्य-पालन कर रहा है।

रही एक ही पद पर रहने तथा एक ही कार्य के संपादन

करने की बात । सो इस विषय में भी खोज करने पर दर्जनों प्रमाण मिल सकते हैं ।

हाँ, जब से पाश्चात्य-जगत् से भारत का संबंध हुआ है, तब से अलबत्ता पुश्तैनी व्यवसाय करने में भारत को एक विशेष धक्का लगा है । यदि हम किसी अंश में पुश्तैनी व्यवसाय न करने के दोषी ठहरें भी, तो भी इसके कारण भारतवासी बहुत कम अंश में हैं । मूल-कारण तो भारत पर ब्रिटिश सरकार की शासन-विषयक रीति-नीति ही है ।

× × ×

४. पं० प्यारेलाल मिश्र की शोक-जनक मृत्यु

अत्यंत शोक की बात है कि हिंदी-संसार के चिर परिचित पं० प्यारेलाल मिश्र एम्० एल्० ए०, बैरिस्टर का, छिंदवाड़े में, गत ६ जुलाई सन् १६२३ को, ४ बजे स्वर्गवास हो गया । मिश्रजी को हिंदी-साहित्य से बड़ा प्रेम था । बैरिस्टरी पास करने के प्रथम आप स्व० श्रीबालमुकुंद गुप्त से पूर्व कलकत्ते के भारत-मित्र के संपादक थे । इसके अतिरिक्त बंबई के श्रीवेंकटेश्वर-समाचार-पत्र के संपादकीय विभाग में भी आपने योग्यता-पूर्वक कार्य किया था । विलायत जाने पर क़ानूनी ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ मातृ-भाषा हिंदी का भी आपने समुचित ध्यान रक्खा, और वहाँ विलायती संवाद-पत्रों के इतिहास का भरपूर अध्ययन करके हिंदी में इसी विषय की एक लेख-माला लिखी; जो उन्हीं दिनों क्रमशः सरस्वती में और पुनः एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई । आपने क़ानून पर भी हिंदी में एक छोटी, किंतु उपयोगी पुस्तक लिखी है । आप हिंदी के एक सुयोग्य लेखक थे । आपके असामयिक स्वर्गारोहण से हिंदी-साहित्य को वास्तविक क्षति पहुँची है । हिंदी-संसार का एक सुयोग्य विद्वान् उठ गया । हम मिश्रजी की इस असामयिक मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करते हुए उनके कुटुंबियों के प्रति अपनी वास्तविक समवेदना प्रकट करते हैं ।

× × ×

५. कुछ जानने-योग्य बातें

१—जर्मनी में एक ऐसा मनुष्य है, जो अपनी पीठ की ओर अपना मुख फेर लेता है !

२—फ़ारिस में प्रथा है कि जब किसी पुरुष की मृत्यु हो जाती है, और उसके कुटुंबी जन रोदन करते हैं, तो उनके आँसू एक बोतल में सुरक्षित रख लिए जाते हैं !

३—किसी ने हिसाब लगाकर बतलाया है कि भारतवासी साल-भर में दो अरब रुपए की तंबाकू पी जाते हैं !

४—कलकत्ते में एक बकरी के ऐसा विचित्र बच्चा पैदा हुआ था, जिसके मुँह एक था, परंतु पैर १२ और पूँछें ३ ! बच्चा पैदा होने के पश्चात् मर गया !

५—स्वर्गीय अर्ल केरीसफ़ोर्ड की प्राचीन संग्रहीत १६ पुस्तकें ३५५५० पौंड अर्थात् लगभग सवा पाँच लाख रुपए में बिकी हैं !

६—न्यूयार्क (अमेरिका) में एक बिलकुल नवीन प्रकार की ट्रामगाड़ियाँ ईजाद हुई हैं । उनमें केवल एक आदमी, किसी भी ओर से, बैठ सकता है । बैठ जाने पर दरवाज़ा बंद हो जाता है । यह दरवाज़ा पुरुष के उतरने के समय तभी खुलता है, जब निश्चित स्थान पर एक निश्चित सिक्का डाल दिया जाता है !

७—मिस ग्रैस्टी नाम की एक २२ वर्षीया युवती ने ५२ मील की यात्रा १२ घंटे में तय की है !

८—हाल ही में एक ऐसी विचित्र नाव का आविष्कार हुआ है, जो चमड़े के बैग में रहती है । साइकिल के हवा भरनेवाले पंप से इसमें हवा भरी जाती है । हवा भर जाने पर यह फूलकर नाव के रूप में परिणत हो जाती है । वज़न में इतनी हलकी है कि डूबने का बिलकुल डर नहीं है । इसमें २-३ पुरुष बैठ सकते हैं । यह इस ढंग से बनाई गई है कि यदि रबड़ फट भी जाय, और हवा निकल जाय, तो भी किसी पुरुष के डूबने का डर नहीं है । इसका मूल्य ६०) से १००) तक है !

६—अमेरिका में कपड़ा धोने की एक ऐसी मशीन का आविष्कार हुआ है, जो बिजली से चलती है । इसमें केवल मैला कपड़ा और साबुन डाल दिया जाता है । इसके पश्चात् कपड़े छाँटने, साबुन लगाने, धोने, इस्तिरी करने, सुखाने तथा तह करके दे देने तक का समस्त कार्य वह स्वयं कर लेती है । इँगलैंड की प्रदर्शिनी में यह मशीन आई है । इसका मूल्य ३०,०००) है !

१०—एक फ़्रांसीसी तत्त्ववेत्ता को २४०० वर्ष की पुरानी रोटी ज्यों-की-त्यों मिली है !

११—मुल्तान के एक इंजीनियर ने कुछ दवाओं से ऐसी गैस तैयार की है, जिसके छिड़कने से १५ दिन तक धूल नहीं उड़ती !

१२—सन् १९१२ ई० से सन् १९२२ ई० तक, दस वर्षों में भारतीय जल तथा स्थल-सेना का कुल व्यय इस प्रकार हुआ—

सन्	रुपए
१९१२-१३	२९,२५,००,०००
१९१३-१४	२९,८४,००,०००
१९१४-१५	३०,६५,००,०००
१९१५-१६	३३,३९,००,०००
१९१६-१७	३७,४९,००,०००
१९१ -१८	४३,५८,००,०००
१९१८-१९	६६,७२,००,०००
१९१९-२०	८६,९८,००,०००
१९२०-२१	८७,३८,००,०००
१९२१-२२	६९,८१,००,०००

१३—अमेरिकन सरकार ने अपने यहाँ की रुई की फ़सल की जो रिपोर्ट प्रकाशित की, उससे प्रकट है कि वहाँ सन् १९२१ ई० की अपेक्षा सन् १९२२ ई० में ३३,३८,००० एकड़ ज़मीन अधिक बोई गई थी, और २५,००,००० एकड़ अधिक ज़मीन से रुई उत्पन्न हुई थी। प्रति-एकड़ १२४ पौंड की अपेक्षा १४१ पौंड उपज हुई। गत वर्ष के हिसाब से इस वर्ष की फ़सल ·२ और सन् १९२१ ई० से ·५ अधिक तथा १०-वर्ष के औसत से ·२७५ कम हुई।

१४—गत मार्च-मास में जावा से ४८,६०१ टन चीनी का निर्यात हुआ। पहली एप्रिल को वहाँ चीनी का स्टाक १९५०० टन था। अब चीनी की भावी बाज़ार-दर क्यूबा की फ़सल पर निर्भर है। गत वर्ष इस समय क्यूबा में चीनी का स्टाक २३,००,००० टन था। इस वर्ष उसकी समस्त मंडियों में कुल मिलाकर १४,०१,००० टन ही है। यदि फ़सल ३७,००,००० टन से कम हुई, तो समस्त संसार में चीनी का दुर्भिक्ष होगा!

१५—इन दिनों अधिकांश कोयला आफ़्रिका से ही भारत में आ रहा है। बात यह है कि आफ़्रिका की सरकार ने अपने यहाँ के कोयले के व्यापारियों पर भारत में कोयला भेजने के लिये ७ शिलिंग ६ पेनी की रियायत कर दी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारतीय कोयले का व्यापार नष्ट हो रहा है। सरकार ने अब तक इस ओर ध्यान नहीं दिया।

१६—एप्रिल और मई की भारतीय आयात निर्यात की रिपोर्ट से मालूम हुआ है कि इन महीनों में सोना-चाँदी छोड़कर ७८,१२,००,००० का माल आया, और ६०,६४,००,००० का माल गया। ६,६६,००,००० का सोना तथा २,४१,००,००० की चाँदी आई। सरकार की ओर से ५२,१०,००० रुपए बाज़ार में आए। ६,६४,००,००० रुपए भारत का पावना रहा।

१७—वायु-यान-कांग्रेस में मेजर जी० एच० स्कॉट ने बतलाया है कि ५०,००,००० क्यूबिट फ़ीट का वायु-यान, जिसकी गति ८० मील प्रति घंटे हो, २०० यात्री तथा ११ टन डाक ले जा सकता है। वही वायु-यान कहीं मार्ग में रुके बिना इँगलैंड से मिस्र की २५०० मील की यात्रा तय करके पुनः मिस्र से बंबई आ सकता है।

१८—गत २२ जून को चुनार से काशी तक की, १५ मील की, तैरने की बाज़ी बदी गई थी। तैराकों के दल में १४ आदमी थे। सब से प्रथम तैराक श्रीआशुतोषदत्त (कलकत्ता-निवासी) ने ६ घंटे १० मिनट में यह यात्रा तय की।

१९—कोलमना (कनाडा) में एक ऐसी गऊ है, जिसका मूल्य आजकल ३,२८,००० रुपए है। यह एक वर्ष में २१ मन घी और ३८६ मन दूध देती है! ३०० पुरुषों ने एक दिन में इसका दूध पिया है। यह बड़ी सीधी है। गऊ क्या है, सचमुच कामधेनु है!

२०—कुष्ठ-रोग के विशेषज्ञ सर लेनार्ड राजर्स ने हिसाब लगाकर बतलाया है कि समस्त संसार में कोढ़ियों की संख्या ३०,००,००० है। इनमें से योरप में ७,०००, आफ़्रिका में ५,२५,८००, चीन में १०,००,००० तथा हिंदुस्तान में भी १०,००,००० हैं। आपने अपने विशेष अनुभव से बतलाया है कि आफ़्रिका ही कुष्ठ-रोग का विशेष स्थान है। यह बीमारी यहीं से समस्त संसार में फैली है। आपने घोषित किया है कि ३० वर्ष में यह रोग हिंदुस्तान से सदा के लिये बिदा हो जायगा। कारण, चालमोगरा तेल-नामक इसकी ऐसी अव्यर्थ महौषधि मिल गई है, जो हिंदुस्तानी कोढ़ियों को फ़ायदा करती है। भगवान् करे, लेनार्ड महोदय की भविष्य-वाणी सत्य प्रमाणित हो!

२१—इस वर्ष के प्रथम तीन महीनों में अमेरिका के संयुक्त-राज्य को १८,७०,००,००० पौंड की आमदनी हुई!

२२ – दिल्ली के कुछ व्यापारियों ने विलायत से १,००,००० रुपए का कृत्रिम घी मँगवाया है । यह डब्बों में आया है । प्रत्येक डब्बे पर 'वनस्पति का विशुद्ध घी' लिखा है । यह बाज़ार के घी से सस्ता, १ रुपए का २ सेर मिलेगा । लोग इस कृत्रिम घी से सावधान हो जायँ !

२३—आगरा आदि स्थानों में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के डेप्युटेशन को अब तक लगभग ५०००) की रक़में मिली हैं ।

× × ×

६. युद्ध की आशंका

गत योरप के महायुद्ध में प्रचुर धन-जन नाश होने तथा योरप के राष्ट्रों में सब से अधिक ऋणी होने के बाद भी इँगलैंड की युद्ध पिपासा अभी तक शांत नहीं हुई है । साम्राज्य-वृद्धि की लोलुपता उसमें अब भी ज्यों-की-त्यों विद्यमान है । इधर ब्रिटिश-सरकार सिंगापुर में जंगी जहाज़ों का एक बड़ा केंद्र बना रही है उधर वाशिंगटन की शस्त्र-त्याग-परिषद् ने अँगरेज़ी बंदर हाँग-काँग की उन्नति के प्रतिकूल अपना निर्णय किया है । इस पर भी ब्रिटिश-सरकार ने सिंगापुर में अपना जंगी जहाज़ी बृहत् केंद्र स्थापित करने के लिये ९५,००,००० पौंड व्यय करना स्वीकार किया है । अमेरिका और चीन में ग्रेट ब्रिटेन के इस निश्चय पर असंतोष फैल रहा है । चीनी राजनीति-विशारद तो स्पष्ट रूप से यहाँ तक कह रहे हैं कि सिंगापुर का अँगरेज़ी जंगी जहाज़ी केंद्र बनना इँगलैंड और जापान के भावी युद्ध की प्रस्तावना है । उनकी धारणा है कि फिर महायुद्ध होगा । परंतु इस बार के भावी युद्ध का क्षेत्र प्रशांत महासमुद्र होगा । साम्राज्य-वृद्धि की लोलुपता देखें अभी क्या-क्या दृश्य दिखलाती है !

× × ×

७. आस्ट्रिया की स्थिति

गत योरप के महायुद्ध ने आस्ट्रियाकी परिस्थिति को अत्यंत शोचनीय और दुर्दशा-ग्रस्त बना दिया था । इस अवस्था में उसके शुभ-चिंतक राष्ट्र तक उसे ऋण देते हुए हिचकिचाते थे । आस्ट्रियन काग़ज़ी रुपयों का महत्त्व इतना घट गया था कि उनकी पूछ बहुत कम हो गई थी । लोग उन पर अविश्वास करने लग गए थे । लोगों का यहाँ तक अनुमान था कि आस्ट्रिया संभवतः शीघ्र दिवालिया हो जायगा । बात यह थी कि महायुद्ध का परिणाम उसके लिये अत्यंत भयावह सिद्ध हुआ, उसने उसकी स्थिति को नितांत जर्जरित कर दिया । इसके सिवा वहाँ कम्यूनिज़्म ने भी प्रवेश पा लिया था । परंतु आस्ट्रियन सचमुच बड़े दूरदर्शी निकले, उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता से स्थिति को ज्यों-त्यों करके सँभाल लिया । अब उसकी स्थिति अच्छी हो चली है । अन्य राष्ट्रों में उसकी साख भी पूर्ववत् स्थापित हो चली है । आस्ट्रिया की इस समयानुकूल उन्नति-शीलता का समस्त श्रेय वहाँ के अधिनायकों को है; जिन्होंने अपने देश की डूबती हुई नाव को किनारे लगा दिया ।

× × ×

८. बलगेरिया की क्रांति

बलगेरिया की अवस्था अब निकट-भविष्य में शांति-पूर्ण हो जाने योग्य हो गई है । मो० स्टैंबोलिस्की, जिनके कुटिल शासन से बलगेरियन जन-समुदाय बिलकुल तबाह हो चला था, अपने कारनामों का यथेष्ट पुरस्कार पा चुके हैं, और अब सफलता-पूर्वक उनके कुशासन का व्यूह विच्छिन्न हो गया है । उनके अत्याचारों से ऊबकर कुछ साहसी व्यक्तियों ने, गुप्त रूप से, संगठित और सुदृढ़ षड्यंत्र का निर्माण किया, और उसके द्वारा उनके दुर्दमनीय कुशासन का सदा के लिये अंत कर दिया । आशा है, अब वहाँ शीघ्र शांति स्थापित हो जायगी । अब बालकन प्रायद्वीप में युद्ध-कांड उपस्थित होने की कोई आशंका नहीं है ।

× × ×

९. केनिया की समस्या

केनिया की समस्या पर अभी तक कोई समझौता नहीं हुआ । शीघ्र समझौता होने की कोई आशा भी नहीं है । लार्ड एंपथिल ने एक समाचार-पत्र में एक पत्र प्रकाशित किया था । उसमें उन्होंने नितांत पक्षपात-पूर्ण बातें कही हैं । उनका कहना है—"साम्राज्य के अंतर्गत जहाँ हिंदुस्तानी अधिक हैं, वहाँ उनके साथ सद्व्यवहार, और जहाँ हिंदुस्तानी कम हैं, वहाँ उनके साथ दुर्व्यवहार करना उचित है ।" इधर भारत-मंत्री सब विषयों में जातीयता की दृष्टि से अँगरेज़ों को भारतवासियों से श्रेष्ठतर तथा स्वाभाविक शासक मानते हैं । श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री यद्यपि दत्त-चित्त होकर इस प्रश्न को सुलझाने में

लगे हैं, तथापि अधिकारी-वर्ग पर अपना प्रभाव स्थापित करने में वे सर्वथा असफल हुए हैं। आपने लार्ड एंपथिल महोदय के कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा है कि "यदि लार्ड एंपथिल के विचारानुसार काम लिया जाय, तो केनिया वंश-परंपरा तक ऐसा स्थान रहेगा, जहाँ ब्रिटिश-नागरिकता की क़ब्र खुदी रहेगी, तथा अल्प-जनाधिपत्य का कुत्सित सिद्धांत प्रचलित रहेगा।"

समझौता न होने के कारण पार्लियामेंट ने औपनिवेशिक ख़र्च की स्वीकारी पर होनेवाली बहस को २४ जुलाई तक स्थगित कर दिया है। श्रीयुत सी० एफ़० एंड्रयूज़ ने जो केनिया की स्थिति का पर्यवेक्षण करने गए थे, इस पर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए कहा है कि "इससे यह मालूम होता है कि राजकीय औपनिवेशिक शासन-पद्धति करने से अभी तक समस्या हल नहीं हो सकी है, और ऐसा प्रयत्न किया जा रहा है कि आधुनिक केनिया के व्यवस्थापक चेंबर में, जाति-गत मताधिकार-नियम रखने के प्रस्ताव पर भारतीय प्रतिनिधि राज़ी हो जायँ।" अस्तु। स्पष्ट है कि अभी तक स्थिति संतोष-जनक नहीं है! क्या ही अच्छा हो कि इस प्रश्न पर समस्त भारतवर्ष में राष्ट्रीय महासभा तथा कौंसिलों के द्वारा सुदृढ़ आंदोलन किया जाय।

× × ×

१०. लाला लाजपतराय का स्वास्थ्य



लाला लाजपतराय

भारत के देश-भक्तों में गण्य-मान्य, राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक, पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय कारागार-प्रवास के अस्वास्थ्यकर जल-वायु के कारण बहुत दिनों से सख़्त बीमार हैं। ख़बर मिल रही है कि उनका दाहना फेफड़ा ख़राब हो गया है। हरारत बराबर बनी रहती है, और खाँसी बढ़ रही है। भारत में ऐसा कौन शिक्षित भारतीय होगा, जो लालाजी की बहु-मूल्य एवं अद्वितीय देश-सेवाओं से अपरिचित हो। अतएव लालाजी की बीमारी का समाचार जब से मिला है, तभी से समस्त शिक्षित भारत-संतान उनके स्वास्थ्य-समाचारों के जानने के लिये व्यग्र हैं। परंतु जब से मालूम हुआ है कि उनका स्वास्थ्य बहुत ख़राब है, तब से तो अखिल भारत-संतान की व्यग्रता और भी बढ़ गई है। माननीय मालवीयजी ने इसीलिये लालाजी से भेंट करने के लिये इच्छा प्रकट की थी। परंतु भारत-सरकार ने जिन शर्तों पर मालवीयजी का लालाजी से भेंट करना स्वीकार किया, वे शर्तें सर्वथा अग्राह्य थीं। सुपरिंटेंडेंट ने मालवीयजी को ज्यों ही लालाजी से भेंट करने की शर्तें बताईं, त्यों ही मालवीयजी ने उनको सुनकर एक अभूतपूर्व वेदना का अनुभव किया। इसी बीच में उन्हें ज्ञात हुआ कि उन अपमान-जनक शर्तों पर भेंट करना लालाजी ने स्वयं अस्वीकृत कर दिया है। लालाजी की इस अस्वीकृति की बात सुनते ही माननीय मालवीयजी लौट आए। नहीं कहा जा सकता कि लालाजी से मालवीयजी की भेंट होने के संबंध में सरकार ने इतनी अमानुषिक कठोरता का आश्रय क्यों लिया? मालूम होता है कि निश्चय ही लालाजी की अवस्था के संबंध में सरकार कुछ छिपाना चाहती है, तभी तो उसने मालवीयजी-सरीखे शांत और देव-तुल्य पुरुष को लालाजी से नहीं मिलने दिया।

हाल ही में पं० नाथूराम-नामक एक महाशय ने, जो

उसी कारागार से १ वर्ष की कड़ी क़ैद की सज़ा भुगतकर लौटे हैं, प्रकट किया है कि 'लालाजी अब योरपियन बारिक में रक्खे गए हैं। उनकी यथासंभव रक्षा की जाती है। उनका कमरा टट्टियों से घिरा हुआ रक्खा गया है; जिसमें नियमित रूप से पानी का छिड़काव होता रहता है। दो पंखा खींचनेवाले भी हैं। रात में लालाजी के संबंधियों के दिए हुए बिजली के पंखे का उपयोग होता है। जितना दूध वे पी सकते हैं, उतना दूध दिया जाता है। आजकल बुख़ार का टेंपरेचर नार्मल से कम है। वे चिंता नहीं करते हैं, इत्यादि।' यदि पं० नाथूरामजी का कथन यथार्थ है, तब तो सरकार की इस भयातुरता का कोई कारण नहीं है, जिससे वह लालाजी से भेंट नहीं करने देती। जब तक किसी बहुत ही विश्वस्त पुरुष की भेंट द्वारा लालाजी के स्वास्थ्य का ठीक-ठीक संवाद न मिले, तब तक हम भारतवासियों की चिंता-युक्त व्यग्रता कम नहीं हो सकती। आज हम कोटि-कोटि भारतवासियों की दृष्टि लालाजी की मंगल-कामना की ओर लगी हुई है। भगवान् करें, लालाजी का स्वास्थ्य यथासंभव शीघ्र अच्छा हो जाय।

× × ×

११. संयुक्त-प्रांत की शासन-रिपोर्ट

संयुक्त-प्रांत की शासन-रिपोर्ट भी प्रकाशित हो गई है। पाठकों की जानकारी के लिये उसकी ख़ास-ख़ास बातें यहाँ लिखी जाती हैं—

गत मनुष्य-गणना से मालूम हुआ कि इस प्रांत की जन-संख्या ४,६५,१०,६६८ है। यह १९११ की गणना से १४,८६,६९६ कम है—सनातनधर्मी हिंदू सन् ११ की गणना से सैकड़ा पीछे १२ से भी अधिक घट गए हैं। आर्य-समाजी और ईसाई संख्या में बढ़े हैं। मर्दों से औरतें कम हो गई हैं।

इस वर्ष सरकार को ज़मीन की मालगुज़ारी से ६,८६,००,०००) मिलने चाहिए थे; पर आमदनी ६,२९,००,०००) ही हुई। गरानी आदि के कारण सरकार ने ८ लाख रुपए माफ़ कर दिए, और ४६ लाख रुपए लोगों पर बाक़ी हैं। इस साल सरकार की ओर से किसानों को तक़ावी में ४१ लाख ८१ हज़ार रुपए बाँटे गए। इज़ाफ़ा-लगान के मुक़दमे १७,२६० से घटकर १६,१०५ ही हुए। मगर बाक़ी मालगुज़ारी के मुक़दमे १,६८,३९७ से बढ़कर १,८६,७२३ हो गए।

अपराध बढ़ गए। उनकी संख्या १,३४,००७ से बढ़कर १,४३,७८४ हो गई। सरकार की राय में इसका कारण असहयोग-आंदोलन ही है। नक़ली सिक्के आदि बनाने के ५६ अभियोग चले। खूनों की संख्या ६९६ से बढ़कर ७३५ हो गई। ७६ आदमियों को ज़हर दिया गया। १२७७ डाके पड़े। ८०६ जगह लूट हुई। ५४,०६१ चोरियाँ हुईं। अलीगढ़, गोरखपुर, आगरा, मेरठ और सहारनपुर में लूट अधिक हुई, और फ़ैज़ाबाद, अलीगढ़, गोरखपुर, सहारनपुर, मेरठ, रायबरेली के ज़िलों में डाके अधिक पड़े। जरायम-पेशा लोग २५,२१४ से बढ़कर ३५,६०२ हो गए। १०६ को फाँसी, ३३८ को कालेपानी और १७,४६२ को सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई। १,४७७ को, जिनमें २५८ बालक थे, बेंत की सज़ा मिली। क़ैदियों के भोजन और रक्षा आदि में २,६४,२७,०००) रु० ख़र्च हुए। हर क़ैदी के पीछे ११६॥≈) का औसत पड़ा। जेल के कारख़ानों से ४,४७,०४६) की आमदनी हुई। इस साल १० लाख पीछे २१४ क़ैदी मरे। पेचिश और कालरे से ही अधिक मौतें हुईं। २६ मौतें लू लग जाने के कारण हुईं।

इस वर्ष बड़ौत, ज़िला मेरठ, में म्युनिसिपैलिटी क़ायम हुई। प्रांत के कुल म्युनिसिपल बोर्ड ८५ हो गए। सब बोर्डों को, ऋण आदि के अलावा, १,१२,१८,०००) की आमदनी हुई। चुंगी की आमदनी घटकर ३०,१७,०००) ही रह गई। सन् १९२१-२२ में बोर्डों को १,४७,३७,०००) ख़र्च करने पड़े। अधिकतर म्युनिसिपलिटियों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। आगरे, बनारस और कानपुर की म्युनिसिपलिटियों की स्थिति तो बहुत ही ख़राब है। सन् १९२१-२२ में ज़िला-बोर्डों की आमदनी १ करोड़ ५२ लाख ८१ हज़ार और ख़र्च १ करोड़ ८४ लाख ६५ हज़ार था।

सन् १९२१-२२ में कुल २,०६१ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इनमें ५८ फ़ी-सदी हिंदी की हैं। सन् १९२०-२१ की अपेक्षा इस वर्ष अँगरेज़ी की ६५ और उर्दू की ४१ पुस्तकें कम निकलीं; लेकिन हिंदी की २३३ पुस्तकें अधिक रहीं। राजनीतिक साहित्य का ही अधिक प्रचार हुआ। बोल्शेविज़्म पर दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं। ईसाई-धर्म की १०२, हिंदू-धर्म की २८० और मुसलमानी मज़हब की ६५ पुस्तकें छपीं। ७१ नए उपन्यास और ४६ नए

नाटक निकले। जीवनियाँ ३६ निकलीं; जिनमें १० तो महात्माजी की ही हैं। इतिहास और अर्थ-शास्त्र पर कम पुस्तकें लिखी गईं। सन् १६२१-२२ में ५२५ सामयिक पत्र और समाचार-पत्र प्रकाशित होते रहे। उनमें अँगरेज़ी के ६७, उर्दू के १६५ और हिंदी के २२६ थे। ६ अँगरेज़ी के, ४ उर्दू के और १२ हिंदी के पत्र २,००० से अधिक छपते थे। दो ही पत्र ऐसे थे, जिनका प्रचार १०,००० से अधिक था।

सन् १६२१-२२ में सरकार की आय कम हो गई। प्रांत में शांति न थी। राजनीतिक आंदोलन ज़ोर पकड़ता गया। पंजाब की स्थिति का प्रभाव भी इस प्रांत पर पड़ा। सरकार ने दमन से काम लिया। असहयोग के कारण आबकारी की आमदनी घटकर १ करोड़ ४८ लाख ५६ हज़ार ही रह गई। इस वर्ष प्रांत में १७,६५,४४५ आदमी मरे, और १५,६०,६०२ पैदा हुए। १४,६६७ हैज़े से, १,४३६ चेचक से, २४,००६ प्लेग से, १३,६१,६२० बुख़ार से और १७,३०१ पेट की बीमारियों से मरे। ६८२ मर्दों और १,६७६ औरतों ने आत्म-हत्या कर डाली। इस साल अस्पतालों की संख्या बढ़कर ६६२ और उनसे सहायता पानेवाले रोगियों की संख्या घटकर ५७,१८,७२४ हो गई। सरकारी स्कूलों की संख्या बढ़कर २१,५६६ हो गई; पर विद्यार्थी घटकर ६,६५,०५६ ही रह गए। प्राइवेट स्कूलों और उनके विद्यार्थियों की संख्या भी घटकर क्रमशः ३,०११ तथा ६४,५०७ रह गई। शिक्षा-विभाग का ख़र्च बढ़कर २ करोड़ ६८ लाख १३ हज़ार हो गया। लड़कियों के स्कूल १,६४१ और उनमें पढ़नेवाली लड़कियाँ ६०,७११ थीं।

× × ×

१२. उपयोगी खाद

पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति बढ़ाने के लिये पाश्चात्य देशों में रासायनिक प्रक्रिया से ज़ोरदार खाद बनाई जाती है। पर वह महँगी होती है। यहाँ के मामूली हैसियत के किसान उसका उपयोग नहीं कर सकते। अब यहाँ भी ऐसी खाद बनाने की चेष्टा की जा रही है, जो पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति को तो खूब बढ़ावे, पर सस्ती हो। बँगलोर के एग्रीकलचरल फ़ॉर्म में ऐसी ही खाद बनाने की चेष्टा चल रही है। तंबाकू की राख, गोबर और लकड़ी की राख ऐसे पदार्थ हैं, जिनमें विलायती रासायनिक प्रक्रिया से प्रस्तुत खादों के ही गुण मौजूद हैं। इन चीज़ों के विश्लेषण से मालूम हुआ है कि तंबाकू की राख में २६.६६ पुटाश होती है। गोबर में १६.४१ भाग पुटाश, १.४० भाग फ़ास्फ़ोरिक एसिड और ३.५० भाग चूना होता है। ऐसे ही लकड़ी की राख में ४.३७ भाग पुटाश, ३.६६ भाग राख और ३६.६० भाग चूना है। ये चीज़ें यों ही फेंक दी जाया करती हैं। प्रयोग करके देखा गया है कि तंबाकू और लकड़ी की राख बड़े काम की चीज़ है। हरी लकड़ी की राख सूखी लकड़ी की राख से अधिक उपयोगी होती है। आशा है, हमारे यहाँ के किसान इन सस्ती और उपयोगी खादों से अवश्य लाभ उठावेंगे।

× × ×

१३. भारतवासियों की आयु

अन्य देशों के लोगों की आयु का औसत बढ़ रहा है; मगर भारतवासियों की आयु घटती जाती है। सन् १८४१ में एक अँगरेज़ की आयु का औसत ४०.१७ था; पर १६१० में वह ५१.५० हो गया। इँगलैंड आदि में अब भी १०० वर्ष से अधिक आयु के अनेक मनुष्य पाए जाते हैं। पर भारत में पूरे ५० वर्ष की आयु होना भी भाग्य की बात समझी जाने लगी है। सन् १८६१ में एक भारतवासी की आयु का औसत २४.५६ था। सन् १६०१ में २३.६३ हो गया। सन् १६११ में २२.५६ ही रह गया। अब शायद और भी कम हो गया होगा। २० वर्ष में ही आयु के औसत में २ वर्ष घट गए! क्या यह चिंता की बात नहीं है? इसमें संदेह नहीं कि दरिद्रता, चिंता, रोग-शोक और मानसिक अवनति का ही यह कुफल है।

× × ×

१४. ब्रिटिश और बोल्शेविक सेना की संख्या

इस वर्ष कहाँ कितनी ब्रिटिश-सेना रहेगी, इसका लेखा प्रकाशित हुआ है—

ग्रेट ब्रिटेन में	१,०८,०००	स्टेट्स सेटलमेंट में	१६,०००
भूमध्य-सागर में	४,०००	चीन में	४,०००
राइन में	११,०००	इराक में	२,०००
टर्की में	५,०००	मिस्र आदि में	१३,०००
भारत में	७१,०००	वेस्ट इंडीज़ में	२,०००

महायुद्ध से प्रथम एशिया में ब्रिटिश-सेना कम थी; अब उससे अधिक रहेगी। मध्य-पूर्व में इसके अलावा

१०००० भारतीय सेना है। इस सेना-समूह के लिये भिन्न-भिन्न देश इँगलैंड को निम्न-लिखित धन देते हैं—

मारिशस	१६,००० पौंड	हाँगकाँग	४,४३,००० पौंड
सीलोन	७२,००० ,,	मिस्र	१,५०,००० ,,
स्ट्रेट्स सेटलमेंट	४,४६,००० ,,	भारत	७,५०,००० ,,
		जर्मनी	१२,५०,००० ,,

इस प्रकार अपने साम्राज्य-वाद की पुष्टि के लिये ग्रेट ब्रिटेन रोज़ाना ११,४३३ पौंड ख़र्च करता है!

अब बोल्शेविकों की सेना का हाल सुनिए। सन् १९२३ के आरंभ से बोलशेविक-सेना घटकर ८ लाख रह गई थी। इसमें १ लाख ५० हज़ार अस्थायी सैनिक थे। इस समय बोल्शेविक सेना में २ लाख ८० हज़ार पैदल, ६० हज़ार सवार, ७०,००० विशेष सैनिक और ३० हज़ार जल-सेना है। अस्थायी सेना में चेका की सीमा पर ५० हज़ार यूनिट और चेका में ६० हज़ार यूनिट हैं। बोलशेविकों के पास २० लाख रायफ़लें, १४½ हज़ार मशीनगनें, ५ हज़ार ७ सौ हलकी मशीनगनें, ३६०० तोपें और ३० लाख गोले हैं। १ अरब के लगभग और छोटे-मोटे शस्त्र हैं। सेना के एक डिवीज़न में १५,००० पैदल और ६,५०० सवार रखना निश्चित हुआ है। तदनुसार एक डिवीज़न में ३ पैदल-पल्टनें, ३ सवार पल्टनें, ३ मैदानी तोपख़ाने, ३ हाविट्ज़र तोपख़ाने और इंजीनियर सैपर आदि रहते हैं। रूस में हवाई-जहाज़ों के २३ कारख़ाने हैं। इस समय ५ में ही काम होता है। इनमें २ मास्को में, १ पेट्रोग्राड में, १ पेंजा और १ ओडेसा में है। सन् १९२४ के आरंभ तक १०,००० हवाई जहाज़ बन जाने की आशा है। हवाई जहाज़ चलाना सिखाने के लिये रूस में ४ स्कूल हैं। सब से अच्छा स्कूल मास्को में है। उसमें ५० जर्मन शिक्षक हैं। मज़दूरों को सैनिक शिक्षा देने के लिये भी रूस में कई स्कूल हैं।

× × ×

१५. अद्भुत फूलोंवाला वृक्ष

मैक्सिको (अमेरिका) में एक अद्भुत फूलोंवाला वृक्ष होता है। उसके फूलों के बीच से जो डंठल-सा निकलता है, उसका आकार आदमी के हाथ और पुट्ठे के सदृश होता है। जैसे मनुष्य की उँगलियों में नाखून निकलते हैं, वैसे इनमें नोकें रहती हैं। फूलों का रंग लाल होता है, और वे किसी ख़ूनी के रक्त-रंजित हाथ-जैसे दूर से प्रतीत होते हैं। जापान में भी एक ऐसा ही न रंगी का पेड़ होता है; जिसकी उँचाई अक्सर ५ फ़ीट से अधिक नहीं होती। अँगूठे-सहित आदमी के पंजे के आकार के इसके फल होते हैं। यह प्रकृति की विचित्रता है! मनुष्य-निर्मित अजायब-घरों में इस उन्नति के युग में भी ऐसी विचित्र वस्तुओं का संग्रह नहीं हो सका है, जैसी यदा-कदा निर्जन जंगलों में नज़र पड़ जाती हैं।

× × ×

१६. भारत में सरकारी तौर से इँगलैंड से कितना माल ख़रीदा गया?

लंदन में एक भारतीय ट्रेड कमिश्नर रहता है। भूत-पूर्व ट्रेड कमिश्नर मिस्टर डी० टी० चेडविड ने एक हिसाब प्रकाशित किया है कि हाई कमिश्नर ने भारत-सरकार, प्रांतीय सरकारों और देशी राज्यों के लिये इँगलैंड से कितना माल कब ख़रीदा है। हिसाब का स्थूल संक्षिप्त विवरण यों है—

माल	सन् १९२०-२१	सन् १९२१-२२
स्टांप	३,६६,००० पौंड	३,३६,००० पौंड
तार और डाक का सामान	६,३२,००० ,,	६,७२,००० ,,
शासन-विभाग के लिये	४,७६,००० ,,	४,१५,००० ,,
स्टेशनरी और छपाई	२,१६,००० ,,	२,१६,००० ,,
स्थल-सेना और हवाई सेना के लिये	२४,३६,००० ,,	४१,७२,००० ,,
सामुद्रिक सामग्री	४,०१,००० ,,	२,१४,००० ,,
स्टेटरेलवे का सामान	३७,४७,००० ,,	२८,७२,००० ,,
देशी राज्यों के लिये	६,६२,००० ,,	१६,३८,००० ,,
फुटकल	६,६८,००० ,,	६,७०,००० ,,
समुद्र-मार्ग में हानि	३,००० ,,	५,००० ,,
कुल	१,३२,६५,००० पौंड	१,१८,१३,००० ,,

कुछ दिनों से भारत में भी सरकार के लिये उत्तरोत्तर अपेक्षाकृत अधिक सामान ख़रीदा जाने लगा है। देखिए—

सन्	माल की क़ीमत
१९१४-१५	२,६२,६१,०००) रुपए का
१९१५-१६	२,५४,८६,०००) ,,
१९१६-१७	२,६७,१३,०००) ,,
१९१७-१८	३,५४,०२,०००) ,,
१९१८-१९	५१,८,८६,०००) ,,

१९१९-२०	४,२३,८४,०००} रुपए का	
१९२०-२१	४,६०,८३,०००}	,,

ख़ैर, नहीं से यह भी ग़नीमत है। विलायत में पौंडों का ख़रीदा जाता है, तो यहाँ रुपयों ही का सही। इसमें संदेह नहीं कि सरकार और देसी राज्य अवलंब और प्रोत्साहन दें, तो यहाँ भी अच्छा, मज़बूत और फ़ैंसी सब तरह का सामान बनने लगे। सरकार और देसी राज्यों को भी कम क़ीमत में मिल जाय।

× × ×

१७. आकाश-मार्ग से लंबी यात्रा

अब विमानों का युग आ गया है। रेल, जहाज़ आदि से यात्रा करने में जितना समय लगता है, उससे कहीं कम समय में विमान की यात्रा समाप्त हो जाती है। समय की बचत तो होती ही है, विमान की यात्रा कम कौतूहल-जनक भी नहीं होती। योरप और अमेरिका के लोग समय की बड़ी क़दर करते हैं, इसलिये रेल और जहाज़ से न जाकर वे आकाश-मार्ग से ही यात्रा किया करेंगे। ख़बर मिली है कि विलायत में एक कंपनी क़ायम हुई है। उसके हवाई जहाज़, रेलवे की ट्रेनों की तरह, नित्य लंदन से बर्लिन (जर्मनी) और मास्को (रूस) को रवाना हुआ करेंगे। लंदन से रोज़ाना तीन विमान उड़ा करेंगे। यथा—सबेरे ८½ बजे, ९½ बजे और रात को १२½ बजे। ९½ का विमान एक्सप्रेस होगा, और बर्लिन की यात्रा करेगा। वहाँ इसके यात्री उतर पड़ेंगे। उनमें से रूस जानेवाले यात्री रेल पर कोनिंग्सबर्ग तक जायँगे। वहाँ से फिर विमान पर बैठकर सोवियट रूस के हेडक्वार्टर मास्को को जायँगे। जिस दिन लंदन से यात्री चलेंगे, उसके दूसरे ही दिन मास्को पहुँच जायँगे। रात्रि का विमान एमस्टरडम होता हुआ हंबर्ग से डेनमार्क की राजधानी कोपनहेगन पहुँचेगा। इसमें २४ घंटे का सफ़र होगा। उधर बर्लिन से एक विमान मंचेस्टर को आया करेगा। जो कि सुबह ८½ बजे बर्लिन से चलकर शाम को ५—५५ मिनट पर लंदन और ८¾ बजे मंचेस्टर पहुँचेगा। यह विमान-यात्रा ३० एप्रिल से शुरू हो गई थी। उल्लिखित परिवर्तन १ जून से हुआ है। बर्लिन से लंदन का किराया ९½ पौंड है। अभी यह यात्रा केवल व्यापारी और यात्रियों के लिये जारी हुई है। युद्ध-काल में ये ही जहाज़ शत्रु-पक्ष पर बम बरसाने का काम भी करेंगे। संभवतः आकाश-मार्ग से लंदन और भारत की यात्रा भी शीघ्र ही शुरू होनेवाली है। उसमें ३-४ दिन से अधिक नहीं लगेंगे। इस तरह इस युग में महीनों की राह दिनों की कर दी गई है।

× × ×

१८. कम सोना स्वास्थ्य को ठीक रखता है

यहाँ प्रायः देखा जाता है कि निश्चिंत लक्ष्मी-पात्र लोग अधिक समय सोने में ही बिता देते हैं। शायद यही कारण है कि उनमें से फ़ी-सदी ९० से भी अधिक को अजीर्ण-अपच, क़ब्ज़, भूख की कमी आदि की शिकायत बनी ही रहती है। मगर पाश्चात्य देशों में, ख़ासकर अमेरिका में, इसके विपरीत धनी और विद्वान् लोग अपना अधिक-से-अधिक समय व्यापार में, वैज्ञानिक आविष्कार में या और किसी उपयोगी काम में ख़र्च करके परिमित समय ही सोने के लिये रखते हैं। अमेरिका के रत्न एडीसन साहब को शायद हमारे सभी पाठक जानते होंगे। इन्होंने दर्जनों नए-नए आविष्कार करके अपनी कीर्ति जगत्-भर में फैला दी है। उनके आविष्कार केवल विज्ञान के गौरव की घोषणा करनेवाले ही नहीं हैं, उनसे व्यापार-संसार में भी अद्भुत क्रांति उत्पन्न हो गई है। एडीसन साहब अपने आविष्कारों की बदौलत बेशुमार दौलत पैदा कर चुके हैं। अब आप ७९ वर्ष के बूढ़े भी हो चुके हैं। इस देश का कोई इतना धन कमा चुका होता, तो इस उम्र में ख़ूब आराम करना ही अपना कर्तव्य समझता। मगर आपको आश्चर्य होगा, एडीसन साहब अब भी उसी तरह, एक प्रकार से रात-दिन, काम करते रहते हैं। वह इतने तंदुरुस्त और चुस्त हैं, उनमें इतनी फुर्ती है कि जवान जान पड़ते हैं। यह महाशय २४ घंटे में सिर्फ़ ४ घंटे सोते हैं। इनके कार्यालय में और भी सैकड़ों वैज्ञानिक विद्वान् काम करते हैं। वे लोग भी स्वामी के अनुकरण पर सोने के घंटे घटा रहे हैं। उन लोगों को विश्वास हो गया है कि सोना भी एक आदत है, जो बढ़-घट सकती है। अभ्यास बढ़ाकर आदमी घंटे-दो घंटे ही सोकर भी तंदुरुस्त रह सकता है। हमारे देश के आलसियों को इससे कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

× × ×

१९. मिस्र में नया शासन-विधान

पाठकों को मिस्र के असंतोष और राजनीतिक आंदोलन

की प्रगति का हाल, अख़बारों के ज़रिए, समय-समय पर मालूम होता रहता है। वहाँ के नेता जगलुलपाशा को देश-निकाले का दंड मिला, और मार्शल-ला जारी किया गया, तथापि वहाँ शांति नहीं हुई, बल्कि अशांति की आग उत्तरोत्तर अधिक भड़कती गई। अंत को ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने मिस्र को स्वराज्य देना ठीक ठहराया। उसकी स्कीम बनी, और वहाँ के नरम-दल ने उसका स्वागत किया। रूटर के तारों से मालूम हुआ, मिस्र के लोग इस नवीन शासन-विधान से संपूर्ण संतुष्ट हैं, और ख़ुशी मना रहे हैं। मगर असल बात और ही कुछ थी। वहाँ का राष्ट्रीय दल, जो वफ़द कहलाता है, उसके प्रति-निधि-मंडल की कार्य-कारिणी कमेटी ने घोषणा की है कि यह शासन-विधान नाकाफ़ी, पोला और पेंचदार है। घोषणा-पत्र में कहा गया है—"यह विधान ऐसा है कि विदेशी सत्ता मज़े से हमारे शासन में दस्तंदाज़ी कर सकती है। व्यक्ति-गत भाषण और लेखन की स्वतंत्रता का कुछ ज़िक्र ही इसमें नहीं है। मिस्र की सीमा का भी कुछ निर्णय नहीं किया गया है। सुडान की सीमा भी नहीं तय है। सब से अधिक आपत्ति के योग्य बात यह है कि अब भी मिस्र में मार्शल-ला और फ़ौजी अदालतें क़ायम हैं।" मिस्र को दी गई स्वतंत्रता का यही रूप है। जगलुलपाशा के नेतृत्व में चलनेवाला यह राष्ट्रीय दल इसे ब्रिटन की चाल बतलाता है, और वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त किए विना दम लेना नहीं चाहता। वर्तमान युग की राजनीति की पालिसी कुछ ऐसी है कि कोई बड़ी शक्ति अपने हाथ में आए हुए दूसरों के देश को अपने लाभ के लिये स्वतंत्र होने देना नहीं चाहती। यही सर्वत्र असंतोष का मूल कारण है। सचाई, समता, स्वतंत्रता और स्वार्थ-त्याग का साम्राज्य जब तक संसार में स्थापित नहीं होता, तब तक यथार्थ शांति के दर्शन नहीं हो सकते। साम्राज्य-वादी राष्ट्र चाहे जब इस सत्य सिद्धांत के आगे सिर झुकावें, किसी-न-किसी दिन उन्हें ऐसा करना ही पड़ेगा, यह निश्चित है।

× × ×

२०. ढाई सौ वर्ष की आयु के वृद्ध योगी की विचित्र बातें

गत वर्ष कुछ प्रतिष्ठित साहसी अँगरेज़ वैज्ञानिकों का एक जत्था हिमालय के सर्वोच्च शिखर (गौरीशंकर) पर चढ़ने के लिये गया था। भारत से तिब्बत में जाने के लिये प्रकृति-निर्मित कुछ घाटियाँ हैं; जो हिमालय को विदीर्ण कर पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत हैं। उनमें अधिक सुगम घाटी ज्ञानसी नाम की है। यह बंगाल के उत्तर दार्जिलिंग के पास है। उक्त जत्था इसी मार्ग से गया था। मेजर क्रास (एक सैनिक ऑफ़िसर) भी इस जत्थे में थे। इन्होंने गोआपांजिम नाम के स्थान में, जो कि बंबई के दक्षिण भारत के पश्चिमी समुद्र-तट पर है, एक व्याख्यान हाल में दिया है। इस स्थान में पुर्तगीज़ों का राज्य है। पुर्तगीज़ गवर्नर भी सभा में उपस्थित थे। मेजर क्रास ने उल्लिखित यात्रा में देखी हुई बहुत-सी विचित्र बातें और तिब्बत की अद्भुत रीति-नीति का मनोरंजक वर्णन किया है। उनमें से दो-चार बातें संक्षेप में यहाँ लिखी जाती हैं। मेजर के पास एक दाई नौकर हुई थी, और वह वहाँ की सब से रूपवती स्त्री थी। मगर असल में वह कुरूपा थी। वह कहते हैं, तिब्बत में एक स्त्री के अनेक पति होते हैं। एक ही स्त्री सब भाइयों की पत्नी होती है। उस दाई के ८ पति थे। २६ वर्ष की अवस्था में ही उसके ११ संतानें हो चुकी थीं। एक स्त्री के पति के २२ भाई हैं। वह स्त्री २३ पुरुषों की स्त्री है। वहाँ की स्त्रियाँ मुँह कभी नहीं धोती हैं। मेजर क्रास को वहाँ एक २४० वर्ष के वृद्ध साधु के दर्शन तिब्बतियों ने कराए। उनमें अद्भुत शक्ति थी। थियासफ़ी मत को चलानेवाली मेडम ब्लैवस्की को इन्हीं महात्मा ने धर्मोपदेश किया था। उच्च कोटि के गणित के इंटेगैल और डिफ़रेंशियल कालक्युलस सिद्धांत प्रसिद्ध विद्वान् न्यूटन ने ही निकाले हैं। आश्चर्य है कि न्यूटन का नाम तक न जाननेवाले यह महात्मा उक्त सिद्धांतों से पूर्ण परिचित हैं। इन योगी में ग़ायब हो जाने की शक्ति है। मेजर साहब ऐसी कुछ करामातों को देखकर चकित हो गए। मगर योग-बल से कुछ भी परिचित हिंदू जानता है कि ये सब साधारण सिद्धियाँ योग की आरंभिक दशा के शोबदे-भर हैं। योग-बल की महिमा अपार है। योगी चाहे जो कर सकता है। नई सृष्टि की रचना भी उसके लिये कुछ बड़ी बात नहीं है। विश्वामित्र का चरित्र पुराणों में पढ़नेवाले इस बात को जानते हैं। ख़ैर, साहब ने कहा कि वह योगी इस समय हिमालय के सब से बड़े योगी हैं। वह अपने शरीर को चाहे जितना बढ़ा सकते हैं। योग-शक्ति से ही उनकी इतनी आयु हुई है। योगी ने बात-चीत के

सिलसिले में कुछ होनहार भी कहा। उनके कथनानुसार सन् १६२७ में एक बहुत बड़ा भयानक समर फिर होगा। तदनंतर कई वर्ष तक घोर दुर्भिक्ष पड़ेगा। साहब कहते हैं—योगी ने उनके सामने ही एक बालक की प्रेत-बाधा दूर कर दी, अपनी दृष्टि से एक भारी शिला को चूर-चूर कर दिया। अंत को मेजर साहब ने अपने व्याख्यान के उपसंहार में कहा कि तिब्बत के लिये भी एक दिन महायुद्ध होगा।

× × ×

२१. गेहूँ की फ़सल

भारत-सरकार की ओर से चौथी बार जो सन् १६२२-२३ की गेहूँ की फ़सल का अनुमान प्रकाशित किया गया था, उसमें भारत के उन सब स्थानों की फ़सल का ब्योरा था, जो गेहूँ की फ़सल के केंद्र कहे जाते हैं। पाठकों की जानकारी और मनोरंजन के लिये उसका संक्षिप्त सारांश दिया जाता है। अंदाज़न् ३ करोड़ ४ लाख ६२ हज़ार एकड़ में गेहूँ बोया गया था। अब की पिछले साल से ७ फ़ी-सदी गेहूँ की खेती बढ़ी है। १ करोड़ ७ लाख ६४ हज़ार टन गेहूँ की उपज कूती गई थी। पिछले साल ६८ लाख ३८ हज़ार टन ही उपज हुई थी। अब की १० फ़ी-सदी अधिक पैदावार होने की आशा थी। फ़सल की हालत साधारणतः अच्छी बतलाई गई है। तुलना करके लिखा गया है कि पिछले साल से इस साल हैदराबाद में ८२ फ़ी-सदी, मध्य-प्रदेश में ५२ फ़ी-सदी, मध्य-भारत तथा बरार में ४६ फ़ी-सदी, ग्वालियर में ४६ फ़ी-सदी, दिल्ली में ३६ फ़ी-सदी, सिंध में २७ फ़ी-सदी, राजपूताने में २१ फ़ी-सदी, पश्चिमोत्तर सीमा-प्रांत में १३ फ़ी-सदी, बंगाल में ११ फ़ी-सदी और पंजाब में ७ फ़ी-सदी फ़सल अधिक होने की आशा है। इसी तरह अजमेर-मेरवाड़े में ३३ फ़ी-सदी, बिहार-उड़ीसे में ५ फ़ी-सदी, बंबई एवं युक्त-प्रांत में ३ फ़ी-सदी कमी हो सकती है।

× × ×

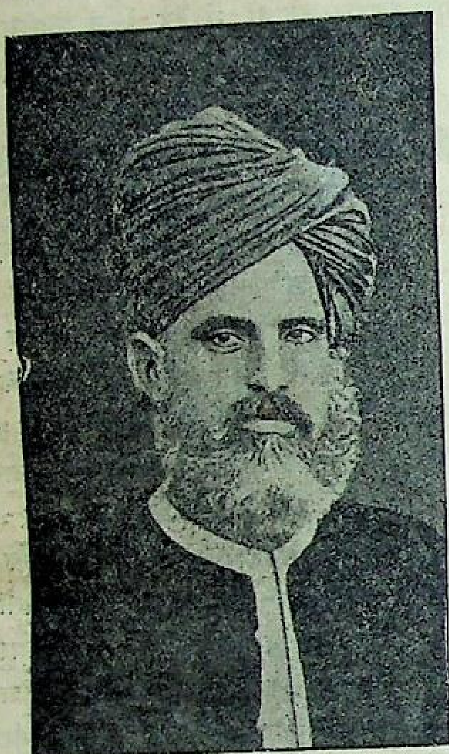
२२. चीन की दीवाल

चीन में एक बहुत बड़ी तथा ऊँची दीवाल है। इस-का कुछ हिस्सा रेलवे-लाइन बनाने के लिये तोड़ा गया था। तोड़नेवाले ठेकेदारों ने इस काम को मुफ़्त कर दिया; किंतु दीवाल से पुराने समय की मुद्रा और गहने, जो छिपाकर रक्खे हुए थे, इतने निकले कि दीवाल को मुफ़्त तोड़नेवाले ठेकेदार नफ़े ही में रहे। न मालूम उस दीवाल में अब तक कितनी धन-संपत्ति छिपी हुई है!

× × ×

२३. मुंशी देवीप्रसादजी का स्वर्ग-वास

पं० प्यारेलाल मिश्र के स्वर्गारोहण का संवाद पाए अभी १५ दिन भी नहीं हुए, 'माधुरी' प्रकाशित होते-होते, मुंशी देवीप्रसादजी के स्वर्ग-वास का भी संवाद मिल गया! हिंदी-संसार के लिये इससे अधिक शोक की बात और क्या हो सकती है? मुंशी देवीप्रसादजी हमारे देश के इसलामी राजत्व-काल के इतिहासज्ञों में से अग्रगण्य थे। हिंदी से आपको बड़ा प्रेम था। आपने कोई ५०-६० ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं। आपका जन्म माघ-शुक्ल १४ शुक्रवार, संवत् १६०४ को हुआ था। आपके पिता का नाम मुंशी नत्थनलालजी था। आपसे ही मुंशी देवीप्रसाद-जी ने उर्दू और फ़ारसी की शिक्षा पाई। हिंदी अपनी माता से सीखी। माता की हिंदी-शिक्षा का मुंशीजी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। जब कुछ और वयस्क हुए, तो इनके पिताजी ने भी इन्हें हिंदी की शिक्षा दी। शुरू में आपको रियासत टोंक तथा इसके पश्चात् अजमेर में, उर्दू और फ़ारसी में, काम करना पड़ा। अजमेर में आप संवत् १६३५ तक रहे। फिर संवत् १६३६ में जोधपुर के महाराज के यहाँ आ गए। जोधपुर-दरबार में रहकर कुछ दिनों बाद आप मुंसिफ़ हो गए। मुंसिफ़ी का कार्य आपने बड़ी योग्यता-पूर्वक किया; रियासत-भर में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा हो गई। इस पद पर रहकर आपने बड़ी उन्नति की। मारवाड़-राज्य के क़ानून सर्व-प्रथम आपने ही बनाए थे, इस कारण राज्य के लोगों ने प्रेम-पूर्वक आपका नाम 'क़ानूनी' तथा 'क़ानून की माता' रक्खा था। ६ मनुष्य-गणनाओं के अनुभव से आपने मारवाड़ की हिंदू-मुसलिम-जातियों की एक ऐसी रिपोर्ट लिखी थी, जो देसी राज्यों की रिपोर्टों में पहली ही महत्त्व-पूर्ण रिपोर्ट है। इस ग्रंथ पर मारवाड़-दरबार की ओर से आपको प्रशंसा-पत्र-सहित ५००) का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। आपकी उर्दू-पुस्तकों में से 'गुलदस्तए अदब', 'तालीम निसवाँ' तथा 'तवारीख़ क़ौम-मारवाड़' पर संयुक्त-प्रांतीय सरकार ने भी ५००) पुरस्कार-स्वरूप दिए थे। आपने बड़े परिश्रम और व्यय से सन् ६२२ ई० से लेकर सन् १६२२ ई०



स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी

तक की एक बड़ी महत्त्व-पूर्ण ऐतिहासिक जंत्री तैयार की है ; जो अभी अप्रकाशित है।

साहित्य-सेवा का कार्य आपने १६ वर्ष की अवस्था से ही प्रारंभ कर दिया था। संवत् १६२० ई० में आपने पहला उर्दू-ग्रंथ 'ख़्वाब राजस्थान' लिखा। पुनः इसी का हिंदी-अनुवाद 'स्वप्न राजस्थान' के नाम से प्रकाशित हुआ। रियासत का अदालती काम पहले उर्दू में होता था, परंतु आपने अपने प्रयत्न से हिंदी को उसका स्थान दिया। एतदर्थ आपको अपने मित्रों के व्यंग्य-वचन भी सुनने पड़े, परंतु आपने उनकी यत्किंचित् पर्वा नहीं की। आपके स्वर्गारोहण से हिंदी-संसार की तो महान् क्षति हुई है, परंतु साथ-ही-साथ, अखिल भारतीय ऐतिहासिक संसार की भी कुछ कम क्षति नहीं हुई। आप उन पुरुष-सिंहों में से थे, जो एक साधारण कुटुंब में जन्म लेकर अपनी प्रतिभा, उद्योग-शीलता, परिश्रम और सादगी के बल से राष्ट्र और मातृ-भाषा के लिये बहु-मूल्य सिद्ध होते हैं। लगभग १० वर्ष हुए होंगे, आपके पुत्र श्रीयुत पीतांबरदत्तजी का देहांत हो गया था। पुत्र के देहांत से मुंशीजी के हृदय को बड़ी ठेस लगी। आपके पौत्र मुंशी पुरुषोत्तमदासजी ही आपके एक-मात्र उत्तराधिकारी हैं। माधुरी के जन्म से आप बड़े प्रसन्न हुए थे। रुग्ण रहते हुए भी आप उसके लिये लेख लिखना अपना "कर्तव्य" समझते थे। मृत्यु के कुछ दिन पहले ही आपने एक लेख लिखकर भेजा था। बहुत दिनों से आप हस्त-लिखित ऐतिहासिक पुस्तकों का एक बड़ा पुस्तकालय खोलने का उपक्रम कर रहे थे, पर भगवान् ने यह व्रत पूरा नहीं होने दिया! आप केवल तीन दिन बीमार रहे, और गत १९ जुलाई को स्वर्ग-वासी हुए। आपने अपने जीवन में, सार्वजनिक संस्थाओं को, सब मिलाकर लगभग ८६,०००) का दान किया है। हमें देवीप्रसादजी के स्वर्ग-वास पर हार्दिक दुःख है। हिंदी-संसार का एक ऐतिहासिक दिग्गज विद्वान् उठ गया! भगवान् मुंशीजी की आत्मा को शांति प्रदान करें, और मुंशी पुरुषोत्तमदासजी को धैर्य।

× × ×

२४. नाभा-नरेश का शोचनीय परिणाम

देशी नरेशों में नाभा-नरेश श्रीरिपुदमनसिंहजी विद्या, बुद्धि स्वातंत्र्य-प्रियता आदि सद्‌गुणों के लिये प्रसिद्ध हैं। नाभे और पटियाले का झगड़ा अर्से से चला आ रहा है। इन दोनों निकट-संबंधी नरेशों के मनोमालिन्य का ऐसा कुफल होगा, यह किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। हाल में मालूम हुआ है कि नाभा-नरेश ने स्वेच्छा से गद्दी छोड़ दी है। उनके पुत्र, जो अभी ४ वर्ष के ही हैं, २१ वर्ष के (बालिग़) होने पर गद्दी पर बैठेंगे। तब तक राज्य का रक्षणावेक्षण भारत-सरकार करेगी। बात यह थी कि पटियाला-राज्य की ओर से ८ अभियोग नाभा नरेश पर लगाकर भारत-सरकार से विचार की प्रार्थना की गई। जस्टिस स्टुअर्ट के हाथ में मामला गया। उनके विचार में कुछ अभियोग साबित नहीं हुए, और कुछ साबित हो गए। सुनते हैं, २० लाख रुपए क्षति-पूर्ति के पटियाले को दिलाना तय हुआ। सरकार का कहना है कि सारी शरारत नाभा नरेश की थी। वह पटियाले के कर्मचारियों और निवासियों को अकारण तंग और क़ैद कराकर अत्याचार कराते थे। इस मुक़द्दमे का फ़ैसला अपने विरुद्ध सुनकर उसके भयंकर परिणाम और बद-

नामी से डरकर राजा साहब ने स्वयं गद्दी छोड़ दी है। इसके विरुद्ध शिरोमणि-कमेटी ने प्रकाशित किया है कि "राजा साहब ज़बरदस्ती गद्दी छोड़ने को विवश किए गए हैं। वह अकालियों के आंदोलन के समर्थक थे, अँगरेज़ों से दबते न थे, स्वतंत्र विचार के थे, प्रसिद्ध विद्रोही राजा महेंद्रप्रतापसिंह के बहनोई थे। इसी तरह के अनेक कारणों से गवर्नमेंट को वह खटक रहे थे। सरकार सन् १९१२, १९१५ और १९१७ में कई बार उन्हें गद्दी से उतारते-उतारते रह गई। इस बार गवर्नमेंट को नाभे-पटियाले के ख़ानगी झगड़े से लाभ उठाने का अच्छा मौक़ा हाथ लग गया, और उसने अपने मन की कर डाली। राजा साहब पर दबाव डालकर गद्दी छोड़ने का पत्र लिखा लिया गया है।" असल बात क्या है, सो हम नहीं कह सकते। गत ८ जुलाई को पोलिटिकल एजेंट ने फ़ौज और मशीन-गनों के साथ जाकर राज-भवन पर क़ब्ज़ा भी कर लिया है। राजा साहब, युवराज और रानी के साथ, देहरादून को रवाना कर दिए गए हैं। इस घटना से सिखों में घोर असंतोष की आग भड़क उठी है। उन्होंने एक भारी सभा करके इस मन-मानी का प्रतिवाद करते हुए यह घोषणा की है कि वे सरकार को हर तरह से—सत्याग्रह तक करके—विवश करेंगे कि नाभा-नरेश को वह गद्दी पर फिर बिठावे। हमारी राय में सरकार को इस विषय पर फिर विचार करके काम करना चाहिए। पटियाला-नरेश भी नहीं चाहते कि नाभा-नरेश राज्य-च्युत कर दिए जायँ। अतएव सरकार को चाहिए कि वह नाभा-नरेश को गद्दी से न हटावे। अगर हटावे ही, तो राज्य का प्रबंध अपने हाथ में न लेकर उनके कुछ निकट-संबंधी राजों की समिति बनाकर उसे, तब तक के लिये, सौंप दे, जब तक राजकुमार बालिग़ न हो जायँ। गवर्नमेंट भले ही इस मामले में निर्दोष हो, और वह इस काम को नेकनियती से कर रही हो, लेकिन राज्य का प्रबंध अगर वह अपने हाथ में लेगी, तो उसकी बदनामी अवश्य होगी, और लोग तरह-तरह की शंकाएँ करेंगे। अच्छा तो यह हो कि "चेंबर आफ़ प्रिंसेज़" को यह मामला सौंप दिया जाय। हम फिर यही निवेदन करेंगे कि सरकार सिख-जाति को असंतुष्ट होने का अवसर न दे। अकालियों को सत्याग्रह के लिये विवश करना उचित और विवेकशीलता का परिचायक न होगा। लोग कहते हैं, जब राजा साहब



नाभा-नरेश

को मोटर पर बिठाकर देहरादून को ले गए, तब उनकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। उनकी हालत इस समय पागलों की-सी हो रही है। बाल नोचते हैं, हाथ पटकते हैं। अगर ये बातें सच हैं—और लोग इन्हें सच ही मानते हैं, और मानेंगे—तो सरकार का यह कहना कि वह ख़ुशी से गद्दी छोड़ रहे हैं, पबलिक के हृदय में स्थान नहीं पा सकेगा। नाभा-नरेश ने जिन शर्तों पर गद्दी छोड़ी है, वे निम्न-लिखित हैं—

(१) मेरा ख़िताब और सलामी उसी तरह क़ायम रहेगा, पर अपनी रियासत का शासन-भार मैं भारत-सरकार को सौंप दूँगा।

(२) मैं आगे रियासत के बाहर रहूँगा, और सरकार की आज्ञा लेकर धार्मिक कार्यों के लिये रियासत में आ सकूँगा।

(३) जब मेरा लड़का बालिग़ हो जायगा, तो भारत-सरकार उसे गद्दी दे देगी। उस समय तक भारत-सरकार मेरे लड़के की शिक्षा का भार लेगी।



महाराजा पटियाला

(४) पटियाला-रियासत को हर्जाने के तौर पर पचास लाख रुपए देने में मुझे कोई उज्र नहीं है, पर उचित रक़म भारत-सरकार ही ठीक करेगी। यह रक़म रियासत के ख़ज़ाने से ली जायगी, क्योंकि उसे मैंने काढ़ा नहीं है।

(५) मेरी प्रार्थना है कि मुझे उम्र-भर तीन लाख रुपया सालाना खाने-ख़र्चने को रियासत से मिलता रहे। मैं रियासत के कामों में दख़ल नहीं दूँगा।

(६) जो हुज़ूर वायसराय साहब इस प्रबंध को मंज़ूर कर लें, तो पिछली शिकायतें रद्द कर इसे आख़िरी फ़ैसला समझें।

भारत-सरकार ने जो तीन शर्तें और बढ़ाई हैं, उनमें से दो ये हैं—

(१) मैं सदा नमकहलाल राजभक्त (?) रहूँगा।

(२) मैं पंजाब में नहीं आ सकूँगा।

६ जुलाई को इन शर्तों की मंज़ूरी भेजी गई और उसे लौटाने के लिये महाराजा ने भरसक कोशिश की, पर खेद है कि अहलकारों के सामने इस समय नाम-मात्र के महाराजा बेबस हैं।

हमें आशा है, लार्ड रीडिंग की सरकार प्रजा के मत को इस मामले में उपेक्षा की दृष्टि से न देखेगी; और, नाभा-नरेश को, यदि वे सचमुच दोषी ही हैं, इतना बड़ा कठोर दंड देने की व्यवस्था नहीं करेगी। उसे सोच लेना चाहिए कि सिख-जाति ने ब्रिटन का बड़ा उपकार किया है। उसे असंतुष्ट करना धर्म, नीति, राजनीति या पालिसी की दृष्टि से कदापि ठीक न होगा।

× × ×

२५. बंगीय साहित्य-सम्मेलन

अभी हाल में, नैहाटी में, चतुर्दश बंगीय साहित्य-सम्मेलन बड़ी धूम-धाम से हो गया है। उसके एक सप्ताह पहले काँठालपाड़ा में, जो कि नैहाटी से बहुत ही निकट है, एक सप्ताह पहले, बंकिम-साहित्य-सम्मेलन भी हुआ है। यह दो-दो सम्मेलनों का इस तरह पास-ही-पास एक ही पक्ष के भीतर होना उसी दलबंदी का फल है, जिसने भारत को कई शताब्दियों से तबाह कर रक्खा है। दोनों ही सम्मेलनों में यथेष्ट साहित्यिक पधारे थे। किंतु बंकिम-साहित्य-सम्मेलन, केवल प्रतिद्वंद्विता के कारण होने से, बहुत जल्दी में किया गया था। इस कारण उसमें बाहर के बंगाली साहित्यिक कम पहुँचे थे। कलकत्ते के भी कुछ

ही साहित्य-सेवी पहुँच सके थे। मगर दूसरे सम्मेलन में कलकत्ते के और बाहर के यथेष्ट प्रतिनिधि, साहित्य-सेवी, संपादक और दर्शक उपस्थित हुए थे। वंकिम-सम्मेलन के मूल-सभापति हुए थे बाबू विपिनचंद्रपाल। चतुर्दश वंगीय साहित्य-सम्मेलन के मूल सभापति हुए थे बर्दवान के महाराज सर विजयचंद महताब बहादुर। वंकिम-साहित्य-सम्मेलन के शाखा-सभापतियों में इतिहास-शाखा के श्रीरामाप्रसादचंद्र, दर्शन-शाखा के महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्क-भूषण, और साहित्य-शाखा के क्षीरोदप्रसाद विद्या-विनोद सभापति थे। इसी तरह चतुर्दश वंगीय साहित्य-सम्मेलन की दर्शन-शाखा के श्रीयुत पंडित पंचानन तर्क-रत्न, साहित्य-शाखा के श्रीयुत अमृतलाल वसु, इतिहास-शाखा के कुमार डॉक्टर नरेंद्रनाथ लाटा और विज्ञान-शाखा के श्रीयुत जगदानंदराय सभापति हुए थे। दोनों सम्मेलन अच्छे हुए—विशेषकर चतुर्दश वंगीय साहित्य-सम्मेलन। पंचदश वंगीय साहित्य-सम्मेलन हुगली-ज़िले के राधापुर-ग्राम में होगा। यह ग्राम सुप्रसिद्ध राजा राममोहनराय की जन्म-भूमि है।

चतुर्दश वंगीय साहित्य-सम्मेलन के मूल-सभापति राजा साहब ने वंग-भाषा-प्रेमियों के आगे एक अच्छा प्रस्ताव रक्खा है। वह उन्हीं के शब्दों में यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"आप लोगों के विचार के लिये एक निवेदन उपस्थित करना मैं बहुत ज़रूरी समझता हूँ। ××× इस तरह के वार्षिक सम्मेलन को सजीव बनाए रखना ही अगर हम लोगों को अभीष्ट हो, बँगला-भाषा में बंगाली हृदय को सजग रखना ही अगर हमारा ध्येय हो, तो जिसमें उसकी उत्तरोत्तर उन्नति की जा सके, वही कर्तव्य है। किंतु ऐसा करने का यही उपाय नहीं है कि हर वार्षिक अधिवेशन में केवल सुंदर प्रबंध आदि पढ़-सुनकर, घर लौटकर, केवल सम्मेलन की कार्यवाही छपाकर साल-भर तक चुप-चाप निश्चेष्ट बैठे रहें। ऐसा करने से काम नहीं चलने का। बँगला-भाषा और बँगला-साहित्य को दर-असल ऊँचे आसन पर बिठाने के लिये हमें साहित्य-क्षेत्र के शिरोमणि विद्वानों को धन आदि से सम्मानित करते हुए उनकी ओर सर्व-साधारण का ध्यान आकृष्ट करने की राह खोजनी और निश्चित करनी होगी। बर्दवान में जब अष्टम साहित्य-सम्मेलन हुआ था, तब स्वागत-कारिणी के सभापति की हैसियत से मैंने जो वक्तृता दी थी, उसमें इस ओर इशारा था। आज आप लोगों की अनुमति लेकर इसी विषय को कुछ विस्तार के साथ मैं कहना चाहता हूँ। मेरी आज की इस वक्तृता का ख़ास मतलब यही है। मैं चाहता हूँ कि हमारे इस ग़रीब देश में, साहित्यिक लोगों का उत्साह बढ़ाने के लिये, Noble Prize की तरह किसी पुरस्कार के देने की व्यवस्था संभव न होने पर भी, हर साल कम-से कम ४०००) रुपए का कोई पुरस्कार निर्दिष्ट करना उतना कठिन न होगा। यह पुरस्कार प्रयोजन के अनुसार चार या उससे अधिक भागों में बाँटा जा सकता है। जैसे साहित्य, विज्ञान, इतिहास, दर्शन आदि। हर साल जब सम्मेलन हो, तब एक कार्य-कारिणी समिति सम्मेलन की ओर से इस पुरस्कार के लिये बनाई जाय, और उस साल के मूल-सभापति, शाखा-सभापतिगण, वंगीय साहित्य-सम्मेलन के संचालन के सभापति और मंत्री उस समिति के मेंबर हो सकें। साल-भर में बँगला-भाषा में जो ग्रंथ प्रकाशित हों, उनमें से छाँटकर सर्व-श्रेष्ठ ग्रंथों पर ये चार पुरस्कार (एक-एक हज़ार के) दिए जायँ, और किसे पुरस्कार मिलना चाहिए, इसका निर्णय वह समिति करे। पुरस्कार किसे मिलेगा, इसकी घोषणा सम्मेलन के प्रधान सभापति दूसरे दिन कर दें।"

यही राजा साहब का प्रस्ताव है, और बहुत अच्छा है। राष्ट्र-भाषा हिंदी के सेवकों ने सर्व-प्रथम जो आदर्श उपस्थित किया है, उसका अनुसरण अन्य प्रांतिक भाषाएँ भी करें, तो बड़ी अच्छी बात है। हमारी राय में यदि राजा साहब ही हर साल इतने रुपए ख़र्च कर डालें, तो उनके लिये कोई बड़ी बात नहीं है। उनकी कीर्ति अमर हो जायगी। आशा है, राजा साहब यह भार चंदे पर न छोड़कर अपने ही ऊपर ले लेंगे।



चित्र-चर्चा

१. रंगीन चित्र

पहले रंगीन चित्र में कुशल चित्रकार ने, जो अपनी चित्रण-कला की बदौलत भारत तथा इँगलैंड में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं, अलिफ़लैला के सिंदबाद जहाज़ी की किसी यात्रा का एक सुंदर दृश्य चित्रित किया है। यह चित्र हमें Indian Society of Oriental Art की कृपा से प्राप्त हुआ है। एतदर्थ सोसाइटी को धन्यवाद।

दूसरा रंगीन चित्र कृष्ण-यशोदा का है। यशोदा रानी नंद-नंदन श्रीकृष्णचंद्रजी को गोद में लिए दुलरा रही हैं। माधुरी के लब्ध-प्रतिष्ठ चित्रकार खातूजी ने इस भाव का चित्रांकण वास्तव में बड़ी ख़ूबी के साथ किया है।

तीसरा रंगीन चित्र सागरिका का है। इंद्रजालिक (बाज़ीगर) महल में आग लगने का तमाशा दिखाता है। रानी वासवदत्ता सागरिका (जिसे उसने क़ैद कर रक्खा था) को छुड़ाने का इसलिये आग्रह करती है कि आग में कहीं वह भी न जल जाय। राजा उदयन यह ख़बर पाकर महल की ओर दौड़ जाते हैं। रानी भी पीछे जाती है। उनके पीछे वसुभूति, जो सागरिका के साथ उसके पिता के यहाँ से इसलिये आया था कि उदयन को आकर रत्नावली (सागरिका) अर्पण कर दे; क्योंकि सिद्ध ने कहा था कि यह जिसकी स्त्री होगी, वह चक्रवर्ती होगा, और इसी से वासवदत्ता के जल मरने की झूठी ख़बर उड़ाकर, यौगंधरायण मंत्री ने, अपने स्वामी उदयन के लिये उसे माँगा था। जहाज़ सागर में टूट गया। एक सौदागर ने सागरिका की रक्षा की। वसुभूति सागरिका को पहचानता है। उसके मुख से सागरिका को अपनी बहन जानकर रानी वासवदत्ता उसे अपने पति को अर्पण कर देती और उसका बंधन खोल देती है। उसी समय का यह चित्र है।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला व्यंग्य-चित्र उन महापुरुषों (!) पर है, जो ऊपर से बड़े साधु, कर्मनिष्ठ तथा सच्चरित्र देख पड़ते हैं, परंतु जिनके आचरण नितांत पतित होते हैं। ऐसे व्यक्तियों से समाज को महान् क्षति पहुँचती है। देखिए, मस्तक में त्रिपुंड धारण किए हुए, और दाहने हाथ से, गोमुखी के भीतर, माला की गुरिया सरकाते हुए यह महाशय शराब की बोतल बग़ल में दबाए कितनी प्रसन्नता के साथ चले जा रहे हैं! चित्रण अच्छा हुआ है। केवल मुखाकृति से ही बोतलानंद महाशय के मन के समस्त भाव छल-कपट, शराब पीने की उत्सुकता और उसके पश्चात् क्षणिक आनंदानुभव आदि व्यक्त हो जाते हैं।

दूसरा व्यंग्य-चित्र इस युग के मूर्ख पति और कर्कशा पत्नियों पर है। जैसा पति, वैसी पत्नी, दोनों अपनी-अपनी आकृतियों से अपना परिचय दे रहे हैं। परंतु स्त्री बड़ी विकट है, क्रोध के आवेश में आकर, पति की मान-प्रतिष्ठा सब ताक़ में रखकर, बेलना लेकर पति को मारने की धमकी दे रही है, और पति महाशय भी उसके रोब में ऐसे दब गए हैं कि [illegible] बन गए हैं!

Registered No. A. 1127.

